आर्थिक समीक्षा

१९४७

C. K. Y.
LIB
HARIDWAR

079248

Stock Verification-2024

Stock Verification-2024

कर्त्तव्यम् सुसमीक्षितम्
079248
079248

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आर्थिक-राजनीतिक अनुसन्धान विभाग का पाक्षिक पत्र

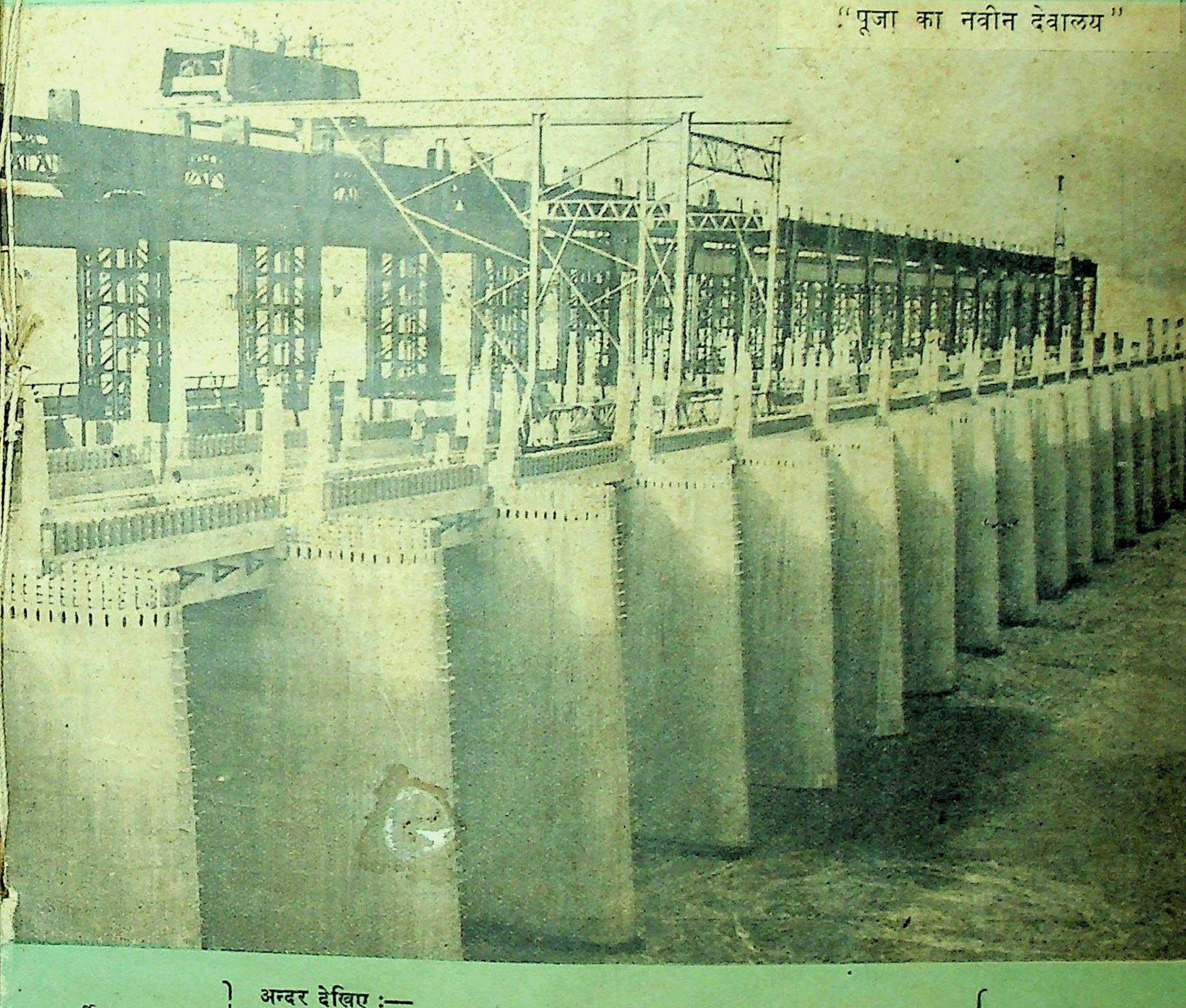
"पूजा का नवीन देवालय"

वार्षिक मूल्य
५ रुपया
एक प्रति
२२ नये पैसे

अन्दर देखिए :—

- ★ भाषा की राजनीति
- ★ स्वच्छ उद्जन बम की सम्भाव्यता
- ★ सम्पत्ति एवं व्यय पर कर
- ★ खाद्याभाव पर गांधीजी के विचार

नयी दिल्ली
२२ जुलाई १९५७
वर्ष ६, संख्या १९
पूर्णांक १३३

फसल देश की आजादी की

(श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी')

फसल देश की आजादी की हो न जाय बर्बाद

लाज लाजपत की रखना तुम भगतसिंह की आन,
भूल न जाना,वीरो, जलियांवाला का बलिदान,
फूल खिलाये अमर शहीदों ने खुद बन कर खाद,
फसल देश की आजादी की हो न जाय बर्बाद।
हिन्दू, मुस्लिम, सिख सभी ने बोए अपने शीश,
उसके बाद मिली आजादी की हम को आशीश।
चर न जाय इसको आपस में लड़ने का उन्माद,
फसल देश की आजादी की हो न जाय बर्बाद।

कहती रही सांस बापू की, कहते नेहरू आज,
जिसमें हिल-मिलकर सब रहते सच्चा वही स्वराज
विश्व-प्रेम के पथ पर जावे यह भारत आजाद,
फसल देश की आजादी की हो न जाय बर्बाद।
काश्मीर से हिन्द महासागर तक अपना देश,
पुत्रो, आपस में लड़ कर मत खींचो मां के केश,
फूट दासता की जननी है रक्खो इसको याद,
फसल देश की आजादी की हो न जाय बर्बाद।

विषय-सूची

१. भाषा की राजनीति श्रीमन्नारायण ३
२. संक्षिप्त टिप्पणियां : ६
  (१) प्रधानमंत्री की यूरोप-यात्रा
  (२) श्री देशमुख का विश्लेषण श्री. ना.
३. स्वच्छ उद्‌जन बम की संभाव्यता
केशवदेव मालवीय ८
४. सम्पत्ति एवं व्यय पर कर
नेमीचन्द कासलीवाल १२
५. खाद्याभाव पर गांधीजी के विचार
एम. वी. रमण राव १५
६. नये सिक्कों की कठिनाइयों पर एक नजर
राजकुमार निगम १९
७. द्वितीय योजना में बागवानी का विकास
और रोजगार की सम्भावना अमरसिंह मेहता २१
८. नये प्रकाशन गोपालजी मेहरोत्रा २३
९. आर्थिक-समाचार-संकलन :
  (क) भारतीय २५
  (क) विदेशी २८
१०. कवर पृष्ठों पर :
  (क) "पूजा का नवीन देवालय"
  (नंगल बांध, भाखरा नंगल योजना,
  पंजाब, का एक दृश्य) कवर एक
  (ख) फसल देश की आजादी की...(कविता)
  हरिकृष्ण 'प्रेमी' कवर दो

विशेष सूचना

'आर्थिक-समीक्षा' का आगामी अंक ७ अगस्त १९५७ की बजाय "१८५७ विशेषांक" के रूप में स्वतंत्रता दिवस १५अगस्त १८५७ को प्रकाशित होगा। इसमें सन् १८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम पर रुचिकर सामग्री प्रस्तुत की जायगी। कृपया एजेन्ट एवं विज्ञापनदाता नोट करलें।

——व्यवस्थापक

COMPILED

आर्थिक-समीक्षा

वर्ष ६, संख्या १९]   नयी दिल्ली : सोमवार, २२ जुलाई १९५७   [पूर्णाङ्क १३३

श्रीमन्नारायण

भाषा की राजनीति

पंजाब का हिन्दी आंदोलन भारत में राष्ट्रभाषा और प्रादेशिक भाषाओं के स्थान के बारे में कुछ बुनियादी सवाल पैदा करता है। हमारे ख्याल में रीजनल फारमूला, जो कि बहुत सोच-विचार और आपसी सलाह-मशविरे के बाद निकाला गया है, पंजाब के सीमांत राज्य की इस कठिन समस्या का सबसे अच्छा समाधान है। इस फारमूले के अनुसार एक अलग पंजाबी सूबे की मांग हटा ली गई और भारत की संसद ने निश्चय किया कि पंजाब एक राज्य के रूप में रहेगा, किन्तु उसमें दो प्रादेशिक भाषाएं होंगी। साथ ही, यह भी निश्चय किया गया कि भूतपूर्व पेप्सू इलाके के मौजूदा प्रबन्धों में फिलहाल परिवर्तन न किया जाय। आगे चलकर समूचे पंजाब राज्य के लिए परस्पर समझौते और सद्भावना के साथ एकभाषी फारमूला निकालना मुमकिन हो सकता है। रीजनल फारमूले का मुख्य उद्देश्य पंजाब में एकता कायम रखना और जनता के विभिन्न भागों के बीच, खासतौर पर हिन्दुओं और सिक्खों के बीच, मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बढ़ने का मौका देना था। हम नहीं समझते कि और किसी प्रकार का प्रबन्ध इस उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो सकता था।

दरअसल, यह बहुत दुख की बात है कि आर्य समाज को इस झगड़े में, जो कि मूलतः राजनीतिक है, आना पड़ा। किसी भी प्रदेश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में भाषा का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान होता है, किन्तु जब भाषा सम्बन्धी प्रश्नों को धर्म या राजनीति के साथ उलझा दिया जाता है तो एक ऐसा अस्वस्थ वातावरण बन जाता है जो न भाषा और न धर्म के लिए ही लाभकर हो सकता है। यह भी बहुत दुख की बात है कि पंजाब में साम्प्रदायिक और प्रतिक्रियावादी शक्तियां अपने संकीर्ण राजनीतिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिये हिन्दी आन्दोलन का पूरा फायदा उठाने की कोशिश कर रही हैं। इसलिए, यह जरूरी है कि जनता के सामने सच्चे तथ्य रखे जायें और उसे सही जानकारी दी जाय, ताकि जनसाधारण स्वयं एक सही दृष्टिकोण से समूची तस्वीर देख सके।

तथाकथित 'हिन्दी-रक्षा समिति' का दावा है कि वह पंजाब में प्रशासकीय और शैक्षणिक क्षेत्रों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के न्यायोचित स्थान की रक्षा कर रही है। महात्मा गांधी और डा. राजेन्द्रप्रसाद के पथ-प्रदर्शन में कई वर्षों तक हिन्दी प्रचार आन्दोलन से निकट रूप से सम्बन्धित होने के नाते मैं पूर्ण विश्वास के साथ कहना चाहूंगा कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी तभी पनप सकती है, जब कि विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का पूर्ण विकास और उनकी उन्नति हो। गांधीजी ने हिन्दी प्रचार आंदोलन में इस मूल सिद्धान्त को सदा सामने रखा कि हिन्दी-प्रेमियों को चाहिये कि वे विभिन्न प्रदेशों के सांस्कृतिक जीवन में प्रादेशिक भाषाओं को उनका यथोचित स्थान दें। अतः कोई भी ऐसा आन्दोलन, जो कि हिन्दी और किसी प्रादेशिक भाषा के बीच कटुता पैदा करता हो, हिन्दी-रक्षा आन्दोलन कभी नहीं कहा जा सकता। सबसे ज्यादा दुख की बात तो यह है कि पंजाब का हिन्दी आन्दोलन हिन्दी और पंजाबी के बीच अनावश्यक कटुता पैदा कर रहा है और इस कारण राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी के लिए भी सबसे अधिक अहितकर सिद्ध हो रहा है। अगर किसी एक राज्य के हिन्दी भाषी लोग पड़ोसी इलाके की प्रादेशिक भाषा सीखने को तैयार नहीं तो किस तरह गैरहिन्दी भाषी इलाके के लोगों को समझाया जा सकता है कि वे राष्ट्रभाषा

के रूप में हिन्दी सीखें ? जैसा कि प्रधान मंत्री श्री नेहरू बार-बार बताते आये हैं, भारत के संविधान में उल्लिखित सभी चौदह प्रादेशिक भाषाएं राष्ट्रभाषाएं हैं, और उन्हें समान आदर मिलना व उन पर समान ध्यान दिया जाना चाहिये। हिन्दी अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा है जिसका उपयोग अन्तर्प्रान्तीय कार्यों में किया जाना चाहिए। लेकिन हिन्दी आन्दोलन केवल तभी सफल होगा, जब कि वह प्रादेशिक भाषाओं के स्वाभाविक विकास और उनकी प्रतिष्ठा-वृद्धि में योग देगा, न कि बाधा उत्पन्न करेगा। इस दृष्टिकोण से पंजाब का हिन्दी आन्दोलन भारत में राष्ट्रभाषा के लिए एक लोकप्रिय और स्वस्थ आन्दोलन की जड़ों को ही काट रहा है।

पंजाब में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के दृष्टिकोण से भी एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जैसा कि कांग्रेस अध्यक्ष ने हाल ही में पंजाब प्रदेश कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी को सम्बोधित करते हुए कहा था : "पंजाब में रीजनल फारमूले ने हिन्दी को मद्रास, महाराष्ट्र, केरल और आंध्र की अपेक्षा कहीं अच्छा स्थान प्रदान किया है।" अगर पंजाब में भाषा फारमूला उचित रूप में कार्यान्वित किया जाय, तो प्राथमिक अवस्था के अन्तिम वर्ष का हर बच्चा अपने पाठ्यक्रम की प्रथम अथवा द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी से परिचित होगा। लेकिन, हिन्दी के लिए सम्मान और प्रतिष्ठा का यह स्थान तभी बनाया जा सकता है, जब कि हिन्दी और पंजाबी भाषी लोगों के बीच परस्पर सहयोग और सद्भावना का वातावरण बनाने की कोशिश की जाय। इस मूलभूत सद्भावना और परस्पर मेल बिना भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी न केवल पंजाब में, बल्कि देश के अन्य भागों में भी, पिछड़ जायगी।

प्रधानमंत्री ने हिन्दी-रक्षा समिति के अध्यक्ष को भेजे गये अपने स्मरणीय पत्र में एक सीधा सवाल पूछा था : "क्या आप विश्वास करेंगे कि हममें से कोई भी, जो कि हिन्दी प्रेमी है, कोई ऐसा काम कर सकता है जिससे हमारी राष्ट्रभाषा के विकास को चोट पहुंचती हो ? क्या आप विश्वास करेंगे कि यह रीजनल फारमूला हिन्दी के विकास के रास्ते में बिल्कुल नहीं आता ? हिन्दी न सिर्फ राष्ट्रभाषा है, बल्कि खासतौर पर पंजाब की एक प्रमुख भाषा भी है। और आपको हिन्दी के लिए क्या चाहिये ? यह एक ऐसा सवाल है जिस पर हिन्दी के हर शुभचिन्तक को सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए। नहीं तो, भविष्य सदा यही कहेगा कि पंजाब में हिन्दी के तथाकथित हिमायतियों ने राष्ट्रभाषा के विकास को सबसे बड़ी चोट पहुंचाई।"

बार-बार बताया जा चुका है कि पंजाब के भाषा फारमूला के अनुसार हिन्दी भाषा-भाषी बच्चों को पंजाबी सीखने के लिए, जोकि राज्य की दूसरी प्रादेशिक भाषा है, मजबूर नहीं किया जायगा। जैसा कि प्रधानमंत्री ने अपने पत्र में पूछा है, "क्या स्कूलों में किसी दूसरी भाषा का पढ़ाया जाना मजबूरी है या जनतन्त्रवादी सिद्धान्तों के खिलाफ है ? अगर ऐसी बात है तो दुनिया में कोई जनतन्त्रवादी देश नहीं, क्योंकि मैंने कोई ऐसा देश नहीं देखा, जहां कि अनिवार्य विषय के रूप में अन्य भाषायें न पढ़ाई जाती हों।" प्रधानमंत्री ने आगे चल कर यह भी पूछा : "अगर हम बच्चों से अंकगणित या रेखागणित पढ़ने को कहते हैं तो क्या यह मजबूर करना है ?" उन्होंने यह भी बताया कि किस प्रकार दुनिया के अन्य देशों में विद्यार्थियों को कई भाषायें सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, ताकि उनके दृष्टिकोण और आचार-व्यवहार में व्यापकता आ सके। स्वीजरलैंड जैसे छोटे देश में हर विद्यार्थी के लिए जर्मन, फ्रेंच और इटालियन——तीन भाषाओं का सीखना अनिवार्य है। इनके अलावा, बहुत से लोग एक चौथी भाषा रोमांटिक से भी परिचित हैं। साथ ही, स्कूलों में अंग्रेजी भी पढ़ाई जाती है और उसे सीखने का खूब शौक पाया जाता है। इसी तरह, यूगोस्लाविया, नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, पोलैंड, आदि अन्य यूरोपीय देशों में हर बालक को अपनी प्रादेशिक और राष्ट्रीय भाषाओं के अतिरिक्त कम से कम एक, और अक्सर एक से ज्यादा, विदेशी भाषायें सिखाई जाती हैं। अब हमारे देश में भी सरकार की यह निश्चित नीति है कि हर बालक को अपनी मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा और राष्ट्रभाषा के अलावा कम से कम एक अपेक्षाकृत आधुनिक भारतीय भाषा का ज्ञान प्राप्त करना होगा। आवश्यक है कि उत्तर भारत के हिन्दी भाषी विद्यार्थी कम से कम एक अहिन्दी प्रादेशिक भाषा सीखें। अतः पंजाब जैसे द्विभाषी राज्य में स्वाभाविक ही है कि विद्यार्थीगण

प्रादेशिक भाषा का भी ज्ञान प्राप्त करें, और सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में एकता के भाव को प्रोत्साहित करें। जैसा कि प्रधानमंत्री ने अपने पत्र में सुझाया है, "कम से कम मित्रता और आपसी सहयोग की खातिर ही पंजाब के लोगों के लिए यह अच्छा होगा कि वे पंजाबी और हिन्दी दोनों भाषाएं और उनकी लिपियां जानें।"

वैसे भी, पंजाब जैसे द्विभाषी राज्य में बहुत जरूरी है कि हिन्दी और पंजाबी दोनों के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक सुविधाएं प्रदान की जायं। यह कम से कम कीमत है और एक अच्छी कीमत है जिसे पंजाब के हर नागरिक को अपने राज्य की एकता के लिये सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। बम्बई राज्य में भी इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर कभी न कभी ध्यानपूर्वक विचार करना ही होगा। वेल्स में वैल्श और इंग्लिश भाषा के बीच प्रायः इसी प्रकार की समस्या उपस्थित है। उस देश के राजनीतिज्ञों ने एक फारमूला निकालने की कोशिश की है, जो कि बहुत-कुछ पंजाब के भाषा फारमूला जैसा ही है। इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं। भारत में द्विभाषावाद को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये, न कि निरुत्साहित। कहीं अच्छा हो अगर आगे चल कर बम्बई और पंजाब के अलावा कुछ अन्य द्विभाषी राज्य भी कायम हो सकें। एक-भाषावाद एक-भाषावादी उन्माद पैदा कर सकता है और वह राष्ट्र के बृहद हित के लिये घातक सिद्ध हो सकता है। अतः पंजाब सही भावना के साथ रीजनल फारमूला को कार्यरूप में परिणत कर देश के सामने एक अच्छा उदाहरण रख सकता है। पंजाबियों को चाहिये कि वे इसे शिकायत का कारण न बनाएं, बल्कि इस बात में संतोष की भावना अनुभव करें कि भाग्य ने उन्हें द्विभाषावाद के गुण-अवगुण निर्धारित करने में भारत के अन्य राज्यों का मार्गप्रदर्शन करने का स्वर्ण अवसर दिया है।

आज जब कि भाषा के प्रश्न को राजनीति और धर्म के साथ फिर उलझाया जा रहा है यह याद करना अच्छा होगा कि गांधी जी ७५ वर्ष की आयु में भी देश की प्रायः सभी प्रादेशिक भाषाओं और उनकी विभिन्न लिपियों को सीखने की कोशिश कर रहे थे। वह अपनी आंखों के सामने सभी भारतीय भाषाओं के अक्षरों की तालिका रखते थे। वह प्रतिदिन आधा घंटे इन भारतीय भाषाओं को खुशी और दिलचस्पी के साथ सीखते थे। उनके महानतम शिष्य आचार्य विनोबा भावे भी कई विदेशी भाषायें जानने के साथ ही भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं से परिचित हैं। हमें भाषावादी वैमनस्य और कटुता में फंसने की बजाय यथासंभव अधिक से अधिक भाषाएँ सीख कर अपने महान नेताओं का अनुसरण करने का प्रयत्न करना चाहिए। एक से अधिक भाषा जानना सभ्यता और संस्कृति का द्योतक है, न कि पिछड़ेपन या मजबूरी का।

हम अपने राष्ट्रप्रेमी समस्त देशवासियों का ध्यान हिन्दी-रक्षा समिति के अध्यक्ष को लिखे हुए प्रधानमंत्री के उपर्युक्त पत्र के अन्तिम भाग की ओर आकृष्ट करना चाहेंगे। "क्या मैं आपको याद दिलाऊं कि आज हमारे देश और दुनिया की हालत क्या है? हमारे सामने एक बड़ा आर्थिक संकट है। हम अपनी दूसरी पंचवर्षीय योजना पूरी कर एक नये भारत का निर्माण करने के संघर्ष में लगे हैं। बाहर की दुनिया में उद्जन बम की छाया हम पर पड़ रही है और समय-समय पर परीक्षण विस्फोट होते रहते हैं, जिनसे हवा दूषित हुई है और भविष्य में असंख्य लोगों को मौत और गहरे-नुकसान की सजा भुगतनी पड़ेगी। आज भारत और दुनिया का यह हाल है। ऐसी हालत में हमारा कर्त्तव्य और हर एक भारतीय का कर्त्तव्य क्या है? आज हर पंजाबी का कर्त्तव्य क्या है? क्या उसका फर्ज यह है कि वह इन बड़े-बड़े मसलों को भूलकर अपने आपको बेमानी झगड़ों में फंसा दे, अपने राज्य व भारत की एकता भंग कर दे? निश्चय ही: यह किसी का भी कर्त्तव्य नहीं हो सकता। पंजाब हमारा एक प्रमुख राज्य है। यह एक सीमान्त राज्य है और उसकी खास जिम्मेदारियां हैं। बुनियादी एकता बिना किसी भी जिम्मेदारी को पूरा नहीं किया जा सकता।"

हमें आशा है कि प्रधानमंत्री के इन विचारों और भावनाओं की पंजाब के सभी लोगों के बीच सराहना होगी और उन पर अच्छा प्रभाव होगा। इसी रास्ते पर चलने में न सिर्फ पंजाब की, बल्कि समूचे भारत की भलाई है।

संक्षिप्त टिप्पणियां

प्रधान मंत्री की यूरोप-यात्रा

लन्दन में आयोजित राष्ट्रमंडल प्रधान मंत्री सम्मेलन के अवसर पर प्रधान मंत्री श्री नेहरू की यूरोप-यात्रा भारत और अनेक यूरोपीय देशों के बीच श्रेष्ठतर तथा अधिक सौजन्यतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में बहुत ही सहायक सिद्ध हुई है। अपनी यात्रा के दौरान में प्रधान मंत्री को यूरोपीय राष्ट्रों के समक्ष भारत की आर्थिक और वैदेशिक नीतियों में अन्तर्भूत सिद्धांत स्पष्ट करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के समक्ष इस समय उपस्थित कठिन आर्थिक और राजनीतिक समस्याएं सुलझाने में मैत्रीपूर्ण प्रयत्नों के महत्त्व पर जोर दिया। घृणा, सन्देह तथा कटुतापूर्ण विवादों के वातावरण में आपस के झगड़े नहीं सुलझाये जा सकते। उन्हें केवल मैत्री, पारस्परिक सहयोग तथा एक दूसरे के दृष्टिकोणों की श्रेष्ठतर जानकारी के रचनात्मक प्रयत्नों द्वारा ही सुलझाया जा सकता है। कोलम्बिया टेलीविजन प्रणाली पर अमरीकियों से अपनी भेंट-वार्त्ता के सिलसिले में श्री नेहरू ने कहा कि "हमें इन बहुत सारी--हिम, लौह या जो भी हों--घेरेबन्दियों और दीवालों को मैत्रीपूर्ण कोशिशों के जरिये तोड़ना है, खास तौर पर इस समय, जबकि मैं महसूस करता हूँ कि दुनिया के इतिहास में वह मनोवैज्ञानिक क्षण आ चुका है जब इस तरह की कोशिशें नतीजा दिखला कर रहेंगी।"

हम हृदय से आशा करते हैं कि हमारे प्रधान मंत्री की यूरोप-यात्रा अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी को कम करने तथा विश्व-शांति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए श्रेष्ठतर वातावरण उत्पन्न करने में सहायक होगी। यूरोप में एक मास तक कठिन और लाभदायक कार्य सम्पन्न करने के बाद स्वदेश आगमन पर हम उनका स्वागत करते हैं।

श्री देशमुख का विश्लेषण

अभी कुछ दिन पहले मदुराई में एक कालेज द्वारा आयोजित समारोह में भाषण करते हुए श्री चिन्तमणि देशमुख ने "खेती के उत्पादन में क्षमता की हानि और कुछ हद तक पौंड-पावने के अविवेकपूर्ण उपयोग" को ही द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लागू करने से सम्बद्ध वर्तमान कठिनाइयों का कारण बतलाया है। उन्होंने बताया कि जिन साधनों पर हम निर्भर करते हैं, उनकी मात्रा, योजना के लिए जितना अनुमान लगाया गया था, उससे कम प्रतीत होती है। "खेती में उत्पन्न वस्तुएँ हमारी राष्ट्रीय आय में लगभग आधे के बराबर योग देती हैं। उनमें तनिक भी कमी या खराबी होने का असर हमारे साधनों की कुल मात्रा पर पड़े बिना नहीं रह सकता।"

हमारे पौंड-पावने के उपयोग के विषय में अपना मत जाहिर करते हुए श्री देशमुख ने कहा कि इन पौंड-पावनों में से कुछ का उपयोग ऐसी योजनाओं के विकास के लिए हुआ है, जो सही अर्थ में योजना का अंग नहीं हैं, अथवा संभवतः ऐसी दिशाओं में उपभोग को बढ़ावा देने के लिए हुआ है जिनकी पूर्वकल्पना योजना तैयार करते समय नहीं की गई थी। श्री देशमुख ने बताया कि एक तीसरा कारण भी है, लेकिन उसके लिए हमें अपने पर दोषारोपण करने की जरूरत नहीं। वह है--कुछ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का उत्पन्न हो जाना, जिसकी वजह से हमारे लिए जरूरी हो गया कि हम अपने साधनों का अधिक अंश योजना से हटा कर उससे बाहर के दूसरे कार्यक्रमों--प्रतिरक्षा--पर खर्च करें।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी दिल्ली में हुए अपने पिछले अधिवेशन में देश का ध्यान खेती की पैदावार बढ़ाने की ओर खींच चुकी है। अन्य सुधारों के अलावा, विभिन्न राज्य सरकारों के कृषि विभागों की प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़ करना पड़ेगा।

यह सही है कि राज्य सरकारों ने खेती की पैदावार में सुधार करने के लिए किसानों को मदद देने की अनेक योजनाएं तैयार की हैं। लेकिन इन योजनाओं के फायदे उचित और समयानुकूल ढंग पर किसानों तक नहीं पहुँच पाते। अतः कृषि मंत्रियों को अधिक सक्रिय और जागरूक होना पड़ेगा। द्वितीय पंचवर्षीय योजना को पूर्ण करने के लिए खेती की पैदावार बढ़ाने के इस महत्त्वपूर्ण कार्य में सरकार को गैर-सरकारी लोगों और संस्थाओं से भी पूर्णतम सहयोग प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए।

हमें यह जानकर खुशी है कि वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय ने अब उपभोग की वस्तुओं के आयात के बारे में कड़ाई की नीति अख्तियार की है। यह जरूरी है कि हम सिर्फ उन्हीं पूंजीगत वस्तुओं का आयात करें जो द्वितीय पंचवर्षीय योजना से संबद्ध विभिन्न योजनाओं के लिए आवश्यक हैं। अतः विलासिता की वस्तुओं अथवा अनावश्यक अपूंजीगत वस्तुओं के आयात पर कड़ी रोक लगा दी गई है। हमारा ख्याल है कि देश के आर्थिक स्थायित्त्व के लिए यह कार्य और भी पहले होना चाहिए था।

इस समय हमारे सामने जो अनेक कठिनाइयां हैं, उनके बावजूद राष्ट्र को चाहिए कि वह द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों को सबल इच्छा और दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ हासिल करने का निश्चय कर ले। योजना के अन्तर्गत कुछ क्षेत्रों में, "आंशिक संशोधन और समायोजन" करना वांछनीय हो सकता है। लेकिन, अगर हम सारे उपलब्ध आन्तरिक साधनों को प्रयुक्त करने का यथा सामर्थ्य प्रयत्न करें और संयम तथा सरलता व स्वस्थ वातावरण उत्पन्न करके अनावश्यक व्यय को खत्म कर दें, तो निर्धारित अवधि के भीतर द्वितीय पंचवर्षीय योजना को कार्यान्वित कर लेना कठिन नहीं होगा।

—श्री. ना.

स्त्री शिक्षा का महत्व

"स्त्रियों को सिर्फ पुरुषों की बराबरी नहीं करनी है। अगर पुरुष पूरी अक्ल वाले होते तो उनकी बराबरी ठीक थी। परंतु वे मूर्ख बने हैं। इसलिए उनकी बराबरी करने में लाभ नहीं होगा। उनको अंकुश में रखने का काम स्त्रियों को करना है। समाज रचना का अंतिम निर्णय स्त्रियों के जरिये होना चाहिए। इसलिए स्त्रियों को थोड़ी ही शिक्षा देने में हमको संतोष नहीं है। पुरुष लोग कम पढ़े लिखे होंगे तो चलेगा क्योंकि वे खेत में काम करते हैं; करेंगे तो उसके साथ-साथ ज्ञान बढ़ेगा। लेकिन स्त्रियों को कुछ पढ़ा दिया, इससे नहीं होगा। स्त्रियों को संस्कारों का उत्तम ज्ञान हासिल करना चाहिए। उनका काम ज्ञान में निभेगा नहीं। उनके पास ज्ञान समुद्र होना चाहिए। माता सर्वोत्तम गुरु के तौर पर घर का नियंत्रण और समाज की निरीक्षिका बनकर समाज का नियंत्रण करती रहें—ऐसा होना चाहिए। हिंदुस्तान और दुनिया का उद्धार तब होगा, जब व्यक्ति की समाज के जीवन में लीन होगा, उसकी योजना ग्रामदान में है। यह कार्य वहां के सभी लोगों को हाथ में लेना है।"

—विनोबा

श्री केशवदेव मालवीय
केन्द्रीय इस्पात, खान एवं ईंधन मंत्री

स्वच्छ उद्जन बम की सम्भाव्यता

अभी हाल ही में संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति ने 'स्वच्छ' उद्जन बम के महत्व की संभाव्यता के संबंध में एक वक्तव्य दिया था। मैं यहां उस वक्तव्य के महत्व पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा। एक रिपोर्ट के अनुसार, श्री आइसनहावर ने कहा है कि बड़े-बड़े अमरीकी वैज्ञानिकों के मतानुसार, अमरीका एक ऐसा उद्जन बम बनाने की क्षमता रखता है जिसका प्रभाव विस्फोट-स्थान से दूर-स्थित स्थानों पर नहीं पड़ेगा तथा उससे ऐसे जनसाधारण तथा अन्य बेकसूर लोगों को कोई क्षति नहीं पहुंचेगी, जो उसके ताप तथा विस्फोट क्षेत्र से परे होंगे। उन्होंने यह भी बताया कि अमरीका ने ऐसे बम तैयार करना आरम्भ भी कर दिया है, जिनका दूर के स्थानों पर प्रभाव पुराने नुकसानदेह बमों से ९६ प्रतिशत कम है। अमरीका द्वारा अणु विस्फोट के प्रयोग आरम्भ होने के पश्चात् यह वक्तव्य काफी स्पष्टवादिता का परिचायक कहा जा सकता है। यद्यपि "शांति के लिए अणु-शक्ति" पर हुए जिनेवा सम्मेलन से इस संबंध में कई राष्ट्र एक-दूसरे के काफी निकट आ गये थे, तथापि थर्मो-न्यूक्लियर मिश्रण पर रखी गयी गोपनीयता को कम नहीं किया गया। अमरीका के राष्ट्रपति का ऐसा कहना काफी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि अमरीकी राष्ट्र, वहां जनता के दबाव के विरुद्ध, अणु बमों के प्रयोगों को अस्थायी रूप से रोकने को तैयार थी, और वह भी ऐसी हालत में जब कि उस देश के वैज्ञानिकों का यह निश्चित मत था कि इन प्रयोगों को जारी रखना न केवल ध्वंसात्मक बमों के सुधार की दृष्टि से बल्कि अणु-शक्ति के शान्तिमय प्रयोगों के लिए भी आवश्यक था।

अणु बम तथा उद्जन बम की विस्फोटन-क्रिया

हमें यह भी समझना चाहिए कि अणु बम तथा उद्जन बम क्या है। जैसा कि सर्वविदित है, अणु बम अमरीका द्वारा किये गये उन प्रयोगों का परिणाम है जो उसने १९४१ और १९४५ के बीच किये। और जब उन्होंने ऐसा बम बनाने में सिद्धहस्तता प्राप्त कर ली। संसार में पहली बार ६ अगस्त १९४५ को हीरोशिमा पर प्रथम अणु बम फेंका गया, तथा दूसरी बार नागासाकी पर ९ अगस्त १९४५ के दिन। ये बम टी. एन. टी., आदि रासायनिक विस्फोटक साधनों से शक्ति प्राप्त करके नहीं, अपितु यूरेनियम नामक रेडियो-धर्मी वस्तु द्वारा विस्फोटक शक्ति से बनाये गये थे। यह शक्ति अणु-अंश के फोड़े जाने पर बहुत महान मात्रा में उत्पन्न होती है। रेडियो-धर्मी यूरेनियम की यह विशेषता है कि वह बहुत कम बम सामग्री से पुराने टी. एन.टी. बम की अपेक्षा ताप तथा विस्फ़ोट की बहुत अधिक शक्ति पैदा करता है। यूरेनियम की फिशन अथवा प्रस्फुटन की क्रिया द्वारा पैदा की गयी शक्ति उसमें प्रयोग की गयी मात्रा से बहुत ही अधिक होती है। अणु बम को फोड़ने वाले यंत्र तथा क्रिया एक फौजी रहस्य हैं। किन्तु, जो क्रिया सम्पन्न होती है वह इस प्रकार है: रेडियो-धर्मी विस्फोटक यूरेनियम के दो टुकड़े अर्द्ध-दृढ़ तरीके से अलग-अलग रखे होते हैं। जब इन्हें मशीनी तरीके से एक सीमा से आगे एक-दूसरे के निकट लाया जाता है तो उसका परिणाम टुकड़ों में निहित आणविक अंशों का विस्फोट होता है। इस अणु-विस्फोट की क्रिया द्वारा एक विध्वंसात्मक शक्ति—ताप और विस्फोट के रूप में—पैदा होती है। यूरेनियम के विस्फोटक अणु के छितराने की क्रिया से अणु-बम बनता है। इसके विपरीत, उद्जन बम में हल्के तत्वों की विस्फोट-क्रिया से एक अन्य भारी तत्व बनता है। इस प्रकार, अणु बम न्यूक्लियर विस्फोट का परिणाम है और उद्जन बम न्यूक्लियर मिश्रण का। आणविक विस्फोट एवं मिश्रण दोनों ही क्रियाओं से एक बहुत बड़ी मात्रा में शक्ति पैदा होती है। न्यूक्लियर मिश्रण क्या है? इसमें दो उद्जन तत्व आपस में मिश्रित होते हैं और इस मिश्रण-क्रिया के दौरान अत्यधिक मात्रा में शक्ति उत्पन्न होती है। इसमें हल्के तत्वों में सम्मिलित अणु अपने घेरे में ही एक-दूसरे से संगठित होकर, एक बड़े तत्व को जन्म देते हैं और इस प्रकार के मिश्रण से, यूरेनियम के विस्फोट की अपेक्षा कई गुणा अधिक शक्ति पैदा होती है। स्पष्टतः अणु बम ने टी. एन. टी. बम को छाड़ दिया है, और फिर अब उद्जन बम अपनी शक्ति में अणु बम को बहुत पीछे छोड़ गया है।

उद्जन बम का आविष्कार

सम्भवतः प्रथम बाधाजनक उद्जन बम का पहला प्रयोग १ नवम्बर १९५१ को ऐनीवेटाक एटाल स्थित एलूगेलोब द्वीप में किया गया । इस तथाकथित उद्जन बम द्वारा उत्पादित ताप तथा विस्फोट का अन्दाज इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि सारा द्वीप एक आग के गोले में लिपट सा गया था और आंखों से ओझल हो गया, और इसके स्थान पर समुद्री जल से पूर्ण १७५ फुट गहरा एक गड्ढा सा बन गया । वैज्ञानिकों का मत है कि उस परीक्षण से जो विस्फोट हुआ, वह ८० लाख टन टी. एन. टी. के विस्फोट के बराबर था और उसके द्वारा पैदा हुआ ताप लगभग १० लाख डिग्री सेंटीग्रेड था । उद्जन बम का उद्भव वैज्ञानिक मानव के उन प्रयत्नों का परिणाम है जो उसने अधिक से अधिक खतरनाक शस्त्र बनाने के लिए किये और जिनसे ताप-उत्पत्ति तथा विस्फोटन अद्वितीय थे ।

उद्जन बम की दिशा में गहनतर प्रयत्न

इस संबंध में ही इस दिशा में और अधिक गहन प्रयत्न किये गये । पहले से भी अधिक गर्मी और विस्फोट पैदा करने के लिए आणविक प्रस्फुटन के अलावा आणविक मिश्रण के तत्वों का भी उपयोग किया गया, लेकिन कुछ मात्रा में विस्फोटक यूरेनियम का भी प्रयोग करना पड़ा । सन् १९५२ में एलूगिलाब द्वीप में उद्जन बम का जो एनीवेटाक एटाल परीक्षण हुआ था, उससे वैज्ञानिकों के ज्ञान में काफी वृद्धि हुई । लेकिन यह बम मुख्यतः एक मिश्रित बम ही सिद्ध हुआ, विशुद्ध उद्जन बम नहीं, क्योंकि विस्फोटक यूरेनियम के कुछ मात्रा के बिना उद्जन बम क्रियाशील नहीं हो सकता था । इसके अलावा, ज्यादा हल्के तत्वों के थर्मोन्यूक्लियर के सिद्धान्त का प्रयोग तापमान को बहुत ही अधिक ऊंचे उठाने के लिए तथा वृहत्तर विस्फोट पैदा करने के लिए प्रयुक्त होने वाले बम में हो सकता था । उद्जन बम में, उद्जन के सहधर्मी तत्व, जिसे भारी उद्जन कहते हैं, का भी कुछ अंश होता है । इसी कारण उसे आम तौर पर उद्जन बम कहते हैं । वस्तुतः वैज्ञानिक दृष्टि से इसका नाम सुपर (वृहद्) मिश्रित बम होना चाहिए---ऐसा बम जो प्रस्फुटन के लिए विस्फोटक यूरेनियम का उपयोग करता है, शक्ति प्रदान करने के लिए भारी उद्जन का प्रयोग करता है, और तापमान को और अधिक बढ़ा देता है ।

विस्फोटक यूरेनियम

१ नवम्बर १९५२ को एलूगिलाब द्वीप में जो "तथाकथित उद्जन बम" परीक्षण हुआ था, उसमें प्रयुक्त विस्फोटक यूरेनियम के विषय में भी कुछ कह देना संभवतः उचित होगा । वृहत् मिश्रित बम में विस्फोटन के उद्देश्य से विस्फोटक यूरेनियम की थोड़ी-सी मात्रा का इस्तेमाल किया गया था । लेकिन यह विस्फोटक यूरेनियम है क्या चीज ? यह यूरेनियम के समस्थानिक तत्वों (समजातीयों) में से एक है जो कि साधारण यूरेनियम में पाया जाता है और जिसे यू.-२३५ कहते हैं । साधारण यूरेनियम-२३८ होता है । यह यूरेनियम-२३५ साधारण यूरेनियम में बहुत ही कम मात्रा में मिश्रित रहा है । सौ पौंड साधारण यूरेनियम में इस तरह का यूरेनियम केवल ०.७ पौंड होता है । मुख्य यूरेनियम तत्व में अधिकांश-९९.३ पौंड पिण्ड--२३८ ही होता है । यद्यपि उस परीक्षण के पश्चात् यह "तथाकथित उद्जन बम" एक वास्तविकता बन गया, फिर भी यह संचालित होने वाला हथियार नहीं बन सका, क्योंकि उसे लड़ाई में प्रयुक्त होने योग्य हथियार का रूप देने के लिए और अधिक इंजीनियरिंग प्रविधियों की जरूरत थी । अतः इंजीनियरिंग प्रविधियों में सुधार करने के उद्देश्य से और अधिक परीक्षण की आवश्यकता थी, ताकि इस प्रकार का बम तैयार हो सके जिसे आसानी ने ढोकर ले जाया जा सके और वांछनीय स्थान पर गिराया जा सके । अतः और अधिक प्रयोग १ मार्च १९५४ को किये गये । यह परीक्षण अब तक के हुए बम-परीक्षणों में सबसे बड़ा था । इसे मार्शल द्वीप समूह के बिकनी एटाल नामक टापू पर किया गया था । ऐसा प्रतीत होता है कि सभी राष्ट्रों को बिकनी एटाल के चारों ओर एक विशाल क्षेत्र के बाहर ही रहने के लिए सावधान कर दिया गया था । किन्तु इसके बावजूद, जैसा कि विश्व भर को ज्ञात है, जापानियों का एक जहाज 'लकी ड्रैगन' इस दुर्घटना में फंस गया जिसमें २३ मछुए थे । वे जापानी उस सीमा क्षेत्र के भीतर नहीं थे जिसमें रहने की मुमानियत थी—जो कि मोटे तौर पर ५० हजार वर्ग मील का क्षेत्र था । दरअसल, वे लगभग १०० मील दूर

थे। समुद्र के विस्तार के कारण उनका ठीक-ठीक पता नहीं चल सका था और १०० मील दूर होने पर भी वे दुर्घटना में फंस ही गये।

बिकनी परीक्षण के परिणाम

मार्च सन् १९५४ में हुए बिकनी परीक्षण के फलस्वरूप यह बात एकदम स्पष्ट हो गयी कि सुपर बम या उद्जन बम के विस्फोट से विषैले तत्व फैल जाते हैं। इन तत्वों को 'प्रक्षिप्त या गिरने वाले तत्व' कहते हैं। रासायनिक परीक्षण से पता चला है कि ये प्रक्षिप्त तत्व स्ट्रोन्टियम नामक एक तत्व तथा दूसरे बहुत से तत्वों के बेहद छोटे टुकड़े होते हैं। यह स्ट्रोन्टियम साधारण किस्म का स्ट्रोन्टियम नहीं होता, बल्कि स्ट्रोन्टियम –९० नामक स्ट्रोन्टियम का उप-सहधर्मी होता है। अर्थात् स्ट्रोण्टियम के नये सहधर्मी की पिण्ड-संख्या–९० है। उद्जन बम में साधारणतया निष्क्रिय यूरेनियम का एक बड़ा छिलका भी होता है, जिसे पहले यूरेनियम-२३८ कहा जा चुका है। सन् १९५४ के परीक्षण में हुआ यह कि भारी उद्जन के विस्फोट से निकली शक्ति इतनी बड़ी थी कि प्रतिक्रियाओं ने किसी न किसी प्रकार निष्क्रिय यूरेनियम-२३८ को अन्य तत्वों में विभाजित कर दिया, जिनमें से एक स्ट्रोण्टियम –९० भी था। बाद में स्ट्रोण्टियम –९० ही सबसे खतरनाक विष, अर्थात् 'प्रक्षिप्त तत्व' का निर्गम-स्थल सिद्ध हुआ।

परीक्षण-स्थल से १०० मील की दूरी पर खुले समुद्र में जो २३ जापानी मछुए विस्फोट के फलस्वरूप जल गये थे, उन्होंने विश्व की बहुत बड़ी सेवा की; क्योंकि विस्फोट के कारण जो गर्द उनके शरीर पर उड़ कर पड़ी थी और जिसके कारण वे जले थे, उसकी परीक्षा वैज्ञानिकों ने की। इससे पता चला कि यह विषैला पदार्थ स्ट्रोण्टियम -९० ही था। इस तत्व ने उनके शरीर को तो जलाया ही, साथ ही, उनकी हड्डियों और उनके खून में विष पैदा कर दिया था। इस प्रकार, उद्जन बम ने तीन प्रभाव उत्पन्न किये :

(अ) भयंकर ऊष्णता जिसने उन सभी वस्तुओं को जो कि कुछ वर्ग मील की सीमा के भीतर पड़ी थीं, वाष्पकृत कर दिया।

(ब) विस्फोट या धड़ाका जिसने मकानों को ध्वस्त और जीवों का विनाश कर दिया।

(स) रेडियो-धर्मी प्रक्षिप्त तत्व जिसमें स्ट्रोण्टियम-९० भी शामिल था, हवा की गति के साथ दूर-दूर फैल गया; और बाद में पता चला कि उद्जन बम के विस्फोट से उत्पन्न यह गर्द वायुमंडल के ऊपरी सतह में पहुंच गयी, और वहां से पृथ्वी के सभी हिस्सों में उड़ कर चली गयी। वह इस प्रकार एक महाद्वीप के बाद दूसरे महाद्वीप पर गिरी और उसने न सिर्फ मनुष्यों के खून और हड्डी को विषाक्त किया, बल्कि छोटे जीवों, जैसे मछलियों और पेड़-पौधों पर भी, विषैला असर छोड़ दिया।

मानवता के संहार का भय

इस प्रकार जो वैज्ञानिक तथा राष्ट्र उद्जम बमों के प्रयोग कर रहे हैं, वे उद्जन बम से भयभीत हो रहे हैं। उद्जन बम का आविष्कार करने का तात्पर्य पहले से लाखों गुना अधिक ताप तथा विस्फोट पैदा करना था, किन्तु संयोगवश अब यह तथ्य स्पष्ट हो गया है कि एक विशेष स्थान को मटियामेट करने के हेतु ताप तथा विस्फोट पैदा करने के अतिरिक्त, उद्जन बम में यूरेनियम मानव जाति के लिए उससे भी हानिकारक वस्तु है। अब वैज्ञानिक तथा राजनीतिज्ञ दोनों ही उलझन में फंसे हुए हैं। यदि उद्जन बमों का परीक्षण बन्द न किया गया तो क्या इसका सही अर्थ संसार का विध्वंस है? वैज्ञानिक भी इस प्रश्न का कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं दे सकते। आईनस्टीन, शापेनहोवर जैसे वैज्ञानिकों ने आणविक शस्त्रोंके इस्तेमाल के विरुद्ध संसार की बड़ी शक्तियों को चेतावनी दी है।

'स्वच्छ' उद्जन बम

हमने जिन खतरों में अपने आपको डाल दिया है, उनकी जानकारी बढ़ रही है। आज संसार को ज्ञात है कि उद्जन बम के विस्फोट से बहुत बड़ी मात्रा में जहरीले रेडियो-धर्मी तत्व पैदा होते हैं और उनका फैलाव किसी प्रकार भी रोका नहीं जा

सकता । जिस ओर भी वायु का चलन होगा वे उसी ओर फैलते जायंगे । वास्तव में इस संबंध में राष्ट्रपति आइसनहावर का वक्तव्य महत्वपूर्ण है, जब वह यह कहते हैं कि उनके वैज्ञानिक एक 'स्वच्छ उद्जन बम' बनाने के कार्य में जुटे हुए हैं । इस 'स्वच्छ उद्जन बम' का अर्थ यह है कि उससे ताप और विस्फोट तो अधिक होगा, किन्तु उस में जहरीले तत्वों का फैलाव नहीं होगा । इसका मतलब यह भी है कि वे यूरेनियम, आदि को इस्तेमाल में लाये बिना ही उद्जन बम बनाने में कामयाब हो गये हैं । यदि उद्जन बम में यूरेनियम का प्रयोग नहीं किया गया तो ताप तथा शक्ति के उत्पन्न होने के फलस्वरूप स्ट्रोण्टियम–९० पैदा नहीं होगा । 'स्वच्छ उद्जन बम' आणविक मिश्रण बम की एक किस्म प्रतीत होता है जिसके जहरीले व खतरनाक तत्व इर्द-गिर्द नहीं फैलते ।

यही कारण है कि अमरीकी लोगों ने 'स्वच्छ उद्जन बम' शब्द का प्रयोग किया है जो कि एक "विषहीन प्रक्षिप्त-तत्व युक्त उद्जन बम" है ।

आणविक तत्व के विस्फोट और मिश्रण के रहस्यों की जांच ने वैज्ञानिकों के समक्ष ज्ञान के एक अन्य संसार का द्वार उन्मुक्त कर दिया है। इसने आधुनिक विश्व के दृष्टिकोण को पूर्णतया परिवर्तित कर दिया है और इससे सृष्टि और इसके वातावरण संबंधी हमारी धारणा में और अधिक क्रान्तिकारी परिवर्तन होने की संभावना है।

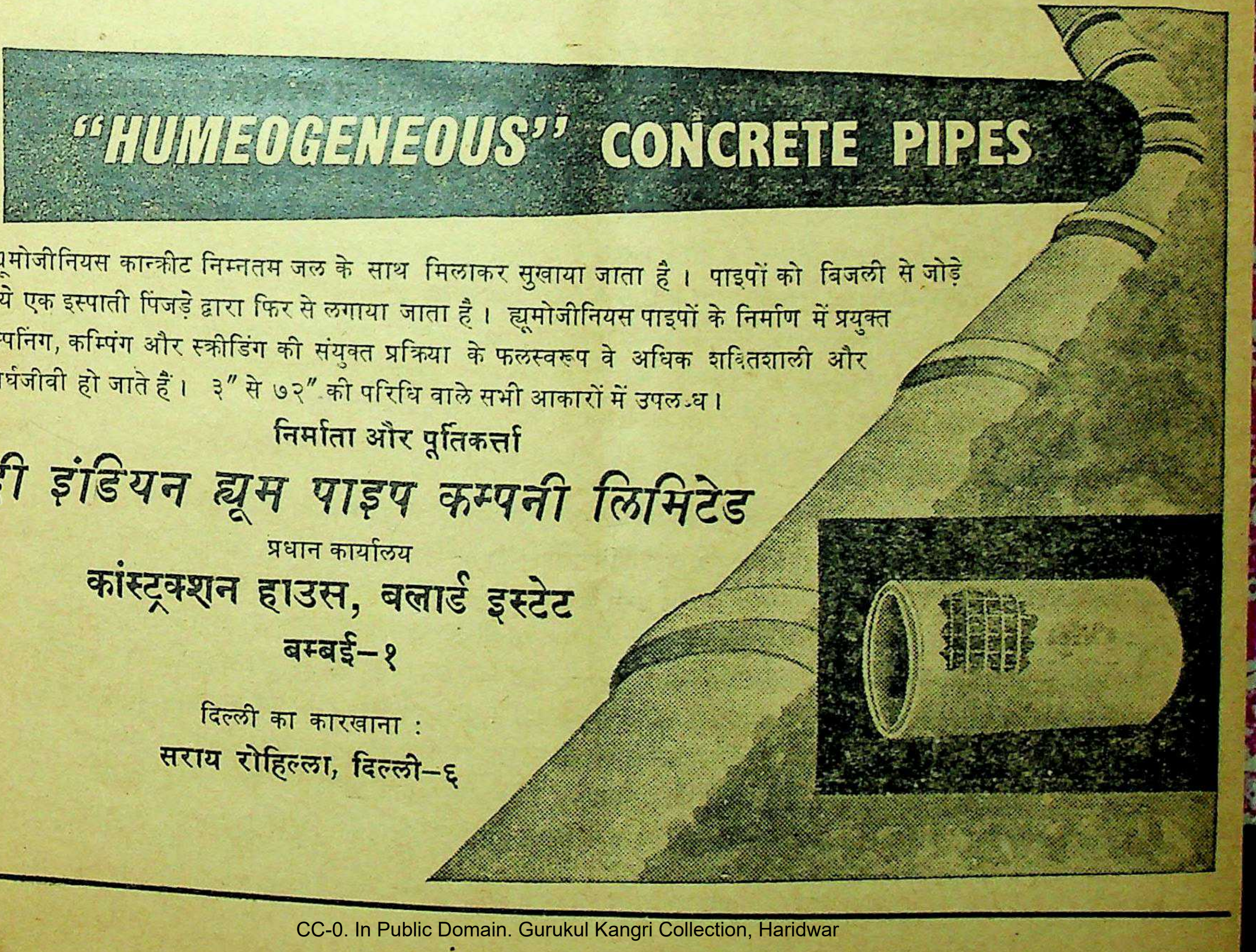

"HUMEOGENEOUS" CONCRETE PIPES

ह्यूमोजीनियस कान्क्रीट निम्नतम जल के साथ मिलाकर सुखाया जाता है । पाइपों को बिजली से जोड़े गये एक इस्पाती पिंजड़े द्वारा फिर से लगाया जाता है । ह्यूमोजीनियस पाइपों के निर्माण में प्रयुक्त स्पिनिंग, कम्पिंग और स्क्रीडिंग की संयुक्त प्रक्रिया के फलस्वरूप वे अधिक शक्तिशाली और दीर्घजीवी हो जाते हैं । ३" से ७२" की परिधि वाले सभी आकारों में उपलब्ध ।

निर्माता और पूर्तिकर्त्ता
दी इंडियन ह्यूम पाइप कम्पनी लिमिटेड
प्रधान कार्यालय
कांस्ट्रक्शन हाउस, बलार्ड इस्टेट
बम्बई–१

दिल्ली का कारखाना :
सराय रोहिल्ला, दिल्ली–६

श्री नेमीचन्द कासलीवाल
संसद सदस्य

सम्पत्ति एवं व्यय पर कर

एक वार्षिक सम्पत्ति-कर लगाने की घोषणा से देश भर में काफी हलचल मच गयी है और 'धनवानों' का मस्तिष्क इस कर के प्रभावों के अनुमान में व्यस्त है। अधिकांश बड़े देशों में इस कर का अस्तित्व न होने तथा कुछ अन्य देशों जैसे ब्रिटेन द्वारा इस कर के परित्याग के कारण और भी शंकाएं पैदा होने लगी हैं। ऐसी स्थिति में स्वेडन तथा कुछ दूसरे छोटे-छोटे देशों के अनुभवों पर आधारित अनुमान शंकाओं को मिटाने में पर्याप्त नहीं सिद्ध हो रहे हैं।

सम्पत्ति कर

श्री काल्डोर के अनुसार, भारत में प्रत्यक्ष कर की वर्तमान प्रणाली अपर्याप्त भी है और औचित्यहीन भी। साथ ही, यह कर देने की क्षमता को खींच लेने के उपाय की दृष्टि से दोषपूर्ण है और इससे बड़े पैमाने पर कर-प्रवंचन को प्रश्रय मिलने की संभावना है। अतः श्री काल्डोर औचित्य तथा आर्थिक प्रभावों के आधार पर सम्पत्ति कर लागू करने का सुझाव देते हैं। श्री कृष्णमाचारी का दृष्टिकोण यह है कि "इससे कर-भुगतान क्षमता के सिद्धान्त को संतुष्ट करने में मदद मिलती है और यह समाजवादी ढंग के समाज की स्थापना के सुनिश्चित लक्ष्य के अनुकूल है।"

गुणावगुण पर विचार

इस कर के गुण-दोषों पर विचार कर लेना उचित होगा। यह औचित्यपूर्ण इसलिए माना जाता है कि आय स्वतः कर-भुगतान क्षमता का एक अपर्याप्त मापदण्ड है। कुछ दूसरे लोग इसे औचित्यहीन इसलिए मानते हैं कि सभी सम्पत्ति से आय उत्पन्न नहीं होती और इस कर के लगने पर करदाता को भुगतान करना ही पड़ेगा चाहे उसके लिए वह आय उपार्जित करता हो या नहीं। सारा विवाद आय की परिभाषा पर ही केन्द्रित है। श्री काल्डोर के अनुसार, सभी सम्पत्ति का कुछ यथार्थ बाजार मूल्य होता है और उससे सम्पत्ति के मालिक को आय प्राप्त होगी ही, चाहे वह मुद्रा आय के रूप में हो या मानसिक (संतुष्टि) आय के। प्रो० पीगू ने व्यावहारिक कठिनाइयों के आधार पर मानसिक आय की धारणा को अस्वीकार कर दिया है।

उत्पादक उपक्रमों पर इस कर के जो बुरे प्रभाव पड़ते हैं, वे वही हैं जो उतनी ही मात्रा के आय कर से होते हैं और काल्डोर के अनुसार, यह वस्तुतः संचयन या उपार्जन पर लगने वाला कर है, स्वयं मूलधन पर लगने वाला नहीं। पीगू का मत है कि इस प्रकार के कर में एक वितरणात्मक दोष है।

प्रशासन सम्बन्धी कठिनाई

दरअसल, इस कर के प्रशासन के सम्बन्ध में ही सबसे अधिक गर्म बहसें हुई हैं। सम्पत्ति का मूल्यांकन किस प्रकार होना चाहिए, इसके खाते वाले मूल्य के अनुसार या बाजार मूल्य के अनुसार ? सम्पत्ति के असली मालिक का पता किस प्रकार लगाया जाय ? यही सब सवाल उठते हैं। स्वयं आयकर का अनुमान लगाने के लिए इस समय जो व्यवस्था चालू है, वह भी क्षमतापूर्ण नहीं है। इससे काफी परेशानी उठानी पड़ती है। श्री पीगू की दृष्टि से इस कर के संबंध में प्रशासनिक बातें निर्णयात्मक हैं। या तो इस कर का मूल्यांकन बेहद असन्तोषजनक तरीकों से होता है अथवा उनको दुरुस्त करने में अत्यधिक परेशानी और व्यय का भार उठाना पड़ता है। किन्तु इस प्रकार के तर्कों से श्री काल्डोर पराजित नहीं होते। उनका विचार यह है कि आय-कर और सम्पत्ति-कर, दोनों एक ही अधिकारी द्वारा प्रशासित होने चाहिए, और दोनों पर कर लगाने से प्रवंचन और धन छिपाने की प्रवृत्ति पर, इनमें से किसी एक ही पर कर लगने की अपेक्षा, ज्यादा जोरदार रुकावट लगेगी।

लोकसभा में सम्पत्ति-कर विधेयक की जो योजना पेश हुई है, उसमें इस अधिनियम के प्रशासन का आधार श्री काल्डोर के तरीके को ही बनाया गया है। आय-कर विभाग के जिम्मे ही सम्पत्ति-कर विभाग भी होगा। आय-कर अधिकारी ही सम्पत्ति-कर अधिकारी भी होगा, आदि।

परिसम्पतों के मूल्यांकन की व्यवस्था धारा ७ में दी गयी है। इसके अन्तर्गत, सम्पत्ति-कर अधिकारी परिसम्पत के बाजार मूल्य का अनुमान लगायेगा। किसी व्यवसाय के मामले में वह बैलेंस शीट का सहारा लेगा, किन्तु वह ऐसे हेर-फेर कर सकेगा, जिनकी जरूरत उस मामले की परिस्थिति द्वारा पड़ेगी। इससे ऐसे अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके कारण करदाता को परेशान होना पड़ेगा। सम्पत्ति-कर अधिकारी को विस्तृत अधिकार दिये गये हैं, और भ्रष्टाचार के घुस आने के सवाल के अलावा, किसी खास परिसम्पत, जैसे किसी आभूषण, के मूल्यांकन के संबंध में करदाता और सम्पत्ति-कर अधिकारी के बीच गम्भीर मतभेद पैदा हो सकते हैं। अतः इस तरह की स्थिति से बचाव की व्यवस्था होनी चाहती थी। करदाता की ओर से एक प्रमाण-पत्र के साथ परिसम्पत के मूल्य की घोषणा स्वीकार की जानी चाहिए। स्वयं वित्तमंत्री श्री कृष्णमाचारी भी इस बात के प्रति जागरूक थे, जब कि उन्होंने राज्य सभा में कहा : "हम इस बात के प्रति बहुत सतर्क रहें कि सम्पत्ति कर जनता के हितों और परेशानियों को ध्यान में रखते हुए उचित ढंग पर प्रशासित हो . . . . .।"

छूट की सीमा

एक अन्य विचारणीय बात यह है कि क्या विधेयक की धारा ५ में दी गयी छूट की २५,००० रुपये की सीमा को बढ़ा दिया जाय या नहीं। देश में जो अजीब स्थिति पायी जाती है, उसके अन्तर्गत लोग हर तरह की चीजें——सोना-चांदी, आभूषण, यहां तक कि करेंसी नोट भी, गाड़ कर रखते हैं। यह सही है कि विधेयक में धारा ५(१०) के अन्तर्गत कुछ चीजों की छूट की व्यवस्था की गयी है, लेकिन जनता की विशेष आदतों के कारण कुछ छूट के रूप में उपर्युक्त सीमा को ऊंचा कर देना चाहिए।

कम्पनियों पर कर लगाने के संबंध में वित्तमंत्री ने नयी कम्पनियों के लिए पहले ५ वर्षों तक छूट की घोषण की। इसके अलावा, अगर कोई कम्पनी दूसरी कम्पनी में धन का विनियोग करेगी तो, धन लगाने वाली कम्पनी पर सम्पत्ति कर लगाते समय विनियोजित धन को शामिल नहीं किया जायगा। यहां सवाल यह उठता है कि नया व्यवसाय चलाने वाली किसी पुरानी कम्पनी को भी इसी तरह की सुविधा दी जानी चाहिए या नहीं। ऐसी कम्पनियों को भी, जिनका प्रबन्ध अच्छा रहा हो किन्तु जिन्हें कुछ अदृश्य कारणों से क्षति उठानी पड़ी हो, माफी मिलनी चाहिए।

दुहरे कर से भी बचना चाहिए। इसके लिए या तो छूट का क्रम शुरू करना चाहिए या करदाता कम्पनी की परिदत्त-पूंजी को उन्मुक्त करना चाहिए। इस प्रकार दोहरे करों से बचा जा सकता है। समूचे रूप में वार्षिक सम्पत्ति कर ऐसा नहीं है, जिससे करदाता को भयभीत होना पड़े। अगर इसकी प्रशासनिक व्यवस्था उचित और क्षमतापूर्ण हो, तो इससे वे बुराइयां कम हो जायेंगी जो ऊंचे आय कर में पायी जाती हैं।

व्यय-कर

व्यय-कर के पीछे कोई ऐतिहासिक अनुभव की पृष्ठभूमि नहीं है। इसे लागू करने के लिए लोकसभा में व्यय-कर विधेयक पेश किया गया है। इसे आगामी वर्ष से लागू किया जायगा। इसका उद्देश्य अत्यधिक व्यक्तिगत आय में रुकावट पैदा करना और बचतों को बढ़ावा देना है।

इस कर का विरोध अनेक पक्षों से हुआ है। इसके प्रतिपादक श्री काल्डोर हैं। उन्होंने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन अपनी पुस्तक, **दी एक्सपेंडीचर टैक्स**, में दिया है। लार्ड कीन्स इसके पक्ष में नहीं हैं। उनका कहना है कि यह कर सैद्धान्तिक दृष्टि से सही होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव है। श्री पीगू का मत है कि एक सामान्य व्यय-कर स्पष्टतः एक सामान्य आय-कर से अच्छा है किन्तु प्रशासनिक दृष्टि से व्यावहारिक नहीं। उनका यह भी कहना है कि इसकी वसूली का खर्च बहुत ही अधिक पड़ेगा।

अन्य देशों के अनुभव

जब सन् १९४२ में सं० रा० अमरीका के तत्कालीन वित्त मंत्री ने यह सुझाव दिया कि आय-कर के अतिरिक्त एक

व्यय-कर भी लगाया जाना चाहिए, तब अमरीकी सीनेट की वित्त-समिति में उसका काफी विरोध हुआ। ब्रिटेन के शाही कर-आयोग के सामने जो विषय विचारार्थ रखे गये थे उनमें इस कर को शामिल नहीं किया गया था, और इसकी वजह यह बतलाई गई थी कि व्यय-कर संबंधी योजना की जांच करना असंभव होगा, जब तक कि साथ ही परोक्ष करों के क्षेत्र और उद्देश्य की जांच भी न की जाय।

फिर भी, श्री काल्डोर का मत है कि आय-कर द्वारा कर-भुगतान क्षमता को उचित रूप से नापा नहीं जा सकता। साथ ही, एक प्रगतिशील समाज में जिसका उद्देश्य आम जनता का कल्याण है, इस प्रकार का कर जरूरी है, ताकि अर्थ-व्यवस्था की तरक्की की गति और क्रियाशीलता की क्षमता को बढ़ाया जा सके। श्री काल्डोर प्रशासनिक कठिनाई को स्वीकार करते हैं, किन्तु वे इस कठिनाई का समाधान यह कह कर करते हैं कि प्रथमतः, इस कर का उद्देश्य आय-कर को पूर्णतः प्रतिस्थापित करना नहीं है, और दूसरे, इसे अन्य करों के साथ ही प्रशासित करना चाहिए। श्री काल्डोर की आलोचना अधिकांशतः गलत मान्यताओं पर आधारित है। उनकी योजना एक समन्वित योजना है, जिसमें सभी पांचों कर—आय-कर, सम्पत्ति-कर, व्यय-कर, पूंजीगत लाभ कर तथा दान-कर—पूर्णतः कार्यान्वित हों। इस तरह की योजना में आय-कर का स्तर कम कर दिया जाता है, और कर-प्रवंचन की संभावना नहीं रह जाती।

यह स्पष्ट है कि श्री कृष्णमाचारी श्री काल्डोर से एकदम सहमत नहीं, किन्तु वे उनकी समन्वित कर-योजना से प्रभावित अवश्य हैं। उनका विश्वास है कि कर-प्रणाली को इस रीति से पुनस्संगठित तथा अभिनवीकृत करने पर, कर-प्रवंचन घट जायगा, बचतों को बढ़ावा मिलेगा तथा स्पष्टतः बेकार उपभोग में रुकावट पैदा होगी।

व्यय-कर विधेयक

व्यय-कर विधेयक के प्रस्ताव उन प्रस्तावों से अधिक उदार हैं, जिनका सुझाव श्री काल्डोर ने दिया है। उदाहरण के लिए छूट की सीमा १० हजार से बढ़ाकर २४ हजार रुपये कर दी गयी है, और उसके उपरान्त भी प्रत्येक आश्रित के संबंध में ५ हजार रुपये की और छूट है। यह ऐसे व्यक्ति पर लागू होगा, जिसकी पिछले वर्ष की कुल आय ६० हजार रुपये से ज्यादा होगी। इसके साथ ही, कर का प्रतिशत श्री काल्डोर के सुझाव की अपेक्षा कम है।

किन्तु विधेयक में कुछ बातें ऐसी भी हैं, जिनकी जांच पुनः होनी चाहिए। आश्रित की परिभाषा अत्यन्त संकुचित है। इसमें पिता, मां, दादा, दादी, भानजा और भानजी को भी शामिल करना चाहिए जो कि पूर्णतः या मुख्यतः करदाता पर ही अपने पोषण के लिए निर्भर करते हैं। विचारणीय बात यह भी है कि स्वास्थ्य के लिए या आश्रित की शिक्षा के लिए जो विशेष व्यय किया जाता है, उसकी छूट होनी चाहिए या नहीं। अगर किसी व्यक्ति को दवा कराने के लिए विदेश जाना पड़े या उसके आश्रित को विदेश में कोई विशेष प्रशिक्षा मिल रही है, तो उसके व्यय को इस कर से मुक्ति मिलनी चाहिए। यह कर कुल ६ हजार करदाताओं पर ही लागू होगा।

कर में छूट की सीमा

धारा ६ के अन्तर्गत, उस समय छूटों का आंकना कठिन होगा, जब कि नयी प्राप्त की गयी सम्पत्ति ५ वर्ष के भीतर ही बेच दी जाय। उपयुक्त संशोधन द्वारा इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है। धारा १६ के अन्तर्गत, ऐसे व्यय को आंकने के लिए नोटिस देने की अवधि बहुत ही बड़ी है, जो कि कर से बच निकलना चाहता है। दोनों मामलों में यह अवधि ५ वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए, क्योंकि यह एक नया कर है। धन छिपाने के अपराध में सजा देने की एक धारा पहले से ही लागू है। मृत व्यक्ति की सम्पत्ति पर भी यह कर लागू होगा। यह कर व्यक्तिगत व्यय पर लगने वाला कर है। अतः प्रशासक या कानूनी प्रतिनिधि के लिए मृत व्यक्ति के व्यय का विवरण पेश करना अत्यन्त कठिन होगा। करदाता का दायित्व उसकी मौत के बाद समाप्त हो जाना चाहिए। जहां तक संभव हो, मतदाता को परेशान नहीं करना चाहिए। ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिसके द्वारा करदाता का दृष्टिकोण भी उसके व्यय के संबंध में स्वीकार करना संभव हो सके।

अभी कहना कठिन है कि श्री काल्डोर का यह कथन कि व्यय-कर का पक्षपोषण वस्तुतः कर प्रणाली में ईमानदारी और आसानी का पक्ष-पोषण है, सही सिद्ध होगा। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि इसे आजमा लेना उचित होगा।

श्री एम. वी. रमण राव

खाद्याभाव पर गान्धी जी के विचार

इस समय हम देश की खाद्य-स्थिति में संकट का सामना कर रहे हैं जो कि द्वितीय महायुद्ध के तुरन्त बाद वाली स्थिति जैसी ही तीव्र और कष्टदायक है। खाद्याभाव और मूल्यों के ऊर्ध्वगामी चक्र की पिछली मरोड़ के लगभग दस वर्ष से अधिक अवधि के पश्चात् भी आज हमें पुनः खाद्य-सामग्रियों के अभाव और मुद्रास्फीतिक मूल्य-स्तरों के पिशाच का सामना करना पड़ रहा है। यदि हमारे लोकतंत्र को जीवित रहना और सफल होना है, तो आर्थिक संकट के इस आक्रोश का जो समय-समय पर उत्पन्न होता रहता है, स्थायी निदान आवश्यक है।

लाखों-करोड़ों की संख्या में हमारे देश के लोगों की स्थिति भुखमरी के निकट पहुँच चुकी है और वे भय से मानों कांप रहे हैं। हमारे आर्थिक आयोजन का उद्देश्य जनता को कष्ट से मुक्त करना तथा उसकी गरीबी दूर करना ही है। यह कार्य इतना बड़ा है कि कोई भी सरकार, चाहे उसकी नीयत कितनी ही अच्छी क्यों न हो, तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक कि उसे देश की जनता का स्वैच्छिक सहयोग भी प्राप्त न हो। खाद्य-सामग्रियों के भंडार को बढ़ाने तथा मूल्य-स्तरों को स्थिर बनाने के लिए सरकार साहसपूर्ण तथा आवश्यक कदम उठाती रही हैं। कांग्रेस ने भी अन्नोत्पादन को बढ़ाने, खाद्य सामग्रियों को सुरक्षित करने तथा मूल्य-स्तरों को स्थिर तथा उचित सीमा पर बनाये रखने के तरीकों के बारे में अपने कार्यकर्त्ताओं तथा जनता को महत्त्वपूर्ण सूचनायें दी हैं।

इस अवसर पर जबकि संकट ने देश-व्यापी रूप धारण कर लिया है, और लोग भी स्वभावतः न सिर्फ चिन्तित, बल्कि भयभीत भी हो चुके हैं, आइये, हम कृतज्ञता के साथ महात्माजी के उन विचारों का पुनः स्मरण करके उनसे लाभ उठायें जो कि उन्होंने एक ऐसे ही अवसर पर लगभग दस वर्ष पूर्व व्यक्त किये थे। सन् १९४६ में जबकि भारत में खाद्यान्नों का तीव्र अभाव था और मूल्य बड़ी तेजी से बढ़ रहे थे, गांधीजी ने राष्ट्र का आह्वान किया था कि वह बहादुरी और निःस्वार्थता के साथ खाद्यान्न की लड़ाई को लड़े। उन्होंने जो कुछ उस समय कहा था, उसमें उनकी बहुमुखी बुद्धिमत्ता का आभास मिलताहै। साथ ही, उनका वह विचार आज की स्थिति में और भी अधिक उचित प्रतीत होता है।

अन्न छिपा रखने की प्रवृत्ति और चोरबाजारी

गांधी जी अन्न को छिपा रखने की प्रवृत्ति और चोरबाजारी के खिलाफ हमेशा लड़ते रहे। उनकी इच्छा थी कि व्यापारी वर्ग संकट की स्थिति में मानवीय और उदार ढंग पर व्यवहार करे। वाइसराय के अनुरोध पर अपना मत व्यक्त करते हुए एक प्रेस वक्तव्य में गांधी जी ने कहा था "यदि व्यापारी वर्ग और अधिकारी लोग ईमानदार हो जायें, और वह भी विशेष रूप से मँडराते संकट की स्थिति में, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि बाहरी संसार से, जो कि स्वयं पीड़ित है, किसी भी प्रकार की सहायता न मिलने पर भी हम कठिनाई पर विजय पा सकते हैं क्योंकि हमारा देश विशाल है। कपड़े और अन्न के व्यापारियों को अपना माल छिपा कर नहीं रखना चाहिए और न ही उन्हें सट्टेबाजी करनी चाहिए।"

उत्पादन वृद्धि आन्दोलन

गान्धी जी चाहते थे कि कृषि योग्य सारी जमीन पर अनाज उत्पन्न किया जाय। "जहां कहीं भी सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध है अथवा उपलब्ध हो सकता है, वहां सारी खेती योग्य जमीन पर अनाज पैदा करना चाहिए। फूलों की वाटिका में भी अनाज की फसल बोनी चाहिए।" यह वस्तुतः अधिक अन्न उपजाने का ही आन्दोलन था जिसके प्रति हमारी सरकार सदैव जागरूक रही है। "पृथ्वी के गर्भ में जल का अक्षय भंडार है। हमें इसे निकालना ही चाहिए, भले ही इसके लिए हमें २ हजार फुट गहराई तक खुदाई करनी पड़े। इस जल का उपयोग अनाज की फसल उगाने के लिए होना चाहिए।"

उनका भाषण ऐसा ही ओजपूर्ण था। यदि इस दिशा में गहन और श्रद्धापूर्ण प्रयत्न किये गये होते तो इस देश में अनाज की कमी न पड़ती।

अनाज की बर्बादी पर रोक

जिस तरह आजकल हमारी सरकार इस बात पर जोर दे रही है कि बर्बादी से बचना चाहिए, उसी प्रकार उन दिनों महात्मा गांधी ने खाद्यान्नों के उपभोग में मितव्ययिता करने की आवश्यकता पर जोर दिया था। उन्होंने कहा कि "आज कल बम्बई जैसे बड़े-बड़े शहरों में उत्सवों और भोजों के अवसर पर अनाज काफी बर्बाद हो रहा है। प्रत्येक पुरुष, महिला और बालक का यह कर्तव्य है कि वह इस संकट काल में अनाज के प्रत्येक दाने को और घी तथा तेल की प्रत्येक बूंद को बचा रखे।" उन्होंने कहा : "हमें कृपण की भांति मितव्ययी होना चाहिए। उस संकट में इससे अधिक प्रभावशाली नारा कोई दूसरा नहीं हो सकता था। उन्होंने विशेष रूप से महिलाओं से अनाज बचाने और कम खर्च करने का अनुरोध किया, क्योंकि खाने-पीने के मामले इन्हीं के जिम्मे होते हैं। "परिवार में मितव्ययिता का व्यवहार करके स्त्रियां वर्तमान संकट को कम करने में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं।"

आत्म-निर्भरता

गान्धी जी ने इस बात पर खास जोर दिया था कि सरकार जो कुछ करे या न करे, जनता को चाहिए कि वह निःस्वार्थ भाव से व्यवहार करे। "हम अपने ९० प्रतिशत दैनिक कार्यों को सरकारी सहायता के बगैर ही संपन्न कर सकते हैं। चाहे उसका रूप कैसा भी क्यों न हो। इसके लिए जरूरत सिर्फ इस बात की है कि जनता के मामलों में हस्तक्षेप न किया जाय।" बेशक वे ऐसे समय में भाषण कर रहे थे, जो आजादी मिलने और राष्ट्रीय सरकार बनाने के एक साल पहले का समय था। उन्होंने कहा कि "किसी भी मूल्य पर भय का वातावरण दुरुस्त करना चाहिए। स्वाभाविक मौत से पहले हमें हर्गिज मरना नहीं चाहिए और भारत के ढांचे को सदैव स्मरण कर रखना चाहिए। साथ ही, यथा सामर्थ्य सहायता देने का प्रयत्न करना चाहिए।"

भोजन की व्यवस्था

हमें आहार विज्ञान का अध्ययन करना चाहिए, और अपनी परिस्थिति के अनुसार आहार की आदतों में परिवर्तन करना चाहिए। गान्धी जी को इस बात का विश्वास नहीं था कि देश में खाद्यान्नों का अभाव है। हालांकि उन्होंने यह स्वीकार किया था कि कभी-कभी चावल और गेहूँ का अभाव हो सकता है। लेकिन उन्होंने पूछा था—और उचित रूप से ही पूछा था—कि लोग सिर्फ चावल और गेहूँ पर ही क्यों निर्भर करते हैं। वे दूसरे प्रकार के भोजन का भी उपभोग कर सकते हैं जो कि कम लाभप्रद नहीं। उन्होंने सुझाव दिया था कि लोग सोयाबीन, सेम, कुछ साग पत्तियां, अधिक दूध, मछली, नारियल तथा कुछ प्रकार की जड़ें भी खायें। वे चाहते थे कि ये चीजें बगैर पकाये हुए ही खायी जायें। उन में महत्त्वपूर्ण खाद्य तत्त्व पाये जाते हैं। सरसों, सोवा, सलजम की पत्तियां, मटर का साग, आदि खाने का भी उनका सुझाव था। सलजम, गाजर, मूली, आदि खाद्य समझी जाती हैं। वे सस्ते खाने के ही पक्षपाती नहीं थे, बल्कि यह भी चाहते थे कि उसमें खाद्य-तत्त्व भी प्रचुर मात्रा में हो। जो ग्रामीण दाल, रोटी और मिर्च खाते हैं, स्वयं हानि उठाते हैं और उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है।

राष्ट्रीय आहार

महात्मा जी यह भी चाहते थे कि भारत के लिए एक सामान्य राष्ट्रीय भोजन चालू हो। आहार संबंधी आदतों के विषय में प्रादेशिकता या प्रान्तीयता का उन्मूलन होना चाहिए। त्रिवांकुर एक चावल-भोजी क्षेत्र है। वहां खाद्याभाव के विषय बोलते हुए गांधी जी ने कहा था :"त्रिवांकुर में चावल पैदा हो सकता है, गेहूँ नहीं। जहां तक अनाजों का सम्बन्ध है, त्रिवांकुर के लोग चावल-भोजी हैं। वे कठिनाई पड़ने पर बाध्य होकर ही गेहूँ खाते हैं। कितना अच्छा हो कि हम एक अखिल भारतीय भोजन का प्रमाण निश्चित कर लें, ताकि कहीं भी कठिनाई होने पर लोगों को कष्ट न हो।"

विदेशी सहायता

गान्धी जी इस बात से सहमत नहीं थे कि भारत अनाज के लिए दूसरे देशों पर निर्भर करे। वे चाहते थे कि भारतीयों में आत्म-निर्भरता की भावना पैदा हो। लेकिन वे विदेशों से भेंट के रूप में मिलने वाले अनाज को अस्वीकार नहीं करना चाहते थे। "यद्यपि सरकार का कर्तव्य है कि वह विदेशों से अनाज पाने की कोशिश करे, फिर भी हमारी राय में दूसरों पर निर्भर करना अच्छा नहीं।" बेशक, गांधी जी एक खास विदेशी सरकार के सम्बन्ध में बोल रहे थे। लेकिन, फिर भी, उन्होंने जनता में आत्म-निर्भरता की आवश्यकता पर जो जोर दिया था, वह आज की हालत में भी उतना ही सही है। "विदेशों से सहायता मिलने की तनिक भी आशा हो जाने पर हम अपने देशी साधनों का उपयोग करके अन्न पैदा करने से बाज आ जाते हैं, जबकि दरअसल, हमारे देश में साधन अपार हैं। हम बेची जाने वाली फसलों की जगह अनाज की फसलें पैदा करके तथा खेती लायक जमीन पर खेती करके अनाज की पैदावार काफी बढ़ा सकते हैं।

हसनाबाद में कृषक समिति के प्रतिनिधियों के समक्ष भाषण करते हुए महात्मा जी ने कहा था कि मैं अपने तरीके से खाद्य संकट को हल करने की कोशिश कर रहा हूँ। "मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि लोग मदद के लिए सरकार या दूसरे लोगों पर क्यों निर्भर करते हैं आजकल हम सुनते हैं कि लोग विदेशों से अनाज पाने की कोशिश कर रहे हैं। दरअसल, अगर लोग अपनी मदद आप करने लगें तो सरकार को आगे बढ़ना ही पड़ेगा और इसे ही मैं असली लोकतंत्र कहता हूँ जो तले से निर्मित होता है।"

विकेन्द्रीकरण

खाद्यान्नों का अभाव दरअसल एक हौवा है, वास्तविकता नहीं। उस समय भंडार-गृहों की अपर्याप्तता, रेलों के मालगोदामों में लापरवाही तथा कीड़े-मकोड़ों के आक्रमण के कारण बहुत अनाज व्यर्थ नष्ट हो जाता था। अगर इनकी रोकथाम हो जाती तो बहुत सा अनाज नष्ट होने की बजाय भूखों के खाने के काम आ जाता। महात्मा गांधी का कहना था कि अनाजों का अभाव अनुचित वितरण की प्रणाली तथा अपर्याप्त यातायात की सुविधाओं के कारण भी था।

दरअसल, यह मामला कहीं-कहीं अधिक संचय, अधिक बर्बादी और कुछ क्षेत्रों में अभाव से सम्बद्ध था। उत्पादन बढ़ाने की जरूरत के अलावा उचित और तत्काल वितरण की जरूरत भी अधिक महत्त्वपूर्ण थी। इसके लिए गांधी जी ने एक समाधान पेश किया था। वे उत्पादन का विकेन्द्रीकरण करना चाहते थे। वितरण संबंधी दोष का मुख्य कारण उत्पादन का केन्द्रीकरण ही था। अगर फसल पैदा करने के मामले में विकेन्द्रीकरण अपनाया गया होता, तो वितरण की कठिनाइयां खत्म हो जातीं। गांधी जी ने कहा था: "अगर प्रत्येक भारतीय हर कृषि योग्य जमीन पर अनाज पैदा करने की जरूरत को महसूस करने लगे, तो इस बात की पूरी सम्भावना है कि हम भूल जायेंगे कि देश में खाद्यान्नों का अभाव है।" जितना ही अधिक उत्पादन का विकेन्द्रीकरण होगा, जितना ही यह महसूस किया जायेगा कि हर खेती लायक जमीन पर अनाज पैदा होना चाहिए, जितना ही हर आदमी इस बात के प्रति सचेत होगा कि उसे अपनी जमीन पर उत्पादन अवश्य करना चाहिए, उतनी ही अधिक मात्रा में अभाव का असर, अगर खत्म नहीं, तो कम अवश्य हो जायेगा।

गांधी जी एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जिसमें अभाव नाम मात्र को भी न हो। वे कहते थे: "मेरा दावा है कि एक सुव्यवस्थित समाज में पानी और अनाजों की फसल के अभाव को कामयाबी के साथ दूर करने का एक पूर्वायोजित तरीका हमेशा लागू होगा।"

इस प्रकार, महात्मा जी ने एक ऐसे समाज की कल्पना की थी, जिसमें लोगों को किसी तरह के अभाव का कष्ट न हो। वे स्पष्ट रूप से यह चाहते थे कि सरकार समाज के मौजूदा ढांचे और उसके व्यावहारिक ढंगों को इस प्रकार सुधारे कि लोगों की जरूरतों की अपर्याप्ततायें स्वतः समायोजित हो जायें। इस समय सरकार समाजवादी ढंग के जिस समाज का

निर्माण कर रही है, उसमें एक श्रेष्ठतर समाज की व्यवस्था होगी, जहां लोकतंत्र तले से क्रियाशील होगा और लोगों में पारस्परिक सद्भावना, मित्रता और आत्म-निर्भरता की भावना बढ़ेगी। गांधी जी का उपदेश यही था।

नियंत्रण

गांधी जी ने खाद्य-नियंत्रण और राशनिग के विषय में जो कुछ कहा था, वह आजकल की स्थिति पर एकदम लागू नहीं हो सकता, किन्तु उससे हमें यह महसूस करने में मदद मिलेगी कि जिस बुनियादी कारण से उन्होंने नियंत्रण त्यागने का समर्थन किया था, वह वस्तुतः नैतिक पक्ष था। उन्होंने काफी जोरदार ढंग पर कहा था कि नियंत्रणों के प्रभावहीन होने का कारण यही है कि उन्हें लागू करने का तरीका दोषपूर्ण है। जब वही तरीका, जिसका उद्देश्य लाखों-करोड़ों, गरीब, भूखी जनता का कल्याण करना हो, ऐसा हथियार बन जाय, जिससे चोरबाजारी के जरिये धन इकट्ठा किया जाने लगे तो उसका त्याग कर देने में ही कुशल है।

"नियंत्रण ने धोखेबाजी, असत्यता, चोरबाजारी और बनावटी अभाव को बढ़ा दिया था।" उन्होंने नैतिक पहलू से नियंत्रणों का विरोध किया था और उसमें उन्हें कामयाबी भी मिली। इससे वे लाखों जनता की कृतज्ञता के पात्र बने। इस तरह उन्होंने चोरबाजारी, भ्रष्टाचार, धोखेबाजी के खिलाफ जो जेहाद बोला था, उसमें उन्हें सफलता मिली।

बहुमूल्य सुझाव

खाद्यान्नों के अभाव की समस्या के सम्बन्ध में गांधी जी ने जो शोध की थी, वह हर दृष्टि से पूर्ण थी। उन्होंने तत्कालीन सरकार, जनता, कांग्रेस और कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को जो सलाह दी थी, वह अत्यन्त उपयोगी थी और सभी ने उत्सुकता से उसका अनुशीलन किया। उस समय के वाइसराय लार्ड वेवेल (१९४६) ने भी अपने निजी सचिव को खाद्य समस्या सुलझाने के लिए गांधी जी से उनका बहुमूल्य सुझाव हासिल करने के उद्देश्य से उनके पास भेजा था। कई दृष्टियों से ब्रिटिश वाइसराय ने उनकी सलाह को माना और कृतज्ञता प्रकट की। आज भी, लगभग दस वर्ष बाद, सरकार उन्हीं सुझावों को लागू कर रही है, जो कि गांधी जी ने दिये थे। गांधी जी के अनुसार खाद्य संकट दूर करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाये जाने चाहिए: (१) संतुलित आहार, (२) एकमात्र चावल या गेहूँ पर ही निर्भर न करना, (३) आहार के तरीकों की खोज, (४) राष्ट्रीय आहार का प्रमाण निर्धारित करना, (५) उत्पादन का विकेन्द्रीकरण, (६) जमीन के हर टुकड़े पर अनाज की फसल पैदा करना, (७) परिवार में अनाज की बरबादी रोकना, (८) भोज और दावतों का परित्याग, (९) उचित वितरण, (१०) अनाज का आयात न करना, और (११) आत्म-निर्भरता।

गांधी जी की सलाह का मूल्य शाश्वत है। वह कोई अस्थायी उपाय नहीं था जिसका उद्देश्य किसी स्थानीय संकट को दूर करना रहा हो। वह तो एक सुव्यवस्थित समाज के अन्तर्गत मानवीय व्यवहार का अनिवार्य अंग है जिसका उद्देश्य समय-समय पर उत्पन्न होने वाले राष्ट्रीय संकटों पर विजय पाना है, चाहे वे संकट प्राकृतिक या कृत्रिम कारणों से उत्पन्न हों।

* गांव *
सचित्र मासिक पत्र
इस पत्र में गांव सम्बन्धी सभी विषयों पर उच्च-कोटि के लेख, कहानियाँ और कविताएँ छपती हैं। खास कर नीचे लिखे हुए विषयों पर लेख छपा करते हैं:
(१) गांव का सामाजिक और सांस्कृतिक विकास
(२) गांव की सफाई और ग्रामोगों का स्वास्थ्य
(३) गांव के शिक्षक और स्कूल
(४) खेती का सुधार
(५) खाद और उसके बनाने के तरीके
(६) ईख और चीनी
(७) गो-पालन तथा अन्य पशु-पालन
(८) सहयोग समिति
(९) ग्रामीण उद्योग-धंधे
वार्षिक मूल्य सिर्फ ५ रुपये। शीघ्र ही मनीआर्डर द्वारा ५ रु० भेजकर आप इसके ग्राहक बन जाएं। वी० पी० मंगाने पर व्यर्थ पांच आना ज्यादा खर्च हो जाएगा।
पता— व्यवस्थापक "गाँव"
बिहार को-आपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड
पटना। बुद्ध मार्ग,

डा० राजकुमार निगम

नये सिक्कों की कठिनाइयों पर एक नजर

नए सिक्कों को चलन में आए काफी दिन हो चुके हैं। सफेद चमकदार २, ५ और १० नए पैसों के सिक्के तथा ललछरे १ नए पैसे का छोटा सिक्का जनसाधारण के हाथों में काफी तादाद में आ चुका है। किसी हद तक यह कहना गलत न होगा कि नए सिक्कों का सभी क्षेत्रों में स्वागत हुआ है और देश की जनता थोड़े समय में ही इनसे भलीभांति परिचित हो गई है।

अब आप जान ही चुके हैं कि नई प्रणाली के अंतर्गत रुपये में ६४ पैसों के स्थान पर १०० नए पैसे होते हैं, और पुराने पैसों, अधन्नों, इकन्नियों व दुअन्नियों की जगह १, २, ५ और १० नए पैसों के सिक्के टकसाल से निकल कर इस्तेमाल में आ रहे हैं। वर्तमान चवन्नी व अठन्नी के बदले २५ व ५० नए पैसे के सिक्के शीघ्र ही टकसाल से निकलेंगे और बाद में नए रुपये भी। इस्तेमाल से पुराने पैसे, अधन्ने, इकन्नी और दुअन्नी धीरे-धीरे हट रही है।

नई मुद्रा-प्रणाली के विरुद्ध कोई बुनियादी आवाज सुनने में नहीं आई है। जो कुछ सुनने में आया है, वह है––संक्रांति काल की कुछ कठिनाइयां, जो समय पाकर समाप्त हो जायंगी। समाज-विरोधी तत्वों की इक्की-दुक्की धांधली व ठगी और डाक विभाग के प्रति असंतोष के समाचार सुने गये हैं। यहां मैं इन्हीं बातों को लूंगा।

डाक की दर में वृद्धि के साथ कमी भी

डाकखाने सम्बन्धी आलोचनाओं व गलतफहमियों को पहले लीजिये, क्योंकि इनकी चर्चा कुछ ज्यादा रही है। यह सही है कि डाक की कुछ चीजों की दरों में पहली अप्रैल से वृद्धि की गई है, किन्तु कुछ दरों में, जैसे पोस्टल आर्डरों व तारों की दरों में, कमी भी हुई। पर लोगों ने वृद्धि की ही ओर ध्यान दिया है। यह वृद्धि या डाक दर का परिवर्तन सर्वथा वैधानिक है,क्योंकि संसद ने एक विधेयक पास करके सरकार को काफी अधिकार दे दिया था। डाकतार विभाग ने दरों को मुनाफे की नजर से नहीं बढ़ाया है, बल्कि सिर्फ खर्च को ध्यान में रखकर विनिमय तालिका में दिये गये अंकों के आस-पास हेर-फेर ही किया है। आंकड़ों को देखने से पता लगता है कि पूरे साल में करीब २५० करोड़ पोस्टकार्ड, लिफाफे व अन्तर्देशीय पत्र डाकखानों से लिये जाते हैं और इनका प्रति व्यक्ति सालाना औसत ६ पड़ता है। औसत ग्रामीण जनता या गरीबों के लिए यह और भी कम है। तो, एक नये पैसे के नुकसान को लेकर खतों, आदि में प्रति व्यक्ति को एक साल में ६ नये पैसे का नुकसान होगा, जो कि नहीं के बराबर है।

यह भी सुनने में आया है कि सिक्कों की तब्दीली से आम प्रयोग की कुछ वस्तुओं के फुटकर भावों में थोड़ी तेजी आ गई है। छोटा व्यापारी तो हर तब्दीली या परिस्थिति का फायदा हमेशा से उठाता आया है, और इस बार भी उनमें से कुछ ने ऐसा ही किया है। इसके अलावा, कुछ बड़े शहरों में बसों व ट्रामों की दरों में १ नये पैसे की वृद्धि हुई है। आम तौर पर सभी अखबारों ने भी पुराने १।। व २ आने की दरों को १० व १३ नए पैसे कर दिये हैं। एकाध बैंकों ने भी तार द्वारा भेजे जाने वाले रुपयों की दरों को बढ़ाया है। तो, हम देखेंगे कि जिम्मेदार व्यापारिक संस्थाओं, अखबारों, आदि ने अल्प-वृद्धि की है और केवल गैर जिम्मेदार वर्गों ने नये सिक्कों को साधन बना कर लाभ उठाने की कोशिश की है, जिसकी निन्दा करना सर्वथा उचित है। इसी प्रकार, कहीं-कहीं धूर्तों ने ग्रामीण व अपढ़ भाइयों को १ पुराने पैसे के बदले में १ नया पैसा व दुअन्नी के बजाय १० नये पैसे देकर ठगा है; या चीज देने के वक्त दुअन्नी के १३ नये पैसे लिये हैं और खरीद वापसी के वक्त १२ नये पैसे दिये हैं। ऐसी बातें अवांच्छनीय तथा गैरकानूनी हैं। ऐसे लोगों के प्रति सख्त रुख अख्तियार करना या कानूनी कार्यवाही करना गलत नहीं होगा।

काल्पनिक-कठिनाइयां

साथ ही, कुछ बातें ऐसे भी कही गयी हैं जो किसी हद तक कल्पित हैं। कहा गया है कि जब १ रुपये के १०० नये पैसे बनते हैं, तो ८ दुअन्नियों व १६ इकन्नियों के ९६ नये पैसे दिये जाते हैं या चार इकन्नियों के २४ नये पैसे, न कि २५ नये पैसे जोकि चवन्नी में होते हैं। ऐसी सब दिक्कतें व गड़बड़ियां अस्थायी हैं और पुराने सिक्कों के हटते ही खत्म हो जाएंगी। काफी अर्से से

प्रति मास ८ करोड़ छोटी मुद्रायें टकसाल से निकल रही हैं। उन्हें ढालने की रफ्तार बढ़ भी सकती है, और मुमकिन है कि पुराने सिक्कों को हटाने में तीन वर्ष से कम समय लगे।

इसके अतिरिक्त, कुछ अच्छे सुझाव भी दिये गए हैं, जैसे कुप्रो निकिल के २, ५ व १० नये पैसे के कुछ सिक्कों की ऊपरी परत को निकलते देखा गया है, जिसे ठीक करना चाहिए। या नये पैसे की मुद्रा जल्द काली पड़ जाती हैं। ये बातें ढलाई व धातु विज्ञान से सम्बन्धित हैं, जिसे टकसाल के विशेषज्ञ अवश्य ही देख रहे होंगे।

मोटी बातें जिन्हें याद रखना है

कुछ भी हो, नये सिक्कों का युग शुरू हो गया है। हमें हर दिक्कत को आसान करना ही होगा। इस सिलसिले में अपनी आसानी के लिए कुछ मोटी बातें हमें याद कर लेनी चाहिए, जैसे दो पुराने पैसों के तीन नये पैसे व इकन्नी तथा दुअन्नी के क्रमशः ६ और १२ नये पैसे होते हैं।

हाल में जो दाशमिक सिक्के चले हैं, उनमें से कुछ के उल्टी तरफ वर्ष के नीचे एक बिन्दी बनी है और कुछ में नहीं है। कुछ लोगों ने यह अन्दाज लगाया है कि इनमें से एक तरफ के सिक्के, मुमकिन है, बनावटी हों। दरअसल, ऐसी कोई बात नहीं है। यह पहचान के लिए है कि बम्बई की टकसाल में कौन से सिक्के बने हैं और कलकत्ते की टकसाल में कौन से। बहुत दिनों से यह प्रथा चली आ रही है कि बम्बई की टकसाल के सिक्कों में एक बिन्दी बना दी जाती है, जो कलकत्ते की टकसाल के सिक्कों में नहीं होती। दाशमिक सिक्के बनाने से पहले भी ऐसा ही होता था। अस्तु, यह ठीक जानिये कि दोनों प्रकार के सिक्के कानूनी सिक्के हैं। यह भी याद रखिये कि क्रय-विक्रय तथा रोजमर्रा के लेने-देने में सरकारी तालिका को प्रयोग में लाना है, और उसमें दी हुई मोटी रकमों के परिवर्तन को याद कर लेना है। डाकघरों या रेलवे कार्यालयों के लेने-देने की आंशिक हानि या असुविधा पर कुछ समय के लिए ज्यादा ध्यान नहीं देना है।

अरविन्द का यह चिह्न

उच्चतम कोटि
के
कपड़ों के लिए सुप्रसिद्ध

अरविन्द मिल्स लिमिटेड
नरोदा रोड, अहमदाबाद—२

समाजवादी-समाज
रचना का मार्ग प्रशस्त करने वाली
द्वितीय योजना
की पूर्ति में आप किस प्रकार हाथ बंटाकर राष्ट्रीय कर्त्तव्य की पूर्ति कर सकते हैं। यह जानने के लिए—

कांग्रेस-सन्देश
(मध्यभारत प्रदेश कांग्रेस का साप्ताहिक मुखपत्र)
पढ़िये !

सम्पादक
कृष्णकांत व्यास

साथ ही विज्ञापन का सर्वोत्तम साधन

वार्षिक मूल्य ५) टेलीफोन नं० ६८१३
लिखिए :—
कांग्रेस सन्देश पो०बा० नं० ८ इन्दौर शहर

079248

श्री अमरसिंह महता

द्वितीय योजना में बागवानी का विकास और रोजगार की संभावना

भारत की प्राकृतिक सम्पदा में कई प्रकार के फल और तरकारियां भी हैं। कुछ फलों और तरकारियों में तो भारत अग्रणी है और उनकी विदेशों में भी बड़ी मांग रहती है। भारतीय आम, पपीते, लीचियां, आदि बहुत प्रसद्ध हैं। लेकिन अभी तक फल-संरक्षण उद्योग पर्याप्त मात्रा में विकसित नहीं हुआ है। वर्तमान संरक्षण-प्राप्त फलों तथा तरकारियों का वार्षिक उत्पादन २०,००० टन है। यह उत्पादन देश के कुल खाद्य उत्पादन का .०२ प्रतिशत है। अमरीका में यही उत्पादन ६० लाख टन, ब्रिटेन में ४० हजार टन और कनाडा में ३,५०,००० टन है। इस अनुपात से भारत का उत्पादन प्रायः नगण्य है।

भारत में ४० लाख एकड़ भूमि पर बागवानी होती है जिसमें से ३० लाख एकड़ फलों और १० लाख एकड़ तरकारियों से आच्छादित है। फलों का वार्षिक उत्पादन ६० लाख टन अनुमानित किया गया है जिसमें से १० लाख टन संरक्षण की सुविधाओं, शीत भंडारों और यातायात के समुचित साधनों के अभाव में नष्ट हो जाता है। हमारे देश में प्रति व्यक्ति २ औंस फल की खपत अनुमानित की गई है जब कि खुराक विशेषज्ञों ने प्रति व्यक्ति १६ औंस की न्यूनतम मात्रा निर्धारित की है। अमरीका में प्रति व्यक्ति औसतन ८६ पौंड, कनाडा में ५७ पौंड और ब्रिटेन में २० पौंड फलों की खपत है।

भारत में साधनों का अभाव नहीं है। इसके विपरीत ग्रामों में खेतों और नगरों के बगीचों में फलों और तरकारियों का विस्तृत क्षेत्र है। अभी जो १५-२० प्रतिशत फलादि का उत्पादन नष्ट होता है उसे शीत-भंडारों की सुविधाओं तथा यातायात व वितरण के समुचित प्रबंध से रोका जा सकता है। बागवानी से फल-संरक्षण, आदि द्वारा स्थानीय, राष्ट्रीय व निर्यात मांग में वृद्धि कर अधिक एवं अतिरिक्त रोजगारी का क्षेत्र सरलता से बनाया जा सकता है।

बागवानी फल, तरकारियां व फूल उत्पन्न करने का विज्ञान और कला है। कृषि और बागवानी को बिल्कुल पृथक् करने की कोई सीमा तो निश्चत नहीं है, परन्तु फिर भी बागवानी अपने को कृषि से अलग कर आधुनिक वैज्ञानिक प्रणालियों को अपनाते हुए एक विशेष शाखा बन गई है। इसमें भी चार उप-शाखाएं हैं :

(क) फल विज्ञान
(ख) पुष्प विज्ञान
(ग) तरकारी विज्ञान
(घ) प्राकृतिक सुषमा विज्ञान —इसके द्वारा वृक्षों कुंजों, लताओं पुष्पों, आदि से नैसर्गिक सुषमा प्राप्त करने की रचना की जाती है।

फल और तरकारियां तो अनादि काल से उगाई जाती रही हैं किन्तु पुष्प विज्ञान और प्राकृतिक सुषमा विज्ञान विलास में समझे जाने के कारण इनका विकास वर्तमान की ही देन है।

बागवानी का सबसे आधुनिकतम विकास प्राकृतिक सुषमा रचना, वाटिका कला और वास्तु कला में हुआ है। वाटिकाओं का विकास प्रारंभिक क्यारियों के समुचित विकास पर निर्भर है। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में वाटिकाओं और उपवनों के विकास के लिए क्यारी शालाओं में शोध और श्रम की आवश्यकता है।

रोजगार की संभावनाएँ

देश के विकास के साथ बागवानी का विकास आवश्यक है। दूसरी योजना के अन्तर्गत कृषि के क्षेत्र में फलों और तरकारियों के उत्पादन की वृद्धि एक मुख्य उद्देश्य है। यह संरक्षक खाद्य पदार्थों की अधिक उपज और विभिन्न प्रकार की कृषि

करने की दृष्टि से आवश्यक है। योजना के अन्तर्गत फल और तरकारियों के अधिकतम उत्पादन के लिए ८ से ९ करोड़ रुपयों की व्यवस्था की गई है। अच्छे और उत्तम किस्म के बीज और पौधे उगाने के लिए नई नर्सरियां खोली जाएंगी। राज्य सरकारों की योजनाओं के अन्तर्गत लगभग ५,००,००० एकड़ भूमि के बगीचों के पुनरुद्धार और लगभग २,००,००० एकड़ भूमि में नए बगीचे लगाए जाने की व्यवस्था की गई है। तरकारियों की खेती को अधिक प्रोत्साहन दिया जायगा, विशेषतया नगरों के समीप के क्षेत्रों में। फल और तरकारी पैदा करने वालों के सहकारी बिक्री संघ बनाने की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया जायगा। दूसरी योजना में फल और तरकारी के संरक्षण और उन्हें डिब्बों में बन्द करने के उद्योग के विकास के लिए डिब्बा बन्द करने के नए कारखाने और शीत-भंडार खोलने के लिए उधार रुपया दिया जाएगा।

इस प्रकार दूसरी योजना में बागवानी में रोजगार का विस्तृत क्षेत्र है। बागवानी के विशेषज्ञों व स्नातकों के लिए केन्द्रीय तथा राज्यों के जन-निर्माण कार्य तथा वन-विभागों, सामुदायिक तथा राष्ट्रीय विस्तार योजनाओं, सरकारी व निजी फार्मों, शोध प्रयोगशालाओं, कृषिविद्यालयों तथा महाविद्यालयों, फल तथा तरकारी संरक्षण कारखानों, आदि में कार्य पाने के बहुत अवसर हैं। बागवानी के लिए बीज, मशीनरी, आदि सामान वितरण में भी कई व्यक्ति रोजगार पा सकेंगे। साहसी, परिश्रमी व मेधावी व्यक्ति सहकारी संस्थाएं बनाकर सरकार से उचित दरों पर ऋण लेकर विस्तृत बगीचों का निर्माण कर सकते हैं। इसी प्रकार, फल तरकारी संरक्षण कारखाने, नर्सरियां, फार्म, आदि भी आसानी से स्थापित किये जा सकते हैं।

दूसरी योजना में २१० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि सींची जाएगी। इसके अतिरिक्त, पाठशालाओं, सरकारी भवनों से घिरी भूमि, खेतों, कुओं के निकट की भूमि, पहाड़ियों के ढलान, नदियों के किनारों, आदि पर भी बागवानी हो सकती है। उससे हमारी मातृभूमि सुन्दर बनेगी, लोगों को रोजगार मिलेगा, श्रम की महत्ता बढ़ेगी और व्यर्थ के झगड़ों में व्यय होने वाली शक्ति का रचनात्मक उपयोग होगा।

बागवानी की रोजगारी मन पसंद भी होती है। शहरों की तड़क-भड़क, विषैली वायु व अस्वस्थ कृत्रिम वातावरण से दूर ग्रामों में हरे-भरे लहराते झूमते खेत, फलों से लदे वृक्षों के कुंज, पुष्पों से आलोड़ित लतिकाओं और सुमनों से महकते पौधों से उनको स्वाभाविक संतोषप्रद सुखी जीवन मिलेगा। इस स्वस्थ वातावरण में उनकी कलात्मक रुचि और आध्यात्मिक विकास को भी बल मिलेगा। सुन्दर स्वास्थ्य और सुन्दर चरित्र से युक्त इस उद्योग में पले प्रतिपल मुस्कराते नागरिक राष्ट्र के जाग्रत प्रहरी और गौरवगरिमा युक्त भविष्य निर्माता बनेंगे जिनमें निश्चय ही भविष्य की स्वर्णिय संस्कृति की सुदृढ़ नींव ढलेगी।

क्या आप अब तक·····

'आपका - स्वास्थ्य'

······**के ग्राहक नहीं बने हैं ?**

'आपका स्वास्थ्य'–आपके और आपके परिवार के स्वास्थ्य का रक्षक है !

'आपका स्वास्थ्य'–आपका ज्ञान-वर्धन करता है।

'आपका स्वास्थ्य'–आपको सभ्य जगत की गतिविधि से परिचय कराता है।

'आपका स्वास्थ्य'–स्वस्थ मनोरंजन भी है।

'आपका स्वास्थ्य'–इंडियन मेडिकल ऐसोसियेशन द्वारा प्रकाशित हिंदी में स्वास्थ्य पर एकमात्र प्रामाणिक पत्रिका है।

शीघ्र ही छः रुपये भेजकर ग्राहक बनिए

वी.पी. भेजने का नियम नहीं है। नमूने के लिये आठ आने का टिकट भेजिये।

व्यवस्थापक–**'आपका स्वास्थ्य'**–बनारस १

गोपालजी मेहरोत्रा

नये प्रकाशन

रेणुका (कविता-संग्रह):—रचयिता : श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'; प्रकाशक : उदयाचल, पटना; मूल्य : २ रु० ५० पैसे; पृष्ठ संख्या : १५८।

नील कुसुम (कविता-संग्रह):—रचयिता : श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'; प्रकाशक : उदयाचल, पटना; मूल्य : ३ रु०; पृष्ठ संख्या : १२४।

नीम के पत्ते (कविता-संग्रह):—रचयिता : श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'; प्रकाशक : उदयाचल, पटना; श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना-४; मूल्य : ७५ पैसे; पृष्ठ संख्या : ४८।

दिल्ली (कविता-संग्रह):—रचयिता : रामधारी सिंह 'दिनकर'; प्रकाशक : उदयाचल, पटना; मूल्य : ७५ नये पैसे; पृष्ठ संख्या : ३४।

हिन्दी साहित्य के अध्यवसायी, धैर्यवान तथा उदार सृजनकार **श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'** जनसाधारण में एक कवि के रूप में ही प्रख्यात हैं। वस्तुतः, वह जितने निपुण रचयिता काव्य-साहित्य के हैं उतने ही कुशल शिल्पी गद्य तथा बाल-साहित्यों के भी। 'संस्कृति के चार अध्याय' इसका नवीनतम ज्वलन्त उदाहरण है। **'दिनकर' जी** के कवि के रूप में प्रसिद्ध होने का सबसे बड़ा कारण यह भी है कि जनता कविता की ओर अधिक आकर्षित होती है; उन काव्य-धाराओं की तरफ तो और भी ज्यादा, जिनमें गति हो, ओज हो, जीवन को झकझोर देने की, क्रान्ति मचा देने की, शक्ति हो। और, आलोच्य कविता-संग्रहों के रचयिता इसके प्रतीक माने गये हैं।

रेणुका सन् १९३०-३३ के कवि 'दिनकर' की रचनाओं का प्रथम कविता-संग्रह है। आलोच्य संस्करण चित्ररहित द्वितीय संस्करण है। निस्संदेह, किसी प्रकाशन की रूप-सज्जा प्रकाशक की 'उदारता' पर निर्भर करती है। पर पहले की अपेक्षा इस संस्करण में यकीनन ज्यादा कविताएं हैं। उन्तालीस कविताओं के प्रस्तुत संग्रह में कुछ रचनाएं विदेशी कविताओं से ली गयी हैं। कहना न होगा कि वे आलोच्य कवि का मान नहीं बढ़ाती हैं। हां, शेष अन्य कविताओं में 'गीतवासिनी', 'मिथिला की शाम', 'वैभव की समाधि पर' तथा 'कस्मै देवाय' बहुत ही अच्छी हैं, और 'बोधिसत्व' शीर्षक कविता के अन्तर्गत निम्नांकित पंक्तियां तो इस संग्रह का प्राण हैं :

आह ! सभ्यता के प्रांगण में आज गरल-वर्षण कैसा !
घृणा सिखा निर्वाण दिलाने वाला यह दर्शन कैसा।
स्मृतियों का अन्धेर ! शस्त्र का दम्भ ! तर्क का छल कैसा !
दीन दुखी असहाय जनों पर अत्याचार प्रबल कैसा !

प्रस्तुत कविता-संग्रह का मुद्रण संतोषजनक किन्तु मुख पृष्ठ विशेष आकर्षक नहीं है। एक बात हमें और कहनी है, और वह यह कि जहां क्लिष्ट भाषा होने के कारण यह संग्रह साधारण हिन्दी भाषाभाषियों के लिए आकर्षक नहीं बन सकता, वहीं 'व्योम-कुंजों की परी अयि कल्पने !', 'गा रही कविता युगों से मुग्ध हो' तथा 'फूंक दे जो प्राण में उत्तेजना' को एक विशेष ढंग से प्रकाशित करने का उद्देश्य हमें समझ में नहीं आया।

नील कुसुम सन् '४६ से '५४ तक की ४० कविताओं का सुन्दर संग्रह है (मगर वही मुद्रण की दृष्टि से), जो कि हिन्दी-कवियों की उस नई पीढ़ी को समर्पित किया गया है, 'जो उपेक्षा और अंधकार को चीर कर बाहर आ रही है।' **'दिनकर' जी** की दूसरी रचना 'आशीर्वाद की अक्षत नहीं, ... जवानी की पूजा के फूल' हैं। रचयिता के 'दो शब्द' पढ़ लेने मात्र से ही ज्ञात हो जाता है कि उसने अपनी रचनाओं में आज की प्रसिद्ध परिपाटी—तथाकथित प्रयोगवादी कविता—को अपनी अनुभूति प्रदर्शन का साधन बनाया है। कवि का कथन है कि 'हिन्दी कविता में (यह) जो नवीनतम क्षितिज झलकने

लगा है, उसे लेकर संभ्रान्त आलोचकों में काफी मतभेद है। किन्तु मैं बड़ा उत्साही हूं।' लेकिन यह 'नवीनतम क्षितिज' किस हद तक हिन्दी काव्य साहित्य को नीरस बनाता जा रहा है, सोचने की बात है। उस प्रयोगवाद ही का परिणाम है कि 'नयी कविता' संपूर्ण हिन्दी साहित्य के लिए अभिशाप बन गयी है। एक दूसरे स्थान पर वे कहते हैं: "अनुकरण का काम दो-चार या दस आदमी कर सकते हैं। पूरी-की-पूरी पीढ़ी अनुकरण के रोग से ग्रसित हो, ऐसा मानने का कोई ठोस आधार नहीं।" जबकि इसके विपरीत हमेशा से होता आया है। प्रस्तुत संग्रह की कुछ कविताएं पठनीय हैं, जिनके शीर्षक हैं: 'स्वप्न और सत्य', 'आनन्दातिरेक', 'नर्तकी', 'हिमालय का संदेश' तथा 'नग्नता'। यद्यपि इनमें से 'नग्नता' बहुत छोटी कविता है, परन्तु उसमें भी रचयिता ने मानव इतिहास को जिस कुशलता से खींचा है उसकी दाद देनी ही पड़ेगी। पर भावों के विचार से हम 'आनन्दातिरेक' व 'स्वप्न और सत्य' की शरण जायेंगे। उदाहरणार्थ :

नींद है वह जागरण जब फूल खिलते हों;
चेतना के सिन्धु में निश्चेत प्राणों को;
ऊर्मियों में फूटतें-से गान मिलते हों;
(आनन्दातिरेक)

इसी से समझता हूं कि वे अच्छे रहे हमसे,
नहीं जिनकी लकीरें वायुमंडल पर, मही पर हैं।
जिन्होंने पर्वतों को काट कर मैदान कर डाला,
नदी संकेत पर जिनके सिमट कर गति बदलती है।
सुबह से शाम तक खट कर पुरुष जो लौटते घर को,
अभी भी वीरता-साहस लिये, गौरव भरे मन में,
प्रिया से भी नहीं कहते कि मेरी देह दुखती है।
(स्वप्न और सत्य)

नीम के पत्ते का नामकरण बड़ा अस्वाभाविक सा प्रतीत होता है, क्योंकि आमतौर से इन्हें पत्ते नहीं 'पत्तियां' कहा जाता है। यद्यपि मुखपृष्ठ और पुस्तकों से कहीं ज्यादा प्रभावोत्पादक है, परन्तु मुद्रण की निगाह से इसे सुन्दर प्रकाशन नहीं कहा जायगा। इसकी सभी कविताएं ओजपूर्ण है, इसलिए भाषा की क्लिष्टता खटकती नहीं। 'मैंने कहा, लोग यहां तब भी हैं मरते' स्वयं में इतना बड़ा व्यंग्य है जिसकी कोई सीमा नहीं। वक्त के साथ परिभाषाएं बदल जाती हैं लेकिन कुछ बातें शायद हमेशा के लिए अकाट्य रहेंगी, जैसे :

रोटी उसकी, जिसका अनाज, जिसकी जमीन, जिसका श्रम,
है कौन जगत में, जो स्वतन्त्र जनसत्ता का अवरोध करे?
रह सकता सत्तारूढ़ कौन, जनता जब उस पर क्रोध करे?
आजादी केवल नहीं आप अपनी सरकार बनाना भी,
आजादी है उसके विरुद्ध खुलकर विद्रोह मचाना भी।
(रोटी और स्वाधीनता)

हम कहते हैं, आदमी तभी सीधा होगा,
जब ऊंचाई पर पहुंच स्वयं वह जागेगा;
यों, सदी दो सदी तक खूंटे से बांध रखो
जंजीरें ढीली हुईं कि वह फिर भागेगा?
(व्यष्टि)

दिल्ली में उपरोक्त कविता संग्रहों की तरह, दिल्ली को छोड़कर अन्य विषयों पर कविताएं नहीं हैं। ये चारों कविताएं सन् ३३ से ५४ के बीच लिखी गयी थीं। पहली कविता नव भारत की राजधानी नई दिल्ली से संबंधित है, दूसरी में दिल्ली और मास्को का वर्णन है, तीसरी में दिल्ली की कुरूपता का चित्रण किया गया है और चौथी में भारत के रेशमी नगर दिल्ली और त्रसित भारत की बड़ी ही मार्मिक तुलना है। वास्तव में, इस लघुतम कविता संग्रह को पढ़कर दिल्ली अपने असली रूप में उभर आती है।

आर्थिक-समाचार-संकलन

भारतीय

जीवन बीमा निगम की प्रगति

भारतीय जीवन बीमा निगम ने १ सितम्बर१९५६ से २४ जून १९५७ तक १ अरब १७ करोड़ २४ लाख रुपये के बीमे किये। इसके बाद की जानकारी अभी ज्ञात नहीं है। किस क्षेत्र में कितनी रकम के बीमे किये गये, इसके आंकड़े इस प्रकार हैं :

क्षेत्र	बीमों की रकम
उत्तरी	१६ करोड़ ९८ लाख रु०
पूर्वी	२२ करोड़ ६८ लाख रु०
केन्द्रीय	१८ करोड़ २६ लाख रु०
दक्षिणी	३२ करोड़ ४१ लाख रु०
पश्चिमी	२६ करोड़ ९१ लाख रु०

सम्पदा शुल्क की वसूली

१९५६-५७ में विभिन्न राज्यों से सम्पदा-शुल्क के रूप में २,१०,७५,१३५ रुपये की वसूली की गई। १९५७-५८ की पहली तिमाही में इस मद में २२,३१,५०५ रुपये वसूल किये गये।

राज्यों के अनुसार सम्पदा-शुल्क की वसूली इस प्रकार हुई :

राज्य	संग्रह	
	१९५६–५७ (रुपयों में)	१९५७–५८ (३० जून १९५७ तक)
आंध्र प्रदेश	५,०१,४५९	२,८१,७६४
असम	१,२४,०००	१,०००
बिहार	१,५५,०००	४८,६९५
बम्बई	१,०७,९०,६५३	७,७६,८०५
केरल	८४,०००	८२,१४२
मध्य प्रदेश	१,२६,१९०	९,०००
मद्रास	३०,२१,१२१	४,८१,०००
मैसूर	११,९३,२७४	६८,२८०
उड़ीसा	८,०००	—
पंजाब	१,१५,५३७	२३,३०६
राजस्थान	३,२६,२४५	१३,१०८
उत्तर प्रदेश	५,७९,०००	३०,०००
प० बंगाल	३२,२६,७५६	३,५३,०००
जम्मू और कश्मीर	—	—
संघीय राज्यक्षेत्र		
दिल्ली	८,०८,६८२	६३,४०५
हिमाचल प्रदेश	१५,२१८	—
मणिपुर	—	—
त्रिपुरा	—	—
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	—	—
लक्ष द्वीप, मिनिकाय व अमीन द्वीप	—	—
जोड़	२,१०,७५,१३५	२२,३१,५०५

१९५६-५७ में शुल्क लगाने योग्य ४,३०३ और शुल्क न लगाने योग्य ५,७७१ मामले तथा १९५७-५८ की पहली तिमाही में शुल्क लगने योग्य २,५०३ और शुल्क न लगने योग्य २,१८९ मामले दर्ज किये गये।

चने के उत्पादन में वृद्धि

केन्द्रीय कृषि मंत्रालय के अर्थ तथा अंक-संकलन निदेशालय के अनुसार, १९५६-५७ के दूसरे अखिल भारतीय प्राक्कलन में चने की खेती का क्षेत्रफल २,३९,८०,००० एकड़ और उत्पादन ५९,३०,००० टन बताया गया है। १९५५-५६ के प्राक्कलन में क्षेत्रफल २,४१,५७,००० एकड़ और उत्पादन

५३,३१,००० टन था। इस प्रकार पिछले वर्ष की अपेक्षा चने की खेती का क्षेत्रफल, १,७७,००० एकड़ अर्थात् ०.७ प्रतिशत, कम और उत्पादन ६९,९०,००० टन अर्थात् ११.२ प्रतिशत अधिक रहा।

क्षेत्रफल में कमी मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, पंजाब, पश्चिमी बंगाल और बम्बई में हुई। इसका कारण बुवाई के समय मौसम का प्रतिकूल होना बताया जाता है। राजस्थान, मध्य प्रदेश और मद्रास में क्षेत्रफल में वृद्धि हुई।

क्षेत्रफल कम होने पर भी इस वर्ष चने का उत्पादन बिहार को छोड़ कर अन्य सभी चना उत्पादक राज्यों में बढ़ा। मुख्य रूप से वृद्धि पंजाब, राजस्थान मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में हुई। इसका कारण फसल की बढ़वार के समय मौसम का अच्छा होना बताया जाता है।

सरकारी आमदनी के कुछ साधन

१९५५-५६ में भारत सरकार का कुल कर-राजस्व (आय कर और सम्पदा शुल्क में राज्यों का भाग छोड़कर) ४४८ करोड़ रुपये रहा। १९५५-५६ अंतिम वर्ष है जिसके पूरे आंकड़े उपलब्ध हैं। १९५६-५७ के संशोधिन अनुमान के अनुसार, कुल कर-राजस्व ४९५ करोड़ रुपये और १९५७-५८ के बजट अनुमान के अनुसार कुल कर-राजस्व ५१५ करोड़ रुपये होगा।

१९५५-५६ में भारत सरकार का कर-राजस्व उस वर्ष के कुल राजस्व का ८५ प्रतिशत था। १९३८-३९में कर-राजस्व कुल राजस्व का ८९ प्रतिशत, १९४४-४५ में ७६ प्रतिशत और १९५०-५१ में ८७ प्रतिशत था।

रेल, डाक, तार, आदि सरकारी संगठनों से मिला शुद्ध अंशदान गैर कर-राजस्व का महत्त्वपूर्ण अंग रहा। १९३८-३९ में यह अंशदान १.८ करोड़ रुपये, १९४४-४५ में ४२.२ करोड़ रुपये, १९५०-५१ में २३ करोड़ रुपये और १९५५-५६ में २६.७ करोड़ रुपये रहा।

१९५५-५६ के कुल ४२८ करोड़ रुपये के कर-राजस्व का लगभग ४० प्रतिशत (१६७ करोड़ रुपये) तट करों (आयात और निर्यात) से, लगभग एक-तिहाई भाग (१४५ करोड़ रुपये) केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों से और एक-चौथाई से कुछ अधिक (१३१ करोड़ रुपये) आय कर और निगम कर से मिला। इन तीनों स्रोतों से १९५५-५६ के कुल कर राजस्व का ९९.४ प्रतिशत भाग मिला।

१९४४-४५ को छोड़ पिछले सब वर्षों में (बजट वर्ष १९३८-३९ से १९५७-५८ तक) तट-कर, केन्द्रीय कर-राजस्व का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत रहे। केवल १९४४-४५ में जब महायुद्ध चल रहा था, कर राजस्व का दो-तिहाई भाग आयकर और निगम कर से मिला। १९५७-५८ के बजट वर्ष में कुल कर-राजस्व का ४१ प्रतिशत केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों से मिलने का अनुमान है।

केन्द्रीय उत्पादन-शुल्कों से आय बराबर बढ़ रही है। १९३८-३९ में केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों से केवल ९ करोड़ रुपये (कुल कर-राजस्व का १२ प्रतिशत) की आय थी जो बढ़ कर १९४४-४५ में ३८ करोड़ रुपये (१५ प्रतिशत), १९५०-५१ में ६८ करोड़ रुपये (१९ प्रतिशत) और १९५५-५६ में १४५ करोड़ रुपये (३४ प्रतिशत) हो गयी।

आय-कर (निगम-कर सहित) से होने वाली आय सात गुना बढ़ी। १९३८-३९ में इससे १६ करोड़ रुपये की आय हुई। १९५५-५६ में यह आय बढ़ कर ११३ करोड़ रुपये हो गई। १९५७-५८ के बजट में आय-कर से १३७ करोड़ रुपये (कुल राजस्व का २७ प्रतिशत) आय होने का अनुमान है।

दिल्ली की भूमि-संरक्षण तथा वनों संबंधी योजनाएं

प्रथम पंचवर्षीय योजना में दिल्ली में वन लगाने पर ८० हजार रुपये खर्च किये गये। प्रथम योजना के आरम्भ होने से पहले दिल्ली में नियन्त्रित वनों का क्षेत्रफल केवल ५३६ एकड़ था, जबकि योजना के अन्त में यह बढ़ कर २,७६४ एकड़ हो गया। इसी समय में वन सहकारी समितियां भी बढ़ कर सात हो गयीं। मैदान गढ़ी, तुगलकाबाद, सुल्तानपुर, डबास और मुखमेलपुर गांवों में बेकार पड़ी भूमि के लगभग एक हजार एकड़ क्षेत्रफल पर जंगल लगाये गये। इस समय दिल्ली क्षेत्र में केवल ४,७६४ एकड़ में वन हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना में वनों तथा भूमि संरक्षण संबंधी पांच महत्त्वपूर्ण योजनायें बनाई गई हैं। इन पर ११ लाख ४० हजार रुपया खर्च होने का अनुमान है।

तीसरी योजना के अन्तर्गत यमुना के किनारों के साथ-

साथ पेड़ लगाये जायेंगे। इस कार्य के लिए एक लाख ९० हजार रुपये रखे गये हैं तथा कुल २ हजार एकड़ भूमि पर पौधे लगाने का लक्ष्य रखा गया है। इस क्षेत्र में शीशम, खैर, सेमल, जामुन और शहतूत के पेड़ लगाये जायेंगे। शहतूत के पेड़ों से खेलों का सामान बनाने के लिए नरम लकड़ी भी प्राप्त हो सकेगी।

हिंदी प्रचार के लिए सरकारी सहायता

अहिन्दी भाषी राज्यों की सरकारों को अपने-अपने क्षेत्र में हिन्दी का प्रचार करने में सहायता देने के लिए १९५७-५८ के बजट में ५ लाख रुपये रखा गया है। हिन्दी का प्रचार और विकास करने वाले संगठनों को सहायता ७·६१ लाख रुपये के एक पृथक कोष से दी जाती है। इस धन का वितरण संगठनों या राज्यों के अनुसार नहीं किया जाता।

बाजरे के उत्पादन में वृद्धि

१९५६-५७ में बाजरे की उपज में ३ प्रतिशत अर्थात् ७३,००० टन की वृद्धि हुई है। चालू वर्ष के अखिल भारतीय प्राक्कलन में बाजरे की खेती का क्षेत्रफल १,२२,०९,००० एकड़ और उत्पादन २०,१०,००० टन आंका गया। पिछले साल यह संख्या क्रमशः १,२७,१३,००० एकड़ और १९,३७,०००टन आंकी गयी थी। इस प्रकार, बाजरे की खेती में ४ प्रतिशत, अर्थात् ५,०४,००० एकड़ की कमी हुई।

क्षेत्रफल में कमी मुख्यतः मध्य प्रदेश, बिहार, और मैसूर में और कुछ कमी बम्बई, आन्ध्र प्रदेश और राजस्थान में हुई। उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, और मद्रास में बाजरे के उत्पादन में वृद्धि हुई।

मद्रास राज्य में खनिज लोहा तथा अन्य खनिज

मद्रास राज्य के हरूर तालुक (जिला सलेम) में ४ करोड़ ७५ लाख टन खनिज लोहा होने का अनुमान है। भारतीय भूगर्भ सर्वे ने मद्रास राज्य के उमरेर तहसील (जिला नागपुर) में काफी मात्रा में खनिज होने की सूचना दी हैं। वे सभी खनिज अप्रैल, १९५६ के औद्योगिक नीति प्रस्ताव की अनुसूची 'क' में शामिल हैं। अतः उन्हें खोदने के बारे में अभी राज्य सरकार से बात हो रही है।

ज्वार के उत्पादन में वृद्धि

कृषि मंत्रालय के अर्थ एवं अंक संकलन निदेशालय ने प्रकट किया है कि १९५६-५७ के अ. भा. प्राक्कलन में ज्वार और बाजरे की खेती का क्षेत्रफल ६,८८,५६,००० एकड़ और उत्पादन १,०३,५३,००० टन आंका गया है। १९५५-५६ में यह क्रमशः ७,०९,२८,००० एकड़ और ९९,८१,००० टन आंका गया था। इस प्रकार, पिछले साल की अपेक्षा इस साल क्षेत्रफल में २.९ प्रतिशत की कमी और उत्पादन में ३.७ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

ज्वार के क्षेत्रफल में कमी मुख्यतः राजस्थान, मध्यप्रदेश, मैसूर, आन्ध्र प्रदेश और बम्बई में हुई। बाजरे के क्षेत्रफल में मुख्यतः बम्बई, पंजाब, और राजस्थान में कमी हुई।

ज्वार की खेती के क्षेत्रफल में कमी होने के बावजूद उसका उत्पादन बढ़ा है। यह वृद्धि मुख्यतः बम्बई, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में हुई। बाजरे का उत्पादन मुख्यतः राजस्थान, पंजाब और उत्तर प्रदेश में गिरा है।

बिजली उत्पादन में वृद्धि

१९५५ में देश में बिजली का उत्पादन १९५१ के उत्पादन से २,७३,४०,४८,००० किलोवाट घंटा बढ़ कर ८,५९,२४,५१,००० किलोवाट घंटा हो गया। यह सूचना केन्द्रीय जल-विद्युत आयोग (सिंचाई एवं विद्युत मंत्रालय) द्वारा प्रकाशित पुस्तिका में दी गई है। बिजली का इस्तेमाल करने वालों की संख्या १९५५ में बढ़ कर २५,०८,५८० हो गयी, जबकि १९५१ में १६,७७,८०५ थी। सिंचाई के लिए बिजली का इस्तेमाल करने वालों की संख्या १९५१ में २४,३९५ थी, जो १९५५ में बढ़ कर, ४६,६२६ हो गयी।

१९५५ में ५,००० से कम आबादी वाले ५,०१६ और ५,००० से अधिक आबादी वाले १,९६५ कस्बों में बिजली पहुँच चुकी थी। १९५१ में यह संख्या क्रमशः ३,०१९ और १,०३२ थी। १९५५ में भी बिजली उत्पादक कारखानों के राष्ट्रीयकरण का काम जारी रहा और विभिन्न राज्य-सरकारों ने नगरपालिकाओं के तीन तथा १४ निजी कारखानों को अपने हाथ में ले लिया।

विदेशी

ब्रिटेन से ऊनी कपड़े का निर्यात

ब्रिटेन को राष्ट्रीय ऊनी कपड़ा निर्यात कारपोरेशन अपने वार्षिक प्रतिवेदन में कहा है कि ऊन उद्योग, जिस कच्चे माल का निर्यात करता है, वह स्टर्लिंग क्षेत्र का है। परन्तु यह ब्रिटेन के किसी भी उद्योग के मुकाबले अधिक संख्या में उत्तर अमरीकी डालर अर्जित करता है। १९५६ के ऊनी कपड़ा निर्यात से १ लाख २ अरब ७० करोड़ ९० लाख डालर आय हुई थी, जबकि १९५५ में यही आय १ खरब ८ अरब ३ करोड़ डालर थी। ब्रिटेन इस समय अमरीका में खपत होने वाले ऊनी कपड़े का ४ प्रतिशत और कनाडा की खपत का ४० प्रतिशत भाग उपलब्ध करता है।

प्रतिवेदन में कहा गया है कि इस उद्योग के उत्पादन विभाग से होने वाली आय उसकी सफलता का निर्णय करने का विश्वस्त साधन नहीं है। इसका कारण यह है कि विश्व भर में ऊन के भाव घटने या बढ़ने से उत्पादन में कमी या वृद्धि होती रहती है। निर्यात की मात्रा को देखें तो ब्रिटेन से ऊनी लच्छों का निर्यात १९३८ में ३ करोड़ २५ लाख पौंड से बढ़ कर १९५६ में ८ करोड़ १५ लाख पौंड हो गया है, जबकि ऊनी धागे का निर्यात इस अवधि में ३ करोड़ ४७ लाख पौंड से घट कर २ करोड़ ८९ लाख पौंड रह गया है और ऊनी टिश्यू का निर्यात ९ करोड़ ५८ लाख पौंड से बढ़ कर १० करोड़ ९९ लाख वर्ग गज हो गया है।

भारत का विदेशी व्यापार

वाणिज्य सूचना तथा अंक विभाग में उपलब्ध जानकारी के अनुसार अप्रैल १९५७ में निजी तथा सरकारी रूप में जल, स्थल और हवाई मार्ग से विदेशी व्यापार के कच्चे आंकड़े इस प्रकार हैं:—व्यापारी माल—इसमें भारत से होकर पाकिस्तान तथा स्थल से सम्बद्ध अन्य देशों—नेपाल, तिब्बत, सिक्किम और भूटान—को आने-जाने वाला माल शामिल नहीं है। निर्यात—४७ करोड़ ३३ लाख रुपये; पुनर्निर्यात : ५२ लाख रुपये; आयात : ९० करोड़ ३५ लाख रुपये; कुल व्यापार : १ अरब ३८ करोड़ २० लाख रुपये। कोष : नोटों का निर्यात : (पुनर्निर्यात सहित) : १८ लाख रुपये; चालू सिक्कों (सोने के सिक्कों के अलावा) का निर्यात : १ लाख रुपये। सोने का आयात : २ लाख रुपये; नोटों का आयात : ३ करोड़ ३६ लाख रुपये। व्यापार तुला:—आयात के उक्त आंकड़ों में वह सरकारी सामान शामिल नहीं है, जिसका हिसाब होना बाकी है। इसे ध्यान में रख कर यदि आयात-निर्यात की तुलना की जाये तो व्यापारी माल और सोने का कुल निर्यात आयात से ४२ करोड़ ५२ लाख रुपये कम रहा।

भारत के व्यापारिक जहाज

स्वतंत्रता के बाद अपने समुद्री बेड़े को मजबूत बनाने के के लिए भारत सरकार समुद्री व्यापार भारतीय जहाजों द्वारा करा रही है। सरकार ने विशाखापतनम के जहाजी कारखाने का विकास किया है और जहाज कम्पनियों को जहाज खरीदने के लिए कर्ज दिया है।

युद्धपूर्व काल में भारतीय जहाजों की समाई केवल १। लाख टन थी। वह वर्तमान काल में बढ़ कर ५,२०,००० टन हो गयी है। लड़ाई से पहले भारतीय जहाज भारत, बर्मा तथा श्रीलंका के समुद्र तट से आगे नहीं बढ़ते थे। अब भारत अपने जहाजों द्वारा कई यूरोपीय देशों, मलाया, पूर्व एशिया, और जापान तथा पूर्व अफ्रीका के साथ व्यापार कर रहा है। हमारा लक्ष्य २० लाख टन के जहाज बनाने का है। इससे समस्त तटवर्ती व्यापार और ५० प्रतिशत समुद्रपारीय व्यापार भारतीय जहाजों द्वारा हो सकेगा। जहाजरानी के विकास के साथ प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता भी बढ़ती जा रही है।

एक विशेषज्ञ समिति की सलाह से भारत सरकार ने १९४९ में प्रशिक्षण पोत 'डफरिन' पर प्रशिक्षण की व्यवस्था की और इंजीनियरी की शिक्षा के लिए एक और संस्थान खोला। नौचालन और इंजीनियरिंग के प्रशिक्षण के लिए एक कालेज बम्बई में १९४९ में खोला गया। दिसम्बर १९५६ तक ३,५०० व्यापारिक बेड़ा अधिकारी इस कालेज से लाभ उठा चुके हैं। भारत सबसे अधिक समुद्री श्रमिक तैयार करता है तथा भारतीय बन्दरगाहों पर ७५ प्रतिशत भारतीय मल्लाह अन्य देशों के जहाजों पर काम करते हैं। वैसे तो भारतीय बन्दरगाहों पर सभी देशों के जहाज आते जाते हैं, लेकिन सरकारी माल की ढुलाई के लिए भारतीय जहाजों को प्रमुखता दी जाती है।

राष्ट्रवाणी

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणें, की साहित्यिक,
सांस्कृतिक एवं कलात्मक मासिक पत्रिका

सम्पादक
गो० प० नेने

सालाना चन्दा-४ रु० : एक अंक का मूल्य-५० नये पैसे

सम्पादन
ई--२ सहकार निवास
गोखले रोड (दक्षिण)
दादर, बम्बई २८

व्यवस्था
महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा
पो० बा० नं० ५६०
पुणें--२

वार्षिक चंदा ६ रु० 'राष्ट्रभारती' नमूने की प्रति १० आना

--:संपादक:--

मोहनलाल भट्ट : : हृषीकेश शर्मा

यह राजभाषा हिन्दी और भारत की समस्त अन्तर-प्रान्तीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली एक ऊँचे दर्जे की, सब से सस्ती, सुन्दर, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं मनोरंजक मासिक पत्रिका है जो हर महीने की पहली तारीख को बराबर पाठकों के हाथ में पहुँचती है।

'राष्ट्रभारती' उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम भारत के परस्पर साहित्यिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का अच्छा माध्यम है। सच मानिए, 'राष्ट्रभारती' के किसी मास के अंक को हाथ में उठा लीजिए–आप उसे पूरा किये बिना नहीं छोड़ेंगे। आप प्रतिमास नियमित रूप से 'राष्ट्रभारती' जरूर पढ़ना चाहेंगे।

"राष्ट्रभारती"
हिन्दीनगर, वर्धा

भारत सरकार के वाणिज्य और उद्योग मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित

उद्योग व्यापार पत्रिका
का
दशमिक प्रणाली विशेषांक पढ़िये

१ अप्रैल १९५७ से देश में दशमिक प्रणाली के नये सिक्के चल रहे हैं। दशमिक प्रणाली क्या है? नये सिक्कों से क्या लाभ होंगे? भारतीय सिक्कों के विकास का क्या इतिहास है? पैमाने तथा बाट भी दशमिक प्रणाली के होने से क्या लाभ होंगे? इत्यादि विषयों पर रोचक सामग्री 'दशमिक प्रणाली विशेषांक' में दी गई है।

इसके अतिरिक्त, वेतन, मजदूरी, किराया और व्याज का नये सिक्कों में तुरन्त हिसाब बताने वाला
रेडी रेकनर
भी दिया गया है। विशेषांक सब प्रकार से उपयोगी और संग्रहणीय होगा। बीसियों चित्रों से सुसज्जित, पृष्ठ संख्या १०० से ऊपर, मूल्य फिर भी केवल आठ आने।

आज ही खरीदिये

अपने यहां के एजेंट से मांगिये। न मिले तो हमें आठ आने के पोस्टल आर्डर के साथ पत्र लिखिये।

विनीत :
सम्पादक, 'उद्योग व्यापार पत्रिका,'
वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय,
भारत सरकार, नई दिल्ली।

डालमिया उत्पादन
प्रयोग-सिद्ध एवं उच्च-कोटि के

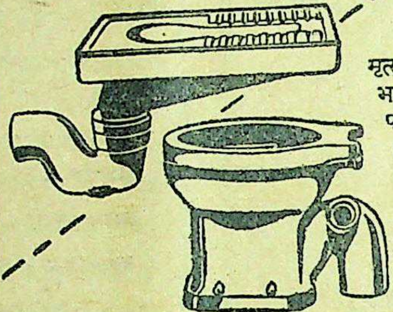

मृत्सा-आरोग्यपात्र (Porcelain sanitary ware) भारतीय और योरोपीय शौच कुंड (closets) धावन पात्री (Wash basins) मूत्रकुंड (Urinals), इत्यादि विसवाहक (insulations) एवं क्षाररोधक खर्परी (Tiles) भी मिल सकती है।

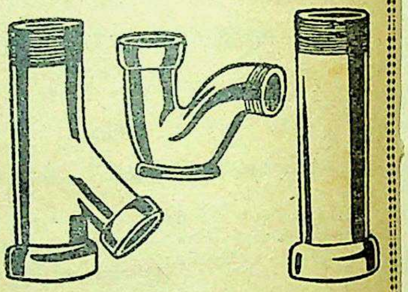

कश्मनाल (Stone ware Pipes) पूर्ण रूपेण लवण काचित (Salt Glazed) क्षार रोधक (Acid Resistant) एवं प्रमाप विशिष्ट (Tested of standard specification) जलोत्सारण (Drainage) के लिये

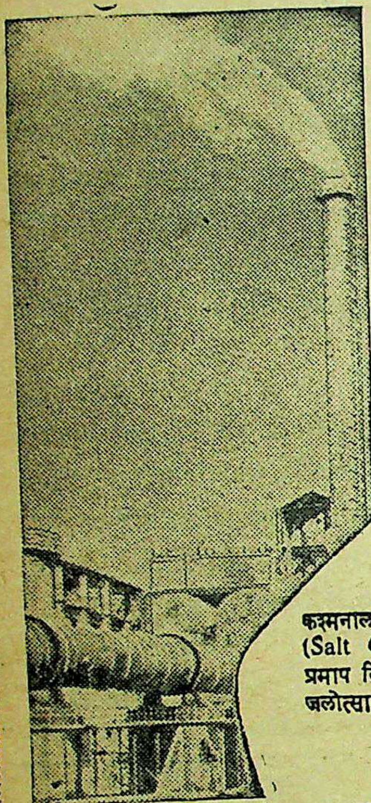

डालमियापुरम् मिल की सिमेंट भट्ठी का एक दृश्य

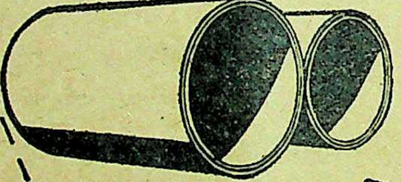

वज्रचूर्ण-आयसंघा नाल (R. C. C. Spun pipes) सिंचाई, पुलियाओं (Culverst) जलप्रदाय और जलोत्सारण (Cupply and drainage) के लिये सभी श्रेणियों और मापों में प्राप्य।

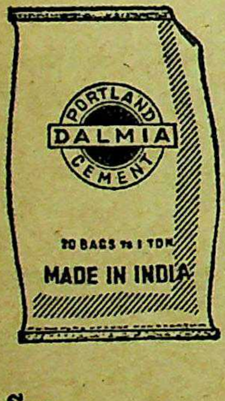

पोर्टलैण्ड सिमेंट सामान्य निर्माण के लिये

उष्मसह (Refractories) अग्नीष्ट कार्ये (Fire Bricks) संमृद (Mortors) तथा समस्त ताप-सीमाओं और आकृतियों में प्राप्य विसंवाहक ईस्ट कायें (Insulating Blocks) सभी औद्योगिक आवश्यकताओं के लिये

A.I.A.B. D/C H2

डालमिया सिमेंट [भारत] लिमिटेड
डाकघर – डालमियापुरम्
जिला – तिरूचिरापल्ली, दक्षिण भारत

कांग्रेस प्रकाशन

"आर्थिक समीक्षा" : प्रत्येक मास की ७ वीं तथा २२ वीं तारीख को प्रकाशित होती है। वार्षिक मूल्य पांच रु० भारत में तथा सात रु० विदेश में।

कांग्रेस पत्रिका---प्रत्येक मास की १० तारीख को प्रकाशित होती है। (वार्षिक चन्दा : भारत में चार रुपये, तथा विदेश में छः रुपये)

	मूल्य : एक प्रति	डाक व्यय
कांग्रेस संविधान	४ आना	१ आना
संविधान की धाराओं के अंतर्गत नियम	४ ,,	१ ,,
कांग्रेस ग्राम पंचायत कमेटी की रिपोर्ट (जुलाई १९५४)	१ रु. ८ ,,	४ ,,
सिंचाई और बिजली	,,	१ ,,
गांव के उद्योग-धंधे	,,	१ ,,
सामुदायिक योजना	४ ,,	१ ,,
अन्न समस्या का हल	४ ,,	१ ,,
समाजवादी अर्थशास्त्र की ओर (१९५५)	१ रु. ८ ,,	४ ,,
कांग्रेस रचनात्मक कार्य समिति की रिपोर्ट (१९५५)	८ ,,	३ ,,
आर्थिक-समीक्षा (स्वाधीनता विशेषांक), १५ अगस्त, १९५५	१२ ,,	४ ,,
रचनात्मक कार्य (कांग्रेसजन के लिए सूचना पुस्तक) १९५५	१ रु. ,,	४ ,,
सेवादल मैनुअल नं० १	६ ,,	२ ,,
सेवादल मैनुअल नं० ३	६ ,,	२ ,,
,, ,, ४	८ ,,	२ ,,
,, ,, ५	१२ ,,	२ ,,
,, ,, ७	१२ ,,	२ ,,
आर्थिक-समीक्षा (इंदौर कांग्रेस अधिवेशन विशेषांक) जनवरी १९५७	१ रु. ८ ,,	८ ,,
नवीन क्रांति की ओर (जवाहरलाल नेहरू)	४ ,,	१ ,,
युवक और राष्ट्रीय नवनिर्माण (उ. न. ढेबर)	२ ,,	१ ,,
शिक्षा का पुनर्निर्माण (जवाहरलाल नेहरू)	२ ,,	१ ,,
अच्छे बनो महान् बनो (गोविन्द बल्लभ पंत)	२ ,,	१ ,,
महात्मा बुद्ध का संदेश	३ ,,	१ ,,
रचनात्मक क्रांति की ओर	२ ,,	१ ,,
रचनात्मक कार्यकर्त्ता सम्मेलन (फरवरी '५६)	४ ,,	१ ,,
गीतावली भाग १	४ ,,	१ ,,
गीतावली भाग २	४ ,,	१ ,,
युवक कांग्रेस सूचना पुस्तक	१२ ,,	२ ,,
सर्व धर्म समभाव (रघुनाथसिंह)	१२ ,,	२ ,,

आज ही लिखिये :—

प्रकाशन विभाग
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी,
७, जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली।

रजिस्टर्ड नं० डी० ४७५

५.४१ प्रतिशत आय-कर से मुक्त

नये १२-वर्षीय
नेशनल प्लान
सेविंग्ज़ सर्टीफ़िकेट
खरीदिये
और ५.४१ प्रतिशत
आय-कर से मुक्त
ब्याज प्राप्त कीजिये ।

प्रति १०० रु०
जो आप इन सर्टीफ़िकेटों में
लगाते हैं, १२ वर्ष की
अवधि में १६५ रु० हो जाते हैं।
ये सर्टिफ़िकेट डाकघरों से
प्राप्य हैं ।

आपकी बचतों से अब अधिक आय

१०-वर्षीय ट्रेजरी
सेविंग डिपाजिट
सर्टीफ़िकेट्स

समय पूर्ण होने पर आय-कर
मुक्त ४% ब्याज मिलता है।
आपको ब्याज प्रति वर्ष
दिया जाता है

पोस्ट आफ़िस
सेविंग्ज़ बैंक
डिपाजिट्स

ब्याज की दर
प्रति वर्ष २½% है।

नेशनल सेविंग्ज़ आर्गनाइज़ेशन

DA—57/82

अ० भा० कांग्रेस कमेटी के लिए श्री बालकृष्णन द्वारा प्रकाशित और नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित

प्रधान सम्पादक : श्रीमन्नारायण
सम्पादक : हर्षदेव मालवीय

कर्त्तव्यम् सुसमीक्षितम्

आर्थिक-समीक्ष

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आर्थिक-राजनीतिक अनुसन्धान विभाग का पाक्षिक पत्र

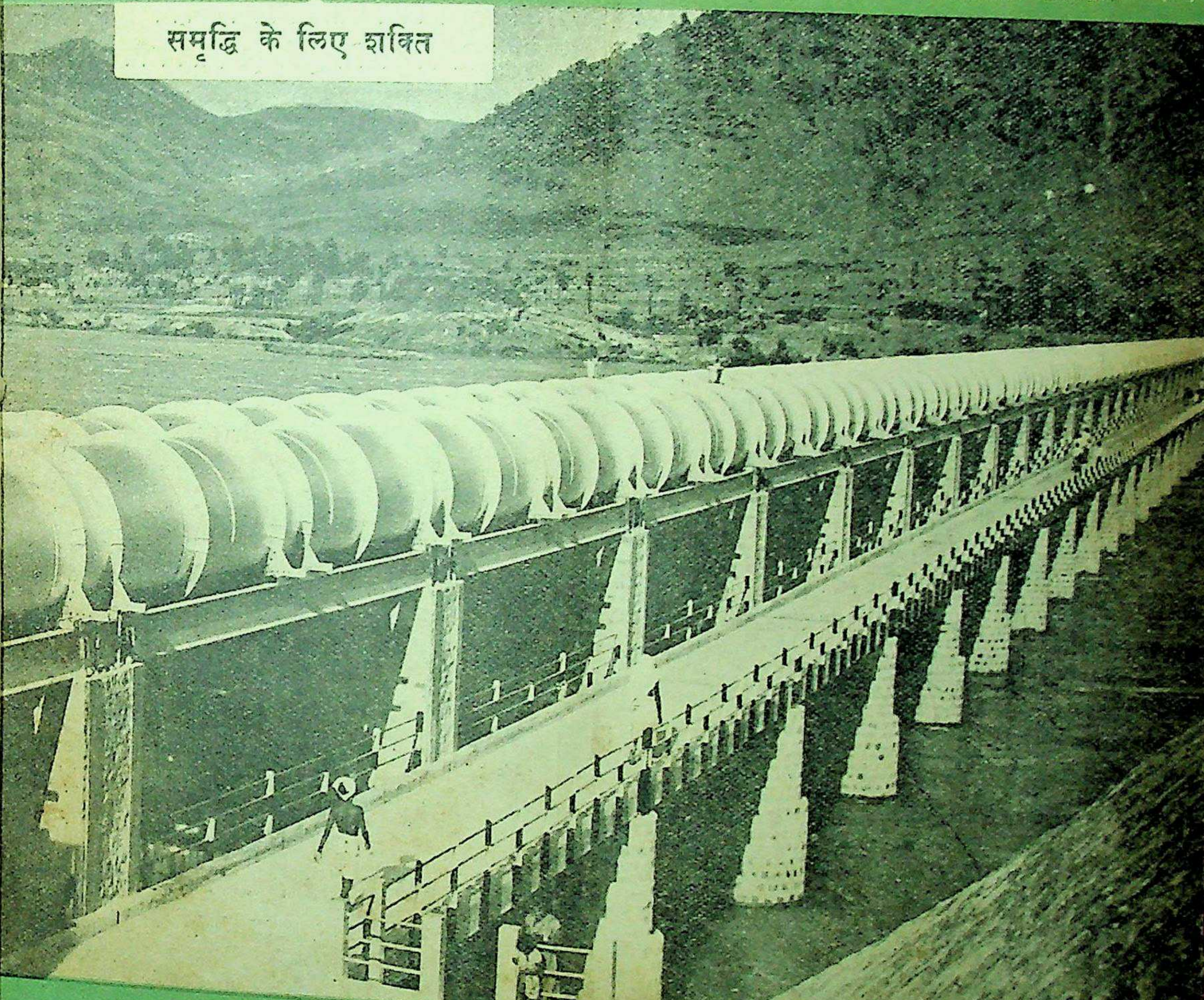

समृद्धि के लिए शक्ति

र्षिक मूल्य
५ रुपये
क प्रति
नये पैसे

अन्दर देखिए :—

- ★ भारत प्रगति के पथ पर
- ★ संगठन और विचारधारा
- ★ भारत में भूमि-सुधारों की प्रगति

विशेष—अ० भा० कां० कमेटी के अधिवेशन में आर्थिक समस्याओं पर वाद-विवाद की रिपोर्ट

नयी दिल्ली
२२ सितम्बर १९५७
वर्ष ६, संख्या २३
पूर्णांक १३७

धर्म की विजय

"अब मैं उसी विजय को मुख्य विजय मानता हूं, जो धर्म द्वारा प्राप्त की जाय। यही धर्म-विजय मैंने देश में तथा देश के सीमा प्रान्तों पर स्थित यवन-राज्यों एवं दक्षिण में स्थित चोल, पाण्ड्य तथा ताम्रपर्णी राज्यों पर प्राप्त की है। मेरे पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र इस बात को सुन लें कि वे भी तलवार द्वारा किसी नवीन राज्य को प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करें। वे उसी विजय की कामना करें, जो धर्म-विजय हो। धर्म द्वारा प्राप्त की हुई विजय में ही दृढ़ प्रीति की उत्पत्ति होती है। इसी विजय द्वारा देशों के परस्पर सम्बन्ध प्रेम-पूर्ण एवं सुदृढ़ हो जाते हैं।"

—सम्राट अशोक

(शिला लेख, संख्या १३)

विषय-सूची

पृष्ठ

१. भारत प्रगति के पथ पर **जवाहरलाल नेहरू** ३

२. संगठन और विचारधारा **श्रीमन्नारायण** ११

३. संक्षिप्त टिप्पणियां : १३
  (क) पंजाब में हिन्दी आन्दोलन
  (ख) खेर कमीशन की रिपोर्ट
  (ग) अंग्रेजी भाषा का स्थान
  (घ) अखिल भारतीय सेवाओं के लिये परीक्षा का माध्यम
  (ङ) श्री सन्त बाल के रचनात्मक कार्य
  श्री. ना.

४. भारत में भूमि-सुधारों की प्रगति **गुलजारीलाल नंदा** १६

५. हमारा खाद्यान्न मोर्चा **अजित प्रसाद जैन** २९

६. अ. भा. कां. कमेटी के अधिवेशन में अनौपचारिक वाद-विवाद की रिपोर्ट : भारत की आर्थिक समस्याएं ३३

पृष्ठ

७. अ. भा. कां. कमेटी के अधिवेशन के अनुभव : आर्थिक नीति सम्बन्धी वाद-विवाद **सुनील गुहा** ४४

८. जिल गुरुदासपुर (पंजाब) में भूमिहीन काश्तकारों की समस्या **भागराम शर्मा** ४८

९. आर्थिक-समाचार-संकलन :
  (क) भारतीय ५२
  (ख) विदेशी ५४

१०. तालिका : विभिन्न राज्यों में लगान का नियमन ५५

११. **कवर पृष्ठों पर :**
  (क) समृद्धि के लिये शक्ति : मेट्टूर नहर-प्रणाली, मद्रास राज्य, के विद्युत मार्ग का एक दृश्य कवर एक
  (ख) धर्म की विजय **सम्राट अशोक** कवर दो

आर्थिक-समीक्षा

वर्ष ६, संख्या २३] नयी दिल्ली : रविवार, २२ सितम्बर १९५७ [पूर्णाङ्क १३७

श्री जवाहरलाल नेहरू

भारत प्रगति के पथ पर

मेरा ख्याल है कि हमारी दिलचस्पी तीन चीजों में है : (१) विस्तृत नीतियां जो मोटे तौर पर निश्चित की जा चुकी हैं, या जिन्हें निश्चित होना चाहिए; (२) इन नीतियों का लागू होना; और (३) इन सबसे अलग कुछ चीज और, यानी कांग्रेसजन को व्यक्तिगत रूप से क्या करना चाहिए।

भूतकाल में हमारी आजादी की लड़ाई की वजह से अक्सर कांग्रेस या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सभी प्रस्तावों का ताल्लुक इस बात से होता था कि कांग्रेसजनों को क्या करना चाहिए। विस्तृत नीति थी स्वराज्य प्राप्त करना। यह एक मोटी बात थी। उसमें इधर-उधर कहीं-कहीं फर्क भी पड़ सकते थे। लेकिन भूतकाल में हमारे सभी प्रस्तावों और सोचने-विचारने का ताल्लुक इस बात से होता था कि कांग्रेसजनों को क्या करना चाहिए—व्यक्तिगत तौर पर कांग्रेसजन के कर्त्तव्य क्या होने चाहिए। विस्तृत नीति मंजूर कर ली जाती थी — कभी तो वह सत्याग्रह होती थी और कभी कुछ और चीज। मैं देखता हूं कि इस समय हम ज्यादातर विस्तृत नीतियों, या उन आलोचनाओं की चिन्ता करते हैं, जिनका ताल्लुक इस बात से होता है कि ये नीतियां किस प्रकार लागू की गई हैं या नहीं लागू की गई हैं; और ऐसा करना सही भी है। हम इस बात की इतनी पर्वाह नहीं करते कि हमें इनके बारे में क्या करना है। एक मामूली सी मिसाल लीजिये। हम भ्रष्टाचार की बात करते हैं और इसमें शक भी नहीं कि भ्रष्टाचार, खास तौर से निचले स्तर पर, कुछ हद तक मौजूद है और उससे हमें लड़ना है। मुझे ऐसा लगता है कि अगर काफी सारे लोग, यानी कांग्रेसजन और कांग्रेस महिलायें इसका खात्मा करने पर तुल पड़ें तो उससे बहुत फर्क पड़ सकता है। मैं यह नहीं कहता कि वे खुद ऐसा कर सकते हैं, लेकिन इतना जरूर है कि उससे काफी फर्क पड़ सकता है। दरअसल, हम जो भी काम हाथ में लें, सिर्फ इस बात से बहुत ज्यादा असर पड़ जाता है कि एक बड़ी तादाद में संगठित मानव प्राणी कोई काम पूरा करना चाहते हैं, या किसी गलत बात को दबाना चाहते हैं। क्या हम सचमुच ऐसा करते हैं? क्या हम मौजूदा मसलों का मुकाबला करने या मौजूदा गलत प्रवृत्तियों के दबाने के मामले में अपने निजी फर्जों के रूप में सोचते हैं? मैं इस बात की चर्चा इसलिये नहीं कर रहा हूं कि मेरे ख्याल से हमारे लिये ऐसा करना अहमियत रखता है। मेरे विचार से अगर हम इस काम पर तैयार हो जायं, तो भी उससे काफी प्रभाव पड़ता है। हम इसे अपना बुनियादी काम समझते हैं।

हमारी विस्तृत नीति

यह तो हुई उस खास मसले की चर्चा। पहली दो बातें हैं : विस्तृत नीतियां और उनका लागू करना। कह सकते हैं कि ये विस्तृत नीतियां पंचवर्षीय योजना में तय की जा चुकी हैं। स्वभावतः इनमें इधर-उधर थोड़ा-बहुत फर्क हो सकता है। मुश्किलें पैदा होती हैं और पंचवर्षीय योजनाओं में निर्धारित विस्तृत नीतियों के भीतर उनका मुकाबला करना है। आप में से काफी लोग योजना से वाकिफ हैं। आपने उसका काफी ज्यादा हिस्सा पढ़ा है। जहां तक मेरा ताल्लुक है, मैं यह सोचकर हैरत में रह जाता हूं कि यह योजना कितनी अक्लमन्दी के साथ तैयार की गई है। इन तीन वर्षों के तजुर्बों से मैं यह कह सकता हूं कि यह कितनी अच्छी और अक्लमन्दी से भरी योजना है।

में सलाह दूंगा कि आप योजना को पढ़िये। हमारे साधनों के बारे में, इस बारे में कि कहां हमारे साधन हमारे अनुमानों तक नहीं पहुंचते हैं, योजना को पढ़िये। दो साल बाद जो मुसीबतें पैदा हो सकती हैं, मसलन विदेशी विनिमय की मुसीबत, वगैरह के बारे में जानकारी हासिल करने के वास्ते योजना को पढ़िये और देखिये कि हम यह कमियां कैसे पूरी कर सकते हैं। देखिये कि मूल्यों के बारे में योजना बनाने वाले लोग क्या कहते हैं। योजना में मजबूती हो सकती है, लेकिन अगर मूल्यों में स्थिरता नहीं आती तो योजना चकनाचूर हो सकती है। मुझे ताज्जुब होता है, मैं हैरत में रह जाता हूं कि लोग उन विषयों के बारे में भी बहस-मुबाहिसा और विवाद उठाते हैं जिन पर योजना में विचार हुआ है और जिन्हें उनमें निश्चित किया जा चुका है। हम अभी भी बहस-मुबाहिसे करते जा रहे हैं और कभी-कभी उसके खिलाफ दलीलें भी देते हैं। यह सारी बातें हमारे सम्मिलित दिमाग, और कभी-कभी व्यक्तिगत दिमाग, की गहरी उलझनों को जाहिर करती हैं।

योजना की लोचशीलता

योजना कोई ऐसा पाक दस्तावेज नहीं है, जिसे छूना या तब्दील करना पाप है। जरूरत पड़ने पर हम उसे तब्दील कर सकते हैं। यह तो ठीक ही है। लेकिन हम किसी ऐसे प्रलेख को बदल नहीं सकते, जिस पर वर्षों तक चिन्तन-मनन हो चुका है; जिस पर किसी एक व्यक्ति ने नहीं,बल्कि बहुत सारे लोगों ने सोचा-विचारा है। इस पर हल्के तौर से विचार नहीं करना चाहिए। योजना के बारे में यह जो अस्पष्टता है, उसे साफ करना है। बेशक, योजना में इस बात का कोई पहले से अन्दाज़ा नहीं हो सकता था कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में क्या होने जा रहा है। मान लीजिये कि योजना के दौरान में कोई लड़ाई छिड़ जाय। हमारे सामने बहुत सी मुश्किलें हैं, जैसे विदेशी विनिमय की कठिनाई। तो, इन मुश्किलों की खास वजहें क्या हैं? दूसरे मुल्कों में और हमारे देश में भी, आर्थिक, वित्तीय और सैनिक क्षेत्र में बहुत सी बातें ऐसी हुई हैं जिन्हें हम न रोक सकते थे और न रोक सकते हैं। सच तो यह है कि पिछली लड़ाई के बाद से सारी दुनिया ही एक गहरे तनाव की हालत में पड़ी हुई है, जो तनाव कि अभी भी जारी है। हम भारत में मुद्रास्फीति की बात करते हैं। बेशक, यह प्रवृत्ति मौजूद है। दो बातों ने हम पर असर डाला है। हमने अन्दरूनी तौर पर अपनी जिम्मेदारियां—खाद्यान्न और सुरक्षा के मामले में—बढ़ा ली हैं। हम न तो चाहते ही थे और न हमें उम्मीद ही थी कि ऐसा होगा, और हमें सुरक्षा आदि पर इतना खर्च करना पड़ेगा। अनाज के आयात का मतलब है हमारे विदेशी विनिमय पर भार। बहुत सी रुकावटें हैं। हम एकदम सही तौर पर कुदरती मुसीबतों, जैसे मानसून के मनमानेपन, का अन्दाजा पहले से नहीं लगा सकते। खाद्यान्न पैदा करने के मामले में हमारी स्थिति एकदम निश्चित नहीं। बेशक, खराब फसल की असली वजह मानसून की खराबी हो सकती है। देश के एक हिस्से मेंअच्छा पानी बरस सकता है और दूसरे में सूखा पड़ सकता है। यह तो एक जुदा बात है। आखिर, हमें बड़ी मात्रा में अनाज संग्रह करना है। यह सिर्फ तभी मुमकिन है, जबकि अनिवार्य रूप से अनाज संचित किया जाय। इसके बारे में हमारा दिमाग साफ होना चाहिए। मैं हैरान हो जाता हूं कि कुछ लोग समाजवादी ढंग और राष्ट्रीयकरण के बारे में बातें करते हैं। हम उद्योगों के राष्ट्रीयकरण, समाजवाद और ऐसी ही सारी चीजों की बात करते हैं। दूसरी ओर, ज्योंही नियंत्रण की बात चलती है, लोग चिल्लाने लगते हैं: 'फिर कभी नहीं'। क्या कभी आपने सोचा है कि समाजवाद सिर्फ नियंत्रण है, और कुछ नहीं? लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि हमारे विचार में यह उलझन क्यों है।

समाजवाद का वास्तविक अर्थ

कुछ लोग सोचते हैं कि जो लोग लम्बे हैं उनकी गर्दन उड़ा देना, और जिनके पास धन है उनकी जेबें कतर लेना, ही समाजवाद है। समाजवाद के बारे में इस प्रकार का सोचने का तरीका मूर्खतापूर्ण है। अगर धन की जरूरत है तो ज्यादा ऊंचे कर क्यों न लगायें, और इस तरह ज्यादा रकम हासिल करके अपने मसले क्यों न हल करें? पूरे सम्मान का ख्याल रखते हुए भी, मैं कहूंगा कि सोचने का यह तरीका साफ और सुलझा हुआ नहीं है। हमारे देश में जो कुछ भी दौलत है—और मेरा ख्याल है कि हमारे देश में काफी दौलत है—तो उसका होना ठीक ही है। लेकिन जिस खास बात की हमें फिक्र है, वह गड़ा हुआ धन

नहीं है, बल्कि वह धन का उत्पादन है–वस्तुओं का उत्पादन ही धन है। देश में एक ऐसी हालत पैदा करना जो कि सम्पत्ति पैदा करती है, और ऐसा वातावरण उत्पन्न करना जो कि उसे पाने में हमारी मदद करता है—यही खास चीज है। क्या इधर-उधर, दाहिने-बायें, कटौती करने से यह काम किया जा सकता है ? मुझे यकीन है कि हम देश में धन उगाह सकते हैं। हम इस देश को एक कल्याणकारी राज्य बनाने के लिये वचनबद्ध हैं। कल्याणकारी राज्य के बगैर समाजवाद हो ही नहीं सकता।

सम्पत्ति का उत्पादन : प्राविधिक समाज

अहम बात यह है कि ज्यादा दौलत किस तरह पैदा की जाय। साधनों का इस्तेमाल अपने फायदे के लिये किस तरह किया जाय, ताकि उससे ज्यादा दौलत पैदा हो–इसी का नाम आयोजन है। मौजूदा साधनों का सबसे अच्छा उपयोग करना तथा मानव प्राणियों को प्रशिक्षण देना भी आयोजन है। आखिर में, महत्व मानव प्राणियों का ही है, हमारे कानूनों और प्रस्तावों का नहीं। महत्व है प्रशिक्षित इंजीनियरों, प्रशिक्षित किसानों, और प्रशिक्षित प्रविधि-विशेषज्ञों का। अगर हम आज की दुनिया का फायदा उठाना चाहते हैं, तो हमारा यह सोचना वाजिब है कि पश्चिम के, यूरोप के, देश और दूसरे देश भी काफी कुछ कल्याणकारी राज्य और खुशहाल देश सिर्फ इसलिये हो सके हैं कि उन्होंने उत्पादन की कुछ वैज्ञानिक प्रविधियों को अपना लिया है; और मैं कहता हूं कि चाहे कोई देश कम्युनिस्ट, समाजवादी या पूंजीवादी ही क्यों न हो, हर जगह प्रविधियां एक-सी ही हैं। हम शायद सोचते हैं कि रूस एक दम नये तरह की दुनिया है। लेकिन असल बात यह है कि रूस और अमरीका दोनों ही देशों में काम करने वाली मशीनें एक हैं। रूस हो या अमरीका, हर जगह प्रविधि-प्रशिक्षित इंजीनियर और प्रशिक्षण के तरीके एक से ही हैं। हमें यह मंजूर करना पड़ेगा; और भारत में भी, हमें कमोबेश उसी तरह के प्रशिक्षित लोगों की जरूरत है। हमारे पास ज्यादा बड़े सार्वजनिक क्षेत्र, वगैरह हो सकते हैं। यह तो एक जुदा बात है। लेकिन बुनियादी तौर पर रूस या अमरीका में समाज का आधार एक ही है—यह एक प्रविधि-विशेषज्ञ समाज है। यह वैज्ञानिक कामयाबियों पर आधारित है। आगे चल कर बटवारे में, वितरण में, फर्क आता है। लेकिन पहली चीज है, प्राविधिक नजरिये से आगे बढ़ा हुआ समाज, जिसके पास उत्पादन के साधन हों; जिसके पास जमीन की ज्यादा पैदावार, ज्यादा कारखाने, कारखाना निर्माण करने वाले ज्यादा कारखाने, प्लांट पैदा करने वाले ज्यादा प्लांट—यानी आधुनिक आर्थिक विकास और आधुनिक सभ्यता के प्राविधिक साधन हों।

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था में विदेशी सहायता की भूमिका

हमारी दूसरी पंचवर्षीय योजना या किसी भी योजना का सारा मकसद तरक्की के लिये, विकास के लिये, उन नीतियों के अलावा जिन्हें हम लागू करते हैं, इसी तरह के प्राविधिक साधन पैदा करना है। जाहिर है कि इसके लिये बड़े पैमाने पर पूंजी लगाने की जरूरत पड़ती है। देश के लोगों पर भारी कर लगाकर हम यह सब नहीं कर सकते, क्योंकि अगर हम कर भी सकें, तो भी मैं नहीं कह सकता कि इसमें कितना समय लगेगा–मेरे ख्याल से काफी समय लगेगा। दरअसल, इस बीच आप बढ़ती हुई आबादी की मुश्किलों से या बढ़ती हुई मांग से घिर सकते हैं। इसलिये, सोवियत रूस को छोड़ कर, कोई भी दूसरा देश पूंजी के निवेश के रूप में काफी विदेशी सहायता बगैर अपना औद्योगीकरण नहीं कर सका है। संयुक्त राज्य अमरीका को विदेशों से काफी पूंजी मिली और इसलिये वह आगे बढ़ गया। रूस ने ऐसा नहीं किया। लेकिन इसकी वजह यह नहीं थी कि उसने ऐसा करना नहीं चाहा, बल्कि यह थी कि रूसी क्रान्ति के बाद २०-२५ वर्ष तक इसका बहिष्कार किया गया और दूसरे मुल्क उसके साथ व्यवहार रखना या उसकी मदद करना नहीं चाहते थे। उन्हे एकदम निचले तले से अपना निर्माण करने के लिये मजबूर होना पड़ा है। उन्हें भूख, अकाल और लाखों की तादाद में लोगों की मौत के भयंकर दौर से गुजरना पड़ा है। लेकिन सोवियत रूस के अलावा, मेरे पास किसी ऐसे अर्द्ध-विकसित देश की मिसाल नहीं, जिसने पूंजी के रूप में काफी विदेशी सहायता लिये बगैर, तेजी के साथ अर्द्ध-विकसित हालत की रुकावटें पार की हों। चीन को भी रूस से काफी मदद मिल रही है। अगर यह बात सही

है, अगर हम तेजी के साथ तरक्की करना चाहते हैं, तो हमें अपने अन्दरूनी और विदेशी साधनों का इस्तेमाल ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाते हुए करना पड़ेगा।

मैं किसी से दान के रूप में मदद मिलने की बात नहीं करता, बल्कि ईमान्दारी से पूंजी लगाने के रूप में, चाहे उसे व्यावसायिक सौदा कह लीजिये, बात करता हूं, जहां हम उद्योगपतियों को प्रोत्साहन देंगे, और जहां पूंजी लगाने वालों को हम यह गारण्टी देंगे कि उनके हित महफूज रहेंगे। लेकिन मेरे कहने का यह मतलब हर्गिज नहीं कि हम इस तरह बड़े पैमाने पर पूंजी लगाये बगैर तरक्की कर ही नहीं सकते। हम अपने करों वगैरह का सहारा ले सकते हैं, लेकिन उस हालत में हमारी तरक्की की चाल धीमी होगी। दरअसल, उसका धीमा होना स्वाभाविक है।

आत्म-सन्तुष्ट या निराश होने की जगह नहीं

जब हम खुद एक उत्पादक देश हो जायेंगे—उत्पादक इस अर्थ में कि जब हम अपनी जरूरतें पूरी करने और ज्यादा से ज्यादा माल निर्यात करने में समर्थ होंगे—जब हम शुरू की ये रुकावटें पार कर लेंगे और हमारी अर्थ-व्यवस्था में अपने-आप आगे बढ़ने की क्षमता आ जायगी, तब हमारी खास मुश्किलें खत्म हो जायेंगी। बेशक, मुश्किलें तो जारी रहेंगी, लेकिन खास मुश्किलें खत्म हो जायेंगी। तो, हम इस समय रुकावटों के इसी नाजुक दौर में हैं। मेरा ख्याल है कि हमारी तरक्की की चाल काफी अच्छी रही है। लेकिन तेज चलने की कोशिश में—और हमारी कोशिशें वाजिब रही हैं, चाहे वे दाहिने रही हों या बायें—हम ऊपरी तौर पर अपने साधनों द्वारा सीमित सीमा से कुछ आगे बढ़ गये हैं। इसके बारे में बेहद भयभीत होने की जरूरत नहीं। लेकिन, यह निश्चय ही एक गंभीर बात है और इस पर गौर करना जरूरी है। इसके लिये कई तरह से संयम और बचत करने की जरूरत पड़ेगी। शोरगुल मचाने की कोई वजह नहीं। जैसा कि वित्त मंत्री ने कहा है, यह विकास और तरक्की की निशानी है। बेशक, अगर हम इसके बारे में आत्म-संतुष्ट होने लगें, तो हमारा विनाश होकर रहेगा। एक आत्म-सन्तुष्ट समाज किसी भी समय विनष्ट हो सकता है। कुछ लोग सोचते हैं कि अरे! हम लोकतंत्रीय समाज के लोग हैं, और इसलिये उन उपायों को अपना नहीं सकते, जिन्हें अधिसत्तावादी समाजों ने अपनाया है, और इसलिये हम बहुत ही गुणवान, नैतिक और लोकतंत्रीय दिखलायी पड़ते हैं; और हम कामयाब नहीं हो सकते, भले ही कामयाबी बहुत कुछ करीब आ गयी हो। इस सबका मतलब सिर्फ यह है कि हम कहते हैं कि हम तेज-कदम कामयाबी से नैतिक और पाक होने को ज्यादा तरजीह देते हैं। दरअसल, इसमें इस विचार की पूर्व-कल्पना छिपी है कि दूसरे देश जो इस प्रकार से लोकतंत्रीय नहीं हैं, अपनी सभी कोशिशों में बड़ी-बड़ी कामयाबियां हासिल कर रहे हैं। इसमें यह कल्पना है कि अधिसत्तावादी तरीके, जो कि अन्यथा कितने भी बुरे क्यों न हों, आखिर में कामयाबी लाकर रहेंगे। मैं इस धारणा को चुनौती देता हूं। मैं इस मान्यता को मंजूर करने के लिये तैयार नहीं, जैसा कि कुछ लोग करते हैं। मैं किसी देश की आलोचना नहीं करता और दूसरे देशों की आलोचना करना मेरा काम भी नहीं। लेकिन मैं जानता हूं कि इन अधिसत्तावादी देशों के सामने भी कुछ उनकी अपनी मुश्किलें हैं। मैं रूस की बात नहीं करता। रूस को अपनी तरक्की हासिल करने में चालीस वर्ष लगे।

विकसित देश और मशीनें

रूस ने वही असली चीज हासिल कर ली है जो कि उसके और अमरीका के बीच एक समान तत्व है—एक प्राविधिक, वैज्ञानिक सभ्यता। इन देशों में यही सभ्यता निर्मित हुई है। अमरीका या रूस में हर लड़के को मशीन चलाना सिखाया जाता है। बच्चों के पास खिलौने नहीं। वे मशीनों से खेलते हैं। १२ या १३ वर्ष की उम्र में लड़कों और लड़कियों को जल-विद्युत् कार्य के बारे में प्रशिक्षित कर दिया जाता है। वे इसी तरह निर्मित हुए हैं। उन्होंने एक मशीनी सभ्यता का निर्माण किया है और इसका फायदा उन्हें खेती और उद्योगों में मिला है। साम्यवाद इसके ही संगठन का एक तरीका है। लेकिन असली चीज मशीनी सभ्यता

है। ऐसा लगता है कि हमारे लोग यह सोचते हैं कि कानून के जरिये या करों की किसी कारगुजारी के जरिये समाजवाद या साम्यवाद कायम किया जा सकता है। वे इसकी बुनियाद को नहीं समझ पाते। यह कुछ बहुत ही कड़ी चीज है—कड़ा इस्पात, भारी मशीनें, क्रेन और इसी तरह की बहुत सारी चीजें, जिन्हें इन देशों ने तैयार किया है; और यही वह बुनियाद है जिसकी जरूरत है। ऐसा होने पर ही हमारी प्रगति जारी रह सकती है। हम इसी बुनियाद को खुद अपने तरीके से बनाने की कोशिश कर रहे हैं। हम इसी तरह का मशीन युग भारत में भी नहीं लाना चाहते। लेकिन मशीनों के बिना हम तरक्की भी नहीं कर सकते। इसलिये, हमें मशीनों का इस्तेमाल करना है और उन्हें अपने तरीके पर अपनाना है।

हमारी समस्याएं दूसरे अर्द्ध-विकसित देशों के समान

आप जानते होंगे, या आपको यह जानकर हैरानी होगी, कि इस समय भारत में हम जिस तरह की मुश्किलों का मुकाबिला कर रहे हैं, वे करीब-करीब उसी तरह की मुश्किलें हैं जिनका मुकाबला दूसरे देशों, जैसे चीन में या पूर्वी यूरोप के कुछ देशों में किया जा रहा है। मैं उनको दोष नहीं देता। जीवन की वास्तविकताएं चीन में और भारत में समान हैं। दोनों ही बड़े खेतिहर समाज हैं, जिनके उद्योग अच्छी तरह विकसित नहीं हैं; दोनों ही तरक्की करने की कोशिश कर रहे हैं और सभी तरह की परेशानियों, कुदरती मुसीबतों, बाढ़, वगैरह का मुकाबला कर रहे हैं। हम मुकाबला कर रहे हैं और वे भी मुकाबला कर रहे हैं, लेकिन भारत और चीन दोनों जगह जीवन की वास्तविकताएं समान हैं और मुश्किलें भी समान हैं। उनकी मुश्किलें तो अकसर हमसे भी ज्यादा होती हैं। मिसाल के तौर पर खाद्य को ले लीजिये। दुनिया में सारे नियंत्रणों के बावजूद, खाद्य-स्थिति बहुत कठिन है। लोग कभी-कभी यह सोचते हैं कि नियंत्रण के जरिये हम सब कुछ सुलझा लेंगे। बेशक, नियंत्रण के जरिये हम उन चीजों को प्रसारित कर सकते हैं जो कि हमें हासिल हैं, बशर्ते कि वे क्षमता के साथ लागू हों। जाहिर है कि अगर हमारे पास काफी कुछ पहले से मौजूद न हो, तो हम उसे ज्यादा प्रसारित नहीं कर सकते और बात यहीं खत्म हो जाती है। सिर्फ नियंत्रण लगा कर हम कोई चीज, जो कि मौजूद न हो, पैदा नहीं कर सकते। हमें पहले चीजें पैदा करनी पड़ती हैं और फिर उन्हें बांटना या प्रसारित करना पड़ता है। आपने अखबारों में चीन में कपड़े की राशनिंग की खबर पढ़ी होगी—जो हर आदमी पर ६ से ७ गज है। इस समय भारत में यह १८ गज है और बढ़ती ही जा रही है। यह अब भी चीन के लोगों के तीन गुने के बराबर है। यह उन मुश्किलों का पैमाना है जिनका मुकाबला वहां के लोगों को करना पड़ता है। और चीन एक ठंडा मुल्क है। चीन के काफी हिस्से में गहरी सर्दी पड़ती है। यहां हमारे लोग बड़ी संख्या में बिना कपड़े के रह सकते हैं; उन्हें कुछ ज्यादा तकलीफ नहीं हो सकती। पूर्वी युरोप के कुछ देशों को ही ले लीजिए। दस साल हुए, उन्होंने हमारी बनिस्बत काफी ऊंचे औद्योगिक स्तर से शुरू किया था और उनके सामान्य रहन-सहन का स्तर भी हमसे ऊंचा था। वे शीघ्रता के साथ अपना औद्योगीकरण करना चाहते थे। वे अपनी खेती की पैदावार बढ़ाना चाहते थे; और वे बड़ी निराशाजनक दुर्दशा में फंस गये, जिसके फलस्वरूप वहां पिछले २ या ३ साल से अशांति रही है। मैं उस हिम्मत की तारीफ करता हूं जिसके साथ वे अपनी मुश्किलों का सामना कर रहे हैं। मुझे पूरा यकीन है कि वे इन मुश्किलों से पार हो जायेंगे। लेकिन मैं कहना यह चाहता हूं कि हम अपने मुल्क में जिन कठिनाइयों का मुकाबला कर रहे हैं, वे ऐसे देश के अन्दर व्याप्त मुश्किलें हैं जो कि आगे बढ़ जाने की कोशिश कर रहा है। और ऐसी मुश्किलें हर जगह समान रूप से पायी जाती हैं, चाहे वह पूंजीवादी समाज हो, कम्युनिस्ट समाज हो, समाजवादी समाज हो, या मिश्रित अर्थ-व्यवस्था हो। लोकतंत्र से चिपके रहना सिर्फ नैतिकता का सवाल नहीं है, लेकिन उसे छोड़ देना हमारी समस्याओं के सुलझाने में कामयाबी हासिल करने के ख्याल से ज्यादा फायदेमन्द नहीं। इसलिये आइये, हम अपनी और दुनिया की समस्याओं की सही तस्वीर समझ लें। मेरा यह ख्याल हर्गिज नहीं कि आज की हालत में भारत की स्थिति आर्थिक दृष्टि से या अन्य दृष्टियों से ठोस नहीं है। हम जिस तरह की अर्थ-व्यवस्था में रह रहे हैं, उसमें हर तरह की मुसीबतें आ सकती हैं और काफी परेशानियां और तकलीफें पैदा हो सकती हैं।

शोषण रोकने के लिए नियंत्रण

लोग नियंत्रण की बात करते हैं। मुझे याद है कि सन् १९४८ में, जबकि कपड़े पर से नियंत्रण हटाया गया था, एक अजीब हैरत में डाल देने वाली हालत पैदा हो गयी थी जो सीधे-सीधे लूट की तरह ही थी। ज्योंही कपड़े पर से नियंत्रण हटा लिया गया, भारत भर में खुले आम यह लूट चलने लगी। यहां-वहां, सब जगह, बड़ी मात्रा में मुनाफे कमाये गये; यह एक हैरत- अंगेज दृश्य था। आखिरकार, हमें फिर कुछ रोक लगानी ही पड़ी। नियंत्रण या अनियंत्रण की बात करने से कोई फायदा नहीं, जैसे कि इनमें से एक अच्छा हो और दूसरा बुरा। यह सब कुछ तो परिस्थितियों पर निर्भर करता है—परिस्थितियां जो कि हमें कुछ ऐसा-वैसा करने के लिये प्रेरित और मजबूर कर सकती हैं। यह कोई सैद्धान्तिक मान्यता नहीं है। यदि किसी चीज की कमी हो तो आजकल के पूंजीवादी समाज के भीतर उस कमी से फायदा उठाते ही हैं। यह बहुत बुरी बात है कि कुछ लोग जिन्दगी की जरूरी वस्तुओं—चाहे वह खाना हो, कपड़ा हो या कोई दूसरी चीज हो—के अभाव से मुनाफा कमाने की कोशिश करें। इस तरह की हालत में जनता की हिफाजत के लिये राज्य को दखलन्दाजी करनी ही पड़ती है। चाहे समाजवाद हो, पूंजीवाद हो या कोई और ही चीज क्यों न हो, हर राज्य को जनता की हिफाजत के लिये दखल देना ही पड़ता है। लेकिन असली चीज तो यह है कि अभाव को कैसे दूर किया जाय।

सभी प्रणालियों का उद्देश्य--समृद्धि

लोग साम्यवाद की बात करते हैं। लेनिन की पुरानी परिभाषा के अलावा, जिसमें कि उन्होंने कहा था कि प्राविधिक ज्ञान के हाथों में सत्ता आने पर साम्यवाद बिजली और सोवियतों का मिश्रण है, इसकी एक दूसरी परिभाषा है—बाहुल्य की सीमा तक उत्पादन करना। बेशक हर चीज की बहुलता ही कामयाबी लाती है। फिर उसे आप साम्यवाद कहिये, समाजवाद कहिये, या कोई भी वाद कहिये। वह क्रियाशील इसलिये होती है कि बहुलता क्रियाशील होती है। परेशानी तो अभाव से होती है। और साम्यवादी या समाजवादी सिद्धान्तों का औचित्य यही है कि आप उस सिद्धान्त या तरीके को अपना कर बहुत जल्द बहुलता हासिल कर लेंगे, न कि अभाव की हालत में रह कर उसे सिर्फ नियंत्रित करके। यह एक बहुत मामूली-सा रास्ता है जिस पर चलकर हम वहां पहुंच सकते हैं। हम इन सैद्धान्तिक आदर्शवादी धारणाओं को भुला दें। हमें अपने मसलों पर उनके असली रूप में सोचना है, जैसा कि योजना आयोग ने सोचा-समझा है। वे समाजवाद या साम्यवाद की बात नहीं करते। बेशक, समाजवाद का कुछ हवाला जरूर है। उन्हें ऐसी कुछ तस्वीर सामने रखनी ही पड़ेगी, जिससे पता रहे कि हमें कहां पहुंचना है। बाकी मामलों में वे समस्याओं को उनके असली रूप में ही हाथ में लेते हैं।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का तात्पर्य

कहा जाता है कि हम मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अन्दर रह रहे हैं। इस तरह की मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में, जरूरी तौर पर सार्वजनिक और निजी क्षेत्र मिले जुले होते हैं। यह एक तरह की पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था होती है, जिसमें काफी हद तक राज्य का नियंत्रण होता है; अथवा यह एक पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था और सीधे राज्य के नियंत्रण के भीतर सार्वजनिक क्षेत्र का मिश्रण है। यह जरूरी तौर पर पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था है। हमारे यहां शेयर-बाजार और ऐसी ही दूसरी सारी चीजें हैं। कम्यूनिस्ट देशों में शेयर बाजार नहीं होते, क्योंकि वहां शेयरों के रद्दोबदल का सवाल ही नहीं। हमने जानबूझकर इस समय यही मिश्रित अर्थ-व्यवस्था स्वीकार की है, जिसके बारे में हम कहते हैं कि यह धीरे-धीरे सार्वजनिक क्षेत्र की दिशा में आगे बढ़ती जायगी, और फिर आखिर में, समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में तब्दील हो जायगी। हमने ऐसा क्यों किया? इसलिये नहीं कि हमें कुछ स्थिर-स्वार्थों या कुछ वर्गों का डर है, इसलिये नहीं कि हम किसी कुछ लोगों पर विशेष अनुग्रह करना चाहते हैं, बल्कि इसलिये कि मौजूदा हालात में हमने सोचा कि हमारे मकसदों को हासिल करने के लिये यही सबसे अच्छा रास्ता है—तत्काल हमारा मकसद है,

उत्पादन की व्यवस्था को सक्रिय कर देना, उसका निर्माण करना, ताकि हर तरह से वह ज्यादा से ज्यादा दौलत पैदा कर सके। यह सबसे जरूरी बात है, क्योंकि हम भारत में गरीबी बांटना नहीं चाहते। गरीबी समाजवाद नहीं। इसीलिये हमने सोचा कि ऐसी मिश्रित अर्थ-व्यवस्था अपना लेने पर हम उत्पादन को सबसे ज्यादा बढ़ावा दे सकेंगे। हम उत्पादन के हर मुमकिन तरीके का इस्तेमाल करना चाहते हैं, चाहे वह सार्वजनिक हो या निजी उद्यम; हम कोई भी ऐसी बात नहीं करना चाहते जो हमारे उत्पादन बढ़ाने के रास्ते में रुकावट बने, क्योंकि हम चाहे चीजें पैदा करें या न करें, लेकिन हर साल ५० लाख के करीब मानव-प्राणी तो पैदा करते ही हैं। जिस नजरिये से भी देखिये, भारत के लिये, और दूसरे देशों के लिये भी, लाखों, करोड़ों की तादाद में पैदा होने वाले मानव प्राणियों की समस्या है, जो भोजन, कपड़ा और रहने की जगह चाहते हैं। आप इस मामले में जो कम से कम काम कर सकते हैं,वह यह है कि आप उनके लिये काफी कुछ पैदा कीजिये। अगर आप उनके लिये खाने को काफी अनाज और पहनने को काफी कपड़ा ही पैदा करें, तो सिर्फ इतने से ही आप गरीबी को पीछे नहीं हटा सकते। आपको इससे कहीं ज्यादा पैदा करना पड़ेगा। इसलिये, आपको उत्पादन करने वाले ढांचे का निर्माण करना ही होगा। संसद द्वारा बनाये गये सारे कानून या कर,वगैरा इस तरह के उत्पादनशील ढांचे का निर्माण नहीं कर सकते। करों से धन मिलता है,जिसे इस्तेमाल किया जा सकता है। उसे हम पूंजी के रूप में या दूसरी तरह खर्च करके उत्पादनशील ढांचे को जमीन में या कारखाने में पैदा कर सकते हैं।

तात्कालिक आवश्यकता

हमारे लोगों में से कितने ही मुंह बिगाड़ कर, और भारत की मौजूदा स्थिति और मुश्किलों के बारे में शिकायत करते हुए, इधर-उधर फिरते मिलेंगे। कुछ लोग जो कि हमारे विरोधी हैं, इससे बहुत ही खुश मालूम होते हैं। दूसरे मुल्कों के कुछ लोग, कुछ अखबार वगैरा, भारत की नाजुक और संकटपूर्ण-स्थिति का लगातार डंका पीटते रहते हैं। वे सभी निराशा, भय और आशंका का वातावरण पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं; और मुझे डर है कि हमारे बहुत से लोग भी कभी-कभी इस प्रक्रिया में योग देते हैं और यह नहीं महसूस करते कि इसका मतलब क्या है। कांग्रेस में हम लोगों की यह नीति नहीं कि हम ऐसी बातों को ढकने की कोशिश करें, जिन्हें हम पसन्द नहीं करते। हमें असलियत का मुकाबला करना है। हम अपनी मुश्किलों का सामना करते हैं और उन्हें ढकते नहीं। लेकिन किसी बात को बढ़ा-चढ़ा कर कहना और भय तथा आशंका का वातावरण पैदा करना भी उतनी ही गलत बात है, क्योंकि इस तरह के मामले में हमारे लोगों का विश्वास बड़ी अहमियत रखता है, और निश्चय ही, रुपये-पैसे से ज्यादा महत्वपूर्ण है। मनुष्य ही रुपये पैदा करता है। यह जरूरी नहीं कि धन से विश्वास या श्रद्धा पैदा होगी ही। मिसाल के तौर पर, इस सिलसिले में विदेशी सहायता को ही ले लीजिये। मैं बार-बार कहता रहा हूं कि हम विदेशी सहायता के महत्व को समझते हैं। विदेशी सहायता से मेरा मतलब अनुदानों से नहीं, बल्कि पूंजी लगाने से है, चाहे वह ऋण हो या दूसरे किस्म का कर्जा। हम विदेशी सहायता का स्वागत करते हैं, जैसा कि और मुल्कों में भी होता आया है। हम कृतज्ञता के साथ उसका स्वागत करेंगे। लेकिन मैंने हमेशा इस बात पर जोर दिया है कि हम ऐसे लोग हैं, जिन्हें अपने पैरों पर स्वयं खड़ा होना पड़ेगा। अगर हम यह सोचने की आदत डाल लेंगे कि हमारे मसले विदेशी कोशिशों या विदेशी धन से सुलझाये जा रहे हैं, तो यह हमारे लिये एक बहुत बुरी बात होगी। हम विदेशी मदद जरूर चाहते हैं और इसे कहने में हमें लज्जा भी नहीं। हम धन्यवाद के साथ उसे स्वीकार करते हैं, बशर्ते कि शर्तें अच्छी हों और हम किसी तरह के बंधन में न डाले जायं। लेकिन; असल बात तो यह है कि हमें अपने ऊपर निर्भर करना पड़ेगा। हमें अपने पड़ोसी मुल्कों की ओर यह समझने के लिये देखना ही पड़ेगा कि हर समय, हर बात के लिये, विदेशी मदद पर मुनहसिर रह कर वे किस तरह आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक——सभी दृष्टियों से——कमजोर हो गये हैं।

हम संकट से लड़ेंगे

हमें कोई भी ऐसी बात नहीं करनी है, जिससे पराजय जैसे वातावरण को बढ़ावा मिले या वह पैदा हो। अगर

बाहर से एक भी रुपया नहीं आता तो इसका कोई बहुत महत्व नहीं। हम इस संकट से लड़ेंगे और कामयाबी हासिल करेंगे। यह बिल्कुल साफ है, और मैं चाहता हूं कि दुनिया इसे जान ले। मैं यह सुनते-सुनते थक गया हूं कि भारत इस वजह से नीचे जा रहा है कि कोई उसकी मदद नहीं कर रहा है। हम इस स्थिति का अपने ही ढंग पर मुकाबला करेंगे। हम सारी दुनिया को यह चुनौती देते हैं कि लगातार दिल में यह डर रखने की बजाय, कि दूसरा मुल्क हमारे लिये क्या करता है, क्या नहीं करता है, हम इस मुसीबत से अपने ही तरीके पर लड़ेंगे। दूसरे देशों के प्रति मेरी यह घोषणा दुर्भावपूर्ण नहीं। हम विदेशों से अपनी मुश्किलें हल करने के लिये मदद चाहते हैं। हम दोस्त की हैसियत से उनसे यह मदद मांग रहे हैं। हम अपनी हालत छिपा नहीं रहे हैं और न ही कुछ ऐसा दिखाने की कोशिश करते हैं जो कि हम नहीं हैं। हमारा देश गरीब है और मुझे ऐसा कहने में कभी शर्म नहीं। हम दोस्त की तरह आगे बढ़ते हैं और मदद मांगते हैं, लेकिन हमारे दिमाग और दिल के पीछे यह दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि चाहे बाहर से कोई मदद मिले या नहीं, हम मुश्किलों का मुकाबिला करेंगे ही, चाहे कुछ भी क्यों न हों। अगर मदद नहीं मिल रही है तो हमारी मुश्किलें स्वभावतः बेहद बढ़ जायेंगी और हमें अपनी योजना में इधर-उधर कांट-छांट करनी पड़ेगी। लेकिन, चाहे जैसा भी हो, हमें खुद अपने तईं इसे पूरा करने का असीम सन्तोष तो होगा।

कांग्रेसजनों का कर्त्तव्य

अब हम उन तीनों सवालों में से, जिन्हें कि शुरू में हमने सामने रखा है, तीसरे सवाल, यानी कांग्रेसजन का कर्त्तव्य क्या है, पर आते हैं। और यह सवाल सबसे ज्यादा अहम है। हमें याद रखना है कि इस मौके पर, मौजूदा परेशानियों का मुकाबिला करने और इस जिम्मेदारी को निभाने में कांग्रेसजन पर काफी बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। ऐसा करके हम न सिर्फ देश के प्रति, बल्कि उस कांग्रेस के प्रति भी, जिसका सदस्य होने का गौरव हमें प्राप्त है, अपना फर्ज अदा करेंगे। हम प्रस्ताव पास करते हैं, जो अच्छे भी हैं। हम उन्हें नयी जड़ें, नया जीवन देंगे। हमें एक मिसाल पेश करनी है। लोग संयम और ऐसी ही बहुत सारी चीजों की बात करते हैं। मैं नकारात्मक संयम नहीं, बल्कि कुछ और भी ज्यादा ठोस और यथार्थ चीज चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि कांग्रेसजन विश्वास के साथ जनता में जाएं। सिर्फ आत्म-सन्तुष्ट होकर देखते रहने या अपने विरोधियों को जनता में जाकर सरकार और कांग्रेस के खिलाफ प्रचार करके उन्हें गिराने देने की बजाय, जैसा कि इस समय हो रहा है, वे और लोगों से हमारी पंचवर्षीय योजनाओं, हमारी वर्तमान कामयाबियों और इन सारी बातों के बारे में कहें, और लोगों को अच्छी तरह समझा दें। हम इस प्रतिरक्षात्मक स्थिति में ही हमेशा पड़े नहीं रह सकते। हमें आक्रामक स्थिति ग्रहण करनी ही पड़ेगी। आक्रामक से मेरा मतलब गन्दे और बुरे तरीके अख्तियार करना नहीं। कम्युनिस्ट और दूसरे दल नवयुवकों को ऐसे आन्दोलन करने के लिये बढ़ावा देते जा रहे हैं, जिनसे हमारी संस्कृति अपमानित होकर रहेगी। अगर इस तरह की चीजें होती रहें, तो चाहे वह समाजवाद हो, पूंजीवाद हो या कुछ भी क्यों न हो, हमारे समाज की नींव ही चकनाचूर हो जायगी। दर-असल, महत्व मानव-प्राणियों का है, इसलिये यह हमारा फर्ज और काम है कि हम इसे समझ लें और आगे बढ़ें। अगर कभी गलत कदम उठा लेना पड़े, तो उसकी मैं बहुत परवाह नहीं करता, लेकिन उसके बारे में कुछ जोश तो दिखलाइये। जनता से बतलाइये और उसे समझाइये कि हमारी मुश्किलें क्या हैं। हम प्रगति के पथ पर हैं। हमें उपजाऊ जमीन पर—अपनी मंजिल पर—पहुंचने के पहले रेगिस्तानों, बयाबानों, वगैरा से गुजरना है। हमें यह सब करना ही है और एक दूसरे को रोकने और बुरा-भला कहने की कोशिश करने से कोई फायदा नहीं। हमें यह सब एक-साथ मिलकर करना है। अगर कुछ लोग ऐसा करने के लिये तैयार नहीं, बल्कि सिर्फ इसकी निन्दा करने के लिये तैयार हैं, तो उन्हें ऐसा करने दीजिये। हम उनकी पांत में क्यों जायं? उनसे कह दीजिये कि कोई भी राष्ट्र तरक्की नहीं कर सकता, अगर उसके निवासी भद्दे, हिंसक उपायों पर उतारू हो जाएं।

(१ सितम्बर १९५७ को नयी दिल्ली में हुए अ. भा. कां. कमेटी के अधिवेशन में किये गये भाषण से उद्धृत)

श्रीमन्नारायण

संगठन और विचारधारा

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का दिल्ली अधिवेशन, जो कि अभी हाल में हुआ है, कई दृष्टियों से अपूर्व रहा। इसने कांग्रेस संगठन के लिये एक नया विधान स्वीकार किया, जिससे यह उम्मेद की गयी है कि वह मुख्तलिफ कांग्रेस कमेटियों को नया मोड़ और नई दिशा प्रदान करेगा। यह सही है कि सिर्फ कांग्रेस विधान को तब्दील करने से ही कुछ ज्यादा हासिल नहीं किया जा सकता। जैसा कि कांग्रेस अध्यक्ष ने अपने अंतिम भाषण में कहा: "अब कांग्रेस के नये विधान के लिए "रक्त, मांस और प्राण" की व्यवस्था करना जरूरी होगा। ऐसा तभी किया जा सकता है, जबकि कांग्रेसजन कांग्रेस की बुनियादी विचारधारा को समझ लें और जीवित विश्वास तथा दृढ़ निश्चय के साथ उसका पालन करें। इसलिए यह बात बहुत संतोषप्रद रही कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के दिल्ली अधिवेशन ने वर्तमान आर्थिक स्थिति, और खास तौर पर, खाद्योत्पादन, भूमि सुधार और सहकारी खेती से ताल्लुक रखने वाली विचारधारा सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं पर गम्भीर वाद-विवाद में काफी समय लगाया। इन वाद-विवादों का विस्तृत विवरण तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के मतैक्य पर एक नोट, इसी अंक में अन्यत्र, प्रकाशित किया गया है।

कांग्रेस के हाल के इतिहास में शायद यह पहला ही मौका था, जबकि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने मलाया के लोगों को उनकी आजादी हासिल करने के उपलक्ष्य में हार्दिक बधाई भेजने के अलावा, कोई और औपचारिक प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के औपचारिक अधिवेशन में वाद-विवाद काफी ऊंचे स्तर पर हुए और उनसे मुख्तलिक आर्थिक मसलों पर विस्तार के साथ विचार करके प्रायः सर्व-सम्मति से स्वीकृत समाधान हासिल करने में बेहद सहायता मिली। इस तरह के स्वतन्त्र और स्पष्ट वाद-विवाद कांग्रेस संगठन के लिये एक सामान्य और संगठित विचारधारा तैयार करने में सहायक होंगे। कहने की जरूरत नहीं कि कांग्रेस क्या, कोई भी संगठन, इस तरह के सामान्य मस्तिष्क और गतिशील विचारधारा के विकास बगैर, जीवित और ताकतवर होकर कायम नहीं रह सकता। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य प्रायः इस बात से सहमत थे कि यद्यपि विभिन्न आर्थिक कठिनाइयों का सामना, बगैर किसी आत्म-सन्तोष की भावना के, यथार्थ रूप में ही करना चाहिये, फिर भी, भारत की बुनियादी अर्थ-व्यवस्था ठोस है और निराश होने की कोई वजह नहीं। यह भी महसूस किया गया कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के आकार में अधिक काटछांट करना वांछनीय नहीं। बेशक, प्राथमिकताओं को फिर से क्रमबद्ध करना और योजना में काटछांट करके छोटा-मोटा तालमेल बैठाना हमेशा मुमकिन है।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को इस बात का भी यकीन हो गया कि इस समय देश के सामने दो महत्वपूर्ण मसले पेश हैं: (१) खाद्योत्पादन में वृद्धि करना; और (२) छोटी बचतों को बढ़ावा देना। हालांकि बुनियादी और भारी उद्योग, यातायात प्रणाली तथा भारतीय अर्थ-व्यवस्था के दूसरे क्षेत्र महत्वपूर्ण हैं, किन्तु खेती की तरक्की को द्वितीय पंचवर्षीय योजना का मूलाधार ही समझना चाहिए। भारत जैसे अर्ध-विकसित देश में इतनी क्षमता नहीं कि वह अपनी जनसंख्या के लिए काफी अनाज उत्पन्न किये बगैर तथा पूंजीगत वस्तुओं के आयात के लिए, न कि खाद्यान्नों सहित उपभोक्ता वस्तुओं के आयात के लिए, अपने विदेशी विनिमय को सुरक्षित किये बगैर, अपने औद्योगिक विकास के लिए जरूरी साधन हासिल कर सके। खाद्य सम्बन्धी आत्मनिर्भरता राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से भी बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। भूखा देश अपनी आजादी देर तक कायम नहीं रख सकता। हालांकि विदेशों से प्राप्त वित्तीय सहायता का हमेशा स्वागत होना चाहिये, किन्तु राष्ट्र को अनिवार्य रूप से कर, ऋण और छोटी बचतों के जरिये प्राप्त खुद अपने आन्तरिक साधनों पर ही निर्भर करना चाहिये।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों का यह निश्चित मत था कि सभी राज्यों में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निर्दिष्ट तरीके पर प्रगतिशील भूमि-सुधार शीघ्रता के साथ लागू हो जाने चाहिये। यह सोचना गलत है कि भूमि-सुधारों से खेती की उपज और ज्यादा बढ़ाने में रुकावट पड़ेगी। इसके विपरीत, देश में अनाज की पैदावार बढ़ाने के उद्देश्य से जमीन जोतने बोने वाले किसान को अधिक श्रम करने में प्रोत्साहित करने के लिए क्रान्तिकारी भूमि-सुधारों का लागू करना बेहद जरूरी है। मौजूदा आराजियों और भविष्य में प्राप्त की गयी जमीन पर अविलम्ब अधिकतम सीमा लागू कर देना चाहिये। सहकारी खेती लागू करने के लिये भी काफी क्षेत्र है। यद्यपि सभी क्षेत्रों में सहकारी खेती का कोई कड़ा और रूढ़िगत तरीका लागू करना वांछनीय नहीं होगा, फिर भी, इसमें शक नहीं कि खेती की मुख्तलिक प्रक्रियाओं में सहकारी तरीके चालू करने के लिए काफी गुंजाइश है। इसलिये, देश भर में बगैर अधिक कठिनाई के सेवा-सहकारी समितियां स्थापित की जा सकती हैं। जहां तक जमीन इकट्ठी करके

सहकारी खेती चालू करने का सम्बन्ध है, इस प्रयोग की परीक्षा, खास तौर पर नयी खेतिहर बस्तियों और ग्रामदान वाले गांवों में, की जा सकती है।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों का ध्यान बेदखली और "स्वैच्छिक भू-समर्पण" की समस्याओं की ओर खास तौर से खींचा गया। प्रधानमंत्री ने इस बात पर जोर दिया कि इस तरह की बेदखलियां तुरन्त बन्द होनी चाहिये, और अगर जरूरत पड़े तो इसके लिए आवश्यक अध्यादेश लागू होने चाहियें। विभिन्न राज्य सरकारों को चाहिये कि वे उन सभी बेदखलियों और स्वैच्छिक समर्पण के मामलों की फिर से जांच करें जो कि पिछले कुछ वर्षों के भीतर हुए हैं, और भूमि सम्बन्धी कानूनों के अन्तर्गत उन जमीनों को पुनः वापस करने की व्यवस्था करें। कई राज्यों में, मुख्य रूप से लोगों के दिमाग में भूमि सम्बन्धी कानूनों के बारे में अनिश्चितता होने की वजह से, बड़े पैमाने पर बेदखलियां हुई हैं। इसलिए यह बेहद जरूरी है कि वर्तमान अनिश्चितता और अनिर्णय के वातावरण तथा अस्पष्टता को मिटाने के लिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निर्धारित भूमि नीति को नियमित और निश्चित तरीके से लागू कर दिया जाय। यह भी जरूरी है कि योजना आयोग की सिफारिशों के मुताबिक देश के विभिन्न हिस्सों में उचित लगान निर्धारित कर दिये जायं। हमें पूरी उम्मेद है कि राज्य सरकारें इन मसलों की ओर तुरन्त ध्यान देंगी, ताकि भारत अपनी द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि के भीतर आर्थिक विकास सम्बन्धी अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए काफी मात्रा में अन्न की उपज बढ़ा सके।

जैसा कि श्री गोविन्द बल्लभ पन्त ने कहा, प्रत्येक कांग्रेसजन का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि वह अधिक अन्न उपजाने तथा अधिक मात्रा में छोटी बचत हासिल करने के लिये देश की सहायता करने में पूरी ताकत लगा दे। यह न तो मुमकिन ही है और न वांछनीय ही कि सभी काम प्रशासन द्वारा किये जाने के लिए छोड़ दिये जायं। एक लोकतंत्रीय व्यवस्था के भीतर आम जनता के पूर्णतम और स्वैच्छिक सहयोग बगैर, कोई भी सरकार पर्याप्त परिणाम हासिल करने की अभिलाषा नहीं कर सकती। अतः कांग्रेसजनों को एक विशेष कर्तव्य का पालन करना है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों को पूरा करने की दिशा में अपना फर्ज अदा करके कांग्रेसजन न सिर्फ देश की, बल्कि उस महान संगठन की भी सेवा करेंगे, जिसका सदस्य होने का उन्हें गौरव प्राप्त है।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में पंत जी तथा अन्य नेताओं का सुझाव था कि अगले ६ महीने या साल भर के भीतर कांग्रेस संगठन को अपना ध्यान पूर्ण रूप से खाद्योत्पादन और छोटी बचतों की समस्या पर लगाना चाहिये। ऐसा सिर्फ तभी किया जा सकता है, जबकि व्यक्तिगत रूप से कांग्रेसजन तथा मुख्तलिफ कांग्रेस कमेटियां मौजूदा आर्थिक स्थिति की गम्भीरता को समझ लें और सच्चे दिल से इस काम पर लिपट जायं।

हमारे लिए यह समझ लेना बेहद जरूरी है कि कांग्रेस तथा भारत के अन्य राजनीतिक दल अब स्थायी और असली ताकत तभी हासिल कर सकते हैं, जबकि वे किसी खास विचारधारा और निश्चित कार्यक्रम पर दृढ़ता से अड़े रहें। स्वतन्त्रता मिलने के पहले कांग्रेस एक राष्ट्रीय संगठन थी, जिसने महात्मा गांधी के नेतृत्व में विदेशी शासकों के खिलाफ आजादी की लड़ाई लड़ी। राजनीतिक आजादी मिल जाने पर कांग्रेस ने राष्ट्रीय क्रियाशीलता के विभिन्न क्षेत्रों में स्वराज्य को सुदृढ़ बनाने में काफी कामयाबी हासिल की है। लेकिन अब हमारे लिए यह फैसला करने का समय आ गया है कि जनसंख्या के किन वर्गों की ओर कांग्रेस को खास तौर पर ध्यान देना चाहिये। इस समय कांग्रेस संगठन के भीतर जनसंख्या के सभी वर्गों के लोग शामिल हैं जो कि अक्सर मुख्तलिफ दिशाओं में खींचातानी करते हैं। अब सभी सम्बद्ध लोगों को यह बात बिल्कुल साफ हो जानी चाहिये कि कांग्रेस संगठन का उद्देश्य केवल अधिकारहीन वर्गों के आर्थिक हितों को ही बढ़ावा देना है जो कि ग्रामीण क्षेत्रों के भूमिहीन मजदूरों, छोटे किसानों तथा कारीगरों का, और शहरी क्षेत्रों के औद्योगिक मजदूरों, गन्दी बस्तियों के निवासियों तथा भंगियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। बेशक, कांग्रेस कम्युनिस्टों की तरह वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत तथा हिंसक तरीकों में विश्वास नहीं करती। कांग्रेस का उद्देश्य अनिवार्य रूप से वर्तमान परिग्रही समाज को समाजवादी सहकारी स्वराज्य में परिवर्तित करना है। हालांकि हम समाज के सत्ताधारी वर्गों के प्रति घृणा और कटुता पैदा करना नहीं चाहते तथा विचार बदलने और समझाने-बुझाने की प्रक्रिया के जरिये उनका सहयोग हासिल करना चाहते हैं, किन्तु, फिर भी, उनके दिमाग में यह बात बिल्कुल साफ हो जानी चाहिए कि हम सबसे ज्यादा ध्यान कम अधिकार प्राप्त तथा बिना अधिकार वाले वर्गों की ओर ही देंगे। कांग्रेस में इतनी क्षमता नहीं कि वह एक साथ ही सभी हितों को सन्तुष्ट करने की कोशिश करे। हर एक को खुश करने की कोशिश में, हो सकता है कि हम हर एक को नाखुश कर दें।

संक्षिप्त टिप्पणियां

पंजाब में हिन्दी आन्दोलन

हम कई मरतबा इस बात को दुहरा चुके हैं कि पंजाब में तथा कथित 'हिन्दी-रक्षा' आन्दोलन भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के हितों को अकथनीय नुकसान पहुँचा रहा है। महात्मा गांधी और दूसरे राष्ट्रीय नेताओं की रहनुमाई में राष्ट्रभाषा आन्दोलन का एक बुनियादी सिद्धांत प्रादेशिक भाषाओं को प्रोत्साहन और अधिक सम्मान देना रहा है। लोगों के दिमाग में इस तरह का भाव पैदा होना कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रसार प्रादेशिक भाषाओं के उचित विकास के रास्ते में बाधक होगा, सबसे ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण है। पंजाब के हिन्दी आन्दोलन से देश में इस तरह के एक अस्वस्थ वातावरण के पैदा होने में मदद मिली है कि हिन्दी के पक्षपाती पंजाबी सीखने के लिए भी तैयार नहीं हैं, जो कि उस राज्य की दो प्रादेविक भाषाओं में से एक है। इसलिए, देश के अहिन्दी क्षेत्रों के लोग स्वभावतः यह पूछते हैं कि "अगर हिन्दीभाषी लोग अपने निकटतम पड़ोसियों और सह-नागरिकों की भी भाषा सीखने के लिए तैयार नहीं, तो हमसे हिन्दी सीखने के लिए क्यों कहा जाता है? असल बात यह है कि पंजाब में हिन्दी आन्दोलन, जो कि शुरू में आर्य-समाज द्वारा चलाया गया था, अब सांप्रदायिक और प्रतिक्रियावादी ताकतों के हाथ में पहुँच गया है और संकुचित दलगत मकसद हासिल करने के लिए उसका दुरुपयोग हो रहा है। हिन्दी के तथाकथित रक्षक लोग राष्ट्रभाषा के सबसे बुरे दुश्मन साबित हो रहे हैं।

पंजाब सरकार हिन्दी-रक्षा समिति द्वारा उठाये गये कई सवालों के मामले में अपनी नीति स्पष्ट कर चुकी है। वह 'क्षेत्रीय सूत्र' में अन्तर्भूत बुनियादी सिद्धांतों के मामले में समझौता किये बगैर, पंजाब की हिन्दीभाषी जनता की भावना संतुष्ट करने के लिए काफी आगे बढ़ी है। पंजाब सरकार और भारत सरकार ने मुख्तलिफ दृष्टिकोणों पर काफी सावधानी के साथ विचार करके 'क्षेत्रीय सूत्र' तैयार किया था। हमें तनिक भी संदेह नहीं है कि यह सूत्र एक कठिन समस्या का सबसे अच्छा हल है, और कुछ वर्षों तक उसकी आजमाइश कर लेना उचित है। बेशक, अगर आपस के समझौते के जरिये कुछ छोटे-मोटे तालमेल बैठा लेना मुमकिन हो, तो कांग्रेस उसमें रुकावट डालना पसंद नहीं करेगी। लेकिन इस तरह के तालमेल सिर्फ मित्रतापूर्ण वार्त्ताओं के जरिये ही हो सकते हैं, प्रत्यक्ष संघर्ष या सत्याग्रह के जरिये हर्गिज नहीं।

प्रधान मंत्री ने पंजाब के भाषा संबंधी झगड़े को तय करने के मामले में अपने स्वभाव के विपरीत काफी गहरी दिलचस्पी दिखलायी। उन्होंने यह सुझाव भी दिया कि कुछ बातें एक विशेषज्ञ समिति को सुपुर्द की जा सकती हैं, ताकि यह समस्या शांति के साथ और उत्तेजनाहीन ढंग पर सुलझाई जा सके। यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी-रक्षा समिति के नेताओं ने आन्दोलन उठा लेने और लिखापढ़ी तथा मैत्रीपूर्ण बातचीत के जरिये समस्या सुलझाने की कोशिश करने की श्री नेहरू की अपील का उचित उत्तर नहीं दिया। सही बात को सही भावना से करने में कभी देर-सबेर का सवाल ही नहीं उठता। हम पंजाब के हिन्दी आन्दोलन के नेताओं से हृदय से अनुरोध करेंगे कि वे अपने दृष्टिकोण पर फिर से विचार करें, और अब और ज्यादा देर किये बगैर आन्दोलन को वापस ले लें। सबसे अच्छी नीति तो यह होगी कि यह सारा मामला प्रधान मंत्री के योग्य हाथों में छोड़ दिया जाय, जो कि खुद भी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की उन्नति में हमेशा गहरी दिलचस्पी लेते रहे हैं।

हम अकाली दल तथा पंजाबी-राखिया समिति के नेताओं से भी अनुरोध करेंगे कि वे कोई ऐसी बात न कहें, या ऐसा काम न करें, जिससे कटुता और तनाव पैदा हो। जो भी बात पंजाब की शांति को भंग करती है, वह भारत का सबसे बड़ा अहित करेगी।

खेर कमीशन की रिपोर्ट

सरकारी भाषा-अयोग की रिपोर्ट, जिसे कि आम तौर पर लोग खेर-कमीशन के नाम से जानते हैं, अब देश के सामने हैं। संसद सदस्यों की एक समिति कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करेगी, और फिर राष्ट्रपति के पास अपने सुझाव पेश करेगी। इस बीच, यह जरूरी है कि वे सभी लोग जो कि भारत-संघ के सरकारी कामों में हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के सवाल में दिलचस्पी रखते हैं, रिपोर्ट का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें। कमीशन ने शिक्षा और प्रशासन के क्षेत्र में प्रादेशिक भाषाओं, हिन्दी और अंग्रेजी के उचित स्थान के सम्बन्ध में बहुत सी दूसरी बातों पर भी काफी सावधानी के साथ विचार किया है। उसने समूचे विषय पर जितनी व्यापकता से विचार किया है, उसका हम स्वागत करते हैं, हालांकि शायद कई बातों पर ठीक-ठीक निर्दिष्ट शर्तों के मुताबिक विचार नहीं किया गया। मिसाल के तौर पर, खेर-कमीशन ने शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी और अंग्रेजी के उचित स्थान के सवाल पर व्यापक रूप से विचार किया है। उसने विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर भी विचार किया है। इन सभी प्रश्नों पर भारत सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा बहुत ही होशियारी से विचार किया जाना जरूरी है।

अंग्रेजी भाषा का स्थान

हमारी शिक्षा और प्रशासन प्रणालियों में अंग्रेजी भाषा के स्थान संबंधी विवाद पर तुरन्त ध्यान देना जरूरी है। बेशक, अंग्रेज़ी एक समृद्ध भाषा है और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इसका व्यापक रूप से प्रयोग होता है। इसलिए, इसे भारतीय शिक्षा-प्रणाली में उचित स्थान देना जरूरी है। लेकिन, अपने छात्रों को अंग्रेजी पढ़ाने की उत्सुकता में हमें प्रादेशिक भाषाओं और राष्ट्रभाषा हिन्दी के उचित महत्त्व का बलिदान नहीं कर देना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने सुझाव दिया था कि शिक्षा के हाई स्कूल स्तर पर अंग्रेजी की पढ़ाई अनिवार्य होनी चाहिए और मिडिल स्कूल स्तर पर इसकी शिक्षा देना जरूरी नहीं। लेकिन पिछले साल शिक्षा-मंत्रियों के सम्मेलन ने यह सुझाव दिया कि मिडिल स्कूल के स्तर पर भी अंग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए, हालांकि जिस साल से अंग्रेजी की शिक्षा शुरू की जाय, उसका निर्णय विभिन्न राज्य सरकारों पर छोड़ दिया जाना चाहिए। इससे देश के मुख्तलिफ हिस्सों में काफी वाद-विवाद और असंतोष पैदा हो गया है। अब सरकारी भाषा-आयोग ने सुझाव दिया है कि अंग्रेजी की शिक्षा 'ज्ञान की भाषा' के रूप में ही, न कि साहित्यिक भाषा के रूप में, दी जानी चाहिए। अतः उसका विचार है कि अंग्रेजी की पढ़ायी 'माध्यमिक स्तर पर कुछ बाद में चल कर' शुरू होनी चाहिए। कुछ राज्य सरकारों, और विशेष रूप से बम्बई, के सामने यह मुश्किल सवाल खड़ा हो गया है और इस पर शिक्षा-मंत्रियों को, जिनका सम्मेलन गत २० और २१ सितम्बर को दिल्ली में हुआ, सावधानी से विचार करना चाहिए।

सभी बातों पर विचार करते हुए यही उचित होगा कि हमारी शिक्षा-प्रणाली में मिडिल और बुनियादी स्तर के बाद ही अंग्रेजी की शिक्षा शुरू की जाय। दरअसल, ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जिससे बम्बई तथा कुछ दूसरी राज्य सरकारों को अपनी प्रगति उलट देने और फिर से मिडिल स्कूल स्तर पर अंग्रेजी की पढ़ायी चालू करने के लिए मजबूर होना पड़े। इस तरह का कदम न सिर्फ मूर्खतापूर्ण होगा, बल्कि भारत में बुनियादी शिक्षा की प्रगति के लिए हानिकारक भी होगा। भारत सरकार और सभी दूसरी राज्य सरकारें वर्तमान माध्यमिक और प्राथमिक शिक्षा की प्रणाली को बुनियादी शिक्षा-प्रणाली में तब्दील कर देने की अपनी नीति घोषित कर चुकी हैं। कोई भी कदम जो कि इस बुनियादी नीति के विरुद्ध होगा, निश्चय ही, अनुचित होगा।

अखिल भारतीय सेवाओं के लिए परीक्षा का माध्यम

इस समय विभिन्न अखिल भारतीय सार्वजनिक सेवाओं की परीक्षाओं के लिए एकमात्र माध्यम अंग्रेजी भाषा है। फलस्वरूप, मां-बाप इस बात के लिए उत्सुक होते हैं कि उनके बच्चे शिक्षा के माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तरों पर अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान हासिल कर लें। इस चिन्ता की वजह से मां-बाप यह मांग करते हैं कि मिडिल स्कूल स्तर पर भी छात्रों को अंग्रेजी की शिक्षा दी जानी चाहिए। लेकिन इसमें शक नहीं कि हमारी शिक्षा-प्रणाली में अंग्रेजी को सिर्फ इसलिए ही अनुचित महत्त्व दिया जा रहा है कि यह महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक सेवाओं की परीक्षाओं का अनिवार्य माध्यम है। इस सवाल पर कांग्रेस कार्य समिति ने ३ वर्ष हुए पूर्ण रूप से विचार किया था। समिति का यह निश्चित मत था कि अखिल भारतीय सार्वजनिक सेवाओं की परीक्षा के लिए अंग्रेजी के अलावा हिन्दी, और यदि आवश्यक हो तो दूसरी प्रादेशिक भाषायें भी, माध्यम बना दी जानी चाहिए। खेर-कमीशन ने भी इसी तरह की सिफारिश की है। उसका कहना है: "जहां तक अखिल भारतीय और केन्द्रीय सेवाओं का सम्बन्ध है (और यह बात उन अखिल भारतीय सेवाओं पर भी, जो कि अब से आगे चालू की जायेंगी, लागू होगी, बशर्ते कि अन्यथा व्यवस्था न हो), वर्तमान अंग्रेजी माध्यम के अलावा हिन्दी माध्यम का विकल्प भी उचित सूचना के बाद चालू किया जा सकता है। जैसे-जैसे और जब दूसरी प्रादेशिक भाषाएँ विश्वविद्यालयों में ग्रेजुएट स्तर पर शिक्षा का माध्यम बन जायें, जैसा कि हिन्दी के सम्बन्ध में हुआ है, तो अन्य भाषा सम्बन्धी माध्यम चालू करने के सवाल पर भी विचार करना पड़ेगा।" हम दृढ़ता से महसूस करते हैं कि भारत सरकार को यह सवाल बहुत ही शीघ्र अपने हाथ में लेना चाहिए। हम आशा करते हैं कि संसद सदस्यों की समिति भी इस मामले पर तुरन्त ध्यान देगी।

श्री सन्त बाल के रचनात्मक कार्य

अभी हाल में गुजरात के दौरे के सिलसिले में मुझे श्री सन्त बाल द्वारा किये गये ग्रामीण रचनात्मक कार्य के अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ था। श्री सन्त बाल पिछले २० वर्षों से सच्ची निष्ठा और लगन के साथ रचनात्मक कार्य में लगे हुए हैं। वह हृदय से विश्वास करते हैं कि कांग्रेस ही एकमात्र राजनीतिक संगठन है, जो कि भारत की एकता और दृढ़ता को कायम रख सकता है। उनके विचार से, यदि कांग्रेस कमजोर हो जाय तो देश की एकता कायम न रह सकेगी और विनाशक तथा फूट डालने वाली प्रवृत्तियों की ताकत बढ़ जायेगी। इसलिए, वे अहमदाबाद के चार तालुकों में ठोस रचनात्मक कार्य के लिए कांग्रेसजनों को संगठित करने में अथक परिश्रम कर रहे हैं। उन्होंने अनेक बहु-उद्देश्यीय सहकारी समितियां, तथा सहकारी गिनिंग और प्रेसिंग कारखाने संगठित किये हैं। इनका काम बहुत ही ठोस ढंग पर चल रहा है। उन्होंने इस इलाके में गौओं की नस्ल, तथा ग्वालों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए बहुत काफी कार्य किया है। सहकारिता के आधार पर श्रेष्ठतर कृषि समितियों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। उनके नेतृत्व और देख रेख में कई बुनियादी स्कूल चालू किये गये हैं। सर्वोदय आश्रम गुण्डी में अम्बर चर्खा तथा दूसरे कुटीर उद्योगों की प्रविवियों के संबंध मे बहुमूल्य अनुसंधान हो रहे हैं। 'शांति-सेना' दलों का निर्माण करके, श्री सन्त बाल लोगों की अहिंसा-शक्ति विकसित करने की दिशा में कुछ प्रयोग भी चला रहे हैं। पिछले साल भाषा संबंधी झगड़ों के समय इन दलों ने अहम ाबाद में काफी अच्छा काम किया था।

हम रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं और कांग्रेसजनों से अनुरोध करते हैं कि वे श्री सन्त बाल के ग्रामीण कार्यों का अच्छी तरह से अध्ययन करें, ताकि दूसरे क्षेत्रों में भी इस तरह के कार्य शुरू किये जा सकें।

– श्री० ना०

भारत में भूमि-सुधारों की प्रगति

श्री गुलजारी लाल नन्दा
केन्द्रीय योजना एवं श्रम मंत्री

भूमि-सुधार के मुख्य पहलू ये हैं :

१. मध्यस्थों का उन्मूलन।

२. उचित लगान निर्धारित कर जमींदार-काश्तकार व्यवस्था का नियमन, काश्तकारों को भू-धारण अधिकार सम्बन्धी सुरक्षा प्रदान करना, बशर्ते कि जमींदार को खुदकाश्त के लिए कुछ भूमि स्वयं रखने का अधिकार हो। जिन इलाकों में जमींदार को भूमि स्वयं रखने का अधिकार न हो, वहां काश्तकारों का राज्य के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित कर उन्हें स्वामित्व प्रदान करना।

३. भविष्य में भूस्वामियों द्वारा पुनः प्राप्त की जाने वाली भूमियों और मौजूदा आराजियों की उच्चतम सीमा निर्धारित कर भूमि का पुनर्वितरण; निर्धारित उच्चतम सीमा से ऊपर की अतिरिक्त भूमियों को हस्तगत कर भूमि-विहीन खेतिहर मजदूरों को पुनः बसाना; और लाभकर आराजियों के आकार को बढ़ाना।

४. बिखरी हुई आराजियों को संयुक्त खंडों में एकत्र करना और जमीन को लाभकर आकार से बहुत ज्यादा टुकड़ों में बंट जाने और छोटा होने से रोकना।

५. सहकारी खेती का विकास, जिसके द्वारा छोटी आराजियों को एक साथ इकट्ठी कर उस पर सम्मिलित खेती की जायेगी, ताकि खेती की क्रियात्मक इकाई का आकार बढ़ सके और बड़े पैमाने के संगठनों की मितव्ययिता का लाभ प्राप्त किया जा सके; और जिसके फलस्वरूप, अन्त में, सहकारी ग्राम प्रबन्ध स्थापित हो सकें।

मध्यस्थों का उन्मूलन

केवल कुछ राज्यों में कुछ मामूली भू-धारण अधिकार, जैसे कि इनाम, आदि को छोड़कर, प्रायः सारे देश के मध्यस्थों का उन्मूलन पूरी तौर पर हो चुका है। मध्यस्थों के उन्मूलन से पैदा हुई समस्याएं जिन पर अब राज्य सरकारें ध्यान दे रही हैं, मध्यस्थों को दिये जाने वाले मुआवजे को तय और अदा करने, स्थायी जमींदारी अथवा जागीरदारी बन्दोबस्त के इलाकों में बन्दोबस्त सम्बन्धी कार्यों की जांच करने, अधिकारों के कागज-पत्र तैयार करने और एक कार्यक्षम भू-राजस्व प्रशासन तैयार करने से सम्बन्धित हैं। मुआवजे की रकम का अन्दाजा करीब ६१४ करोड़ रुपये है, जो कि इस प्रकार है :

मुआवजे की रकम	३७८ करोड़
पुनर्वास अनुदान	८६ करोड़
ब्याज	१५० करोड़
कुल :	६१४ करोड़

अभी तक लगभग ७३ करोड़ रुपया मुआवजे में दिया जा चुका है, जो कि मुआवजे की कुल रकम का एक बहुत छोटा भाग है। ऐसे लाखों मध्यस्थ हैं जो छोटे-मोटे मालिक हैं और मुआवजे के रूप में बहुत कम रकम पाएंगे। इसलिए यह जरूरी है कि मुआवजे की अदायगी के बारे में, खास तौर पर छोटी आय के मध्यस्थों को दिये जाने वाले मुआवजे की ओर, तुरन्त ध्यान दिया जाय।

भूमि-सुधारों को उचित रूप में लागू करने के लिए जरूरी है कि क्षेत्र में एक कार्यक्षम राजस्व प्रशासन हो और भूमि सम्बन्धी अधिकारों के विस्तृत कागज-पत्र रखे जायं, जिनमें काश्तकारों के नाम और उनके द्वारा दिये जाने वाले लगान, आदि का पूरा ब्योरा हो। कई राज्यों में, खास तौर पर आंध्र, बिहार, त्रिवांकुर-कोचीन, आदि में भू-धारण अधिकारों के कागज-पत्र नहीं रखे गये हैं या अधूरे और गलत रखे गये हैं।

काश्तकारी सुधार

काश्तकारी सुधार सम्बन्धी कार्यवाहियों का सम्बन्ध इन बातों से हैं :

१. लगान का नियमन,
२. भू-धारण अधिकार की सुरक्षा, और
३. काश्तकारों के लिए भू-स्वामित्व।

इस दिशा में राज्यों द्वारा जारी किये गये कानून अभी तक दो भिन्न ढंग के रहे हैं। कुछ राज्यों में विस्तृत कानून बनाए जा चुके हैं, जबकि कुछ अन्य राज्यों में अभी तक अस्थायी कार्यवाही की गयी है, जिसके अनुसार बेदखली रोकने और लगान तय करने से सम्बन्धित व्यवस्था हो चुकी है। काश्तकारी-सुधारों के लिए आसाम, बम्बई, जम्मू और कश्मीर, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल तथा भूतपूर्व हैदराबाद राज्य में और दिल्ली व हिमाचल प्रदेश के केन्द्र द्वारा प्रशासित इलाकों में व्यापक कानून जारी हो चुके हैं। आंध्र (भूतपूर्व), केरल, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा और बिहार में अभी तक सिर्फ काश्तकारों की बेदखली रोकने और उचित लगान तय करने के बारे में कार्यवाही की गई है। इन राज्यों के सम्पूर्ण सुझावों को अभी अन्तिम रूप देना बाकी है। मध्यप्रदेश सरकार को सी. पी. के इलाकों में काश्तकारों की बेदखली रोकने के लिए अभी भी कानून जारी करना है, यद्यपि यह व्यवस्था की जा चुकी है कि ५ साल की लगातार अवधि में ३ साल या ज्यादा अरसे तक काश्त के लिये दी गयी जमीन पर काश्त करने वाला ही काबिज होगा। बम्बई राज्य के कुछ इलाकों (कच्छ और विदर्भ) में काश्तकारों की हालत अभी तक सुरक्षित नहीं है और उनकी बेदखली के रोकने लिए जरूरी कानून जारी करने हैं।

लगान की व्यवस्था

पहली पंचवर्षीय योजना में सुझाया गया था कि लगान की दर कुल पैदावार के १।४ या १।५ भाग से ज्यादा नहीं होनी चाहिये। यही सुझाव दूसरी योजना में भी दोहराया गया है। केवल केरल, त्रिवांकुर-कोचीन के इलाके और मध्यप्रदेश के अधिकांश भागों को छोड़कर, जहां कि अभी तक पुराने रिवाज के मुताबिक या जमींदार और काश्तकार के परस्पर समझौते के अनुसार, लगान की दर तय की जाती है, अन्य सभी राज्यों में लगान की उचित दर तय करने के लिये कानूनी कार्यवाही की जा चुकी है।

लेकिन, विभिन्न राज्यों द्वारा तय किये गये लगान की दरों में बहुत फर्क है। आसाम, बम्बई (भूतपूर्व), मैसूर, उड़ीसा और राजस्थान के कई इलाकों में, भूतपूर्व हैदराबाद राज्य में तथा दिल्ली और हिमाचल प्रदेश के केन्द्रीय प्रशासित इलाकों में लगान की अधिकतम दर पैदावार के १।४ भाग के बराबर या उससे काम निर्धारित की गयी है। दो राज्यों, यानी बम्बई और राजस्थान, में लगान की यह दर कुल पैदावार की १।६ रखी गयी है। अन्य राज्यों में अधिकतम दर १।३ तय की गयी है। भूतपूर्व आंध्र, पश्चिमी बंगाल और जम्मू व कश्मीर में कई जगह कुल पैदावार का ५० प्रतिशत भाग तक लगान के रूप में तय किया गया है (विभिन्न राज्यों में कानून द्वारा निर्धारित अधिकतम लगान की दर इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित तालिका में दी गयी है)। आर्थिक दृष्टि से लगान की दरों की इस भिन्नता को उचित नहीं कहा जा सकता।

देखा गया है कि बटाई के रूप में लगान लेना मुश्किल है। पैदावार के रूप में लगान को नकद लगान में बदलने में भी कई मुश्किलें हैं। इसलिए, दूसरी पंचवर्षीय योजना में एक सुझाव दिया गया था कि भू-राजस्व के अपवर्त्यंक अंक के रूप में लगान तय किया जाना चाहिये। यह सुझाव सिर्फ कुछ ही राज्यों में अपनाया गया है। यह कहना आवश्यक नहीं कि बटाई या नकद या भू-राजस्व के अपवर्त्यंक अंक के रूप में निर्धारित लगान तभी कारगर तौर पर जारी किया जा सकता है, जबकि काश्तकारों को भू-धारण अधिकार की सुरक्षा प्राप्त हो।

भू-धारण अधिकार की सुरक्षा

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कई राज्यों में विस्तृत कानून जारी किए गए हैं, जबकि कई राज्यों में केवल बेदखली रोकने के लिये कार्यवाही की गयी है। पहली पंचवर्षीय योजना में कहा गया था कि पट्टे या भू-धारण अधिकार की सुरक्षा दी जानी

चाहिये, लेकिन जमीन के उन मालिकों को, जो प्रामाणिक काश्तकार हैं, खुदकाश्त के लिए जमीन रखने की इजाजत मिलनी चाहिये। इस तरह की जमीन परिवार के उन बालिग कार्यकर्ताओं के लिए ही सीमित है जो खुदकाश्त करने लायक हों और महज कभी-कभी मजदूरों की मदद लेते हों। महसूस किया गया कि इस सिफारिश को अमल में लाने के लिए काश्तकारों की बेदखली के खतरे को घटाना जरूरी है, जिसके लिये संरक्षण पैदा करने होंगे। अतः दूसरी पंचवर्षीय योजना में पारिवारिक आराजियों या उससे कम के स्वामियों तथा पारिवारिक आराजियों से अधिक भूमि रखने वाले लोगों के बीच एक फर्क कायम किया गया है। सुझाव रखा गया है कि प्रथम वर्ग के लोगों को लगान पर दी हुई जमीन में से आधी जमीन अपने लिए हासिल करने का हक होगा, लेकिन यह जमीन बुनियादी आराजी अर्थात् पारिवारिक आराजी के १।३ भाग से कम नहीं होगी। अगर किसी काश्तकार की जमीन मालिक द्वारा पुनः प्राप्त करने से बुनियादी आराजी से कम हो जाती है, तो उसे नई जमीन दिलाने की कोशिश करना सरकार का फर्ज है। पारिवारिक आराजी से ज्यादा जमीन रखने वाले मालिकों को पुनः भूमि प्राप्त करने का अधिकार दिया जायगा, बशर्ते कि काश्तकारों को बुनियादी और पारिवारिक आराजी के बीच की कुछ जमीन रखने का अधिकार हो।

जिन राज्यों में विस्तृत कानून जारी किए गए हैं, उनमें भू-धारण अधिकार की सुरक्षा के लिए अपनाये गये तरीके मुख्यतः निम्नलिखित तीन प्रकार के हैं:

१. सभी काश्तकारों को भू-धारण अधिकार की पूर्ण सुरक्षा दी गयी है और भू-स्वामियों को खुदकाश्त के लिए जमीन वापस पाने का अधिकार नहीं दिया गया है।

२. भू-स्वामियों को खुदकाश्त के लिए सीमित भूमि पुनः प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है, बशर्तेकि जमीन का कुछ भाग या एक अल्पतम अंश काश्तकारों को दिया जाय।

३. भू-स्वामियों द्वारा पुनः प्राप्त की जाने वाली भूमि की सीमा निर्धारित की गयी है, लेकिन काश्तकार को निजी काश्त के लिए अल्पतम भाग रखने का अधिकार नहीं दिया गया है।

उत्तर प्रदेश और दिल्ली पहले वर्ग में आते हैं। इन राज्यों में सभी काश्तकार राज्य के सीधे सम्पर्क में आ गये हैं और उन्हें पूर्ण सुरक्षा प्राप्त है।

बम्बई, पंजाब, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश दूसरे वर्ग में आते हैं। बम्बई में भू-स्वामी अपनी खुदकाश्त के लिए काश्तकारों से ३ लाभकर आराजियों (१२ से ४८ एकड़) तक भूमि पुनः प्राप्त कर सकता है, बशर्ते कि हर काश्तकार को मिली हुई जमीन का आधा भाग उसी के पास रहे।

पंजाब (पेप्सू सहित) में पुनः भूमि प्राप्त करने की सीमा ३० एकड़ तक रखी गयी है (विस्थापित व्यक्तियों के लिए पंजाब में ५० एकड़ और पेप्सू में ४० एकड़ तक की सीमा रखी गयी है)। हर काश्तकार को ५ एकड़ अपने पास रखने का अधिकार है, जबतक कि सरकार उसे और कोई दूसरी जमीन नहीं दिला देती। पंजाब के इलाके में राज्य सरकार ने ऊपर बतायी गयी सीमा के अतिरिक्त भूमि को हस्तगत करने का अधिकार ले लिया है। पेप्सू में आराजी की अधिकतम सीमा लागू की जा चुकी है और अब अतिरिक्त भूमि भूमिहीन काश्तकारों को मिल सकेगी। पेप्सू में एक व्यवस्था यह भी की गयी है कि जो काश्तकार किसी जमीन पर १२ वर्ष तक काबिज रहा हो, उसे कम से कम १५ एकड़ से बेदखल न किया जा सकेगा।

राजस्थान में कम से कम १,२०० रुपये की आमदनी देने वाली जमीन से अतिरिक्त जमीन भू-स्वामियों को पुनः प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है।

हिमाचल प्रदेश में भू-स्वामियों द्वारा भूमि पुनः प्राप्त करने की सीमा ५ एकड़ तय की गयी है, और हर काश्तकार को अपनी काश्त की जमीन का ३।४ भाग खुद रखने का अधिकार है।

जम्मू और कश्मीर, पश्चिमी बंगाल और भूतपूर्व हैदराबाद राज्य तीसरे वर्ग में आते हैं।

हैदराबाद में भूमि के मालिक को पारिवारिक आराजी की तिगुनी भूमि पुनः प्राप्त करने का अधिकार है। एक पारिवारिक आराजी ४ एकड़ से लेकर ६० एकड़ तक होती है। काश्तकार को बुनियादी आराजी (पारिवारिक आराजी के एक

तिहाई) के बराबर का निम्नतम क्षेत्र या अपनी भूमि का आधा भाग, दोनों में से जो भी कम हो, अपने पास रख लेने का अधिकार है। यदि कोई व्यक्ति बुनियादी आराजी या उससे कम का मालिक है, तो उसे पूरी जमीन पाने का हक है।

जम्मू और कश्मीर में, भू-पुनर्ग्रहण की सीमा इस प्रकार नियत की गयी है—कश्मीर प्रान्त में २ एकड़ सिंचित जमीन या ४ एकड़ असिंचित जमीन तथा जम्मू प्रान्त में ४ एकड़ सिंचित जमीन या ६ एकड़ असिंचित जमीन। यदि किसी भू-स्वामी की आराजी कश्मीर प्रांत में ४ एकड़ सिंचित जमीन या ६ एकड़ असिंचित जमीन से, और जम्मू प्रांत में ६ एकड़ सिंचित जमीन या ८ एकड़ असिंचित जमीन से अधिक नहीं है, तो उसे भू-पुनर्ग्रहण की सीमा से अधिक भूमि ग्रहण करने की स्वतन्त्रता दी जायेगी। उस भूस्वामी को, जिसकी आराजी इनसे अधिक नहीं है, काश्तकारों के पास भू-पुनर्ग्रहण की सीमा से अधिक रहने वाली भूमि की पुनः प्राप्ति का अधिकार होगा।

पश्चिमी बंगाल में जिस भू-स्वामी के पास ७॥ एकड़ से कम भूमि है, उसे बटाईदार से सारी भूमि पुनः प्राप्त करने की इजाजत है; और जिसके पास ७॥ एकड़ से अधिक भूमि है, उसे पट्टे की जमीन का सिर्फ दो-तिहाई भाग ले लेने का अधिकार है। एक भू-स्वामी कितनी अधिक भूमि रख सकता है, इस सम्बन्ध में कोई सीमा निर्धारित नहीं की गयी है। फिर भी, कानून अधिकतम भूमि के लिए २५ एकड़ का प्रतिबन्ध लगाता है, जिसे भू-पुनर्ग्रहण पर एक निर्धारित सीमा माना जायेगा।

खुदकाश्त की परिभाषा

दूसरी पंचवर्षीय योजना ने कितने ही राज्यों में की गयी 'खुदकाश्त' की परिभाषा की कमियों की ओर इशारा किया है। फलतः उन व्यवस्थाओं को जो कि काश्तकारी से संबंधित हैं, अक्सर उनके सही रूप में नहीं अपनाया जाता और ऐसे किसानों को मजदूर या 'काश्तकारी में भागीदार' या 'फसल का बटाईदार' समझा जाता है और काश्तकारों को दिये गये अधिकारों से वंचित रखा जाता है। अतः यह सुझाव दिया गया था कि वर्तमान विधान का पुनः परीक्षण किया जाना चाहिए और खुदकाश्त की परिभाषा में निम्नलिखित बातें सम्मिलित की जानी चाहिए :

१. खुद मालिक या उसके परिवार के किसी सदस्य द्वारा व्यक्तिगत निरीक्षण।

२. व्यक्तिगत निरीक्षण प्रभावकारी बनने के लिए यह आवश्यक हो कि मालिक या उसके परिवार का कोई सदस्य उस गांव में, जिसमें कि भूमि स्थित है, या पास के किसी गांव में रहे। पास का गांव कितनी दूरी पर हो, इस का निश्चय करना होगा।

३. मालिक काश्त के तमाम जोखिमों को अनिवार्य रूप से वहन करे। जहां नौकर या मजदूर लगाये जायें, और पारिश्रमिक फसल के एक भाग के रूप में चुकाया जाये, उस व्यवस्था को काश्तकारी के तौर पर स्वीकार किया जाना चाहिए।

४. उन मामलों में जहां भूमि खुदकाश्त के लिए पुनः प्राप्त की जाती है, मालिक या उसके परिवार के सदस्य को अनिवार्य रूप से खुद मेहनत करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में भी विचार किया जा सकता है।

बम्बई में खुदकाश्त की परिभाषा बहुत स्पष्ट है, और हैदराबाद, मध्यप्रदेश (बरार), मैसूर, राजस्थान, सौराष्ट्र, अजमेर और विंध्य प्रदेश में खुदकाश्त की परिभाषा में ऊपर लिखी कुछ बातें सम्मिलित हैं। लेकिन किसी भी राज्य में 'खुदकाश्त' की परिभाषा में ऊपर लिखित सारी बातें सम्मिलित नहीं हैं।

बेदखल काश्तकारों को जमीन वापस दिलाना

कई कारणों से, कुछ राज्यों में बड़े पैमानों पर काश्तकारों को बेदखल किया जाता रहा है। ये बेदखलियां सामान्यतः "स्वैच्छिक समर्पण" के रूप में हुई हैं। इस तरह की बेदखलियां बम्बई, हैदराबाद और कुछ अन्य राज्यों में हुई हैं। इस स्थिति के सुधार के लिए दूसरी पंचवर्षीय योजना में निम्न दुहरे तरीकों का सुझाव पेश किया गया है :

१. गत तीन सालों में जो बेदखलियां और "समर्पण" हुए हैं, उनपर फिर से विचार किया जाना चाहिए और उन्हें फिर से दखल दिया जाना चाहिए।

२. भविष्य में, भूमि के अनुचित दबाव देकर लिये जाने वाले "स्वैच्छिक समर्पण" को रोकने के लिए यह प्रबन्ध किया जाय कि जब तक राजस्व अधिकारी द्वारा भूमि के समर्पण को विधिवत रजिस्टर्ड नहीं कर लिया जायेगा, तब तक उसे न्यायोचित नहीं माना जायेगा। अतः जमींदार को सिर्फ उतनी ही भूमि पुनः ग्रहण करने का अधिकार होगा, जितनी कि वह भू-पुनर्ग्रहण के अधिकार के अन्तर्गत ले सकता है।

बिहार, मद्रास और भोपाल में काश्तकारों को फिर से दखल दिये जाने के सम्बन्ध में व्यवस्था करदी गयी है।

बिहार में, फरवरी १९५३ के बाद बेदखल किये गये काश्तकारों को फिर से दखल दिये जाने के सम्बन्ध में कानून बना दिया गया है। यह दखल प्रार्थना-पत्र पर या कलक्टर द्वारा अपने आप दिया जाता है।

मद्रास में, १ दिसम्बर १९५३ के बाद बेदखल किये गये काश्तकारों को प्रार्थना-पत्र देने पर फिर से दखल देने के सम्बन्ध में एक व्यवस्था की गयी है। लेकिन राजस्व अधिकारियों द्वारा अपने आप काश्तकारों को फिर से दखल देने के लिए कोई प्रबन्ध नहीं है। साथ ही, काश्तकारों को पुनः दखल पाने के लिए प्रार्थना-पत्र भेजने की अवधि भी एक मास रखी गयी थी। अतः इस अवधि में केवल ४६६ मामले ही पुनः दखल प्राप्ति के लिए दर्ज हुए और अवधि के बीत जाने पर ३०८ मामले दर्ज किये गये, जिन्हें राजस्व अधिकारियों ने विशेष अधिकारों के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया था। लेकिन इनमें से १८ मामलों को स्वीकार नहीं किया गया।

भोपाल में अधिनियम लागू होने से पहले के तीन सालों के अन्तर्गत बेदखल किये गये उप-काश्तकारों को फिर से दखल दिये जाने के सम्बन्ध में व्यवस्था कर दी गयी थी। लेकिन राजस्व अधिकारियों द्वारा अपने आप काश्तकारों को फिर से दखल देने के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी।

बिहार और भोपाल में भूमि की पुनः प्राप्ति के अधिकार प्राप्त करने के लिए कितने ही काश्तकारों ने प्रार्थना-पत्र भेजे, इस सम्बन्ध में सूचनायें प्राप्य नहीं हैं।

"स्वैच्छिक समर्पण" को भविष्य में रोकने के सम्बन्ध में मैसूर ही एकमात्र राज्य है जिसने कि योजना में सुझाये गये तरीकों पर व्यवस्था की है।

काश्तकारों के लिए स्वामित्व के अधिकार

पहली पंचवर्षीय योजना में यह सुझाया गया था कि आम नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे कि पुनर्ग्रहण न की जाने वाली जमीन के काश्तकार उस के स्वामी हो सकें। इस दिशा में की गयी प्रगति धीमी थी। अतः दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह सिफारिश की गयी है कि पुनर्ग्रहण न किये जाने वाले क्षेत्र के सभी काश्तकारों का तुरन्त राज्य के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए और प्रत्येक राज्य के पास एक ऐसी योजना होनी चाहिए जिससे पुनर्ग्रहण न किये जाने वाले क्षेत्र के काश्तकारों को स्वामित्व प्राप्त हो सके और जमींदार और काश्तकार का पुराना रूढ़िगत रिश्ता समाप्त किया जा सके। यह सुझाया गया था कि इस सिलसिले में लगान कम करने को उच्च प्राथमिकता दी जानी जरूरी है।

काश्तकारों को स्वामित्व के अधिकार दिये जाने के लिए राज्यों में अपनाये गये साधन तीन विभिन्न प्रकार के हैं। जैसे कि :

१. उत्तर प्रदेश और दिल्ली में तमाम काश्तकारों को राज्य के साथ सीधे सम्बन्ध में लाया गया। उत्तर प्रदेश में राज्य ने काश्तकारों से लगान वसूल किया और बढ़ी हुई मालगुजारी में से मालिकों को मुआवजा दिया। दिल्ली में काश्तकारों ने स्वामित्व के पूरे अधिकार प्राप्त किये और सरकार को मालगुजारी देने के अतिरिक्त, उन्होंने मालिकों को मुआवजा भी दिया। हैदराबाद काश्तकारी अधिनियम में एक व्यवस्था सम्मिलित है जिसके मातहत सरकार अधिसूचना प्रसारित करने पर काश्तकारों को किसी भी जमीन पर स्वामित्व के अधिकार देने का अधिकार है। इस व्यवस्था को थोड़े ही जिलों में कार्यान्वित किया गया है।

079258

२. काश्तकारों को एक नियत तारीख तक स्वामित्व खरीदने के लिए कहा गया है, जिसके बीत जाने पर उन्हें बेदखल कर दिया जायेगा। इसी ढंग की एक व्यवस्था बम्बई के कानून में भी सम्मिलित की गयी है।

३. कानून द्वारा निर्धारित कीमत की अदायगी पर स्वामित्व खरीदने का स्वैच्छिक अधिकार काश्तकारों को दिया गया है। अदायगी लम्बी अवधि में किश्तों द्वारा की जा सकेगी। इसी ढंग की व्यवस्थायें पंजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, हैदराबाद के भूतपूर्व राज्य, मध्य भारत और विन्ध्य प्रदेश में की गयी हैं। लेकिन हर राज्य में व्यवस्था के ब्योरों और काश्तकारों द्वारा अदा किये जाने वाले मुआवजे की दरों में बहुत अन्तर है।

खरीद के स्वैच्छिक अधिकार का सामान्यतः उपयोग नहीं किया गया है, और विभिन्न कारणों से काश्तकारों के लिए स्वामित्व के अधिकार का खरीदना संभव नहीं हुआ है। जैसा कि दूसरी पंचवर्षीय योजना में सुझाया गया है, इस काम का संभव तरीका यह होगा कि योजना में सिफारिश किये गये स्तर तक लगानों में कमी कर दी जाय और काश्तकारों को राज्य के सीधे संपर्क में लाया जाय। मुआवजे की किश्तों के मद में काश्तकारों द्वारा की जाने वाली वार्षिक अदायगी और राज्य को दी जाने वाली मालजारी की राशि का नियमन इस ढंग से किया जाना चाहिए कि योजना में सुझाये गये उचित लगान से यह राशि अधिक न हो जाय। इस मानदंड के अनुसार, कुछ व्यवस्थाओं में प्रस्तावित अदायगी की दरें बहुत अधिक ऊँची हैं।

आराजियों पर अधिकतम सीमा

पहली पंचवर्षीय योजना में यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया गया था कि आराजी पर अधिकतम सीमा नियत की जानी चाहिए। यह सुझाया गया था कि अधिकतम सीमा का निर्धारण करने से संबंधित आंकड़े प्राप्त करने के लिए भूमि की आराजियों और कृषि की गणना का काम किया जाना चाहिए। अधिकतर राज्यों में गणना का काम किया गया है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस सिफारिश को फिर से दुहराया गया है कि तीन पारिवारिक आराजियों तक अधिकतम सीमा नियत की जानी चाहिए। पारिवारिक आराजी की धारणा पर योजना में सोच विचार किया गया था और इसके कार्यकरण में आने वाली कठिनाइयों को सामने रखते हुए यह सुझाया गया था कि इस विषय पर और अधिक अध्ययन करने के लिए विशेषज्ञों का एक छोटा-सा दल नियुक्त किया जाय। इस सिफारिश के अनुसार, खाद्य और कृषि मंत्रालय ने एक समिति नियुक्त कर दी है जो संभव है कि नवम्बर १९५७ में अपनी रिपोर्ट पेश कर देगी।

निम्नलिखित राज्यों में भविष्य में अर्जित की गयी भूमि पर अधिकतम सीमा लागू कर दी गयी है :

१. आसाम	५० एकड़
२. बम्बई	१२ से ४८ एकड़ तक
३. सौराष्ट्र (अब बम्बई में)	३ लाभकर आराजियां (६० से १२० एकड़ तक)
४. भूतपूर्व हैदराबाद राज्य	३ पारिवारिक आराजियां (१२ से १८० एकड़ तक)
५. जम्मू और कश्मीर	२२¾ एकड़
६. मध्यभारत (अब मध्यप्रदेश में)	५० एकड़
७. पेप्सू (अब पंजाब में)	३० प्रामाणिक एकड़ (विस्थापित व्यक्ति है तो ४० प्रामा० एकड़)
८. उत्तरप्रदेश	३० एकड़
९. पश्चिमी बंगाल	२५ एकड़
१०. दिल्ली	३० प्रामाणिक एकड़

निम्नलिखित राज्यों में वर्तमान आराजियों पर अधिकतम सीमा के सम्बन्ध में कानून बना दिया गया है :

आसाम	५० एकड़
भूतपूर्व हैदराबाद राज्य	४½ पारिवारिक आरजियां (१८ से २७० एकड़ तक)
जम्मू और कश्मीर	२२¾ एकड़
पेप्सू (अब पंजाब में)	३० एकड़ प्रामा० (विस्थापित व्यक्ति हो तो ४० प्रामा०एकड़)
पश्चिमी बंगाल	२५ एकड़
हिमाचल प्रदेश	चम्बा जिले में ३० एकड़ और अन्य क्षेत्रों में निर्धारित १२५ रुपये भूमिकर की जमीन।

कानून के मातहत पंजाब सरकार को उन भू-स्वामियों से भूमि ले लेने के अधिकार दे दिये गये हैं, जिनके पास ३० एकड़ (अगर विस्थापित व्यक्ति है तो ५० एकड़) से अधिक भूमि है। यह भूमि उन काश्तकारों के बसाने के लिए ली जायेगी जिन्हें बेदखल कर दिये जाने की संभावना है।

जम्मू और कश्मीर में वर्तमान आराजियों पर अधिकतम सीमा लागू करने का कानून कार्यान्वित किया जा चुका है। भूतपूर्व हैदराबाद राज्य के निम्नलिखित क्षेत्रों में यह काम हाथ में लिया जा चुका है :

१. खमाम जिला और वारंगल जिले का कुछ भाग (अब आन्ध्र प्रदेश में)

२. औरंगाबाद जिला (अब बम्बई में)

३. यादगिर जिले का कुछ भाग (अब मैसूर में)

इन क्षेत्रों में अतिरिक्त भूमि की सीमाबन्दी के लिए कदम उठाये जा रहे हैं।

इस कानून में कानून को धोखा देने के लिए स्वामित्त्व हस्तान्तरित करने के सम्बन्ध में पर्याप्त व्यवस्थायें नहीं की गई हैं। शुरू में जितना अनुमान लगाया गया था, उससे अतिरिक्त भूमि अब बहुत कम प्राप्त हुई है।

पश्चिमी बंगाल में भी अधिकतम सीमा लागू कर दी गई है और भूमि अर्जित करने के लिए और कार्यवाहियां की जा रही हैं।

अन्य राज्यों में अभी तक इस सम्बन्ध में विधान नहीं बनाये गये हैं।

चकबन्दी और भूमि को छोटे खंडों में बटने से रोकना

आराजियों की चकबन्दी के प्रश्न पर कोई नीति सम्बन्धी बहस नहीं उठती। प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं का अभाव और होने वाले व्यय, ये दो मुख्य कठिनाइयां हैं। पहली योजना के दौरान बम्बई में लगभग २१ लाख एकड़, मध्य प्रदेश में लगभग २९ लाख एकड़, पंजाब में लगभग ४८ लाख एकड़, पेप्सू में १३ लाख एकड़, उत्तर प्रदेश के २१ जिलों की एक-एक तहसील में यह काम चल रहा है। दूसरी योजना के लिए राज्य की योजनाओं में इस काम के लिए ३८२ लाख रुपये की व्यवस्था की गयी है। कुछ राज्यों को छोड़ कर, जिनके आंकड़े प्राप्त नहीं हैं, चकबन्दी का लक्ष्य ३८० लाख एकड़ से ऊपर रखा गया है।

राज्य अपनी योजनाओं को विस्तृत कर सकें, इस विचार से यह निर्णय किया गया है कि चकबन्दी के लिए राज्यों द्वारा किये गये कुल व्यय में ५० प्रतिशत केन्द्रीय सहायता दी जायेगी। राज्यों की संशोधित योजनाओं की प्रतीक्षा है।

भूमि छोटे खंडों में विभक्त न हो, इस सम्बन्ध में १५ राज्यों में व्यवस्थायें लागू कर दी गयी हैं। व्यौरे में कुछ विभिन्नताओं के साथ, सामान्यतः कानून द्वारा यह रोक लगा दी गई है कि किसी भी आराजी का हस्तान्तरण या विभाजन इस ढंग से नहीं होने दिया जायेगा कि भूमि का कोई प्लाट या आराजी इतनी छोटी हो जाय कि उसपर काश्त करना अलाभदायक या अनार्थिक हो। कुछ राज्यों में इन व्यवस्थाओं का सम्बन्ध काश्तकार की कुल आराजी से है, जबकि अन्य राज्यों में ये व्यवस्थाएं आराजी के हर एक टुकड़े के आकार का नियमन करती हैं।

भूदान और ग्रामदान

प्राप्त सूचनाओं के अनुसार, लगभग ४२ लाख एकड़ भूमि भूदान में प्राप्त हुई है, जिसमें से ६ लाख एकड़ भूमि लगभग दो लाख परिवारों में फिर से बांट दी गयी है। कई राज्यों में भूदान में प्राप्त भूमि के हस्तान्तरण और पुनर्वितरण को सरल और सुविधाजनक बनाने के लिए विधान लागू कर दिये गये हैं। कुछ वित्तीय सहायता भी राज्य सरकारों द्वारा दी गयी है। बिहार में भूदान में प्राप्त भूमि पर सहकारी बन्दोबस्त के लिए भारत सरकार ने २५ लाख रुपये की धनराशि स्वीकृत कर दी है और इसी संबंध में बिहार के लिए १ करोड़ अनुदान की एक अन्य प्रार्थना विचाराधीन है।

इधर कुछ दिनों से भूदान से अधिक ग्रामदान पर जोर दिया जाने लगा है। लगभग २,५०० गांव ग्रामदान में प्राप्त किये जा चुके हैं, जिनमें से १८० गांव उड़ीसा में, २२० गांव बम्बई में और इतने ही मद्रास में प्राप्त हुए हैं। अन्ततः सहकारी

गांव व्यवस्था कायम करना भूदान आन्दोलन का उद्देश्य है, जिसकी कल्पना योजना में भी की गयी है। आन्दोलन ने एक सामाजिक वातावरण भी पैदा कर दिया है, जो भूमि-सुधार के लिए उठाये गये वैधानिक कदमों के कार्यकरण को सरल बनायेगा।

सहकारी खेती

पहली पंचवर्षीय योजना में यह सुझाया गया था कि कृषि उत्पादन की वृद्धि के लिए छोटे और मध्यम किसानों को स्वैच्छिक रूप से सहकारी खेती समितियों में समूहबद्ध होने के लिए उत्साहित करना चाहिए तथा इस काम में उनकी सहायता की जानी चाहिए। इस सम्बन्धमें और भी कई सुझाव पेश किये गये थे। सहकारी प्रबन्ध की उचित पद्धतियों और प्रविधियोंका विकास करने के दृष्टिकोण से सहकारी खेती में आयोजितत प्रयोगों के लिए ४० लाख रुपये का उपबन्ध किया गया था। इस सम्बन्ध में राज्य सरकारों द्वारा जो आंकड़े प्राप्त हुए हैं, उनके अनुसार लगभग १,४०० सहकारी खेती समितियां हैं, जिनमें काश्तकार खेती समितियां, संयुक्त खेती समितियां और सामूहिक खेती समितियां सम्मिलित हैं। इन समितियों के अन्तर्गत लगभग १,९४,००० एकड़ क्षेत्र है। इनमें से कुछ समितियों ने अच्छी तरह काम नहीं किया है। और अन्य समितियां ऐसी हैं जिन्हे यदि सहकारी व्यवस्था से संबंधित विभिन्न समस्याओं को सुलझाने में उचित मार्गदर्शन और सहायता दी जाती तो वे अच्छी सफलता प्राप्त कर सकती थीं। कुछ राज्यों में, जैसे बम्बई में, समितियों को बहुत ही उदार स्तर पर वित्तीय सहायता दी गयी है। पता चला है कि बम्बई की कुछ समितियां बहुत अच्छा काम कर रही हैं। फिर भी, प्रबन्ध की उचित प्रविधि विकसित करने के लिए सहकारी खेती में किये जाने वाले आयोजित प्रयोगों के सम्वन्ध में टिकाऊ प्रयत्न किये जाने का अभाव रहा है,और ४० लाख रुपये के उपबन्ध के एक बड़े भाग का उपयोग नहीं किया गया।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस स्थिति पर विचार किया गया था और यह सुझाया गया था कि इस योजना की अवधि के दौरान में ऐसे बुनियादी पग उठाये जाने चाहिए, जिनसे सहकारी खेती के विकास को ठोस आधार दिया जा सके, ताकि दस साल या अधिक की अवधि के दौरान में कृषि में पर्याप्त भाग पर सहकारी ढंग पर खेती होने लगे।

यह भी कहा गया था कि दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान में सहकारी खेती के लक्ष्य का निर्धारण योजना के पहले वर्ष में प्रत्येक राज्य से विचार-विनिमय करने के बाद किया जायेगा। अतः १ जुलाई से ३ जुलाई १९५६ तक मसूरी में हुए राज्यों के सहकारी मंत्रियों के अधिवेशन में इस मामले को विचार के लिए पेश किया गया था। यह अनुभव किया गया कि देश के विभिन्न भागों में जितनी समितियां शुरू की जायें, इस संबंध में निश्चित लक्ष्य निर्धारित करना कठिन होगा। फिरभी, यह कहा गया था कि योजना की अवधि के दौरान प्रत्येक राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंड में कम से कम एक ऐसी समिति खोलने तथा १९५६-५७ के दौरान लगभग ५०० प्रयोगों का काम हाथ में लेने का लक्ष्य होना चाहिए।

लगभग उसी समय भारत सरकार का ध्यान इस क्षेत्र में चीन द्वारा प्राप्त सफलताओं की ओर खींचा गया। चीन की सफलताओं का सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के विचार से योजना कमीशन ने एक प्रतिनिधि मंडल वहां की कृषि सहकारिता का अध्ययन करने तथा ऐसी योजना की सिफारिश करने के लिए, जिसे भारत में चलाया जा सके, चीन भेजा था। प्रतिनिधि मंडल ने इस वर्ष फरवरी में अपनी रिपोर्ट पेश कर दी थी। कृषि योजना और प्रविधि के अध्ययन के लिए चीन गये एक अन्य प्रतिनिधि मंडल ने भी सहकारी खेती के संबंध में कुछ सिफारिशें पेश की थीं। दोनों प्रतिनिधि मंडलों की सिफारिशों पर फैसला करने के पहले भारत सरकार ने राज्य सरकारों से इस संबंध में अपने विचार और सुझाव देने का आग्रह किया है। अभी तक राज्य सरकारों के विचार प्राप्त नहीं हुए हैं, उनका इन्तजार है।

सहकारी खेती के सम्बन्ध में काफी बहस रही है और कई राज्य सरकारें इस कार्यक्रम को विस्तार देने में बहुत शिथिल रही हैं। समय-समय पर सहकारी खेती के कार्यक्रम पर जो एतराज उठाये गये हैं, वे इस प्रकार हैं: भूमि के प्रति किसानों का जबर्दस्त लगाव है। अतः किसी भी बड़े स्तर पर सहकारी खेती का काम तबतक नहीं किया जा सकता,जबतक कि राज्य बल या शक्ति का प्रयोग न किया जाय जोकि किसी भी प्रजातंत्रीय देश में स्वीकार नहीं किया जा सकता; सहकारी खेती किसानोंकी पहल को समाप्त

कर देगी; किसान के व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध कर देगी, और यहां तक कि प्रजातांत्रिक संस्थाओं के विकास तक को रोक देगी। जो लोग इस ढंग से सोचते हैं, उनका विचार है कि सहकारी खेती से प्राप्त होने वाले जिन लाभों का दावा किया जाता है, उन्हें ऋण, वितरण और बाजार के लिए सेवा-समितियों की वृद्धि करके किसानों के लिए प्राप्त किया जा सकता है।

चीन गये सहकारी प्रतिनिधि मंडल ने यह सबल राय व्यक्त की है कि कृषि उत्पादन और नियोजन की वृद्धि के लिए सहकारी खेती वांछनीय और आवश्यक है। प्रतिनिधि मंडल ने यह स्वीकार किया है कि व्यक्तिगत खेती से सहकारी खेती के परिवर्तन में निहित कठिनाइयां बहुत बड़ी हैं। व्यवितगत खेती सदियों से जीवन की एक प्रणाली रही है। एक सहकारी समिति में शामिल होने पर किसान को अपने खेत के व्यवितगत प्रबन्ध का अधिकार खोना पड़ता है और समूह का अनुशासन स्वीकार करना पड़ता है। अपने उत्पादन की क्षमता को समूह के हवाले सौंप कर समूह के ही द्वारा उसके मूल्यांकन पर निर्भर करना पड़ता है। और साथ ही, भूमि में उसके निजी स्वार्थ के हस्तांतरण से उसे छोटा बन कर रहना पड़ता है। फिर भी, उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि यदि सहकारी खेती की वृद्धि में सहायक उचित वातावरण पैदा कर दिया जाय, तो प्रदर्शन और प्रोत्साहन के जरिये बड़े पैमाने पर सहकारी खेती का किया जाना संभव हो जायेगा। इस संबंध में उन्होंने चीन के अनुभवों का जिक्र किया है। इस परिवर्तन को लाने के लिए उन्होंने कितने ही सुझाव दिये हैं। ये सुझाव प्रयुक्त किये जाने वाले भूमि-सुधारों, आवश्यक वातावरण पैदा करने में नेतृत्त्व की भूमिका, विशेष कर सत्ता-प्राप्त दल भूमिका, आवश्यक कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण और सहकारी प्रबन्ध की उचित प्रविधियों को प्राप्त करने के विचार से दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान सहकारी खेती में लगभग १०,००० व्यवितगत प्रयोगों के संगठन तथा योजना के सफल प्रदर्शन, आदि की व्यवस्था से संबंधित हैं।

सहकारी ग्राम-व्यवस्था

पंचवर्षीय योजनाओं का लक्ष्य अन्ततः सहकारी ग्राम-व्यवस्था का निर्माण करना है, जिसकी ओर विभिन्न विकास कार्यक्रम उन्मुख किये जाने चाहिए। कृषि और कितने ही अन्य आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रमों में, जिनका कि ग्रामीण जनता के कल्याण से सम्बन्ध है, ग्राम-व्यवस्था प्राथमिक इकाई होगी। कृषि, व्यापार और ग्रामीण उद्योग से प्राप्त ग्राम समुदाय के साधनों को उत्पादन और नियोजन में अधिकतम बढ़ौती प्राप्त करने के लिए लगाया जायगा। इस दिशा में गांव पंचायतों को सशक्त करना और उन्हें गांव स्तर पर विकास एजेन्सी होने योग्य बनाना तथा सहकारी खेती और सहकारी कार्यवाहियों के विकास के लिए योजना बनाना मुख्य काम है। वे भूमि-सुधार जिनका लक्ष्य भूमि का समान वितरण करना और काश्तकारी के ढांचे की कमियों को दूर करना है, सहकारी ग्राम व्यवस्था के विकास के लिए वातावरण पैदा करेंगे।

भूमि-सुधार सम्बन्धी कानून लागू करने की समस्या

अनेक राज्यों में भूमि-सुधार सम्बन्धी उपायों को बहुत ही धीमी गति से, तथा प्रशासन सम्बन्धी पर्याप्त व्यवस्था किये बगैर ही, कानूनी रूप प्रदान किया गया है। इन उपायों की गति तथा विषय-वस्तु, दोनों पर ही, काफी हद तक सामाजिक और आर्थिक दबावों तथा विरोधी दृष्टिकोणों का प्रभाव पड़ता है। इन परिस्थितियों में यदि बहुत सी कमियां छूटी रह जायं और कानून, प्रशासनिक कठिनाइयों से बिलकुल अलग, स्वयं अपनी अन्दरूनी कमजोरियों के कारण अपना मकसद पूरी तरह हासिल करने में नाकामयाब रहे तो कोई आश्चर्य नहीं।

बहुत से राज्यों में काश्तकारी सुधार कानून को समय-समय पर लगातार संशोधित करना पड़ा है, क्योंकि व्यवहार में या तो वे अप्रभावकारी रहे या असन्तोषजनक साबित हुए। कई राज्यों में, जहां जमींदारों को अपनी जमीन के पुनर्ग्रहण का अधिकार प्रदान किया गया है, अभी तक किसी ऐसी सुरक्षा की व्यवस्था नहीं की गयी है जिससे इस बात का निश्चय हो जाय कि, जहां तक मुमकिन हो, काश्तकार बेजमीन न होने पायें। यदि इस प्रकार के कुछ संरक्षण हैं भी तो उन्हें कई राज्यों में लगान को घटाकर उचित स्तर पर न ला देने के कारण प्रभावहीन कर दिया गया है।

इन कानूनों के सक्रिय प्रभाव के सम्बन्ध में बहुत ही कम आंकड़े उपलब्ध हैं। किन्तु जितनी सूचना उपलब्ध है, वह बड़ी

ही अशान्तिकारक है, क्योंकि इसका सम्बन्ध बम्बई और हैदराबाद से है। इन राज्यों में सम्भवतः रैयतवारी क्षेत्रों वाले अधिकांश अन्य राज्यों की अपेक्षा कहीं अधिक ध्यान काश्तकारी सम्बन्धी समस्याओं पर दिया गया है और कई वर्षों के भीतर काफी व्यापक कानून तैयार किये गये हैं। उनके प्रारम्भिक कानूनों की प्रभावहीनता से सम्बन्धित सूचनाओं से वे राज्य काफी सबक ले सकते हैं जहां अभी भी काश्तकारी कानून पिछड़े हुए हैं।

हैदराबाद सरकार द्वारा की गयी एक जांच से पता चला है कि १९५१-५५ के बीच के चार वर्षों के भीतर बहुत ही बड़े पैमाने पर किसानों की बेदखली हुई। इस अवधि में संरक्षित काश्तकारों की संख्या में ५७ प्रतिशत कमी हुई, जबकि उनके कब्जे की जमीन में ५९ प्रतिशत ह्रास हुआ। सन १९४८-४९ और १९५२-५३ के बीच के ४ वर्षों के भीतर राजनीति और अर्थशास्त्र सम्बन्धी गोखले इन्सटीट्यूट की अनुसंधान कार्यक्रम समिति के आयोजन में १९४८ के बम्बई काश्तकारी अधिनियम की क्रियाशीलता के सम्बन्ध में जांच पड़ताल की गयी थी। इस अवधि के भीतर १९४८-४९ में जमीन पर काबिज काश्तकारों का कब्जा केवल कुल काश्तकारी वाली जमीन के ५८.१ प्रतिशत भाग पर ही कायम रह सका। कुल क्षेत्रफल के ३.२ प्रतिशत भाग पर काश्तकारों को मालिकियत का हक मिल गया। शेष, अर्थात् ४० प्रतिशत से कुछ कम क्षेत्रफल की जमीन पर, जमींदारों ने फिर से दखल लेकर खेती करना प्रारम्भ कर दिया या उनके काश्तकारों को बेदखल करके नये काश्तकारों को जमीन दे दी। अधिकांश मामलों में कानून का सहारा नहीं लिया गया और काश्तकारों ने स्वयं जमीन समर्पित कर दी, क्योंकि जमींदार जमीन को वापस लेना चाहते थे। बम्बई अधिनियम, १९४८, में काश्तकारों को सुरक्षा प्रदान करने के उपायों के अलावा लगान को नियमित करने की भी व्यवस्था की गयी थी। उसके अनुसार, लगान की अधिकतम दर सिंचित क्षेत्र की कुल उपज के १।४ तथा दूसरी जमीनों की कुल उपज के १।३ से अधिक नहीं हो सकती थी। काश्तकारी वाली कुल जमीन के ६३ प्रतिशत भाग पर बटाई लगान चालू था। लगभग ५० प्रतिशत क्षेत्र के लिए चालू लगान की दर उपज के आधे के बराबर थी। कुल १६ गांवों में जांच की गयी थी, जिनमें से १४ गांवों में यह पता चला कि अधिकतम लगान निर्धारित करने वाली अधिनियम की व्यवस्था प्रभावकारी साबित नहीं हुई। रिपार्ट में जांच के निष्कर्ष को संक्षेप में बतलाते हुए कहा गया है कि "व्यावहारिक दृष्टिकोण से अधिनियम का कोई अस्तित्व ही नहीं था।"

भूमि-सुधार पैनल द्वारा नियुक्त काश्तकारी समिति ने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया कि बहुत से राज्यों में कानून द्वारा वैसी सुरक्षा नहीं मिली है जैसी कि अपेक्षित थी। असफलताओं के कारणों का विश्लेषण करते हुए काश्तकारी समिति ने निम्नलिखित तथ्यों का निर्देश किया है :

१. कानून में कमियां।

२. मालिकों और काश्तकारों के हितों को सूक्ष्मतम ढंग से सन्तुलित करने के प्रयत्न में अनेक राज्यों के कानूनों की व्यवस्थाएं इतनी पेचीदा हो गयी हैं कि अधिकांश किसान उन्हें समझने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

३. काश्तकार को कानून समझाने का कोई संगठित प्रयत्न नहीं किया गया है, और न ही इस बात की कोशिश की गयी है कि उससे वे निश्चित रूप से लाभ उठाने लगें।

४. जहां किसान अपने अधिकारों के प्रति सतर्क हैं, वहां भी वे आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से इतनी कमजोर स्थिति में हैं कि अपने अधिकारों पर जोर नहीं दे सकते।

५. काश्तकारों की पहुंच के भीतर कोई मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था नहीं। कुछ राज्यों में गांव सम्बन्धी प्रलेख नहीं हैं जिनसे काश्तकार अपने कब्जे को प्रमाणित कर सकें। जहां कहीं काश्तकार का नाम दर्ज भी है, वहां गांव में जमींदार का इतना जोर है कि अक्सर काश्तकार के लिए अपना कब्जा साबित करना कठिन हो जाता है।

६. कुछ मामलों में माल मुहकमे के अधिकारियों का दृष्टिकोण अनजाने ही काश्तकारों के खिलाफ हो सकता है। काश्तकारी समिति ने कहा है कि "आखिरकार, जमींदारों के विरुद्ध काश्तकारों के अधिकारों के विकास की धारणा अभी थोड़े

दिनों से पैदा हुई है। सम्पत्ति के रूप में जमीन तथा जायदाद के मालिक के अधिकारों की भावना बहुत गहराई में जड़ पकड़ चुकी है। अभी भी जमीन के असली जोतने-बोने वालों के अधिकारों को पूर्णरूप से समझा नहीं जा सका है। हमें बहुत से ऐसे राजनीतिज्ञ भी मिलते हैं जो इस भावना को स्वीकार नहीं करते, हालांकि उनसे माल मुकदमे के अधिकारियों की अपेक्षा अधिक उदार दृष्टिकोण की अपेक्षा की जाती है। अतः माल मुहकमे के अधिकारियों द्वारा अनजाने ही उदार दृष्टिकोण का विरोध होना आसानी से समझ में आ सकता है।"

द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने भूमि-सुधार सम्बन्धी उपायों के लागू करने से सम्बन्धित प्रशासनिक कठिनाइयों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, और बताया है कि कुछ राज्यों में काश्तकारों को बड़े पैमाने पर बेदखल करने तथा काश्तकारों के तथाकथित स्वैच्छिक समर्पण के उदाहरण मिले हैं। प्रशासन के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर जोर दिया गया है :

१. सही-सही और पूरे भूस्वत्व सम्बन्धी कागज-पत्रों को तैयार कर रखना भूमि-सुधार लागू करने के सम्बन्ध में एक पूर्व-आवश्यकता है। प्रायः मालगुजारी के कागजात इतने दोषपूर्ण होते हैं कि उनसे काश्तकारों और बटाईदारों की आराजियों के सम्बन्ध में सूचना नहीं मिल पाती। कुछ क्षेत्रों, जैसे मणिपुर, आसाम (अधियारों का नाम कागज में दर्ज नहीं किया जाता; काश्तकारों के नाम दर्ज हैं लेकिन उनके लगान का उल्लेख नहीं), आंध्र, मैसूर, त्रिवांकुर-कोचीन और कुर्ग में काश्तकारी सम्बन्धी कागज-पत्र पूर्ण रूप से तैयार नहीं किये जाते। मद्रास में अभी हाल में काश्तकारों के नाम दर्ज करने का आदेश दिया गया है। इस बात की सूचना प्राप्त नहीं है कि राज्य भर में काश्तकारियां कागज में दर्ज करली गयी हैं या नहीं, तथा सही-सही कागज तैयार कराने के लिए प्रशासनिक तथा निरीक्षण सम्बन्धी प्रबन्ध किया गया है या नहीं। बिहार में अभी हाल में जमीन सम्बन्धी कागज-पत्र तैयार कराने की दिशा में कदम उठाया जा रहा है और वहां अभी भी बहुत भारी खाई भरनी है। उड़ीसा में भी पूरे और सही कागज-पत्र तैयार कराने के सम्बन्ध में अभी काफी कार्य करना है।

२. जिन क्षेत्रों में जमीन सम्बन्धी सर्वेक्षण नहीं हो सके हैं, वहां तत्काल आनुमानिक रूप से सही नक्शों के आधार पर ताजे मालगुजारी सम्बन्धी कागज-पत्र तैयार कर लेना जरूरी है।

३. इस तथ्य को देखते हुए कि मालगुजारी के कागज-पत्रों में, कई मामलों में, विशेषकर काश्तकार और बटाईदार के काश्तकारी के कब्जे को दर्ज किये जाने के सम्बन्ध में बहुत खामियां हैं, यह सुझाया गया था कि राजस्व अधिकारी जब खेतों का निरीक्षण करने जायें, तो वे गांव पंचायत के कुछ सदस्यों को अपने साथ सम्बद्ध करें। जो कागज-पत्र तैयार किये जायें, उनकी प्रतिलिपियां पंचायत के कार्यालय को निरीक्षण के लिये भेजी जायं और प्रस्तावित परिवर्तनों की प्रतिलिपियां सम्बन्धित पार्टियों को वितरित की जाएं।

एक या दो राज्यों को छोड़कर और कहीं भी इस सिफारिश पर काम नहीं किया गया है।

४. जहां तक नये विधान के पेचीदा होने का प्रश्न है, यह आवश्यक है कि माल के कर्मचारी अपने आप इसके उन उद्देश्यों तथा साधनों को पूरी तरह समझें, जिनके द्वारा उनको प्राप्त किया जाता है। अतः इस सम्बन्ध में अल्प अवधि के प्रशिक्षण कोर्स लाभप्रद होंगे।

यह सामान्य अनुभव की बात है कि कितने ही राज्यों में निम्न माल-अधिकारी वर्ग को, जो कि भूमि-सुधारों के कार्यकरण के लिये सबसे अधिक जिम्मेदार होता है, लागू किये गये कानूनों की प्रकृति और उद्देश्यों के सम्बन्ध में पर्याप्त रूप से जानकारी नहीं दी जाती। यह सत्य है कि आम तौर पर माल-कर्मचारी वर्ग प्रशिक्षित होता है, फिर भी यह वांछनीय होगा कि जैसे ही कोई भूमि-सुधार कानून लागू किया जाय, उसके सम्बन्ध में माल-कर्मचारी वर्ग को पूरा ज्ञान प्रदान कराने के लिये प्रबन्ध किये जायें।

५. भूमि-सुधार की योजना लागू करने में क्रियात्मक और तथ्यपूर्ण जनमत भी बहुत सहायक हो सकता है। अतः भूमि-सुधार विधान के सम्बन्ध में ग्रामीण समुदाय के विभिन्न वर्गों के अधिकारों और कर्त्तव्यों की विस्तार से जानकारी प्रदान करने के लिये पग उठाये जाने चाहिये।

स्पष्टतः, एक ओर कानूनों की पेचीदगी, और दूसरी ओर, किसानों के एक बड़े भाग के अशिक्षित और निरक्षर होने के कारण यह काम बहुत मुश्किल है। यदि राज्य सरकारें किसानों को शिक्षित कराने के लिये ठोस प्रयत्न करें, तो यह मुश्किल हल हो सकती है। किसानों को ऐसी छोटी पुस्तिकाओं के विस्तृत वितरण द्वारा प्रशिक्षित किया जा सकता है, जिनमें कानून की मुख्य बातों का विवरण इस ढंग से दिया गया हो जिसे वे आसानी से समझ सकें। कानून के उपबन्धों और उसके उद्देश्यों को पूरी तरह समझ लेने के बाद राजस्व अधिकारियों का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे काश्तकारों की बैठकें आयोजित करें और विभिन्न वर्गों के लिये किये गये अधिकारों के बारे में उन्हें पूरी तरह से समझाएं। ऐसी बैठकें सभी गांवों में होनी चाहियें।

६. भूमि-सुधारों के लागू करने के साथ गांव पंचायतों को सम्बद्ध करने के लिए भी योजना ने विभिन्न सुझावों की सिफारिश की है। कुछ चुनिन्दा पंचायतों में इसे प्रयोगात्मक तौर पर प्रयुक्त किया जा सकता है।

भूमि नीति के उद्देश्य

भूमि नीति के उद्देश्य दोहरे हैं—सामाजिक न्याय और अधिक उत्पादन। भूमि में दिलचस्पी रखनेवाले विभिन्न वर्गों के अधिकारों में समन्वय स्थापित करने के लिये साधन भी इसमें सम्मिलित हैं। यह समन्वय भूमि के और अधिक समान वितरण और कृषि ढांचे का पुनर्गठन करने के लिये आवश्यक है, क्योंकि इससे वे संस्थाजन्य खामियां दूर की जा सकेंगी, जिनके कारण कृषि के विकास में बाधाएं उपस्थित होती हैं। सामाजिक प्रतिष्ठा और आमदनी और अवसरों की विषमताओं को सच्चे प्रजातांत्रिक समाज के निर्माण के लिये दूर करना जरूरी है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि उन्नत उत्पादन के लिये मनोवैज्ञानिक उत्साह और उपयुक्त संस्थात्मक ढांचा प्रदान किया जाय।

दूसरी पंचवर्षीय योजना ने उद्देश्यों को निम्न प्रकार संक्षिप्त रूप में पेश किया है :

> "पहले, कृषि उत्पादन पर से उन रुकावटों को हटाया जाय जो कृषि ढांचे की प्रकृति के कारण पैदा होती हैं; और दूसरे, कुशलता और उपज में उच्च स्तरों से पूर्ण ग्रामीण-व्यवस्था तेजी के साथ स्थापित करने के लिए अवस्थाएं पैदा की जाएं।"

इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए दूसरी पंचवर्षीय योजना में विभिन्न सिफारिशें की गई हैं, जिनका गत पृष्ठों में जिक्र किया गया है।

हालांकि नीति के मुख्य अंगों पर मतैक्य है, मगर निम्नलिखित को लेकर मुश्किलें पैदा होती हैं :

(१) काश्तकारी सुधार और जमींदारों व काश्तकारों के बीच स्थापित किये जाने वाले संतुलन का स्वरूप; तथा

(२) भूमि की अधिकतम सीमा का निर्धारण।

जहां तक काश्तकारी कानूनों का सम्बन्ध है, मौजूदा कानूनों की उपयुक्त जांच से स्पष्ट है कि विभिन्न राज्यों द्वारा अपनाई गई कार्यवाहियों में बहुत भिन्नता है। अधिकतम लगान की दर पैदावार के १/६ भाग से ५० प्रतिशत तक है। इसी प्रकार काश्तकारों को जमीन का मालिक बनाने के लिये की गई कार्यवाहियों में भी बहुत फर्क है। यद्यपि दूसरी पंचवर्षीय योजना सभी राज्य सरकारों द्वारा स्वीकार की गई है, लेकिन दरअसल की गयी कार्यवाई को देखने से नजर आता है कि यह बड़ा फर्क अभी तक मौजूद है।

मौजूदा आराजियों की अधिकतम सीमा निर्धारित करने की नीति भी व्यापक तौर पर स्वीकार की गई है। लेकिन इस नीति को कार्यरूप में लाने की धीमी रफ्तार से जाहिर होता है कि काफी संशय और हिचकिचाहट मौजूद है। मौजूदा आराजियों की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के लिये केवल कुछ ही राज्यों में कानून जारी किए गए हैं, लेकिन उन कुछ राज्यों में भी कानून को अमल में लाने में काफी तरक्की नहीं हुई है।

भूमि-सुधार सम्बन्धी केन्द्रीय समिति की यह कोशिश कि भूमि-सुधार में मोटे तौर पर एकरूपता लाई जाय और कुछ अल्पतम कानून जारी किए जाएं, उतनी सफल नहीं हुई जितनी कि होनी चाहिए थी, हालांकि समिति की सलाह कई बार स्वीकार की गई थी।

मौजूदा आराजियों की अधिकतम सीमा के निर्धारण पर आपत्ति

दूसरी योजना पर हुई बहस के दौरान आराजियों की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के प्रस्ताव की इस आधार पर

आलोचना की गई कि कृषि तथा अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में सामाजिक न्याय का सिद्धान्त लागू किया जाना चाहिये । जबकि शहरी आय की अधिकतम सीमा निर्धारित नहीं की जाती, ग्रामीण आय की सीमा निर्धारित करना न्यायोचित नहीं है । इस कार्यवाही से शहरी और देहाती आमदनियों के बीच का फर्क और भी बढ़ जायगा । गांवों के रहने वाले अपनी जरूरतें पूरी न कर सकेंगे और न अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिला सकेंगे । सभी नौकरी-पेशे शहरी आबादी के हाथ में आ जायेंगे, गांवों में स्वाभाविक नेता न होंगे और कृषि-उत्पादन को क्षति पहुंचेगी ।

इस सिलसिले में नीचे लिखी बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिये :

(१) पारस्परिक विषमताओं को दूर करने के लिये पेश किए गए सुझावों में आराजियों की अधिकतम सीमा निर्धारित करना सिर्फ एक कार्यवाही है । अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों के प्रयोग का उदाहरण आयकर, धनकर, सम्पत्तिकर, सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार, और ग्रामोद्योग तथा लघु उद्योग सम्बन्धी सिफारिशों जैसी कार्यवाहियों द्वारा रोजगार दिलाने और गरीबों की आमदनी बढ़ाने के कामों में मिलता है ।

(२) अर्थ-व्यवस्था के गैरकृषि-क्षेत्र की विषमताओं को घटाने का ढंग कृषि-क्षेत्र जैसा न होगा । गैरकृषि-क्षेत्र में उत्पादन की मौजूदा इकाइयों को तोड़ना और उन्हें छोटे मालिकों के बीच बांट देना सम्भव नहीं है, जैसा कि कृषि-क्षेत्र में होता है ।

(३) खेती ही जनता का मुख्य धंधा है; और भूमि वितरण देश के अधिकांश लोगों के जीवन और उनकी आर्थिक स्थिति पर असर डालता है । जमीन की मिल्कियत और काश्त के सिलसिले में सामाजिक न्याय सम्बन्धी कार्यवाहियों का किया जाना एक तात्कालिक आवश्यकता है । भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करने का ध्येय न केवल कृषि-आय की विषमताओं को घटाना है, बल्कि भूमिहीन कृषकों के लिये भी कुछ भूमि का प्रबन्ध करना है । भूमिहीन कृषक समाज के सबसे दुःखी अंग हैं और पहली पंचवर्षीय योजना में उनके लिये बहुत कम काम किया गया । दूसरी योजना की समाप्ति पर भी खेती पर बढ़ती हुई आबादी का बोझ कम न हो सकेगा, और भूमिहीन कृषकों को रोजगार दिलाने तथा उनके रहन-सहन में उचित सुधार कर सकने के अवसर सीमित ही रहेंगे । अतः निर्धारित की हुई अधिकतम सीमा से अतिरिक्त भूमि का पुनर्वितरण आवश्यक है ।

(४) भूदान और ग्रामदान आन्दोलनों तथा दोनों पंचवर्षीय योजनाओं के कारण भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के पक्ष में एक दृढ़ जनमत है ।

(५) हमने सहकारी ग्राम अर्थ-व्यवस्था को अपना लक्ष्य माना है । सहकारी ग्राम अर्थ-व्यवस्था विकसित करने के लिये भूमि स्वामित्व की विषमताओं को घटाना अत्यावश्यक है, क्योंकि सहकारिता उन सहजातीय समूहों में ही पनपती है जिनके बीच विशेष असमानताएं न हों ।

(६) जहां तक गांव के नेतृत्व का सम्बन्ध है, माना गया है कि जन-साधारण द्वारा सार्वजनिक कामों में कारगर तौर पर भाग लेना, स्थानीय उद्यम आरम्भ करना और नए नेता पैदा करना बहुत जरूरी है, ताकि दूसरी योजना के अन्तर्गत सुझाए गए विभिन्न विकास कार्यों को पूरा किया जा सके । किन्तु यह नेतृत्व सेवा पर, न कि धन पर, आधारित होना चाहिये ।

प्रमुख मसले

विचारार्थ मुख्य बातें ये हैं :

१. जहां कहीं राज्यों में लगान की दर पैदावार के १/४ या १/५ भाग से अधिक हो, उसे घटाने के लिए तुरन्त कार्यवाही की जाय ।

२. दूसरी योजना में दिए गए सुझावों के अनुसार, काश्तकारों को सुरक्षा दी जाय और राज्य के साथ उनका सीधा सम्बन्ध स्थापित किया जाय । उन्हें आसान किश्तों पर मुआवजा अदा करने के बाद मालिकों द्वारा दखल न की जाने वाली जमीनों का मालिक बना दिया जाय ।

३. मौजूदा आराजियों की उच्चतम सीमा तुरन्त लागू की जानी चाहिये ।

४. भविष्य में भूमि प्राप्ति की अधिकतम सीमा भी निर्धारित होनी चाहिए ।

५. कायदे कानून इस तरह बनाए जाने चाहिए कि उन्हें कारगर तौर पर लागू किया जा सके और उनसे बचने की गुंजाइश को रोका जा सके ।

६. दूसरी पंचवर्षीय योजना में दिए गए सुझावों के अनुसार भूमि-सुधारों को दरअसल लागू किए जाने के लिए कारगर कदम उठाए जाने चाहिए ।

हमारा खाद्यान्न मोर्चा

श्री अजित प्रसाद जैन
केन्द्रीय खाद्य और कृषि मंत्री

सन् १९५६-५७ के कृषि-उत्पादन में १९५५-५६ के उत्पादन के मुकाबले में बहुत अधिक वृद्धि हुई। १९५६-५७ में कृषि-उत्पादन का कुल सूचनांक १२३.० (आधार १९४९-५०=१००) था, जबकि १९५५-५६ में ११५.९ था। इसके ज्ञात हुआ कि १९५५-५६ के मुकाबले १९५६-५७ में ६.१ प्रतिशत वृद्धि हुई। दूसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि-उत्पादन की वृद्धि का लक्ष्य पांच वर्षों में लगभग २७ प्रतिशत या ५.४ प्रतिशत वार्षिक है। पहले वर्ष में वास्तव में जो वृद्धि हुई, वह योजना के अन्तर्गत मानी गयी वार्षिक वृद्धि के मुकाबले ऊंची ही है।

खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि

अकेले गल्ले ही को लें तो १९५६-५७ में गल्ले का उत्पादन ६ करोड़ ८६ लाख टन हुआ, जब कि १९५५-५६ में यह ६ करोड़ ४९ लाख टन हुआ। इस प्रकार मोटे तौर से पिछले साल की तुलना में ३७ लाख टन या ५.६ प्रतिशत अधिक वृद्धि हुई। पांच वर्षों में २३.८ प्रतिशत उत्पादन वृद्धि निश्चित की गयी थी, अर्थात् हर साल लगभग ४.८ प्रतिशत। इस प्रकार, १९५६-५७ में उत्पादन वृद्धि योजना में निश्चित वार्षिक हिसाब से अधिक ही हुई।

१९५५-५६ में चावल का उत्पादन २ करोड़ ६८ लाख टन का हुआ और उसके मुकाबले १९५६-५७ में २ करोड़ ८१ लाख टन हुआ। इस प्रकार, उत्पादन में कुल वृद्धि लगभग ४.८ प्रतिशत हुई। इसी प्रकार, १९५५-५६ में गेहूं के उत्पादन में जो ८.६ लाख टन की वृद्धि हुई थी, वह १९५६-५७ में बढ़कर ९१ लाख टन हो गयी—मोटे तौर से इस प्रकार उत्पादन में ५.८ प्रतिशत वृद्धि हुई। गेहूं व चावल का उत्पादन उल्लेखनीय था। १९५३-५४ में चावल तथा १९५४-५५ में गेहूं का उत्पादन पिछली उच्चतम सीमाओं से ऊपर निकल गया। अन्य खाद्यान्नों में पिछले सालों के मुकाबले भी लगभग १० लाख टन की वृद्धि हुई। बाजरे के उत्पादन में कुछ कमी हुई। इसकी क्षति ज्वार और मक्का की अधिक पैदावार से पूरी हो गयी। रागी और अन्य मोटे अनाजों के उत्पादन में कुछ कम वृद्धि हुई। चने के उत्पादन में लगभग ११ प्रतिशत वृद्धि हुई। १९५५-५६ में इसकी उत्पादन-वृद्धि के आंकड़े ५३ लाख टन थे, जो १९५६-५७ में बढ़कर ५९ लाख टन हो गए।

मूल्यों की प्रवृत्ति

खाद्यान्नों के उत्पादन में लगभग २८ लाख टन की जो उत्पादन-वृद्धि हुई उसके अलावा चालू साल में आयात किये गए खाद्यान्न में से पिछले साल के मुकाबले इस वर्ष लगभग ७००,००० टन अधिक खाद्यान्न को बाजार में लाने की उम्मीद की जाती है। दूसरे शब्दों में, इस वर्ष ३५ लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न की प्राप्ति सुलभ हो सकेगी। इसके बावजूद भी खाद्यान्न के मूल्य बराबर चढ़ते ही रहे। इससे उपभोक्ताओं को बहुत अधिक आघात लगा, विशेष रूप से उस हालत में जब कि १९५५ में खाद्यान्न की कीमतें नीची रहने के बाद आगे चढ़ने लगीं। उस समय उपभोक्ता की हालत स्वाभाविक रूप से अच्छी थी, हालांकि सरकार कीमतों को कुछ सहारा और बढ़ावा देकर किसानों की मदद करना चाहती थी। सरकारी नीति का मुख्य लक्ष्य प्रत्यक्ष रूप से उस खुशनुमा उपाय को अपनाना होना चाहिए, जिससे किसानों को तो अपने माल के उचित दाम मिल जाएं और आम तौर से उपभोक्ता को वे कीमतें बहुत अधिक ऊंची भी मालूम न हो पाएं।

वर्तमान स्थिति की जांच से अब इस बात में जरा भी सन्देह की गुंजाइश नहीं रह गयी कि खाद्यान्नों की मौजूदा मूल्य वृद्धि कोई ऐसी अलग चीज नहीं है जिसका कोई अकेला हल निकाला जाए। यह तो बड़े पैमाने पर उन अनेक बातों का परिणाम है जो इस समय मुल्क की अर्थ-नीति पर आमतौर से अपना असर डाल रही हैं। व्यापारियों ने और बड़े किसानों ने साल के अन्त में अधिक दाम पाने की आशा से जो गल्ले का जखीरा कर लिया है, उसका भी मूल्य वृद्धि में एक बड़ा हिस्सा हो सकता है, किन्तु इसका असली और प्रमुख कारण तो विकास संबंधी खर्चों की वृद्धि और उसके फलस्वरूप मुद्रा के प्रचलन में हुई वृद्धि है। कुछ हद तक यह भी एक कारण हो सकता है कि जनता अपनी क्रयशक्ति बढ़ जाने के कारण बढ़िया किस्म के चावल

और गेहूं को अधिक तरजीह देने लगी है। इसलिये, इस समय सबसे पहले माल को रोक कर रखने और उसके अनुचित वितरण की बुरी आदत के खिलाफ बड़े कदम उठाए जाने चाहिए, जो वर्तमान स्थिति में लाभप्रद और सुविधाजनक होंगे।

बैंक ऋण पर नियन्त्रण

माल को रोक कर रखने की प्रवृत्ति को रोकने के लिये व्यापारियों को कर्ज देने संबंधी रोक को अधिक बढ़ा दिया गया और रिजर्व बैंक ने १९५७ के जून में अनुसूचित बैंकों को एक आदेश जारी किया कि वे खाद्यान्न के खिलाफ व्यापारियों को पेशगी देने में कमी कर दें, और:

(अ) मुद्रा के मार्जन को कम से कम ४० प्रतिशत तक ऊंचा उठा दें।

(ब) खाद्यान्नों पर पेशगी ऋण देने के कुल स्तर को इस प्रकार कम करें कि १९५७ के १२ जुलाई तक और उसके बाद प्रत्येक सप्ताह में चावल और धान का स्तर ६६$\frac{२}{३}$ प्रतिशत से अधिक न हो। अन्य खाद्यान्नों का स्तर १९५६ की इसी सप्ताह में प्राप्ति के स्तर के ७५ प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

(स) चावल व धान के खिलाफ किसी को भी ५०,००० रु० से अधिक के नए ऋण की मंजूरी नहीं दी जानी चाहिए।

दुर्भाग्य से अनेक बैंकों ने इस आदेश का पूरी तरह से पालन नहीं किया। अन्यथा ऋण संबंधी रोक के अब तक और अच्छे परिणाम निकले होते। फिर भी, रिजर्व बैंक स्थिति की गंभीरता के प्रति काफी सतर्क है और वह इस विषय में कई जरूरी कदम उठा रहा है।

सरकार मूल्य-वृद्धि को निरुत्साहित करने के लिये जो अन्य उपाय काम में ला रही है वे इस प्रकार हैं:

(अ) बड़ी संख्या में सस्ते गल्ले की दुकानों द्वारा सरकारी अन्न भंडार से गल्ले की बाजार में निकासी—इस समय सारे देश के अन्दर २९,००० से अधिक सस्ते गल्ले की दूकानें काम कर रही हैं। यह कार्य विदेशों से बड़ी तादाद में गल्ला मंगाने से सम्भव हो सका।

(ब) अत्यावश्यक सामग्री संबंधी अधिनियम में संशोधन, जिससे कि सरकार को विज्ञप्ति जारी करने की तारीख से तीन मास पूर्व बाजार में प्रचलित औसत मूल्य पर अन्न का भंडार प्राप्त करने का अधिकार मिल सके।

(स) गेहूं क्षेत्र का निर्माण।

(द) दक्षिण में चावल क्षेत्र का निर्माण।

इन जरूरी उपायों का आम तौर पर सब क्षेत्रों में या कई खास इलाकों में मूल्यों पर अच्छा असर पड़ा। वे उपाय संक्षेप में नीचे दिये जा रहे हैं।

अत्यावश्यक सामग्री अधिनियम में संशोधन

अत्यावश्यक सामग्री संबंधी अधिनियम में संशोधन के पूर्व सरकार को संग्रहकर्त्ताओं से उनका रोक कर रखा हुआ माल नियंत्रित अथवा स्वीकृत मूल्य के अभाव में बाजार में प्रचलित भाव पर ही खरीदना पड़ता था। इसलिये, उस समय बाजार में चढ़ती कीमतों के फलस्वरूप बड़ा मुनाफा कमाने के लिये माल रोक कर रखने की प्रवृत्ति से उपयोक्ताओं को बचाने का कोई उपाय नहीं था। अत्यावश्यक सामग्री अधिनियम में संशोधन के बाद अब सरकार एक विज्ञप्ति जारी करने के तीन महीने पूर्व बाजार में प्रचलित औसत कीमत पर संग्रहकर्त्ताओं द्वारा रोका हुआ माल खरीद सकती है।

अधिनियम के संशोधन के पश्चात् उक्त विज्ञप्ति १९५७ के ६ जून को जारी की गई और उक्त अधिनियम के संशोधित उपबन्ध जहां तक धान का संबंध है, जम्मू-कश्मीर और केरल राज्यों को छोड़कर, सारे देश में लागू किये गए।

१९५७ की २९ जुलाई को उक्त अधिनियम के संशोधित उपबन्ध, चने की पैदावार के सम्बन्ध में, राजस्थान, पंजाब और उत्तर प्रदेश के चना पैदा करने वाले १५ जिलों में लागू किए गए।

इन विज्ञप्तियों के जारी होने के फलस्वरूप उन क्षेत्रों में, जहां उक्त अधिनियम के संशोधित उपबन्धों को लागू किया गया, चावल व चने के मूल्यों का स्तर एक प्रकार चढ़ने से रुक गया। इस समय वास्तव में चावल के स्टाक आंध्र में प्राप्त किये जा रहे हैं और चने के राजस्थान के श्रीगंगानगर के इलाके में।

गेहूं क्षेत्र

१३ जून, १९५७ से देश तीन निम्नलिखित गेहूं-क्षेत्रों में बांट दिया गया है :

पहला क्षेत्र—पंजाब, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली प्रदेश

दूसरा क्षेत्र—उत्तर प्रदेश

तीसरा क्षेत्र—राजस्थान, मध्यप्रदेश, बम्बई (बम्बई नगर को छोड़ कर)

अब इन क्षेत्रों से गेहूं का न तो निर्यात हो सकता है और न इनमें आयात।

इन गेहूं क्षेत्रों के निर्माण के पूर्व गेहूं उत्पादक क्षेत्रों से फसल आने के बाद बड़ी तादाद में गेहूं बाहर जाया करता था और कमी के दिनों में सरकार बड़े बन्दरगाह वाले नगरों से जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये गेहूं भेजा करती थी। इन क्षेत्रों के बन जाने से जहां एक ओर गेहूं का आयात-निर्यात रुक गया, वहां दूसरी ओर, इन क्षेत्रों के निर्माण के पश्चात् तत्काल ही गेहूं की कीमत, विशेष रूप से पंजाब और मध्य प्रदेश में, काफी गिर गई। उदाहरण के लिये, पंजाब में २ रु० मन तक तथा मध्यप्रदेश में १ से १॥ रु० मन तक गेहूं के दाम गिर गए। यहां तक कि इस समय भी इन क्षेत्रों में गेहूं के भाव एक उचित स्तर पर ही हैं, जबकि वर्षा के मौसम में पहले आम तौर पर गेहूं की कीमतें चढ़ जाया करती थीं। कुछ स्थानों में १९५६ में इस मौसम में जो भाव थे, उससे अब कहीं नीचे हैं।

दक्षिण का चावल क्षेत्र

दक्षिण के चावल क्षेत्र में चार राज्य शामिल हैं : आन्ध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर और केरल प्रदेश। यह क्षेत्र ९ जुलाई, १९५७ से बना है। इसमें जहां एक ओर आंध्र चावल की बचत का क्षेत्र है, वहां दूसरी ओर, केरल कमी का। इस क्षेत्र के निर्माण के समय यह अनुमान किया गया था कि आंध्र में चावल की लगभग ६ लाख टन बचत होगी और केरल, आदि अन्य तीनों राज्यों में शेष वर्ष में लगभग ४ लाख टन की इस प्रकार कमी होगी :

केरल	२.५ लाख टन
मद्रास	१.० ,, ,,
मैसूर	०.५ ,, ,,
	८.० ,, ,,

इस क्षेत्र के निर्माण के समय यह महसूस किया गया था कि आंध्र में चावल की १ से २ लाख टन तक भारी मात्रा में बचत होने पर एक उपयुक्त मासिक कोटे के आधार पर बम्बई और पश्चिम बंगाल को चावल भेजा जा सकेगा। वह मासिक कोटा १९५७ की जुलाई में बम्बई और पश्चिम बंगाल में प्रत्येक के लिये १०,००० टन निश्चित किया गया था। बाद में ज्ञात हुआ कि आंध्र के व्यापारी कलकत्ता और बम्बई के ऊंचे भाव वाले बाजारों में ऊंचे दामों पर ही चावल भेजना चाहते हैं और वे इस पर ही अड़े हैं। उनके हठ और मुनाफाखोरी की भावना के कारण केरल, मैसूर व मद्रास को चावल न जा सका। फलस्वरूप, दक्षिण में चावल-क्षेत्र के निर्माण का मुख्य उद्देश्य पूरा न हो सका। इसलिये आंध्र से बम्बई व पश्चिमी बंगाल को चावल का निर्यात बिल्कुल ही रोक दिया गया।

आंध्र से केरल को चावल का व्यापारिक आधार पर निर्यात अब भी बहुत कम है। इसका स्पष्ट कारण यही है कि केरल में आंध्र की अपेक्षा चावल का भाव नीचा है। उदाहरण के लिये, २६ अगस्त को त्रिवेन्द्रम में चावल का सामान्य मूल्य १८॥ रु० मन था, जब कि विजयवाड़ा में इसका भाव २० रु० प्रति मन था और टांडे पल्लिगुडम् में था १९॥ रु० प्रति मन।

भारत सरकार अब आंध्र में संचित चावल का स्टाक ६ जून, १९५७ के बाद के तीन महीनों में बाजार में प्रचलित औसत मूल्य पर प्राप्त कर रही है। ये मूल्य अत्यावश्यक सामग्री अधिनियम के संशोधित उपबन्धों के लागू होने के बाद प्रचलित हुए हैं। भारत सरकार ने ४,७०० टन चावल पहले ही प्राप्त कर लिया था और अब वह और स्टाक प्राप्त करने जा रही है।

आयात

सस्ते गल्ले की दूकानों द्वारा उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर खाद्यान्न देने के लिये वक्त जरूरत के लिये धीरे-धीरे गल्ले का सुरक्षित भंडार बनाने की दृष्टि से भारत सरकार ने विभिन्न देशों से इस प्रकार दीर्घकालीन समझौते किये हैं :

(अ) १९५७ से अगले पांच वर्षों में बर्मा से २० लाख टन चावल के आयात के लिये; और

(ब) १९५६ से अगले तीन वर्षों में अमरीका से ३१ लाख टन गेहूं व १९ लाख टन चावल के आयात के लिये समझौते किये।

अमरीकी सरकार से सम्पन्न समझौतों की शर्तों के अन्तर्गत भारत सरकार को अन्य देशों से भी सामान्य रूप से आयात जारी रखना है, इसलिये वह आस्ट्रेलिया से भी गेहूं का आयात अपने ही कोष से कर रही है।

बर्मा से चावल की खरीद के अतिरिक्त वियतनाम और रूस से भी चावल खरीदा जा रहा है।

चालू वर्ष में आशा है कि भारत सरकार २५ लाख टन से अधिक गेहूं और लगभग ७५ लाख टन से अधिक कुल चावल प्राप्त करेगी।

इस समय सारी दुनिया में चावल की कमी है। बर्मा में, जो कि विश्व का एक प्रमुख चावल निर्यातक देश है, इतना बचा हुआ चावल नहीं है कि वह अपने पूर्व समझौतों के अनुसार विभिन्न देशों को भेज सकें। वास्तव में, उसके लिये अपने पहले के समझौतों व करारों को पूरा करना मुश्किल हो रहा है। इस प्रकार, यदि और अधिक विदेशी विनिमय किसी प्रकार से मिल भी जाए तो भी विदेशों से चावल मंगाना कठिन समस्या ही बनता रहेगा।

अमरीका से खाद्यान्न के आयात के संबंध में जो करार प्राथमिकता ऋण ४८० के रूप में हुआ था, उसके अन्तर्गत अमरीका से आए खाद्यान्न के मूल्य का भुगतान भारतवर्ष में भारतीय मुद्रा में ही किया गया। इस पर जो विदेशीमुद्रा व्यय हुई वह केवल जहाजी भाड़े के भुगतान के रूप में ही थी।

स्वदेश में खरीद

भारत सरकार के लिये अपने पास खाद्यान्न का पर्याप्त भंडार सुरक्षित रखना बहुत जरूरी है। बाहर से खाद्यान्न मंगाने में जो बड़ी कठिनाइयां हैं उनका उल्लेख तो ऊपर किया ही जा चुका है। इससे यह प्रकट है कि भारत सरकार को अब खाद्यान्न की खरीद स्वदेश में ही करके एक उपयुक्त अन्न भंडार हर समय सुरक्षित रखना है।

इस समय भारत सरकार चावल उड़ीसा के बाजारों से, मिलों तथा बड़े व्यापारियों द्वारा स्वीकृत मूल्य पर, खरीद रही है, जबकि आंध्र में अत्यावश्यक सामग्री अधिनियम के संशोधित उपबन्धों के अनुसार तीन महीनों में बाजार में प्रचलित औसत मूल्य पर चावल खरीदा गया है। अगली खरीफ की फसल के बाद चावल वसूली की योजना को अमल में लाने के प्रश्न पर भी इस समय सरकार सक्रिय रूप से विचार कर रही है। खरीद के तरीकों तथा वसूली के क्षेत्रों पर सावधानी के साथ विचार करना अत्यावश्यक है, ताकि देश के अन्दर के बाजारों से खरीद पर इस वसूली का बुरा असर न पड़ सके।

निष्कर्ष

कुछ क्षेत्रों के अतिरिक्त, सारे देश में कुल मिला कर खाद्यान्न पूर्ति सामान्यतया संतोषजनक रही है, हालांकि इस पर निरन्तर निगाह रखने की बड़ी जरूरत है। यद्यपि, इस समय देश के विभिन्न भागों में गल्ले के मूल्य में वृद्धि से अवश्य चिन्ता हो रही है, किन्तु फिर भी देश में खाद्यान्न की कमी रही है। इसके पूर्व जो उपाय काम में लाए गए हैं, उनसे मूल्यों के नियंत्रण में काफी कामयाबी हुई है। गेहूं के कुछ उत्पादक क्षेत्रों में इस समय गेहूं के मूल्य १९५६ के इसी मौसम की अपेक्षा काफी कम हैं। ज्वार की और अन्य मोटे अनाजों की कीमत भी इस समय धीरे-धीरे गिरती जा रही है।

अ० भा० कां० कमेटी के अधिवेशन में अनौपचारिक वाद-विवाद

भारत की आर्थिक समस्याएं

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की अनौपचारिक बैठक के प्रातःकालीन अधिवेशन का प्रारंभ करते हुए कांग्रेस अध्यक्ष श्री उ. न. ढेबर ने कहा कि अ. भा. कां. कमेटी प्रथमतः साधारण आर्थिक परिस्थिति तथा खाद्यान्न समस्या पर विचार-विमर्श करेगी। उन्होंने कहा कि आर्थिक स्थिति पर खाद्यान्न समस्या का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। तदुपरान्त श्री ढेबर भाई ने श्री टी. टी. कृष्णमाचारी, केन्द्रीय वित्तमंत्री, से कहा कि वे देश की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति पर प्रकाश डालें।

'वर्तमान आर्थिक परिस्थिति' पर श्री कृष्णमाचारी के विचार

श्री टी. टी. कृष्णमाचारी ने भारत की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति का व्योरा देते हुए बताया कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना को कार्यान्वित करने के दौरान देश के सम्मुख कौन-कौन सी कठिनाइयां उभर आई हैं। उन्होंने कहा कि यद्यपि कुछ कठिनाइयां काफी बढ़ गयी हैं, तथापि एक अर्ध-विकसित देश में ऐसा होना स्वाभाविक ही है। उन्होंने बताया कि हमारी पंचवर्षीय योजना को भारतीय जनता ने स्वीकार किया है, और इस योजना के दो लक्ष्य हैं : (क) विकास के क्रम की रफ्तार को तीव्र करना, तथा (ख) जीवन-यापन के स्तर को ऊंचा उठाना। इन दोनों लक्ष्यों का ध्येय जनता की आधारभूत जरूरतों को पूरा करना है, अतः इन दोनों को एक-दूसरे से जुदा नहीं किया जा सकता।

तदुपरान्त श्री कृष्णमाचारी ने योजना के साधनों में पैदा हुई कमियों का जिक्र किया और कहा कि जहां तक योजना के लिये आन्तरिक साधनों की कमी का प्रश्न है, मूल आवश्यकता की वस्तुओं के मूल्यों का रुख बड़ी मात्रा में घाटे की वित्त-व्यवस्था के अनुकूल नहीं है। उन्होंने कहा : "आवश्यकता की वस्तुओं के मूल्य ऐसे स्तर पर हैं कि हम बड़ी मात्रा में घाटे की वित्त-व्यवस्था बिना नुकसान के नहीं अपना सकते। अतः हमारे सामने अब एक ही रास्ता है, और वह है अधिक करों का।" किन्तु वित्तमंत्री ने बताया कि राज्य सरकारों द्वारा अधिक कर लगाने की ओर विशेष उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त नहीं हुए। उनके मतानुसार, सभी प्रकार के कर-साधनों का उपयोग में लाना अत्यावश्यक है।

श्री कृष्णमाचारी ने अपने कर-सुझावों के बारे में बोलते हुए कहा कि उन्होंने कर-ढांचे को परिवर्तित करते हुए वर्तमान आर्थिक परिस्थिति का लाभ उठाया है। नये करों का साधारण जनता पर बहुत अधिक भार नहीं पड़ेगा। और देश का नया कर-ढांचा लोचशील बनेगा। उन्होंने बताया कि जहां तक आन्तरिक साधनों का प्रश्न है, देश ने इस ओर काफी कमी पूरी कर ली है, यद्यपि अभी पूरे साधन उपलब्ध नहीं हो पाए। बचत की मात्रा पर्याप्त नहीं है और हमारी अर्थ-व्यवस्था पर पड़ रहे बोझ केवल बचत करने में नाकाफी सफलता को ही सामने लाते हैं।

उन्होंने कहा कि निजी क्षेत्र पूंजी लगाने में काफी उत्साह से कार्य करता रहा है, यद्यपि इसके साथ ही उसने देश के विदेशी विनिमय के साधनों पर काफी बोझ डाल दिया है। निजी क्षेत्र में पूंजी लगाने में वृद्धि केवल बैंक द्वारा की गयी वित्त-व्यवस्था से ही सम्भव हो सकी, जो कि विशुद्ध और वास्तविक बचत नहीं थी, बल्कि घाटे की वित्त-व्यवस्था का परिणाम थी। श्री कृष्णमाचारी ने जोरदार शब्दों में कहा कि यदि इस समय निजी क्षेत्र द्वारा विदेशी विनिमय की आवश्यकताओं की पूर्ति न भी की जाय, तो भी वह योजना के अन्तर्गत अपने लक्ष्य पूरा कर लेगा।

उन्होंने कहा कि जहां तक विदेशी विनिमय का सम्बन्ध है, द्वितीय योजना में कुछ संशोधन किये जा सकते हैं। द्वितीय योजना के अनिवार्य अंश के रूप में औद्योगिक कच्चे मालों के आयात के बारे में श्री कृष्णमचारी ने कहा कि पिछले कुछ वर्षों में उनका आयात तीन गुना बढ़ गया है। "हमें अपेक्षाकृत कम जरूरी आयात को कम करना है, और खास तौर पर विदेशी-विनिमय के व्यय वाले लक्ष्यों को कुछ हालतों में नीचा करना पड़ेगा।"

श्री कृष्णमाचारी ने योजना की अवधि को बढ़ाने के विरुद्ध साफ-साफ शब्दों में अपने विचार प्रकट किये। तथापि, उन्होंने कहा कि शायद योजना में जहां-तहां कतर-ब्योंत की जाय। उन्होंने चीन का उल्लेख किया, जहां चीन की योजना को क्रियान्वित करने के लिये हाल ही में आधारभूत आवश्यकताओं में भी कमी लाना जरूरी हो गया।

उन्होंने कहा कि उन उद्योगों को, जिनमें विदेशी विनिमय का व्यय कम और श्रम-प्रधान सामाजिक एवं आर्थिक व्यय अधिक होते हों, प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

श्री कृष्णमाचारी ने अपना भाषण समाप्त करते हुए कहा कि वर्तमान आर्थिक परिस्थिति को केवल दो तरीकों से सुधारा जा सकता है, अर्थात् (क) अधिक खाद्यान्न उत्पादन तथा मूल्यों में कमी करके और (ख) बचत को बढ़ा कर। उन्होंने कहा कि देश के समस्त प्रयत्नों को इन दो आधारभूत बातों पर केन्द्रित करना होगा, और जनता की विचारधारा को छोटी बचतों के हक में विकसित करना होगा। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि व्यय में बचत करना भी बहुत आवश्यक है और, जहां तक सम्भव हो, सार्वजनिक व्यय को कम करने का भरसक प्रयत्न किया जाना चाहिये।

"खाद्य स्थिति" पर श्री अजित प्रसाद जैन के विचार

श्री कृष्णमाचारी के पश्चात श्री अजितप्रसाद जैन, केन्द्रीय खाद्य एवं कृषि मंत्री, ने देश की खाद्य स्थिति का सर्वेक्षण किया। उन्होंने कहा कि बढ़ी हुई वर्तमान कीमतों और खाद्यान्नों की कमी का कारण कृषकों द्वारा उपभोग में वृद्धि तथा व्यापारियों द्वारा खाद्यान्न जमा करना है। इस सम्बन्ध में उन्होंने सरकार द्वारा उठाये गये कदमों का उल्लेख किया, जैसे आवश्यक वस्तु अधिनियम, गेहूं तथा चावल क्षेत्रों का निर्माण, आदि। उन्होंने बताया कि यद्यपि मूल्यों के स्तर में कुछ कमी लायी जा सकी है, तथापि अभी बहुत कुछ करना शेष है। केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारों को लिखा है कि वे व्यापारियों को लाइसेन्स दें, ताकि खाद्यान्न छिपाया जाना अच्छी तरह मालूम किया तथा रोका जा सके। उन्होंने आगे कहा कि वितरण के ढांचे में काफी सुधार लाने होंगे, लेकिन इससे भी अधिक आवश्यक उत्पादन में वृद्धि करना है। उन्होंने अधिक उत्पादन करने और मूल्यों को नियंत्रण रखने पर जोर दिया।

आर्थिक तथा खाद्यान्न स्थिति पर सदस्यों के विचार

श्री के. के. शाह (बम्बई) ने कहा कि जहां तक खाद्यान्न उत्पादन का सम्बन्ध है, भूमि पर पूंजीगत व्यय, जैसे सिंचाई सुविधाओं पर खर्च, का परिणाम बहुत सन्तोषजनक नहीं रहा। उन्होंने इस सम्बन्ध में बताया कि खाद्यान्न उत्पादन, जो १९५३-५४ में ६,८७ लाख टन था, बाद के वर्षों में कम हो गया, और १९५६-५७ में यह फिर कुछ बढ़ कर ६,८६ लाख टन तक पहुंच गया, जिससे केवल १९५३-५४ में प्राप्त किये गये लक्ष्यों तक ही पहुंचा जा सका। यह उत्साहवर्धक नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि उदाहरण के तौर पर, बिहार में उपलब्ध की गयी सिंचाई सुविधाओं का फायदा नहीं उठाया गया। कम उत्पादन के कारणों में से यह एक है, यद्यपि इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी हो सकते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि सार्वजनिक क्षेत्र को भी आशातीत सीमा तक नहीं बढ़ाया गया।

श्री सी. सुब्रामन्यन (मद्रास) ने उन लोगोंको फटकारा जो यह कहते हैं कि योजना से हमारी मुश्किलें बढ़ी हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि योजना द्वारा उन समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता मूल्यों को नियंत्रण में लाने तथा उन्हें एक उचित स्तर पर कायम रखने की है। योजना के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए मध्यवर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग के लाखों-करोड़ों लोगों को अपनी बचत को बढ़ाना चाहिये। उनके अनुसार, उत्पादक कृषकों को अपने उत्पादन की वाजिब कीमत प्राप्त होनी चाहिये। उन्हें यह शक्ति पैदा करनी चाहिये जिससे वह व्यापारियों पर दबाव डाल सकें। दुर्भाग्यवश, बढ़ी हुई कीमतों से केवल व्यापारियों को ही लाभ हो रहा है। मूल्य-नीति सतर्कता से बनायी

जानी और सख्ती से कार्यान्वित की जानी चाहिये। इस सम्बन्ध में उन्होंने सुझाव दिया कि एक सीमा तक मजबूर भी किया जा सकता है। वेतन नीति के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि देश को एक राष्ट्रीय वेतन नीति बनानी चाहिये। वे वेतन के एक स्तर व एक सीमा पर खतम कर देने के पक्ष में थे।

श्री भागवत झा आजाद (बिहार) ने कहा कि यद्यपि एक अविकसित देश में विकास कार्यों के लिए अधिक कर लगाना आवश्यक है, तथापि परोक्ष और अपरोक्ष करों के बीच उचित अनुपात रखना आवश्यक है। उन्होंने सम्पत्ति तथा व्यय-करों का प्रतिपादन किया। छोटी बचतों के बारे में उन्होंने कहा कि जब तक एक सुव्यवस्थित संगठन नहीं बनाया जाता, छोटी बचतों में और कमी आने का अन्देशा है। उनके विचार में श्री जैन के नोट से जो स्थिति सामने आती है, वह श्री कृष्णमाचारी द्वारा आर्थिक स्थिति पर दिये गये नोट से भिन्न नजर आती है। उन्होंने यह जानने की इच्छा प्रकट की कि सरकार खाद्यान्न छिपा रखने और उन्हें चोरी-छिपे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के विरुद्ध क्या कदम उठा रही है।

श्री हनुमन्थैया (मैसूर) ने कहा कि योजना का क्रियान्वयन हमारी सबसे बड़ी कामयाबी है, जिसका महत्व केवल स्वातन्त्र्य-प्राप्ति से ही कम कहा जा सकता है। उन्होंने श्री जवाहरलाल नेहरू को नियोजन का अग्रनायक होने पर साधुवाद दिया। किन्तु उन्होंने कहा कि योजना में खामियां हैं जिन्हें आयोजन की महानता के पीछे छिपा नहीं रहने देना चाहियें। उनके विचार में यदि योजना बनाने वाले दूरदर्शिता से काम लेते तो योजना द्वारा पैदा हुए आर्थिक संकटों से विमुक्त रहा जा सकता था। उन्होंने बार-बार योजना के अति उच्चलक्ष्यीय होने पर चेतावनी दी। उन्होंने कहा कि एक शताब्दी की परतंत्रता के पश्चात भारत उस रोग-युक्त कमजोर मनुष्य की भांति था जिसे अगर जल्दी स्वस्थ करने के लिए बहुत अधिक भोजन खिलाया जायगा तो उसे बदहजमी हो जायगी। उन्होंने श्री कृष्णमाचारी के उस वक्तव्य की चर्चा की, जिसमें उन्होंने योजना में परिवर्तन और कांट-छांट करने की बात कही है। श्री हनुमन्थैय्या के मतानुसार, यह कार्य ठीक ढंग से और पूर्णतया किया जाना चाहिये और केवल यहां-तहां पर सन्तुलन भाग तक ही इसे सीमित नहीं कर देना चाहिये। योजना को पुनः बनाने की संजीदगी से कोशिश भी की जानी चाहिये। नियंत्रण के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा कि यदि नियंत्रण फिर लागू किये गये तो देश में इस सम्बन्ध में मत-भेद हो जायगा।

श्री मुनीश्वरदत्त उपाध्याय (उत्तर प्रदेश) ने इस बात का पूरे जोर के साथ समर्थन किया कि समस्त देश को सामुदायिक विकास क्षेत्र और राष्ट्रीय विकास खण्डों में विभाजित करना चाहिये। उन्होंने आराजियों की चकबन्दी पर भी जोर दिया।

श्री विमल चन्द्र सिनहा ने कहा कि खाद्यान्न स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। पश्चिमी बंगाल में हालत बहुत चिन्ताजनक है। उनके विचार में बाहुल्य वाले क्षेत्रों से खाद्यान्न अभाव वाले क्षेत्रों में भिजवाया जाना चाहियें। वाजिब कीमतें कायम रखने सम्बन्धी नया अधिनियम इतना सख्त नहीं है कि उससे खाद्यान्न आदि छिपा रखने को पूरी तरह रोका जासके। वे और भी सख्त विधान बनाने के पक्ष में थे। उन्होंने कहा कि स्टाक जमा करना भी एक भारी आवश्यकता है। आंकड़ों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि क्षेत्रीय तथा स्तरीय आंकड़े उपलब्ध नहीं है। समस्त पूर्ति के बारे में कुल के आंकड़े प्राप्त होते हैं जिनसे समस्या हल नहीं होती। उन्होंने कहा कि कृषकों, कारीगरों और निम्न मध्यवर्ग तथा उनसे नीचे के वर्गों के लोगों की आयों में कोई वृद्धि नहीं हुई, और उनकी स्थिति बिगड़ती जा रही है। तरक्की सब ओर एक साथ ही होनी चाहिये।

श्री सिनहा ने कहा कि सिंचाई-दर बहुत अधिक होने तथा क्षेत्रीय भेदभाव होने के कारण उत्पादन में कमी हो रही है। उन्होंने पम्पों के क्रय-विक्रय तथा मूल्यों में कमी बेशी की तरफ भी ध्यान आकर्षित कराया। उन्होंने ऋण लेने में पेश आने वाली परेशानियों का भी उल्लेख किया। इन सभी बातों में सुधार लाना अत्यावश्यक है, जिससे उत्पादन बढ़ाने में जनता को तमाम आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हो सकें।

श्री सुब्रामन्यन (मैसूर) ने देश में प्रति एकड़ कम उपज की ओर अधिवेशन का ध्यान आकर्षित किया। यदि उत्पादन

को बढ़ाना है तो और अधिक संजीदा प्रयत्न करने होंगे। उन्होंने कहा कि दुर्भाग्यवश, हमें आलस्य व आत्म-सन्तोष की भावना ने घेर लिया है। उनके मतानुसार, सिंचाई सुविधाओं का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाना चाहिये। सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमों का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि गवेषणा केन्द्रों और जन-कार्यकर्ताओं के बीच निकट के सम्बन्ध स्थापित नहीं थे, जिससे गवेषणा किये गये तरीकों को कृषक अपना नहीं सकते थे। और भी अधिक प्रदर्शन फार्म स्थापित किये जाने चाहियें। उन्होंने वितरण व्यवस्था का भी जिक्र किया और कहा कि व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिये जिसमें कुछ स्थानों पर बाहुल्य तथा अन्य शहरों पर अभाव न रहे। उन्होंने कहा कि हमें भले ही कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़े, लेकिन योजना को क्रियान्वित करने में किसी प्रकार का धीमापन नहीं आना चाहिये।

डा. सुशीला नायर ने कहा कि हमारी वर्तमान आर्थिक समस्याओं के दो अहम पहलू खाद्यान्न उत्पादन तथा खाद्य पदार्थों के मूल्यों का नियंत्रण है। उन्होंने कहा कि खाद्यान्नों की उपज के अन्तर्गत भूमि की मात्रा कम होरही है, जबकि व्यापारिक फसलों के अन्तर्गत भूमि बढ़ाई जा रही है। उनके मतानुसार' हम इस प्रकार भले ही व्यापारी फसलों का आयात करके कुछ विदेशी विनिमय उपार्जित करलें, लेकिन हमें साथ ही भारी मात्रा में विदेशों से खाद्यान्न मंगाने पड़ते हैं। उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र भूमि-सुधार लागू करने पर भी जोर बहुत दिया। उनके मतानुसार, भूमि-सुधारों का सबसे जरूरी लक्ष्य यह है कि भूमि जोतने वाले को दी जाय। उन्होंने पुनः मूल्य नियंत्रण लगाने का भी समर्थन किया। लेकिन वे जबरदस्ती उत्पादन हथियाने के पक्ष में नहीं हैं। डा. नायर ने कहा कि कर वसूल करने की मशीनरी को और सुदृढ़ बनाना आवश्यक है। वे इस बात का उत्तर जानना चाहती थीं कि सम्पत्तिकर से क्यों आशातीत रकम प्राप्त नहीं हुई थीं? साथ ही, उन्होंने यह भी कहा कि कर वसूल करने में किसी तरह से करदाताओं को परेशान नहीं किया जाना चाहिये।

श्री आर. के. सिधवा ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि खाद्यान्न उत्पादन में २० प्रतिशत वृद्धि होने के बावजूद, खाद्यान्न आयात में वृद्धि हुई। खाद्य मंत्री द्वारा प्रस्तुत किये गये नोट में खाद्यान्नों के उत्पादन में हर जगह वृद्धि हुई बतलाई गयी थी, तब फिर मूल्यों में वृद्धि का क्या कारण है? इस मूल्य-वृद्धि के मूल कारण गल्ला छिपा रखना, क्रय-शक्ति में वृद्धि तथा वितरण की कुव्यवस्था हैं। उन्होंने कहा कि कारण चाहे कुछ भी हों, पुनः नियंत्रण लागू करने की बात नहीं चलायी जानी चाहिये। यदि माल छिपा रखने को रोकना है तो उन व्यापारियों से, जो इस समय गल्ला छिपा कर रख रहे हैं, कर अथवा जुर्माने के तौर पर २५ प्रतिशत वसूल करना चाहिये, ताकि वह यह कुकृत्य करने से बाज आएं। उन्होंने कहा कि सिंचाई दर ऊंची होने के कारण भी उत्पादन में कमी आई है। उनके मतानुसार, यदि इन करों के कारण उत्पादन में कमी आती है तो इन्हें पूर्णतया हटा देना चाहिये। वक्ता महोदय ने राज्यों और केन्द्र के बीच सामंजस्य स्थापित करने की भी चर्चा की। उन्होंने प्रश्न किया कि तुंगभद्रा योजना से मैसूर और आंध्र सरकारों ने क्यों पूरा-पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न नहीं किया। खाद्य समस्या बहुत विकट है और इस पर पूरी संजीदगी से विचार एवं कार्य किया जाना चाहिये।

श्री निकुंज बिहारी मैती ने कहा कि आत्म-सन्तुष्टि की भावना को त्याग देना चाहिये। उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति खाद्य तथा कृषि विभागों के मंत्री हैं, वे इस पद को महत्त्वपूर्ण नहीं समझते। उन्होंने कहा कि इन मंत्रालयों को अधिक महत्वपूर्ण समझा जाना चाहिये तथा ये उच्चतर मंत्रियों द्वारा ग्रहण किये जाने चाहिये जो इस अहम समस्या पर पूरी जानकारी तथा संजीदगी से कार्यवाही करें। उन्होंने कहा कि लघु सिंचाई योजनाओं तथा लघु उद्योगों को उचित स्थान तथा महत्व दिया जाना चाहियें।

श्री देवकी नन्दन ने कहा कि आवश्यकता इस बात की है कि खाद्य पदार्थों की न्यूनतम कीमत निर्धारित की जाय और खाद्यान्नों तथा अन्य पदार्थों के मूल्यों के बीच एक सामंजस्य स्थापित किया जाय। उन्होंने यह भी कहा कि हमारा लक्ष्य आत्मनिर्भरता होनी चाहिये।

इस अवसर पर **श्री जवाहरलाल नेहरू** ने कहा कि आत्मनिर्भरता ही हमारे लिए पर्याप्त नहीं है और फिर हमें सदा ही

आत्मनिर्भरता से अधिक की बात करनी चाहिये ।

श्री काली मुखर्जी ने कहा कि अब भूमि-सुधार तीव्र गति से कार्यान्वित किये जाने चाहिये । उन्होंने कहा कि आराजी की उच्चतम सीमा इस प्रकार से निर्धारित की जानी चाहिये कि अतिरिक्त भूमि भूमिहीन लोगों में वितरित की जा सके । उन्होंने फसल-आयोजन तथा सहकारी खेती का सुझाव रखा । उन्होंने कांग्रेसजनों में सहकारिता के प्रति उत्साह की कमी पर खेद प्रकट किया । उदाहरण के तौर पर, उन्होंने कहा कि पश्चिमी बंगाल में एक भी कांग्रेस कार्यकर्ता सहकारिता कार्य में नहीं लगा हुआ था । उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि वितरण व्यवस्था में बेईमानी को निर्मूल कर देना चाहिये । उचित मूल्यों पर खाद्यान्न बेचने वाली दुकानें ठीक तरीके से काम नहीं कर रही हैं । ये दुकानें चावल का वितरण बिलकुल ही नहीं कर रहीं । बड़े-बड़े व्यापारियों के हाथों में खाद्यान्न नहीं रहने देना चाहिये । उन्होंने खाद्यान्नों को क्षेत्रीय गोदामों में रखने का सुझाव दिया, जिससे अभावग्रस्त इलाकों में पूर्ति अविलम्ब पहुंचाई जा सके । उन्होंने आंशिक नियंत्रण के हक में कहा, यद्यपि वे एक सीमा पर वेतन-समाप्ति के हक में नहीं हैं, क्योंकि यदि वेतन-समाप्ति की जाती है तो साथ में अधिक मूल्य-समाप्ति भी होनी चाहिये ।

श्री चतुर स्वामी ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि उत्पादन में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई । आयोजन नीचे से होने के बजाय ऊपर से किया जाता रहा है । उन्होंने लघु उद्योगों का भी समर्थन किया । उन्होंने उत्पादन बढ़ाने के लिए सहकारी खेती को भी महत्वपूर्ण बताया ।

श्री न. बि. गाडगिल ने इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि देश में पैदा हुए आर्थिक संकट की ओर जागरूकता बढ़ रही है । उन्होंने कहा कि हमारे प्रयत्न शीघ्र तथा प्रभावपूर्ण ढंग से योजना कार्यान्वित करने की ओर किये जाने चाहिये । नियोजित अर्थ-व्यवस्था आवश्यक नियंत्रणों के अन्तर्गत ही कामयाबी से संचालित हो सकती है । उन्होंने कहा कि हम इस कार्य में सफल अथवा विफल होंगे, और कोई बीच की बात नहीं है । द्वितीय योजना इन दो मान्यताओं के आधार पर बनायी गयी थी कि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में कोई विशेष संकट नहीं आयेगा और मूल्य का उतार-चढ़ाव साधारण रहेगा । किन्तु यह दोनों मान्यताएं गलत सिद्ध हुई । उन्होंने कहा कि आधारभूत आवश्यकताओं, खाद्यान्न और कपड़ा पर, उचित नियंत्रण लगाया जाना चाहिये । उन्होंने कहा कि मुद्रास्फीति का दबाव केवल भारत में ही नहीं है । इंगलैण्ड और फ्रांस में भी आर्थिक दशा वांछनीय स्थिति में नहीं है । हमें एक मूल्य नीति अपनानी ही होगी । उन्होंने यह भी कहा कि हमारे यहां उच्च आयों पर अधिकाधिक कर, अधिक मृत्युकर, लगाये जाने चाहिये तथा कई उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाना चाहिये । एक समाजवादी समाज में पूंजी-निर्माण की जिम्मेदारी जनता पर ही होती है । उन्होंने सुझाव दिया कि खाद्यान्न वितरण का कार्य निजी क्षेत्र के अधीन नहीं होना चाहिये । सरकार का खाद्यान्नों पर एकाधिपत्य होना चाहिये और खाद्यान्नों का मूल्य फसल से ६ मास पूर्व निर्धारित कर देना चाहिये । सरकार सहकारी समितियों द्वारा खाद्यान्न-क्रय कर सकती है । वितरण कार्य में उचित मूल्य पर खाद्यान्न बेचने वाली दुकानें असफल रही हैं । हां, वह संभवतः तब सफल हो सकती हैं, जब ३०० रु. से नीचे की आय वालों को पारिवारिक कार्ड दिये जाएं । क्षेत्रीय संगठन भी बनाये जा सकते हैं, जिससे अभावग्रस्त क्षेत्रों को बाहुल्य वाले क्षेत्रों से खाद्यान्न पहुंचाए जा सकें । उन्होंने जोरदार शब्दों में कहा कि भ्रष्टाचार का सर बहुत निर्ममता से कुचल देना चाहिये ।

श्री गाडगिल ने इस बात पर जोर दिया कि मजदूरी को निष्क्रिय कर देना मुद्रास्फीति का समाधान नहीं । दर असल, प्रशासन प्रणाली को अधिक क्रियाशील आधार पर रखना होगा । बचतों के सम्बन्ध में उनका मत था कि पार्टी के स्तर पर इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं हुआ ।

श्री विजयकुमार त्रिवेदी ने कहा कि नियंत्रण और राशनिंग ने हमारे नैतिक बल को सबसे ज्यादा क्षति पहुंचायी है । इनकी चर्चा चलाने की वजह से अनाज को छिपा कर रखने और मूल्यों के बढ़ने की प्रवृत्तियां प्रबल हो उठी हैं । सिंचाई योजनाओं के बारे में कटु शिकायतें हुई हैं । इन शिकायतों के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिये, क्योंकि इनसे भ्रष्टाचार और कम

उत्पादन को बढ़ावा मिलता है। लोग नकदी फसलों की ओर अधिक झुकने लगे हैं और अनाजों की कम उपज का एक यह भी कारण रहा है।

इस मौके पर अध्यक्ष महोदय ने श्री नेहरू से अनुरोध किया कि वे विचाराधीन विषय पर बोलें। पंडित जी का पूरा भाषण इसी अंक में पृथक रूप से दिया गया है (देखिये पृष्ठ ३)।

सहकारी खेती और भूमि-सुधारों पर वाद-विवाद

१ सितम्बर १९५७ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के तीसरे पहर के अधिवेशन में कांग्रेस अध्यक्ष, श्री उच्छंगराय ढेबर ने कहा कि श्री श्रीमन्नारायण और श्री गुलजारीलाल नन्दा पहले अपने-अपने नोटों पर, जोकि क्रमशः 'सहकारी खेती' और 'भूमि-सुधारों' के सम्बन्ध में थे, व्याख्या प्रस्तुत करेंगे, और फिर, वाद-विवाद में हिस्सा लेने के इच्छुक सदस्य अपने-अपने विचार इन दोनों प्रश्नों पर प्रगट करेंगे।

श्री श्रीमन्नारायण ने कहा कि यह बहुत अच्छी बात है कि देश में सहकारी खेती के गुणों और अवगुणों के सम्बन्ध में काफी वार्त्ता चल रही है। उन्होंने कांग्रेस जनों से अनुरोध किया कि वे योजना के भूमि-सुधार वाले अध्याय में दिये गये सहकारी खेती सम्बन्धी अंशों और चीन में वहां की कृषि-प्रणाली और सहकारी खेती का अध्ययन करने के लिए भेजे गये दो भारतीय शिष्टमंडलों की रिपोर्टों का अध्ययन करें। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि आराजियों की चकबन्दी के साथ-साथ सहकारी खेती की समितियां भी स्थापित होनी चाहिये। उन्होंने देश में सहकारी खेती के सम्बन्ध में फैली हुई अस्पष्टता का उल्लेख किया, और कहा कि सामूहीकरण और सहकारिता में काफी अन्तर है। उन्होंने बताया कि भारत में सहकारिता के आधार पर जमीन को इकट्ठा करने का काम स्वैच्छिक तरीके से होना चाहिये। देश भर में परिस्थितियों की भिन्नता होने की बजह से सहकारी खेती का एक सा ही स्वरूप लागू करना सम्भव नहीं। उन्होंने सुझाव दिया कि ग्रामदान वाले गांवों, खेती योग्य बनायी गयी नयी जमीनों और सिंचाई वाले क्षेत्रों में सहकारी संयुक्त खेती और सहकारी श्रेष्ठतर खेती के तरीके अपनाये जाने चाहियें। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इस तरह की सहकारी खेती का आकार बेहद बड़ा नहीं होना चाहिये और इन फार्मों पर काम करने वाले मुख्तलिफ परिवारों के बीच निकट सामाजिक सम्बन्ध कायम रखने की हर मुमकिन कोशिश होनी चाहिये। उन्होंने अनुरोध किया कि खाद्योत्पादन बढ़ाने की समस्या एकमात्र सहकारी खेती द्वारा ही हल की जा सकती है और इसलिए इसका प्रयोग अवश्य होना चाहिये।

श्री गुलजारीलाल नन्दा ने भूमि-सुधार सम्बन्धी वाद-विवाद शुरू करते हुए अपने नोट में निर्दिष्ट बातों को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि इस बात की आशंका व्यक्त की गयी है कि भूमि-सुधार लागू करने से खेती की पैदावार बढ़ाने में रुकावटें पैदा हो जायेंगी। उनके अनुसार, यह दृष्टिकोण सही नहीं। उन्होंने विश्वास प्रकट किया कि द्वितीय योजना में भूमि-सुधार का जो कार्यक्रम तैयार किया गया है, उसे लागू करने पर खेती की कुल उपज बढ़ कर रहेगी।

श्री नन्दा ने एक या दो महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि हमारी प्रगति पर्याप्त नहीं। हम उन्नति अवश्य कर रहे हैं, लेकिन उसे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। इस समय आवश्यकता है खाद्योत्पादन बढ़ाने की। हम जो भूमि-सुधार लागू कर रहे हैं या लागू करने की सोच रहे हैं, उनसे उत्पादन में काफी तेज वृद्धि होगी। शीघ्र ही ये सुधार सामने आयेंगे, लेकिन उन्हें लागू करने के पहले एक शंकापूर्ण अन्तःकाल भी आ गया है जिससे उत्पादन पर बुरा असर पड़ रहा है। भूमि-सुधार के सम्बन्ध में हमारी नीति निश्चित है। यह समझ लेना चाहिये कि भूमि-सुधार स्वयं कोई लक्ष्य नहीं, बल्कि उचित सामाजिक संगठन और सामाजिक न्याय के बड़े उद्देश्य को हासिल करने के साधन मात्र हैं। कांग्रेस और सरकार ग्रामीण जनता की स्थिति में सुधार करने को दृढ़ संकल्प हैं। हमारी भूमि-सुधार नीति और तत्संबंधी कार्यक्रम की सबसे महत्त्वपूर्ण बात जमीन जोतने-बोने वाले के प्रति की गयी इस प्रतिज्ञा को पूरा करना है कि जमीन उसकी ही है। उत्तर प्रदेश में यह उद्देश्य काफी

हद तक हासिल किया जा चुका है। हमारी भूमि-सुधार सम्बन्धी सारी योजना दो बातों पर निर्भर करती है: (१) जोतने-बोने वाले की सुरक्षा; और (२) उचित लगान। कई जगहों पर भूमि-सुधार सम्बन्धी नीति की जरूरी बातें लागू नहीं की गयी हैं। कई जगहों पर कुछ कानून बनाये गये, किन्तु दुर्भाग्यवश उन्हें लागू नहीं किया जा सका। मिसाल के तौर पर, बेदखली सम्बन्धी कानून को ही ले लीजिए; हालांकि कानून बनाना और उसे लागू करना प्रशासन का कर्तव्य है, किन्तु कांग्रेसजनों का भी यह कर्तव्य है कि वे इन कानूनों के बनाने और इन्हें लागू करने के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करें। पट्टे की सुरक्षा और उचित लगान की व्यवस्था कर लेने पर अगला कदम स्वामित्व के सम्बन्ध में होगा। नन्दा जी ने आराजियों की अधिकतम सीमा के निर्धारण का भी उल्लेख किया जिसकी कल्पना पहली पंचवर्षीय योजना में की गयी थी और फिर दूसरी योजना में भी की गयी है। इस कार्यक्रम को लागू करना होगा। लेकिन इस सम्बन्ध में बहुत जल्दी नहीं करनी है। स्वीकृत नीति लागू करने में कुछ समय तो लगेगा ही।

श्री भागवत झा आजाद (बिहार) ने कहा कि आराजियों पर अधिकतम सीमा का लागू करना भूमि-सुधार सम्बन्धी कार्यक्रम का महत्त्वपूर्ण अंश है। उन्होंने पूछा कि चकबन्दी के कार्यक्रम को लागू करने में तो देर नहीं की गयी, फिर इसे लागू करने में क्यों देर की गयी? नन्दा जी के नोट में इस बात की कोई वजह नहीं बतायी गयी है कि अधिकांश राज्यों में भूमि-सुधार सम्बन्धी नीति क्यों नहीं लागू की गयी? योजना में निर्दिष्ट तरीके पर माल-विभाग के प्रशासन का नवीकरण क्यों नहीं किया गया? उन्होंने आक्षेप लगाया कि अधिकांश राज्यों ने जमीन सम्बन्धी हकों के कागज-पत्र तैयार करने की ओर ध्यान नहीं दिया है। एक राज्य से दूसरे राज्य में मालगुजारी की दरें समान नहीं; और पांच राज्यों को छोड़कर बाकी सभी ने भूमि-सुधार सम्बन्धी कानून नहीं लागू किये हैं। उन्होंने कहा कि अगर भूमि-सुधार की प्रगति तेज रही होती तो आज हमारे सामने कम उत्पादन का सवाल न आता।

श्री रामसहाय (म० प्र०) ने भूमि-सुधार कार्यक्रम में आराजियों पर अधिकतम सीमा को लाभकर तरीका बताया। यदि हैदराबाद का अनुसरण किया गया तो वह विनाशकारी होगा। वह बहुत-सी मुश्किलें पैदा कर सकता है। उन्होंने कहा कि वहाँ जमींदारी का उन्मूलन कर दिया गया है, लेकिन उसने मुआवजे का प्रश्न पूर्णतया हल नहीं कर लिया है। उनके विचार में, भूमि-सुधार के हर पहलू का पूरी तरह से अध्ययन करना चाहिये। धीमी गति से भूमि-सुधार कार्य होने के लिए सरकार की आलोचना करने से कोई लाभ नहीं। आगे चलकर उन्होंने कहा कि अधिकतम सीमा निर्धारित करने के सम्बन्ध में कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। कृषि मजदूर रोजगार प्राप्त करने के ध्येय से धीरे-धीरे ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़कर शहरी क्षेत्रों में आ रहे हैं। इसको रोकने के लिए, उनके पास आराजियां होनी चाहियें, ताकि अधिशेष जमीन भूमिहीनों में बांटी जा सके। सुधार के इस पहलू पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिये। इसके अलावा, तीव्रगति से क्रियान्वयन भी होना चाहिये, और उन्होंने मध्य भारत की मिसाल दी, जहां भूमि की अधिकतम सीमा ५० एकड़ निर्धारित की गयी, किन्तु क्रियान्वयन सन्तोषजनक नहीं हुआ है।

चौधरी चरणसिंह ने कहा कि उत्तर प्रदेश में आराजियों की चकबन्दी २६ जिलों में चल रही है। उन्होंने बताया कि अधिक अन्न उत्पादन की समस्या महज आराजियों की चकबन्दी से नहीं हल हो सकती है। उनका विचार था कि छोटे-छोटे खेतों की उत्पादन-क्षमता बड़े खेतों से अधिक हो सकती है, बशर्ते कि अनुकूलतम अनुपात में समस्त साधन इस ओर लगा दिये जाएं। वह भूमि पर आराजी की अधिकतम सीमा निर्धारित करने पर सहमत थे। अन्न उत्पादन बढ़ाने के लिये उन्हें सभी साधनों का उपयोग करना पड़ेगा। जापान में ९५ प्रतिशत किसान छोटी सहकारी आराजियों पर खेती कर रहे हैं। यदि उनके पास चकबन्दी की हुई बड़ी आराजियां हों तो वे आरम्भ में ही रोजगार के अवसर बढ़ा देते, लेकिन अन्ततोगत्वा इससे बेरोजगारी ही आयेगी। उन्होंने चीनी सहकारिता के अध्ययनार्थ चीन जाने वाले भारतीय प्रतिनिधि मंडल का हवाला दिया। वह नहीं जानते थे, हालांकि वह जानने की कोशिश कर रहे थे कि खेती के लायक जमीन के बन जाने के पश्चात मजदूरों का क्या होगा।

उन्होंने सेवा-सहकारी समितियों की मांग की। उनके ख्याल में, इन दोनों में कोई ज्यादा अन्तर नहीं है। दो या तीन स्थानों में, पाकिस्तान से आये कुछ शरणार्थी सहकारी फार्म सफलतापूर्वक चला रहे हैं।

आगे चलकर उन्होंने कहा कि व्यक्तित्व का विकास तभी सम्भव है, जब लाभकर इकाई छोटी हों, तब नहीं जब वह बड़ी हों। उनके विचार में, चीनियों ने सहकारी खेती को अपना अन्तिम लक्ष्य नहीं माना था। उन्होंने बताया कि सहकारी खेती सम्बन्धी योजना आयोग की परिभाषा दोषपूर्ण है। उसका तात्पर्य एकत्रीकरण से था। शहरों में भी शिक्षित लोग उपभोक्ता सहकारी संघों को चलाने नहीं दे सके। ऐसी हालत में, बे-पढ़े किसान सहकारी खेती के बारे में क्या कर सकते हैं।

श्री विनोदानन्द झा (बिहार) ने कहा कि जमींदारी भूमि को हस्तगत करने के बाद उन्हें अधिकारों का कागज-पत्र तैयार करना पड़ा। लेकिन कोई भी सूचना उपलब्ध नहीं। फिर उन्होंने बताया कि पिछले ३ महीनों के दौरान में बिहार सरकार ने अन्तरिम मुआवजे के रूप में २ करोड़ रुपया दिया। जिस दूसरी समस्या का सरकार को सामना करना पड़ा, वह थी ४४,००० भूमिहीन मजदूरों को भूमि पर अधिकार देने की। उन्होंने कहा कि ५०,००० रु. बिहार की भूदान समिति को दिया गया। वह अधिकतम सीमा को लागू करने पर भी सोच रही थी, लेकिन उन अनुभवों के जानने के बाद ही जोकि अन्य स्थानों पर किये जा रहे थे। सहकारी खेती का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि एक बार इसे लागू किया नहीं गया कि बेरोजगारी बढ़ने लगेगी। लेकिन फिर उन्होंने बताया कि छिपे रूप में बेकारी पहले ही से थी, सहकारी खेती उसे खुले रूप में सामने ला देती।

श्री कलावेंकट राव (आंध्र) ने कहा कि आंध्र प्रदेश में दो पद्धतियां काम में लायी जा रही हैं: एक तेलंगाना क्षेत्र में जहां हैदराबाद प्रशासन के अन्तर्गत काश्तकारी सुधार लागू किया गया और जो आज भी लागू है, तथा दूसरा पुराने आंध्र प्रदेश में, जबकि दोनों क्षेत्रों का विलयन नहीं हुआ था। तेलंगाना क्षेत्र में सुरक्षात्मक काश्तकारी तथा भूमि के विक्रय पर रोक थी। हैदराबाद अधिनियम, १९५६, समानता लाने के ध्येय से लागू किया गया था और अधिनियम की व्यवस्थाएं आंध्र के दो जिलों में लागू की गयी थीं, जोकि वर्तमान प्रदेश का हिस्सा है। उन्होंने अधिकतम सीमा के सम्बन्ध में होने वाली कठिनाइयों को बताया। उन्होंने कहा कि जिन दो मुश्किलों का सामना करना पड़ा, वे थीं—घटिया किस्म की जमीन तथा खेतों का छिटके हुए होना। परिणामस्वरूप, भूमिहीन मजदूर, जिन्हें भूमि दी गयी, अपनी जमीन बेच रहे हैं। लेकिन, फिर भी, मुश्किलों के बावजूद, आंध्र सरकार अधिकतम सीमाओं से सम्बन्धित कानून बनाने के लिए इच्छुक और उत्सुक थी। वह केवल केन्द्रीय सरकार के निर्देशों का इन्तजार करती रही है।

श्री बी. सी. सिनहा ने कहा कि पश्चिमी बंगाल जैसे घनी जनसंख्या वाले राज्य में आराजी की अधिकतम सीमा नि-निर्धारित किया जाना बहुत आवश्यक है। उन्होंने कहा कि अनुभव बतलाता है कि जब निम्न स्तर पर सीमाएं निर्धारित की जाती हैं तो समाज में निम्न वर्ग के लोग विच्छिन्न हो जाते हैं। उन्होंने कहा कि अ. भा. कां. कमेटी को चाहिये कि वह इस सारी समस्या की जांच के लिये एक समिति नियुक्त करे।

श्री केशवदेव मालवीय ने कहा कि उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में २४ लाख की जनसंख्या है और १३ लाख एकड़ भूमि है। वहां जनसंख्या का ९३.१ प्रतिशत भाग खेती पर निर्भर है। उत्तर प्रदेश में, औसत से, प्रति व्यक्ति १.२ एकड़ से एक एकड़ भूमि है। उनके विचार से, उत्तर प्रदेश में १० से १५ एकड़ भूमि पर सहकारी खेती की जा सकती है। सहकारी खेत की एक न्यूनतम इकाई निर्धारित होनी चाहिये। उन्होंने कहा कि समस्या भूमि के एकत्रीकरण की नहीं, अपितु प्रयत्न और साधनों के एकत्रीकरण की है।

बहस खत्म करते हुए **श्री जवाहरलाल नेहरू** ने इस बात पर जोर दिया कि भूमि-सुधार सम्बन्धी योजना आयोग का विचार सही है और देश आयोग द्वारा निर्धारित तरीके को ही प्रयोग में लाये। आराजी की अधिकतम सीमा के सम्बन्ध में श्री नेहरू ने कहा कि वह उसके पक्ष में हैं, लेकिन इस सावधानी के साथ कि अधिकतम सीमा इस प्रकार लागू की जाय जिससे अधिक उत्पादन में सहायता मिले। उन्होंने इस बात पर दुःख प्रकट किया कि बेदखली अब भी चालू है। उन्होंने इस बात पर

बल दिया कि भविष्य में इस प्रकार की बेदखलियां पूर्णतया रोक दी जायं।

उन्होंने कहा कि अन्य देशों की अपेक्षा भारत में प्रति एकड़ उपज बहुत कम है। उन्होंने विश्व बैंक की हाल ही में प्रकाशित रिपोर्ट का उल्लेख किया, जिसमें कहा गया कि है भारत में खाद्यान्न की उपज, साधन, खेती और भूमि के विस्तार द्वारा ३०० से ४०० प्रतिशत तक बढ़ायी जा सकती है।

उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि आर्थिक विकास में मानव स्वयं एक महत्वपूर्ण साधन है, तथा उसकी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्ति उसकी क्षमता का मापदण्ड हैं। उन्होंने प्रशिक्षण पर विशेष जोर दिया। अन्य देशों के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में बताते हुए उन्होंने कहा कि अमरीका इस समय सबसे अधिक विकसित देश है। उन्होंने आगे कहा कि आर्थिक विकास का स्तर देखते हुए, इंगलैण्ड, नार्वे, स्वेडन, कनाडा और डेनमार्क को प्रथम श्रेणी में, फ्रांस और इटली को द्वितीय श्रेणी में तथा स्पेन को तृतीय श्रेणी में रखा जा सकता है। उन्होंने कहा इन देशों में विकास-क्रम की रफ्तार एक-जैसी न होने के कारण, प्रत्येक द्वारा प्राप्त की जा चुकी समृद्धि में बहुत अन्तर है। उन्होंने कहा कि साम्राज्यवादी शासन का एक परिणाम प्रशासित देशों पर यह पड़ा कि जहां शासक देश ने महत्वपूर्ण आर्थिक विकास किया, वहां शासित देश का आर्थिक पतन हुआ।

प्राचीन भारत का उल्लेख करते हुए, उन्होंने कहा कि उस समय भारत की कुल जनसंख्या ३७ करोड़ की संख्या तक नहीं पहुंची थी, और भूमि-समस्या भी इतनी विकट नहीं हुई थी जितनी अब है। अंग्रेजों के आने से पूर्व, हमारा समुदाय एक व्यवसायी समुदाय था, जिसमें कुल में से केवल ६३ प्रतिशत से ६४ प्रतिशत तक लोग कृषि पर आधारित थे और शेष लगभग ३६ प्रतिशत अन्य क्षेत्रों में लगे हुए थे। अंग्रेजों के पदार्पण के पश्चात भूमि पर दबाव बहुत अधिक बढ़ गया और आज यह ८० प्रतिशत है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यदि भूमि पर भार बिना रुकावट बढ़ता ही गया तो भारत के लिये निर्माण करना असम्भव हो जायगा।

सहकारी खेती के बारे में बताते हुए श्री नेहरू ने कहा कि कृषि उत्पादन में विभिन्न कार्यों पर सहकारी तरीकों को अपनाने के मामले में दो मत नहीं हो सकते। उन्होंने कहा कि सेवा-सहकारी समितियां देश के प्रत्येक कोने में विकसित की जानी चाहिये। उन्होंने आगे चलकर इस बात पर भी जोर दिया कि देश को, जहां सम्भव हो, भूमि एकत्र कर सहकारी खेती का प्रयोग करना चाहिये। स्पष्टतः ग्रामदान किये गये गांवों और नयी बसी बस्तियों में सहकारी खेती के विकास की काफी सम्भावनाएं हैं। तथापि, उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि सहकारी खेती के भारतीय प्रयोग में किसी प्रकार की जोर-जबर्दस्ती नहीं की जानी चाहिये; और समितियों की स्थापना पूर्णतया स्वेच्छा पर निर्भर होनी चाहिये। उन्होंने यह भी कहा कि बेहतर तो यह होगा कि सहकारी समितियां बहुत बड़ी न हों, जिनमें कि सदस्यों के बीच व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं रह जाते। उन्होंने सहकारी समिति के लिए एक ग्राम को एक वांच्छित इकाई बताया, और कहा कि इस सिलसिले में ग्रामदान के गांवों में बहुत सम्भाव्यताएं हैं।

(अ. भा. कां. कमेटी का अधिवेशन समाप्त होने पर एक प्रेस नोट निकाला गया, जिसमें देश के सम्मुख पेश समस्याओं पर अ. भा. कां. कमेटी के सदस्यों का मतैक्य दिया गया था। वह प्रेस नोट नीचे दिया गया है।)

मतैक्य-पत्र

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भारत की वर्तमान आर्थिक स्थिति पर, विशेष रूप से द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लिए आन्तरिक और विदेशी साधन हासिल करने, खाद्योत्पादन में वृद्धि करने तथा भूमि-सुधार और सहकारी खेती लागू करने की समस्याओं के सम्बन्ध में, विचार किया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के बीच विभिन्न समस्याओं के विषय में निम्नलिखित रूप में मतैक्य था :

यद्यपि विकासशील अर्थ-व्यवस्था में अन्तर्भूत विभिन्न समस्याओं का सामना एक वास्तविक ढंग पर और बिना किसी आत्म-सन्तोष की भावना के करना है, फिर भी भारत की बुनियादी अर्थ-व्यवस्था ठोस है और निराश होने तथा पराजय की भावना लाने की कोई वजह नहीं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि को बढ़ा कर ६ या ७ वर्ष कर देना वांच्छनीय नहीं, हालांकि प्राथमिकताओं का क्रम फिर से बैठाने, और योजना में काटछांट करके छोटे-मोटे तालमेल बैठाने के लिए गुंजाइश है।

योजना के लिए आन्तरिक साधन बढ़ाने की हर कोशिश होनी चाहिये, खास तौर पर छोटी बचतों को बढ़ावा देकर। गैरविकास सम्बन्धी और अनुत्पादक योजनाओं में काटछांट करके सभी सरकारी व्ययों में कड़ी मितव्ययिता लागू करनी चाहिये। राष्ट्रीय क्रियाशीलता के प्रत्येक क्षेत्र में सरलता और संयम के अनुशीलन की तत्काल आवश्यकता है। जहां कहीं भी भ्रष्टाचार मौजूद हो, उसे निर्मूल करने की पूरी-पूरी कोशिश होनी चाहिये।

यद्यपि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए विदेशी सहायता का हमेशा स्वागत किया जायगा, लेकिन हमारा मुख्य जोर आत्मनिर्भरता पर ही होगा।

सभी गैरजरूरी आयातों में कटौती करके तथा निर्यातों को अधिकतम मात्रा में बढ़ावा देकर विदेशी विनिमय की स्थिति सुधारने का गम्भीर प्रयत्न होना चाहिये। देश में स्वदेशी की भावना को पुनर्जीवित करना चाहिये।

सट्टेबाजी वाले तथा अन्य अवांच्छनीय किस्म के ऋणों को कम करने के लिए प्रभावकारी कदम उठाये जाने चाहिये। माल छिपा कर रखने की प्रवृत्ति के विरोधी उपाय के रूप में, व्यापारियों पर लागू ऋण-संकुचन नीति को उत्तरोत्तर कड़ा कर देना चाहिये। मूल्यों की वृद्धि रोक देने के उद्देश्य से सरकार को चाहिये कि वह खाद्यान्नों को छिपा कर संग्रह करने वालों के विरुद्ध प्रतिरोधात्मक कार्यवाही करे।

देश में फसलों का विवेकपूर्ण आयोजन होना चाहिये, ताकि खाद्यान्न और व्यापारिक फसलों के बीच एक प्रकार की मूल्य-समता निर्धारित करना सम्भव हो सके।

समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत भौतिक नियंत्रण स्वाभाविक रूप से अनिवार्य है। लेकिन इन नियंत्रणों के स्वभाव और ढंग किसी विशेष अवधि में देश के भीतर प्रचलित आर्थिक स्थिति पर निर्भर करेंगे। इस प्रकार के नियंत्रणों का लागू करना इस बात पर भी निर्भर करता है कि बुराइयों को रोकने के लिए प्रशासक में कितनी क्षमता है।

खाद्योत्पादन

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में, खाद्यान्नों के उत्पादन को सबसे अधिक प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिये, और उसे योजना का 'मूलाधार' मानना चाहिये। खाद्य सम्बन्धी आत्मनिर्भरता को राष्ट्रीय आत्म-सुरक्षा का एक अविच्छिन्न अंग भी मानना चाहिये।

अधिक खाद्योत्पादन के साथ-साथ, ग्रामीण जनसंख्या की कम आमदनी के पूरक के रूप में ग्रामीण और कुटीर उद्योगों के विकास के लिए नियमित रूप से प्रयत्न होने चाहिये।

वर्तमान सिंचाई के साधनों के पूर्णतम उपयोग की हर सम्भव कोशिश होनी चाहिये। छोटे सिंचाई के कार्यों के निर्माण पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

विभिन्न राज्यों के कृषि विभागों के प्रशासन में सुधार अवश्य होना चाहिये, ताकि सरकार द्वारा प्रदान की गयी विभिन्न सुविधाएं किसानों के पास सीधे-सीधे और उचित समय के भीतर पहुंच सकें। सामान्य प्रशासन की कार्यक्षमता और ईमानदारी का महत्त्व सबसे अधिक है।

भूमि-सुधार

विभिन्न राज्यों के भीतर द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निर्दिष्ट भूमि-सुधारों के लागू करने में शीघ्रता करनी चाहिये। किसानों को आवश्यक मात्रा में ऋण तथा दूसरी सुविधाएं उपलब्ध होने पर, प्रगतिशील भूमि-सुधारों के लागू करने से उत्पादन घटने की बजाय निश्चय ही अधिक बढ़ेगा।

जमीन जोतने-बोने वालों को पट्टे की सुरक्षा प्रदान करने के लिए तत्काल द्वितीय योजना में निर्दिष्ट ढंग पर सक्रिय कदम उठाये जाने चाहिये। काश्तकारों का राज्य के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो जाना चाहिये तथा उन जमीनों पर, जिन्हें जमींदार पुनः ग्रहण नहीं कर सकते, काश्तकारों को छोटी-छोटी किश्तों में मुआविजा जमा कर देने पर मालिक बना देना चाहिये। पुनर्ग्रहण के अधिकार को इस प्रकार नियमित कर देना चाहिये, ताकि काश्तकार के पास कुछ जमीन अवश्य बच रहे, जिस पर कि वह खेती कर सके। सभी राज्यों में और अधिक विलम्ब किये बगैर, भविष्य में हासिल की गयी जमीनों पर अधिकतम सीमा लागू कर दी जानी चाहिये। वर्तमान आराजियों की अधिकतम सीमा भी लागू कर दी जानी चाहिये। स्वभावतः, इस अधिकतम सीमा का स्वरूप और आकार स्थानीय स्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न होगा।

सभी राज्य सरकारों द्वारा सभी प्रकार की बेदखलियों और तथाकथित 'स्वैच्छिक भूसमर्पण' को रोक देने के लिए कड़े कदम उठाये जाने चाहिये। इस तरह की सभी बेदखलियों और स्वैच्छिक समर्पणों के मामलों की, जोकि, मान लीजिये कि, पिछले तीन वर्षों के भीतर हुए हों, फिर से जांच की जाय और उन्हें पुनः काश्तकारों को वापस कर देने की व्यवस्था की जाय।

योजना आयोग के सुझावों के अनुसार देश के विभिन्न हिस्सों में उचित लगान निर्धारित हो जाना चाहिये।

सहकारी खेती

सभी ने मान लिया है कि खेती की यथासम्भव अधिक से अधिक प्रक्रियाओं में, जिनमें ऋण, सिंचाई, खाद की व्यवस्था, क्रय-विक्रय आदि शामिल हैं, सहकारिता के तरीके लागू किये जाने चाहिये। अतः सेवा-सहकारी समितियों के विकास के लिए काफी क्षेत्र मौजूद है।

जमीन को इकट्ठी करके सहकारी खेती का प्रयोग, खासतौर पर नयी खेतिहर बस्तियों और ग्रामदान वाले गांवों में, किया जा सकता है। यह कहने की जरूरत नहीं कि सहकारी खेती स्वैच्छिक आधार पर ही होनी चाहिये और फार्मों का आकार बेहद ज्यादा बड़ा नहीं होना चाहिये, ताकि संयुक्त किसानों के बीच निकट व्यक्तिगत सम्बन्ध सक्रिय रूप से कायम रह सके।

खेती में सहकारी ढंगों का अनुशीलन इसलिए भी जरूरी है कि किसानों को कम व्यक्तिवादी बनाकर और समाज के कल्याण की ओर उनमें अधिक झुकाव पैदा कर के उनका दृष्टिकोण अधिक विस्तृत किया जा सके। इस बात में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिये कि भारतीय किसानों की असली मुक्ति सहकारिता में ही निहित है।

कांग्रेसजनों का कर्त्तव्य

कांग्रेसजनों और कांग्रेसी महिलाओं का कर्त्तव्य है कि वे द्वितीय पंचवर्षीय योजना को सफलता के साथ कार्यान्वित करने में जनता का सक्रिय और ऐच्छिक सहयोग प्राप्त करने की कोशिश करें। खेती की पैदावार बढ़ाने तथा शहरी और ग्रामीण, दोनों ही, क्षेत्रों में छोटी बचतों को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

योजना के लक्ष्यों को हासिल करने की दिशा में अपने कर्त्तव्य का पालन करके कांग्रेसजन न सिर्फ अपने देश की, बल्कि उस महान् संगठन की भी, सेवा करेंगे, जिसका सदस्य होने का गौरव उन्हें प्राप्त है।

अ० भा० कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन के अनुभव :

आर्थिक नीति सम्बन्धी वाद-विवाद

(सुनील गुहा)

किसी सभा-भवन के भीतर, चाहे वह कितना ही ठंडा क्यों न हो, बन्द होकर घंटों तक नोट लेना, जब कि बीसों प्रवक्ता किसी विषय पर संक्षेप में बोल रहे हों, स्पष्टतः एक श्रमसाध्य काम है। लेकिन मुझे ऐसा करने में बच्चों सा आनन्द आता है, खास तौर पर जब कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी राष्ट्रीय महत्व की समस्याओं पर 'व्यावसायिक ढंग' से विचार-विनिमय कर रही हो। क्योंकि, ऐसे अवसर पर अपने महान नेताओं, नीति-निर्माताओं और बहुत से दूसरे प्रवक्ताओं का भाषण सुनने का एक अद्भुत अवसर प्राप्त होता है, जिनमें से कितने ही अपने भाषण से आश्चर्यचकित कर देते हैं और कितने ही का भाषण नीरस होता है। वे सभी विचाराधीन विषय पर अपने मननशील विचार प्रकट करते हैं। उनका भाषण सुनना हर हालत में फायदेमन्द होता है। कभी-कभी, जब कि कोई बहुत ही कम विख्यात सदस्य साहस के साथ मंच पर खड़ा हो जाता है और विवादग्रस्त विषय पर कोई 'नया दृष्टिकोण' प्रस्तुत करता है और ऐसा करके सारे सभा-भवन को सोचने-विचारने और प्रशंसा करने के लिये बाध्य कर देता है, तो उससे हृदय को अचानक एक धक्का-सा भी लगता है। कभी-कभी कुछ नीरस प्रवक्ता भी होते हैं; उनके भाषणों में बड़ा ही जोश होता है, और वे इधर-उधर की तमाम बातें कह जाते हैं, परन्तु असली विषय तक पहुंचते ही नहीं। फिर भी, सभा-भवन उनकी सच्ची कोशिशों पर तालियां पीटता है और ऐसा करके गंभीर वातावरण की उदासी भंग कर देता है। और अंत में, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की कोई भी बैठक बगैर श्री नेहरू के अकल्पनीय है और जब श्री नेहरू, जो अपना सानी नहीं रखते, बोलने लगतें हैं, तो उनके भाषण में हम समस्त मानव इतिहास की पृष्ठभूमि प्राप्त कर लेते हैं, और यह भी जान जाते हैं कि भारत की वर्तमान स्थिति क्या है, भारत को क्या करना चाहिए, उसके विकास का स्वरूप क्या होना चाहिए और विश्व इतिहास की वर्तमान अवस्था में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका क्या होगी। तो, यही सब वजहे हैं कि मैं बड़ी उत्सुकता से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के किसी भी, और प्रत्येक, अधिवेशन की प्रतीक्षा करता रहता हूं।

श्री कृष्णमाचारी और श्री जैन के नोट

१ सितम्बर १९५७ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अनौपचारिक अधिवेशन में चार नोटों पर बहस हो रही थी, जिन्हें क्रमशः श्री टी. टी. कृष्णमाचारी, श्री गुलजारी लाल नंदा, श्री अजित प्रसाद जैन तथा श्री श्रीमन्नारायण ने पेश किये थे। प्रातःकालीन बैठक में श्री टी. टी. कृष्णमाचारी से अनुरोध किया गया कि वे अपने नोट की मुख्य-मुख्य बातों पर प्रकाश डालें। उन्होंने वर्तमान आर्थिक स्थिति की एक बहुत ही यथार्थ तस्वीर सामने रखी और इस बात पर जोर दिया कि इधर हाल में जो मुश्किलें पैदा हो गयी हैं, वे अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था में हमेशा ही मौजूद होती हैं, लेकिन वे ऐसी नहीं कि उन पर विजय न प्राप्त की जा सके। उन्होंने कहा कि अर्थ-व्यवस्था के अभाव केवल यह व्यक्त करते हैं कि पूंजी-निवेश के लिये बचत की मात्र अपर्याप्त है। साधनों के संबंध में, उन्होंने यह बात स्पष्ट रूप से बतला दी कि आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों की वर्तमा प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि में किसी बड़े पैमाने पर घाटे की वित्त-व्यवस्था का आश्रय लेना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं। अतः, अतिरिक करों और छोटी बचतों पर ही हमारा विश्वास सबसे अधिक प्रतिष्ठित होना चाहिए। श्री कृष्णमाचारी ने योजना की अवधि को बढ़ाने का विरोध किया, लेकिन उन्होंने योजना में काट-छांट करने और उसके क्रम को पुनः व्यवस्थित करने की संभावन स्वीकार की। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि वर्तमान अवस्था का एकमात्र निदान यह है उत्पादन बढ़ाया जाय, मूल्य निम्न तर हों और बचतों का अधिक उपयोग किया जाय। मुझे आश्चर्य हुआ कि श्री कृष्णमाचारी ने विदेशी ऋणों के संबंध में जिस प उन्होंने अपने नोट में काफी जोर दिया है, एक भी बात नहीं की। इस विषय पर श्री नेहरू ने स्थिति स्पष्ट की। उन्होंने स्पष्ट रू

से घोषणा की कि "हम कृतज्ञता के साथ विदेशी सहायता का स्वागत करेंगे, लेकिन मुख्य रूप से हम स्वयं अपने ही साधनों का आश्रय लेंगे।"

श्री कृष्णमाचारी के बाद श्री अजित प्रसाद जैन ने देश की खाद्य-स्थिति की समीक्षा प्रस्तुत की। उन्होंने कहा कि किसानों द्वारा अधिक उपभोग करने, व्यापारियों द्वारा अन्न-भंडार को छिपा लेने और कुछ इलाकों में फसल की खराबी के कारण कुल उत्पादन की अपेक्षा बाजार में जाने वाले अतिरिक्त अनाज की मात्रा बहुत ही कम हो गयी है। उन्होंने बताया कि सरकार ने मूल्य घटाने के लिये कौन-कौन से कदम उठाये हैं और यह विश्वास दिलाया कि किसानों के साथ उचित व्यवहार किया जायगा तथा अनाज छिपा कर रखने वालों तथा सट्टेबाजों के साथ पूरी कड़ाई की जायगी। किन्तु, उन्होंने यह कहा कि स्थिति का एकमात्र समाधान इस बात में निहित है कि अनाज की पैदावार बढ़ायी जाय।

खाद्य स्थिति पर वाद-विवाद

इसके बाद इन दोनों नोटों पर बड़ा ही दिलचस्प वाद-विवाद प्रारंभ हुआ। इनमें से भी खाद्य-स्थिति संबंधी नोट को विशेष महत्व दिया गया और साधनों की समस्या वाले नोट को कम। इससे मुझे कुछ हद तक निराशा हुई। खाद्य-स्थिति के संबंध में श्री जैन का नोट एक सन्तोषमय तस्वीर प्रस्तुत करता है, जबकि इसके विपरीत श्री कृष्णमाचारी का नोट एक यथार्थ, और मैं तो कहूंगा, शिक्षाप्रद प्रलेख है। इस बात का उल्लेख करते हुए प्रायः अधिकांश प्रवक्ताओं ने यह शिकायत की कि सरकार की खाद्य नीति हिचकिचाहट, निरुत्साह और अयोग्यता के दलदल में उलझ कर तड़फड़ा रही है। श्री भागवत झा आजाद (बिहार) और विमल चन्द्र सिन्हा (पश्चिमी बंगाल), दोनों ही ने कहा कि खाद्य-स्थिति इतनी अधिक गंभीर है कि उसके संबंध में आत्म-तोष की भावना के लिये कोई स्थान ही नहीं। श्री झा ने पूछा कि अनाज छिपा कर रखने और चोरी-चोरी इधर-उधर ले जाने की प्रवृत्ति को रोकने के लिये कौन से कदम उठाये गये हैं। श्री सिन्हा ने कहा कि किसानों, कारीगरों, निम्न मध्यम वर्ग और उससे नीचे के वर्गों के लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊपर नहीं उठा है। श्री सिन्हा ने उचित ही कहा कि खाद्य-उत्पादन के संबंध में प्रादेशिक और वास्तविक आंकड़े उपलब्ध नहीं और श्री जैन के नोट में समूचे रूप में जो आंकड़े दिये गये हैं, वे बहुत उपयोगी नहीं। श्री के. के. शाह ने कहा कि सिंचाई के साधनों से फायदा नहीं उठाया गया है, जबकि मैसूर के श्री सुब्रमण्यन ने कहा कि सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय-विस्तार सेवा खंडों के संबंध में, अनुसंधान केन्द्रों के अधिकारियों और जनता के बीच निकटवर्ती संबंध नहीं, जिसका नतीजा यह हुआ है कि जिन तरीकों में अनुसंधान हो रहे हैं, उन्हें किसान अपना नहीं रहे। डा. सुशीला नायर ने कहा कि खाद्योत्पादन के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल घटता जा रहा है, जबकि नकदी फसलों का रकबा बढ़ रहा है। अतः इस प्रवृत्ति को उलट देना चाहिए। उन्होंने एक दिलचस्प सुझाव यह दिया कि भूमिकर की वसूली फसल के रूप में होनी चाहिए और इस तरह इकट्ठा किये गये अनाज का संचित भंडार तैयार करना चाहिए। श्री आर. के. सिधवा ने भूतपूर्व खाद्य मंत्री स्वर्गीय श्री किदवई के बुद्धिमत्तापूर्ण खाद्य-प्रशासन की बड़ी प्रशंसा की और इस बात पर खेद प्रकट किया कि उस नीति को छोड़ कर बहुत ही खतरनाक नीति अपनायी गयी है। उन्होंने यह साहसपूर्ण सुझाव दिया कि अगर अनाज छिपा कर रखने की प्रवृत्ति पर रोक लगानी है, तो उन व्यापारियों से मुनाफे के २५ फी सदी तक कर या जुर्माने के रूप में ले लेना चाहिए जो कि इस समय अन्न छिपाने के लिये जिम्मेदार हैं, ताकि उन्हें बुराई से कमाये गये मुनाफे को उगलने के लिये बाध्य होना पड़े। काका साहब गाडगिल ने अपने भाषण में बड़ी भावुकता व्यक्त की और घोषणा की कि उनकी आवाज एक दम अकेली है। उन्होंने कहा कि जीवन की प्रारंभिक आवश्यकताओं पर, जिनमें अन्न और वस्त्र भी शामिल हैं, नियंत्रण और नियमन लागू होना चाहिए। काका साहब यह भी चाहते थे कि खाद्यान्नों के वितरण के क्षेत्र में निजी व्यापार को मौका न दिया जाय और सरकार कम से कम ६ महीने के लिये खाद्यान्नों का मूल्य निश्चित कर दे। भारत के मूल्यों और मजदूरियों के बीच बढ़ते हुए असन्तुलन की ओर और छिपी मुद्रास्फीति के चिह्न की ओर जो कि देश के आर्थिक क्षितिज पर मंडरा रहे हैं, निर्देश करते हुए उन्होंने यह मांग की कि तत्काल एक उचित मूल्य नीति तैयार की जानी चाहिए।

काका साहब के बाद यदा-कदा कुछ प्रववता मंच पर आये और वाद-विवाद का रूप काफी नीरस हो चला। उस समय भी खाद्य-समस्या की ही प्रधानता बनी रही, जबकि साधन संबंधी प्रश्न उपेक्षित सा बना रहा।

किन्तु, शीघ्र ही, श्री नेहरू के भाषण ने सभा-भवन में जीवन का संचार सा कर दिया और सारा वातावरण सक्रिय हो चला। उन्होंने अपने भाषण में प्रायः हर विषय पर रोशनी डाली और कुछ भी छोड़ा नहीं। उन्होंने सदस्योंसे कहा कि योजना कोई ऐसी पवित्र चीज नहीं, जिसे छूना मना हो। उपलब्ध साधनों के अनुरूप बनाने के लिये उसके क्रम में तब्दीली की जा सकती है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि समाजवाद और कल्याणकारी राज्य के बीच कोई विरोध नहीं, क्योंकि कल्याण बिना समाजवाद का कोई अर्थ ही नहीं। दोनों के लिये सम्पत्ति का अधिक उत्पादन जरूरी है। उन्होंने सदस्यों से पूछा : "क्या कभी आपके दिमाग में यह बात भी आयी है कि समाजवाद सिर्फ नियंत्रण है और कुछ नहीं ?" उन्होंने आगे इस बात पर जोर दिया कि यद्यपि वर्तमान विदेशी विनिमय संबंधी संकट वास्तविक है, फिर भी शोरगुल मचाने की या विक्षिप्त और निराश होने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने कांग्रेसजनों से अनुरोध किया कि वे यथार्थ रूप में सोचे और योजना का सन्देश गांव में लोगोंके पास ले जायें, उनसे बतलायें कि उनके उत्थान के लिये क्या किया जा रहा है, देश के सामने कठिनाइयां क्याहैं और उनका विश्वास हासिल करने की कोशिश करें। उस समय सभा-भवन मेंएक उत्साह सा उमड़ पड़ा। श्री नेहरू के जोशीले, किन्तु दृढ़तापूर्ण, भाषण ने पराजय की भावना को हटा दिया जो कि अधिकांश सदस्यों को अभिभूत किये हुए थी और उनके हृदय में विश्वास का संचार किया।

सहकारिता और भूमि-सुधार

श्री श्रीमन्नारायण के 'सहकारी खेती' संबंधी और श्री गुलजारी लाल नंदा के 'भूमि-सुधार की समस्या' संबंधी नोटों पर दोपहर बाद की बैठक में वाद-विवाद शुरू हुआ। श्री श्रीमन्नारायण ने अपने नोट की मुख्य-मुख्य बातों की व्याख्या प्रस्तुत की। उनका भाषण बहुत ही तर्कसम्मत और व्याख्यात्मक था। उन्होंने सदस्यों को वह सभी बातें बतलायीं जो कि वे सहकारी खेती की सम्भाव्यता के बारे में जानना चाहते थे। उन्होंने सदस्यों को आगाह करते हुए कहा कि सामूहीकरण सहकारिता नहीं है; कि भारत में सहकारी ढंग पर जमीन और खेती के दूसरे साधनों को इकट्ठा करना स्वेच्छा के आधार पर ही होना चाहिए; कि देश भर में सहकारी खेती का एक समान ढांचा लागू करना संभव नहीं, क्योंकि प्रादेशिक परिस्थितियों में भिन्नता है; कि सहकारी संयुक्त खेती और अच्छी खेती के तरीके का प्रयोग ग्रामदान वाले गांवों, खेती लायक बनायी गयी नयी जमीनों और सिंचित क्षेत्रों में किया जाना चाहिए; कि सहकारी फार्मों का आकार न तो इतना ज्यादा बड़ा होना चाहिए जिससे पारिवारिक संबंध विच्छिन्न होने लगें, और न ही इतना छोटा होना चाहिए कि वह अलाभकर हो जायं; कि खाद्योत्पादन में वृद्धि करने के लिये सहकारी खेती का तरीका अख्तियार करना ही पड़ेगा। केवल एक प्रवक्ता, श्री चरण सिंह, ने सहकारी खेती का विरोध किया। अन्त में, श्री जवाहरलाल नेहरू ने सहकारी खेती का जबर्दस्त समर्थन किया और कहा कि खेती के उत्पादन की विभिन्न प्रक्रियाओं में सहकारी तरीकों को बढ़ावा देने की वांच्छनीयता पर दो रायें नहीं हो सकतीं। उन्होंने कहा कि एक गांव की इकाई सहकारी खेती का आदर्श आकार है और इस संबंध में ग्रामदान वाले गांवों की सम्भाव्यता बहुत ही अधिक है।

श्री नन्दा द्वारा स्पष्टीकरण

भूमि-सुधार की समस्या संबंधी अपने नोट की मुख्य-मुख्य बातों की व्याख्या करते हुए, श्री गुलजारी लाल नंदा ने शुरू में इस आशंका को निर्मूल किया कि भूमि-सुधारों की वजह से खेती की पैदावार को धक्का लगेगा। उन्होंने कहा कि भूमि-सुधारों का उद्देश्य जमीन की पैदावार बढ़ाना है, और इसलिये यह अधिक उत्पादन के रास्ते में रुकावट नहीं बन सकते। बेशक, भूमि-सुधारों की प्रगति काफी धीमी रही है। उन्होंने सदस्यों से अनुरोध किया कि वे यह बात समझ लें कि भूमि-सुधार स्वयं कोई लक्ष्य नहीं; वे उचित सामाजिक संगठन और सामाजिक न्याय के बड़े उद्देश्यों को हासिल करने के साधन मात्र हैं। उन्होंने

इस बात पर भी जोर दिया कि भूमि-सुधार संबंधी कानून बनाने और उन्हें लागू करने के लिये उचित वातावरण तैयार करने की पूरी कोशिश होनी चाहिए। नन्दा जी ने कहा कि पट्टे की सुरक्षा और उचित लगान का निश्चय हो जाने पर अगला कदम स्वामित्व के संबंध में होना चाहिए। आराजियों की अधिकतम सीमा के संबंध में उन्होंने कहा कि यह अधिकतम सीमा तो लागू करनी ही है, लेकिन इसमें जल्दी नहीं की जा सकती और स्थिति का यथार्थ अध्ययन करना पड़ेगा। श्री नन्दा के नोट को भी उसी प्रकार की प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ा जैसा श्री जैन के नोट को। सदस्यों ने भूमि-सुधारों की धीमी प्रगति पर बड़ी अधीरता प्रगट की। वे इसका कारण जानने केलिये व्यग्र थे। प्रश्नों की बौछार होने लगी। अधिकांश राज्यों में भूमि-सुधार नीति क्यों नहीं लागू की गयी? इन्हें लागू न करने के लिये कौन से अधिकारी जिम्मेदार हैं? राजस्व प्रशासन को उसी तरह से परिवर्तित क्यों नहीं किया गया जैसा कि योजना में निर्दिष्ट है? जमीन संबंधी अधिकारों के कागज-पत्र तैयार करने में राज्य सरकारों ने ढिलायी क्यों दिखलायी है? अस्तु, अगर प्रश्न करना बढ़ी हुई तत्परता का चिन्ह हो सकता हो, तो कहना पड़ेगा कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य इतने ज्यादा तत्पर पहले कभी नहीं रहे। कुछ सदस्यों ने अपने-अपने राज्यों में भूमि-सुधार की प्रगति के संबंध में आंकड़ा युक्त सूचनाएं दीं। इससे यह स्पष्ट था कि वे ताजी से ताजी प्रगतियों से पूर्णतया परिचित हैं। अधिकांश सदस्यों ने आराजियों की अधिकतम सीमा लागू करने पर जोर दिया, जबकि कुछ थोड़े से दूसरे सदस्यों ने यह शिकायत की कि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में उचित लगान की दरों में ज्यादा भिन्नता नहीं होनी चाहिए। वाद-विवाद का समाहार करते हुए श्री जवाहर लाल नेहरू ने इस बात पर जोर दिया कि भूमि-सुधारों के संबंध में योजना आयोग का दृष्टिकोण सही है और देश को चाहिए कि आयोग द्वारा तैयार ढांचे को लागू करें। उन्होंने कहा कि वे आराजी की अधिकतम सीमा लागू करने के पक्ष में हैं, लेकिन इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा करने से ज्यादा उत्पादन के रास्ते में बाधा न उत्पन्न होने पाये। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि बेदखलियां तुरन्त बन्द हो जानी चाहिए।

कांग्रेस अध्यक्ष श्री ढेबरभाई

सबसे अधिक उल्लेखनीय और प्रशंसनीय बात श्री ढेबरभाई का धैर्य और उनकी शांति थी। वे प्रवक्ता द्वारा कही गयी किसी बात से भी, चाहे वह संगत हो या असंगत, चूकते नहीं थे; और अगर किसी बात पर यह सन्देह होता था कि वह सदस्यों को स्पष्ट नहीं हुई है तो उसे स्पष्ट करने का अनुरोध करते थे। जब लोग तैश में आते तो वे विनम्रता के साथ क्षुब्ध होते और शांति स्थापित कर देते थे। अगर कोई प्रवक्ता असंगत बातों की ओर बहक जाता तो उसके प्रति विनम्र और उदार होते हुए भी, वे दृढ़ बने रहते थे और विनम्र शब्दों में दी गयी उनकी चेतावनी की कभी उपेक्षा नहीं की जाती थी। मुझे वे आदर्श अध्यक्ष प्रतीत हुए और अगर अधिवेशन का काम, जैसा कि सोचा गया था, व्यावसायिक ढंग पर सम्पन्न हुआ, तो इसका कितना श्रेय हमारे अध्यक्ष महोदय को था, इसकी सिर्फ कल्पना की जा सकती है।

और, इस प्रकार, उस दिन की कार्यवाही समाप्त हुई। वह दो आकर्षक वाद-विवादों की स्मृति छोड़ गयी है जो कि लगभग १० घंटों तक चलते रहे। इनके सिलसिले में देश की आर्थिक स्थिति और क्षमता का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया। उसके फलस्वरूप इस दृढ़ आशावादिता की प्रतिष्ठा हुई कि उस राष्ट्र के लिये कोई भी कठिनाई अपराजेय नहीं, जो कि साहस के साथ सोच-विचार और कार्य कर सकता हो। यदि किसी समय निराशा के चिन्ह और पराजय की भावना थी भी, तो शाश्वत सतर्क और दृढ़-निश्चयी श्री नेहरू, जो कि पराजय स्वीकार करने के लिये कदापि तैयार नहीं, अपनी आवाज बुलन्द करते और सदस्यों को आवश्यक मात्रा में विश्वास प्रदान कर देते थे। क्या मैं कभी काफी विख्यात, कम विख्यात और यहां तक कि यदाकदा बोलने वाले प्रवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत कल्पना-प्रधान और रचनात्मक सुझावों को भूल सकता हूं, जिनमें से प्रायः सभी से मैंने काफी कुछ सीखा है? और मैं अपने स्मृति-पट से भाषण करते हुए श्री नेहरू की वह तस्वीर कैसे मिटा सकता हूं, जबकि वे राष्ट्र को संबोधित करते हुए कहते हैं: "हमारा देश गरीब है और इसे कहने में मुझे लज्जा नहीं।" बेशक, हमारा देश गरीब है। लेकिन अपने देश को नये सिरे से निर्मित करने के साहसपूर्ण कार्य में हम पराजित होने से इंकार करते हैं।

श्री भागराम शर्मा

जिला गुरुदासपुर (पंजाब) में भूमिहीन काश्तकारों की समस्या

कांग्रेस अध्यक्ष के आज्ञानुसार मैं गुरुदासपुर जिले के भूमिहीन काश्तकारों की समस्या की जांच करने के लिये २३ अगस्त १९५७ को गुरुदासपुर पहुंचा।

गुरुदासपुर जिले की स्थिति का विवरण देने से पूर्व, मैं संक्षेप में, पंजाब के काश्तकारों की समस्या और इस समस्या को हल करने के लिये पंजाब सरकार द्वारा समय-समय पर जारी किये गये भूमि-सुधारों का उल्लेख करूंगा।

पंजाब के काश्तकार

पंजाब के काश्तकार मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित हैं: (१) मौरूसी काश्तकार, और (२) शिकमी काश्तकार। इसमें से प्रथम वर्ग के काश्तकारों को अपनी जमीन पर उत्तराधिकार के अधिकार प्राप्त हैं। वे जमीन के मालिक को मालगुजारी अदा करने के अलावा, 'मालिकाना' भी देते हैं जो कि मालिकों के उच्च अधिकार की मान्यता के बदले रुपये में दो आने से ८ आने तक दिया जाता है। मौरूसी काश्तकारों की संख्या अपेक्षाकृत कम है और वे कुल क्षेत्रफल के लगभग ७ प्रतिशत पर खेती करते हैं। अधिकांश काश्तकार शिकमी काश्तकार हैं, जो कि फसल का आधा भाग मालिक को दे देते हैं और जिन्हें जमीन पर कोई हक हासिल नहीं है। वे पंजाब की कुल खेती वाली जमीन के लगभग ५० प्रतिशत पर खेती करते हैं। पंजाब में शिकमी काश्तकारों द्वारा इतनी ज्यादा जमीन पर खेती करना इस बात का प्रतीक है कि वहां अनुपस्थित जमीन्दारी किस हद तक चालू है। इस संबंध में स्थिति बहुत कुछ जमींदारी क्षेत्रों से मिलती जुलती है। काश्तकारों से हद से अधिक लगान वसूल किया जाता है। वे गरीब और असुरक्षित हैं, जिसका नतीजा यह हुआ है कि काश्तकारों के पास खेती में सुधार करने के लिये न तो आवश्यक साधन ही हैं, और न उन्हें प्रेरणा ही प्राप्त है।

विभाजन और उसके कारण उत्पन्न संकटों के फलस्वरूप पंजाब की ग्रामीण जनता की हालत बहुत खराब हो गयी। पंजाब सरकार शरणार्थियों के पुनर्वास के काम में व्यस्त थी और वह आजादी मिलने के तुरन्त बाद भूमि-सुधारों की समस्या की ओर ध्यान न दे सकी। १९४९-५० तक अन्य राज्यों में जो भूमि-सुधार लागू हुए, उन्होंने इस राज्य पर भी प्रभाव डाला। काश्तकार पट्टे की सुरक्षा और जमीन संबंधी अधिकार की मांग करने लगे। दूसरी ओर, भूस्वामी इस बात से भयभीत होकर कि उनकी जमीन, जिस पर काश्तकार खेती करते थे, भूमि-सुधारों के कारण उनके हाथ से निकल जायगी, काश्तकारों को बड़े पैमाने पर बेदखल करने लगे और खुद खेती करने के लिये अपनी जमीन वापस लेने लगे। इसका मतलब काश्तकारों को तंग करना था। भूस्वामी अपनी जमीन का बटवारा भी करने लगे; वे अपने रिश्तेदारों को जमीन हस्तान्तरित करने और बेचने लगे, जिसका नतीजा यह हुआ कि बहुत अधिक मामलों में काश्तकार बेदखल कर दिये गये।

काश्तकारों की सुरक्षा और कानून

काश्तकारों के हितों की रक्षा के ख्याल से पंजाब काश्तकार (पट्टे की सुरक्षा) अधिनियम, १९५०, स्वीकृत हुआ। लेकिन इस अधिनियम से, जैसा कि यह उस समय था, बहुत ही सीमित मात्रा में सहायता मिली। फिर पंजाब मौरूसी (स्वामित्व अधिकार निहित करने का) अधिनियम, १९५१, और पंजाब आला मालकियत तथा तालुकदार अधिकार उन्मूलन अधिनियम, १९५१, स्वीकृत हुए। इन दोनों अधिनियमों की व्यवस्थाओं के फलस्वरूप, इस प्रकार के जमींदारों और आला-मालिकों के सारे पद, हक, हित, आदि उस समय से समाप्त हो गये हैं और मौरूसी काश्तकारों तथा अदना मालिकों में निहित हो गये हैं। जमींदारों और आला मालिकों को उन जमीनों पर उनके अधिकार के बदले पंजाब मौरूसी काश्तकार (स्वामित्व अधिकार निहित करने के) अधिनियम, १९५२, द्वारा मुआविजा पाने की इजाजत मिल गयी। मौरूसी काश्तकारों

को शामिलात जमीन में भी हिस्से दिये गये हैं।

पंजाब काश्तकार (पट्टे की सुरक्षा) अधिनियम, १९५०, द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि १०० प्रामाणिक एकड़ या २०० कच्चे एकड़ से अधिक जमीन के मालिक सभी भूस्वामी इतनी जमीन खुद काश्त के लिये सुरक्षित रख सकते हैं, और ऐसे भूस्वामियों के कब्जे की बाकी जमीन पर खेती करने वाले शिकमी काश्तकारों को ४ वर्ष अर्थात् १९५४ तक के लिये पट्टे की स्थिरता प्राप्त हो जाएगी। इस तरह के शिकमी काश्तकारों को इस अवधि के भीतर अधिनियम में निर्दिष्ट कारणों के अलावा, अन्यथा बेदखल नहीं किया जा सकेगा।

इसमें यह भी व्यवस्था की गयी कि लगान के संबंध में कोई समझौता न होने की स्थिति में देय लगान की दर रस्मी लगान के बराबर होगी, जो कि उस तहसील में चालू होगी जिसमें जमीन स्थित होगी।

अधिनियम की क्रियाशीलता से प्राप्त अनुभवों से पता चला कि काश्तकारों को प्रदान की गयी राहत बहुत ही कम थी। राष्ट्रपति के अधिनियम द्वारा, जो कि २५ दिसम्बर १९५१ को लागू हुआ, इस अधिनियम में आवश्यक संशोधन किये गये। इस अधिनियम द्वारा जमीन की उस सीमा को घटा कर ५० प्रामाणिक एकड़ या १०० कच्चे एकड़ के बराबर कर दिया गया, जिसे कि कोई भूस्वामी खुदकाश्त के लिये सुरक्षित रख सकता है। इसने इस सीमा से अधिक वाली जमीन के शिकमी काश्तकारों के पट्टे की सुरक्षा की अवधि ४ से बढ़ाकर ५ वर्ष कर दी। इस अधिनियम ने इस बात की भी व्यवस्था की कि जमीन पर क्रमशः ४ और १२ वर्ष तक लगातार काबिज होने पर काश्तकार को मौरूसी होने तथा जमीन को खरीद लेने का अधिकार होगा।

दोनों अधिनियमों की क्रियाशीलता से आगे चल कर जो और अनुभव हुए, उनके फलस्वरूप काश्तकारी से संबंधित कानून अब उचित तौर पर संशोधित कर दिया गया है और उसमें दृढ़ता आ गई है। नया अधिनियम, जिसे पंजाब (जमीन पट्टा सुरक्षा) अधिनियम, १९५३, कहते हैं एक व्यापक कदम है, और उसमें काश्तकारों की बड़ी-बड़ी समस्याएं, जैसे पट्टे की स्थिरता, लगान का औचित्य, आदि के संबंध में व्यवस्था की गई है। इस कानून की प्रमुख व्यवस्थायें इस प्रकार हैं:

१. कोई भी भूस्वामी खुदकाश्त के लिये अधिक से अधिक ३० प्रामाणिक एकड़ या ६० कच्चे एकड़ तक जमीन अपने पास सुरक्षित रख सकता है; लेकिन विस्थापित व्यक्तियों के लिये यह सीमा ५० प्रामाणिक एकड़ या १०० कच्चा एकड़ रखी गई है।

२. ३० अप्रैल १९५४ के पहले किसी काश्तकार को बेदखल नहीं किया जा सकता। उसके बाद अगर वह कुछ शर्तें, जिनमें नियमित रूप से लगान न देना, आदि शामिल हैं, पूरा नहीं करेगा तो वह बेदखल हो सकता है।

३. काश्तकारी के रूप में जोती बोई गई किसी भी जमीन के लिये काश्तकार को जो अधिकतम लगान देना पड़ेगा, उसकी मात्रा उस जमीन की फसल के १।३ या उसके मूल्य के १।३ से, जिसे कि निश्चित ढंग पर निर्धारित किया जायगा, अधिक नहीं होगी।

४. प्रत्येक भूस्वामी को काश्तकार द्वारा दिये गये लगान की रसीद देनी पड़ेगी।

५. अगर कोई काश्तकार कानून द्वारा निश्चित अधिकतम रकबे से अधिक जमीन पर से, अधिनियम में निर्दिष्ट कारणों के अलावा, अन्यथा भी बेदखल किया जाय, और अगर ऐसी जमीन भूस्वामी के खुदकाश्त में होगी तो काश्तकार को अपनी काश्तकारी वापस पाने का अधिकार होगा, बशर्ते कि यह बेदखली अधिनियम लागू होने के पहले और १५ अगस्त १९४७ के बाद हुई हो।

गुरुदासपुर जिले में भूमिहीन काश्तकारों की समस्या

कांग्रेसी विधान सभा सदस्यों ने मुझसे बताया कि यहां बड़े पैमाने पर काश्तकारों की बेदखली हुई थी, खासकर जिले की गुरुदासपुर और पठानकोट तहसीलों में। काश्तकारों की बेदखली के ढंग निम्नलिखित हैं:

(१) पटवारी और गिरदावर से मिलकर खेती संबंधी कागज-पत्रों में गलत इन्दराज कराना। यह दोनों अधिकारी, जो कि प्रशासन के निचले स्तर पर होते हैं, भ्रष्टाचारी बताये गये हैं। भूस्वामी इन्हें घूस देते हैं जिसका नतीजा यह होता है कि कागज में काश्तकार को खेती करने वाले की जगह पर दर्ज करने की बजाय, उसे खुदकाश्त लिखा जाता है। इस तरह, काश्तकार भूस्वामी की दया पर निर्भर करते हैं, और जब कभी वह चाहे इन्हें बेदखल कर सकता है।

(२) भूस्वामी काश्तकारों से मिले लगान की रसीद नहीं देता है। अगर काश्तकार रसीद मांगता है तो उनसे जमीन छोड़ देने के लिये कहा जाता है और वह बेदखल कर दिया जाता है।

(३) चूंकि रसीदें नहीं दी जाती हैं इसलिये काश्तकारों को कई प्रकार से तंग किया जा सकता है। उसके खिलाफ पिछले दो तीन सालों से लगान न अदा करने के जुर्म में मुकदमा दायर किया जाता है और डिग्री ले ली जाती है। इस तरह उन्हें तथाकथित बटाई लगान का बकाया देने के लिये मजबूर किया जाता है जो कि कभी-कभी चार सौ से लेकर पाँच सो रुपये तक होती है और उसे काश्तकार अदा करने में प्रायः असमर्थ होते हैं। अतः बकाया लगान में काश्तकारों को बेदखल कर दिया जाता है।

४. काश्तकारों पर झूठे मुकदमे चलाये जाते हैं। ये मुकदमे प्रायः आबकारी संबंधी (जैसे घर में शराब रखना) होते हैं। इस तरह, उन्हें तब तक तंग किया जाता है, जब तक कि वे खुद जमीन पर खेती करना बन्द न कर दें।

५. कनकुट (अनुमानित औसत उपज का निर्धारण)। जैसा कि ऊपर कहा गया है, काश्तकार द्वारा दिये जाने वाले लगान की अधिकतम मात्रा उसकी काश्तकारी वाली जमीन या निर्धारित भूमि पर निश्चित किये गये उसके मूल्य के एक-तिहाई से अधिक नहीं होनी चाहिए। इसके अनुसार, जमींदारों को यह अधिकार है कि वे स्वेच्छानुसार लगान में फसल का हिस्सा या उसका मूल्य, जो भी चाहें, लें। अक्सर यह होता है कि फसल का मूल्य निर्धारित करने के लिये जमीन का एक ऐसा टुकड़ा चुना जाता है जिसकी फसल सबसे अच्छी हो। इसके अलावा, पटवारी और गिरदावर से मिलकर उस फसल का काफी ऊंचा मूल्य निश्चित कर दिया जाता है। नतीजा यह होता है कि कभी-कभी काश्तकार को पूरी फसल से हाथ धो देना पड़ता है। साल दर साल इस तरह से परेशान होने पर काश्तकारों को जमीन छोड़ देने के लिये मजबूर होना पड़ता है।

मैं नीचे कुछ ऐसे गांवों की मिसाल दे रहा हूं, जिनका मैंने दौरा किया था।

१. **भद्दरौली** (थाना पठानकोट)—इस गांव की आबादी लगभग ८०० है। एक परिवार को छोड़कर, बाकी सभी हरिजन हैं, जिनमें से १०० तो शुरू से ही इस गांव के निवासी हैं और ७०० पश्चिमी पंजाब के स्यालकोट जिले की शकरगढ़ तहसील से आये हुए शरणार्थी हैं। इस गांव में कुल ७०० एकड़ जमीन है जिस पर दो भाइयों का संयुक्त रूप से कब्जा है। ७०० एकड़ जमीन में से १२५ एकड़ काश्तकारों के पास है, २०० एकड़ बंजर कदीम है और २५० एकड़ खुदकाश्त है। बाकी जमीन दरियाबुर्द है। इन दोनों भाइयों के कब्जे में राजपरूरा नामक एक दूसरे गांव में ३०० एकड़ जमीन और नरोत मेहरा नामक एक दूसरे गांव में ३०० एकड़ जमीन है। उन्होंने ४ साल हुए एक ट्रैक्टर खरीदा। इस ट्रैक्टर का इस्तेमाल सिर्फ एक साल तक हुआ। नतीजा यह हुआ कि जो जमीन खुदकाश्त दिखाई गई थी, वह तीन साल तक परती पड़ी रही और उस बीच ट्रैक्टर भी बेकार पड़ा रहा। इस बात से भयभीत होकर कि वे अब और अधिक समय तक सरकार को धोखा नहीं दे सकते तथा खेती न करने पर उनकी जमीन उनसे छीन ली जायगी। इन भाइयों ने फिर ट्रैक्टर चलाना शुरू कर दिया और उससे जमीन की जोताई शुरू कर दी। मैंने खुद ट्रैक्टर चलते देखा। हम गांव के आसपास के खेतों में ३ घंटे तक घूमते रहे। इस तरह हमें भूस्वामियों और काश्तकारों द्वारा जोती गई जमीनें देखने का अच्छा मौका मिला। इन दोनों तरह की जमीनों में जो फसलें उगीं थीं, उनमें काफी फरक था। जिन खेतों पर काश्तकारों ने खेती की थी उनकी फसल बहुत अच्छी थी और उम्मीद है कि उनसे अच्छी पैदावार मिलेगी। लेकिन जिन खेतों पर भूस्वामियों ने खुद खेती की है, उसमें फसल सिर्फ नाम के लिये है। मेरा ख्याल है कि इ

खेतों से शायद ही कुछ उपज प्राप्त हो।

हम उन काश्तकारों से मिले, जिन्हें बेदखल कर दिया गया। उनमें से कई तो फटे पुराने चियड़े पहने हुए थे। वे अर्ध-नग्न थे, अधभूखे थे और उनके चेहरों पर उदासी और वेदना के चिन्ह थे। उन्होंनें मुझे बतलाया कि जिन जमीनों पर उन्होंने खेती की है, उनमें सुधार के लिये उन्होंने काफी मेहनत की है, हालांकि कब्जा उनका नहीं है। उन्होंने अपने उपज से लहलहाते हुए खेतों को दिखलाया जिनकी बगल में भूस्वामियों के खेत भी थे जिनमें फसल बहुत ही खराब थी। कुछ बेदखल किये गये काश्तकार जम्मू और कश्मीर राज्य के पड़ोसी गांवों में चले जाते हैं और मेहनत मजदूरी करके अपनी रोजी कमाते हैं। यह गांव ठीक जम्मू और कश्मीर राज्य की सीमा पर हैं।

गांव में दो प्राइमरी स्कूल हैं जो कि गांव के दोनों ओर लगभग १ मील की दूरी पर स्थित हैं। गांव के पास कोई अस्पताल या पशु अस्पताल नहीं है। इस गांव के लिये एक कताई केन्द्र होना जरूरी है, ताकि बेकार काश्तकार अपनी रोजी कमा सकें। घर बनाने के लिये ऋण देना जरूरी है, ताकि गांववाले अपना मकान बना सकें और टिन की चद्दरों से उन्हें ढक सकें। अगर इस गांव की बंजर कदीम और दरियाबुर्द जमीनें काश्तकारों को दे दी जायं, तो मुझसे बताया गया कि उसमें काफी अच्छी फसलें उगाई जा सकती हैं। इसके अलावा. भूस्वामियों के नाम अधिकतम सीमा से अधिक जो जमीन दर्ज है, उसपर बहुत से भूमिहीन काश्तकारों के परिवार गुजर बसर कर सकते हैं।

२. **कालिजपुर**—इस गांव में काफी जमीन खाली पड़ी है। काश्तकारों की बेदखली के बाद उस पर खेती नहीं की गई। यह जमीन भूमिहीन काश्तकारों को दी जा सकती है।

३. **कोठी कीरत राम**—इस गांव की लगभग २०० एकड़ जमीन पिछले ४-५ वर्षों से परती पड़ी हुई है।

४. **कोठी चौधरी केशवदास**—इस गांव में पिछले ४ या ५ वर्षों से २०० से लेकर २५० एकड़ तक जमीन खाली पड़ी है।

५. **माधोपुर**—माधोपुर सड़क पर लगभग ५०० से ६०० एकड़ जमीन पिछले चार, पांच वर्षों से परती पड़ी हुई है।

जमीन को, और खासकर अच्छी जमीन को, खाली या परती रख छोड़ना एक राष्ट्रीय क्षति है, और साथ ही साथ, शिकमी काश्तकारों के लिये मुश्किलों और परेशानियों का जरिया भी है। इससे भूस्वामियों को भी काफी नुकसान उठाना पड़ता है और वे इसे परती रख कर सिर्फ इसलिये संतुष्ट रहते हैं कि उन्हें अपना कब्जा बनाये रखने का संतोष रहता है, हालांकि उन्हें कोई पैदावार नहीं मिलती।

मेरा ख्याल है कि अभी तक पंजाब सरकार ने जो काश्तकारी कानून बनाये हैं, उन्होंने असली समस्या को स्पर्श ही किया है। जब तक कि तत्काल भविष्य में भूमिहीन काश्तकारों की समस्या हल करने के लिये कड़े कदम नहीं उठाये जायेंगे, तब तक काश्तकार इस क्षेत्र में कम्यूनिस्ट पार्टी द्वारा चलाये गये झूठे प्रचारों के फंदे में पड़ कर ही रहेंगे। अगर निकट भविष्य में आराजियों की प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन करना संभव न हो, तो मेरा सुझाव है कि पंजाब सरकार को यह दबाव डालना चाहिए कि वह अब तक स्वीकृत कानूनों को अक्षरशः और उनकी भावना के अनुरूप लागू करें।

आर्थिक-समाचार-संकलन

भारतीय

औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि

सन् १९५७ की पहली तिमाही में इससे पहले कि तिमाही से अधिक औद्योगिक उत्पादन हुआ। यह १९५६ की पहली तिमाही से भी अधिक था। १९५७ की पहली तिमाह में औद्योगिक उत्पादन का सूचक अंक १९५१=१०० मान कर १९५६ के पूरे वर्ष के तथा उस वर्ष की पहली तिमाही के सूचक अंक से काफी अधिक था। इस अवधि में कोयला, तैयार इस्पात, सिमेंट, अलुमीनियम, मोटर गाड़ी, सिलाई की मशीन, सूती कपड़े और सूत, बिजली के सामान, जूट के तैयार माल, सुपर फासफेट खाद, टायर, ट्यूब, नमक, चीनी, वनस्पति, कागज, गत्ता, परतदार लकड़ी, (प्लाइवुड), कमाया हुआ चमड़ा, चमड़े के जूते और ब्लेड का उत्पादन बढ़ा। साथ ही, आलोच्य तिमाही में बनावटी रेशम, सोडा ऐश, कास्टिक सोडा, जस्ते की पट्टियां, रंगाई के सामान, मोटर गाड़ी के पुर्जे, तथा औषधियों, आदि के नये कारखाने खोले गये। कुछ वर्तमान कारखानों की उत्पादन शक्ति भी बढ़ाई गई। इस अवधि में ४८ नये कारखाने खोलने के लिए लाइसेंस दिये गये। वर्तमान कारखानों का विस्तार करने या नई वस्तुएँ तैयार करने के लिए १६९ तथा वर्तमान कारबार को चलाते रहने के लिए तीन लाइसेंस दिये गये।

आलोच्य तिमाही में १३ लाख ७८ हजार टन सिमेंट का उत्पादन हुआ। यह पिछली तिमाही से ८ प्रतिशत तथा पिछले वर्ष की पहली तिमाही से १२ प्रतिशत अधिक था। सिमेंट का एक नया कारखाना भी खोला गया। इस अवधि में ३ लाख ४६ हजार टन तैयार इस्पात का उत्पादन हुआ। यह १९५६ की पहली और अन्तिम तिमाही से थोड़ा अधिक था। इस तिमाही में खानों से १ करोड़ ७९ लाख ९ हजार टन कोयला निकाला गया।

आलोच्य अवधि में १ अरब ३७ करोड़ २० लाख गज सूती कपड़ा बना। यह उत्पादन १९५६ की पहली तिमाही से ९ प्रतिशत और अन्तिम तिमाही से १ प्रतिशत अधिक था। सूत का उत्पादन १९५६ की पहली तिमाही से १३ प्रतिशत और अन्तिम तिमाही से कुछ अधिक बढ़ा। जूट के तैयार माल का उत्पादन २ लाख ५४ हजार टन रहा।

इस अवधि में ब्लेड का उत्पादन बहुत अधिक बढ़ा। १९५६ की पहली तिमाही में ४ करोड़ १० लाख ब्लेड तैयार हुए थे। आलोच्य अवधि में यह संख्या बढ़ कर १० करोड़ ९० लाख हो गयी। १९५६ की अन्तिम तिमाही में ८ करोड़ ७० लाख ब्लेड तैयार हुए थे। पिछली तिमाही में ३५ हजार ४०० सिलाई की मशीनें तैयार हुई थीं, इस तिमाही में यह संख्या बढ़ कर ४२ हजार हो गयी। पिछले साल की इसी तिमाही में ३१ हजार २०० सिलाई की मशीनें तैयार हुई थीं। आलोच्य तिमाही में मशीनी औजार का बहुत उत्पादन हुआ। इसकी कीमत लगभग ५१ लाख रु० थी। इससे पहले की तिमाही के उत्पादन की कीमत १८ लाख ५० हजार रुपये और पिछले वर्ष की इसी तिमाही के उत्पादन की कीमत २० लाख ५० हजार रुपये थी। आलोच्य अवधि में ९ हजार ३३९ मोटर गाड़ियां बनीं। १९५६ की पहली तिमाही में ७ हजार ५४५ और अन्तिम तिमाही में ८ हजार ३४७ मोटर गाड़ियों का उत्पादन हुआ था। इस अवधि में १ लाख ९१ हजार साइकिलें बनीं। १९५६ की पहली तिमाही में १ लाख २० हजार साइकिलें बनी थीं।

आलोच्य काल में कुल ११ लाख टन चीनी बनी। पिछले वर्ष की इसी तिमाही में १० लाख ५० हजार टन चीनी का उत्पादन हुआ था। इस अवधि में वनस्पति तेल का उत्पादन बढ़ कर लगभग ८२ हजार टन हो गया। अमोनियम सल्फेट खाद का उत्पादन १० लाख २ हजार टन रहा। यह १९५६ की इसी तिमाही के उत्पादन से कुछ अधिक लेकिन पिछली तिमाही से कम था।

दूसरी योजना के अन्तर्गत नगरों में मकान

दूसरी पंचवर्षीय योजना में बताया गया है कि देश में ऐसी संस्थाओं की जरूरत है, जो मकान, आदि बनवाने के लिए कर्ज दे सकें और इस काम के लिए पैसा जुटा सकें। सरकार की योजना विभिन्न राज्यों में आवास निगम खोलने की है जो मकान, आदि बनवाने वालों को कर्ज देगा और इसके

लिए निजी लोगों, बैंकों, कंपनियों, आदि से धन जुटायेगा।

अनुमान लगाया गया है कि दूसरी योजना में निजी लोग मकान, आदि बनवाने में १,००० करोड़ रुपये की पूंजी लगायेंगे। इसमें से करीब ८०० करोड़ रुपये की लागत से नगरों में ८ लाख मकान बनवाये जायेंगे। केन्द्रीय निर्माण, आवास तथा पूर्त्ति मंत्रालय भी, अपनी विभिन्न आवास योजनाओं के अन्तर्गत, १०८ करोड़ रुपये की लागत से ३,११,००० मकान बनवायेगा। अन्य केन्द्रीय मंत्रालय, राज्य सरकारें तथा स्वायत्त शासन संस्थाएँ भी लगभग ७,५३,००० मकान बनवायेंगी और इस पर अन्दाजन ४१४ करोड़ रुपये खर्च करेंगी। इस प्रकार दूसरी योजना की अवधि में सरकारी तथा निजी क्षेत्र में १,३२२ करोड़ रुपये की लागत से लगभग १९ लाख मकान बनवाये जायेंगे।

राज्यों में आवास निगम खोलने का उद्देश्य लोगों में यह विश्वास पैदा करना है कि दूसरी योजना में मकान बनवाने पर केवल केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें ही पैसा नहीं खर्च करेंगी, निजी लोगों का भी पैसा लगेगा। लागत के हिसाब से नगरों के मकानों का जो किराया पड़ता है, उसे चुकाना कम आय वाले लोगों के लिए संभव नहीं है। इसीलिए केन्द्रीय सरकार के बजट में इस काम के लिए जिस धन की व्यवस्था है, उसमें से अधिकांश धन लोगों को मकान बनवाने के लिए सहायता के रूप में दिया जायेगा। दूसरे, इस धन से सरकार जमीन प्राप्त करके, उसका विकास करेगी और बिना लाभ या हानि उठाये लोगों को मकान बनवाने के लिए बेचेगी। निगम जितना अधिक पैसा लोगों को कर्ज देने के लिए जुटाएंगे, उतना ही अधिक पैसा लोगों को कर्ज के रूप में मिलेगा। इस प्रकार, सरकार दूसरी योजना में नगरों में मकान बनवाने के लिए १,००० करोड़ रुपये की व्यवस्था कर सकेगी।

सरकारी खर्च में बचत

सरकार के वित्तीय तथा अन्य साधनों का अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए हाल में यह निर्णय किया गया कि सभी मंत्री और सचिव अपने अपने मंत्रालयों की कार्यक्षमता बढ़ाने और खर्च में कमी करने पर शीघ्र ध्यान दें। इसके लिए, उन्हें अपने अपने मंत्रालय के सभी प्रकार के काम की जांच करके खामियों को दूर करने के लिए कहा गया है। इस काम में वित्त मंत्रालय की बचत टुकड़ी और मंत्रिमंडल सचिवालय का संगठन और प्रणाली विभाग उनकी सहायता करेगा।

विभिन्न मंत्रालयों में काम की देख-भाल के लिए आन्तरिक बचत समितियां बनाई गई हैं। बचत टुकड़ी को सलाह देने के लिए एक केन्द्रीय समिति भी बनायी गई है। वित्त मंत्रालय के मुख्य सचिव, स्वराष्ट्र मंत्रालय के सचिव तथा संगठन और प्रणाली विभाग के निर्देशक इस समिति के सदस्य हैं। संगठन और प्रणाली विभाग को, केन्द्रीय समिति तथा प्रत्येक मंत्रालय और विभाग से, मासिक प्रतिवेदन मंगा कर पेश करने का आदेश दिया गया है। अभी यह ठीक-ठीक बताना संभव नहीं है कि इन उपायों से कितनी बचत हो सकेगी। विभिन्न मंत्रालयों और विभागों द्वारा किये गये निर्णयों से हो सकने वाली बचत अनुमानतः इस प्रकार है :

अणुशक्ति विभाग	४१ लाख रु.
वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय	३ करोड़ ५ लाख रु.
प्रतिरक्षा मंत्रालय	२६ लाख रु.
रेल मंत्रालय	१३ करोड़ ७७ लाख रु.
इस्पात, खान और ईंधन मंत्रालय	१ करोड़ २६ लाख रु.

भारत में मेंगनीज खनिज का उत्पादन

भारतीय खान कार्यालय के अनुसार, जून १९५७ को समाप्त होने वाली तिमाही में ४,१४,००० टन मेंगनीज खनिज का उत्पादन हुआ। उड़ीसा में १,२२,००० टन खनिज का उत्पादन हुआ जो पिछली तिमाही से ९,००० टन अधिक है। आन्ध्र प्रदेश में ७२,२६६ टन खनिज का उत्पादन हुआ, जो पिछली तिमाही से ५,००० टन अधिक है। खनिज का उत्पादन करने वाले अन्य सब राज्यों में उत्पादन घटा। मध्य प्रदेश में ७६,००० टन, बम्बई में ७२,००० टन, मैसूर में ५७,००० टन और बिहार में १२,००० टन मेंगनीज खनिज का उत्पादन हुआ। जून १९५७ को समाप्त होने वाली छमाही में कुल ८,८०,००० टन खनिज का उत्पादन हुआ, जो पिछले साल की इसी छमाही के उत्पादन से २६,००० टन कम है।

विदेशी

भारत-आस्ट्रिया व्यापार-करार की अवधि बढ़ी

भारत-आस्ट्रिया व्यापार-करार पर प्रथमतः ९ दिसम्बर १९५२ को हस्ताक्षर हुए थे और इसकी अवधि जून १९५४ में समाप्त होने वाली थी, परन्तु बीच-बीच में यह अवधि बढ़ायी जाती रही। पिछली बार यह सितम्बर १९५६ में जून १९५७ तक के लिए बढ़ायी गयी थी। अब हाल में व्यापार-करार की अवधि जून १९५८ तक बढ़ाई गयी है।

अब आस्ट्रिया की सरकार भारत से निम्नलिखित चीजें मंगाने के लिए निर्बाध लाइसेंस देने के लिए राजी हो गयी है : वाल नट, कपोक, कच्ची ऊन, सूअर के बाल, बिनौले का तेल, हड्डी का चूरा, ब्लेडर और गठ। इसके अलावा भारत से रेंडी का तेल, नारियल का तेल, नारियल के रेशा की रस्सी, ब्रुशों और झाड़ओं का सामान, हाथी दांत का सामान, पीतल, लौह खनिज, मैंगनीज खनिज, अभ्रक, लाख, अलसी का तेल, मसाले, काजू, कमाया चमड़ा, चाय, कालीन, खेल का सामान, जमाया तेल और कपास मंगाने के लिए भी खुली आज्ञा दे दी गयी है।

लंदन का भारतीय सामग्री खरीद विभाग

लन्दन के भारतीय खरीद विभाग ने हिन्दुस्तान एअरक्राफ्ट लिमिटेड के लिये १९५५-५६ तथा १९५६-५७ में क्रमश १,३६,००१ और ११,५६,६१३ पौण्ड का सामान खरीदा। उसने हिन्दुस्तान केबल्स लि० के लिये १९५५-५६ में ६५,९२० पौंड का और १९५६-५७ में १,१३,२१० पौंड का सामान खरीदा। सिंदरी के रासायनिक खाद के कारखाने के लिये १९५५-५६ और १९५६-५७ में जो सामान खरीदा गया था उसकी कीमत क्रमशः १५,००८ और १२,९४१ पौंड थी।

भारत का कोरिया गणतंत्र से व्यापार

भारत और कोरिया गणतन्त्र के बीच व्यापार के लिए कोरिया के बीच प्रवन्ध निर्देशक नियुक्त हो गया है। भारत से मुख्यतः यह सामान कोरिया गणतंत्र को भेजा जायगा : पटसन का सामान, चाय, चपड़ा, कहवा, खनिज, वनस्पति तेल, सूती तथा ऊनी कपड़े, नारियल के रेशे और उसका सामान, साबुन, मशीनी औजार, सिलाई की मशीन और मोमजामा (लाइलोनियम)। कोरिया से यह सामान भारत आएगा : सीमेंट, कांच, इस्पात, कास्टिक सोडा, आदि।

विदेशी पर्यटकों की संख्या में वृद्धि

भारत में विदेशी पर्यटकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। भारत सरकार इस ओर विशेष ध्यान दे रही है, और पर्यटकों की सुविधाओं एवं अनेक आकर्षण के स्थानों के विकास पर एक समुचित धन-राशि व्यय की जाती है।

१९५६ में भारत आने वाले विदेशी पर्यटकों की संख्या पिछले साल की अपेक्षा दूनी रही। १९५६ में ६८,८८० विदेशी पर्यटक (पाकिस्तान से आने वालों को छोड़कर) भारत आये। १९५५ में ३३,२६९ पर्यटक भारत आये। भारत में पर्यटन बढ़ाने के लिये सरकार ने जो आन्दोलन चलाया था उसके फलस्वरूप उत्तरी अमरीका, और योरप से आने वाले पर्यटकों की संख्या में काफी वृद्धि हुई।

भारत में विदेशी पूंजी

भारत के आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी, विदेशी मशीनों और टैकनिकल प्रशिक्षित कर्मचारियों और प्राविधिक सहायता का विशेष स्थान है।

३१ दिसम्बर १९५५ को भारतीय व्यापार में ४७७.९७ करोड़ रु. की विदेशी पूंजी लगी थी। ३१ दिसम्बर १९५३ को ४१५.७३ करोड़ रु. की और जून १९४८ के अंत में २८७.५७ करोड़ रु. की विदेशी पूंजी लगी हुई थी।

आस्ट्रेलिया में ऊन उत्पादन वृद्धि पर

आस्ट्रेलिया में भेड़ों की संख्या बढ़ कर १५ करोड़ ९ लाख हो गयी है जो एक नया रिकार्ड है। आस्ट्रेलिया में १९५६-५७ के मौसम में कुल १ अरब ५६ करोड़ ४० लाख पौंड (चिकनी) ऊन के उत्पादन का अनुमान किया गया है, जिसका संकेत यह है कि उत्पादन ५० लाख गांठ तक पहुंच गया है। १९५६-५७ का यह अनुमानित उत्पादन १९५५-५६ के मुकाबले में लगभग ११ प्रतिशत अधिक है।

१ अरब ५६ करोड़ ४० लाख पौंड का राष्ट्रकुलीय अनुमान लगभग ५२ लाख ५० हजार गांठ (चिकनी) के बराबर होता है। आढ़तियों के गोदामों में अब तक ४८,६७,००० गांठ ऊन आ चुकी है और चालू मौसम में ४९,४०,००० गांठ और आ जाने की आशा है। १९५६-५७ के कुल उत्पादन के आंकड़ों में खाल से उतारी गयी धुली ऊन तथा खालों के साथ निर्यात की गयी ऊन शामिल है। आस्ट्रेलिया में प्रति भेड़ ऊन की प्राप्ति भी बढ़ी है। १९५६-५७ में भेड़ और मेमनों से ऊन का औसत उत्पादन ९.३ पौंड प्रति नग था, यह संख्या १९५५-५६ के उत्पादन से ०.१ पौण्ड अधिक है।

तालिका:

विभिन्न राज्यों में लगान का नियमन

आन्ध्र प्रदेश

पुराने आंध्र का इलाका: सिंचाई के इलाकों में पैदावार के ५० प्रतिशत भाग तथा सूखे इलाकों में ४५ प्रतिशत भाग से अधिक लगान नहीं होना चाहिए। राज्य सरकार का ध्यान योजना के अन्तर्गत दी गई सिफारिशों की ओर आकृष्ट किया गया है और अनुरोध किया गया है कि लगान की दर घटा दी जाय और पैदावार का १।४ या १।५ भाग ही लगान के रूप में लिया जाय।

तैलंगाना का इलाका: सिंचाई के इलाकों में (बहुत अच्छी तरह सींचे हुए इलाकों को छोड़कर) पैदावार का १।४ भाग और अन्य इलाकों में १।५ भाग। भू राजस्व के अपवर्त्यक अंक के रूप में अधिकतम लगान तय करने की भी व्यवस्था है। यह अपवर्त्यक अंक जमीन की किस्म के मुताबिक ३ गुने से ५ गुने तक हो सकता है।

आसाम

अगर बटाईदार हल-बैल आदि, देता है तो बटाई का भाग १।५ से ज्यादा नहीं होना चाहिए, और अगर जमींदार हल-बैल आदि, देता है तो फसल का १।४ भाग लगान के रूप में दिया जाना चाहिए।

नकद लगान जमींदार को अस्थायी बन्दोबस्त के इलाके में मिलने वाले लगान के ५० प्रतिशत भाग तथा स्थायी बन्दोबस्त के इलाकों के १०० प्रतिशत भाग से अधिक नहीं होना चाहिए।

बिहार

पैदावार के रूप में दिया जाने वाला लगान: कुल पैदावार का १।७ वां भाग।

नकद के रूप में दिया जाने वाला लगान: यदि भू-धारण अधिकार रजिस्टर्ड पट्टे द्वारा प्राप्त हो, तो जमींदार द्वारा दिये जाने वाले लगान के ५० प्रतिशत भाग से अधिक न होना चाहिए और अन्य स्थानों में यह दर २५ प्रतिशत होनी चाहिए।

बम्बई

पुनर्गठन से पूर्व का बम्बई: अधिकतम लगान कुल पैदावार के १।६ भाग अथवा मालगुजारी के पांच गुने भाग में से, जो भी कम हो।

मराठवाड़ा (पुराना हैदराबाद): उपरिलिखित आंध्र प्रदेश के तैलंगाना इलाके के अनुसार।

बरार क्षेत्र: मालगुजारी का पांच गुना भाग।

सौराष्ट्र: अभी तक नियमन नहीं हुआ।

कच्छ क्षेत्र: सूखी जमीनों पर पैदावार का १।४ भाग और सिंचाई के इलाकों में १।४ भाग॥

जम्मू व कश्मीर

१२॥ एकड़ से अधिक सिंचाई की भूमि रखने वालों से १।२ भाग और असिंचित जमीनों के मालिकों से १।३ भाग। छोटे मालिकों के लिये पैदावार का १।२ भाग।

मद्रास

सिंचाई के इलाकों में ४० प्रतिशत भाग; जिन इलाकों में सिंचाई की दूसरी प्रकार की सुविधाएं हैं, ३५ प्रतिशत भाग; और अन्य इलाकों में ३३ प्रतिशत।

केरल

त्रिवान्कुर-कोचीन क्षेत्र: लगान का नियमन अभी तक नहीं हुआ।

मलाबार: सिंचाई के इलाकों में कुल पैदावार का आधा भाग और असिंचित जमीनों के इलाकों में निर्धारित कर का तीन गुना भाग।

मध्य प्रदेश

भूतपूर्व मध्य प्रदेश का इलाका: लगान का नियमन अभी तक नहीं हुआ।

मध्य भारत का इलाका: कर-निर्धारण का दुगुना भाग। यह उन काश्तकारों के मामले में लागू होता है जो कि कानून जारी होने के बाद काश्तकार बनते हैं। कानून जारी होने के

समय काश्तकारों द्वारा दिये जाने वाले लगान का नियमन नहीं हुआ।

विन्ध्यप्रदेश का इलाका : नकद लगान : सिंचाई के इलाकों में पैदावार का १।३ भाग और अन्य इलाकों में १।४ भाग।

भोपाल क्षेत्र : लगान का नियमन अभी तक नहीं हुआ।

मैसूर

पुनर्गठन से पूर्व का मैसूर : मैदानी इलाकों में पैदावार का १।३ भाग और मालनाड इलाकों में १।४ भाग।

बम्बई का इलाका : उपरिलिखित अनुसार पैदावार का १।६ भाग।

हैदराबाद का इलाका : उपरिलिखित अनुसार पैदावार के १।४ से १।५ भाग तक।

कुर्ग का इलाका : पैदावार का १।३ भाग।

मद्रास का इलाका : ४० प्रतिशत से ३३-१।३ प्रतिशत तक।

उड़ीसा

पैदावार के रूप में दिया जाने वाला लगान : पैदावार का १।४ भाग, बशर्ते कि असिंचित जमीन में ४ मन और सिंचाई के इलाके में ५ मन धान पैदा होता हो।

नकद लगान : जैसा कि बिहार में है।

पंजाब

पैदावार का १।३ भाग।

राजस्थान

भूतपूर्व राजस्थान का इलाका : कुल उपज का १।६।

अजमेर : काश्तकारी की किस्म के मुताबिक पैदावा के १।५ से १।८ भाग तक।

उत्तरप्रदेश

पैदावार के रूप में दिये जाने वाले लगान को नक लगान के रूप में बदलने के लिये दी गई दरख्वास्तों के फ स्वरूप तय किये जाने वाले लगान से अधिक नहीं होना चाहिए। पैदावार के रूप में दिये जाने वाले लगान का नियमन न हुआ।

दिल्ली

पैदावार का १।५ वां भाग।

पश्चिम बंगाल

यदि जमींदार खेती का खर्च उठाता हो तो बटाईदा द्वारा दिये जाने वाला भाग पैदावार के ५० प्रतिशत से अधि न हो, और यदि जमींदार खेती का खर्च न उठाता हो, त बटाईदार द्वारा दिया जाने वाला भाग ४० प्रतिशत से अधिक न हों।

हिमाचलप्रदेश

पैदावार का १।४ भाग।

मणिपुर और त्रिपुरा

अभी तक लगान का नियमन नहीं हुआ। भूमि सुधा बिल में अधिकतम लगान की सीमा निर्धारित करने व्यवस्था की जा रही है।

सर्वोदय का भय

"भारत का सौभाग्य है कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद फौरन एक दूसरा ध्येय सामने उपस्थित हुआ। नहीं तो, हो सकता कि समाज को थकान आ जाती। बीच में ऐसे कुछ लक्षण दीख पड़े भी थे। लेकिन फौरन सर्वोदय का ध्यान सामने आ गया। उस ध्येय के लिए राह भी खुल गयी, जबकि भूदान का विचार भगवान ने सुझाया। सबसे हम कह सकते हैं कि समाज में फिर से जागृति आ रही है, सुप्रेरणाएं काम कर रही है और संकल्प निर्माण हो रहा है। नयी प्रेरणा, नया संकल्प लोगों को हुआ, जिसे, जीवनदान, नाम से पुकारा गया।

—विनोबा

अरविन्द का यह चिह्न

उच्चतम कोटि

के

कपड़ों के लिए सुप्रसिद्ध

अरविन्द मिल्स लिमिटेड

नरोदा रोड, अहमदाबाद–२

तार–आगरा होटल : फोन–२४६०६

आगरा होटल

१६ दरियागंज, दिल्ली–७

नई तथा पुरानी दिल्ली के मध्य स्थित

★सजे सजाये वातानुकूलित कमरे

★विस्तृत बाग़ व लान

★अंग्रेजी और भारतीय ढंग के खाने

★व्यक्तिगत सुविधाओं पर ध्यान देना इसकी सर्वश्रेष्ठ विशेषता है।

★जिस साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, वह निरर्थक है।

★जो साहित्य मानव जाति की सेवा की प्रेरणा नहीं देता, वह निष्प्रयोजन है। और

★जो साहित्य बुद्धि-भेद उत्पन्न करता है, वह अनिष्टकारी है।

जीवन साहित्य

में जीवन, मानव जाति की सेवा की प्रेरणा और एकनिष्ठ बुद्धि से अपने मार्ग पर चलने का बल मिलेगा

एक प्रति अवश्य देखने की कृपा कीजिये

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

समाजवादी-समाज

रचना का मार्ग प्रशस्त करने वाली

द्वितीय योजना

की पूर्ति में आप किस प्रकार हाथ बंटाकर राष्ट्रीय कर्त्तव्य की पूर्ति कर सकते हैं। यह जानने के लिए—

कांग्रेस-सन्देश

(मध्यभारत प्रदेश कांग्रेस का साप्ताहिक मुखपत्र)

पढ़िये !

सम्पादक

कृष्णकांत व्यास

साथ ही विज्ञापन का सर्वोत्तम साधन

वार्षिक मूल्य ५) टेलीफोन नं० ६८१३

लिखिए :—

"कांग्रेस सन्देश", पो०बा० नं० ८, इन्दौर शहर

प्रीस्ट्रेस्ड कंक्रीट पाइप प्रयोग कीजिये

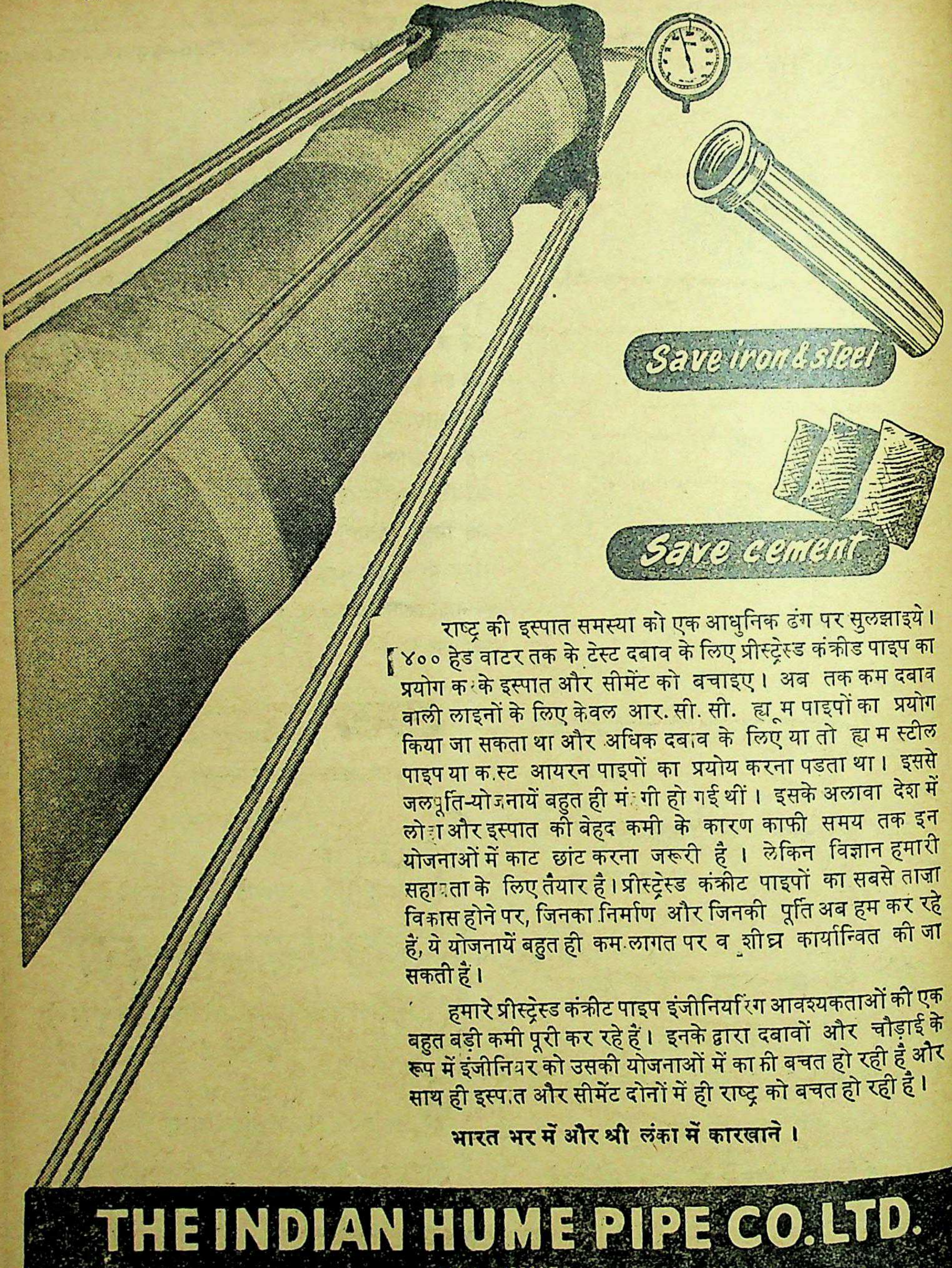

राष्ट्र की इस्पात समस्या को एक आधुनिक ढंग पर सुलझाइये। ४०० हेड वाटर तक के टेस्ट दबाव के लिए प्रीस्ट्रेस्ड कंक्रीड पाइप का प्रयोग करके इस्पात और सीमेंट को बचाइए। अब तक कम दबाव वाली लाइनों के लिए केवल आर. सी. सी. ह्यूम पाइपों का प्रयोग किया जा सकता था और अधिक दबाव के लिए या तो ह्यूम स्टील पाइप या कास्ट आयरन पाइपों का प्रयोय करना पडता था। इससे जलपूर्ति-योजनायें बहुत ही मंहगी हो गई थीं। इसके अलावा देश में लोहा और इस्पात की बेहद कमी के कारण काफी समय तक इन योजनाओं में काट छांट करना जरूरी है। लेकिन विज्ञान हमारी सहायता के लिए तैयार है। प्रीस्ट्रेस्ड कंक्रीट पाइपों का सबसे ताजा विकास होने पर, जिनका निर्माण और जिनकी पूर्ति अब हम कर रहे हैं, ये योजनायें बहुत ही कम लागत पर व शीघ्र कार्यान्वित की जा सकती हैं।

हमारे प्रीस्ट्रेस्ड कंक्रीट पाइप इंजीनियरिंग आवश्यकताओं की एक बहुत बड़ी कमी पूरी कर रहे हैं। इनके द्वारा दबावों और चौड़ाई के रूप में इंजीनियर को उसकी योजनाओं में काफ़ी बचत हो रही है और साथ ही इस्पात और सीमेंट दोनों में ही राष्ट्र को बचत हो रही है।

भारत भर में और श्री लंका में कारखाने।

THE INDIAN HUME PIPE CO. LTD.

HEAD OFFICE
CONSTRUCTION HOUSE, BALLARD ESTATE, BOMBAY, I

दिल्ली कारखाना : सराय रोहिल्ला दिल्ली-६

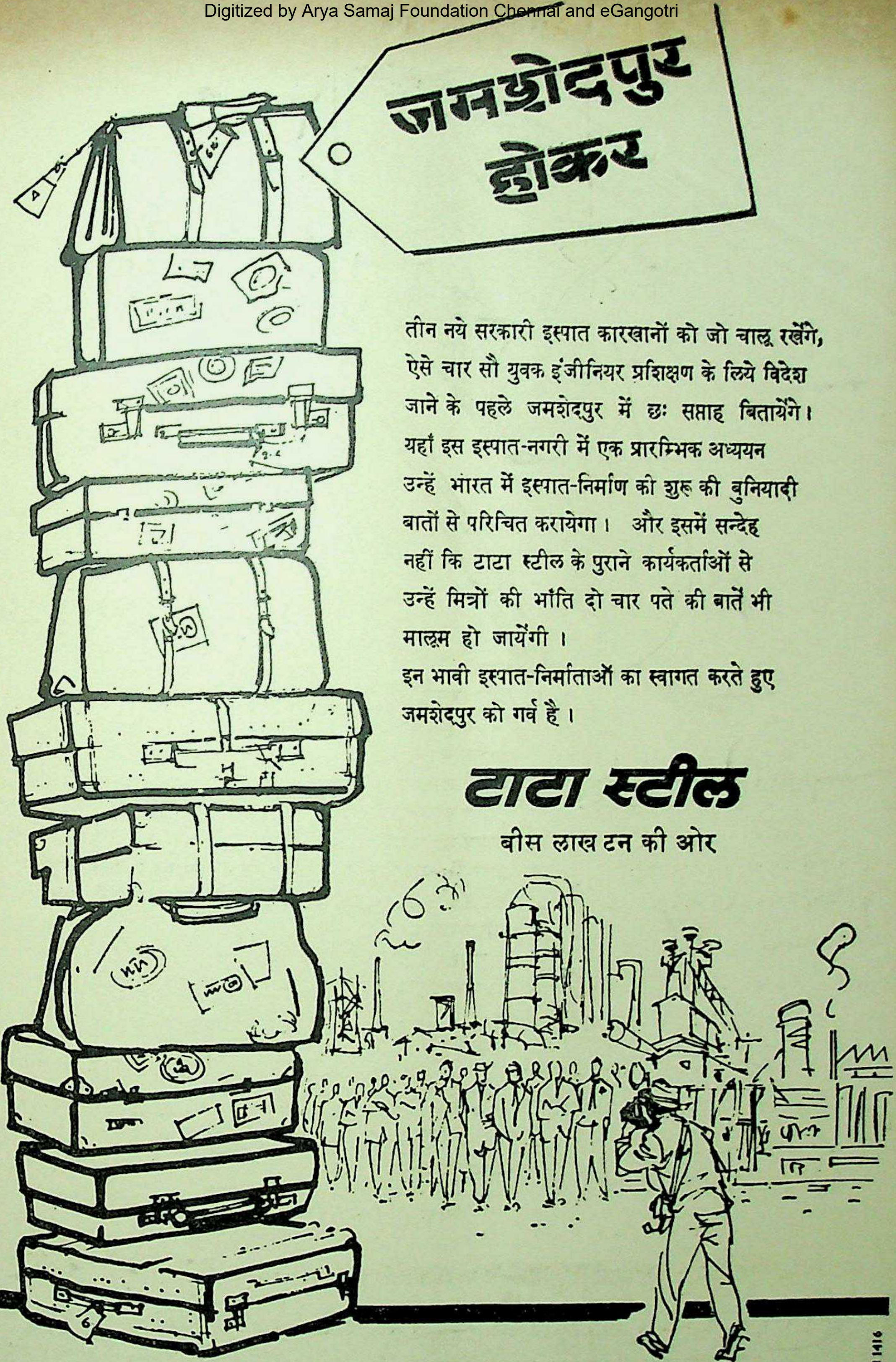

तीन नये सरकारी इस्पात कारखानों को जो चालू रखेंगे, ऐसे चार सौ युवक इंजीनियर प्रशिक्षण के लिये विदेश जाने के पहले जमशेदपुर में छः सप्ताह बितायेंगे। यहाँ इस इस्पात-नगरी में एक प्रारम्भिक अध्ययन उन्हें भारत में इस्पात-निर्माण की शुरू की बुनियादी बातों से परिचित करायेगा। और इसमें सन्देह नहीं कि टाटा स्टील के पुराने कार्यकर्ताओं से उन्हें मित्रों की भाँति दो चार पते की बातें भी मालूम हो जायेंगी।

इन भावी इस्पात-निर्माताओं का स्वागत करते हुए जमशेदपुर को गर्व है।

टाटा स्टील

बीस लाख टन की ओर

TN 1416

टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड

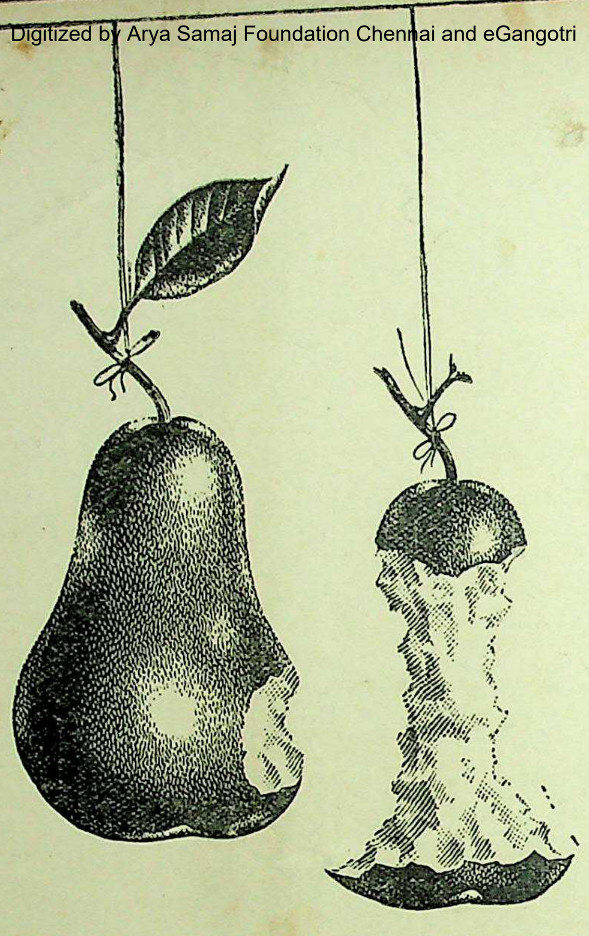

एक डाल के दो फल पर स्वाद जुदा जुदा...

...और इन के स्वाद को आप देख कर नहीं बल्कि चख कर जान पायेंगे। इस लिये नज़र के धोखे से बचिये! लेकिन आप को साबुन खरीदना हो तो इस की परीक्षा भला चख के कैसे करेंगे! इसी लिये समझदार ग्राहक ऐसी चीज़ें उसी **नाम** और **छाप** की ख़रीदते हैं जिन्हें इस्तेमाल कर के वे विश्वासयोग्य पा चुके हैं।

लगभग ७० वर्ष से लोग हिन्दुस्तान लीवर के उत्पादनों का एतबार करते आ रहे हैं क्योंकि इन के गुण सदा से अच्छे रहे हैं और यह इस लिये कि हमारे कारखानों में **हर एक** उत्पादन की, तय्यार होने तक, बार बार परीक्षा की जाती है। हम इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि वे देर तक पड़े पड़े ख़राब न हों। प्रयोगशाला में हर प्रकार के जलवायु का वातावरण बना कर हर उत्पादन पर उस का प्रभाव देखा जाता है।

इस तरह **हर सप्ताह** में लाइफ़बॉय साबुन, डालडा वनस्पति और गिब्ज़ एस. आर. टूथपेस्ट इत्यादि उत्पादनों की **१२०० परीक्षायें** होती हैं—और इन जाने पहचाने उत्पादनों पर दूर दूर एतबार किया जाता है क्योंकि ये कड़ी परीक्षाओं से गुज़रते हैं—पहले हमारे हाथों और फिर उपयोग में आ कर!

HINDUSTAN LEVER LIMITED
THE SEAL OF QUALITY

हिन्दुस्तान लीवर का आदर्श—घर घर की सेवा

HLL. 5-X52 HI

अ० भा० कांग्रेस कमेटी के लिए श्री बालकृष्णन् द्वारा प्रकाशित और नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित
प्रधान सम्पादक : श्रीमन्नारायण
सम्पादक : हर्षदेव मालवीय
(अवकाश पर)
कार्यकारी सम्पादक : अम्बिका सिंह

कर्त्तव्यम् सुसमीक्षितम्

आर्थिक-समीक्षा

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आर्थिक-राजनीतिक अनुसन्धान विभाग का पाक्षिक पत्र

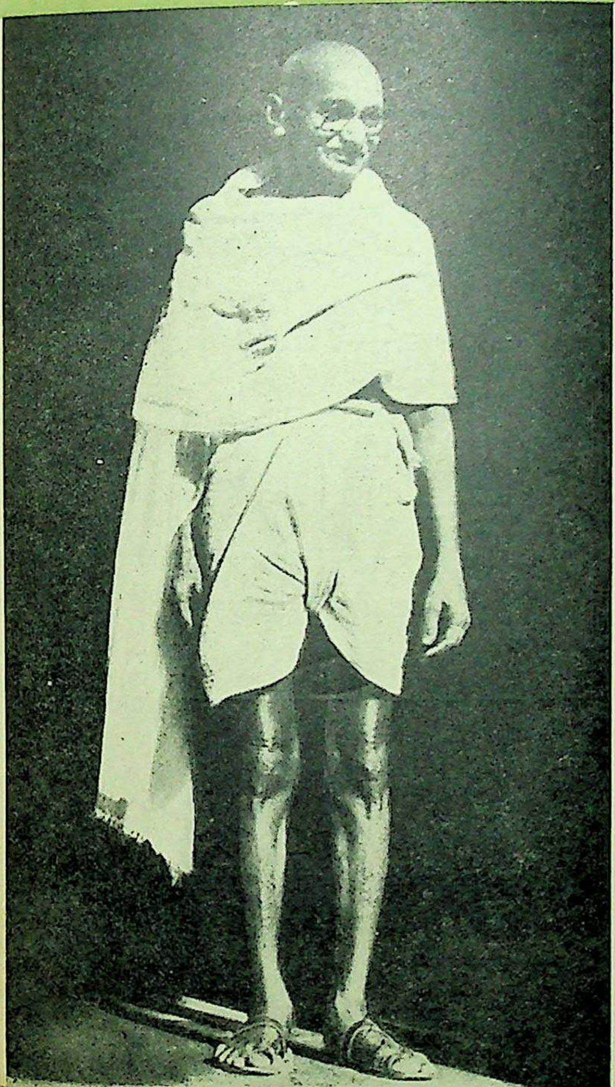

मेरे स्वप्नों का भारत

"मैं नहीं चाहता कि मेरा घर हर तरफ से दीवालों से घिरा हो और मेरी खिड़कियां बंद रहें। मैं चाहता हूं कि सभी देशों की संस्कृतियां मेरे घर के चारों ओर, जहां तक सम्भव हो, स्वच्छन्दता के साथ प्रवाहित होती रहें। लेकिन मैं नहीं चाहता कि उनमें से कोई भी अपने झोंके से मेरे पांव को उखाड़ फेंके। मेरा धर्म वन्दीगृह का धर्म नहीं; इसमें परमात्मा के निम्नतम प्राणी के लिए जगह है, लेकिन जाति, धर्म और रंग के मूर्खतापूर्ण गर्व के लिए वह अभेद्य है।"

(यंग इण्डिया, जून १९२१)

"भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को, जोकि सब से पुराना राष्ट्रीय राजनीतिक संगठन है, और जिस ने अनेक लड़ाइयों के बाद अहिंसक तरीके से लड़ कर आजादी हासिल की है, मरने नहीं दिया जा सकता। यह केवल राष्ट्र के साथ ही मर सकता है। एक जीवित संगठन या तो हमेशा विकसित होता है या मर जाता है। कांग्रेस ने राजनीतिक आजादी हासिल कर ली है, लेकिन इसे अभी भी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक आजादी हासिल करनी है। ये आजादियां राजनीतिक आजादी से कठिन हैं, क्योंकि ये रचनात्मक होती हैं।"

(हरिजन, १-२-'४८) **—महात्मा गांधी**

र्षिक मूल्य
रुपये
क प्रति
नये पैसे

अन्दर देखिए :—

- ★ आचार्य विनोबा भावे
- ★ ग्रामदान का महान लक्ष्य
- ★ सहकारी खेती की समस्याएं
- ★ ब्रिटेन की मुद्रा-नीति की वर्तमान प्रवृत्तियां

नयी दिल्ली
७ अक्तूबर १९५७
वर्ष ६, संख्या २४
पूर्णांक १३८

सम्पादक मण्डल

गुलजारीलाल नन्दा
टी. टी. कृष्णमाचारी
खण्डूभाई देसाई
मनुभाई शाह
अरुण चन्द्र गुहा

प्रधान सम्पादक—श्रीमन्नारायण

सम्पादक—सुनील गुहा

विषय-सूची

पृष्ठ

१. आचार्य विनोबा भावे — उच्छंगराय ढेबर — ३
२. ग्रामदान का महान लक्ष्य — श्रीमन्नारायण — ५
३. संक्षिप्त टिप्पणियां : — ७
   (क) नागा लोगों के लिए पृथक् प्रशासनिक इकाई
   (ख) पंचायतों के लिए अधिक अधिकार
   श्री. ना.
४. सहकारी खेती की समस्याएँ — वी. वी. गिरि — ८
५. ब्रिटेन की मुद्रा-नीति की वर्तमान प्रवृत्तियां — सुनील गुहा — १२
६. टालसटाय म्यूजियम द्वारा ५० वर्ष पुराने रहस्य का उद्घाटन : महात्मा गांधी का अन्तिम पत्र
   अलेक्जेण्डर चिफमैन — १५
७. अणुव्रत आन्दोलन — नगराज — १९
८. आर्थिक टिप्पणियां : — २४
   (क) लघु उद्योगों का विकास
   (ख) किसानों के लिए सस्ती दर पर पानी
   सुनील गुहा

पृष्ठ

९. आर्थिक-समाचार-संकलन :
   (क) भारतीय — २६
   (ख) विदेशी — २८
१०. कवर पृष्ठ पर :
   (क) मेरे स्वप्नों का भारत
   महात्मा गांधी — कवर एक

सूचना

अब तक 'आर्थिक-समीक्षा' नियमित रूप से हर मास की ७वीं और २२वीं तारीख को प्रकाशित होती रही है। किन्तु आगामी अंक से इस क्रम को बदल देने का निश्चय किया गया है। अब यह हर मास की ५वीं और १९वीं तारीख को प्रकाशित होगी। अतः आगामी अंक जिसके साथ पत्रिका अपने ७वें वर्ष में प्रवेश कर रही है, २२ अक्तूबर की बजाय १९ अक्तूबर को प्रकाशित होगी। कृपया पाठक गण और एजेंट इसे नोट कर लें।

—व्यवस्थापक

आर्थिक-समीक्षा

वर्ष ६, संख्या २४] नयी दिल्ली : सोमवार, ७ अक्तूबर १९५७ [पूर्णाङ्क १३८

श्री उच्छंगराय ढेबर

आचार्य विनोबा भावे

हमारा जीवन एक महान् युग का साक्षी है। हमारे इर्द-गिर्द बड़ी-बड़ी घटनाएं हो रही हैं, जिनमें से कई तो मानव-कल्पना के भी पर काटती हैं। मानव का मन ऐसी परिकल्पनाओं से भरा रहता है, जिन्हें कि उसका हृदय अति उत्सुकता से कार्य रूप में परिणित कर देना चाहता है। प्रत्येक कुछ दिनों के अनन्तर हम नये आविष्कारों और शोध के समाचार पढ़ते हैं, जिनके आविष्कारकों और शोधकर्त्ताओं को कड़ी दिमागी और बौद्धिक तपस्या करनी पड़ी होगी। प्रत्येक नये आविष्कार या शोध के पश्चात् मानव का हृदय यह प्रश्न करता है : "इससे मानव-जाति को लाभ होगा, अथवा हानि ?" अधिकतर, इसमें उचित ढंग पर सोचने या निश्चिय करने की क्षमता नहीं होती, और जब कभी यह अपनी क्षमता प्रकट भी करता है, तो इसे ज्ञात होता है कि विश्वास और कर्म के बीच अन्तर उत्तरोत्तर बढ़ता चला जा रहा है।

इस समय कम-से-कम भारत में, मानव के मन में मची हुई हलचल की गहराई का अन्दाज हम पूरी तरह नहीं लगा सकते। ऐसा इसलिये नहीं है, क्योंकि हमारे सम्मुख प्राविधिक ढंग की समस्याएं नहीं हैं। वास्तव में, हम इस बात में सबसे निचले स्तर पर होने के कारण इन समस्याओं में बुरी तरह उलझे हुए हैं। हम मस्तिष्क और मन के बीच के आन्तरिक युद्ध के आकार को नहीं समझ सकते; इसका आंशिक कारण तो यह है कि एक हजार वर्ष की दासता ने हमारी विचार शक्ति को कुन्द कर दिया है, और आंशिक यह कि सौभाग्यवश, हमें ऐसा नेतृत्व उपलब्ध हुआ है जो निरन्तर हमारे हितों की रक्षा करता है और हमारे लिए निर्णय लेता है।

विलक्षण बुद्धि वाले बुद्धिमान

हम जब इस अद्भुत हलचल पर नजर दौड़ाते हैं तो संसार भर में हमारे मस्तिष्क की सतह पर कोई आधे दर्जन आकृतियां उभरती हैं। उनमें से एक श्री विनोबाजी हैं। सौंदर्य के पारखी होने के बावजूद, वे स्वभावतः भारत में सबसे कम वस्त्रों का प्रयोग करते हैं; वे एक सम्पूर्ण कलाकार हैं, तथापि, बाहर से देखने वाले को वे कला, जैसा कि हम उसे साधारणतया समझते हैं, का एकदम उल्टा दीखते हैं; भाषाओं और साहित्य के ऐसे पंडित, जिनका मुकाबला कठिन है, होते हुए भी वे सिर से पांव तक निपट गंवार लगते हैं; उनका दिमाग तीक्ष्ण एवं स्पष्ट है, किन्तु वे मार्गदर्शन और सहायता चाहने वाले भोले-भाले लोगों से घिरे रहते हैं; और संसार में मानव इतिहास में अद्वितीय किस्म की प्राविधिक उन्नति के युग में रहते हुए भी, संभवतः वे संसार में अकेले ऐसे मानव हैं जिन्होंने इसे मानवीय उन्नति का प्रतीक न मानते हुए इसका पूरे मन से बहिष्कार किया है और इस पर अमल करते हैं। उनके ज्वाजल्यमान नेत्रों के अतिरिक्त, उनका जीर्णशीर्ण शरीर तथा उनका ऋतु-प्रभाव से विक्षप्त हुआ मुख उनमें विराजमान कलात्मकता, सौंदर्य-प्रियता, दार्शनिकता, व्यावहारिकता या बौद्धिकता का बहुत कम पता देते हैं।

अपरिहार्य साधन

भारतीय जनता ने, और पंडित जी ने भी, भारत के भावी विकास के लिये उनमें विद्यमान अनिवार्य साधन को जान

लिया है; और अपनी घरेलू, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समस्याओं के हल करने में उन्हें अपना मित्र, दार्शनिक और पथप्रदर्शक मानते हैं।

इसका क्या कारण है कि भारतीय जनता फिर एक ऐसे व्यक्ति की ओर झुके जो कि भौतिक समृद्धि या ऐश्वर्य की दिशा में कोई विशेष वस्तु नहीं दिला सकता? इसका एकमात्र कारण यही है कि विनोबाजी अपने व्यक्तित्व द्वारा भारतीय जन-साधारण की महत्वाकांक्षा ––भौतिकता की वेदी पर आत्मा की आहुति न होने देने––को व्यक्त करते हैं।

मानव पहेली नहीं

मेरा विचार है कि पास्कल ने ही कहा था कि 'मनुष्य एक पहेली है'। विनोबाजी के विचारानुसार, मानव के बारे में कोई पहेली नहीं है; वास्तविक उलझन, पहेली, तो शताब्दियों की गलत शिक्षा, एक गलत ढंग के जीवन के वातावरण में उत्पन्न होना, और जीवन में उसकी भूमिका के संबंध में गलत धारणा है। विनोबाजी का विश्वास है कि मां प्रकृति ने अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिये जो सृजन किये हैं उनमें मनुष्य अनिवार्य, सशक्त और सबसे अधिक बुद्धिमान वस्तु है। उन्हें खेद इस बात का है कि मानव अपनी प्राकृतिक भूमिका को नजर अन्दाज कर रहा है।

विनोबाजी में जीवन की गहनतम सच्चाइयों को बिलकुल सादी भाषा में व्यक्त करने की शक्ति है। ये सत्य लोगों को उनके हृदयों की गहराइयों तक झंकृत कर देते हैं। उनके मतानुसार, यदि इंद्रियों, मन, दिमाग और आत्मा को प्राकृतिक ढंग से और भागवत गीता के भावों के अनुकूल कार्य करने दिया जाय तो संसार में कोई ऐसी समस्या नहीं है जिसे मानव-जाति हल न कर सके। इस संबंध में कठिनाई तो यह है कि मनुष्य की इंद्रियों ने उसे वश में कर लिया है। विनोबाजी हमसे यह कहते हैं कि हम हृदय को बुद्धि—तर्क शक्ति—के कार्यों को छीनने न दें। यदि एक बार तर्क को बिना डर या खुशामद, बिना बुरा चाहने या घृणा के समस्या हल करने की स्वतन्त्रता दे दी जाय, और मन इसके आदेश को वफादारी से निभाता है, तो संसार का नक्शा ही बदल जाय। और केवल उसी स्थिति में हमें रोग तथा उसके उपचार का ज्ञान होगा। केवल उस हालत में ही हम यहां वहां की मरहम-पट्टी और वास्तविक उपचार में फर्क देख सकेंगे। विनोबाजी ने सम्पूर्ण दर्शन-शास्त्र को, प्रत्येक व्यक्ति द्वारा समझे जाने के लिये, अत्यन्त व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत कर दिया है, बशर्ते कि उसे समझने की किसी में इच्छा हो। विनोबाजी जीवन तथा उसकी समस्याओं के बारे में इस सत्य का, पुस्तकों, साहित्य, बहु-संख्य और अल्प-संख्य समूहों में भाषणों तथा अन्य तरीके से, प्रचार करते हैं। उनका कहना है कि जब इंद्रियां मन पर और मन तर्क-शक्ति पर हावी हो जाता है, तब व्यक्ति केवल आत्म-विनाश ही कर सकता है; और जो बात व्यक्ति के लिये सत्य है वह समाज के लिये भी लागू होती है।

भारतीय हृदय दार्शनिक ढंग की अपील से प्रभावित होते हैं। किन्तु जब यह दिन-प्रतिदिन के जीवन में व्यक्त होती है, तब इसका प्रभाव बड़ी शक्ति से पड़ता है। यही विनोबाजी की ताकत है और यही वह बात है जो अनेकानेक मानवों—सीधे, विश्वास करने वाले और इस पर भी तरक्की और सुधार के लिये उत्सुक—को उनकी ओर आकर्षित करती है।

गांधीवादी लक्ष्यों की ओर

धर्म-ग्रंथों के पिंजरे और जकड़न में तथा कुछ बाह्य धार्मिक विधियों में जकड़ी हुई अहिंसा और सत्य की शक्तियों तक जन-साधारण की आम पहुंच कराना गांधीजी का ही काम था। वे भारत को विदेशी शक्ति के फंदे से स्वाधीन करने के लिये इन शक्तियों को उपयोग में लाये। उन बातों का वैज्ञानिक ढंग से अर्थ-विवेचन करना और एक न्यायपूर्ण तथा बराबर की सामाजिक व्यवस्था कायम करने के लिये उन्हें प्रयोग में लाने का काम विनोबाजी के भाग में आया। वे भारतीयों को स्पष्टवादिता और सच्चाई के साथ बताते हैं कि केवल भूदान की सामाजिक समानता द्वारा मुक्ति मिल सकती है। वे जनता में यह विश्वास पैदा करने का प्रयत्न करते हैं कि केवल हिंसा ही हमारा मुख्य संरक्षण स्तम्भ है। अहिंसा से विमुख होने पर जनता से अधिक किसी को भी क्षति नहीं होगी। इसके साथ ही, वे जनता के उस भाग्यशाली अंश को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न करते हैं कि जीवन का वास्तविक सुख और खुशी अपने पास रखने के बजाय 'देने' में है, और उन्हें चेतावनी देते हैं कि इसका उलटा केवल आत्म-विनाश ही है। उनका और देश का सौभाग्य है कि इन लोगों ने 'देना' आरम्भ कर दिया है। इसने लोगों को जो शांति और सुख महसूस करते हैं, अभी से प्रभावित करना शुरू कर दिया है; और यह सम्भव है कि इसी कारण भारत एक सामायिक उथल-पुथल से बच जाय।

श्रीमन्नारायण

ग्रामदान का महान लक्ष्य

मैसूर राज्य के एलवल नामक स्थान पर गत २१ और २२ सितम्बर को जो ग्रामदान सम्मेलन हुआ, वह अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण रहा। स्वतंत्र भारत के इतिहास में यह पहला ही अवसर था, जब कि सभी महत्वपूर्ण राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि एक जगह इकट्ठा हुए थे। उनके अलावा, भारत के राष्ट्रपति, प्रधान-मंत्री, केन्द्रीय सरकार के अन्य प्रमुख मंत्री तथा सर्व-सेवा-संघ, जो कि भारत भर की रचनात्मक कार्य संबंधी संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है, के प्रतिनिधि उस सम्मेलन में शामिल हुए। विभिन्न विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ये अखिल भारतीय स्तर के नेतागण आचार्य विनोबा भावे से मिलने और भूदान तथा ग्रामदान आन्दोलन को, जिसने न सिर्फ भारत में बल्कि दुनिया के कई दूसरे देशों में भी आर्थिक विचारधारा पर गहरा असर डाला है, पूरा समर्थन प्रदान करने मैसूर गये थे। यह आन्दोलन अपनी मर्जी से भूमिदान करने से शुरू होकर ग्रामदान की अवस्था तक पहुंच गया जिसके अन्दर समूच गांव ग्राम-समाज को दान कर दिये जाते हैं। सम्मेलन में हिस्सा लेने वालों ने इस ग्रामदान आन्दोलन का स्वागत किया और इसके पीछे छिपे उद्देश्यों की बहुत प्रशंसा की। सम्मेलन ने महसूस किया कि "इस आन्दोलन से तत्सम्बन्धी गांवों में सहकारी जीवन और प्रयत्नों का पूर्णतर विकास होगा," और इसके जरिये "इन गांवों के लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार तथा सभी पहलुओं से उनकी तरक्की और विकास" होगा। "इसके अलावा, यह आन्दोलन जमीन संबंधी समस्या सुलझाने तथा सहकारी जीवन विस्तृत करने के लिये देश भर मे अनुकूल मनोवैज्ञानिक वातावरण पैदा करेगा।" यह कहा गया कि इस में अपनाया गया अहिंसक तरीका और इसका स्वैच्छिक स्वभाव ही इस आन्दोलन की जरूरी विशेषता है। "इस तरह, व्यावहारिक आर्थिक लाभों और सहकारिता तथा अपनी मदद आप करने की प्रवृत्ति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के विकास के साथ नैतिक प्रयत्नों को संयुक्त कर दिया गया।" सम्मेलन मे उपस्थित केन्द्रीय और राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों ने ग्रामदान आन्दोलन की पूरी प्रशंसा की और उसमें सहायता देने का इरादा भी जाहिर किया; लेकिन, इसके बावजूद, उन्होंने कहा कि संबंधित सरकारों को अपने भूमि-सुधार संबंधी कार्यक्रमों के साथ आगे बढ़ना है। फिर भी, यह कहा गया कि "ग्रामदान आन्दोलन के साथ" इस सरकारी प्रयत्न का "संघर्ष नहीं; सच तो यह है कि इस आन्दोलन से उसमें मदद मिलेगी।" आगे यह भी कहा गया कि "सामुदायिक विकास क्रमकार्य और ग्रामदान आन्दोलन के बीच निकटतर सहयोग स्थापित करना वांछनीय है।" सम्मेलन ने भारतीय जनता के सभी वर्गों से अपील की कि वे "उत्साह के साथ इस महान आन्दोलन का समर्थन करें।"

ग्रामदान आन्दोलन समाप्त हो जाने पर प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने पत्र-प्रतिनिधियों से कहा कि आचार्य विनोबा भावे का आन्दोलन अब प्रयोग की सीमा पार कर चुका है। उन्होंने यह आशा प्रकट की कि "हमारी सार्वजनिक गतिविधियों के ऊंचे-ऊंचे नारों और शोर-शराबे के बीच क्रमशः अधिक से अधिक लोग विनोबाजी की शांत और धीमी आवाज सुनेंगे और उन्हें मानना पड़ेगा कि राजनीतिज्ञ लोग जिन पमानों की बात करते हैं, उनके अलावा दूसरे मापदण्ड भी हैं।" प्रधान मंत्री ने कहा : "भारतीय परिस्थिति में ग्रामदान आन्दोलन अब एक ज्यादा ठोस चीज बन गया है और विनोबाजी की तरह ही यह आन्दोलन भी भारत की विशेष देन है।" उसी दिन हैदराबाद में विश्व विश्वविद्यालय सेवा की भारतीय राष्ट्रीय समिति द्वारा आयोजित एक गोष्ठी में भाषण करते हुए प्रधान मंत्री ने आचार्य विनोबा भावे के ग्रामदानं आन्दोलन के आध्यात्मिक पक्ष की ओर ध्यान आकृष्ट किया, और कहा : "आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के बगैर सभ्यता खोखली हो जायगी और गलत लक्ष्यों, अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों और भयंकर विनाश की ओर ले जायगी। केवल आध्यात्मिक बातें ही गलत चीजों के मुकाबले टिक सकेंगी।" ये सभी विचार उनके दिमाग में उसी समय पैदा हुए जब उन्होंने विनोबाजी के दुबले-पतले शरीर की ओर देखा।

यह बात साफ-साफ समझ ली जानी चाहिए कि ग्रामदान आन्दोलन सहकारी प्रयत्न की भावना के साथ शांतिपूर्वक समझाने-मनाने के अहिंसक तरीके पर ही सबसे ज्यादा जोर देता है। बुनियादी तौर पर यह हिंसा और वर्ग-संघर्ष के तरीके का विरोधी है। इसलिये यह बात देखकर बहुत संतोष हुआ कि ग्रामदान सम्मेलन में हिस्सा लेने वाले कम्युनिस्ट नेताओं ने आचार्य विनोवा भावे के आन्दोलन के नैतिक और आध्यात्मिक आधार को स्वीकार किया। श्री नाम्बूद्रीपाद ने मैसूर की एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए घोषणा की कि कम्युनिस्ट पार्टी को ग्रामदान आन्दोलन में "भूमि समस्याओं और ग्रामीण पुनस्संघटन संबंधी स्वयं अपनी नीति का एक विकल्प" दिखलायी पड़ता है। मैसूर में आयोजित भूदान गोष्ठी में आचार्य विनोबाजी ने कहा है कि "ग्रामदान या सर्वोदय आन्दोलन कम्युनिस्टों की विचारधारा से भिन्न है।" "सर्वोदय आन्दोलन आध्यात्मिक और वैज्ञानिक, दोनों ही हैं।"

ग्रामदान आन्दोलन जरूरी तौर पर गांधीवादी आन्दोलन है जो साधनों की शुद्धता पर सबसे ज्यादा जोर देता है। श्री नेहरू ने हैदराबाद गोष्ठी में ठीक ही कहा कि "हम सभी गांधीयुग के बच्चे हैं, और हमारे लिये साधन उतने ही या उससे ज्यादा महत्वपूर्ण हैं जितने लक्ष्य।" "अगर कामयाबी हासिल करने का क्रम भंग हो जाय तो हम लक्ष्य पर बिल्कुल ही नहीं पहुंचते। अगर हम अच्छी जिन्दगी बसर करना चाहते है तो उसे हम बुरे या अनुचित साधनों से कैसे हासिल कर सकते हैं?" गांधी जी ने हमें हमेशा यही उपदेश दिया कि महान लक्ष्य हासिल करने के लिये अपनाये गये तरीकों की महानता पर जोर देना ही उनके जीवन-दर्शन का मूलतत्व है। उन्होंने कहा कि "लोग कहते हैं कि साधन तो आखिर साधन ही है। मेरा कहना है कि 'साधन तो आखिर सब कुछ है।' जैसे साधन होंगे वैसे ही लक्ष्य भी होंगे। साधन और लक्ष्य को पृथक् करने वाली कोई दीवाल नहीं। साधन की उपमा एक बीज से दी जा सकती है और लक्ष्य की एक पेड़ से। बीज तथा पेड़ के बीच जो अटूट संबंध है वही साधन और लक्ष्य के बीच भी है।"

इसलिए यह सोचना गलत है कि ग्रामदान आन्दोलन महज भारत की भूमि समस्या हल करने का एक आन्दोलन है। यह सही है कि भूदान के मुकाबले में ग्रामदान आन्दोलन अहिंसक और शांतिपूर्ण तरीकों के जरिये हमारे देश की जमीन संबंधी समस्या सुलझाने में ज्यादा सम्भाव्यताओं से पूर्ण है। जब समूचा गांव जमीन संबंधी निजी स्वामित्व का त्याग कर देता है और उसे ग्राम समाज को प्रदान कर देता है, तो उस हालत में अराजियों पर अधिकतम सीमा लागू करने और मुआवजा अदा करने के सवाल खुद-ब-खुद खत्म हो जाते हैं। इसके अलावा, सहकारी तरीके, जिनमें एक या कई इकाइयों के रूप में जमीन इकट्ठी करना भी शामिल है, लागू करने की बहुत अधिक संभावनायें पैदा हो जाती हैं। सचमुच विनोबाजी ने यह बात साफ कर दी है कि ग्रामदान वाले गांवों में सहकारी खेती एकदम स्वेच्छा पर आधारित होगी। अगर ग्राम समाज की इच्छा होगी तो वह गांव की सारी जमीन को एक इकाई मान कर सहकारी खेती के रूप में उसे जोत-बो सकेगा। अन्यथा समाज या ग्रामसभा खेती के लिए गांव की जमीन को उचित ढंग पर मुख्तलिक परिवारों में बांट देगी। इस मामले में भी, गांव के परिवार, जहां तक संभव होगा, अधिक से अधिक कार्यों में सहकारिता का तरीका लागू करेंगे। परिवारों को फिर से बटवारे में जो जमीन मिलेगी, उस पर निजी जायदाद के रूप में उनका स्वामित्त्व नहीं होगा। वे इस तरह मिली जमीन को खेती के लिए ग्रामसभा की ओर से मिली पवित्र धरोहर समझ कर उस पर काबिज रहेंगे। गांव की जमीन ग्राम समाज में निहित हो जायेगी और जमीन पर निजी मालकियत समाप्त हो जायेगी। आचार्य विनोबाजी ने इस बात पर जोर दिया कि ग्रामदान का मतलब महज गांव की जमीन इकट्ठा कर देना नहीं। आखिर में चल कर इसका आशय ग्राम समाज के सभी आर्थिक साधनों का इकट्ठा कर देना होगा जिनमें जमीन के अलावा दूसरी सम्पत्तियां, श्रम और दूसरे किस्म के आर्थिक साधन, शामिल होंगे। लेकिन यह सभी सामाजिक और आर्थिक क्रांति मनुष्य की आत्मा की नैतिक और आध्यात्मिक क्रांति के जरिये ही संपन्न होगी। इस दृष्टि से, यह हिंसा, रक्तपात और वर्ग-संघर्ष पर जोर देने के जरिये लायी गई क्रांति से एकदम विपरीत है।

इस समय दुनिया में दो बुनियादी विचारधारायें हैं, जिनकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। एक तो मार्क्सवादी विचारधारा है, जो कि साम्यवाद हासिल करने के लिए हिंसा और वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया में विश्वास करती है। इस विचारधारा के अनुयायियों की मान्यता है कि लक्ष्य ही साधन के औचित्य को सिद्ध करता है। दूसरी ओर, गांधीवादी या सर्वोदय विचारधारा है जो जरूरी तौर पर विश्वास करती है कि वास्तविक और स्थायी क्रांति केवल सच्चे और अहिंसक तरीकों से ही लायी जा सकती है। भारत ने साधनों की पवित्रता के गांधीवादी आदर्श का अनुसरण करने का निश्चय करके अपने लिए फैसला कर लिया है। इस बुनियादी सिद्धांत में किसी तरह के समझौते की गुन्जाइश नहीं। दर असल, राजनीतिक आवश्यकतावश इस सिद्धांत में हेर-फेर करना विनाशक और यहां तक कि घातक भी सिद्ध होगा। इसलिए, हम ग्रामदान आन्दोलन को बहुत महत्त्व देते हैं, क्योंकि यह साफ तौर पर अहिंसक तरीकों पर, तथा बल प्रयोग की बजाय हृदय-परिवर्तन के क्रम पर जोर देता है। चूंकि कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं ने इस आन्दोलन का समर्थन करने का फैसला किया है, इसलिए हम आशा करते हैं कि वे बिना किसी आर्थिक दुराव के ऐसा करेंगे। अगर भारत का साम्यवाद गांधीवादी, अर्थात् शांतिपूर्ण और अहिंसक, तरीकों से सामाजिक और आर्थिक समान लाने के सिद्धांतों को स्वीकार कर लेता है, तो कांग्रेस, कम्युनिस्टों तथा अन्य लोकतंत्रीय शक्तियों के बीच कटुता की को वजह नहीं रह जाती। अन्यथा, हमारा फर्ज होगा कि हम भारत के लोगों को लोकतंत्रीय और एकतंत्रीय विचारधाराओं के बी बुनियादी फर्क समझा दें, ताकि आम जनता किसी खास विचारधारा के दूरगामी मन्तव्यों को साफ-साफ समझ कर ही उसे चुने इसमें संदेह नहीं कि आचार्य विनोबा भावे का ग्रामदान आन्दोलन गांधीवादी विचारधारा के पक्ष में एक जबर्दस्त ताकत है इसलिए हमें चाहिए कि हम उत्साह के साथ और पूरे हृदय से इसका समर्थन करें।

संक्षिप्त टिप्पणियां

नागा लोगों के लिए पृथक प्रशासनिक इकाई

पिछले महीने कोहिमा में नागा जन-सम्मेलन ने भारत संघ के भीतर नागा लोगों के लिए एक पृथक प्रशासनिक इकाई स्थापित करने का जो प्रस्ताव किया, उसे भारत सरकार द्वारा स्वीकार कर लेने के फैसले का देश भर में हृदय से स्वागत होगा। नयी प्रशासनिक इकाई का नाम संभवतः 'नागा-पर्वत' होगा। इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय की घोषणा उचित समय पर की जायेगी। यह इकाई केन्द्रीय विदेश मंत्रालय के अन्तर्गत राष्ट्रपति की ओर से आसाम के गवर्नर द्वारा प्रशासित होगी। भारत सरकार ने उन सभी अपराधों के मामले में अभियुक्तों को क्षमा कर देने का भी फैसला किया है जो कि इस इलाके में भूतकाल में किये गये थे। प्रधान मंत्री ने घोषणा की है कि यह क्षमादान उन अपराधों के संबंध में लागू नहीं होगा, जो कि अब से आगे किये जायेंगे।

नागा प्रतिनिधि मंडल के नेता डा. आओ ने वायदा किया है कि वे शत्रुता और लड़ाई खत्म करने की पूरी-पूरी कोशिश करेंगे। प्रधान मंत्री ने इस आश्वासन का स्वागत किया है और कहा है कि भारत सरकार उस क्षेत्र में सामान्य और शांतिपूर्ण स्थिति उत्पन्न करने की कोशिश करेगी। हम आशा करते हैं कि अब नागा लोग स्वतंत्र इकाई संबंधी अपनी मांग का अन्तिम रूप से परित्याग कर देंगे और भारत संघ के भीतर अपनी नई इकाई के निर्माण में हमेशा शांति और अहिंसा के तरीकों का ही अनुसरण करेंगे।

पंचायतों के लिए अधिक अधिकार

श्रीनगर में स्थानीय स्वायत्त-संस्थाओं की केन्द्रीय समिति की तृतीय बैठक के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए, केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री, श्री डी. पी. करमरकर, ने सुझाव दिया कि पंचायतों की प्रशासन व्यवस्था में सुधार करके उसे इतना क्षमतापूर्ण बना देना है कि वे नई जिम्मेदारियों का भार उठाने में समर्थ हो सकें। उन्होंने पंचायतों के लिए अतिरिक्त आय के साधनों की व्यवस्था करने की जरूरत पर जोर दिया, जिससे वे अपनी नयी और लगातार बढ़ती हुई जिम्मेदारियों को संभाल सकें। उन्होंने कर-जांच आयोग के इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि पंचायतों को मालगुजारी की वसूली का काम सौंप देना चाहिए। साथ ही, उन्हें वसूली गयी रकम का १५ प्रतिशत दे देना चाहिए। यह रकम उनके अन्य साधनों से प्राप्त उस आय के अतिरिक्त होगी जो कि पंचायतों को अपना दिन-प्रति-दिन का काम चलाने के लिए उपलब्ध है। स्वास्थ्य मंत्री ने यह सुझाव भी दिया कि ग्राम पंचायतों को ही गांव की शामिलात और बंजर जमीन फिर से बांटने का काम सुपुर्द होना चाहिए। ग्रामदान आन्दोलन के संदर्भ में समस्या का यह पहलू विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो गया है, जिसके भीतर बहुत से पूरे के पूरे गांव दान में दिये जा रहे हैं।

हमें उम्मीद है कि स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं की केन्द्रीय समिति श्री करमरकर द्वारा ग्राम पंचायतों को अधिक अधिकार और जिम्मेदारी देने के सुझावों का स्वागत करेगी। भारतीय विधान के अनुसार, ग्राम पंचायतें धीरे-धीरे स्थानीय स्वायत्त शासन की प्रभावकारी और सक्रिय इकाइयां बना दी जानी चाहिए। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत, यह अपेक्षा की जाती है कि राज्यों को कर्तव्यों और अधिकारों के पहले से ज्यादा विस्तृत क्षेत्र का मुकाबला करना पड़ेगा। लेकिन ऐसा करना केवल तभी संभव होगा, जबकि ग्राम पंचायतों के जरिये व्यापक पैमाने पर राजनीतिक और आर्थिक सत्ता विकेन्द्रित कर दी जाय। सत्ता के ऐसे विकेन्द्रीकरण के बगैर समाजवाद की किसी भी योजना द्वारा अनुचित केन्द्रीकरण को प्रश्रय मिलने की संभावना है, जो कि आखिर में चल कर लोकतंत्र का मूलोच्छेद ही कर देगा।

—श्री० ना०

सहकारी खेती की समस्याएँ

श्री वी. वी. गिरि
राजपाल, उत्तर प्रदेश

प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में, तत्कालीन आर्थिक परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए, यह सोचा गया था कि कृषि के विकास और नदी घाटी योजनाएं जारी करने को अन्य कार्यों पर तरजीह दी जानी चाहिए। इसलिए उन कार्यक्रमों पर अधिक जोर दिया गया, जिनमें उत्पादन-वृद्धि, पशु-पालन, दुग्धालय और वन-विकास एवं सहकारी खेती का विकास शामिल है।

प्रथम योजना में सहकारी खेती

प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में सहकारी खेती को एक ऐसा तरीका माना गया था, जिसके अन्तर्गत छोटे-छोटे और मध्य-श्रेणी के किसान जिनके पास अलाभकर आराजियां हों, आपस में मिल कर काफी हद तक लाभकर फार्म बना सकते हों; जिन पर बड़ी मात्रा में वैज्ञानिक ज्ञान, आदि का उपयोग करने में आसानी हो तथा जिनसे भूमि की उत्पादकता में भी वृद्धि होने की सम्भावना थी। अतः यह सुझाया गया था कि किसानों को सहकारी कृषि समितियों में स्वेच्छा से शामिल होने के लिए प्रोत्साहन एवं सहायता दी जाय। प्रथमतः जून १९५३ में इस ओर प्रयत्न शुरू हुए। यह बात आश्चर्यजनक है कि प्रथम योजना-काल के अन्त तक इस विचार के विरुद्ध कोई ठोस बात नहीं कही गयी थी।

लेकिन सहकारी खेती के बारे में, पिछले कुछ समय से, विशेष रूप से अगस्त १९५६ में चीन गये भारतीय शिष्ट-मंडल की रिपोर्ट और फिर एक अन्य शिष्ट मंडल की रिपोर्ट, जो योजना आयोग को दी गयी थी, के पश्चात् बहुत किस्म की राय सामने आयी है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सहकारी प्रयत्न का महत्त्व पूरी तरह स्पष्ट कर दिया गया है, जैसे "सामाजिक परिवर्तन पर जोर दिये जाने के साथ भारत में आर्थिक विकास सहकारी प्रयत्न के संगठन के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र उपलब्ध कराता है। अतः हमारी नियोजित विकास की स्कीमों में सहकारी क्षेत्र को संगठित करना हमारी राष्ट्रीय नीति के मुख्य ध्येयों में से एक है।"

सहकारी खेती की इस बिना पर आलोचना की गयी है कि इसमें तानाशाही और नौकरशाही तरीके शामिल हैं, जो ऐसे सन्निहित हितों को उत्पन्न कर देते हैं, जिनके द्वारा थोड़े-से व्यक्ति बहुतों का शोषण करते हैं। यह भी कहा गया है कि सहकारी खेती शुरू करने में जोर-जबर्दस्ती के तरीके भी आ जाते हैं, जो जनतांत्रिक उसूलों और भारतीय विधान में संरक्षित अधिकारों के विरुद्ध हैं। फिर, सहकारी खेती के विरोधी यह भी कहते हैं कि इससे रोजगार में वृद्धि होने की बजाय कमी होगी। कृषक का भूमि के साथ बहुत अधिक लगाव है, इसलिए यह दावा किया गया है कि 'सहकारी खेती का तरीका किसी बड़ी मात्रा में प्रयोग में नहीं लाया जा सकता।'

नियोजित विकास में सहकारिता-क्षेत्र का स्थान

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के सम्मुख मुख्य कार्य ऐसे जरूरी कदम उठाने का है जिनसे सहकारी खेती के विकास की नींव सुदृढ़ हो, ताकि १० या १५ वर्ष के अर्से में हमारी कृषिगत भूमि के काफी बड़े भाग पर सहकारी ढंग से कृषि की जा सके और फिर तत्संबंधी सरकारी दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण श्री अजित प्रसाद जैन ने लोक सभा में दिये गये एक वक्तव्य में दिया हमारा विचार ऐसे छोटे-छोटे सहकारी खेत बनाने का है, जिनमें किसान आपस में एक दूसरे को अच्छी तरह जानते हों, एक दूसरे का साथ दें तथा इकट्ठे काम करें। ऐसा कहीं भी नहीं कहा गया है कि सहकारी खेती के विकास के लिए जोर-जबर्दस्ती के तरीके इस्तेमाल में लाये जायेंगे। कुछ लोगों ने यह गलत अनुमान लगा लिया है कि शायद सहकारी खेती जनतांत्रिक मान्यता को मिटा देगी। सहकारिता का मूलतत्व ही 'एक सबके लिए और सब एक के लिए' हैं। वास्तव में, समाजवादी के समाज पर आधारित जनतंत्र की सफलता राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यक्ति द्वारा अधिकतम योगदान

अवलम्बित है । समाजवादी ढंग का समाज स्थापित करने की ओर बढ़ने में आधारभूत मनोरथ निजी लाभ न होकर सामाजिक लाभ ही होना चाहिए, यद्यपि यह भी सही है कि अन्ततः यह लाभ भी समस्त देशवासियों में विभक्त होगा ।

आधुनिक युग में इस बात को मान्यता दे दी गयी है कि जिन देशों में व्यक्ति के लिए पूर्ण स्वतंत्रता सुरक्षित है, वहां पर भी बिना किसी प्रकार के नियंत्रण की स्वतंत्रता होने का अर्थ अव्यवस्था और गड़बड़ी होगा, जब तक कि वहां व्यक्ति के निजी हितों से पूर्णतया भिन्न सर्व साधारण के हित बढ़ाने के लिए पूरी सहूलियतें देने को पूर्ण नियोजन नहीं किया जाता ।

हमारा ध्येय : समाजवादी ढंग से वर्गहीन समाज की ओर

साथ ही, मैं यह भी नहीं समझ पाता कि हमारे राष्ट्रीय ध्येय––समाजवादी ढंग के समाज की स्थापना, जो अन्ततः हमें वर्गहीन समाज की ओर ले जायेगी––की पूर्त्ति के लिए औद्योगिक क्षेत्र की ही भांति कृषकों पर भी क्यों न वैसे ही नियन्त्रण लगाये जायें ।

चीन की सहकारी समितियों के बारे में माओ-त्से-तुंग के विचार भारत की स्थिति पर भी काफी हद तक पूरे उतरते हैं । उन्होंने कहा था : "हमारे देश में व्याप्त परिस्थितियों के अन्तर्गत, कृषि में बड़ी-बड़ी मशीनों को प्रयोग में लाने से पहले सहकारिता को लाना होगा । तब हम देखेंगे कि उद्योग और कृषि, समाजवादी औद्योगीकरण और कृषि के समाजवादी रूप-परिवर्तन को किसी भी हालत में एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता और उन्हें अलग-अलग रख कर कोई काम भी नहीं किया जा सकता ।" कम्युनिस्ट देशों से विपरीत, भारत में मतदान अधिकार और जनतंत्र कायम है । इसलिए यहां निहित-स्वार्थों का शासन और अफसरशाही नियंत्रण पैदा होने की आशंका नहीं है । जनतंत्र का एक लाभ यह भी है कि किसी भी विषय पर किसी भी दृष्टिकोण को पूरी तरह उचित नहीं कहा जा सकता और न ही उसे अन्तिम शब्द कहा जा सकता है, और उसकी आलोचना करने और उसे सुधारने की स्वतंत्रता होती है । सहकारिता के विरोधी कई ऐसी मिसालें पेश करते हैं जिनसे वे सहकारिता द्वारा उत्पादन बढ़ाने में नाकामयाब या कम से कम असफल प्रयत्न दिखाने का प्रयत्न करते हैं । दूसरी तरफ, सहकारिता के पक्षपाती, पिछले कुछ वर्षों में सहकारिता की प्रगति संबंधी तालिकाओं पर तालिकायें बनाते जा रहे हैं । दोनों पक्षों के लोग यह व्यक्त करके बुरा-भला कहते हैं कि आंकड़ों द्वारा किसी भी मत को प्रमाणित किया जा सकता है । रोजगार के संबंध में भी यह बात लागू होती है । जहां सहकारिता के विरोधी यह कहते हैं कि सहकारिता में अनिवार्यतः मशीनीकरण होने के कारण बेरोजगारी बढ़ेगी, वहां इसके विपरीत सहकारिता के पक्षपाती सहकारी खेती में मशीनों के उपयोग करने अथवा इस्तेमाल न करने पर भी रोजगार में वृद्धि होने की बात संबंधी आंकड़े पेश करते हैं ।

भारतीय सहकारी समितियों का विकास

मशहूर है कि भारतीय कृषक अपनी भूमि में से एक भी इंच दूसरे द्वारा हस्तगत होने से पहले जीवन त्याग देगा । कोई भी व्यक्ति मिल्कियत की न्यायोचितता या कब्जे की भावना के विरुद्ध नहीं । लेकिन प्रश्न है, क्या वास्तव में सहकारी खेती का अर्थ व्यक्तिगत अधिकार या निजी संपत्ति का हस्तांतरण है ? यह बात इस बात पर आधारित है कि हम सहकारी खेती का क्या अर्थ लेते हैं ।

मैं यह अनुभव करता हूँ कि सहकारी खेती के बारे में यह जो सारा विचार-वैमनस्य चल रहा है, उसके मूल में यह गलत धारणा है कि सहकारी खेती केवल तानाशाही ढंग पर एकीकृत फार्म होते हैं जैसे कि रूस या चीन में, जिनमें काम करने वालों को मजदूरी पाने वाले मजदूरों की तरह काम करना पड़ता है ।

यदि समस्या को बिना किसी पक्षपात के समझने का प्रयत्न किया जाता तो सहकारिता के बारे में मत-वैमनस्य को आसानी से दूर किया जा सकता था । मेरा हमेशा से यह विचार रहा है कि हम इस सम्बन्ध में अपनी जरूरतों और परिस्थितियों

के अनुसार एक बीच का रास्ता निकाल सकते हैं। हमारे लिए यह जरूरी नहीं है कि हम किसी भी देश की व्यवस्थाओं की नकल करें या किसी भी प्रकार की सहकारी व्यवस्था को अन्तिम ही मान कर उसे अपनायें।

इस बात को सभी मानते हैं कि भारतीय कृषि पिछड़ी हुई है और इसके मुख्य कारणों में आराजियों का बहुत अधिक विभाजन और उसका अलाभकर बना देना, अल्प-वित्त-व्यवस्था, कम बीज, खाद व उचित किस्म की मंडियों और गोदामों की न्यूनता है, जो कि देश के विकास को कई तरीकों से रोकते हैं। यह बात भी सर्वमान्य है कि किसान स्वयं इस दिनों-दिन खराब हो रही परिस्थिति को नहीं रोक सकता और न ही वह केवल अपने ही बूते पर अपनी हालत सुधार सकता है। इस सबको समझने के बाद यही नतीजा निकलता है कि अपने साथियों के साथ सहकारिता सूत्र में बँध कर ही वह इस समस्या का समाधान कर सकता सकता है। सरकारी व्यवस्था में कुछ ऐसे लाभ हैं जो न तो निजी उपक्रम में और न ही राज्य की मिल्कियत के अन्तर्गत हासिल हो सकने हैं। सहकारिता द्वारा ऐसे साधन उपलब्ध होते हैं, जिनसे समाज, व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रेरणाओं से बराबर लाभ उठा कर, मूल्यवान् परिणाम हासिल कर सकता है।

मेरे विचार में, भारत के वर्तमान ढांचे में, जहां मिल्कियत व खेती की विभिन्न प्रणालियां प्रचलित हैं, हमें तीन प्रकार के अलग-अलग तजुरबे करने चाहिए: एकत्रीकृत खेती, सहकारी खेती और सामुदायिक खेती। मेरा सुधार है कि इन तीनों को अपनी अपनी खूबियां दिखाने का मौका दिया जाना चाहिए। ये आपस में प्रतिस्पर्द्धी नहीं, अपितु एक दूसरे के पूरक हैं और सबको एक साथ प्रयोग में लाया जा सकता है।

एकत्रीकृत खेती : भारत में काफी व्यर्थ भूमि ऐसी है, जिस पर सुधार करके उसे प्रयोग में लाया जा सकता है। अधिकतर ऐसी जमीनें सरकार के कब्जे में हैं। इन इलाकों में कुछ संरक्षण रख कर रूसी तरीके पर एकत्रीकृत खेती आरम्भ की जा सकती है। पहले से भी कृषिगत भूमि पर बहुत अधिक दबाव है, और मजदूर काश्तकारों की संख्या में दिनों-दिन वृद्धि होती जा रही है। इस समस्या को हल करने के लिए कृषियोग्य भूमि को सुधार करने और एकत्रीकृत खेती करने के लिए लोगों को प्रोत्साहन एवं सहायता दी जानी चाहिए। निस्संदेह, कार्यकर्त्ताओं को फार्म की व्यवस्था और परिचालन में काफी अधिकार देने पड़ेंगे और उन्हें मिल्कियत के स्थायी अधिकार देने होंगे। बड़े फार्मों के आकार, आदि को कम नहीं किया जा सकता, यद्यपि भूमि पर व्यक्ति की मिल्कियत व उत्पादन में उसके भाग को स्वीकार किया गया है। इसके दो लाभ होंगे: व्यर्थ पड़ी भूमि पर खेती किया जाना, और खेतिहर मजदूरों को रोजगार तथा मालकियत दिलाना।

सहकारी खेती : मद्रास सरकार द्वारा मन्दिरों और देवस्थानों की भूमि और भूदान की भूमि पर सहकारी खेती के प्रयोगों को देखना-समझना काफी दिलचस्प होगा। विनोबा भावे अब तक लगभग ४८ लाख एकड़ भूमि और २,८०० ग्राम प्राप्त कर चुके हैं। अतः सहकारी खेती को चलाने के लिये उचित वातावरण पैदा हो चुका है। प्रथमतः ग्रामदान हुए गांवों में सहकारी खेती को आरम्भ किया जा सकता है। इन गांवों में भूमि पर पहले से ही काश्त हो रही है, और जो लोग इस पर अब तक मजदूरी के लिये खेती करते थे, अब उन्हें पूर्ण मालकियत दे दी जानी चाहिए। अलग-अलग किसानों के बीच भूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटने की बजाय, गांव की सारी भूमि एकमुश्त कृषकों के एक दल को दी जा सकती है जो एक सहकारी खेती समिति बना कर इकट्ठे मिलकर फार्म को चला सकते हैं।

सामुदायिक खेती : सहकारी खेती के सम्मुख सबसे मुख्य समस्या छोटी-छोटी आराजियों पर एक बड़ी संख्या में खेती करने वाले कृषकों की है। जब भी यह कहा जाता है कि भारत में कृषि जीवन-यापन एक तरीका है तो उस समय इन छोटे-छोटे कृषकों की ओर ही इशारा होता है जो भारत के कुल कृषकों के ८० प्रतिशत होते हैं। यह बात सर्वज्ञात है कि उनका जीवन-स्तर उचित स्तर से काफी नीचे है, और यह आवश्यक है कि उनके हितों को पूर्णतया संरक्षण प्रदान किया जाय और उन्हें विकसित

किया जाय। अतः इस स्थिति में इन किसानों को अपनी भूमि एकत्रित करने तथा जापान की ही तरह सेवा-सहकार बनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इस प्रकार की इकाइयों को डा. शिलर की भाषा में सहकारिता के आधार पर व्यक्तिगत कृषि कहते हैं। मेरा विचार है कि भारत में इन्हें बहुत मान्यता प्राप्त हो सकती है, क्योंकि इससे व्यक्तिगत मिल्कियत पर कोई आघात नहीं होता, लेकिन कृषक को सहकारी खेती के लाभ प्राप्त कराने में सहायता मिलती है। सरकार को चाहिए कि वह इस प्रकार के फार्म बनाने में प्रोत्साहन दे जो भारतीय परिस्थितियों में ठीक हों।

सहयोग तथा सामूहिक स्वामित्व में हल निहित

आचार्य विनोबा भावे ने ठीक ही कहा है कि अधिक अन्न-उत्पादन का 'हल' सिर्फ सम्पूर्ण गांव को 'एक में मिलाने तथा सामूहिक स्वामित्व' में ही निहित है। उन्होंने आगे चलकर यह भी कहा कि 'सामूहिक स्वामित्व' सहकारी क्रय द्वारा विक्रय को सुविधाजनक बनायेगा। व्यापारी अधिक लाभ के लिये काफी मात्रा में चीजें काफी समय तक नहीं रखेंगे। प्रत्येक गांव में दो साल के लिये अनाजों का पर्याप्त मात्रा में स्टाक रहेगा।

कृषि-उत्पादन के क्षेत्र में भी, सुधरे बीजों तथा अच्छी खाद की खरीद, अच्छी साख सुविधाओं, संचय तथा खाद्यान्नों की खरीद फरोख्त के लिये सहकारी पद्धतियां होनी चाहिएं। सहकारिता की भावना सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था पर छाई रहनी चाहिए।

यह भी समझना चाहिए कि हम भारत में कितना भी कृषि को जीवन का एक तरीका समझें, यह एक व्यापारिक संगठन भी है, और इसलिये कर्तव्य पूरा करने के लिये तर्क की जगह भावात्मक बातों को प्रधानता देना न्याय नहीं होगा। जब बैंकिंग तथा उपभोक्ता की पूर्त्ति के लिये भंडारों, जैसे दूसरे क्षेत्रों में सहकारिता आन्दोलन सफल हुआ है, तो मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि जहां तक सहकारी खेती का संबंध है इसे क्यों सफल नहीं होना चाहिए। सहकारिता समितियों का प्रयोग ग्रामीण तथा छोटे उद्योगों में भी किया जा सकता है, जो कि कम उत्पादन के मौसम में रोजगार प्रदान करेंगे।

सहकारी खेती के रास्ते में खास मुश्किल लोगों में उत्साह की कमी है। अतः अत्युत्तम प्रचार सिर्फ ऐसे फार्मों के सफल संचालन द्वारा ही हो सकता है। मैं यह नहीं सोचता हूं कि पूर्व उल्लिखित तीन किस्म के फार्मों के बारे में कोई विरोध नहीं हो सकता। प्रत्येक कार्य की पूर्ण स्वतन्त्रता तथा सहकारिता के लाभ को एक साथ ले आते हैं।

चीन गये प्रतिनिधि मंडल ने ठीक ही कहा है : "कुछ भी हो, यह हमारे लिये जरूरी होगा कि हम अपने हल ढूंढ निकालें जो कि हमारी स्थितियों, साथ ही लोकतंत्रीय परम्पराओं के, अनुरूप हो, और जो हमारी ग्रामीण आवश्यकताओं के अनुकूल हों। भारत में सहकारी समितियों की प्रगति चीन की अपेक्षा संभवतः कम तेज होगी। हम व्यक्तिगत किसान वर्ग को बढ़ते हुए सहकारी वर्ग के साथ चलने की आशा करेंगे।"

सहकारी खेती की उपादेयता गलत साबित करने या इसकी असफलता के लिए सतर्कतापूर्वक दिये गये कुछ उदाहरण हमें किसी सही दिशा की ओर नहीं ले जा सकते। मैं महसूस करता हूं कि इस प्रणाली को सही मौका नहीं दिया गया है। अब तक प्राप्त फल कोई ठोस तथा निश्चित निष्कर्ष जाहिर नहीं करते हैं। मेरे विचार में भारतीय स्थिति के अनुकूल उपयुक्त किस्म की सहकारी पद्धति का पता लगाने के लिए इस प्रणाली को और भी ज्यादा संजीदगी से लागू करना चाहिए। इसी बीच, एक वैज्ञानिक तरीके से बिना पक्षपात किये यह पता लगाने के लिये हममें से हरेक कार्य कर सकता है कि किस हद तक सहकारी खेती के विरुद्ध या पक्ष में हमारी भावनाएं वास्तविकताओं पर आधारित हैं।

सुनील गुहा

ब्रिटेन की मुद्रा-नीति की वर्त्तमान प्रवृत्तियां

गत १९ सितम्बर १९५७ को इंग्लैंड के केन्द्रीय बैंक ने मुद्रास्फीति का सामना करने और पौंड स्टर्लिंग के बहिर्देशीय मूल्य को सुरक्षित रखने के जीतोड़ प्रयत्न में अपनी ब्याज दर को ५ प्रतिशत से बढ़ाकर ७ प्रतिशत कर दिया। उल्लेखनीय है कि गत २५ वर्षों के भीतर केवल एक बार ब्रिटेन की बैंक दर ५½ प्रतिशत से ऊपर गयी थी। सितम्बर १९३१ में, जब कि ब्रिटेन ने स्वर्णमान का परित्याग किया था, इसे बढ़ाकर ६ प्रतिशत कर दिया गया था। अभी हाल में ब्रिटेन की बैंक दर में जो वृद्धि हुई है उसका प्रभाव ब्रिटेन की और हमारी अर्थ-व्यवस्था पर क्या पड़ेगा, इसकी जांचकरने के पहले यह जान लेना दिलचस्प होगा कि पिछले कुछ वर्षों में ब्रिटेन के आर्थिक विकास में मौद्रिक नीति की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण रही है।

सार्वजनिक ऋण में हुई वृद्धि, व्यापारिक बैंकों और संस्थागत निवेशकर्त्ताओं द्वारा बड़े पैमाने पर इस ऋण के संविल यन, सरकारी तौर पर पूर्ण-प्रतिभूति बाजार के समर्थन तथा ब्याज दरों के स्वरूप निर्धारण के कारण ब्रिटेन की मौद्रिक नीति क महत्व जाता रहा और वह अव्यवहार्य हो गयी। द्वितीय महायुद्ध और उसके बाद की अवधि में ब्रिटेन में केन्द्रीय बैंक संबं साख उत्पन्न या संकुचित करने की पहल बैंक आफ इंग्लैंड के हाथों से खिसक कर व्यापारिक बैंकों के हाथ चली गयी। किन्तु पुनः शस्त्रीकरण और कोरियाई युद्ध के समय उत्पन्न मुद्रास्फीतिक दबावों का मुकाबला करने के लिये उसी पुराने तरीके का फि से प्रयोग किया गया। सच तो यह है कि जब ब्रिटेन ने ७ नवम्बर १९५१ को अपनी बैंक दर में वृद्धि की, तो उससे सबसे बड़ वास्तविक परिवर्त्तन यही हुआ कि बैंक आफ इंग्लैंड पुनः सत्तारूढ़ हो गया और उसने अपने हाथ में साख नियंत्रण की लगाम संभाल ली। यह जान लेना रुचिकर होगा कि ७ नवम्बर १९५१ को जिन परिस्थितियों के अन्तर्गत ब्रिटेन ने अपनी बैंक दर में वृद्धि की थी, वे उसकी वर्तमान आर्थिक कठिनाइयों से भिन्न नहीं थीं। आज की ही तरह, उस समय भी, ब्रिटेन के सामने पु शस्त्रीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न मुद्रास्फीति से लड़ने तथा बाह्य सन्तुलन में गंभीर घाटे के फलस्वरूप संकटापन्न पौण्ड स्टर्लि की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति शोधक्षम बनाने की समस्या ही प्रमुख थी।

बैंक दर में वृद्धि

अभी हाल में ब्रिटेन ने अपनी बैंक दर में जो वृद्धि की है, वह बहुत कुछ एक नाटकीय ढंग पर उठाया गया कदम लि हुई है और उससे ब्रिटेन का समस्त औद्योगिक जगत कांप उठा है। इसकी आवश्यकता इसलिये पड़ी है कि इधर कुछ महीनों ब्रिटेन की अन्तर्राष्ट्रीय और वित्तीय स्थिति बहुत गंभीर हो गयी थी। चालू वर्ष के उत्तरार्द्ध में मुद्रा स्फीतिक दबावों से ब्रि विकल हो उठा था। इसके साथ ही, कुछ ही समय पहले, फ्रांस द्वारा गैर सरकारी तौर पर अपनी मुद्रा फ्रैंक को अवमूल्यित कर तथा पश्चिमी जर्मनी द्वारा अपनी मुद्रा मार्क को अधिमूल्यित न करने के फलस्वरूप ब्रिटेन के प्रारक्षणों का ह्रास तीव्रतर चला था। पश्चिमी जर्मनी की मुद्रा की स्थिति काफी मजबूत बन गयी थी और अनुकूल व्यापार सन्तुलन के फलस्वरूप उसे का लाभ और आधिक्य प्राप्त हो रहा था। किन्तु इन सबके बावजूद पश्चिमी जर्मनी अपनी मुद्रा का मूल्य बढ़ाने के लिये तै नहीं था। इससे भी बढ़कर दुर्भाग्यपूर्ण बात यह हुई कि औद्योगिक अभिवृद्धि सम्पन्न पश्चिमी जर्मनी ने अपनी बैंक दर ½ प्रतिशत कम कर दिया। फलस्वरूप मुद्राओं की लेन-देन में सट्टेबाजी करने वालों ने जर्मनी का मार्क खरीदना प्रारम्भ दिया जिससे पौंड के विरुद्ध दबाव काफी बढ़ गया। विदेशी विनिमय के बाजारों में पौंड स्टर्लिंग पर दबाव इतना अधिक बढ़ कि सं. रा. अमरीका के डालर के विरुद्ध पौंड की विनिमय दर गिर कर एक ऐसे बिन्दु पर पहुंच गयी, जहां पर उसे आश्रय के लिये ब्रिटेन को बाध्य होना पड़ा।

ब्रिटेन पर प्रभाव

बैंक दर बढ़ जाने के फलस्वरूप अब बैंक आफ इंग्लैंड अपनी परिसम्पत्तियों पर नियंत्रण लगा कर मुद्रा के परिमाण को नियंत्रित कर सकेगा। बाजार को बैंक के पास सरकारी प्रतिभूतियां लाकर निर्धारित मूल्य पर बेंचने का अधिकार नहीं रहेगा। भविष्य में मुद्रा-बाजार को उतनी ही मुद्रा मिल सकेगी जितनी बैंक आफ इंग्लैंड उसे देना उचित समझेगा, न कि उतनी जितनी कि वह स्वयं प्राप्त करना चाहेगा। ब्रिटेन में उच्चतर बैंक दर का प्रभाव संस्थागत व्याज दरों पर यह होगा कि अब पड़ोस के शाखा बैंक से लेकर बड़ी-बड़ी निजी वित्तीय संस्थाओं तक प्रायः प्रत्येक वित्तीय संस्था स्वतः अपनी व्याज दर बढ़ा देगी। इसका मतलब यह है कि खर्च करने के लिये कम परिमाण में मुद्रा प्राप्त हो सकेगी, जिससे आयात कम होगा, आन्तरिक मूल्य स्तर नीचे गिरेगा, और इस देश के घटते हुए स्वर्ण और डालर प्रारक्षण धीरे-धीरे पुनः बढ़ेंगे।

ब्रिटिश वित्त मंत्री श्री थार्नीक्राफ्ट ने भी घोषणा की है कि सरकार अब सरकारी विभागों, स्थानीय निकायों और राष्ट्रीयकृत उद्योगों (कोयला, गैस और बिजली, यातायात, नागरिक उड्डयन) द्वारा किये जाने वाले पूंजी के निवेशों को कम करने का प्रयत्न करेगी। यह भी कहा गया है कि निजी क्षेत्र में ऋण लेने वालों को जो मुद्रा की पूर्ति दी जायगी, उसे नियंत्रित करने के लिये उपाय अपनाये जायेंगे। बैंकों से कह दिया गया है कि आगामी १२ महीनों के भीतर अग्रिमों के औसत स्तर को पिछले १२महीनों के औसत स्तर, अर्थात् लगभग २०० करोड़ पौंड, तक ही सीमित रखना होगा। यद्यपि इन सभी उपायों के फलस्वरूप निजी उपक्रमों पर कुछ रुकावट सी लगेगी, फिर भी यह देखना अभी शेष है कि ब्रिटेन के मजदूर वर्ग में बैंक दर की वृद्धि से क्या प्रतिक्रिया होती है। ब्रिटिश मालिक संघ ने स्वीकार किया है कि कुछ लोग काम से हटाये जायेंगे। दूसरी ओर, एक वैकल्पिक नीति यह भी है कि मजदूरी के स्तर को घटा दिया जाय। किन्तु, मजदूर संघ कांग्रेस ने कुछ समय पहले इस नीति को अस्वीकार कर दिया है। ऐसी हालत में ब्रिटेन के मजदूर वर्ग को बैंक दर की वृद्धि का प्रभाव भुगतना ही पड़ेगा। इस संबंध में मैं लन्दन के पत्र 'इकोनामिस्ट' के विचार का उल्लेख करके ही सन्तुष्ट हूंगा जिसे उसने कुछ वर्ष पहले, जब कि ब्रिटेन में मौद्रिक नीति पर वाद-विवाद चल रहा था, व्यक्त किया था। मौद्रिक नीति के पक्ष में लिखते समय 'इकोनामिस्ट' ने एक मननशील लेख में कहा था कि यद्यपि अधिक मंहगी मुद्रा से बेरोजगारी और व्यावसायिक मन्दी को प्रोत्साहन मिलेगा, किन्तु कड़ी मुद्रा का उद्देश्य अपस्फीति उत्पन्न करना नहीं होता। उसने बताया कि रोजगार के लिये मौद्रिक नीति द्वारा नियंत्रण लगाना सिद्धान्ततः बजट नीति द्वारा उत्पन्न नियंत्रण की अपेक्षा अधिक विरोधी नहीं होता।

ब्रिटेन की व्याज दरों के ढांचे पर प्रभाव

नवम्बर १९५१ में ब्रिटेन द्वारा कड़े मौद्रिक अनुशासन की नीति अपनाने के फलस्वरूप ब्रिटेन के मुद्रा-बाजार में अल्पकालीन और दीर्घकालीन व्याज की दरों के बीच का अन्तर बहुत ही कम हो गया। लगभग २½ वर्ष पहले, जब कि कड़ी मुद्रा की स्थितियों के फलस्वरूप अल्पकालीन दरों में तेज वृद्धि हो गयी, यह अंतर और भी कम हो गया। लेकिन समूची अवधि में दीर्घकालीन व्याज दरें अल्पकालीन व्याज दरों से कुछ आगे ही बनी रहीं। हाल के महीनों में जब कि बैंक दर ५ प्रतिशत थी, और राजकोषीय बिल की दर उससे ½ और ⅛ प्रतिशत के बीच की मात्रा में कम थी, मध्यम और दीर्घकालीन अवधि वाली पूर्ण प्रतिभूतियों के मूल्य इतने रहे जिससे ५ प्रतिशत से ऊपर कुल-चुकता लाभ प्राप्त होते रहे। अब यह निश्चित है कि बैंक दर में वृद्धि होने के बाद अल्पकालीन व्याज दर के ढांचे को फिर से इस प्रकार व्यवस्थित करना पड़ेगा, जिससे मोटे तौर पर, सभी दरें १९ सितम्बर से पहले प्रचलित स्तरों से कम से कम २ प्रतिशत ऊंची हो जायं।

क्या अल्पकालीन निधियां आकृष्ट होंगी ?

कुछ क्षेत्रों में कहा गया है कि बैंक दर को बढ़ाकर इंग्लैंड विदेशों से निधियों को आकृष्ट करके लन्दन में वापस लाना चाहता है, क्योंकि इन निधियों पर यहां ८ प्रतिशत व्याज दर मिलेगी। इसके अलावा, ऐसा करने से चलार्थ संबंधी सट्टेबाजी को धक्का लगेगा क्योंकि ऐसे सौदों का भुगतान करने के लिये ऋण लेने की प्रवृत्ति हतोत्साहित होगी। यह बात

एकदम निश्चित है कि विदेशी केन्द्रों से अल्पकालीन उड्डयनशील निधियां काफी मात्रा में लन्दन के मुद्रा-बाजार में पहुंचेंगी। लेकिन मुख्य बात सवाल यह है कि बाहर से विदेशी निधियों के आ जाने पर इतनी ऊंची दर से व्याज देकर भी क्या वर्तमान बैंक दर को अर्से तक कायम रखा जा सकेगा ? इसके लिये हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

भारत पर सम्भाव्य प्रभाव

यह सही है कि जिस किसी बात से पौंड की स्थिति दृढ़ होती है उससे रुपये की स्थिति भी अवश्य मजबूत होगी। किन्तु ब्रिटेन की बैंक दर बढ़ जाने से भारत के लिये वहां से विदेशी सहायता प्राप्त करने की संभावना प्रायः खत्म हो गयी है। भारतीय और ब्रिटिश बैंक दरों में काफी अन्तर हो जाने के फलस्वरूप भारतीय विनिमय बैंकों के लिये लन्दन के मुद्रा बाजार में सीमित मात्रा में भी कोष प्राप्त करना कठिन हो गया है। इस समय भारतीय और ब्रिटिश दरों के बीच का अन्तर बढ़ कर १ से ३ प्रतिशत हो गया है। लगभग एक पखवारा पहले भारत के विदेशी विनिमय के दलालों ने पौंड स्टर्लिंग की वायदे और तात्कालिक खरीद पर भारी दबाव की सूचना दी थी और सिर्फ एक ही हफ्ते बाद ऐसा प्रतीत हुआ कि ये परिस्थितियां एकदम उलट गयीं। ताजे आयात की मांग में भारी कमी, जुलाई-सितम्बर के बीच की अवधि में आयात के लाइसेंस समाप्त करने के परिणाम तथा निर्यात पक्ष में नियमित रूप से विनिमय-पत्रों की अदायगी को ही इसका कारण बताया जा रहा है। लेकिन ब्रिटिश बैंक दर बढ़ जाने से यह प्रवृत्ति पुनः उलट सकती है और भारत के विनिमय बैंक इस देश में अपने व्यापारिक अग्रिमों के विरुद्ध पुनः पौंड स्टर्लिंग खरीदने के लिये उत्सुक हो सकते हैं।

कुछ क्षेत्रों में यह मत व्यक्त किया गया है कि यदि भारत सतर्क नहीं रहेगा तो ब्रिटिश बैंक दर बढ़ जाने से भारत के भुगतान-सन्तुलन की स्थिति और भी खराब हो जायगी। मैं इस मत से सहमत नहीं। इसके विपरीत, मेरा विश्वास यह है कि ब्रिटेन में मूल्यों की स्थिति अधिक अनुकूल होने के विदेशी विनिमय संबंधी प्रभाव भारत के लिये लाभप्रद होंगे, क्योंकि भारत ब्रिटेन में खरीद-फरोख्त करने वाला सबसे बड़ा देश है। लेकिन यह मानना पड़ेगा कि ब्रिटेन से, या महंगी मुद्रा वाले किसी भी देश से, स्थगित भुगतान के आधार पर लिये गये आयात की लागत बढ़ सकती है। सौभाग्य से, इन देशों में मुद्रास्फीति-विरोधी उपायों के लागू करने के फलस्वरूप मूल्यों में कमी होने की सम्भावना है जिससे यह क्षति कुछ हद तक पूरी हो सकती है।

लेकिन, हमें इस बात का भय नहीं कि भारत से अल्पकालीन निधियां लाभ की लालच में लन्दन के मुद्रा बाजार की ओर आकृष्ट होंगी, क्योंकि भारत में विदेशी विनिमय संबंधी कड़े नियंत्रण के लागू होने से इसकी सम्भावना नहीं। यह सम्भव अवश्य है कि भारत के विदेशी विनिमय बैंक अधिक तीव्रता से ऋण लेना प्रारम्भ कर दें और उसके फलस्वरूप कड़ी मुद्रा की स्थितियां पैदा हो जायं। लेकिन इस दिशा में अगर विदेशी विनिमय बैंक हद से ज्यादा आगे बढ़ने लगे तो उसे रोकने के लिये कदम उठाने पड़ेंगे। यह भी सम्भावना है कि भारतीय वाणिज्य बैंकों की ऋण देने की व्याज दर जो इस समय ६ से ७ प्रतिशत के बीच है, ½ से १ प्रतिशत तक और बढ़ जाय।

क्या भारतीय बैंक दर भी बढ़ानी पड़ेगी ?

एक सम्भावना यह भी है कि भारत के शेयर बाजारों पर इस अफवाह का असर पड़े कि ब्रिटिश बैंक दर बढ़ने के फलस्वरूप भारतीय बैंक दर में भी वृद्धि होगी, जैसा कि फरवरी में ब्रिटिश बैंक दर के ४½ प्रतिशत से बढ़कर ५ प्रतिशत हो जाने के समय हुआ था। यह बात जान लेना उपयोगी होगा कि यद्यपि ७ नवम्बर १९५१ को ब्रिटिश बैंक दर के बढ़ जाने पर भारत में भी बैंक दर बढ़ गयी थी, किन्तु उस समय दोनों देशों की परिस्थितियां एकदम भिन्न थीं। उस समय भारत में बैंक दर में वृद्धि मुद्रास्फीति का मुकाबिला करने के लिये नहीं हुई थी, बल्कि १९५२ के व्यस्त मौसम में सम्भाव्य कठिनाई के पूर्वाभास के कारण ही रिजर्व बैंक ने ऐसा किया था। रिजर्व बैंक ने अनुसूचित बैंकों को आगाह कर दिया है कि वे अक्तूबर के मध्य तक अग्रिमों के स्तर को काफी हद तक कम कर दें और जो सूचनाएं मिल रही हैं; उनसे यह संकेत मिल रहा है कि वे इस पर ध्यान देने लगे हैं। आने वाले व्यस्त मौसम की स्थितियां ही यह सिद्ध करेंगी कि भारत को अपनी बैंक दर बढ़ानी पड़ेगी या नहीं। सम्भवतः स्थिति अनुकूल ही बनी रहेगी और भारतीय बैंक दर को घटाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

टालसटाय म्यूजियम द्वारा ५० वर्ष पुराने रहस्य का उद्घाटन :

महात्मा गांधी का 'खोया हुआ पत्र'

(श्री अलेक्जेण्डर चिफ़मैन)

प्रतिभाशाली व्यक्तियों के विचार उम्र के साथ मुरझाया नहीं करते । हालांकि महात्मा गांधी और श्री लियो टॉल्सटाय के मध्य हुए पत्र-व्यवहार को लगभग ५० वर्ष बीत गये, फिर भी दुनिया के अनेक देशों में अभी तक यह अध्ययन का विषय बना है । पूर्व और पश्चिम के विद्वान् इन महान् विचारकों के पत्रों की ओर आकर्षित हुए हैं और निर्णय की गंभीरता की, तथा जनता में मैत्री और शांति के बारे में उनमें जो विचार प्रकट किये गये हैं उनकी, प्रशंसा की है ।

टालसटाय-गांधी पत्र-व्यवहार को सबसे पहले जर्मनी में १९२५ में टालसटाय के रूसी मित्र और जीवनी लेखक श्री पावेल बिरीउकोव ने अपनी पुस्तक 'टालसटाय एण्ड दि ओरियंट' में प्रकाशित कराया । यह पुस्तक इतनी आकर्षक थी कि फलस्वरूप यह सारी दुनिया में मशहूर हो गयी ।

सम्पादकों की दृष्टि से ओझल

जब रोम्यां रोला ने अपनी पुस्तक 'लावी द तालसाताय' में, जो १९३३ में प्रकाशित हुई थी, टालसटाय और महात्मा गांधी के सार्वभौम सांस्कृतिक प्रभाव पर विचार-विमर्श किया, तब उनके सामने श्री बिरीउकोव की पुस्तक दोनों महापुरुषों के पत्र-व्यवहार के संबंध में मौजूद थी । ऐसा ही श्री स्टीफेन ज्विग ने टालसटाय तथा महात्मा गांधी के विषय में 'एडेप्ट्स इन सेल्फ-पोर्ट्रेचर' नामक अपनी पुस्तक लिखते समय किया । ये ही पत्र 'सोवियत रिव्यू' ने १९३९ में 'लिटरेरी हेरिटेज' के रूप में एक विशेष ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किये और इसे महात्मा टाल्सटाय को समर्पित किया ।

बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि इतने पर भी अनेक देशों के संपादकों और आलोचकों ने गांधी जी के एक सबसे अधिक रोचक पत्र की ओर ध्यान नहीं दिया, जो उनके द्वारा लिखित और महात्मा टाल्सटाय द्वारा प्राप्त ५०,००० पत्रों के संग्रह में से गायब था और जिसको बड़ी सावधानी से मास्को स्थित 'लियो टाल्सटाय आर्काइव्ज' में सुरक्षित रखा गया ।

गायब कैसे हुआ ?

फिर भी यह पत्र निस्संदेह 'यसनाया पोलयाना' (टाल्सटाय का ग्राम निवास) पहुंच गया और महात्मा टाल्सटाय ने इसे पढ़ा था । जिस प्रकार टाल्सटाय के उत्तरों की जांच करने से उसका अस्तित्व प्रमाणित होता है, उसी प्रकार भारत में रखी हुए एक प्रतिलिपि उसके अस्तित्व को प्रमाणित करती है । किन्तु यह पत्र किस प्रकार गायब हुआ और बाद में उसका क्या हुआ ? करीब ५० वर्ष तक इन प्रश्नों का कोई उत्तर न मिल पाया ।

पिछले दिनों 'यसनाया पोलयाना म्यूजियम' के दो कर्मचारी, सर्वश्री निकोलाई पुजिन और येलेना नासेलेन, को कुछ पुराने विदेशी पत्र-पत्रिकाओं की जांच कर रहे थे जो महात्मा टाल्सटाय के पास दुनिया के सब हिस्सों से उनके जीवन में आये थे । उस समय की एक अंग्रेजी पत्रिका के पन्नों को उलटते-पुलटते कुछ लेखों में से एक का रूसी अनुवाद उनके दृष्टिगत हुआ, जिनका अनुवाद महात्मा टाल्सटाय के लिये उनकी पुत्रवधु श्रीमती ओ. के. टाल्सटाय ने किया था । इसके नीचे लिखा था: "खोया हुआ पत्र" । संभवतः महात्मा टाल्सटाय ने गांधी जी का पत्र उत्तर देने के इरादे से वहीं छोड़ दिया था । किन्तु उसी दिन वे बीमार पड़ गये ; वह पत्रिका उनके अध्ययन कक्ष से हटा दी गयी और वह पत्र करीब ५० वर्ष तक छिपा पड़ा रहा । इस खोज

को श्रेय है कि दो महान् विचारकों में हुए पत्र-व्यवहार की एक खोयी लड़ी अब जुड़ गयी। वह पत्र इस प्रकार है :

वेस्ट मिनिस्टर पैलेस होटल,
४, विक्टोरिया स्ट्रीट,
लन्दन, डब्ल्यू सी.
१०-११-१९०९

प्रिय महोदय,

आपके उस रजिस्टर्ड पत्र के लिये धन्यवाद, जो आपने 'एक हिन्दू को लिखे पत्र' और उन बातों के सिलसिले में लिखा है जिनका उल्लेख मैंने अपने पत्र में किया था।

आपकी अस्वस्थता के विषय में सुन कर पत्र की प्राप्ति की सूचना देने से इसलिए रुक गया कि इससे कहीं आपको कष्ट न हो ? और आपके प्रति लिखित रूप से धन्यवाद का प्रकाशन एक प्रकार की फालतू औपचारिकता होगी। किन्तु श्री एलमीर मूडी ने, जिनसे मैं अभी मिला, मुझे फिर विश्वास दिलाया कि आपका स्वास्थ्य वास्तव में बहुत अच्छा है, और निरन्तर व नियमित रूप से आप हर रोज सबेरे के समय अपना पत्र-व्यवहार करते हैं। यह मेरे लिये बड़ी खुशी का समाचार था और इससे मुझे आपको कुछ और बातों के विषय में लिखने का प्रोत्साहन मिला जो मेरी जानकारी में आपकी शिक्षाओं के अनुसार बड़े महत्व की हैं।

मैं इस पत्र के साथ आपकी सेवा में अपने एक अंग्रेज मित्र द्वारा, जो इस समय दक्षिण अफ्रीका में हैं, लिखी पुस्तक की एक प्रति भेजता हूं। यह पुस्तक मेरे जीवन के संबंध में है, इसमें मेरे उस संघर्ष का वर्णन है जिससे मेरा इतना घनिष्ठ संबंध है और जिसके लिये मैंने अपना जीवन अर्पित कर दिया है। क्योंकि इसके प्रति मैं आपकी अति अधिक दिलचस्पी और सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उत्सुक हूं, इसलिये मेरा विचार है कि कहीं आप मेरे द्वारा इस पुस्तक को भेजना असामान्य न समझ लें।

मेरी राय में ट्रांसवाल में भारतीयों का यह संघर्ष आधुनिक युग में सबसे बड़ा है, क्योंकि इसमें दोनों प्रकार के आदर्श मौजूद हैं। यह स्वयं लक्ष्य तो है ही किन्तु इसमें लक्ष्य की प्राप्ति के लिये तरीके भी अपनाये गये हैं। मैं अभी तक ऐसे किसी संघर्ष के विषय में नहीं जानता जिसमें शामिल होने वालों को अन्त में व्यक्तिगत लाभ न होता हो और जिसमें ५० प्रतिशत व्यक्तियों ने सिद्धान्त के लिये इतने अधिक कष्ट और तपस्या को अपनाया हो। मेरे लिये इस संघर्ष का उतना अधिक विज्ञापन व प्रचार संभव नहीं हुआ, जितना मुझे चाहिए। आज संभवतः आपका सबसे अधिक जनता पर अधिकार व प्रभुत्व है।

यदि आप श्री डाके की पुस्तक में वर्णित तथ्यों से संतुष्ट हों और मुझे जो कामयाबी मिली है, उसे तथ्यों के अनुसार आप उचित समझें, तो मैं किसी भी रूप में आपके विचार के अनुसार इस आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने के लिये आपके प्रभाव का उपयोग करने की आपसे प्रार्थना कर सकता हूं। यदि इसमें सफलता हुई तो यह धर्म, प्रेम और सत्य की अधर्म, घृणा और असत्य पर विजय मात्र ही नहीं होगी, किन्तु यह संभवतः उच्च रूप से भारत की करोड़ों जनता और संसार के दूसरे हिस्सों की पददलित जनता के सामने सेवा का एक उदाहरण रखना होगा, और निश्चित रूप से हिंसावादी दल को, कम से कम भारत में, छिन्न-भिन्न करने के महान् मार्ग पर आगे बढ़ना होगा। यदि हमने अपने लक्ष्य को पा लिया तो मेरे विचार के अनुसार हमें निस्संदेह कामयाबी मिलेगी और आपके द्वारा सुझाये गये रूप में आपके प्रोत्साहन से हम अपने विचार को और सुदृढ़ कर सकते हैं।

इस प्रश्न को सुलझाने के लिये यहां जो समझौता-वार्ता हो रही थी वह आंशिक रूप से विफल हो गयी। इस सप्ताह मैं अपने अन्य साथियों के साथ दक्षिण अफ्रीका लौट कर कारावास के दंड को आमंत्रण दे रहा हूं। साथ

ही में यह भी लिख दूं कि मेरा पुत्र इस संघर्ष में मेरे साथ अपनी मर्जी से शामिल होकर इस समय छः महीने का कठोर कारावास दंड भुगत रहा है। यह उसकी इस संघर्ष में चौथी जेल यात्रा है।

यदि आप इस पत्र का उत्तर देने की कृपा करना चाहें तो बाक्स नं. ६५२२ जोहांसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका, के पते पर उत्तर दें।

आशा है इस पत्र की प्राप्ति के समय आप स्वस्थ होंगे।

आपका आज्ञाकारी सेवक
(ह०) मो० क० गांधी

काउन्ट लियो टाल्सटाय,
यसना पोलयाना,
रूस।

ट्रांसवाल में भारतीय

गांधी जी ने महात्मा टाल्सटाय को पहली बार १ अक्तूबर १९०९ को लन्दन से पत्र लिखा था, जहां वे ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि से ट्रांसवाल के प्रवासी भारतीयों की स्थिति के विषय में समझौता वार्ता करने आये थे। आपने महात्मा टाल्सटाय को अपने प्रथम संदेश में प्रवासी भारतीयों की जीती जागती स्थिति का पूरा विवरण भेज दिया था।

महान् रूसी लेखक से इस भारतीय ने सुदूर ट्रांसवाल से पत्र लेखन द्वारा गहरी साजिश की, किन्तु उससे मिला नहीं। काउंट टाल्सटाय ने अपने मित्र श्री वी. व्हेर्तकोव को इस विषय में लिखा : "मैं ट्रांसवाल के एक हिन्दू के पत्र से बहुत मर्माहत हुआ।" ८ अक्तूबर १९०८ को आपने महात्मा गांधी को एक मैत्री पूर्ण उत्तर भेजा, उसमें "ट्रांसवाल स्थित अपने प्यारे भाइयों के प्रति" हार्दिक सहानुभूति प्रकट की गयी थी।

"एक हिन्दू को पत्र"

"एक हिन्दू को पत्र" नामक सुप्रसिद्ध लेख की प्रतियां साथी भारतीयों में वितरित करने के गांधी जी के इरादे को भी पूरा करने की मंजूरी दे दी गयी। यह लेख महात्मा टाल्सटाय ने १९०८ में लिखा था। "मैं बहुत खुश हूं", आपने लिखा, "कि मेरा पत्र किसी भारतीय भाषा में अनुवादित और प्रचारित होगा।"

महात्मा टाल्सटाय की मंजूरी का पत्र लंदन उस समय पहुंचा, जब कि वहां गांधीजी की समझौता-वार्ता-असफल हो गयी थी। इससे गांधीजी को बड़ा संतोष मिला। उन्होंने फौरन एक दूसरा पत्र "यसनाया पोलयाना" को भेजा, जिसमें आपने ट्रांसवाल में स्थानीय अधिकारियों के विरुद्ध भारतीयों के संघर्ष का वर्णन किया था। दूसरा पत्र ही मशहूर "खोया हुआ पत्र है" जो ऊपर पूरा दिया गया है।

महात्मा टाल्सटाय बीमार थे और उन्होंने पत्र का उत्तर नहीं दिया, हालांकि वे श्री डाके की गांधीजी से संबंधित पुस्तक में बड़ी दिलचस्पी रखते थे जो लगभग उसी समय उनको भेज दी गयी थी।

इंडियन होमरूल

दोनों महापुरुषों में पत्र-व्यवहार पांच महीने बाद अप्रैल १९१० में फिर चालू हुआ, जब कि गांधी जी ने महात्मा टाल्सटाय को तीसरा पत्र तथा अंग्रेजी में लिखी अपनी पुस्तक "इंडियन होमरूल" भी भेजी। "मैंने इसका स्वयं गुजराती में अनुवाद किया है", गांधीजी ने लिखा। "यह आश्चर्य की बात है कि भारत सरकार ने अंग्रेजी में मेरी पुस्तक को जब्त कर लिया।

किन्तु इसी कारण मैं उसका अनुवाद भी प्रकाशित कराने में हिचकता हूं।"

गांधीजी ने महात्मा टाल्सटाय से उक्त पुस्तक को पढ़ कर अपनी राय देने को कहा जो उनके शब्दों में बड़ी कीमती थी। उसी समय में महात्मा टाल्सटाय को गांधी जी ने कुछ प्रतियां "एक हिन्दू को पत्र" नामक लेख की भेजीं जो महात्मा गांधी ने प्रकाशित कराया था और स्वयं उसकी प्रस्तावना लिखी थी।

महात्मा टाल्सटाय गांधीजी के पत्र का विस्तार सहित उत्तर देने के अपने इरादे को पूरा करने में कभी समर्थ न हो सके। २५ अप्रैल १९१० को उन्होंने गांधीजी को एक संक्षिप्त पत्र भेजा, जिसमें उनके द्वारा भेजी गयी पुस्तक के लिये धन्यवाद दिया गया था।

इसी समय ट्रांसवाल में भारतीयों का संघर्ष बहुत उग्र स्थिति में पहुंच गया। सैकड़ों भारतीय परिवारों को, जिन्होंने स्थानीय अधिकारियों के सामने झुकने से इंकार कर दिया, बर्बाद और निराश्रित होना पड़ा। इनमें बहुत जरूरतमंदों की रक्षा के लिये महात्मा गांधी ने अपने मित्र श्री कैलनबेक द्वारा दी गयी भूमि पर एक स्वावलंबी बस्ती "टाल्सटाय फार्म" के नाम से बसायी। गांधीजी और श्री कैलनबेक ने १५ अगस्त १९१० को लिखे एक पत्र में महात्मा टाल्सटाय को सब बता दिया।

डायरी में उल्लेख

गांधीजी के नये पत्र और "एक हिन्दू के नाम पत्र" नामक लेख की प्रस्तावना, और विशेष रूप से उस पुस्तक ने जो गांधी जी ने भेजी थी, महात्मा टाल्सटाय की दिलचस्पी भारतीय जनता के भाग्य की ओर बढ़ा दी। उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है कि वे कई दिन तक "इंडियन होमरूल" पुस्तक तथा श्री डाके की गांधी जी के बारे में लिखी पुस्तक के अध्ययन में लीन रहे।

ये पत्र और गांधी जी की पत्रिका "इंडियन ओपिनियन', जो महात्मा टाल्सटाय को भी भेजी गयी थी, उनके लिए बड़ी संतोषप्रद रही। आपने ६ सितम्बर को अपनी डायरी में लिखा था: "ट्रांसवाल से सत्याग्रहियों की बस्ती के बारे में एक शुभ समाचार।" उसी दिन आपने एक पत्र का उत्तर लिखवाया जो गांधीजी को उनका अंतिम पत्र था। महात्मा टाल्सटाय ने इसे 'यसनाया पोलयाना' छोड़ने के केवल दो महीने पहले लिखा था। यह गांधी जी के पास बहुत देर बाद पहुंचा—वास्तव में उस समय तक नहीं जब तक महात्मा टाल्सटाय अस्तापोवो रेलवे स्टेशन में मृत्यु शैया पर रहे।

इस प्रकार, इस उल्लेखनीय पत्र-व्यवहार की समाप्ति हुई। यह आज भी हमको स्पंदित करता है। यह एक दीपशिखा के समान आगे आने वाली संतति के मार्ग का प्रदर्शन करता है।

मनुष्य की रचना-शक्ति

श्रम्त्योसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समंक्राम॥

(अथर्ववेद)

मनुष्य में नयी-नयी रचनाएं करने की शक्ति है, आगे बढ़ने का बल है, आक्रमणों को रोकने की शक्ति है। उसे अपने-आपको किसी बात में हीन नहीं समझना चाहिये। आगे ही बढ़ने की चेष्टा करनी चाहिये।

अणुव्रत आन्दोलन

श्री नगराज

मनुष्य अपनी दैहिक रचना से बहिर्मुख है। उसकी इन्द्रियां भी बहिर्गामी हैं। शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श, आदि ऐन्द्रियिक विषय तो पार्थिव हैं ही। शायद यही कारण है कि मनुष्य सुख और शांति को बाहर ही खोजता है। पर ऐसा करते समय वह भूल जाता है कि इस पार्थिव आवरण की तह में एक अन्तर्जगत भी है जो मन की आंखों का विषय है, जहां शांतिका निर्द्वन्द्व साम्राज्य है और जहां असीम सुख प्राप्त होता है। उसे वीतरागियों ने देखा है, ऋषि महर्षियों ने पहचाना है। इसीलिये तो वे गाते हैं: "अपने आत्मा से आत्मा को देखो।"[1] "अमृत का इच्छुक वह विरला ही मनुष्य है जो अपने नेत्रों को बाहर से अंदर की ओर मोड़ता है।"[2] अणुव्रत-आन्दोलन मनुष्य को अन्तर्मुख बनाने का ही एक सही अनुष्ठान है। वह इस विश्वास पर आगे बढ़ता है कि मनुष्य ज्यों-ज्यों अन्तर्मुखी बनता जायेगा, त्यों-त्यों उसकी वैयक्तिक व सामष्टिक समस्याएं स्वयं तिरोहित होती जायेंगी। उदाहरणार्थ, अणुव्रती, या दूसरे शब्दों में, अन्तर्मुखी व्यक्ति भी अपना जीवन कायम रखने के लिये खायेगा, पर वह इतना नहीं खायेगा कि उस कारण से दूसरे भूखे रह जायें। वह दूसरे के हिस्से को स्वयं संग्रह करके न छोड़ेगा। वह पारिवारिक दायित्व के लिये धन संग्रह भी करेगा, पर वह संग्रह अपनी अल्पतम आवश्यकताओं को लांघकर नहीं होगा। उसमें शोषण की गन्ध नहीं रहेगी। इसका परिणाम यह होगा कि समाज के सम धरातल पर न तो एक जगह धन का ढेर लगेगा और न ही दूसरी जगह कमी पड़ेगी। अन्तर्मुखी व्यक्ति ज्ञान-विज्ञान भी पढ़ेगा, पर उसका ज्ञान-विज्ञान अणुबम व उद्‌जन बम जैसी संहारक शक्तियों का स्रष्टा नहीं होगा। वह तो यही मान कर चलेगा कि "उन करोड़ों पदों के कंठस्थ कर लेने से क्या, यदि उसे इतना भी ज्ञान न हो कि दूसरों की हिंसा नहीं करनी चाहिए?"[3] वह मानेगा कि वास्तविक विद्या वह है जिससे मनुष्य की "आत्मोपम्य बुद्धि जागृत हो।" अस्तु, इस प्रकार जब पर्याप्त मात्रा से अन्तर्मुखीनता का उदय होगा, तो आर्थिक विषमता, विश्व युद्ध, गोरे-काले का भेद, स्पृश्य-अस्पृश्य की धारणाएं, आदि समस्याएं अपने-आप अस्त हो जायेंगी।

अणुव्रत और महाव्रत

व्रत मानस का दृढ़तम संकल्प व जीवन की सुन्दरतम मर्यादा है। यह आत्मानुशासन का प्रतीक और दैवी भावनाओं का विकास है। व्रतों के आरम्भ व क्रमिक विकास की दृष्टि 'अणुव्रत' शब्द में अन्तर्निहित है और अहिंसा, सत्य, आदि की साधना की पराकाष्ठा महाव्रत शब्द में। 'अणु' से आरम्भ होकर 'महा' की ओर अग्रसर होते रहना अणुव्रती का ध्येय होगा। अहिंसा के अणु-अणु को जोड़ता हुआ अणुव्रती चलेगा। उन अणुओं के संगठन में विराट भावनायें आकार लेंगी। "जो अपने आत्मा के प्रतिकूल है, उसे दूसरों के लिये मत कर।"[4] "समग्र विश्व को मित्र की दृष्टि से देख।"[5] जिसे तू मारता है, समझ वह मैं ही हूं।"[6] इसी प्रकार, वह सत्य का अणु लेकर विराट् सत्य की खोज में आगे बढ़ेगा। उसकी निष्ठा होगी: "मैं अनृत से सत्य की ओर आगे बढ़ूं।" "सत्य ही विजयी होगा, असत्य नहीं।" "वहीं संसार में सारभूत है।"

---

[1] सम्पिक्खए अप्पगमप्पएणं।

[2] परं चिखानि च्यतृणत् स्वयम्भू तस्मात् परं पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद् धीरप्रत्यगात्मानमैक्षीत् परिवृत्य चक्षुरमृतत्वमिच्छन्। (कठोपनिषद्)

[3] किंतेण पडियाये पय कोडि वि पलाल भुयाए।
जइ इत्तो नि जाणं परस्स पीडा न कायव्वा॥

[4] आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

[5] मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। (वेद वाक्य)

[6] जं हंतव्वंति मन्नसि तत् मुंमसि चैव। (भगवान महावीर)

उसकी वाणी होगी : "आत्म-साक्षी से सत्य का अन्वेषण करो।" अस्तु, ब्रह्मचर्य की साधना का एक कण लेकर वह साधक से सिद्ध होने का प्रयत्न करता है। अपरिग्रह की दिशा में वह आगे बढ़ता हुआ आत्मस्थित की स्थिति पर पहुंचने को प्रयत्नशील रहेगा। उसकी मान्यता होगी : "तृष्णा-क्षयी समस्त दुःख को जीत लेता है।" अस्तु, इस प्रकार व्रत के माध्यम से अणु से महा की ओर अग्रसर होते रहना ही अणुव्रत शब्द का अर्थ है। अणुव्रत का शाब्दिक अर्थ है : छोटा व्रत।

भारतीय संस्कृति में अणुव्रत

अणुव्रत शब्द का अर्थ भारतीय संस्कृति में सर्वमान्य रहा है। योग दर्शन के प्रणेता पतंजलि ने देश, काल, आदि सीमाओं में मर्यादित अहिंसा, सत्य, आदि पांच तथ्यों को व्रत, और देश-काल की मर्यादा से मुक्त इन्हीं पांच तथ्यों को महाव्रत कहा है।[७]

बौद्ध परम्परा में इनको पंचशील के नाम से कहा गया है। महात्मा गांधी ने अस्वाद और अभय को स्वतंत्र व्रत के रूप में मानकर इन्हीं तथ्यों को सप्त व्रत के नाम से कहा है। भारतीय ही नहीं बल्कि इतर धार्मिकों एवं धर्म प्रवर्तकों ने भी बाइबिल, कुरान, आदि ग्रन्थों में इन्हीं तथ्यों को मूल माना है। अस्तु, यहां यह जान लेना आवश्यक होगा कि अणुव्रत आन्दोलन में प्रयुक्त अणुव्रत शब्द एक स्वतंत्र व्यापक अर्थ रखता है।

धर्म व संस्कृति का निचोड़

धर्म व संस्कृति का मार्ग गहन है, सीधा-सादा मनुष्य उसमें भटक जाता है। आत्मा, मोक्ष, पुण्य, पाप की गुत्थियां समग्र जीवन के होता ऋषि महर्षियों से भी पूर्णतः नहीं सुलझ पायीं। वे भी समग्र विषयों पर एक नहीं हो सके। पर अणुव्रत-अनुष्ठाता उन समस्त दुविधाओं से बच कर जीवन के उस राजमार्ग पर चलता है, जिसमें दो विकल्प नहीं हैं। उसका मार्ग समस्त धर्मों, समस्त दर्शनों एवं संस्कृतियों से अनुमोदित है। विविध दर्शनकार चाहे तर्क की पनडुब्बियों में बैठ कर कितने ही गहरे उतरते हों, पर जीवन व्यवहार के इस समान धरातल पर सब एक हैं। इसलिये कहा जाता है कि अणुव्रत-आन्दोलन धर्म व संस्कृति का वह समग्र निचोड़ है, जो एक ही प्याले में एक रस करके प्रस्तुत किया गया है।

आजकल बहुत से लोग धर्म को पचड़ा मानते हैं। वे कहते हैं कि हम किसी धर्म को नहीं मानते। हम तो मानव-धर्म के उपासक हैं। कुछ अंशों में उनका कथन निराधार नहीं है। धर्म के शुद्ध रूप पर जब नाना रूढ़ियां, आडम्बर, ईर्ष्या, सांप्रदायिक व्यामोह, आदि छा गये, तो मनुष्य को ऐसा प्रतीत होने लगा कि जहां धर्म के नाम पर मानवता की भी विडम्बना है, ऐसे धर्म से क्या ? अस्तु, इनका चिन्तन चाहे कितने ही अंशों में सत्य हो, पर यह तो निश्चित ही है कि अणुव्रत आन्दोलन जन-जन द्वारा अभीप्सित मानव-धर्म की एक व्यवस्थित रूपरेखा है।

जीवन-व्यवहार में धर्म

आज की अनैतिक स्थिति ने एक बात स्पष्ट कर दी है। यह सही है कि भारतीय धर्मशास्त्रों में जीवन के हेयोपादेय का जो मन्थन है और आदर्श-जीवन की जो कल्पना है, वह बेजोड़ है; किन्तु इतना ही सत्य यह भी है कि जीवन-व्यवहार के इन आदर्शों से भारतीय लोग जितने दूर हैं, उतने दूसरे नहीं। फिर भी, भारतीय लोग स्वयं को ही सबसे अधिक धार्मिक मानते हैं। इसका भी एक हेतु है। धर्म के मुख्यतः दो भाग होते हैं। एक साधना-प्रधान और दूसरा आचरण-प्रधान। साधना-प्रधान धर्म का देश में आज भी बोलबाला है। लोग अपने-अपने विश्वासों के अनुसार, मठ, मंदिर, मस्जिद, गिरजा, आदि धर्मस्थलों में जाते हैं; जप, स्तुति, व्रत, आदि विभिन्न प्रकार से धर्माराधना करते हैं। पर जब वे घर में, दूकान पर या आफिसों में आते हैं,

---

[७] अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।
जातिदेशकाल समयानवच्छिन्नाः सार्वभौम महाव्रतम् ॥
(योग दर्शन साधना, पद ३०-३१)

तब यह भूल जाते हैं कि धर्म का मर्म हमें यहां भी साथ रखना है। धर्म-गुरुओं द्वारा भी केवल उपासना के पक्ष पर अधिक जोर दे देने के कारण लोगों की यह जड़-धारणा बन गयी है कि जीवन-व्यवहार में कितना ही अधर्म करते रहें, हमारी उपासना हमें मुक्ति दे ही देगी। ऐसी स्थिति में अणुव्रत-आन्दोलन मनुष्य को इस ओर मोड़ता है कि धर्म धर्म-स्थान का विषय नहीं, वह जीवन का विषय है। वह अहिंसा, सत्य, आदि रूपी धर्म तो सही अर्थ में आफिस या दूकान में भी आराधा जा सकता है। व्यवसायी तराजू को हाथ में लिये भी यह सोचता रहे कि मैं ग्राहक को किसी प्रकार धोखा तो नहीं दे रहा हूं। कर्मचारी फाइलों पर दस्तखत करता हुआ यह सोचता रहे कि मैं किसी के साथ अन्याय तो नहीं कर रहा हूं। यह धर्म की वह साधना है जो कुछ दृष्टियों से धर्म-स्थान में ढर्रे के रूप में की जाने वाली साधना से अपना विशेष महत्व रखती है। अणुव्रत-आन्दोलन सहज ही धर्माराधना के इन दो पहलुओं में संतुलन पैदा करने वाले जीवन-व्यवहार का वह क्षेत्र है, जो आज धर्म के अभाव में उत्पन्न वीरान को सरस बनाने वाला सिद्ध होगा।

तीन श्रेणियां

अणुव्रत-आन्दोलन के सदस्य अणुव्रती तीन श्रेणियों में विभक्त हैं: प्रवेशक अणुव्रती, अणुव्रती, विशिष्ट अणुव्रती। ये श्रेणियां क्रमिक विकास की प्रतीक हैं। पर प्रत्येक सदस्य के लिये अपनी-अपनी श्रेणी के निर्धारित नियम तो अनिवार्य हैं ही। उससे आगे वह यथाक्रम विकास करता चला जाय, यही श्रेणी-निर्धारण का अर्थ है। निर्धारित नियमों को अपना कर प्रवेशक अणुव्रती सचमुच ही आज के अनैतिकतापूर्ण वातावरण में प्रतिगामी होकर अपनी मंजिल के तोरण-द्वार में प्रवेश कर जाता है। अणुव्रती होना अपने आपको आदर्श नागरिक के रूप में उपस्थित करना है। वहां व्यक्ति चालू समाज-व्यवस्था के मानदंड से अपने स्वार्थ के लिये किसी भी अनैतिक प्रवृत्ति में अग्रसर नहीं होगा। निर्धारित नियम उसका शरीर और नियमों की दृष्टि से अर्थ या व्याख्या उसके प्राण होंगे। नियमों के खंडन को वह अपनी भौतिक मृत्यु व नियमों के अर्थ के हनन को आत्महनन (नैतिक मृत्यु) के बराबर समझे—यही उसकी साधना का विषय होगा।

हिंसा और शोषणरहित जीवन-व्यवस्था

तीसरी श्रेणी विशिष्ट अणुव्रतियों की है। वहां साधक इस स्थिति पर पहुंच जाता है कि वह चालू समाज रचना के बहुत सारे मूल्यों को चुनौती देकर जीवन व्यवहार की एक नई व्यवस्था को जन्म देता है। उदाहरण के लिये, वैध प्रयत्न से आदमी व्यवसाय चलाता है, धन-संग्रह उसके आगे-आगे बढ़ता जाता है। उस व्यक्ति का सामाजिक मूल्यांकन अनैतिक व्यक्ति के रूप में नहीं होगा। किन्तु विशिष्ट अणुव्रती इससे आगे की सोचेगा। उसका विश्वास यह होगा कि मैं नैतिक प्रयत्नों से भी यदि सामान्य औसत से अधिक संग्रह करता हूं, अपने घर में धन का ढेर लगाता हूं तो समाज में नाना गड्ढे पड़ते हैं और विषमता पनपती है। यह आर्थिक विषमता ही एक ज्वलंत हिंसा का निमंत्रण बनती है। अतः मुझे हिंसा व शोषणरहित व्यवस्था की पहली ईंट होकर समाज में खड़ा होना है। अस्तु, इसी प्रकार विशिष्ट अणुव्रती का चिन्तन ऊर्ध्वमुखी होगा और जीवन-व्यवहार के नाना पहलुओं में वह क्रांति करता हुआ चलेगा।

आदि से अब तक

बीज में बट का विराट् अस्तित्व रहता है। अनुकूल स्थिति पाते ही वह उभर आता है। इसी प्रकार, पहले पहल विराट् प्रवृत्तियों का भी एक सूत्र मनीषी-मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। अनुकूल समय आते ही वे उसे बट की तरह विस्तृत हो जाना है। लगभग आठ वर्ष पूर्व की बात है, जब आचार्य श्री तुलसी राजस्थान के छापर नामक ग्राम में चातुर्मासिक प्रवास कर रहे थे। सर्वसाधारण जनता के इन उद्गारों से प्रेरित होकर कि आज की स्थिति में नैतिक स्तर रखकर व्यक्ति का जीवन-यापन कर सकना असम्भव है, आचार्य वर ने अपने प्रातःकालीन प्रवचन में सहस्रों नर-नारियों के बीच सिंह गर्जना करते हुए कहा: "आज मैं पच्चीस व्यक्तियों के नाम चाहता हूं जो कठिनाइयों का सामना करके भी नैतिकता के मार्ग पर चलकर लोगों की बनती

हुई दुर्बल धारणाओं को चुनौती दे सकें।" वातावरण नैतिकता के पक्ष में स्फूर्तिमान था। धड़ाधड़ एक-एक करके पच्चीस वीर खड़े हुए और निवेदन किया : आपस में मार्ग-दर्शन करें, हम किसी भी कीमत पर नैतिकता के दुरूह मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए कटिबद्ध हैं। आचार्य वर का हृदय उल्लास से भर गया। उन्होंने उन पच्चीस साहसिक व्यक्तियों के नाम अंकित किये और उन्हें मार्ग-दर्शन करने का भरोसा दिया। अस्तु, वही एक दिन की घटना आज इस अणुव्रत-आन्दोलन की पहली ईंट साबित हो रही है।

उन साधकों के क्या-क्या नियम हों, उनके संगठित स्वरूप को कैसे मार्ग-दर्शन दिया जाय, इस समग्र प्रयत्न की स्पष्ट रेखा क्या हो—इसी चिन्तन में आचार्य वर ने अणुव्रत-आन्दोलन के रूप में अशेष मानव जाति के नैतिक अभियान का राज-मार्ग खोल निकाला, जो आज अपने क्रमिक विकास में कोटि-कोटि जनता के जीवन-निर्माण का जागरूक विषय बन रहा है। परिस्थितियों की प्रतिकूलता में भी उनकी सजीव प्रेरणायें ऐसी बलवती होकर चलीं कि आन्दोलन के उद्घाटन समारोह में उन्हीं पच्चीस व्यक्तियों के पचास साथी आकर और मिले। पहले वार्षिक अधिवेशन पर ६२१ व्यक्तियों ने दिल्ली के चांदनी चौक में समग्र प्रतिज्ञाएं ग्रहण कीं। इसी क्रम से विगत सातवें सरदार शहर अधिवेशन पर लगभग साढ़े चार हजार व्यक्तियों ने अणुव्रत मार्ग पर चलने की शपथ ली। क्षेत्र की दृष्टि से राजस्थान के सरदार शहर कस्बे से शुरू होने वाला आन्दोलन आज पंजाब, सौराष्ट्र, गुजरात, मैसूर, बिहार, उड़ीसा, बंगाल, आदि भारतवर्ष के सभी प्रमुख प्रान्तों में प्रसार पा रहा है। आज तक के सदस्यों में जैन, वैष्णव, आर्य-समाजी, सिक्ख, मुसलमान, ईसाई, आदि विभिन्न धर्म व हरिजन, किसान, व्यापारी, पदाधिकारी, साहित्यकार एवं सार्वजनिक कार्यकर्ता, आदि विभिन्न जाति, पेशा व रुचि वाले व्यक्ति सम्मिलित हैं।

प्रवृत्तियां

इस अवधि में अणुव्रत-क्रांति को आगे बढ़ाने वाली बहुत सारी कार्य प्रवृत्तियां प्रस्फुटित हुई हैं। अणुव्रत विचारपरिषद्, वर्गीय सप्ताह व पखवाड़े, अहिंसा दिवस, अणुव्रत प्रेरणा-दिवस, आदि उनमें उल्लेखनीय हैं। देश के विभिन्न भागों में होने वाली विचार परिषदों में गणमान्य विचारकों के मननशील विचारों के माध्यम से विचार क्रान्ति के रूप में अणुव्रत भावनायें जन-जन में फैली हैं। वर्गीय सप्ताह व पखवाड़ों में वर्ग गत बुराइयों के विरोध के लिये तत्संबंधी, नियमों का विशेष रूप से प्रसार हुआ। जैसे, विद्यार्थियों में परीक्षा में अवैधानिक तरीकों उत्तीर्ण होने का प्रयत्न नहीं करना; किन्हीं तोड़-फोड़ मूलक हिसात्मक कार्यवाहियों में भाग नहीं लेना; धूमपान व मद्य पान नहीं करना, आदि; तथा व्यापारियों में झूठा तोल-माप नहीं करना, चोर-बाजारी नहीं करना, मिलावट नहीं करना, आदि।

देश के विभिन्न स्थलों में होने वाले इन प्रयत्नों में पर्याप्त सफलता मिली। सन् ५४ में ही केवल लगभग एक लाख विद्यार्थियों को विद्यार्थी उद्बोधक सप्ताह व पखवाड़ों में बलवती प्रेरणाएँ मिलीं और लगभग २० हजार विद्यार्थियों ने स्वेच्छापूर्वक उक्त प्रकार की प्रतिज्ञायें ग्रहण कीं। मजदूर, किसान, हरिजन, व्यापारी, आदि विभिन्न वर्गों में भी तत्प्रकार के कार्य-चले व चलते रहेंगे, ऐसी आशा है। अस्तु, इसी प्रकार अन्य अहिंसा दिवस व प्रेरणा-दिवस के विराट् आयोजनों से समय-समय पर जनता उपकृत होती रही है। यह अणुव्रत-आन्दोलन के क्रमिक विकास सम्बन्धी आदि से अब तक का संक्षिप्त इतिहास है।

सुधार या क्रान्ति

सुधार का आगमन विचारों से प्रारम्भ होता है। पर विचारों का आमूल बदलना क्रान्ति का रूप लेता है। आज के लोग सुधार की अपेक्षा क्रांति में अधिक विश्वास करने लगे हैं। प्रश्न उठता है : अणुव्रत-आन्दोलन सुधार है या क्रांति? यथार्थता यह है कि अणुव्रत आन्दोलन सुधार भी है और क्रांति भी। व्यष्टि सुधार से वह समष्टि सुधार की ओर जाता है, इसलिए वह सुधार है। विचारों की जिस पृष्ठिभूमि पर व आश्रित है, वह समाज में मौलिक परिवर्तन लाने का हामी है, वह जन-जन को अर्थ-निष्ठ से चरित्र-निष्ठ बनाने का आग्रही है। वह समाज के संग्रहशील विश्वासों को आवश्यकताओं के स्वल्पीकरण में परिवर्तित करते

को कृत-संकल्प है। वह समाज को बहिर्मुख से अन्तर्मुख बनाने का पक्षपाती है, इसलिए वह एक क्रांति है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि वह एक सात्विक सुधार व अहिंसात्मक विचार-क्रांति है।

समालोचना की दूसरी दृष्टि यह है कि ३६ करोड़ भारतीयों में से यदि चार हजार व्यक्ति सद्व्यवहारी बन गये तो देश के सामूहिक चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा? प्रतिवर्ष ५०० अणुव्रती बनते जायं, तो भी इस नैतिक दुर्भिक्ष का अन्त कब होगा? विस्तृत समीक्षा में जाने से पूर्व यह तो मानही लेना होगा कि उक्त विचार के समीक्षकों में भी इस पर दो मत नहीं हैं कि स्वल्प सुन्दर भी असुन्दर तो नहीं हैं।

दूसरी बात यह है कि आन्दोलन देश के सामूहिक नैतिक पुनरुत्थान में कहां तक पर्याप्त होगा? इस पर भी कुछ मीमांसा कर लेना आवश्यक है। चार हजार व्यक्ति व्रत ग्रहण करते हैं इसलिए यह आन्दोलन इतने व्यक्तियों तक ही विगत अवधि में चला—यह मान लेना भूल है। स्थिति यह है कि आन्दोलन जितना व्रतों का प्रेरक है उससे भी अधिक विचारों का। वैसे तो यथार्थ यह है कि जिस आन्दोलन द्वारा सहस्रों व्यक्ति व्रतों की मर्यादा में आ जाते हैं, वहां समझना चाहिये, आन्दोलन लाखों और करोड़ों के हृदय को छू गया है, क्योंकि नैतिक विचारों से प्रभावित होने वालों की संख्या लाखों से कम नहीं आंकी जाती। अस्तु, अणुव्रतियों की निर्दिष्ट संख्या को हम स्वल्प कहें या अधिक, यह कोई विवाद का विषय नहीं है। आन्दोलन की व्यापक सफलता विचार-प्रसार में ही निहित है, क्योंकि कोई भी सुधार पहले विचारों में आता है और पीछे कृति में। चारों ओर से सर्व-साधारण को केवल विचार सुनने को मिलते रहें, तो उसका तात्कालिक परिणाम चाहे कुछ भी सामने न आये, किन्तु उसका असर उसी दिन से आरम्भ हो जाता है और एक अवधि के पश्चात् एक ठोस परिवर्तन का रूप ले लेता है। वह सुधार हाथ घड़ी में लगी उस तारीख की सुई के समान है जो चलती हुई दीख नहीं पड़ती, पर अगले दिन अगली तारीख पर मिलती है, इसलिए, आशा ही नहीं, किन्तु भरोसा भी है कि अणुव्रत आन्दोलन देश की अनैतिक स्थिति का अन्त करने में एक व्यापक अनुष्ठान सिद्ध होगा।

पूंजीवाद व साम्यवाद के संघर्ष पर

अणुव्रत-आन्दोलन जीवन-व्यवहार में एक क्रांतिकारी अनुष्ठान है। आन्दोलन के नियम देखने में अणुव्रत अर्थात् छोटे व्रत हैं, किन्तु इनके पीछे समाज-परिष्कृति का एक विराट् दर्शन है। आज जबकि पूंजीवाद और साम्यवाद का ज्वलन्त संघर्ष है, अणुव्रत दर्शन उस संघर्ष का अपने-आप में एक सहज समाधान है। वह साम्यवाद की समतापरक भावना को लेता है, किन्तु उसके साथ जुड़ी हिंसा की कड़ी पर सजीव प्रहार करता है। पूंजी समाज के जीवन-यापन का एक माध्यम है। यह एक व्यवस्था है पर शोषण व संग्रह जैसी पूंजीवाती दुष्प्रवृत्तियों को अणुव्रत-आन्दोलन एक सीधी चुनौती देता है। अणुव्रतों का दृष्टिकोण है: व्यक्ति स्वयं मर्यादित और प्रामाणिक बने। संग्रह व शोषण की प्रवृत्ति से विषमता बढ़ती है। अर्थ का केन्द्रीकरण सर्वहारा समाज में (भिन्न वर्गों में) एक खीझ पैदा करता है।

अणुव्रत दर्शन सर्वहारा वर्ग को बुर्जुआ (पूंजीपति) वर्ग पर हमला बोल देने की बात नहीं कहता। वह बुर्जुआ वर्ग से ही चोर बाजारी, मिलावट, अधिक श्रम-ग्रहण, आदि अनैतिक तरीकों से धन संग्रह न करने की प्रतज्ञाएँ लेने को कहता है। पर यहीं तक उसका कार्य समाप्त नहीं है। विशिष्ट अणुव्रती की श्रेणी में आने वाले व्यक्तियों को किसी भी प्रयत्न से निर्धारित सामान्य मर्यादा से अधिक संग्रह नहीं करने देता। अस्तु, परिणाम यह होता है कि अणुव्रत दर्शन हिंसा व शोषण के स्थान पर समता व मैत्रीपूर्ण जीवन-व्यवस्था को जन्म देकर साम्यवाद और पूंजीवाद के संघर्ष पर एक सुलझाव भरी निगाह देता है।

आज के इस भौतिकता-प्रधान युग में रोटी व कपड़ा समाज व्यवस्था व दर्शन का विशेष पहलू बनता जा रहा है। क्षितिज के उस पार कुछ नहीं है, यह निष्ठा ही उसका एक बलवान् आधार है। इसीलिए सोचा जाता है कि इच्छतः प्रकार की समाज व्यवस्था सम्पन्न हो, हिंसा से या अहिंसा से इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। किन्तु जिस संस्कृति में क्षितिज के उस पार भी, जहां सत्-चिद्-आनन्द की कल्पना है, वहां उक्त प्रकार का जड़वाद उपादेय नहीं हो सकता। यहां व्यक्ति अपने समुचित साध्य को समुचित प्रयत्नों से पाना चाहेगा। अध्यात्मवादी देशों की समाज-व्यवस्था ऐहिक और पारलौकिक जीवन के दोनों पहलुओं के सामंजस्य पर आधारित रही है। वहां जीवन का परम लक्ष्य निःश्रेयस् की ओर आगे बढ़ता है, और ऐहिक समाज व्यवस्था उसका गौण परिणाम। वहाँ बताया गया है कि हिंसा मत करो, असत्य मत बोलो, चोरी मत करो, संग्रह मत करो। इनसे तुम्हें निश्रेयस् मिलेगा। इस प्रकार जब व्यक्ति अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता रहेगा, ऐहिक समाज-व्यवस्था अपने-आप सहज सुन्दर रूप ले लेगी। जब समाज में हिंसा, असत्य, संग्रह, आदि दुर्गुण नहीं होंगे, तो मैत्री व समानता का उदय अवश्यंभावी है। अणुव्रत-आन्दोलन का मूल लक्ष्य व्यक्ति-व्यक्ति को परम सत्य की ओर अग्रसर करना है।

सुनील गुहा

आर्थिक टिप्पणियां

लघु उद्योगों का विकास

सूरत के निकट २ करोड़ रुपये की लागत वाले उधना औद्योगिक संस्थान के प्रशासन-भवन तथा उस संस्थान में ५ लाख रुपये लागत की कापर रोलिंग मिल का शिलान्यास करते हुए केन्द्रीय उद्योग मंत्री श्री मनुभाई शाह ने इस बात पर जोर दिया कि देश की आर्थिक सुरक्षा के लिए यह जरूरी है कि देश भर में छोटे-छोटे उद्योग स्थापित किये जायें, जो खुद रोजगार प्रदान करते हों। श्री शाह ने कहा कि कुछ वर्ष पहले जब गांधी जी ने छोटे उद्योगों को महत्त्व दिया, तब अधिकारियों ने भी उसका मजाक उड़ाया। लेकिन इस समय यह मान लिया गया है कि देश के आर्थिक पुनरुद्धार में छोटे उद्योगों का महत्त्व बहुत अधिक है। श्री शाह ने सूचित किया कि केन्द्रीय सरकार द्वारा एक विशेष अधिकारी नियुक्त हुआ है जो कि "औद्योगिक संस्थानों की स्थापना में तेजी लाने वाले का काम करेगा।" उन्होंने उद्योगपतियों को आश्वासन दिया कि "इस देश में धन या सरकारी सहायता के अभाव के कारण किसी उद्योग को नष्ट होने नहीं दिया जायेगा।" छोटे उद्योगों के विकास की धीमी गति पर असंतोष व्यक्त करते हुए श्री शाह ने कहा : "व्यापारी और उद्योगपति ऋणों पर १० प्रतिशत व्याज भी देने में समर्थ होंगे, बशर्ते कि हम यथासंभव जल्द से जल्द उद्योगों को चालू हो जाने दें।"

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत छोटे उद्योगों को प्रदान किये गये महत्त्वपूर्ण स्थान पर ध्यान देने से उन उद्योगों के विकास की धीमी गति सचमुच बहुत ही अशांतिकारक प्रतीत होती है। इन उद्योगों से न सिर्फ यह अपेक्षा है कि ये हमारे देश के लाखों लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान करेंगे, बल्कि यह भी आशा है कि ये उपभोक्ता वस्तुओं की बढ़ती हुई मांग के अधिकांश भाग को पूरा करने में भी योग देंगे जो कि विकास मूलक आयोजन की किसी भी प्रक्रिया में अपरिहार्य हैं। यह पता चला है कि पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि में जहां संगठित कारखाना क्षेत्र के भीतर श्रम-शक्ति में कुल ६७,००० व्यक्तियों की वृद्धि हुई थी, वहीं छोटे उद्योगों के क्षेत्र में २,६७,००० व्यक्तियों को रोजगार दिया गया। उत्तरी क्षेत्र के बहुत से छोटे उद्योगों की मांग, रोजगार और प्रतिस्पर्द्धी स्थिति के मूल्यांकन के फलस्वरूप यह पता चला है कि छोटे उद्योगों का भविष्य बहुत ही अधिक आशामय है। छोटे उद्योगों के विकास की गति धीमी क्यों रही है? इन उद्योगों के विकास के लिए पूंजी के अलावा, संगठन औ अनुसंधान की भी आवश्यकता पड़ती है। स्थानीय उपक्रमों के निर्माण की बहुत ही अधिक आवश्यकता है। अधिकांश माम में छोटे उपक्रमों की मुख्य कठिनाई वित्तीय नहीं होती, बल्कि ज्ञान और अनुभव की कमी के कारण उत्पन्न होती है। हमें यह दे कर खेद है कि छोटे उद्योगों से संबंधी संस्थाओं, शाखाओं तथा विस्तार केन्द्रों की स्थापना की गति बहुत ही धीमी है। जब त इन संस्थाओं को छोटे उद्योगों के चारों ओर स्थापित नहीं कर दिया जायेगा, जिससे उन्हें सस्ती और क्षमतापूर्ण विशेषज्ञ सेवा तथा क्रय-विक्रय की सुविधायें प्राप्त होने लगें, तब तक छोटे उद्योगों का विकास हमारी आशा के अनुरूप नहीं होगा। हम आ करते हैं कि लघु उद्योग बोर्ड की आगामी बैठक में इन बातों पर ध्यान दिया जायेगा, और इस दिशा में शीघ्र कार्यवाही क जायेगी।

किसानों के लिए सस्ते दर पर पानी

मसूरी में विकास कमिश्नरों के छठे सम्मेलन के अवसर पर उद्घाटन भाषण करते हुए योजना-आयोग के उपाध्य श्री वी. टी. कृष्णमाचारी ने बताया कि राज्य सरकारें कुल ६८ लाख एकड़ जमीनें सिंचाई के अन्तर्गत लाने की उम्मी कर रही थीं, लेकिन उसमें से केवल ४० लाख एकड़ जमीन पर सिंचाई की सुविधा प्रदान की जा सकी है। उन्होंने जोर दे हुए कहा कि इससे एक राष्ट्रीय परिसंपत्ति--पानी--की बर्बादी हुई है, जिसे कि बहुत ही अधिक लागत लगा कर प्रा

किया जाता है और जो इस्तेमाल न होने की वजह से बर्बाद हो जाता है। 'अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन' के सम्बन्ध में राज्यों के मुख्य मंत्रियों के नाम भेजे गए एक पत्र में प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने भी इस प्रश्न की गंभीरता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, और तुरन्त इस बात की जांच करने की मांग की है कि किसानों ने सिंचाई की सुविधाओं का पूरा-पूरा उपयोग क्यों नहीं किया? उन्होंने यह भी कहा है कि अगर इसकी वजह सिंचाई की ऊँची दर है, तो इसे कम कर देना चाहिए।

पिछले साल के कृषि-उत्पादन कार्यक्रम की जांच से पता चला है कि खेती की पैदावार बढ़ाने के आन्दोलन में एक मुख्य बाधा यह रही है कि ऊँची दरों के कारण पानी का पर्याप्त उपयोग नहीं किया जा सकता। नहरों की सिंचाई वाले क्षेत्र में पानी की दर ट्यूब वेल के पानी की दर से कम है, और बहुत से इलाकों में तो किसानों ने सिंचाई की सुविधाओं का प्रयोग करने से इन्कार कर दिया। हमें यह जान कर खुशी है कि केन्द्रीय खाद्य और कृषि मंत्रालय ने राज्य सरकारों को सुझाव दिया है कि वे ट्यूब वेल की सिंचाई और नहर की सिंचाई के महसूलों को एक में मिला दें, ताकि किसानों के लिए पानी की दर लाभकर हो सके। हम आशा करते हैं कि राज्य सरकारें तत्काल इस निर्देश का पालन करेंगी। यह जान कर भी संतोष है कि योजना आयोग ने खाद्यान्नों के संशोधित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अनाज की उपज बढ़ाने में सिंचाई की सुविधाओं के सक्रिय उपयोग के प्रश्न पर काफी ध्यान दिया है। अनाजों की उपज में कमी होने से हमारे विकास कार्यक्रमों में गहरी अव्यवस्था पैदा हो सकती है और अनाज की उपज बढ़ाने में जो चीज भी सहायक हो सकती है, चाहे वह सिंचाई की न्यून दर हो या सस्ता बीज, वह हमारी आर्थिक स्थिरता उत्पन्न करने में सहयोग देगी।

अधिक अन्न उपजाओ

अन्नं बहुकुर्वीत। तद्व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्।
आकाशोऽन्नादः। पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः। आकाशे
पृथिवी प्रतिष्ठिता। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य
एतदन्नमन्ने वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवान् अन्नादो
भवति। महान् भवति प्रजया पशुभि ब्रह्मवर्चसेन।
महान् कीर्त्या।

(तैत्तिरीय उपनिषद्)

"अधिक अन्न उपजाओ। यही व्रत रहे पृथ्वी अन्न है। अन्न आकाश का आधार है। पृथ्वी आकाश पर निर्भर है। आकाश पृथ्वी पर निर्भर है। अतः इससे निष्कर्ष निकलता है कि अन्न अन्न में प्रतिष्ठित अथवा उस पर निर्भर है। जो इस रहस्य को जानता है, वह वास्तविक सत्य को जानता है। उसे अन्न का सुख प्राप्त होता है। उसे मनुष्य और पशुधन सुलभ होते हैं। वह तेजस्वी, प्रख्यात और महान होता है।"

आर्थिक-समाचार-संकलन

भारतीय

माईथान बांध का उद्घाटन

माईथान बांध का उद्घाटन २७ सितम्बर, १९५७ को प्रधानमंत्री द्वारा किया गया। यह बांध दामोदर घाटी योजना का एक महत्वपूर्ण भाग है। इससे पूर्व तिलैया बांध और बोकारो ताप-बिजली घर फरवरी १९५३ में, सिंचाई की नहरों का अगस्त १९५५ में, और कोणार्क बांध का अक्तूबर १९५५ में उद्घाटन हुआ।

माईथान बांध बराकार नदी के आरपार माईथान नामक स्थान पर बनाया गया है। माईथान दामोदर घाटी और बराकार नदी के संगम से ८ मील ऊपर की ओर है। माईथान बांध से केवल बाढ़ों का नियंत्रण ही नहीं होगा, बिजली भी बनायी जायगी और दुर्गापुर से नीचे इसके जलाशय से निकाली गयी नहरों से सिंचाई भी होगी। इस बांध और पुश्तों की कुल लम्बाई लगभग ३.६ मील है। इस स्थान पर नदी का फाट लगभग १,००० फुट है। नदी में ४० से ७० फुट तक गहरी बालू की तह है और उसके नीचे २० फुट मोटी चट्टान है। नदी के बायें किनारे पर २५० फुट ऊंची एक पहाड़ी है। दायां किनारा भी बहुत ऊंचा है। माईथान बांध का मुख्य भाग एक सुरंग है जो बायें तट पर नदी का पानी निकालने के लिये बनायी गयी है। नदीतल में बांध की नींव खोदने और उसे भरने के लिये नदी के पानी को रोक कर सुरंग से निकालना आवश्यक था। सुरंग बनाने का काम बहुत कठिन और परिश्रम-साध्य था।

माईथान में बिजली बनाने के लिये जमीन के नीचे एक बिजली घर बनाया गया है। यह पूर्वी एशिया में सबसे पहला भूमिगत बिजली घर है। यह बिजली घर पहाड़ी के नीचे की ओर नदी के बायें किनारे पर है। यह जमीन के नीचे इसलिये बनाया गया है ताकि लागत कम आये। पहाड़ी के नीचे बिजली घर बनाने का एक कारण यह भी था कि नदी की व्यावर्तन सुरंग से बिजली बनाने में लाभ उठाया जा सकता था।

बिजली घर के सामने बांध से नीचे की ओर बिजली का एक ग्रिड उपकेन्द्र बनाया गया है। माईथान दामोदर घाटी निगम के ग्रिड में एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जो कई बिजली घरों से बिजली प्राप्त करती है और समस्त दामोदर घाटी में गया से कलकत्ता तक के उपभोक्ताओं को बिजली वितरित करती है।

औद्योगिक वित्त निगम द्वारा १९५६-५७ में ऋण

देश के औद्योगिक वित्त निगम ने ३० जून, १९५७ को समाप्त वर्ष में ९ करोड़ ७८ लाख रु. का ऋण दिया। पिछले वर्ष १ करोड़ २० लाख रु. का ऋण दिया था। ३० जून, १९५७ तक निगम के पास कुल २२ करोड़ ३६ लाख रु. के ऋण के लिए ६७ अर्जियां आयी थीं, जिनमें से ११ करोड़ ९१ लाख रु. की ५१ अर्जियां स्वीकार की गयीं। निगम के नवें वार्षिक प्रतिवेदन बताया गया है कि उक्त ऋण विभिन्न उद्योगों को दिए गए, जैसे बुनियादी औद्योगिक रसायन, खाद्य-पदार्थ उत्पादन उद्योग, कांच और कांच का सामान, सीमेंट, मशीन निर्माण, साइकिल, आदि। इस साल चीनी के सहकारी कारखानों को ३ करोड़ ८४ लाख रु. का ऋण देना स्वीकार किया गया। निगम ने चीनी उद्योग को अब तक जितना ऋण देना स्वीकार किया है उसका ६६.२ प्रतिशत, अर्थात १० करोड़ ७३ लाख रु., इन सहकारी कारखानों को दिया गया है।

इस साल निगम को, प्रशासन सम्बन्धी खर्च, ब्याज, कर आदि काटकर कुल ११ लाख २५ हजार रु. का शुद्ध लाभ हुआ है। निगम की ५ करोड़ रु. की प्राप्त हिस्सा पूंजी पर जो २¼ प्रतिशत निश्चित लाभांश दिया जाता है, उसके भुगतान में यह रकम खर्च की जाएगी। चूंकि यह रकम निश्चित लाभांश के भुगतान के लिए काफी है इसलिये इस साल सरकार से आर्थिक सहायता लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। निगम ने इस वर्ष भारत सरकार से ४।। रु. प्रति सैंकड़ा प्रति वर्ष ब्याज की दर से ६ करोड़ ५० लाख रु. का ऋण लिया।

निगम ने भारत सरकार की स्वीकृति से २३ अप्रैल, १९५७ से ऋण पर ब्याज की दर आधा प्रतिशत बढ़ाकर

रु. प्रति सैंकड़ा प्रति वर्ष कर दी है। औद्योगिक वित्त निगम पिछले ९ वर्षों में ५५ करोड़ १२ लाख रु. का ऋण दे चुका है। इनमें से ३३ करोड़ ८० लाख रु. १५१ नयी कम्पनियों को दिया गया और बाकी रकम १०८ पुरानी कम्पनियों को सुधारने तथा बढ़ाने के लिए दी गयी।

निगम ने जितना ऋण दिया है उस पर तीन करोड़ ७३ लाख रु. व्याज होता है, जिसमें से ३ करोड़ ४५ लाख रु. वसूल हो चुका है। दो कम्पनियों को व्याज का भुगतान करने के लिए और समय दिया गया है। इन्हें १ लाख ९५ हजार रु. व्यय देना होगा है। कुछ कम्पनियों से और मुख्यतः सोदपुर ग्लास वर्क्स लि. से अब व्याज वसूल करना सम्भव नहीं है। ऐसी रकम कुल ७ लाख रु. १० हजार रु. है। इन रकमों को यदि अलग कर दिया जाय तो अब कुल व्याज का २.७ प्रतिशत, अर्थात ९ करोड़ ८५ लाख रु., वसूल करना बाकी रह गया है।

सरकारी खानों से कोयले का उत्पादन

देश की सरकारी कोयला खानों से, जिनमें लगभग २९,-००० कुशल और अकुशल कर्मचारी काम करते हैं, १९५६ में २९,८९६ टन कोयले का उत्पादन हुआ। विभिन्न श्रेणियों के इस कोयले का मूल्य ४.८ करोड़ रु. से भी अधिक था। सरकारी कोयला-खानों से जितना कोयला निकला, उसमें से २५,११,२६० टन रेल-इंजनों के लिये और ६,७९५ टन प्रतिरक्षा कार्यों के लिये दिया गया। २,७२,७०६ टन कोयला अन्य सरकारी संगठनों ने इस्तेमाल किया। निजी संगठनों ने ३५,६०४ टन कोयला लिया और ४,६३४ टन कोयला विदेशों को भेजा गया।

लघु उद्योग कारखानों की उत्पादन पद्धति में सुधार

भारत सरकार ने बिहार और उड़ीसा के छोटे कारखानों की उत्पादन पद्धति में सुधार के लिए कई योजनाएं स्वीकार की हैं। केन्द्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय ने इस काम के लिए बिहार राज्य को १४ लाख ४२ हजार रु. और उड़ीसा राज्य को ५ लाख ८० हजार रु. देना मंजूर किया है। पटना की औद्योगिक बस्ती में एक आदर्श फाउन्डरी खोली जायगी और बस्ती के सभी कारखानों के उपयोग के लिए प्रयोगशाला खोली जाएगी। साइकिलों और उनके कल-पुर्जों का उद्योग भी इस बस्ती में शुरू किया जाएगा। पटना, दरभंगा और रांची की औद्योगिक बस्तियों में खेल का सामान बनाने के लिये कारखाने खोले जाएंगे। केन्द्रीय सहायता से बिहार शरीफ, दूसा और सहसराम में भी कई औद्योगिक योजनाएं चलायी जाएंगी। बिहार शरीफ में लकड़ी के काम के लिए प्रशक्षिण एवं उत्पादन केन्द्र खोला जाएगा। मुजफ्फरनगर और डुमका में बढ़ईगिरी के आदर्श कारखाने खोले जाएंगे और पूसा में बढ़ईगिरी के चलते-फिरते कारखानों को चालू रखा जाएगा।

बिहार के कपड़ों की सिलाई और कटाई के १५ उत्पादन एवं प्रशिक्षण केन्द्रों को भी इस वर्ष चालू रखा जाएगा। खपूरिया (उड़ीसा) में डीजल से चलने वाली मोटर गाड़ियों के कारीगरों के प्रशिक्षण के लिए केन्द्र खोला जाएगा। केन्द्रीय सहायता से कटक में लघु उद्योगों के लिए प्रशक्षिण एवं उत्पादन केन्द्र और एक प्रयोगशाला खोली जाएगी।

औद्योगिक स्कूलों के नवीकरण. बरहमपुर और अंगुल में बढ़ईगिरी तथा बरहमपुर और फूलबनी में लोहारी की विकास-योजनाओं को भी अमल में लाया जाएगा। राजगंगपुर, राउरकेला और बरहमपुर के आदर्श जूता-कारखाने और कटक के बिहानसी क्षेत्र में चमड़ा परीक्षण केन्द्र को चालू रखा जायगा।

भूतपूर्व अपराधी जातियों की प्रगति

अपराधी जाति अधिनियम १८७१ के बनने से पहले अपराधी जातियों और दलों का देश के साधारण फौजदारी कानून के अन्तर्गत चालान किया जाता था। अपराधी जाति अधिनियम १८७१, में किसी जाति या दल को अपराधी घोषित करने और उनकी लूट की आदत को रोकने के लिए-व्यवस्थाएं की गयीं थीं। इसको व्यापक बनाने और इसकी व्यवस्थाओं को और कड़ा बनाने के लिए १८७१ और १९-२४ के बीच इसमें कई बार संशोधन किया गया। भारत सरकार ने १९४९ में अपराधी जाति अधिनियम जांच समिति की नियुक्त की थी। इस समिति ने यह सिफारिश की कि यह कानून संविधान के प्रतिकूल पड़ता है, इसलिये इसे रद्द कर

देना चाहिये । ३१ अगस्त, १९५१ को अपराधी जाति अधिनियम, १९२४, सारे देश के लिए रद्द कर दिया गया ।

भूतपूर्व अपराधी जातियों की आबादी लगभग ४० लाख है । इनके सुधार के लिए कई उपाय किये गये हैं । इनके लिए राज्य सरकारों ने विशेष स्थिति में जमीन और ऋण देने, सहायक घरेलू उद्योगों की स्थापना करने, बहुद्देश्यीय सहकारी समितियां खोलने और शिक्षा सुविधाएं देने की योजनाएं कार्यान्वित कीं । इन कार्यक्रमों के लिए पहली योजना में ३ रोड़ ५० लाख रु. की व्यवस्था की गयी थी । दूसरी योजना में १५,२४६ खाना बदोश परिवारों को बसाने के लिए ८,१५७ मकान और ३९४ कुएं खोदने की एक योजना बनायी गयी है । इस काम के लिए २ करोड़ ९४ लाख रु की व्यवस्था भूतपूर्व अपराधी जातियों के ७,१०० परिवारों को बसाने के लिए स्वराष्ट्र मंत्रालय ने १ करोड़ ११ लाख रु. की राशि अलग कर रखी है ।

विदेशी

विश्व का चीनी उत्पादन और भारत का चीनी निर्यात

सन् १९५६-५७ के लिए विश्व भर में कुल चीनी के उत्पादन का अनुमान ४,४०,२८,००० मेट्रिक टन लगाया गया । यह अनुमान लन्दन के मेसर्स सी. जारनिकोव लिमिटेड ने लगाया है । सन् १९५५-५६ में इसकी मात्रा ४,१,६,८८,००० मेट्रिक टन और १९५४-५५ में ४०,४,००,००० मेट्रिक टन थी । यह उत्पादन गत ७ वर्षों में सबसे अधिक उत्पादन है । गत ४ वर्षों के तत्सम्बन्धी आंकड़े इस प्रकार हैं :

(हजार टन कच्चा मूल्य)

	१९५३-५४	१९५४-५५	१९५५-५६	१९५६-५७
शकरकन्द	१६,२४२	१४,८८०	१५,६७९	१६,०८१
गन्ना	२४,१३२	२५,२२०	२६,००९	२७,९४७
कुल	४०,३७४	४०,४००	४१,६८८	४४,०२८

सरकारी आंकड़ों के अनुसार, १ जनवरी, १९५७ से लेकर मई १९५७ के अन्त तक भारत से निर्यात की चीनी की बिक्री लगभग १,४१,००० टन की हुई । इन बिक्रियों में से पश्चिमी एशिया के देशों का हिस्सा ६५,७५० टन चीन का २९,००० टन; सुदूर पूर्व के देशों का ३०,६५० टन; बर्मा, लंका और पाकिस्तान का १४,२५० टन; और ब्रिटेन का १०,०० टन रहा । मई के अन्त तक कुल निर्यात ४२,२७ टन था, जिसमें विभिन्न देशों के हिस्से इस प्रकार थे : पश्चिम एशिया १७,५०० टन, श्रीलंका ८,२०० टन; पूर्वी देश १०,००० टन; बर्मा ६,००० टन और ब्रिटेन १००० टन ।

ब्रिटेन में चाय का आयात : भारत से आयात में वृद्धि

चालू वर्ष के प्रथमार्द्ध में ब्रिटेन ने ३३.६८९९ करोड़ पौण्ड चाय का आयात किया जबकि १९५६ की इसी अवधि में यह आयात केवल २७.०२५ करोड़ पौंड का रहा । यह सूचना व्यापारिक विवरण बोर्ड से प्राप्त हुई है ।

चाय के आयात में आलोच्य अवधि के भीतर कुल ६. करोड़ पौंड की वृद्धि हुई जिसमें से भारत का हिस्सा ३. करोड़ पौंड था । इसने इंग्लैंड को कुल १९.२५७ करोड़ पौंड चाय का निर्यात किया था ।

श्रीलंका से हुआ चाय का आयात जनवरी, जून १९५ के ६.४९१ करोड़ पौंड से बढ़कर ७.८०७ करोड़ पौंड हो गया जबकि पाकिस्तान से आयात ५७.१ लाख पौंड से बढ़कर १.२८८ करोड़ पौंड हो गया । हिन्देशिया से हुए चाय आयात में विशेष वृद्धि नहीं हुई । अन्य चाय उपत्न्न करने वाले देशों में से रोडेशिया, और न्यासालैण्ड तथा पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका में से प्रत्येक के इंग्लैंड को अपने निर्यात में २० लाख पौंड की वृद्धि की । चीन से हुआ आयात १९५६ के प्रथम अधवारे में ६,४७,४१९ पौंड था जो कि बढ़कर १९५७ के

आलोच्य अवधि में ४१.४ लाख पौंड हो गया ।

सोवियत रूस में जनता द्वारा बचत

सोवियत रूस में सेविंग्स बैंक में जमाकर्ताओं की संख्या तथा जमा की गयी रकम की मात्रा में काफी वृद्धि हुई है। यह तथ्य निम्नलिखित आंकड़ों से सिद्ध है जो कि १९५६ में सोवियत रूस की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था नामक पुस्तिका से किए गये हैं :—

	१९५०	१९५३	१९५६
जमा-खातों की संख्या (लाख में)	१४३	२७०	३६८
कुल जमा की रकम (१०० करोड़ रूबल में)	१.८५	३.८६	६.३७
औसत जमा (रूबल में)	१,२५०	१,४२८	१,७२८

इस प्रकार गत ६ वर्षों के भीतर जमा-खातों की संख्या में २.६ गुनी जमा की गयी रकम में ३.४ गुनी और औसत जमा में ३८ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

विश्व में गेहूं का व्यापार

अनुमान है कि १९५६-५७ में गेहूं का व्यापार १२ अरब बोरियों से बढ़ जायगा और इस प्रकार यह एक नयी अधिकतम सीमा तक पहुंच जायगा । गेहूं के मौसम में, विश्व भर के निर्यातकों के प्रारम्भिक अनुमान (१० लाख बोरियों में) पिछले मौसम के अनुमान की तुलना में क्रमशः इस प्रकार थे : सं. रा. अमरीका ५३५ (३४६); कनाडा २७० (२८९); आस्ट्रेलिया १२५ (१०२); और अर्जेण्टाइना ९५ (११५)। अन्य देशों का कुल अनुमानित निर्यात १८.५ करोड़ बोरियों के बराबर हैं इसमें से रूस का निर्यात सबसे अधिक होने का अनुमान है। १९५६-५७ के अनुमान १९५१-५२ की अधिकतम मात्रा से १३ प्रतिशत अधिक हैं और युद्धोत्तर काल निदशक के औसत से २९ प्रतिशत अधिक है।

चीन में पटसन के उत्पादन का विस्तार

भारतीय केन्द्रीय पटसन समिति को प्राप्त सूचनाओं के अनुसार, चीन ने कच्चे पटसन के उत्पादन विस्तार में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है । पटसन की खेती का क्षेत्रफल १९५४ के ७२,००० हेक्टेयर से बढ़कर १९५५ में १,१६,००० हेक्टेयर हो गया और पटसन का उत्पादन १,३७,००० टन से बढ़कर २,५७,००० टन हो गया ।

१९३१-३२ और १९३८-३९ के बीच चीन में पटसन का अनुमानित वार्षिक उत्पादन केवल ३ हजार टन और ७ हजार टन के बीच भिन्न-भिन्न था। वहां से १९३५-३६, १९३६-३७ और १९३७-३८ में पटसन का निर्यात क्रमशः ४,००० टन, ७,००० टन और ४,००० टन था। यह उल्लेखनीय है कि १९५५ में भारत में पटसन का उत्पादन ७,५०,००० टन था जबकि पाकिस्तान में केवल १० लाख टन था।

जून १९५७ में भारत का वैदेशिक व्यापार

जून १९५७ में भारत ने विदेशों के साथ समुद्र, वायु और भूमि मार्ग से निजी और सरकारी तौर पर कुल १३३.८९ करोड़ रुपये का व्यापार किया। इसमें आयात ८५.६० करोड़ रुपये का और निर्यात (पुनर्निर्यात सहित) ४९.२९ करोड़ रुपये का था। इस महीने आयात का मूल्य निर्यात से ३७.३२ करोड़ रुपये कम रहा।

व्यापारिक वस्तुओं के कुल व्यापार (१३३.८९ करोड़ रुपये) में से पाकिस्तान, तथा नेपाल, त्रिब्बत, सिक्किम और भूटान आदि देशों के पारनयन (भारत होकर जाने वाले व्यापार को छोड़ कर) निर्यात का मूल्य ४८.०४ करोड़ रु.; पुनर्निर्यात का मूल्य २५ लाख रु. और आयात का मूल्य ८५.६० करोड़ रु. था।

इसी प्रकार इस काल में, करेंसी नोटों का निर्यात (पुनर्निर्यात सहित) (७ लाख रु.), सोने का आयात (१ लाख रु.), करेंसी नोटों का (४.३२ करोड़ रु.) था।

विज्ञान प्रगति

घरेलू और छोटे उद्योगों को वैज्ञानिक सहायता देने वाली और नये उद्योग सुझाने वाली एक अधिकारी पत्रिका है। यह उद्योगियों की व्यक्तिगत कठिनाइयों में रुचि लेती है।

क्या आप 'विज्ञान प्रगति' के ग्राहक हैं ?

कानपुर के साप्ताहिक 'प्रताप' का कथन है :

"जन-उपयोगी इस मासिक पत्रिका का हम घर-घर में प्रवेश चाहते हैं।"

वार्षिक मूल्य ५ रुपये . एक प्रति का आठ आना

पब्लिकेशन्स डिवीज़न, कौंसिल ऑफ़ साइंटिफ़िक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च

ओल्ड मिल रोड, नई दिल्ली—२

भारत सरकार
के वाणिज्य और उद्योग मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित

'उद्योग-व्यापार पत्रिका'

- ★ प्रमुख व्यापारी और औद्योगिक इसे प्रतिमास पढ़ते हैं।
- ★ देश के कोन-कोने में यह मंगाई जाती है।
- ★ व्यापार और उद्योग सम्बन्धी प्रामाणिक लेख, जानकारी और आंकड़ों का यह साधन है।

प्रतिमास ठोस सामग्री युक्त बड़े आकार के ८०-९० पृष्ठ : मूल्य केवल ६ रु० वार्षिक।

एजेण्टों को भरपूर कमीशन। विज्ञापन देने का अचूक अवसर

ग्राहक बनने, एजेन्सी लेने अथवा विज्ञापन छापने के लिए
आज ही पत्र लिखिए—
सम्पादक

उद्योग-व्यापार पत्रिका

व्यापार और उद्योग मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

"भारत का प्रगतिशील औद्योगिक संगठन"

सर जे० पी० श्रीवास्तव उद्योग-संगठन

पो० बा० नं० ३७६, कानपुर

वस्त्र-उत्पादक

दि न्यू विक्टोरिया मिल्स कम्पनी लिमिटेड, कानपुर : दि राजा टेक्सटाइल लिमिटेड, रामपुर
दि न्यू भोपाल टेक्सटाइल्स लिमिटेड, भोपाल : श्री सादुल टेक्सटाइल्स लिमिटेड, श्रीगंगानगर

(बारीक, दरम्याना और मोटे कपड़े व सूत के निर्माता)

तम्बू, दरी, पहनने के कपड़े

दि ज्वाला फैब्रिक्स लिमिटेड, रामपुर

(सिलाई का सती धागा, गोल जाली, मच्छरदानी और बनियानों, मोजों, आदि का सूत)

दि कानपुर डाइंग एण्ड क्लाथ प्रिंटिंग कम्पनी लिमिटेड, कानपुर

(तंबू, दरी, रंगने और छापने के विशेषज्ञ)

दि ग्वालियर शूगर कम्पनी लिमिटेड, दावरा (म० भा०)
दि ग्वालियर एग्रीकल्चर कंपनी लिमिटेड, दावरा (म० भा)

(हर प्रकार की चीनी, गुड़ और खेती की पैदावार)

आयात, निर्यात, उत्पादकों के प्रतिनिधि, एजेंट्स, बीमा और शिपिंग

दि पायोनियर कन्सोलिडेटेड कंपनी आफ इण्डिया लिमिटेड

हर प्रकार के रोजिन और तारपीन के निर्यातकर्त्ता

विक्रय प्रतिनिधिः— **दि इंडियन टर्पिनटाइन एण्ड रोजिन कं० लि० :** शाखायें:—**बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई दिल्ली**

(कराची, लन्दन, ज्यूरिक में संबंधित कम्पनियां)

फिल्म स्टुडियो के मालिक तथा हर प्रकार के चलचित्र निर्माता

कैलाश पिक्चर्स : लखनऊ

सफेद बालोंको श्याम बनाने वाला
लोमा
रजिस्टर्ड
• मधुर सुवास देता है।
• दिमाग को ठंडक पहुंचाता है।
• सर्वत्र बिकता है।
B.SHAH
सोल एजंट:- एम. एम. खंभातवाला
अहमदाबाद

अरविन्द का यह चिह्न

उच्चतम कोटि

के

कपड़ों के लिए सुप्रसिद्ध

अरविन्द मिल्स लिमिटेड

नरोदा रोड, अहमदाबाद–२

कांग्रेस प्रकाशन

कांग्रेस पत्रिका : प्रत्येक मास की १० तारीख को प्रकाशित होती है । वार्षिक चन्दा : भारत में चार रु० तथा विदेश में छः रु० ।

	मूल्य एक प्रति			डाक व्यय
	रु०	आ०	पा०	आ०
कांग्रेस संविधान (नवीनतम)	०	४	०	१
संविधान की धाराओं के अन्तर्गत नियम	०	४	०	१
कांग्रेस ग्राम पंचायत कमेटी की रिपोर्ट (जुलाई १९५४)	१	८	०	४
आवडी अधिवेशन में पास किये गए प्रस्ताव (१९५५)	०	२	०	१
अ० भा० कां० क० के ब्रह्मपुर मीटिंग में पास किये गए प्रस्ताव (मई १९५५)	०	२	०	१
अमृतसर अधिवेशन में पास किये गए प्रस्ताव (१९५६)	०	२	०	१
अध्यक्षीय भाषण (१९५६ अमृतसर अधिवेशन)	०	२	०	१
प्रधान मन्त्रियों की रिपोर्ट (१९५६ अमृतसर अधिवेशन)	१	८	०	४
नया भारत	०	४	०	१
आज़ादी के आठ साल	०	४	०	१
सिंचाई और बिजली	०	४	०	१
गाँव के उद्योग-धन्धे	०	४	०	१
सामुदायिक योजना	०	४	०	१
अन्न समस्या का हल	०	४	०	१
समाजवादी अर्थशास्त्र की ओर (१९५५)	१	८	०	४
नवीन सामाजिक समस्या (उ० न० ढेबर)	०	४	०	१
सामाजवादी व्यवस्था की ओर (जवाहरलाल नेहरू)	०	४	०	१
कांग्रेस रचनात्मक कार्य-समिति की रिपोर्ट (१९५५)	०	८	०	३
रचनात्मक कार्य : सूचना पुस्तक	१	०	०	३
रचनात्मक क्रान्ति की ओर	०	२	०	१
रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन (फरवरी १९५६)	०	४	०	१
रचनात्मक कार्यक्रम (१९५६)	०	४	०	१
गीतावली भाग १	०	४	०	१
गीतावली भाग २	०	४	०	१
व्यक्तिगत आचरण (श्रीप्रकाश)	०	३	०	१
गौतम बुद्ध का सन्देश	०	३	०	१
आ० भा० कां० क० के बम्बई अधिवेशन में पास किये गए प्रस्ताव (१९५६)	०	२	०	१
सेवादल मैनुअल नं० १	०	६	०	१
सेवादल " नं० ३	०	६	०	१
सेवादल " नं० ४	०	८	०	२
सेवादल " नं० ५	०	१२	०	२
सेवादल " नं० ७	०	१२	०	२

मिलने का पता : प्रकाशन विभाग,
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी,
७ जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली

नोट : पुस्तकों का आर्डर तथा मूल्य भेजते समय आठ आने रजिस्ट्री की फीस भेजना न भूलें ।

अ० भा० कांग्रेस कमेटी के लिए श्री बालकृष्णन् द्वारा प्रकाशित और नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित

कर्त्तव्यम् सुसमीक्षितम्

आर्थिक-समीक्ष

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आर्थिक-राजनीतिक अनुसन्धान विभाग का पाक्षिक पत्र

श्रमदान में व्यस्त ग्रामीण

वार्षिक मूल्य
५ रुपये
एक प्रति
२२ नये पैसे

अन्दर देखिए :—

- ★ प्रशासन में विकेन्द्रीकरण
- ★ भारत के लिए एक दीर्घकालीन कृषि-कार्यक्रम
- ★ 'गैट' अधिवेशन और प्रस्तावित यूरोपीय बाजार

परिशिष्ट : आर्थिक-समीक्षा, वर्ष ६, २२ अक्तूबर १९५६ से ७ अक्तूबर १९५७, की अनुक्रमणिका।

नयी दिल्ली
१९ अक्तूबर १९५७
वर्ष ७, संख्या १
पूर्णांक १३९

सम्पादक मण्डल

गुलजारीलाल नन्दा
टी. टी. कृष्णमाचारी
खण्डूभाई देसाई
मनुभाई शाह
अरुण चन्द्र गुहा

प्रधान सम्पादक—श्रीमन्नारायण

सम्पादक—सुनील गुहा

विषय-सूची

पृष्ठ

१. प्रशासन में विकेन्द्रीकरण
श्रीमन्नारायण ३

२. संक्षिप्त टिप्पणियां : ५
  (क) सोवियत 'भू-उपग्रह'
  (ख) प्रधान मंत्री की जापान-यात्रा
  (ग) विदेशी सहायता
श्री. ना.

३. राजस्थान में छोटी बचत आन्दोलन
मोहनलाल सुखाड़िया ७

४. भारत के लिए एक दीर्घकालीन कृषि-कार्यक्रम
बिपिन बिहारी ९

५. 'गैट' अधिवेशन और प्रस्तावित यूरोपीय बाजार
सुनील गुहा १५

६. आर्थिक टिप्पणियां : १८
  (क) अक्तूबर १९५७–मार्च १९५८ के लिए आयात नीति
  (ख) निर्यात जोखिम बीमा निगम
  (ग) विश्व खाद्य और कृषि संगठन की कृषि आयोजन और प्रबन्ध गोष्ठी
  (घ) दस्तकारी बोर्ड की सराहनीय प्रगति
  (ङ) उत्तर प्रदेश द्वारा आराजी की उच्चतम सीमा का कम करना
सुनील गुहा

७. जापान में सामाजिक सुरक्षा २२

८. अम्बर चर्खा कार्यक्रम १९५७-५८ की एक समीक्षा २४

९. आर्थिक-समाचार-संकलन :
  भारतीय २८
  विदेशी २९

१०. कवर पृष्ठ पर :
  (क) राजस्थान में श्रमदान का एक दृश्य कवर एक

आर्थिक-समीक्षा

वर्ष ७, संख्या १] नयी दिल्ली : शनिवार, १९ अक्तूबर १९५७ [पूर्णाङ्क १३९

श्रीमन्नारायण

प्रशासन में विकेन्द्रीकरण

श्रीनगर में स्थानीय स्वायत्त शासन की केन्द्रीय समिति की एक हाल की बैठक में यह प्रस्ताव किया गया था कि ग्राम पंचायतों को द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक देश भर में सामुदायिक विकास कार्यक्रम लागू करने की जिम्मेदारी सौंप दी जानी चाहिए। इस प्रस्ताव का उद्देश्य, खास तौर पर विकास संबंधी कार्यों के क्षेत्र में, वर्तमान शासन में दूरगामी विकेन्द्रीकरण उत्पन्न करना है । ग्राम पंचायतों को अधिक अधिकार प्रदान करके सरकारी व्यवस्था को विकेन्द्रित करने का विचार भारतीय संविधान के इस निदेशक सिद्धांत के अनुरूप ही है कि ग्राम पंचायतें क्रमशः सरकार की बुनियादी इकाइयां बना दी जानी चाहिए । सामुदायिक विकास मंत्रालय भी सामुदायिक योजनाओं और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं को सरकारी कार्यक्रम से, जिसमें जनता हिस्सा लेती हो, बदल कर जनता का कायक्रम, जिसमें सरकार हिस्सा लेती हो, बनाने पर जोर देता रहा है ।

अब दुनिया भर के प्रगतिशील राजनीतिक विचारक यह मानने लगे हैं कि लोकतंत्र सिर्फ उसी हालत में सफल हो सकता है, जब कि उसे एक व्यापक आधार पर विकेन्द्रित कर दिया जाय । केन्द्रीकृत लोकतंत्र आखिर में चल कर अत्यधिक नौकरशाही को जन्म देता है और इस नौकरशाही के फलस्वरूप किसी न किसी रूप में राजनीतिक तानाशाही पैदा हो जाती है । लोकतंत्र का मूल तत्त्व मानवीय व्यक्तित्त्व की प्रतिष्ठा है । लोकतंत्रीय व्यवस्था के भीतर, स्थानीय नेतृत्त्व पैदा करने में आम जनता को मदद देकर, उसमें आत्म-विश्वास की भावना पैदा करना संभव होना चाहिए । यह तभी मुमकिन है जबकि ग्राम पंचायतों, नगरपालिका समितियों और दूसरी स्थानीय संस्थाओं को अपने सार्वजनिक कार्यों के प्रशासन की पर्याप्त जिम्मेदारी सौंप दी जाय । बेशक, इसका मतलब यह नहीं कि ग्राम पंचायतों और दूसरी स्थानीय संस्थाओं को पृथक और एकदम स्वतंत्र इकाइयां बना देना चाहिए। यद्यपि उन्हें सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा संबंधी तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में स्थानीय मामलों के प्रशासन का पर्याप्त अधिकार प्राप्त होना चाहिए, फिर भी तालुका और जिला स्तरों पर मुख्तलिफ पंचायतों के बीच निकट समन्वय उत्पन्न करने की व्यवस्था होनी चाहिए । अगर स्थानीय नेतृत्त्व को विकास योजनाएं और कार्यक्रम तैयार करने और उन्हें लागू करने की ज्यादा जिम्मेदारी सौंप दी जाय, तो इसमें संदेह नहीं कि इस तरह के विकेन्द्रित प्रशासन में क्षमता और ईमानदारी अधिक होगी । बेशक, ग्राम पंचायतों के प्रशासन में कुप्रबन्ध की, और यहां तक कि भ्रष्टाचार की भी, कुछ घटनायें सामने अवश्य आयेंगी, लेकिन इस तरह की बुराइयां कुछ स्थानों तक ही सीमित रहेंगी और सुधार की जिम्मेदारी का भार स्थानीय नेताओं के कन्धों पर होगा जिन्हें सीधे आम जनता के प्रति उत्तरदायी होना पड़ेगा ।

फिर भी, एक महत्त्वपूर्ण बात भी है जिस पर सावधानी के साथ विचार करना जरूरी है । भारत में ग्राम पंचायतों के रूप में बड़े पैमाने पर राजनीतिक और आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण का आयोजन करने के पूर्व, ग्राम समाजों में श्रेष्ठतर सामाजिक और आर्थिक समानता उत्पन्न कर लेना जरूरी होगा । इस समय भारत के ग्राम समाजों में जातीय भेदभाव व्याप्त

है, और अभी भी लोगों के बीच आर्थिक असमानता साफ-साफ और जाहिर तौर पर मौजूद है। हमारे भूमि-सुधारों की प्रगति निश्चय ही, धीमी और काफी रुकती हुई रही है। अभी भी गांव की अधिकांश जमीन पर गांव के कुछ थोड़े से लोगों का ही अधिकार कायम है। बहुत ही कम राज्य ऐसे हैं जो जमीन का अधिक उचित आधार पर फिर से वितरण करने के उद्देश्य से आराजियों पर अधिकतम सीमा निर्धारित कर सके हैं। जातीयता और सांप्रदायिकता भारत में ठोस और स्वस्थ लोकतंत्र के विकास के लिए अभी भी जबर्दस्त खतरा बनी हुई है। इस तरह की परिस्थितियों में, भारत में ग्राम पंचायतों को राजनीतिक और आर्थिक अधिकार प्रदान करने का काम बहुत ही सावधानी के साथ और सुआयोजित ढंग पर ही संपन्न होना चाहिए। किसी भी क्षेत्र में जिस हद तक सामाजिक और आर्थिक न्याय की प्रतिष्ठा हो चुकी हो, उसके अनुसार ही, वहां की ग्राम पंचायतों को ज्यादा या कम अधिकार सौंपना चाहिए। उदाहरण के लिए, ग्रामदान वाले गांवों में, जहां समूचा ग्राम समाज ग्राम सभा को जमीन संबंधी निजी मालकियत समर्पित कर देता है, ग्राम पंचायत को आर्थिक आयोजन सम्बन्धी व्यापक अधिकार सौंपा जा सकता है। ऐसे गांवों में मुश्किल से आर्थिक या सामाजिक शोषण का कोई मौका होगा। लेकिन ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां मध्यस्थों के अधिकार का भी पूर्ण रूप से उन्मूलन नहीं हुआ है, और आराजियों के आकार में बहुत अधिक असमानता मौजूद है, ग्राम पंचायतों को दूरगामी राजनीतिक और आर्थिक अधिकार सुपुर्द करना खतरनाक होगा। जैसा कि आचार्य विनोबा भावे ने अक्सर कहा है, अनुचित सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के भीतर ग्राम पंचायतें विकेन्द्रित शोषण का शक्तिशाली साधन बन सकती हैं। इसलिए, यह जरूरी है कि ग्राम पंचायतों को दो या तीन श्रेणियों में विभाजित करके ही उन्हें ज्यादा अधिकार और कर्तव्य प्रदान किये जांय। ग्रामदान वाले गांवों की पंचायतों को, निश्चय ही 'अ' श्रेणी की पंचायतें माना जा सकता है। जहां कहीं सामाजिक और आर्थिक औचित्य के लिए पर्याप्त स्वस्थ वातावरण मौजूद हो, और जहां चुनाव सर्व सम्मति या करीब-करीब सर्व सम्मति से हुए हों, वहां की पंचायतों को 'ब' श्रेणी की पंचायत माना जा सकता है। जो पंचायतें स्थानीय भेदभाव और वैमनस्य से पूर्ण हों, और जहां किसी पर्याप्त मात्रा में सामाजिक तथा आर्थिक न्याय का वातावरण न हो, उन्हें 'स' श्रेणी की पंचायतें माना जा सकता है। 'अ' श्रेणी की पंचायतों को सरकार द्वारा उस स्थान से वसूली गयी मालगुजारी का ५० प्रतिशत तक प्रदान किया जा सकता है। उन्हें ग्राम समाज से माल गुजारी वसूल करने के लिए उचित कमीशन भी दिया जा सकता है। उन्हें आर्थिक विकास संबंधी अधिकांश स्थानीय योजनायें तथा कार्यक्रम तैयार और लागू करने का कार्य सौंपा जा सकता है। 'ब' और 'स' श्रेणी की पंचायतों को उनकी योग्यता और क्षमता के अनुसार, विभिन्न अधिकार और कर्तव्य सुपुर्द किये जा सकते हैं। पंचायतों के लिए श्रेणीबद्ध अधिकारों की ऐसी योजना एक नियमित और वैज्ञानिक ढंग पर प्रशासन में दूरगामी विकेन्द्रीकरण उत्पन्न करेगी। इससे ग्राम समाजों में अपनी सामाजिक और आर्थिक दशाएं सुधारने के लिए एक स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा होगी। प्रशासन की वर्तमान प्रणाली से व्यक्तिवाद और प्रतिस्पर्द्धात्मक शत्रुता को बढ़ावा मिलता है। विकेन्द्रित प्रशासन की नयी प्रणाली से विस्तृत और अधिक स्वस्थ सहकारी तथा सामुदायिक जीवन का विकास होगा।

गान्धी जी हमसे हमेशा कहा करते थे कि वास्तविक लोकतंत्र केवल अहिंसक तथा सहकारी प्रयत्नों के वातावरण में ही जीवित रह सकता है। भारतीय संविधान भी लोकतंत्र और शांतिपूर्ण तरीकों के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। वास्तविक अहिंसा का अस्तित्त्व केवल राजनीतिक और आर्थिक संगठनों की विकेन्द्रित प्रणाली के अन्तर्गत ही कायम रह सकता है। यही वजह थी कि गांधी जी ग्राम पंचायतों और सहकारी संगठनों को बढ़ावा देने के बारे में इतने अधिक उत्सुक रहते थे। अगर हम भारत को अत्यधिक केन्द्रीकृत लोकतंत्र या अधिसत्ता संपन्न राज्य के विपरीत सच्चा अहिंसक राज्य बनाना चाहते हैं तो हमारे लिए अपनी आर्थिक और राजनीतिक सत्ता को एक सुआयोजित ढंग पर विकेन्द्रित करना बहुत ही अधिक महत्त्व रखता है। हमें पूरी आशा है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारें इस आधारभूत समस्या पर तत्परता से ध्यान देंगी और अनिवार्यता की भावना से जरूरी कदम उठायेंगी।

संक्षिप्त टिप्पणियां

सोवियत 'भू-उपग्रह'

कुछ दिनों पहले सोवियत रूस द्वारा आकाश में सफलता के साथ भू-उपग्रह छोड़ने पर सारी दुनिया आश्चर्य-चकित है। यह मानव-निर्मित उपग्रह २३ इंच की परिधि का एक पिंड है, जिसका वजन १८३ पौंड है। इसमें इस्पात के रेडियो ट्रांसमीटर लगे हुए हैं जो क्रम से १५ और ७.५ मीटर की लहरियों के आवर्त्तन पर लगातार संकेत भेजते रहते हैं। दुनिया के चारों ओर एक परिक्रमा पूरी करने में इस उपग्रह को ९६ मिनट लगते हैं। इसे छोड़ने के लिए जिस राकेट का प्रयोग किया गया है, उसकी तुलना दुनिया के सबसे बड़े जल-विद्युत पावर स्टेशन के साथ अच्छी तरह की जा सकती है। यह अनुमान लगाया गया है कि यह उपग्रह गगन-मंडल में लगभग २० वर्ष तक ठहर सकता है।

भू-उपग्रह छोड़ने की इस घटना को एक 'महान वैज्ञानिक दिलचस्पी' का विषय माना जा रहा है, और इससे वैज्ञानिक ज्ञान में बहुत अधिक योग प्राप्त होने की आशा है। यह बात जान कर बहुत ही संतोष है कि इस सोवियत उपग्रह का कोई सैनिक उद्देश्य नहीं।

प्रधान मंत्री की जापान-यात्रा

प्रधान मंत्री श्री नेहरू की जापान-यात्रा से जापान और भारत में बहुत ही दिलचस्पी और उत्साह उत्पन्न हुआ है। वहां पर श्री नेहरू का जितना शानदार स्वागत हुआ है, उतना उस देश के इतिहास में पहले कभी भी नहीं हुआ था। यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि भारत के प्रधान मंत्री का स्वागत करने में जापान के सभी राजनीतिक दल एक साथ थे। यह बात भी उल्लेखनीय है कि श्री नेहरू की यह प्रथम जापान-यात्रा थी।

श्री नेहरू ने जापानी नेताओं और वहां की जनता को भारत की विदेशी नीति समझायी और यह भी बतलाया कि भारत चीन लोकतंत्र की सरकार को मान्यता प्रदान करने के पक्ष में क्यों है। भारत और जापान के प्रधान मंत्रियों के बीच पर-माणु-शस्त्र परीक्षण पर रोक लगाने के प्रश्न पर भी वार्त्ता हुई। हमें यह भी आशा है कि भारत के प्रधान मंत्री की यह यात्रा इन दोनों महान देशों के बीच श्रेष्ठतर आर्थिक संबंध स्थापित करने में सहायक होगी।

विदेशी सहायता

सूचना है कि भारतीय वित्तमंत्री ने न्यूयार्क में पत्र प्रतिनिधियों से वार्त्ता के सिलसिले में कहा कि भारत की लड़ाई साम्यवाद के विरुद्ध लड़ाई है, और केरल राज्य के कम्युनिस्ट हाथों में जाने की एक वजह यही थी कि उस राज्य के विकास संबंधी कार्यों पर अधिक धन व्यय नहीं किया जा सका था। हम यह नहीं जानते कि वित्त मंत्री का यह कथन कितना सही या विश्वसनीय है। लेकिन विदेशों से आर्थिक सहायता पाने के बारे में भारत का दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट है। जैसा कि प्रधान मंत्री ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पिछली बैठक में स्पष्ट रूप से कहा था, भारत अपनी द्वितीय पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित करने के लिए विदेशी सहायता का स्वागत करेगा, लेकिन इस तरह की वित्तीय सहायता किसी भी प्रकार के राजनीतिक बन्धन से मुक्त होनी चाहिए और उसका स्वभाव ऋण जैसा होगा, न कि दान जैसा। इसके अलावा, यदि भारत को पर्याप्त विदेशी सहायता

नहीं मिल सकी, तो भी वह विदेशी विनिमय सम्बन्धी संकट से लड़ने और अन्त में उस पर विजय प्राप्त करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है। निराशा या पराजय की भावना का कोई प्रश्न ही नहीं।

जहां तक भारत में साम्यवाद का सम्बन्ध ह, हम इसे भारत की राजनीति में अन्तर्कालीन गुजरती हुई अवस्था मानते हैं। केरल में कम्युनिस्ट पार्टी की जीत के अनेक कारण थे। यह सोचना एकदम गलत है कि केरल में कम्युनिस्टों के हाथों में सत्ता इसलिए आयी है कि वहां के लोग साम्यवादी दर्शन में विश्वास करने लगे हैं। केरल में कम्युनिस्टों को जो मतदान प्राप्त हुआ, उसका स्वभाव बहुत कुछ भूतपूर्व शासकों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया जैसा था, न कि कम्युनिस्ट पार्टी के सिद्धांतों और नीतियों के ठोस और यथार्थ समर्थन जैसा। हमारे दिमाग में इस बात के लिए तनिक भी शक व सुबहा नहीं कि भारतीय जनसंख्या का अधिकांश और जबर्दस्त बहुमत कम्युनिस्टों के हिंसात्मक वर्ग-संघर्षपूर्ण और भौतिकवादी दर्शन के विरुद्ध है। भारत के लोग अनिवार्य रूप से शांति, अहिंसा और लोकतंत्र के सिद्धांतों में विश्वास करते हैं। भारत ने महात्मा गांधी के महान् नेतृत्व में अहिंसात्मक तरीकों द्वारा अपनी राजनीतिक आजादी हासिल की है। वह अपनी सामाजिक और आर्थिक आजादी भी मनाने-बुझाने, पारस्परिक सहायता तथा अहिंसात्मक सहकारी प्रयत्नों के तरीकों से ही हासिल करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है। आचार्य विनोबा भावे के भूदान और ग्रामदान आन्दोलनोंने साफ-साफ दिखला दिया है कि आर्थिक क्रांति के गांधीवादी या सर्वोदयी तरीके कम्युनिस्टों के वर्ग-संघर्ष और रक्तपात के तरीकों से कहीं ज्यादा प्रभावकारी हैं। अतः, भारत में साम्यवाद के विरुद्ध लड़ाई विदेशी धन की सहायता से नहीं, बल्कि गांधीवादी तरीके से भारत की लाखों करोड़ों मेहनतकश जनता के बीच उसके सामाजिक और आर्थिक कल्याण के लिए काम करने की दृढ़ प्रतिज्ञा से ही जीती जा सकती है। हमारे दिमागों में इस बात में तनिक भी संदेह नहीं रह गया है कि मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का दर्शन भारत की मिट्टी में जड़ नहीं पकड़ सकता। मार्क्स के विचार सौ वर्ष पूर्व यूरोप की तत्कालीन आर्थिक स्थितियों के अन्तर्गत बहुत महत्त्वपूर्ण थे। लेकिन मार्क्स मार्क्सवादी नहीं थे और उनके विचार को भारत में आज की स्थितियों पर लागू करने से कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। हमारे देश में केवल गांधी जी के नैतिक और आध्यात्मिक आदर्श ही सामाजिक और आर्थिक क्रांति लाने में कामयाब हो सकते हैं।

—औ० ना०

सच्चा अर्थशास्त्र

"वह अर्थशास्त्र असत्य है जो नैतिक मान्यताओं का तिरस्कार या उपेक्षा करता है। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अहिंसा के नियम के विस्तार का अर्थ है, नैतिक मान्यताओं पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध नियमित करने वाले तत्व के रूप में विचार करना।"

× × × ×

"हमारी सभ्यता की प्रतिभा को अटूट बनाये रखने में ही मेरा स्वराज्य निहित है। मैं बहुत सी नयी चीजें लिखना चाहता हूं, लेकिन वे सभी भारतीय पृष्ठभूमि पर ही लिखी जानी चाहिये।"

—महात्मा गांधी

राजस्थान में छोटी बचत आन्दोलन

श्री मोहनलाल सुखाड़िया
मुख्यमंत्री, राजस्थान

आजकल देश की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के तनाव और भार के बारे में बड़ी चर्चा है। विशेष रूप से इस योजना के प्रथम दो वर्ष देश के आयोजन के इतिहास में बहुत ही आधारभूत महत्त्व के माने जा रहे हैं। अगर हम स्थिति का विश्लेषण करें, तो उससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि यह सब कुछ तेजी से विकसित होने वाली अर्थ-व्यवस्था की प्रारम्भिक पीड़ायें हैं। जब भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देश की स्थिर और पिछड़ी अर्थ-व्यवस्था को अत्यधिक गतिशील उद्योग-प्रधान अर्थ-व्यवस्था में परिणत करना पड़ता है, तो उस पर बहुत ही अधिक तनाव का पड़ना स्वाभाविक है। हम अपने राष्ट्र की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण युग में रह रहे हैं। हमने साहस के साथ बड़े-बड़े इस्पात के कारखानों की स्थापना और अनेक बहु-उद्देश्यीय योजनाओं के कार्यान्वयन का कार्य अपने हाथों में ले रखा है, जिस पर बहुत ही अधिक व्यय होगा और जिनके पूरा होने में काफी समय लगेगा। इसके पहले कि ये कारखाने और योजनायें हमारे लिए वस्तुओं का उत्पादन करना शुरू कर दें, हमें बहुत बड़ी मात्रा में पूंजीगत वस्तुओं और अन्य जरूरी उपकरणों का आयात करना पड़ेगा। इसके लिए हमें काफी विदेशी विनिमय प्राप्त करना होगा और साथ ही, करों और ऋणों से बहुत अधिक रकम इकट्ठी करनी पड़ेगी। अतः, हमारी सभी कठिनाइयों का एकमात्र समाधान सभी मोर्चों पर अधिक से अधिक उत्पादन करने और उपभोग को कम करने में निहित है, ताकि हम अधिक से अधिक मात्रा में जरूरी वस्तुओं का निर्यात कर सकें। संक्षेप में, इस समय सबसे अधिक आवश्यकता अधिक श्रम करने और अधिक उत्पादन करने की है। यह सब केवल उसी दशा में संभव है, जबकि हम देश में उपलब्ध पूंजी से अपने उत्पादन संबंधी कार्यक्रमों की वित्तीय व्यवस्था के लिए अपनी राष्ट्रीय बचत को काफी बढ़ा लें। अतः, देश के भीतर ही पूंजी का निर्माण करना हमारी उन्नति का असली आधार है।

अतः, राष्ट्रीय बचत को हमें अपना विश्वास और धर्म बना लेना है। इस देश की एक विशेषता यह है कि गरीबी के साथ ही न्यूनतर आय-वर्गों में उपभोग संबंधी बर्बादी पायी जाती है, जबकि उच्चतर आय-वर्गों में बर्बादी से पूर्णतया अन्य दिखावे संबंधी उपभोग का प्रचलन है। जब राष्ट्र को अपने देश के निवासियों की बचत के प्रत्येक रुपये की आवश्यकता हो, तो इस प्रकार के बर्बादी वाले कार्यों के लिए कोई स्थान नहीं। हम इस तरह के व्ययों को कम करके अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं पर अत्यधिक दबाव डाले बगैर भी काफी धन बचा सकते हैं। मैं इस बात पर जोर देना चाहूँगा कि जनता से राष्ट्रीय बचत में योग देने और इस प्रकार देश के आर्थिक विकास में हिस्सा लेने की मांग करने के अलावा, बर्बादी से पूर्ण उपभोग को कम करने का एक जबर्दस्त आन्दोलन चलाना चाहिए, ताकि जनता का समर्थन प्राप्त किया जा सके और बचत के लिए एक शक्तिशाली जनमत तैयार किया जा सके। जनता की भावना को इस प्रकार जगाना चाहिए कि लोग इन व्ययों को देश की शक्ति नष्ट करने वाली राष्ट्रीय बुराई समझ कर इनसे घृणा करने लगें। अगर प्रभावशाली नेतागण इस बात की अच्छी तरह जांच करें कि हर गांव और शहर में खुशी के मौकों पर कितनी अधिक रकम बर्बाद की जाती है और नगरों में लोग विलासिता की वस्तुओं पर कितना व्यय करते हैं तो इस बात का पता चलेगा कि राष्ट्रीय योजना के लिए पर्याप्त मात्रा में साधन हासिल करना कठिन नहीं।

हमारे हृदय में सोने और उसे आभूषण, आदि के असभ्य तथा भद्दे रूप में रखने की आदत के लिए इतना अधिक सम्मान है कि यह बात व्यक्ति और राष्ट्र दोनों ही के लिए विनाशकारी सिद्ध होने लगी है। अगर आभूषण, आदि के रूप में ताले में बन्द सारा सोना राष्ट्रीय विकास के लिए उपलब्ध हो जाय, तो उससे अनेक योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था की जा सकती है। समाज कल्याण के कार्य में लगी हुई हमारे देश की महिलाओं पर यह जिम्मेदारी है कि वे इस प्रकार की बचतों को उत्पादक कार्यों के लिए प्रदान करने का दृढ़ आन्दोलन चलायें। यह बात शहरों और गांवों, दोनों पर ही, समान रूप से लागू होती है। हमें यह समझ लेना है कि हमारे राष्ट्रीय विकास का भार देश के लाखों करोड़ों लोगों को अपने कन्धे पर उठाना है, और इसे

सम्पन्न करने का सबसे अच्छा तरीका छोटी बचत योजनाओं का सहारा लेने में ही निहित है। इससे व्यक्ति को अच्छा खासा लाभ प्राप्त होता है। यह तभी संभव है, जब कि परिवार के व्यय की सभी बर्बादी वाली मदें और व्यय के ऐसे कार्यक्रम जोकि छोड़ें जा सकते हैं, खत्म कर दिये जायें और अनुत्पादक ढंग पर धन गाड़ कर रखने के सभी तरीके उन्मूलित कर दिये जायें। इसके अलावा, यह भी जरूरी है कि विलासिता और आराम की वस्तुओं पर होने वाले सभी व्यर्थ व्ययों में कटौती कर दी जाय। शहरों में भी संयम के तरीके लागू करने की काफी गुन्जाइश है।

यह सही है कि भारत के अन्य राज्यों की तुलना में राजस्थान एक अविकसित राज्य है, लेकिन इस कमी को लाभ में परिणत किया जा सकता है। हमें सभी दिशाओं से तरक्की करनी है और इसलिए हमें अपनी योजना को श्रेष्ठतर ढंग पर तैयार करना है। हमारे यहां की जनसंख्या में औसतन निम्न आय वाले लोगों का बाहुल्य है। अतः छोटी बचतों से पूंजी-निर्माण करने के लिए हमारे राज्य में अनुकूलतम वातावरण उपलब्ध है। जब तरक्की की रफ्तार तेज हो जाने और संपत्ति की असमानता मिट जाने पर अधिक से अधिक लोगों के पास संपत्ति हो जायेगी, जो कि समाजवादी ढंग के समाज में पूर्णतया स्वाभाविक है, तब पूंजी-निर्माण की दिशा में छोटी बचतों की जिम्मेदारी बहुत ही अधिक बढ़ जायेगी। राजस्थान एक ऐसा प्रदेश है, जहां के लोगों की आय औसत दर्जे की है। और यहां ऐसे लोगों की संख्या बहुत ही कम है, जिनके पास बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी केन्द्रित हो चुकी है। अतः, इस योजना के विकास के लिए यहां का वातावरण अत्यधिक अनुकूल है।

चालू वर्ष के भीतर राजस्थान के लिए छोटी बचत से ५ करोड़ रुपये प्राप्त करने का लक्ष्य निश्चित किया गया है। सभी अधिकारियों और गैर-अधिकारी लोगों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने तथा जनता के सभी वर्गों तक पहुँचने के उद्देश्य से अलग-अलग आन्दोलन चलाये जा रहे हैं। २ अक्तूबर से एक आन्दोलन चालू किया गया है जो कि राजस्थान के ११ शहरों के लिए है। इसके बाद सभी विकास खंडों और नगरपालिका वाले नगरों में बचत आन्दोलन चलाया जायेगा। मेरी अभिलाषा है कि सभी सरकारी अधिकारी तथा दूसरे लोग प्रत्येक व्यक्ति तथा संस्था तक छोटी बचत का संदेश ले जायें और उनकी बचतें इकट्ठी करने में योग दें। दरअसल, प्रत्येक सरकारी विभाग का कर्तव्य है कि वह अपने प्रभाव क्षेत्र के भीतर छोटी बचत योजना विकसित करने में योग दे, क्योंकि प्रत्येक विभाग की प्रगति और उसका विस्तार अधिकांशतः छोटी बचतों से प्राप्त धन पर ही निर्भर करता है। सभी सरकारी विभागों के दफ्तरों के प्रधानों तथा मिलों, कारखानों और दूसरे गैर-सरकारी संगठनों के अध्यक्षों का कर्तव्य है कि वे बचत-वर्गों का निर्माण करें और विभागीय एजेंट नियुक्त करें, चाहे उनके कर्मचारियों की संख्या और उनकी बचतों की मात्रा कितनी ही कम क्यों न हो, क्योंकि छोटी बचत करने वाले हजारों लाखों लोगों को नियमित रूप से इन कार्यक्रमों पर बचत करने के लिए नामजद करके ही हम शहरी क्षेत्रों के लोगों की छोटी बचतें इकट्ठी कर सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में यह कार्य पंचायतों और विकास संबंधी संस्थाओं को संपन्न करना है।

छोटी बचतों से धन इकट्ठा करने के इस महत्त्वपूर्ण कार्य में समस्त प्रशासन-व्यवस्था और गैर-सरकारी संस्थाओं का सहयोग अपेक्षित है। अब वह उचित समय आ गया है, जब कि हम अपने सम्मुख उपस्थित वर्तमान कार्यों में प्राथमिकता क्रम निश्चित कर लें। इस समय खाद्योत्पादन के बाद अगर कोई चीज महत्त्वपूर्ण है, तो वह छोटी बचत योजना का विकास ही है। राजस्थान में इन बचतों के एकत्र करने में हम जो सफलता प्राप्त करेंगे, वह इस बात का प्रतीक होगी कि हमारी योजना में जनता को विश्वास है और लोग राज्य को खुशहाल और संपन्न बनाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं।

राजस्थान एक स्थिर भविष्य की नींव डाल रहा है, जब कि भाखरा और राजस्थान नहर के लाभ प्राप्त करके यहां की मरुभूमि हरी-भरी खेती से लहलहा उठेगी। जब भाखरा और चम्बल योजनाओं से उपलब्ध बिजली का प्रयोग करके कारखाने खोल दिये जायेंगे, तो हजारों लोगों को रोजगार दिया जा सकेगा। इसके अलावा, अन्य योजनाओं की सहायता से आर्थिक और सामाजिक विकास तेज हो जायेगा। लेकिन यह सभी इस बात पर निर्भर करता है कि हम छोटी बचतों से कितनी रकम एकत्र करते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सभी सामाजिक कार्यकर्त्ता, सरकारी कर्मचारी और नागरिक इस कार्य में पूर्ण सहयोग देंगे।

श्री बिपिन बिहारी

भारत के लिए एक दीर्घकालीन कृषि-कार्यक्रम

देश की पंचवर्षीय योजनाओं के क्रमबद्ध क्रियान्वयन के फलस्वरूप, राष्ट्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत कृषि का महत्त्व परिवर्त्तित हो जायेगा, और प्रत्येक व्यक्ति के लिए संतुलित भोजन उपलब्ध करने की समस्या पर गम्भीरता से विचार करना पड़ेगा। इस लेख में आयोजन की एक पीढ़ी के बाद, अर्थात् १९७५ में, देश के लाखों-करोड़ों लोगों के लिए संतुलित भोजन की व्यवस्था करने की संभावना की जांच करने का प्रयत्न किया गया है।

जनसंख्या की वृद्धि

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट में योजना आयोग ने अनुमान लगाया है कि भारत की कुल जनसंख्या १९५१ के ३६.१३ करोड़ से बढ़ कर १९७६ में ४९.९५ करोड़ हो जायेगी।[1] जनसंख्या-गणना के कमिश्नर ने अनुमान लगाया है कि १९७६ में जनसंख्या की उच्चतर सीमा ५०.२६ करोड़ और निम्नतर सीमा ४९.३५ करोड़ होगी।[2] योजना के अन्तर्गत जनसंख्या-वृद्धि की जो कल्पना की गयी है, वह जनसंख्या-गणना कमिश्नर द्वारा दी गयी सीमाओं के मध्य विन्दु पर आती है, और इस मान्यता पर आधारित है कि सामान्य प्रजनन दर १९५१-५५ के ०.१८५ से क्रमशः घटती हुई १९७१-७५ में ०.१७० हो जायेगी और मृत्यु दर में हर पांचवें वर्ष क्रमशः १ प्रतिशत की वृद्धि होगी। आने वाली दशाब्दियों में जनसंख्या-वृद्धि की वास्तविक दर इस अनुमान से भिन्न हो सकती है। फिर भी, योजना आयोग ने जनसंख्या वृद्धि का जो नमूना स्वीकार किया है, उसे ही इस लेख में आधार बनाया गया है।

तालिका १

जनसंख्या का अनुमान (करोड़ में)

वर्ष	जनगणना कमिश्नर का अनुमान		द्वितीय योजना की रिपोर्ट
	उच्चतर सीमा	निम्नतर सीमा	में प्रयुक्त अनुमान
१९५१	३६.१०	३६.१३	३६.१३
१९५६	(३८.६६)	(३८.४५)	३८.४०
१९६१	४१.१९	४०.७७	४०.८०
१९६६	(४४.०८)	(४३.३१)	४३.४१
१९७१	४६.९७	४५.८५	४६.४९
१९७६	(५०.२६)	४९.३५	४९.९५
१९८१	५३.५५	५२.७६	५३.५५

खाद्य-शक्ति की आवश्यक मात्रा

सवाल यह उठता है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए कितने भोजन की आवश्यकता है। खाद्य-तत्त्व के विशेषज्ञों ने सुझाव दिया है कि व्यक्ति जो भोजन करता है, वह देश के लिए आवश्यक खाद्य-पदार्थों की मात्रा का अनुमान लगाने के लिए संतोषप्रद आधार नहीं। अगर प्रत्येक व्यक्ति के लिए कैलरियों की आवश्यक मात्रा की व्यवस्था हो जाय, तो उसे एक संतोषजनक स्थिति कह सकते हैं। किन्तु खाद्य-तत्त्व संबंधी ये आवश्यकताएं व्यक्ति की अवस्था, लिंग और कार्य के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं।

---

[1] **द्वितीय पंचवर्षीय योजना**, योजना आयोग, नई दिल्ली, पृष्ठ ११।

[2] **सेन्सस आफ इण्डिया**, १९५१, खण्ड १, भाग १ अ, पृष्ठ १७९।

डा. एकरायड ने अनुमान लगाया है कि एक प्रौढ़ स्त्री एक प्रौढ़ पुरुष के ०.८ गुने के बराबर है, जबकि १५ वर्ष से नीचे की अवस्था वाले बच्चे और बच्चियां प्रौढ़ पुरुष के ०.७ गुने के बराबर होती हैं।[3] सन् १९७६ के लिए पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के अनुपात का अनुमान इस तरह लगाया गया है कि उस समय १५.८५ करोड़ पुरुष तथा १५.०१ करोड़ स्त्रियां १५ वर्ष से ऊपर की अवस्था वाली होंगी, जबकि १५ वर्ष से कम अवस्था वाले बच्चों की संख्या १९.०९ करोड़ होगी। इस प्रकार, १९७५ में कुल जनसंख्या ४१.२२ करोड़ प्रौढ़ों के बराबर होगी।

तालिका २

१९५१-७५ की अवधि में भारत की कुल जनसंख्या की प्रौढ़ मात्रा (करोड़ में)

वर्ष	कुल जनसंख्या	पुरुष (१५ वर्ष से ऊपर के)	स्त्रियां (१५ वर्ष से ऊपर की)	बच्चे (१५ वर्ष से कम)	कुल जनसंख्या प्रौढ़ों के रूप में
१९५१	३६.१३	११.७६	११.०१	१३.३६	२९.९२
१९५६	३८.११	१२.३३	११.५७	१४.२१	३१.५४
१९६१	४०.६०	१३.०५	१२.३०	१५.२५	३३.५७
१९६६	४३.४२	१३.५५	१२.८८	१६.९८	३५.७४
१९७१	४६.४९	१४.५७	१३.८४	१८.०८	३८.३०
१९७६	४९.९५	१५.८५	१५.०१	१९.०९	४१.२२

अधिक काम न करने वाले श्रमिक, जैसे घर में रहने वाली स्त्री, की शक्ति संबंधी आवश्यकता का अनुमान २,१०० कैलरी प्रति दिन लगाया गया है, जबकि एक क्लर्क या अध्यापक को २,६०० कैलरी, और मध्यम रूप से क्रियाशील श्रमिक, जैसे डाक्टर, इंजीनियर, दर्जी, आदि के लिए ३,००० कैलरी प्रति दिन आवश्यक है। उद्योग या खेती या बागान में काम करने वाले मजदूरों के लिए, जो कि बहुत ही अधिक काम करते हैं, प्रति दिन ३,६०० कैलरी आवश्यक है।[4] पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक भारत में पेशेवर वितरण के दीर्घकालीन अनुमान में बहुत से तत्त्व शामिल होंगे। किन्तु उनके निर्धारण की समस्या इस लेख का विषय नहीं है। इसलिए, इस लेख में भारत के लिए स्वस्थ भोजन संबंधी आवश्यक खाद्य-शक्ति का अनुमान २,८६० कैलरी प्रति दिन माना गया है, जिसे डा. एकरायड ने भी स्वीकार किया है।

भारत के लिए भोजन के एक राष्ट्रीय मानदंड के निर्माण में एक दूसरी कठिनाई भोजन संबंधी आदतों में अन्तः प्रदेशिक भिन्नता का होना भी है। एक औसत आसामी के भोजन में ८० प्रतिशत चावल होता है, जबकि एक औसत पंजाबी के भोजन में वजन से ७५ फीसदी गेहूं होता है।[5] देश के भिन्न-भिन्न राज्यों के भोजन के स्वरूप में इन विभिन्नताओं के बावजूद, कुछ समान विशेषतायें भी पायी जाती हैं। भारत के लोग अधिकांशतः शाकाहारी और अन्नाहारी होते हैं। उनके भोजन में संरक्षक खाद्य-पदार्थों की कमी होती है। भारत के लोगों के भोजन में औसत कैलरी की मात्रा बहुत ही कम होती है। अनुमान लगाया गया है कि १९४८-४९ में भारत में प्रति दिन प्रति व्यक्ति सिर्फ १,६२१ कैलरियां उपलब्ध थीं, जबकि न्यूजीलैण्ड में इनकी मात्रा ३,२८१, संयुक्त राज्य अमरीका में ३,१२८ और कनाडा में ३,०६२ थी। भारतीयों की तुलना में जापानियों और बर्मियों का भोजन भी श्रेष्ठतर होता है।

---

[3] डा. एकरायड; प्रभाकर सेन द्वारा लिखित **फूड प्राबलम इन इण्डिया**, खोज परिषद, कलकत्ता, पृष्ठ २ में उद्धृत।

[4] **दी रौड टू गुड न्यूट्रीशन**, एम. वी. राधाकृष्ण राव, बम्बई, १९५१, पृष्ठ ११।

[5] **दी फूड प्राब्लम इन इण्डिया**, प्रभाकर सेन, खोज परिषद, कलकत्ता, पृष्ठ १२।

सन्तुलित भोजन

इन कठिनाइयों के बावजूद, डा. एकरायड ने एक संतुलित भोजन का ढांचा तैयार किया है,जो भारत में अच्छे स्वास्थ्य को कायम रखने के लिए पर्याप्त होगा। उन्होंने अनुमान लगाया है कि भारत में प्रामाणिक संतुलित भोजन के अन्तर्गत १४ औंस अनाज, ३ औंस दाल, ४ औंस हरी पत्तों वाली सब्जियां, ३ औंस जड़ों वाली सब्जियां, ३ औंस अन्य सब्जियां, ३ औंस फल, १० औंस दूध, २ औंस चीनी और गुड़, २ औंस वनस्पति तेल, घी, आदि, ३ औंस मछली और गोश्त, तथा एक अंडा प्रति दिन शामिल होने चाहिए।[६] इस भोजन में २,८६० कैलरी प्रति दिन की व्यवस्था की गयी है। डा. जे. सी. कुमारप्पा ने भी संतुलित भोजन का एक मानदंड तैयार किया है, जिससे भी इतनी ही मात्रा में कैलरियां प्राप्त होती हैं। लेकिन, इसकी विशेषता यह है कि यह भारतीय लोगों की भोजन की आदतों से मिलती-जुलती है, अर्थात् इसमें शाकाहार और अन्नाहार की अधिकता है। उन्होंने सुझाव दिया है कि भारतीय संतुलित भोजन में १६ औंस अनाज, २ औंस दाल, ८ औंस सब्जी, ४ औंस आलू और कन्द, १२ औंस दूध, २ औंस गुड़, ४ औंस फल, १ औंस मूंगफली, आधा औंस तेल और आधा औंस घी शामिल होना चाहिए। मांसाहारियों के लिए डा. कुमारप्पा ने सुझाव दिया है कि ६ औंस दूध की बजाय ४ औंस मछली या मांस और १ अंडा लिया जा सकता है।[७] चूंकि इन दोनों अनुमानों में कोई खास अन्तर नहीं है, बल्कि डा. कुमारप्पा के अनुमान में भारतीय स्थिति की विशेषता को ध्यान में रखा गया है, इसलिए डा. कुमारप्पा के अनुमान को ही इस लेख में आधार माना गया है।

१९७५ में भोजन सम्बन्धी आवश्यकता

यदि ४१.२२ करोड़ प्रौढ़ों के लिए, जो कि ४९.९५ करोड़ व्यक्तियों के बराबर हैं, संतुलित भोजन की व्यवस्था करनी है तो देश को उपभोग के लिए ६.७१ करोड़ टन खाद्यान्न, ८४ लाख टन दाल, ५.०४ करोड़ टन दूध, ५.०४ करोड़ टन सब्जी, और १ करोड़ ६८ लाख टन फल की जरूरत पड़ेगी। इतनी मात्रा में खाद्य पदार्थ के उत्पादन के आयोजन के लिए बीज, अनाज की बर्बादी, आदि संबंधी जरूरतों को भी ध्यान में रखना पड़ेगा। निम्नलिखित तालिका में समूचे देश के लिए खाद्य संबंधी आवश्यकताओं और खाद्यान्न उत्पन्न करने के लिए आवश्यक क्षेत्रफल का अनुमान प्रस्तुत किया गया है। इस तालिका के निर्माण में यह मान्यता सामने रखी गयी है कि कृषि उत्पादन की प्राविधिक स्थिति वर्तमान स्तर पर ही कायम रहेगी।

तालिका ३

१९७५ में कुल खाद्यान्न-आवश्यकता तथा उसके उत्पादन के लिए जरूरी भूमि का क्षेत्रफल

खाद्यपदार्थ	दैनिक आवश्यकता	प्रतिदिन कैलरी की पूर्त्ति	४१.२२ करोड़ प्रौढ़ों की खाद्यान्न आवश्यकता (करोड़ टन में)	कुल आवश्यकत (करोड़ टन में)	भूमि की आवश्यकता (करोड़ एकड़ में)
अनाज	१६	१,६००	६.७१	७.७२	३२.८५
दाल	२	२००	०.८४	०.९७	५.१८
गुड़	२	२००	०.८४	०.९७	०.७८
मूंगफलियां	१	१४५	०.४२	०.४८	१.६०
तेल	०.५	—	०.२१	०.२४	३.००
घी	०.५	२५५	०.२१	०.२४	१.९४
दूध	१२	२४०	५.०४	५.८०	३.२२
तरकारी	८	४८	३.३६	३.८६	०.९७
आलू और कंद	४	१००	१.६८	१.९३	०.९४
फल	४	५२	१.६८	१.९३	०.९७

---

[६] न्यूट्रीटिव वैल्यू आफ इण्डियन फूड्स, डब्ल्यू. आर. एकरायड, पृष्ठ १६।

[७] अवर फूड प्राब्लम, जे. सी. कुमारप्पा, मगनवाड़ी, वर्धा, १९४९, पृष्ठ ४१।

१९७५ में भूमि का उपयोग

भारत का कृषि-कार्यक्रम यहां के लोगों की खाद्य संबंधी आवश्यकता पर ही निर्भर नहीं होगा, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करेगा कि व्यापारिक फसलें पैदा करने के लिए कितनी जमीन की जरूरत पड़ेगी। भविष्य में किसी समय कितनी व्यापारिक फसलों की आवश्यकता पड़ेगी, इसका अनुमान लगाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। देश के औद्योगीकरण के विकास की प्रगति तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति—ये दोनों ही व्यापारिक फसलों की मांग निर्धारित करती हैं। स्पष्टतः भारत में इन फसलों की मांग भविष्य में बढ़ जायेगी। भारत में भूमि के उपयोग संबंधी आंकड़ों के पर्यवेक्षण से पता चलता है कि १९५०-५१ में लगभग ७७.९ प्रतिशत कुल खेती की गयी जमीन पर खाद्यान्न फसलें बोयी गई थीं, १६.८ प्रतिशत पर व्यापारिक फसलें बोयी गयीं थीं (जिसमें से १.३ प्रतिशत पर गन्ना और ९.८ प्रतिशत पर तिलहन की खेती हुई थी), और खेती वाली जमीन के १.२ प्रतिशत पर बगान, मसाले, आदि की खेती हुई थी। चारे तथा दूसरी फसलों की खेती ४.२ प्रतिशत भूमि पर हुई थी। बहुत ही मोटे अनुमान के अनुसार, १९७५ तक व्यापारिक फसलों के क्षेत्रफल में २० प्रतिशत की वृद्धि होगी। इस प्रकार एक पीढ़ी की अवधि में लगभग ६१ करोड़ एकड़ जमीन की जरूरत पड़ेगी। देश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल ८१.१ करोड़ एकड़ है, जिसमें से ७२.२ करोड़ एकड़ के संबंध में विस्तृत आंकड़े उपलब्ध हैं। २५.५ करोड़ एकड़ खेती के लिए उपलब्ध नहीं है। और ८६.७ करोड़ एकड़ में से जिस पर खेती की जा सकती है, १९५४-५५ में सिर्फ ३४.३ करोड़ एकड़ पर खेती की गयी।[८] अतः, यदि खेती योग्य सारी जमीन पर खेती होने लगे, तो भी व्यापारिक और खाद्यान्न फसलों संबंधी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए १४.३ करोड़ एकड़ जमीन की कमी पड़ेगी। सिर्फ खाद्यान्न फसलों सम्बन्धी आवश्यकता के लिए ही खेती के लिए इस समय उपलब्ध जमीन से ४.५ करोड़ एकड़ अधिक जमीन की जरूरत पड़ेगी। खेती की गयी जमीन से तुलना करने पर पता चलता है कि व्यापारिक और खाद्यान्न फसलों की सम्मिलित आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए २६.७ करोड़ एकड़ जमीन कम पड़ेगी। सिर्फ खाद्यान्न फसलों के लिए ही १६.९ करोड़ एकड़ अधिक जमीन आवश्यक होगी। इन अनुमानों में पशुपालन सम्बन्धी जरूरतों को भी सामने रखा गया है।

तालिका ४

१९५०-५१ और १९७५-७६ में भूमि के उपयोग का स्वरूप

फसलें	१९५०-५१		१९७५-७६	
	करोड़ एकड़	कुल फसल वाली जमीन का प्रतिशत	करोड़ एकड़	कुल फसल वाली जमीन का प्रतिशत
अनाज	१९.३०४	६०.९	३२.८५	५३.८
दाल (चना सहित)	४.७१८	१४.९	५.१८	८.५
फल और सब्जी	०.५००	१.६	२.६८	४.४
गन्ना	०.४२१	१.३	०.७८	१.३
चारा	१.११७	३.५	५.१६	८.५
व्यापारिक फसल और ब.गान (गन्ना को छोड़ कर)	५.२५६	१६.६	१२.१५	१.९९
विविध	०.३९२	१.२	२.२०	३.६
कुल	३१.७०८	१००	६१.१०	१००

---

८. सेकेण्ड फाइव इयर प्लान, पृष्ठ ३२२।

भारत में कृषि-उत्पादकता बढ़ाने की बहुत अधिक गुंजाइश है। कुछ प्रमुख फसलों के प्रति एकड़ औसत उत्पादन की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना से पता चलता है कि भारत की मिट्टी की प्रति एकड़ उपज को बढ़ाने की बहुत अधिक संभावना है। १९४९ में भारत की एक एकड़ जमीन पर सिर्फ ५८४ पौंड गेहूं पैदा किया गया था, जबकि ब्रिटेन में इसकी मात्रा २,५१६ पौंड और मिस्र में १,७४३ पौंड, फ्रांस में १,७०४ और आस्ट्रेलिया में १,०४४ पौंड थी। इसी प्रकार, चावल के लिए आस्ट्रेलिया की उत्पादन-क्षमता भारत की अपेक्षा चार गुने से अधिक है, जबकि जापान और मिस्र की उपज तीन गुने से अधिक है। भारत में खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए उन सभी तत्वों का उपयोग करना पड़ेगा, जो मिट्टी की उत्पादकता बढ़ाने में योग देते हैं। खेतिहरों को पर्याप्त ऋण संबंधी सुविधा प्रदान करने के अलावा, यातायात का विस्तार करना पड़ेगा और खेती संबंधी स्थिति के सुधार के लिए दूसरे बहुत से उपाय अपनाने पड़ेंगे। मिट्टी की अक्षमता दूर करने के लिए सिंचाई, खाद, अच्छे बीज, खेती के अच्छे तरीके, जमीन के पुनर्गठन, आदि की जरूरत पड़ेगी। दरअसल, खेती में क्षमतापूर्ण उत्पादन हासिल करने के लिए विभिन्न साधनों को इस प्रकार संयुक्त करना पड़ेगा कि उनसे अनुकूलतम परिणाम हासिल हो सकें।

सिंचाई की सुविधाओं का प्रभाव

भारत में खेती वाली जमीन के क्षेत्रफल को बढ़ाने की संभावना बहुत ही कम है, लेकिन सिंचाई की सुविधाएं, खाद, आदि दूसरे तत्त्वों का प्रयोग करके मिट्टी की उर्वरता को बहुत काफी बढ़ाया जा सकता है। सन् १९७५-७६ तक १५ करोड़ एकड़ जमीन पर सिंचाई की सुविधाएं प्रदान कर दी जायेंगी; जिसमें से पहली पंचवर्षीय योजना शुरू होने से पहले लगभग एक तिहाई क्षेत्र पर ही सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। इसलिए, १९५० और १९७५ की अवधि के भीतर लगभग १० करोड़ एकड़ अतिरिक्त जमीन पर सिंचाई होने लगेगी। सिंचाई की सुविधाओं से खाद्यान्नों की उपज में प्रति एकड़ ०.२२१ से ०.२२५ टन की वृद्धि हो सकती है। इस प्रकार, सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि होने के फलस्वरूप २ करोड़ टन अतिरिक्त खाद्यान्न प्राप्त हो जायेगा। यह ८ करोड़ एकड़ अतिरिक्त जमीन के योग बराबर है।

खाद का प्रयोग

योजना आयोग के उपाध्यक्ष ने बतलाया है कि प्रत्येक एकड़ जमीन पर उर्वरक और रासायनिक खादों तथा हरी खादों की पूर्ति द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक होने लगेगी। यदि यह कार्यक्रम देश की कुल कृषि योग्य जमीन (४१.७ करोड़ एकड़) पर पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक भी लागू हो जाय, तो प्रति एकड़ ५७.५ पौंड पौधे संबंधी खाद्यतत्त्व की औसत आवश्यकता के आधार पर लगभग १ करोड़ २० लाख टन उर्वरक की आवश्यकता पड़ेगी। यदि यह योजना केवल वर्तमान कृषिगत जमीन (३४.३ करोड़ एकड़) पर ही लागू की जाय, तो देश भर के लिए लगभग ९० लाख टन उर्वरक की जरूरत पड़ेगी। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए रासायनिक उर्वरक के उत्पादन में बहुत ही तेजी से वृद्धि करनी पड़ेगी। यदि रासायनिक उर्वरक की मात्रा को एक पीढ़ी के भीतर १० लाख टन से बढ़ा कर ९० लाख टन करना पड़ेगा, तो निश्चय ही यह एक कठिन कार्य साबित होगा, क्योंकि इसके लिए दुनिया भर में जितना उत्पादन होता है, उसके आधे से कुछ ही कम मात्रा में उर्वरक उत्पन्न करने का आयोजन करना पड़ेगा। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक केवल १,४५० हजार टन अमोनियम सल्फेट वाले उर्वरक का उत्पादन होने की आशा है, जिसका मतलब यह है कि १९५१-६१ की अवधि के भीतर नाइट्रोजन वाले उर्वरक का अतिरिक्त उत्पादन लगभग १,४०४ हजार टन होगा। द्वितीय योजना की अवधि में ६६५ हजार टन फास्फेट वाला उर्वरक उत्पन्न होने लगेगा। सन् १९७५ तक रासायनिक उर्वरक के उत्पादन का महत्त्व बहुत बढ़ जायेगा और यह कल्पना करना उचित है कि इसका उत्पादन वर्तमान क्षमता से २.५ गुना अधिक हो जायेगा।

प्रयोग से देखा गया है कि नाइट्रोजन वाले उर्वरक, जैसे अमोनियम सल्फेट के एक पौंड के प्रयोग से ७.३ पौंड गेहूँ उत्पन्न होता है, जबकि फास्फेट वाले उर्वरक के प्रति अतिरिक्त पौंड के फलस्वरूप उपज में ५.१ पौंड की वृद्धि होती है। निस्संदेह, आंकड़े संबंधी परिणाम काफी ऊँचे हैं, क्योंकि आम तौर पर खेती करने वाले १ पौंड नाइट्रोजन उर्वरक से २ पौंड अनाज की उपज

तथा एक पौंड फास्फेट उर्वरक से १ पौंड अनाज की उपज की अपेक्षा करते हैं। किन्तु भिन्न-भिन्न फसलों की उपज भिन्न-भिन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए, धान की उपज में ३ से ५ गुने तक तथा आलू की उपज में ८ से १० गुने तक वृद्धि हो सकती है। हम अपने अनुमान के लिए यह मान सकते हैं कि नाइट्रोजन उर्वरक से ५ गुनी और फास्फेट उर्वरक से ३ गुनी उपज होगी। इस आधार पर १९७५ के अन्त में उपलब्ध रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के फलस्वरूप खेती की उपज में २ करोड़ ३० लाख टन अतिरिक्त उपज की वृद्धि होगी। इस प्रकार, रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के परिणामस्वरूप उपज की वृद्धि मोटे तौर पर ९ करोड़ २० लाख एकड़ जमीन की उपज के बराबर होगी।

सुधरे बीज तथा अन्य साधन

आजकल किसानों को सुधरे बीज अधिक से अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगे हैं। यह भी आशा है कि सामुदायिक विकास खंडों और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं द्वारा जो सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं, उनसे किसानों को इस दिशा में पर्याप्त सहायता प्राप्त होगी। यद्यपि यह आशा की गयी है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक प्रत्येक गांव सामुदायिक विकास या राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंड के अंचल में ला दिया जायेगा, फिर भी यदि हम यह मान लें कि पांचवीं योजना के अन्त तक मौजूदा जमीन के सिर्फ एक चौथाई हिस्से में सुधरे बीजों का प्रयोग होने लगेगा, तो उससे ही खेती की पैदावार में इतनी वृद्धि होगी जो कि १.५ करोड़ एकड़ अतिरिक्त जमीन की पैदावार के बराबर होगी। आशा यह है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में १५ लाख एकड़ जमीन को नये सिरे से कृषि योग्य बनाया जायेगा। यदि हम मान लें कि तीसरी और चौथी योजनाओं के अन्तर्गत ६० लाख एकड़ जमीन नये सिरे से कृषि योग्य बना ली जायेगी और पांचवीं पंचवर्षीय योजना के भीतर ३५ लाख एकड़ और नयी जमीन खेती के अन्तर्गत ला दी जायेगी तो १९७५ तक कुल लगभग १ करोड़ १० लाख एकड़ जमीन नये सिरे से कृषि योग्य बना ली जायेगी। यदि इस नयी जमीन पर खेती के सुधरे तरीके लागू किये जायें, और यदि यह मान लिया जाय कि इस तरह की नयी जमीन में प्रति एकड़ ०.३३ टन उपज होगी, तो इस मद से १ करोड़ ५० लाख एकड़ अतिरिक्त क्षेत्रफल प्राप्त होने की आशा की जा सकती है।

इसके अलावा, खेती के तरीकों और भूमि-प्रबन्ध में सुधार करके खेती की उत्पादकता बहुत अधिक बढ़ायी जा सकती है। यह सोचना अत्यधिक अभिलाषापूर्ण नहीं कहा जा सकता कि अगले १५ वर्षों के भीतर देश की कुल खेती वाली जमीन के आधे हिस्से में इस तरह का सुधार लागू हो जायगा। ऐसा हो जाने पर उत्पादन-क्षमता में इतनी अधिक वृद्धि होगी, जो ६ करोड़ ५० लाख एकड़ अतिरिक्त जमीन के योग के बराबर होगी। इसी प्रकार, अतिरिक्त सिंचाई की सुविधाओं की व्यवस्था से ८ करोड़ एकड़, रासायनिक उर्वरकों से ९.२ करोड़ एकड़, सुधरे बीजों से १.५ करोड़ एकड़, खेती के संगठन और प्रबन्ध में सुधार करने से ६.५ करोड़ एकड़ तथा नयी जमीन खेती योग्य बनाने से १.५ करोड़ एकड़ अतिरिक्त भूमि के योग का लाभ होगा, जिन्हें जोड़ देने पर कुल २६ करोड़ ७० लाख एकड़ अतिरिक्त जमीन प्राप्त हो जाती है। यह क्षेत्रफल उतनी जमीन के बराबर है, जो कि १९७५ के अन्त तक व्यापारिक और खाद्य संबंधी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए जरूरी है।

आगामी वर्षों में प्रमुख समस्याएं होंगी :(अ) जमीन की उपज में वृद्धि, और (ब) जमीन के उपयोग का एक ऐसा नमूना तैयार करना जो कि संतुलित भोजन के लिए जरूरी खाद्य पदार्थों के उत्पादन के लिए पर्याप्त हो। आने वाले वर्षों में फल और सब्जी की खेती का महत्त्व बढ़ जायेगा। सन् १९७५ तक अकेले फलों के लिए ही लगभग १ करोड़ एकड़ जमीन की जरूरत पड़ेगी। हरी सब्जियों के लिए भी लगभग इतनी ही जमीन की जरूरत होगी, जबकि आलू के लिए ७० लाख एकड़ से अधिक जमीन की आवश्यकता पड़ेगी। इस अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अगले १५-२० वर्षों के भीतर बहुत सी फसलों की खेती वाली जमीन बढ़ाने पर जोर देना पड़ेगा। अनाज की फसल पैदा करने के लिए ४.५ करोड़ एकड़ अतिरिक्त जमीन चाहिए। इसी प्रकार, फल और सब्जी के लिए २.१ करोड़ एकड़, चारों के लिए ४ करोड़ एकड़ और व्यापारिक फसलों के लिए ७ करोड़ एकड़ क्षेत्र की जरूरत पड़ेगी। विविध वर्ग के अन्तर्गत आने वाली फसलों के लिए भी तीन गुने रकबे की जरूरत पड़ेगी।

सुनील गुहा

'गैट' अधिवेशन और प्रस्तावित यूरोपीय बाजार

लगभग एक दशाब्दी पूर्व, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को शुल्क-पद्धति (टैरिफ) और नियंत्रणों से मुक्त करने के उद्देश्य से ३२ राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ था, जिनमें भारत और वर्तमान यूरोपीय सामान्य-बाजार योजना के कुछ प्रतिपादक देश भी शामिल थे। यहीं से 'व्यापार और शुल्क-पद्धति संबंधी सामान्य-समझौते' (गैट) का सूत्रपात हुआ। कुछ समय तक इस समझौते ने अनेक-पक्षीय व्यापार के विकास की दिशा में अच्छी प्रगति की, लेकिन दुर्भाग्यवश उसके तुरन्त बाद कुछ ऐसी स्थितियां पैदा हुई, जिनसे इस बात का संकेत मिला कि 'सामान्य समझौते' के कुछ अभिभावक राष्ट्र नियंत्रित व्यापार को ज्यादा तरजीह देते हैं। वस्तुतः, इसके संदर्भ में ही 'सामान्य-समझौते' के वर्तमान अधिवेशन का विशेष महत्व है। यह अधिवेशन १७ अक्तूबर से जिनेवा में हो रहा है और ६ हफ्ते तक चलने वाला है। इसके कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रस्तावित यूरोपीय सामान्य-बाजार योजना से सम्बद्ध अधिमान-प्राप्त व्यापार-प्रणाली पर विस्तृत विचार-विमर्श करना भी शामिल है। निस्संदेह, यह अधिवेशन भुगतान-सन्तुलन संबंधी कारणों से सदस्य राष्ट्रों द्वारा लगाये गये आयात-प्रतिबन्धों पर तथा आयात कर संबंधी सुविधाओं की सूचियों में समंजन करने के प्रश्न पर भी विचार करेगा। लेकिन, संसार तो यह जानने के लिये अत्यधिक उत्सुक है कि प्रस्तावित 'यूरोपीय बाजार' के संबंध में 'सामान्य-समझौते' की प्रतिक्रिया क्या है और इस बाजार के प्रतिपादक लोग इसके पक्ष में कौन सी दलीलें पेश करते हैं। व्यापार और शुल्क-पद्धति संबंधी सामान्य-समझौते का सदस्य होने के नाते भारत पर भी यह जिम्मेदारी है कि वह देखे कि समझौते की अन्तर्भूत भावना को सुरक्षित रखा जा रहा है और अनेक-पक्षीय व्यापार के रास्ते में कोई रुकावट नहीं उत्पन्न हो रही है। यूरोपीय बाजार में शामिल ६ देशों के साथ भारत का व्यापारिक संबंध कायम है; और जहां तक यूरोपीय सामान्य-बाजार योजना में उसके प्रतिपादक देशों के एशियाई-अफ्रीकी उपनिवेशों को शामिल करने का प्रस्ताव है, वहां तक भारत का उसमें राजनीतिक स्वार्थ भी है, क्योंकि यह बात भारत के उपनिवेश-विरोधी नीति के विरुद्ध है। जिन सम्भाव्य दिशाओं में भारत यूरोपीय बाजार योजना का विरोध कर सकता है, उन पर विचार करने के पूर्व इस बात पर प्रकाश डालना उचित ह कि यह योजना कैसे अंकुरित हुई और इसके उद्देश्य क्या हैं।

यूरोपीय सामान्य-बाजार योजना

२५ मार्च १९५७ को रोम में 'यूरोपीय कोयला-इस्पात समुदाय' के ६ सदस्य राष्ट्रों—पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, इटली, बेल्जियम, नीदरलैंड और लक्सेमबर्ग— ने एक संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये, जिसमें एक 'यूरोपीय आर्थिक समुदाय' की स्थापना की व्यवस्था की गयी थी। इनमें से अधिकांश देशों ने संधि-पत्र को प्रमाणित कर दिया है, और आशा है कि जिन्होंने अभी तक ऐसा नहीं किया है वे भी १९५७ के अन्त तक उसे प्रमाणित कर देंगे। यदि ऐसा हो गया तो इससे उन वार्ताओं और लिखा-पढ़ियों को चरम परिणति प्राप्त हो जायगी, जो जून १९५५ में मेसिना में हुई विदेश मंत्रियों की बैठक से प्रारंभ हुई थी। यह बैठक 'यूरोपीय कोयला-इस्पात समुदाय' के ढंग पर यूरोपीय आर्थिक समन्वय के विस्तार के लिये बेनेलक्स (बेल्जियम, नीदरलैंड, लक्सेमबर्ग) देशों द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव पर विचार करने के लिये आयोजित की गयी थी। रोम की संधि में १० से १५ वर्ष की एक अन्तर्कालीन अवधि की व्यवस्था की गयी है, जिसके भीतर यूरोपीय सामान्य-बाजार अपने स्वाभाविक आधार के साथ स्थापित हो जायगा। यद्यपि इस योजना के उद्देश्यों की व्याख्या अभी सामान्य रूप में और अस्पष्ट शब्दों में की गयी है, किन्तु मोटे तौर पर उनका आशय निम्नलिखित है :

(१) तत्संबंधी क्षेत्र के भीतर १२ से १५ वर्ष की अवधि में व्यापारिक अवरोधों, जैसे सीमा शुल्क, परिमाण संबंधी रुकावटों, चलार्थ संबंधी प्रतिबन्धों, प्रशासनिक बाधाओं, यातायात महसूलोंमें सीमा संबंधी कठिनाइयों, आदि का उन्मूलन और विदेशी व्यापार संबंधी सामान्य नीतियों तथा शुल्क-पद्धति की स्थापना।

(२) आणविक शक्ति, कृषि और यातायात के संबंध में सामान्य नीतियों का निर्माण।

(३) एकाधिकारी रिवाजों और व्यवहारों का क्रमशः उन्मूलन।

(४) राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक नीतियों का समन्वय।

(५) श्रम की गतिशीलता को प्रोत्साहन और एक सामान्य श्रम-बाजार का निर्माण।

(६) अर्द्ध-विकसित क्षेत्रों में सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक विकास संबंधी कार्यों की वित्तीय व्यवस्था में पारस्परिक सहायता।

(७) विशेष शर्तों पर समुद्र पार के स्वतंत्र देशों और प्रदेशों का संगठन और उनके विकास के लिये एक निधि की व्यवस्था।

इस प्रकार, हम देखेंगे कि पश्चिमी यूरोपीय देशों द्वारा प्रस्तावित संयुक्त कार्यवाही का उद्देश्य किसी आकस्मिक संकट का सामना करना नहीं, बल्कि क्रमशः क्षेत्रीय सम्पन्नता और बाहुल्य की स्थिति पैदा करना ही है। यह क्षेत्रीय सम्पन्नता किस प्रकार स्थापित होगी तथा इस क्षेत्र की सापेक्ष सम्पन्नता का (और बाहर वाले देशों के माल पर यह क्षेत्र जो शुल्क लगायेगा, उसका) प्रभाव गैर-सदस्य देशों के विदेशी व्यापार पर क्या होगा, इसका अनुमान निम्नलिखित सम्भाव्य प्रवृत्तियों से लगाया जा सकता है।

'यूरोपीय बाजार' क्षेत्र की सम्भाव्य प्रवृत्तियां

सामान्य तौर पर यह बात कही जा सकती है कि इन देशों में (अ) तुलनात्मक लागतों के अनुसार अन्तर्यूरोपीय विशिष्टीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न औद्योगिक पैमाने की किफायतों, और (ब) अपेक्षाकृत अधिक प्रतियोगिता होने तथा उद्योग के ऊंची लागतों वाले क्षेत्रों के उन्मूलन के फलस्वरूप लागतों के घट जाने के कारण वास्तविक आय क्रमशः बढ़ जायगी। शुल्क-पद्धति तथा अन्य व्यापारिक प्रतिबन्धों को हटा देने का प्रत्यक्ष फल यह होगा कि मूल्यों का सामान्य स्तर घट जायगा और अधिकांश वस्तुओं का उत्पादन बढ़ जायगा। सामान्य-बाजार योजना में शामिल ६ देशों में संरक्षण प्राप्त वस्तुओं का औसत मूल्य प्रारम्भ में किस हद तक कम होगा, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि कृत्रिम प्रतिबन्धों के फलस्वरूप इन देशों के बीच इस समय मूल्य में कितनी असमानता है और उन वस्तुओं की पूर्ति की अल्पकालीन लोचशीलता क्या है। इसी प्रकार, उत्पादन में होने वाली वृद्धि तथा मूल्य में होने वाले अंतिम परिवर्तन मांग की लोचशीलता पर, और तत्संबंधी उद्योगों की दीर्घकालीन लागत-वक्र रेखाओं के स्वरूप पर, निर्भर करेंगे। उद्योग के आधुनिकीकरण और अधिक प्रतियोगिता के फलस्वरूप उत्पादन के सभी स्तरों पर वास्तविक लागत के घट जाने का भी प्रभाव ऐसा ही होगा; और उत्पादन तथा आय के परिवर्तनों से पूंजी-निवेश तथा उपभोग में और अधिक परिवर्तन होंगे। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि 'यूरोपीय आर्थिक सहयोग संगठन तथा यूरोपीय कोयला-इस्पात समुदाय के अन्तर्गत अन्तर्यूरोपीय व्यापार में जो ढिलायी और उदारता की नीति अपनायी गयी है, उसके फलस्वरूप इन देशों की आय में वृद्धि की दर काफी तेज हो चुकी है।

तीसरे देशों पर प्रभाव

जब तक कि सदस्य और गैर-सदस्य देशों के बीच शुल्क दरें कम नहीं होंगी, तब तक मांग आयात की वस्तुओं से हट कर इस क्षेत्र के भीतर उत्पादित वस्तुओं की ओर आकृष्ट होगी। यहीं पर यह योजना तीसरे, अर्थात् इस क्षेत्र के बाहर वाले देशों को प्रभावित करती है। एक उदाहरण से यह बात और स्पष्ट हो जायगी। 'यूरोपीय बाजार' योजना फ्रांसीसी संघ की वस्तुओं के पक्ष में एक नयी अधिमान-प्रणाली की स्थापना करती है। १२ या १५ वर्षों के भीतर, जब कि सामान्य-बाजार धीरे-धीरे अपना असली रूप ग्रहण कर लेगा, इसके सदस्य देश तीसरे देशों से आने वाली उन आयात-वस्तुओं पर एक सामान्य शुल्क लगाने की ओर अग्रसर होंगे जो कि फ्रांसीसी संघ से आने वाली आयात-वस्तुओं से प्रतियोगिता करेंगी। इस प्रकार, इस अवधि

आर्थिक-समीक्षा

(अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आर्थिक-राजनीतिक अनुसंधान विभाग का पाक्षिक पत्र)

अनुक्रमणिका-लेखकवार

(वर्ष ६, संख्या १ से २४, दिनांक २२ अक्तूबर १९५६ से ७ अक्तूबर १९५७ तक)

	अंक	तिथि		पृष्ठ
अग्रवाल, वासुदेवशरण				
१. इन 'सीताराम' को देखिये	१४-१५	७ मई	१९५७	७५
अलागेसन, ओ. वी.				
१. द्वितीय योजना में जहाजरानी	५-६	५ जनवरी	१९५७	११५
आचार्य, टंका प्रसाद				
१. भारत का महान आदर्श : रहो और रहने दो	५-६	५ जनवरी	१९५७	१५
एन-लाई, चाऊ				
१. एशियाई देशों में बढ़ती हुई मैत्री	९	२२ फरवरी	१९५७	६
कपूर, टी. एन.				
१. पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारतीय जहाजरानी की प्रगति	१०	७ मार्च	१९५७	६
कल्ला, जे. एन.				
१. कश्मीर में रेशम उद्योग	११	२२ मार्च	१९५७	१०
कृष्णप्पा, एम. वी.				
१. हमारा खाद्यान्न मोर्चा	५-६	५ जनवरी	१९५७	३०
कृष्णमाचारी, टी. टी.				
१. द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लिये साधन	३	२२ नवम्बर	१९५६	५
२. वर्त्तमान आर्थिक स्थिति की समीक्षा	२२	७ सितम्बर	१९५७	९
कृष्णमाचारी, वी. टी.				
१. लोकतंत्रीय आयोजन में ग्रामीण स्वराज्य	५-६	५ जनवरी	१९५७	२७
कामराज, के.				
१. निर्धनता पर विजय पाने के लिए एकता	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	३२
कासलीवाल, नेमीचन्द				
१. संपत्ति एवं व्यय पर कर	१९	२२ जुलाई	१९५७	१२
कैरों, प्रतापसिंह				
१. १८५७ में पंजाब	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	३८
कौर, राजकुमारी अमृत				
१. स्वास्थ्य के क्षेत्र में भारत की प्रगति	५-६	५ जनवरी	१९५७	३५
कुमारप्पा, जोजेफ कार्नीलियस				
१. अहिंसात्मक प्रजातंत्र की बुनियाद	१४-१५	७ मई	१९५७	५५
खन्ना, सी. एल.				
१. भारत में शिक्षित बेरोजगारों की समस्या और उसका समाधान	४	७ दिसम्बर	१९५६	१६
२. मुद्रास्फीति-विहीन घाटे की वित्त-व्यवस्था	५-६	५ जनवरी	१९५७	१०३
गाडगिल, नरहरि विष्णु				
१. हमारे राज्य का स्वरूप	५-६	५ जनवरी	१९५७	४०
ग्राहम, डेविड				
१. कोरापुट के ग्रामदान क्षेत्र में नये प्रयोग का महत्व	१४-१५	७ मई	१९५७	६४

	अंक	तिथि		पृष्ठ
गांधी, महात्मा				
१. इब्राहीम चाचा, उठे या अभी सो रहे हो ?	१४-१५	७ मई	१९५७	४९
गिरि, वी. वी.				
१. सहकारी खेती की समस्याएं	२४	७ अक्तूबर	१९५७	८
गुप्त, राज नारायण				
१. द्वितीय पंचवर्षीय योजना और कर-नीति	९	२२ फरवरी	१९५७	१८
२. विदेशी सहायता और द्वितीय योजना	१३	२२ अप्रैल	१९५७	१०
गुप्त, शिशिर				
१. भारत की प्रथम संसद	५-६	५ जनवरी	१९५७	१५२
गुहा, अरुणचन्द्र				
१. हमारा आयोजन : कठिनाइयां और सफलताएं	५-६	५ जनवरी	१९५७	५३
गुहा, सुनील				
१. भारत में कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योग	४	७ दिसम्बर	१९५६	२७
२. भारतीय करनीति की प्रवृत्तियां	५-६	५ जनवरी	१९५७	७७
३. केन्द्रीय बजट : एक अध्ययन	१२	७ अप्रैल	१९५७	१९
४. नये कर-प्रस्तावों पर एक दृष्टि	१६	७ जून	१९५७	१६
५. राज्यों के बजट (क) पश्चिमी बंगाल	१७	२२ जून	१९५७	२६
(ख) उड़ीसा	,,	,,		२७
६. ,, ,, (क) केरल का बचत बजट	१८	७ जुलाई	१९५७	१२
(ख) राजस्थान की सुदृढ़ वित्तीय स्थिति	,,	,,		१४
(ग) आसाम	,,	,,		१६
७. विदेशी विनिमय की समस्या	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	९८
८. अ. भा. कां. कमेटी के अधिवेशन के अनुभव : आर्थिक नीति संबंधी वाद-विवाद	२३	२२ सितम्बर	१९५७	४४
गुहा, सुनील				
९. ब्रिटेन की मुद्रा-नीति की वर्त्तमान प्रवृत्तियां	२४	७ अक्तूबर	१९५७	१२
ग्रूम, डोनाल्ड बी.				
१. भूदान यात्रा के ६ मास	१४-१५	७ मई	१९५७	९९
घोष, सुव्रतेश				
१. मजदूर संघ और मूल्य परिवर्त्तन	४	७ दिसम्बर	१९५६	१२
चटर्जी, पारेश्वरनाथ				
१. भारत के कुटीर उद्योग	२२	७ सितम्बर	१९५७	१९
चंचरीक, कन्हैयालाल				
१. धरती के बेटे जब गाते हैं	५-६	५ जनवरी	१९५७	१२८
२. १८५७ के लोक गीत	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	७५
चावन, यशवन्तराव बी.				
१. पुनर्गठित बम्बई राज्य की समस्याएं	५-६	५ जनवरी	१९५७	३४
२. १८५७ की महान् जन-क्रांति में बम्बई राज्य का योग	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	३०
चिफमॅन, अलेक्जेण्डर				
१. टाल्स्टाय म्यूजियम द्वारा ५० वर्ष पुराने रहस्य का उद्घाटन : महात्मा गांधी का अंतिम पत्र	२४	७ अक्तूबर	१९५७	१५
चौधरी, महेन्द्र मोहन				
१. आसाम राज्य—प्राचीन और नवीन	५-६	५ जनवरी	१९५७	१२

	अंक	तिथि		पृष्ठ
जगन्नाथन्				
१. तामिलनाद में ग्रामदान की प्रगति	१६	७ जून	१९५७	१४
जाजू, कृष्णदास				
१. समाज का कुष्ठ रोग कैसे दूर करें ? भ्रष्टाचार उन्मूलन : मार्ग सरल नहीं, कांटों भरा	१४-१५	७ मई	१९५७	३४
जैन, अक्षयकुमार				
१. क्या करना है	५-६	५ जनवरी	१९५७	१७९
जैन, अजित प्रसाद				
१. हमारा खाद्यान्न मोर्चा	२३	२२ सितम्बर	१९५७	२९
ठाकुर, रवीन्द्रनाथ				
१. बन्सी	१४-१५	७ मई	१९५७	१६
डोर्डविक, जोवन				
१. समाजवादी राज्य में प्रशासन का स्थान	५-६	५ जनवरी	१९५७	६७
ढेबर, उच्छंगराय				
१. कांग्रेस अध्यक्ष का शुभ सन्देश	५-६	५ जनवरी	१९५७	४
२. आम चुनाव और कांग्रेस	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३
३. भूदान आन्दोलन और नव समाज रचना	१४-१५	७ मई	१९५७	४
४. समाजवादी सहकारी स्वराज्य की ओर	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	३
५. आचार्य विनोबा भावे	२४	७ अक्तूबर	१९५७	३
त्लुब्रोन्या, बोग्दान				
१. शांतिपूर्ण और सक्रिय सह-अस्तित्व	५-६	५ जनवरी	१९५७	१४७
त्रिपाठी, कामाख्या प्रसाद				
१. समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत पूंजी-निर्माण	५-६	५ जनवरी	१९५७	४५
दत्त, प्रबोधचन्द्र				
१. रिजर्व बैंक और कृषि के लिए वित्त-व्यवस्था	१	२२ अक्तूबर	१९५६	२०
दास, राघव				
१. दरिद्र नारायण की सूची	१६	७ जून	१९५७	१०
देशपाण्डे, निर्मला				
१. विनोबा व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व:विदेशी बुद्धि जीवियों की बढ़ती जिज्ञासा				
(अ) विनोबा जी के साथ एक जर्मन छात्र	१४-१५	७ मई	१९५७	५९
(ब) विनोबा जी के साथ एक अमरीकी	,,	,,		६१
देशमुख, पंजाबराव				
१. कृषि का आयोजित विकास	५-६	५ जनवरी	१९५७	१२३
नगराज				
१. अणुव्रत आन्दोलन	२४	७ अक्तूबर	१९५७	१९
नन्द, सम्पूर्णा				
१. सन् १८५७ के स्वातंत्र्य संग्राम में उत्तर प्रदेश की भूमिका	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	२८
नन्दा, गुलजारीलाल				
१. सिंचाई, बिजली और बाढ़-नियंत्रण के क्षेत्र में प्रगति	५-६	५ जनवरी	१९५७	१७
१. भारत में भूमि-सुधारों की प्रगति	२३	२२ सितम्बर	१९५७	१६
नरसिंह राव, पो. वी.				
१. राष्ट्रभाषा की समस्या	५-६	५ जनवरी	१९५७	१९१
नाग, डो. एस.				
१. मालगुजारी बनाम कृषि आयकर	२२	७ सितम्बर	१९५७	१६

	अंक	तिथि		पृष्ठ
नारायण, जयप्रकाश				
१. ग्रामदान आन्दोलन का महत्व	१४-१५	७ मई	१९५७	३४
नारायण, श्रीमन्				
१. हमारी वस्त्रनीति	१	२२ अक्तूबर	१९५६	७
२. विनोबा जी के साथ एक सप्ताह (६): नशाबन्दी और परिवार आयोजन	१	,,	१९५६	२४
३. भारत और विश्व बैंक	२	७ नवम्बर	१९५६	३
४. शिक्षा और राष्ट्रीय आयोजन	,,	,,		२२
५. आर्थिक नीति सम्बन्धी वक्तव्य	३	२२ नवम्बर	१९५६	३
६. भौतिक और नैतिक आयोजन	४	७ दिसम्बर	१९५६	६
७. इन्दौर अधिवेशन	५-६	५ जनवरी	१९५७	९
८. इन्दौर का सन्देश	७	२२ जनवरी	१९५७	५
९. कश्मीर पर संयुक्त राज्य संघ का प्रस्ताव	८	७ फरवरी	१९५७	३
१०. अर्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था में विरोधी पक्ष	९	२२ फरवरी	१९५७	३
११. कांग्रेस और लोकतंत्र	१०	७ मार्च	१९५७	३
१२. भारत और धना	११	२२ मार्च	१९५७	३
१३. चुनाव और उसके बाद	१२	७ अप्रैल	१९५७	६
१४. भूमि-सुधारों की प्रगति	१३	२२ अप्रैल	१९५७	७
१५. सर्वोदय और साम्यवाद	१४-१५	७ मई	१९५७	१३
१६. 'ग्रामदान'-क्रांति	१६	७ जून	१९५७	३
१७. केन्द्रीय बजट के कर-प्रस्ताव	,,	,,		११
१८. अहिंसक सुरक्षा के लिए सुझाव	,,	,,		२२
१९. सैद्धान्तिक स्पष्टता की आवश्यकता	१७	२२ जून	१९५७	११
२०. भारत में सहकारी खेती	१८	७ जुलाई	१९५७	३
२१. भाषा की राजनीति	१९	२२ जुलाई	१९५७	३
२२. आजादी के दस वर्ष	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	२५
२३. हमारी पहली वफादारी	२२	७ सितम्बर	१९५७	३
२४. संगठन और विचारधारा	२३	२२ सितम्बर	१९५७	११
२५. ग्रामदान का महान लक्ष्य	२४	७ अक्तूबर	१९५७	५
निगम, राजकुमार				
१. मुद्राओं की दशमलव प्रणाली	१०	७ मार्च	१९५७	२०
२. नये सिक्कों की कठिनाइयों पर एक नजर	१९	२२ जुलाई	१९५७	१९
निगम, सावित्री				
१. सामाजिक शिक्षा की आवश्यकता	५-६	५ जनवरी	१९५७	९६
निजलिंगप्पा, एस.				
१. प्रगति के पथ पर मैसूर	५-६	५ जनवरी	१९५७	१४४
नेहरू, जवाहरलाल				
१. हमारी समाजवादी अर्थ-व्यवस्था	४	७ दिसम्बर	१९५६	३
२. कांग्रेस का संदेश	५-६	५ जनवरी	१९५७	५
३. वोटरों के पास कैसे पहुंचा जाय ?	,,	,,		७
४. चुनाव आंदोलन को जन-शिक्षा के महान आंदोलन में परिवर्तित करो	७	२२ जनवरी	१९५७	३
५. भारतीय अर्थ-व्यवस्था में ग्रामोद्योग	१२	७ अप्रैल	१९५७	३
६. आम चुनाव और कांग्रेस	१४-१५	७ मई	१९५७	७

	अंक	तिथि		पृष्ठ
७. स्वेच्छा से समाजवाद	१७	२२ जून	१९५७	३
८. सन् १८५७ का महान् गदर	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	१९
९. भारत प्रगति के पथ पर	२३	२२ सितम्बर	१९५७	३
पन्त, गोविन्दबल्लभ				
१. गांधीवादी दृष्टिकोण	१	२२ अक्तूबर	१९५६	३
परमार. वाई. एस.				
१. अ. भा. कां. क. का कांग्रेस कार्यकर्त्ता शिविर	५-६	५ जनवरी	१९५७	१६८
पाटिल, रा. कृ.				
१. चीन की कृषि-उत्पादक सहकारी समितियां : एक मूल्यांकन	९	२२ फरवरी	१९५७	८
बहल, नारायण दास				
१. भारत में पशुओं का आर्थिक महत्व	१४-१५	७ मई	१९५७	८६
बरुआ, डी. के.				
१. चीन और जापान में भूमि-सुधार	८	७ फरवरी	१९५७	५
भारद्वाज, प्रेमचन्द				
१. भारतीय श्रमिक वर्ग सम्पन्नता की ओर	९	२२ फरवरी	१९५७	२२
भावे, विनोबा				
१. ग्रामदान और भूदान का महत्व	५-६	५ जनवरी	१९५७	१५८
२. वर्तमान शिक्षा में त्रिविध दोष	७	२२ जनवरी	१९५७	७
३. ग्रामदान द्वारा समाज-निर्माण	१२	७ अप्रैल	१९५७	८
भटेले, विश्वनाथ				
१. बादशाह चांद	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	५८
भट्ट, श्रीकृष्ण दत्त				
१. विनोबा पद-यात्रा के संस्मरण : शिकायतियों से पाला पड़ने पर	१४-१५	७ मई	१९५७	१०१
भसीन, एम. पी.				
१. पुनर्गठित राज्य और केन्द्र प्रशासित क्षेत्र पर एक दृष्टि	५-६	५ जनवरी	१९५७	९९
मण्डलोई, भगवंतराव				
१. नवगठित मध्य प्रदेश की पंचायतें	७	२२ जनवरी	१९५७	१२
मलकानी, न. र.				
१. अम्बर चर्खा आयोजकों के सम्मुख कार्य	१	२२ अक्तूबर	१९५६	१५
२. बुनियादी शिक्षा संबंधी सरकारी नीति : एक मूल्यांकन	५-६	५ जनवरी	१९५७	७२
मलिक, सुभाषचन्द्र				
१. लोकतंत्र का महान् प्रयोग—दूसरा आम चुनाव	९	२२ फरवरी	१९५७	२५
महता, अमरसिंह				
१. रासायनिक खाद की धातु—जिप्सम	७	२२ जनवरी	१९५७	२६
२. द्वितीय योजना में बागवानी का विकास और रोजगार की संभावना	१९	२२ जुलाई	१९५७	२१
मालवीय, केशवदेव				
१. श्रम की महत्ता	१४-१५	७ मई	१९५७	५१
२. स्वच्छ उद्जन बम की सम्भाव्यताएं	१९	२२ जुलाई	१९५७	८
३. आम चुनाव की चेतावनी : या तो अभी या कभी नहीं	१६	७ जून	१९५७	६
मालवीय, हर्षदेव				
१. तुरफान काउण्टी (सिनकियांग, चीन) में कृषि : प्राचीन और वर्तमान स्थिति	४	७ दिसम्बर	१९५६	८
२. चीन यात्रा-कथा के पृष्ठों से—कयूम बातिश : नव चीन के एक नवोदित मानव का अध्ययन	”	”		२१

	अंक	तिथि		पृष्ठ
३. एक साम्राज्यवादी का प्रलाप	५-६	५ जनवरी	१९५७	२४
४. लाओ मामा : एक चीनी वृद्धा का चित्र	”	”		९१
५. उत्तर-पूर्व चीन की एक कृषि-उत्पादक सहकारी समिति	”	”		१६१
६. शुंग मुन-चुन	७	२२ जनवरी	१९५७	१६
७. आकाशवाणी की सफलताएं	८	७ फरवरी	१९५७	१५
८. पाकिस्तानी बौखलाहट के पीछे छिपा हाथ	९	२२ फरवरी	१९५७	१६
९. जापान में कृषि और सहकारिता	१०	७ मार्च	१९५७	१२
१०. व्यापारियों का सम्मेलन	१२	७ अप्रैल	१९५७	१२
११. कालड़ी सम्मेलन और भारत की भूमि समस्या	१४-१५	७ मई	१९५७	३९
१२. चीन में भूमि पुनर्वितरण और कृषक निर्वाण	”	”		७७
१३. चीन के साथ व्यापार का गोरखधंधा	१७	२२ जून	१९५७	१९
१४. हमारी आयात-निर्यात नीति	”	”		२८
१५. राष्ट्रीय उत्पादन पर अपूर्ण भूमि-सुधारों और मूल्य-अस्थिरता के हानिकारक प्रभाव	१८	७ जुलाई	१९५७	९
मिश्र, गिरीशचन्द्र				
१. सन् सत्तावन की महान जन-क्रांति	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	४५
मुंशी, कन्हैयालाल माणिक्यलाल				
१. हमारी आजादी की नींव	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	४०
मुकर्जी, बी. के.				
१. द्वितीय पंचवर्षीय योजना की वित्त-व्यवस्था	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	१०२
मुकर्जी, राधा कुमुद				
१. आयोजन के वित्तीय तथा अन्यपक्ष	५-६	५ जनवरी	१९५७	१११
मुहम्मद, बख्शी गुलाम				
१. कश्मीर की समृद्धि के लिए आयोजन	५-६	५ जनवरी	१९५७	८३
२. १८५७ का सन्देश	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	३२
मूंदड़ा, दामोदर दास				
१. दक्षिण पथ में रामराज्य का पूर्णकुम्भ	१४-१५	७ मई	१९५७	४३
मेधा, विष्णुराम				
१. १८५७ की चुनौती	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	३३
मेहता, बबल भाई				
१. ग्रामदान का उद्देश्य सर्वोदय साधना	२२	७ सितम्बर	१९५७	२३
मेहरा, महेन्द्र				
१. भारत में नदी घाटी योजनाओं का विकास	२	७ नवम्बर	१९५६	१७
२. भारतीय राज्यों का पुनस्संगठन	३	२२ नवम्बर	१९५६	२३
३. १९५७-५८ का रेलवे बजट	१२	७ अप्रल	१९५७	२४
४. उर्दू काव्य में भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	८३
मेहरोत्रा, गोपालजी				
१. उड़ीसा का आशास्रोत : हीराकुड	७	२२ जनवरी	१९५७	२२
२. ऐतिहासिक कसौटी पर सन् १८५७	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	८९
मोरिसनी, एडविन एस.				
१. कश्मीर की वास्तविक स्थिति	१३	२२ अप्रैल	१९५७	१४
राम, जगजीवन				
१. आयोजन के सामाजिक लाभ	२	७ नवम्बर	१९५६	५

	अंक	तिथि		पृष्ठ
राय, विधान चन्द्र				
१. कांग्रेस को वोट क्यों ?	५-६	५ जनवरी	१९५७	११
राव, एम. वी. रमण				
१. खाद्याभाव पर गांधीजी के विचार	१९	२२ जुलाई	१९५७	१५
२. पिछला खाद्य संकट और उसके समाधान	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	९२
राव, वी. के. आर. वी.				
१. जनसाधारण और वर्तमान बजट	१७	२२ जून	१९५७	१५
रोहतगी, प्रेम नारायण				
१. स्वतन्त्रता-संघर्ष में हिन्दी साहित्य और समाचार-पत्रों की अपूर्व देन	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	७०
लोंगोन, रिकार्डो				
१. कश्मीर भारत का है	१०	७ मार्च	१९५७	१५
वर्मा, सुरेन्द्र मोहन				
१. स्वतन्त्रता के बाद गृह-उद्योगों का विकास	११	२२ मार्च	१९५७	५
विनोबा, आचार्य				
१. अहिंसा और प्रेम द्वारा राष्ट्र का निर्माण	१४-१५	७ मई	१९५७	१७
२. भूदान और सामाजिक क्रान्ति	"	"		२१
३. सन्त विनोबा का गांधी से प्रथम सम्पर्क	"	"		३३
४. कथा वाचक विनोबा	"	"		८३
विद्यालंकार, अमरनाथ				
१. खेतिहर मजदूरों के लिये मजदूर-संघ	२	७ नवम्बर	१९५६	१२
स्वामी, एस. नारायण				
१. भारत में कागज उद्योग	५-६	५ जनवरी	१९५७	११९
सक्सेना, मोहनलाल				
१. द्वितीय योजना म गृह-निर्माण, सड़क और कुटीर उद्योग	१	२२ अक्तूबर	१९५६	९
२. द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पशु पालन	३	२२ नवम्बर	१९५६	१९
सन्तानम, के.				
१. राष्ट्रीय विकास की कसौटी	५-६	५ जनवरी	१९५७	११०
सहगल, सीताराम				
१. ऋग्वेद में सर्वोदय की भावना	१४-१५	७ मई	१९५७	९१
सावडे, बी. आर.				
१. भारतीय अर्थ-व्यवस्था में ऊन का स्थान	११	२२ मार्च	१९५७	१४
सिंह, स्वर्ण				
१. भारत में गृह-निर्माण की प्रगति	५-६	५ जनवरी	१९५७	१३९
सुखाड़िया, मोहनलाल				
१. उन्नति के पथ पर बढ़ें	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	३५
सुखलाल				
१. अहिंसा के आचार और विचार का विकास	१४-१५	७ मई	१९५७	६७
सोमदेव				
१. हमारे कवि और सन् सत्तावन का स्वातंत्र्य संग्राम	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	६६
सौंदर्यराव, मछान्ना				
१. हिन्दी बनाम अंग्रेजी	५-६	५ जनवरी	१९५७	१९७
शर्मा, भागराम				
१. जिला गुरुदासपुर (पंजाब) म भूमिहीन काश्तकारों की समस्या	२३	२२ सितम्बर	१९५६	४८

	अंक	तिथि		पृष्ठ
शास्तित्को, पी.				
१. १८५७ का विद्रोह आकस्मिक घटना नहीं	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	६४
शाह, मनुभाई				
१. हमारे विकास कार्यक्रमों के आर्थिक पहलू	३	२२ नवम्बर	१९५६	१०
२. भारत में भारी विद्युत उद्योग	५-६	५ जनवरी	१९५७	५८
श्रीवास्तव, एस. के.				
१. जब मेरठ में हथियार खनखना उठे	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	५१

कविताएं

'आतुर', नूतन प्रकाश				
१. वोट हमारा वहीं गिरेगा	५-६	५ जनवरी	१९५७	१९०
१. आज जेठ की दोपहरी में हलवाहे ने धरती जोती	१४-१५	७ मई	१९५७	७२
अधूरा, पद्मनारायण सिंह				
१. यह मानव है ?	१४-१५	७ मई	१९५७	१०६
इकबाल				
१. सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा	५-६	५ जनवरी	१९५७	१६
कपूर, ध्रुव				
१. मानव है निराश कहां ?	१४-१५	७ मई	१९५७	११२
कुदेशिया, जगदीश				
१. किसको दोगे वोट रे भाई लेना सोच विचार	५-६	५ जनवरी	१९५७	१८५
केदार				
१. धरती के जीवन में मंगल फल आयेगा	१४-१५	७ मई	१९५७	४८
कोकिल, विद्यावती				
१. ये आलम का आलम कहां जा रहा है	५-६	५ जनवरी	१९५७	११४
कौशिक, गंगा प्रसाद				
१. जागो, देशवासियो जागो	५-६	५ जनवरी	१९५७	१८३
कुमार				
१. बढ़ा जा रहा	५-६	५ जनवरी	१९५७	५१
गुप्त, देवप्रकाश				
१. संयम ही जीवन का कोहेनूर है	१२	७ अप्रैल	१९५७	२३
गुप्त, मैथिलीशरण				
१. विश्वराज्य	१४-१५	७ मई	१९५७	११५
चक्र, सुदर्शन				
१. इस साल हुआ था भारत में, स्वातंत्र्य युद्ध का आविष्कार	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	५०
चतुर्वेदी, जगदीश				
१. वर्तमान कल का इतिहास बना	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	३७
चतुर्वेदी, तुलसीराम				
१. सावधान, अनीतिमय संचय, विनोबा आ रहे हैं	१४-१५	७ मई	१९५७	१००
'चन्द्रभूषण', रामचन्द्र प्रसाद				
१. पहले बढ़ा इंसान है	१६	७ जून	१९५७	१५
चौहान, सुभद्राकुमारी				
१. लक्ष्मी थी या दुर्गा थी, वह स्वयं वीरता की अवतार	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	५६
जरगर, जुगल किशोर				
१. जाग रे जनयुग के नये इंसान	१४-१५	७ मई	१९५७	७१

	अंक	तिथि	पृष्ठ
जोशुआ, जी			
१. रत्नांजलि	११	२२ मार्च १९५७	१८
तोमर, अजित नारायण सिंह			
१. श्रमदान	५-६	५ जनवरी १९५७	८८
२. पन्द्रह अगस्त का महा पर्व	२०-२१	१५ अगस्त १९५७	९१
द्विवेदी, सोहनलाल			
१. बढ़े चलो, बढ़े चलो	२०-२१	१५ अगस्त १९५७	९७
द्विरेफ, परमेश्वर			
१. सर्वोदय गान	१४-१५	७ मई १९५७	५३
२. भारत में भारत जननी का राज है	२०-२१	१५ अगस्त १९५७	११०
नागार्जुन			
१. प्रश्न है एक यही नील की लहरों का	५-६	५ जनवरी १९५७	९५
नीरज			
१. देशवासियो उठो, देश ने फिर से हमें पुकारा है	५-६	५ जनवरी १९५७	१८९
२. दो रुबाइयां	१४-१५	७ मई १९५७	४२
पन्त, सुमित्रानन्दन			
१. भारत माता	५-६	५ जनवरी १९५७	६
२. मानव-मानव सब हैं समान	"	"	८
३. मानव को समझो, हे देवों के आराधक !	"	"	१३१
प्रभाकर, मनोहर			
१. प्रगति गीत	५-६	५ जनवरी १९५७	५०
प्रेमी, हरिकृष्ण			
१. है कठिन निर्माण करना	५-६	५ जनवरी १९५७	१८८
मिश्र, बालमुकुन्द			
१. रवि नवोदय हो रहा है	५-६	५ जनवरी १९५७	८७
बिसराम			
१. एक भोजपुरी विरहा : त्रसित कृषक का दुख भरा निनाद	१४-१५	७ मई १९५७	९७
भटनागर, श्यामराय			
१. इस वेदी पर फूल चढ़ायें	२०-२१	१५ अगस्त १९५७	२९
भाई, प्रियतम			
१. एक राजस्थानी गीत : चेतो चेतो मनवा	१४-१५	७ मई १९५७	९४
भारती, शुद्धानन्द			
१. कोटि-कोटि वीरों की चिर-भूमि यह	१०	७ मार्च १९५७	२७
मदालसा			
१. एक आत्म चिन्तन	१४-१५	७ मई १९५७	२६
मिश्र, चन्द्रशेखर			
१. अमर सेनानी कुंवरसिंह का सपना	२०-२१	१५ अगस्त १९५७	६२
मिश्र, विद्यावती			
१. अभी से रोको नहीं चरण	५-६	५ जनवरी १९५७	१९९
२. देना मतदान किसे है	"	"	१८४
३. जिस पर अंकित बलों की यह जोड़ी उस पर मतदान करें	"	"	१८७
४. एक तुम्हारा चिर-परिचित है	८	७ फरवरी १९५७	२५
मिश्र, रुद्रदत्त			
१. शहीदों की स्मृति में	२०-२१	१५ अगस्त १९५७	८८

	अंक	तिथि		पृष्ठ
मिश्र, सुबोध				
१. वोट नहीं ये महायज्ञ हित	५-६	५ जनवरी	१९५७	१८६
रंजन, त्रि. न.				
१. मुझे आज कहने दो, जागा मेरा हिन्दुस्तान रे	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	७४
वर्मा, महादेवी				
१. अरुणा अब हमको सजग प्राण दे	१४-१५	७ मई	१९५७	६१
वर्मा, शिवकुटोलाल				
१. मैं नया कृष्ण युग हृदय लगाने फिर आया	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	४४
वि. प्र.				
१. मुक्ति के विहंग तुम बढ़े चलो	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	६१
वीरसिंह, भाई				
१. गांधी की जै	१७	२२ जून	१९५७	३०
शर्मा, मदन गोपाल				
१. विनोबा युगारम्भ युग सारथी है	१४-१५	७ मई	१९५७	६२
शर्मा, सुवरन सिंह				
१. वोट हमारा वहीं गिरेगा बनी जहां बैलों की जोड़ी	५-६	५ जनवरी	१९५७	१८८
२. बैलों का जोड़ा हमको प्राण पियारा	५-६	५ जनवरी	१९५७	१८८
शशांक				
१. दो बैलों की जोड़ी	५-६	५ जनवरी	१९५७	१८१
शील				
१. हिम्मत मत हारो मत ठिठको	५-६	५ जनवरी	१९५७	११८
सगीर, डोमन साहु				
१. संत विनोबा	१४-१५	७ मई	१९५७	९०
सुमन, शिवमंगल सिंह				
१. इसलिये भगीरथ का तम मुझको दो	१४-१५	७ मई	१९५७	१२२
२. उठो समय के दाता जागो	५-६	५ जनवरी	१९५७	७६
३. शीश पर मनुजत्व क्या देवत्व का फिर ताज होगा	१२	७ अप्रैल	१९५७	१८
सुमन, शिवसिंह				
१. आवाहन	१४-१५	७ मई	१९५७	७६
२. साहस भर कर जाग जरा तू सारे जग का भार उठा ले	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	२२
सुरेन्द				
१. अरे चेत इंसान दर्श कर वामन आये	१४-१५	७ मई	१९५७	८९
श्रीवास्तव, रमाकान्त				
१. चल रहा हथौड़ा धनन-धनन	५-६	५ जनवरी	१९५७	८९
२. शेर बहादुर उपज बढ़ाओ	५-६	५ जनवरी	१९५७	८९
३. धरती का गीत	१४-१५	७ मई	१९५७	९८
विविध				
१. कवियों के जवाहर (संकलन)	५-६	५ जनवरी	१९५७	२२
२. हिन्दी कविता में श्रमिक जीवन	१४-१५	७ मई	१९५७	३१
३. हिमाचल के प्रांगण से : एक गढ़वाली कृषक की दुखभरी पुकार	१४-१५	७ मई	१९५७	१०५
४. जिन्दगी नवी ढाल तोड़ा	१८	७ जुलाई	१९५७	३२

कवर एक के उद्धरण

	अंक	तिथि	
आजाद, अबुल कलाम			
१. विश्वशांति का मार्ग	३	२२ नवम्बर	१९५६
गान्धी, महात्मा			
१. कांग्रेस का उद्देश्य (शीर्षक नहीं)	५-६	५ जनवरी	१९५७
२. त्याग का आदर्श	१०	७ मार्च	१९५७
३. लोकतंत्र की भावना	१३	२२ अप्रैल	१९५७
४. सहकारी खेती की उत्तमता	१६	७ जून	१९५७
५. मेरे स्वप्नों का भारत	२४	७ अक्तूबर	१९५७
ढेबर, उच्छंगराय			
१. कांग्रेस और विरोधी पक्ष	१	२२ अक्तूबर	१९५६
२. कांग्रेस और समाजवाद	७	२२ जनवरी	१९५७
३. कांग्रेस और कम्युनिस्ट	११	२२ मार्च	१९५७
२. परिस्थितियों के अनुसार बदलें	१७	२२ जून	१९५७
नेहरू, जवाहरलाल			
१. कांग्रेस की ऐतिहासिक भूमिका	२	७ नवम्बर	१९५६
२. कांग्रेस—राष्ट्रीय एकता की प्रबल शक्ति	९	२२ फरवरी	१९५७
३. खाद्यान्नों की उपज में वृद्धि	१२	७ अप्रैल	१९५७
प्रसाद, राजेन्द्र			
१. राष्ट्र-निर्माण का महान् कार्य	८	७ फरवरी	१९५७
२. स्वाधीनता के लिए अमित त्याग	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७
वल्लतोल			
१. कृषि-स्थल सामाजिक हो	१८	७ जुलाई	१९५७
विनोबा			
१. अन्तःशुद्धि की आवश्यकता	४	७ दिसम्बर	१९५६
२. आत्मज्ञान की भारतीय परम्परा	२२	७ सितम्बर	१९५७
वेद			
१. चरैवेति चरैवेति	१४-१५	७ मई	१९५७
चित्र			
१. पूजा का नवीन देवालय	१९	२२ जुलाई	१९५७
२. समृद्धि के लिए शक्ति : मेट्टूर नहर प्रणाली, मद्रास राज्य के विद्युत मार्ग का दृश्य	२३	२२ सितंबर	१९५७

कवर दो, तीन और चार के उद्धरण

				कवर
अशोक, सम्राट				
१. धर्म की विजय	२३	२२ सितंबर	१९५७	२
ठाकुर, रवीन्द्रनाथ				
१. सकल कलुष तामस हर	१	२२ अक्तूबर	१९५६	२
खुर्शीद				
१. सुन ले बापू तेरे पथ पर (कविता)	१	२२ अक्तूबर	१९५६	३

	अंक	तिथि		कवर
गाकक, विनायक कृ.				
१. सत्य सीमा	१३	२२ अप्रल	१९५७	४
गुप्त, मैथिलीशरण				
१. दयामय भारत की जय हो	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	३
तेजे				
१. सदाचारी मनुष्य	४	७ दिसंबर	१९५६	२
तोमर, अजित नारायण सिंह				
१. चेतावनी	९	२२ फरवरी	१९५७	२
२. पंचशील	११	२२ मार्च	१९५७	४
त्यागी, सुधीर				
१. सोलह भूलें	११	२२ मार्च	१९५७	२
१. देश को उठाओ	१३	२२ अप्रैल	१९५७	२
द्विरेफ, परमेश्वर				
१. सर्वोदय का सूर्य सुनहला	१६	७ जून	१९५७	२
२. निखिल विश्व के लक्ष्य पंथ पर	१८	७ जुलाई	१९५७	२
नीरज				
१. यह युद्धों का जहरीला नारा बन्द करो	२	७ नवंबर	१९५६	३
नादिम, दीनानाथ				
१. हमारा वतन कश्मीर	९	२२ फरवरी	१९५७	४
बुद्ध, महात्मा				
१. अमृत की खेती	३	२२ नवंबर	१९५६	२
ब्रजमोहन				
१. जाग रहा है देश	१७	२२ जून	१९५७	२
प्रेमी हरिकृष्ण				
१. फसल देश की आजादी की	१९	२२ जुलाई	१९५७	२
मिश्र, रुद्रदत्त				
१. सिरमौर है खादी	१२	७ अप्रैल	१९५७	४
मिश्र, विद्यावती				
१. परीक्षा अपनी आप करो	१०	७ मार्च	१९५७	२
मिश्र वीरेन्द्र				
१. संस्कृतियों के देश मेरे	३	२२ नवंबर	१९५६	३
रसिक, सन्तकुमार टंडन				
१. मां बा तुम्हें प्रणाम!	८	७ फरवरी	१९५७	२
विवेकानन्द, स्वामी				
१. सभी के लिए रोशनी	२	७ नवम्बर	१९५६	२
'सुमन' शिवसिंह				
१. यह कश्मीर हमारा है	८	७ फरवरी	१९५७	४
२. नये सृजन का नया मसीहा अब दरिद्रनारायण होगा	१०	७ मार्च	१९५७	४
१. सर्वोदय ही तो औद्योगिक पंचशील का स्वर है !	२२	७ सितम्बर	१९५७	२
२. अ. भा. सर्व-सेवा-संघ द्वारा स्वीकृत संकल्प	१६	७ जून	१९५७	४
विविध				
१. अमृत कण	५-६	२२ जनवरी	१९५७	२

	अंक	तिथि		कवर
२. स्वस्तिरायें मरुतो दधातन	१२	७ अप्रैल	१९५७	२

साहित्य चर्चा

				पृष्ठ
जोशी, सूर्यकुमार				
१. साहित्य की सर्वोदयी दिशा	१४-१५	७ मई	१९५७	१०९
ढेबर, उच्छंगराय				
१. पुस्तकें जो मुझे याद हैं	१८	७ जुलाई	१९५७	२३
नायडू, एस. शंकर राजू				
१. मद्रास विश्व विद्यालय में हिन्दी शिक्षा	७	२२ जनवरी	१९५७	२८

समालोचनाएं

चंवरीक, कन्हैयालाल				
१. नये प्रकाशन	३	२२ नवम्बर	१९५६	२१
२. सर्वोदय साहित्य के नये पुष्प	४	७ दिसम्बर	१९५६	३१
३. नये प्रकाशन	८	७ फरवरी	१९५७	२६
४. नये प्रकाशन	१०	७ मार्च	१९५७	२७
जोशी, सूर्यकुमार				
१. नये प्रकाशन	१६	७ जून	१९५७	४४
२. नये प्रकाशन	१८	७ जुलाई	१९५७	२५
मालवीय, हर्षदेव				
१. अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के हिन्दी पत्र	१३	२२ अप्रैल	१९५७	२७
मेहरा, महेन्द्र				
१. नये प्रकाशन	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३२
मेहरोत्रा, गोपाल जो				
१. नये प्रकाशन	१	२२ अक्तूबर	१९५६	२८
२. सहयोगियों के विशेषांक	२	७ नवम्बर	१९५६	३२
३. सहयोगियों के गणतंत्र विशेषांक	८	७ फरवरी	१९५७	२७
४. नये प्रकाशन	९	२२ फरवरी	१९५७	२८
५. नये प्रकाशन	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३१
६. सर्वोदय पत्र-पत्रिकाएँ	१४-१५	७ मई	१९५७	११३
७. नये प्रकाशन	१८	७ जुलाई	१९५७	२५
८. नये प्रकाशन	१९	२२ जुलाई	१९५७	२३
९. सहयोगियों के विशेषांक	२२	७ सितम्बर	१९५७	३०
सिंह, अम्बिका				
१. नये प्रकाशन	१०	७ मार्च	१९५७	२८
२. नये प्रकाशन	१२	७ अप्रैल	१९५७	३१
३. नये प्रकाशन	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३१
४. सर्वोदय साहित्य समीक्षा	१४-१५	७ मई	१९५७	११६

सम्पादक के नाम पत्र

गोस्वामी, अंगन गिरि				
१. पंचायतों द्वारा अधिक कर	१०	७ मार्च	१९५७	३३
तोशनीवाल, ओमप्रकाश				
१. भारतीय कृषि का यंत्रीकरण	१३	२२ अप्रैल	१९५७	२४
देशदूत, एम. चन्द				
१. धान का मूल्य	११	२२ मार्च	१९५७	१९

विविध लेख

	अंक	तिथि		पृष्ठ
१. बल्गारिया में मूल्य निर्धारण	१	२२ अक्तूबर	१९५६	१८
२. प्रगति के पथ पर	१	२२ अक्तूबर	१९५६	३०
३. स्वेडन में छोटी बचत	२	७ नवम्बर	१९५६	१४
४. विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन की प्रगति	५-६	५ जनवरी	१९५७	१३२
५. विदेशियों की दृष्टि में : कश्मीर की असलियत	७	२२ जनवरी	१९५७	९
६. यंत्रीकृत खेती बनाम सघन खेती	८	७ फरवरी	१९५७	९
७. भारतीय जनतंत्र के आठवें वर्ष में : भारत की विकासशील अर्थ-व्यवस्था	८	७ फरवरी	१९५७	२९
८. अम्बर विद्यालय (माडल टाउन) दिल्ली की प्रगति	१२	७ अप्रैल	१९५७	२८
९. हाथ कुटे चावल का उद्योग	१३	२२ अप्रैल	१९५७	२०
१०. राजस्थान की विशाल नहर योजना	१४	२२ अप्रैल	१९५७	२२
११. भगवान बुद्ध पर महात्मा गांधी के विचार	१४-१५	७ मई	१९५७	२८
१२. विनोबा जी के साथ श्रीमती चेस्टर बोल्स	१४-१५	७ मई	१९५७	७३
१३. कांग्रेस महा समिति के प्रस्ताव	१६	७ जून	१९५७	१९
१४. कालड़ी सर्वोदय सम्मेलन :				
(क) आचार्य विनोबा भावे (प्रारंभिक भाषण)	१६	७ जून	१९५७	२८
(ख) उच्छंगराय ढेबर (भाषण)	१६	७ जून	१९५७	
(ग) दादा धर्माधिकारी (भाषण)	१६	७ जून	१९५७	
(घ) आचार्य विनोबा भावे (अन्तिम भाषण)	१६	७ जून	१९५७	
१५. सन् १८५७ की क्रांति में आसाम का योग	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	५५
१६. प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम के सौ वर्ष बाद भारत की विकासशील अर्थ-व्यवस्था	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	११२
१७. भारतीय रेल परिवहन की अभूतपूर्व प्रगति	२२	७ सितम्बर	१९५७	२७
१८. अ. भा. कां. कमेटी के अधिवेशन में अनौपचारिक वाद-विवाद की रिपोर्ट : भारत की आर्थिक समस्याएँ	२३	२२ सितम्बर	१९५७	३३

संक्षिप्त टिप्पणियां

श्री. ना.

	अंक	तिथि		पृष्ठ
१. चीन में औद्योगिक आयोजन : कमजोरियां और मुश्किलें	१८	७ जुलाई	१९५७	६
२. आत्मसंयम और अल्प व्यय	१८	७ जुलाई	१९५७	
३. राष्ट्रपति माओ का नया सिद्धांत	१८	७ जुलाई	१९५७	
४. प्रधानमंत्री की यूरोप-यात्रा	१९	२२ जुलाई	१९५७	६
५. श्री देशमुख का विश्लेषण	१९	२२ जुलाई	१९५७	
६. हमारी श्रम नीति	२२	७ सितम्बर	१९५७	५
७. कांग्रेसी समाजवाद और साम्यवाद	२२	७ सितम्बर	१९५७	
८. केरल की स्थिति	२२	७ सितम्बर	१९५७	
९. पंजाब में हिन्दी आन्दोलन	२३	२२ सितम्बर	१९५७	१३
१०. खेर कमीशन की रिपोर्ट	२३	२२ सितम्बर	१९५७	
११. अंग्रेजी भाषा का स्थान	२३	२२ सितम्बर	१९५७	
१२. अखिल भारतीय सेवाओं के लिए परीक्षा का माध्यम	२३	२२ सितम्बर	१९५७	
१३. श्री संतबाल के रचनात्मक कार्य	२३	२२ सितम्बर	१९५७	
१४. नागा लोगों के लिए पृथक प्रशासनिक इकाई	२४	७ अक्तूबर	१९५७	७

	अंक	तिथि		पृष्ठ
१५. पंचायतों के लिए अधिक अधिकार	२४	७ अक्तूबर	१९५७	७

आर्थिक टिप्पणियां

गुहा, सुनील

	अंक	तिथि		पृष्ठ
१. भूदान के एक आयोजक को उत्तर	२	७ नवम्बर	१९५६	३०
२. भारत का अनुकरण	२	७ नवम्बर	१९५६	३१
३. लघु उद्योगों का विकास	२४	७ अक्तूबर	१९५७	२४
४. किसानों के लिए सस्ती दर पर पानी	२४	७ अक्तूबर	१९५७	२४

मालवीय हर्षदेव

	अंक	तिथि		पृष्ठ
१. भारत में विश्वविद्यालय शिक्षा का विकास	७	२२ जनवरी	१९५७	२४
२. हमारा चीनी उद्योग	७	२२ जनवरी	१९५७	
३. भारत में साबुन की खपत	७	२२ जनवरी	१९५७	
४. राजस्थान में जागीर अवाप्ति की प्रगति	१०	७ मार्च	१९५७	२४
५. सामुदायिक योजना प्रशिक्षण में समाजवादी नवीकरण	१०	७ मार्च	१९५७	
६. पंचायती अदालतों को अधिक अधिकार	१०	७ मार्च	१९५७	
७. हमारे ग्रामसेवकों की शिक्षा	१०	२२ मार्च	१९५७	२२
८. भारतीय पशुधन का विकास	११	२२ मार्च	१९५७	
९. उत्तरी वियतनाम की कृषि में श्रम आदान-प्रदान दल	११	२२ मार्च	१९५७	
१०. भारत-ब्रिटेन व्यापार	११	२२ मार्च	१९५७	
११. निम्न आयवर्गों में उच्चतर प्रजनन दर	११	२२ मार्च	१९५७	
१२. भारतीय रेलों में सहकारिता	१३	२२ अप्रैल	१९५७	२६
१३. भारत का शीशा व शीशा वस्तु उद्योग	१३	२२ अप्रल	१९५७	
१४. श्रीलंका में ग्राम अदालतें	१३	२२ अप्रैल	१९५७	
१५. होम्योपैथी के लिए नया क्षितिज	१३	२२ अप्रैल	१९५७	
१६. लखनऊ नगर का सामाजिक आर्थिक सवक्षण	१३	२२ अप्रैल	१९५७	
१७. 'लाल फंदा'	१६	७ जून	१९५७	२३
१८. ग्रामीण विद्युतीकरण पर पावर इंजीनियरों के विचार	१६	७ जून	१९५७	
१९. सरकारी सेवाओं पर पंत जी के विचार	१६	७ जून	१९५७	
२०. भारत चीन व्यापार	१६	७ जून	१९५७	
२१. ब्रिटेन में जुआखोरी	१६	७ जून	१९५७	
२२. ब्रिटेन और अमरीका में सरकारी वेतन भोक्ता—एक दिलचस्प अध्ययन	१८	७ जुलाई	१९५७	१९
२३. भारतीय संविधान : जनतांत्रिक स्वतंत्रताओं का स्रोत	१८	७ जुलाई	१९५७	
२४. योजना क्षेत्र के एक बड़े बाबू	१८	७ जुलाई	१९५७	
२५. संसद सदस्य के गुण—और महिलायें बेहतर क्यों ?	१८	७ जुलाई	१९५७	

आर्थिक-समाचार-संकलन

भारतीय

	अंक	तिथि		पृष्ठ
१. भारत में औद्योगिक शांति	१	२२ अक्तूबर	१९५६	३१
२. एरनाकुलम से क्विलोन तक नयी छोटी रेल लाइन	१	२२ अक्तूबर	१९५६	३१
३. छोटे उद्योगों को प्राविधिक सहायता	१	२२ अक्तूबर	१९५६	३१
४. औद्योगिक आवास योजना	१	२२ अक्तूबर	१९५६	३२
५. भारत में रंग उद्योग का विकास	१	२२ अक्तूबर	१९५६	३२
६. द्वितीय योजना काल में सामदायिक योजनाओं से रोजगार	१	२२ अक्तूबर	१९५६	३२

	अंक	तिथि	पृष्ठ
७. उत्तर प्रदेश में स्वास्थ्य सेवा	१	२२ अक्तूबर १९५६	३२
८. ताड़ गुड़ उद्योग के विकास में सरकारी सहायता	१	२२ अक्तूबर १९५६	३३
९. दूसरी योजना में रेशम उद्योग का विकास	१	२२ अक्तूबर १९५६	३३
१०. चीनी बनाने के नये कारखाने	१	२२ अक्तूबर १९५६	३३
११. अफीम के इस्तेमाल में कमी	१	२२ अक्तूबर १९५६	३४
१२. राजस्थान की द्वितीय योजना में बेरोजगारी में कमी की संभावना	१	२२ अक्तूबर १९५६	३४
१३. दूसरी योजना में घरेलू उद्योग और ग्रामोद्योग का विकास	२	७ नवम्बर १९५६	३४
१४. भारत में आधुनिक खाद्यान्न गोदामों का विकास	२	७ नवम्बर १९५६	३४
१५. मधु मक्खी पालन उद्योग की उन्नति	२	७ नवम्बर १९५६	३५
१६. चीनी के उत्पादन में वृद्धि	२	७ नवम्बर १९५६	३५
१७. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम का विस्तार और सुविधायें	२	७ नवम्बर १९५६	३५
१८. प्रथम और द्वितीय योजनाओं के अन्तर्गत शक्ति उत्पादन	३	२२ नवम्बर १९५६	३२
१९. उत्तरप्रदेश में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा योजना	३	२२ नवम्बर १९५६	३२
२०. रेल से सीमेंट की ढुलाई में वृद्धि	३	२२ नवम्बर १९५६	३२
२१. भारत में छोटी बचत योजना की प्रगति	३	२२ नवम्बर १९५६	३२
२२. तेल पेरने के उद्योग के बारे में सिफारिश	३	२२ नवम्बर १९५६	३३
२३. खरीफ के दालों के रकबे में कमी	३	२२ नवम्बर १९५६	३३
२४. दूसरी योजना में डीजल इंजनों और पंपों का अधिक उत्पादन	३	२२ नवम्बर १९५६	३३
२५. राजस्थान खनिज विभाग के कार्यों में प्रगति	३	२२ नवम्बर १९५६	३३
२६. कताई की सहकारी मिलों की स्थापना	३	२२ नवम्बर १९५६	३४
२७. नये करों के प्रस्ताव	४	७ दिसम्बर १९५६	३३
२८. विस्थापित क्षतिपूर्त्ति योजना के अन्तर्गत भुगतान	४	७ दिसम्बर १९५६	३३
२९. डाक एवं तार सेवा का विस्तार	४	७ दिसम्बर १९५६	३४
३०. दस्तकारियों के विकास के ८ प्रारम्भिक केन्द्र	४	७ दिसम्बर १९५६	३४
३१. कृषि अनुसंधान की २०० योजनायें स्वीकृत	४	७ दिसम्बर १९५६	३४
३२. १९५५ झंडा दिवस पर ९ लाख ६९ हजार रुपया जमा हुआ	४	७ दिसम्बर १९५६	३४
३३. साइकिल उद्योग का का उत्तरोत्तर विकास	७	२२ जनवरी १९५७	३०
३४. कुण्डा हाइड्रो इलैक्ट्रिक योजना	७	२२ जनवरी १९५७	३०
३५. मोटर गाड़ियों का उत्पादन मांग से अधिक	७	२२ जनवरी १९५७	३०
३६. तपेदिक नियंत्रण में बी. सी. जी. का प्रयोग	७	२२ जनवरी १९५७	३१
३७. भारतीय रेलों की कार्यक्षमता में वृद्धि	९	२२ फरवरी १९५७	३०
३८. १९५६ में नमक के उत्पादन में वृद्धि	९	२२ फरवरी १९५७	३०
३९. पूंजीगत वस्तुओं के आयात में वृद्धि	९	२२ फरवरी १९५७	३०
४०. १९५७ के आम चुनावों के लिए मतदाताओं की संख्या	९	२२ फरवरी १९५७	३०
४१. बिजली करघों के लिए राज्यों को केन्द्रीय अनुदान	९	२२ फरवरी १९५७	३१
४२. अम्बर चरखा योजना की प्रगति	९	२२ फरवरी १९५७	३१
४३. द्वितीय योजना में मशीनी औजारों का दस गुना उत्पादन	९	२२ फरवरी १९५७	३१
४४. द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्राविधिक शिक्षा	१०	७ मार्च १९५७	३४
४५. भारत में उपभोग के लिए अधिक वस्त्र	१०	७ मार्च १९५७	३४
४६. भारत में कोयले के उत्पादन में वृद्धि	१०	७ मार्च १९५७	३५
४७. बागान मजदूरों के लिए प्राविडेन्ट फंड	१०	७ मार्च १९५७	३५
४८. रेशमी कीड़ा पालन उद्योग का विकास	१०	७ मार्च १९५७	३५
४९. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की प्रगति	१०	७ मार्च १९५७	३६
५०. भारत में गेहूँ का आयात	११	२२ मार्च १९५७	२६

	अंक	तिथि		पृष्ठ
५१. १९५६ का रेलवे बजट	११	२२ मार्च	१९५७	२७
५२. बिहार में चीनी मिट्टी की नई खान	११	२२ मार्च	१९५७	२७
५३. १९५६ में चाय का उत्पादन	११	२२ मार्च	१९५७	२७
५४. द्वितीय योजना में सीमेंट का उत्पादन	११	२२ मार्च	१९५७	२७
५५. अफग़ानिस्तान को कपड़ा निर्यात में वृद्धि	११	२२ मार्च	१९५७	२७
५६. मूंगफली की खेती में वृद्धि	११	२२ मार्च	१९५७	२८
५७. कागज और गन्ने का अधिक निर्यात	११	२२ मार्च	१९५७	२८
५८. चाय की छांटन से कैफीन का उत्पादन	११	२२ मार्च	१९५७	२८
५९. द्वितीय योजना में गन्धकी तेजाब का उद्योग	११	२२ मार्च	१९५७	२८
६०. इस्पात के कारखानों पर व्यय तथा उनका विकास	१२	७ अप्रैल	१९५७	३३
६१. खादी एवं ग्रामोद्योग का विकास और व्यय	१२	७ अप्रैल	१९५७	३३
६२. द्वितीय योजना के अन्तर्गत हिन्दी को प्रोत्साहन	२१	७ अप्रैल	१९५७	३४
६३. विद्युत शक्ति का उत्पादन	१२	७ अप्रैल	१९५७	३४
६४. भारत में नमक का उत्पादन	१२	७ अप्रैल	१९५७	३४
६५. कोयले के परिवहन के लिए रेल-सुविधाएँ	१२	७ अप्रैल	१९५७	३५
६६. पिछड़ी जातियों के विद्यार्थियों को छात्र वृत्तियां	१२	७ अप्रैल	१९५७	३५
६७. चीनी के उत्पादन में वृद्धि की संभावना	१२	७ अप्रैल	१९५७	३५
६८. प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय और आयकर	१२	७ अप्रल	१९५७	३५
६९. विस्थापितों के पुनस्संस्थापन पर ३४७ करोड़ रूपये से अधिक खर्च	१२	७ अप्रैल	१९५७	३५
७०. राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं के ३०० नये ब्लाक	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३५
७१. पंजाब का 'अधिक अन्न उपजाओ' कार्यक्रम	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३५
७२. खांडसारी के उत्पादन में वृद्धि	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३५
७३. दूसरी पंचवर्षीय योजना में सिंचाई	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३५
७४. भारत में तार सेवाओं का विकास	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३६
७५. जम्मू और कश्मीर में खनिज भंडार	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३६
७६. कोसी योजना के लिए ऋण	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३६
श्रमिकों के लिए घरों का निर्माण	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३६
७७. १९५६-५७ में खाद्यान्न स्थिति	१६	७ जून	१९५७	४६
७८. औरतों और बच्चों के लिए कल्याण कार्य	१६	७ जून	१९५७	४६
७९. विद्युत एवं सिंचाई योजनाओं की प्रगति	१६	७ जून	१९५७	४६
८०. अंशदायी स्वास्थ्य सेवा योजना की प्रगति	१६	७ जून	१९५७	४६
८१. बेरोजगारों म युवकों की संख्या अधिक	१६	७ जून	१९५७	४७
८२. शहरों में पीने के पानी और नालियों के लिए केन्द्रीय ऋण	१६	७ जून	१९५७	४७
८३. १९५६-५७ के लिए आन्ध्र प्रदेश की (अधिक अन्न उपजाओ योजनायें)	१६	७ जून	१९५७	४७
८४. भारत का मद्यसार (अलकोहल) उद्योग	१६	७ जून	१९५७	४८
८५. चीनी की खपत में वृद्धि	१६	७ जून	१९५७	४८
८६. श्रमिकों को प्राविडेंट फण्ड की अदायगी	१६	७ जून	१९५७	४८
८७. खादी प्रगति के चार महत्त्वपूर्ण वर्ष	१७	२२ जून	१९५७	३२
८८. देश में चीनी उत्पादन में वृद्धि	१७	२२ जून	१९५७	३२
८९. १९५७-५८ में अम्बर चर्खों का निर्माण	१७	२२ जून	१९५७	३२
९०. भारत चैकोस्लावाकिया व्यापार में वृद्धि	१७	२२ जून	१९५७	३२
९१. छोटे उद्योगों की विकास योजनायें	१७	२२ जून	१९५७	३३

	अंक	तिथि		पृष्ठ
९२. उत्तर प्रदेश में विकास एवं श्रम कल्याण कार्यों की प्रगति	१७	२२ जून	१९५७	३३
९३. पंजाब में हाथ करघा उद्योग	१७	२२ जून	१९५७	३३
९४. सूरतगढ़ के केन्द्रीय फारम की प्रगति	१७	२२ जून	१९५७	३४
९५. कृषि उत्पादन म वृद्धि	१८	७ जुलाई	१९५७	२९
९६. राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंडों की उल्लेखनीय प्रगति	१८	७ जुलाई	१९५७	२९
९७. सिंचाई क्षेत्र में उन्नति	१८	७ जुलाई	१९५७	२९
९८. औद्योगिक और खनिज उत्पादन बढ़ा	१८	७ जुलाई	१९५७	२९
९९. लघु तथा ग्रामोद्योगों के प्रशंसनीय कार्य	१८	७ जुलाई	१९५७	३०
१००. यातायात के क्षेत्र में प्रगति	१८	७ जुलाई	१९५७	३०
१०१. अनुमानित खर्च और धन प्राप्ति	१८	७ जुलाई	१९५७	३१
१०२. जीवन बीमा निगम की प्रगति	१९	२२ जुलाई	१९५७	२५
१०३. सम्पदा शुल्क की वसूली	"	"		२५
१०४. चने के उत्पादन में वृद्धि	"	"		२५
१०५. सरकारी आमदनी के कुछ साधन	"	"		२६
१०६. दिल्ली की भूमि संरक्षण तथा वन संबंधी योजनाएं	"	"		२६
१०७. हिन्दी प्रचार के लिए सरकारी सहायता	"	"		२७
१०८. बाजरे के उत्पादन में वृद्धि	"	"		२७
१०९. मद्रास राज्य में खनिज लोहा तथा अन्य खनिज	"	"		२७
११०. ज्वार के उत्पादन में वृद्धि	"	"		२७
१११. बिजली के उत्पादन में वृद्धि	"	"		२७
११२. मई में कोयले के उत्पादन में वृद्धि	२२	७ सितम्बर	१९५७	३३
११३. उत्तर प्रदेश में पशुधन का विकास	"	"		"
११४. अलसी के तेल के निर्यात से विदेशी मुद्रा का उपार्जन	"	"		"
११५. द्वितीय योजना में २१.५ करोड़ एकड़ पर शुद्ध बीज का प्रयोग	"	"		"
११६. निम्न आय वर्ग के लिये गृह निर्माण योजना	"	"		"
११७. कल्याण विस्तार योजनाएं	"	"		३४
११८. प्राविधिक शिक्षा का विस्तार	"	"		"
११९. गन्ना और चीनी का उत्पादन	"	"		"
१२०. औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि	२३	२२ सितम्बर	१९५७	५२
१२१. दूसरी योजना के अन्तर्गत नगरों में मकान	"	"		"
१२२. सरकारी खर्च में बचत	"	"		"
१२३. भारत में मैंगनीज खनिज का उत्पादन	"	"		"
१२४. माईथान बांध का उद्घाटन	२४	७ अक्तूबर	१९५७	२६
१२५. औद्योगिक वित्त निगम द्वारा १९५६-५७ में ऋण	"	"		"
१२६. सरकारी खानों से कोयले का उत्पादन	"	"		२७
१२७. लघु उद्योग कारखानों की उत्पादन पद्धति में सुधार	"	"		"
१२८. भूतपूर्व अपराधी जातियों की प्रगति	"	"		"
विदेशों				
१. विदेशों में भारतीय उद्योग प्रदर्शनियां	१	२२ अक्तूबर	१९५६	३५
२. भारत से लाख-चपड़ा निर्यात	"	"		"
३. भारत और चिली में व्यापार करार	"	"		३६
४. आस्ट्रेलिया से भारत में भेड़ों के निर्यात की सम्भावना	"	"		"
५. भारत-जापान व्यापार में उल्लेखनीय वृद्धि	२	७ नवम्बर	१९५६	३६
६. भारत में इटली से आयात में वृद्धि	"	"		"

	अंक	तिथि		पृष्ठ
७. एशिया और सुदूरपूर्व में कोयले का उत्पादन	३	२२ नवम्बर	१९५६	३३
८. विश्व में रबड़ का उत्पादन और उपभोग	,,	,,		,,
९. विश्व कारखानों में जहाज निर्माण	,,	,,		,,
१०. सं. रा. सं. द्वारा प्रशिक्षण सहायता में वृद्धि	,,	,,		,,
११. चाय उत्पादन में भारत सबसे आगे	४	७ दिसम्बर	१९५६	३५
१२. कोलम्बो योजना के अन्तर्गत प्राविधिक सहायता	,,	,,		,,
१३. कोलम्बो योजना के अन्तर्गत प्राविधिक सहायता	७	२२ जनवरी	१९५७	३१
१४. संसार में लोहे और इस्पात का कारखाना	,,	,,		३२
१५. मिस्र में सड़कें	,,	,,		,,
१६. चीन के अल्प-जातीय क्षेत्रों में आर्थिक प्रगति	९	२२ फरवरी	१९५७	३२
१७. संसार के जहाज कारखानों में जहाजों का निर्माण	,,	,,		,,
१८. संसार में इस्पात का उत्पादन	,,	,,		,,
१९. १९५७ के लिये यूगोस्लाविया की आर्थिक योजना	१०	७ मार्च	१९५७	३७
२०. स्वेडन में सड़कों का आधुनिकीकरण	,,	,,		,,
२१. सं. रा. अमरीका में मुद्रण उद्योग	,,	,,		,,
२२. श्रीलंका से भारत का व्यापार	,,	,,		३८
२३. १९५६ में एशियाई देशों को भारत से वस्त्र-निर्यात में कमी	११	२२ मार्च	१९५७	२९
२४. भारत-बर्मा वित्तीय करार पर हस्ताक्षर	,,	,,		,,
२५. कनाडा की जनसंख्या में वृद्धि	,,	,,		,,
२६. भारत से मिस्र को चाय के निर्यात में वृद्धि	,,	,,		३०
२७. पूर्वी पाकिस्तान में पटसन की प्रेसें	,,	,,		,,
२८. संसार में १९५५ में टीन की प्लेटों का उत्पादन	,,	,,		,,
२९. विश्व स्वास्थ्य संघटन द्वारा पहली योजना के अन्तर्गत भारत को सहायता	१२	७ अप्रैल	१९५७	३६
३०. भारत और आस्ट्रेलिया के बीच व्यापार	,,	,,		३७
३१. जहाज-निर्माण के मूल्य में ५ गुनी कमी	,,	,,		,,
३२. विश्व में रुई की खपत और उपज	,,	,,		३२
३३. १९५६ में विश्व में सोने का उत्पादन बढ़ा	,,	,,		,,
३४. मिश्र और हंगरी को भारत द्वारा सहायता	१३	२२ अप्रैल	१९५७	३७
३५. यूरोपीय देशों में टेलीविजन का विकास	,,	,,		,,
३६. चेकोस्लोवाकिया की दूसरी पंचवर्षीय योजना	,,	,,		,,
३७. पाकिस्तान की राष्ट्रीय आय में कमी	,,	,,		,,
३८. जापान द्वारा भारतीय कोयले का आयात	,,	,,		,,
३९. विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय	१६	७ जून	१९५७	४९
४०. अमरीका में कृषि का ८६ प्रतिशत पारिवारिक खेती के अन्तर्गत	,,	,,		,,
४१. विभिन्न देशों में दूध का उत्पादन और उपयोग	,,	,,		,,
४२. रूस में कृषि फार्मों की उपज में वृद्धि	१७	२२ जून	१९५७	३४
४३. आस्ट्रेलिया से अधिक निर्यात की सम्भावना	,,	,,		,,
४४. विश्व बैंक द्वारा ट्राम्बे थर्मल प्लांट के लिये द्वितीय ऋण	,,	,,		३५
४५. इटली में विद्युत उद्योग की प्रगति	,,	,,		,,
४६. १९५५-५६ में विश्व व्यापार	१८	७ जुलाई	१९५७	३१
४७. भारत द्वारा रूसी सहायता का उपयोग	,,	,,		३२
४८. संयुक्त राष्ट्र संघ के प्राविधिक सहायता कार्यक्रमों के सदस्यों की देन	,,	,,		,,
४९. ब्रिटेन से ऊनी कपड़े का निर्यात	१९	२२ जुलाई	१९५७	२८

	अंक	तिथि		पृष्ठ
५०. भारत का विदेशी व्यापार	१९	२२ जुलाई	१९५७	२८
५१. भारत के व्यापारिक जहाज	"	"		"
५२. १९५७ के उत्तरार्ध में भारत-ब्रिटेन व्यापार में वृद्धि	२२	७ सितम्बर	१९५७	३६
५३. आस्ट्रेलिया का ऊन-उत्पादन बढ़ने की आशा	"	"		"
५४. १९५६ म भारत-श्रीलंका व्यापार	"	"		"
५५. १९५६-५७ में चाय से भारत को आय	"	"		"
५६. भारत-आस्ट्रेलिया व्यापार-करार की अवधि बढ़ी	२३	२२ सितम्बर	१९५७	५४
५७. लंदन का भारतीय सामग्री खरीद विभाग	"	"		"
५८. भारत का कोरिया गणतंत्र से व्यापार	"	"		"
५९. विदेशी पर्यटकों की संख्या में वृद्धि	"	"		"
६०. भारत में विदेशी पूंजी	"	"		"
६१. आस्ट्रेलिया में ऊन उत्पादन वृद्धि पर	"	"		"
६२. विश्व का चीनी-उत्पादन और भारत का चीनी निर्यात	२४	७ अक्तूबर	१९५७	२८
६३. ब्रिटेन में चाय का आयात : भारत से आयात में वृद्धि	"	"		"
६४. सोवियत रूस में जनता द्वारा बचत	"	"		"
६५. विश्व में गेहूं का व्यापार	"	"		"
६६. चीन में पटसन के उत्पादन का विस्तार	"	"		"
६७. जून १९५७ में भारत का वैदेशिक व्यापार	"	"		"

सांख्यिकी परिशिष्ट और तालिकाएं

१. द्वितीय योजनाकाल के प्रमुख लक्ष्य	५-६	५ जनवरी	१९५७	१७१
२. प्रथम योजनाकाल के उत्पादन संबंधी आंकड़े	५-६	५ जनवरी	१९५७	१७१
३. पुनर्गठित राज्यों में कृषि : भूमि का उपयोग	"	"		१७२
४. भारत में गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्रफल, गुड़ का उत्पादन तथा गन्ने की उपज	"	"		१७३
५. भारत में भूदान आन्दोलन की प्रगति	"	"		१७४
६. संपत्तिदान, जीवनदान, ग्रामदान, आदि की प्रगति	"	"		१७५
७. जापान में भूमि-सुधार के परिणाम	"	"		१७६
८. औद्योगिक उत्पादन की प्रगति	२०-२१	१५ अगस्त	१९५७	१२१
९. भारतीय राज्य व्यापार निगम : निर्यात संबंधी ठेके	२२	७ सितम्बर	१९५७	२६
१०. विभिन्न राज्यों में लगान का नियमन	२३	२२ सितम्बर	१९५७	५५
११. भूदान यज्ञ आन्दोलन की प्रगति	१४-१५	७ मई	१९५७	१०७
१२. सम्पत्तिदान, जीवनदान, ग्रामदान, आदि की प्रगति	"	"		१०८

का अन्त होते-होते सामान्य-बाजार के सभी सदस्य देश सामान्य रूप से इन तीसरे देशों से आने वाले केले पर २० प्रतिशत, काफी पर १६ प्रतिशत और कहवा पर ९ प्रतिशत का शुल्क लगाने लगेंगे। अतः स्पष्ट है कि जिन देशों के निर्यात फ्रांसीसी संघ के निर्यात से प्रतियोगिता करते हैं, उन्हें इस प्रणाली के विरुद्ध एक वाजिब शिकायत है, और सम्भवतः वे 'व्यापार और शुल्क-पद्धति संबंधी सामान्य-समझौते' (गैट) के अधिवेशन में इसके विरुद्ध अपनी आवाज उठायेंगे।

भारतीय प्रतिक्रिया

इस बात की सम्भावना है कि व्यापार और शुल्क-पद्धति संबंधी सामान्य-समझौते के अधिवेशन में भारतीय प्रतिनिधिमंडल यूरोपीय बाजार योजना का उस हद तक विरोध करेगा, जहां तक कि इस योजना के फलस्वरूप इसके प्रतिपादक देशों के एशियाई-अफ्रीकी उपनिवेशों की अर्थ-व्यवस्था शासक देशों पर ही पूर्ण रूप से निर्भर बनी रहने के लिये बाध्य की जायगी। शुल्क सुविधाओं के कारण योजना में शामिल ६ सदस्य शासक देश अपने एशियाई-अफ्रीकी उपनिवेशों के कच्चे मालों के एकमात्र उपभोक्ता बन जायेंगे। इसका परिणाम वही होगा जो कि अन्य एशियाई देशों में, जिनमें भारत भी शामिल है, साम्राज्यवादी शासन के अन्तर्गत पहले हो चुका है, अर्थात् परतंत्र उपनिवेशों की अर्थ-व्यवस्था का पूर्ण विनाश। भारत ने अभी तक सभी परतंत्र उपनिवेशों के हितों का पक्ष-पोषण किया है और आजादी हासिल करने में उनकी मदद की है। अतः यूरोपीय बाजार योजना के प्रतिपादक देशों के एशियाई-अफ्रीकी उपनिवेशों पर इस योजना के पड़ने वाले प्रभावों के प्रति वह अन्यमनस्क नहीं रह सकता।

यूरोपीय बाजार योजना भारत के व्यापारिक हितों के लिये भी हानिकारिक सिद्ध हो सकती है। उदाहरण के लिए, अगर इस योजना के सदस्य देशों के समुद्र पार वाले उपनिवेश इस योजना से सम्बद्ध कर दिये जायेंगे, तो भारतीय वस्तुओं के लिए इन क्षेत्रों का दरवाजा बन्द हो जायगा। इससे भारत को निर्यात संबंधी आयोपार्जन की गहरी क्षति उठानी पड़ेगी।

दूसरे, सामान्य-बाजार के निर्माण के फलस्वरूप, जैसा कि हमने देखा है, उन देशों के देशी उद्योगों की क्षमता बहुत बढ़ जायगी और भारतीय वस्तुओं को, मूल्य और किस्म, दोनों ही दृष्टिकोणों से सामान्य-बाजार के भीतर उसके सदस्य देशों की वस्तुओं के साथ असमान प्रतियोगिता का सामना करना पड़ेगा।

तीसरे, सामान्य-बाजार वाले देशों में समान शुल्क दरें लागू होंगी और भारतीय व्यापार को स्वभावतः उन सभी मामलों में क्षति उठानी पड़ेगी, जहां वर्तमान दरें उन दरों से कम होंगी जो कि सामान्य-बाजार योजना के अन्तर्गत निर्धारित की जायंगी। यद्यपि इस योजना से जिस हद तक भारतीय निर्यातों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, वह अधिकांशतः सामान्य-बाजार के लिये निर्धारित शुल्क दरों पर निर्भर करेगी, फिर भी यह आशंका है कि भारत के वस्त्रों और पटसन के निर्यातों पर सबसे अधिक धक्का पहुंचेगा।

अतः, यह स्पष्ट है कि गैर-सदस्य देशों के लिये अधिमान-प्राप्त तथा विभेदक शुल्क दरों का प्रतिपादन करने के कारण यूरोपीय सामान्य-बाजार योजना अनेक-पक्षीय व्यापार के विकास के विरुद्ध है, जो कि व्यापार और शुल्क-पद्धति संबंधी सामान्य-समझौते (गैट) का उद्देश्य है। सम्भवतः, विश्व इतिहास में पहले कभी भी ऐसा अवसर नहीं आया है, जबकि देशों के आर्थिक विकास में अपेक्षाकृत अधिक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता रही हो। अत्यधिक विकसित और अर्द्ध-विकसित देशों के बीच मौजूद आर्थिक सम्पन्नता की गहरी असमानता की मांग है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अनेक-पक्षीय प्रणाली के आधार पर संचालित हो। व्यापार और शुल्क-पद्धति संबंधी सामान्य-समझौते का लक्ष्य यही है। अब यह देखना है कि 'गैट' के वर्तमान अधिवेशन में प्रस्तावित यूरोपीय बाजार योजना के संबंध में इसके सदस्य देशों की प्रतिक्रिया क्या है।

आर्थिक टिप्पणियां

सुनील गुहा

अक्तूबर १९५७-मार्च १९५८ के लिए आयात नीति

आगामी ६ महीनों के लिए जो आयात नीति घोषित की गयी है, उसमें बहुत ही अधिक किस्म की वस्तुओं पर रोक लगायी गई है। इस कारण यह नीति देखने में अरुचिकर प्रतीत हो सकती है, किन्तु देश की विदेशी विनिमय संबंधी स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए इससे बचना मुश्किल था। वस्तुतः, जुलाई-सितम्बर १९५७ की तिमाही में आयात-लाइसेंसों पर लगायी गई कड़ी रोक से ही यह घोषणा अपेक्षित थी। नयी आयात नीति का निर्माण दो उद्देश्य हासिल करने के लिए हुआ है: (१) यथासंभव अधिकतम मात्रा में विदेशी विनिमय के साधनों को सुरक्षित करना, और (२) देशी उत्पादकों को बढ़ावा देना। नीति के सामान्य सिद्धांतों का निर्माण करने में निर्यातकर्त्ताओं और देशी बाजार के लिए उत्पादन करने वालों, दोनों ही की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा गया है। अगर जुलाई-सितम्बर की तिमाही में स्थापित आयातकर्त्ताओं पर कड़ी रोक लगायी गयी थी, तो नयी नीति में उन्हें कुछ किस्म की औद्योगिक और उपभोक्ता वस्तुएँ आयात करने की अनुमति दी गयी है। किन्तु, विलासिता और करीब-करीब विलासिता की वस्तुओं, जैसे विदेशी शराब, शृंगार के सामान, इत्र, बाजों, तम्बाकू के सामान, पेय और दवाइयों, दाढ़ी बनाने के ब्लेड, साइकिल, घड़ी, फाउन्टेन पेन, और ऊनी कपड़ों के आयात पर अंशतः या पूर्ण रूप से रोक लगा दी गयी है।

इसमें संदेह नहीं कि आयात सम्बन्धी रोक से उपभोक्ताओं, और विशेष रूप से निम्न आय वर्ग के लोगों, को कठिनाई होगी, लेकिन किसी भी प्रकार के आयोजन में त्याग आवश्यक होता है और आयोजन संबंधी आवश्यकतायें पूरी करने के लिए कभी-कभी उन्मुक्त उपभोग पर रोक लगानी ही पड़ती है। देश की विदेशी विनिमय संबंधी स्थिति की मांग है कि हमारा आयात औद्योगिक कच्चे माल, पूंजीगत वस्तुओं और ऐसी अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुओं तक ही, जिन्हें हम देश में खुद पैदा नहीं करते, सीमित रहे।

अगर हमारे देशी उपक्रमी, इस अवसर का फायदा उठा सकें, तो निश्चय ही नई आयात नीति उन्हें एक प्रकार का आकस्मिक संरक्षण प्रदान करती है जो कि शुल्क की दीवाल से अधिक प्रभावकारी साबित हो सकता है। किन्तु, हमारे देशी उद्योग निरोधात्मक आयात नीति द्वारा उत्पन्न खाई को केवल उसी दशा में भर सकते हैं, जबकि वे अपने उत्पादनों की किस्म सुधार लें और उनका मूल्य घटायें।

इस समय निर्यात को प्रोत्साहन देने की सख्त जरूरत है, क्योंकि विदेशी विनिमय के उपार्जन की मात्रा बढ़ाने का यह एक विश्वसनीय उपाय है। नयी योजना के अन्तर्गत ४६ वस्तुओं के आयात के लिए विशेष लाइसेंस दिये जायेंगे, क्योंकि इन वस्तुओं का फिर से निर्यात किया जायेगा। इससे निश्चय ही निर्यात को प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

निर्यात जोखिम बीमा निगम

बम्बई में गत ४ अक्तूबर को केन्द्रीय वाणिज्य और उद्योग मंत्री श्री मुरार जी देसाई द्वारा निर्यात जोखिम बीमा निगम का उद्घाटन, हमारे निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन देने की दिशा में, एक अन्य महत्त्वपूर्ण कदम का सूचक है। द्वितीय योजना के अन्तर्गत निर्यात प्रोत्साहन को दी गयी उच्च प्राथमिकता से ही एक निर्यात ऋण-प्रत्याभूति योजना चालू करने का विचार उत्पन्न हुआ। इस बात का पहले से ही अनुमान था कि योजना के मध्य में ही विदेशी विनिमय संबंधी कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी, और यह महसूस करना एकदम उचित था कि निर्यात प्रोत्साहन में सहायता पहुँचाने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि निर्यातकों को जितनी जोखिम उठानी पड़ती है, उनमें से कम से कम कुछ से उन्हें संरक्षण प्रदान किया जाय। तदनुसार,

भारत सरकार ने एक निर्यात ऋण-प्रत्याभूति समिति नियुक्त की, जिसका कार्य इस बात पर रिपोर्ट देना था कि ऋण संबंधी जोखिमों के विरुद्ध निर्यातकर्त्ताओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए किसी संगठन की स्थापना करना कहां तक संभव है। इस समिति ने सिफारिश की कि एक महत्त्वपूर्ण निर्यात प्रोत्साहक उपाय के रूप में तत्काल एक निर्यात ऋण बीमा चालू किया जाय और निर्यात जोखिम बीमा निगम स्थापित किया जाय, जिसकी अधिकृत पूंजी ५ करोड़ रुपये हो जिसे पूर्णतः राज्य प्रदान करे। समिति ने सुझाव दिया कि निगम जहाज में माल लादने के पहले के जोखिमों को, जो कि उस समय से ही प्रारम्भ हो जाते हैं, जब कि निर्यातकर्त्ता विदेशी क्रेताओं से सौदा पक्का कर लेता है, तथा जहाज पर माल भरने के बाद के जोखिमों को, जो कि भारत से माल चल देने के समय से ही शुरू हो जाते हैं, अपने अंचल में ले ले। सरकार ने समिति की सिफारिश मंजूर कर ली, और इस प्रकार निर्यात जोखिम बीमा निगम का उद्भव हुआ।

जो लोग निगम की स्थापना से बीमा के निजी क्षेत्र में हस्तक्षेप की शंका करते हैं, उन्हें श्री मुरार जी ने साफ उत्तर देते हुए कहा : "कोई भी सामान्य बीमा कम्पनी निर्यात व्यापार में अन्तर्भूत राजनीतिक जोखिम का जिम्मा नहीं लेती। जहां व्यापारिक जोखिमों के जिम्मा लेने का सवाल पैदा होता है, वहां भी कोई बीमाकर्त्ता ऐसा नहीं है जो कि निर्यात व्यापार की तो बात अलग है, देशी व्यापार के जोखिमों का ही जिम्मा लेता हो।" उन्होंने यह भी कहा कि जब निर्यात ऋण-प्रत्याभूति समिति की रिपोर्ट भारतीय बीमा संघ के पास भेजी गयी, तब उस पर कोई आलोचना नहीं पेश की गयी, जिससे साफ जाहिर हो गया कि सामान्य बीमा करने वाले बीमाकर्त्ता निर्यात ऋण बीमा में दिलचस्पी नहीं रखते।

निर्यात ऋण-प्रत्याभूति समिति की रिपोर्ट के अनुसार, देश के निर्यात के लगभग ६० प्रतिशत की पृष्ठभूमि में ऋण-पत्र होते हैं, और बैंक इस प्रकार के निर्यातों के सभी ऋण संबंधी जोखिम का भार उठाते हैं। फिर भी, उस निर्यात की मात्रा बहुत काफी है, जिनके पीछे इस तरह के ऋण-पत्रों का आधार नहीं। अतः यह निगम बीमे का संरक्षण प्रदान करके, निर्यात की वित्त-व्यवस्था सम्बन्धी कठिनाइयां कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। सरकार ने निर्यात ऋण-प्रत्याभूति समिति के इस बहुसंख्यक सुझाव को स्वीकार कर लिया है कि इस संबंध में किसी प्रकार की जोर जबर्दस्ती का प्रयोग नहीं किया जायेगा और किसी भी निर्यातकर्त्ता को इस बात की आजादी होगी कि वह अपने निर्यातों का बीमा कराये या नहीं। नये निगम के पास पांच करोड़ रुपये की अधिकृत पूंजी होगी, २.५ करोड़ रुपये की प्रार्थित पूंजी होगी, ५० लाख रुपये की परिदत्त पूंजी होगी, और इसके सभी हिस्से सरकार लेगी। निगम को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपनी प्रार्थित पूंजी और प्रारक्षित निधियों के दस गुने के बराबर जोखिम का जिम्मा ले सकता है। हम आशा करते हैं कि देश के असंख्य छोटे और मध्यम श्रेणी के व्यापारी इस बीमे की योजना से लाभ उठायेंगे और इस प्रकार अपने निर्यात व्यापार को तरक्की देंगे। हमारे देश की विदेशी विनिमय संबंधी स्थिति कभी भी पहले आज की तरह गंभीर नहीं हुई थी, और अगर योजना को बिना किसी कठिनाई के सफल बनाना है, तो विदेशी विनिमय प्राप्त करने के लिए निर्यात को प्रोत्साहन देना ही पड़ेगा।

विश्व खाद्य और कृषि संगठन की कृषि आयोजन और प्रबन्ध गोष्ठी

ऐसे समय में, जब भारत कठिन खाद्य स्थिति पर विजय पाने के लिए खेती की उपज बढ़ाने का हर प्रयत्न करने में संलग्न है, अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य और कृषि संगठन द्वारा ४ सप्ताह की कृषि आयोजन और प्रबन्ध सम्बन्धी गोष्ठी का आयोजन विशेष रूप से श्लाघ्य है। यह गोष्ठी १४ अक्तूबर १९५७ से प्रारम्भ हुई है। इसमें श्रेष्ठतर प्रबन्ध द्वारा खेती की उपज बढ़ाने की समस्या पर विचार किया जायेगा। पहली गोष्ठी गत वर्ष टोकियो में हुई थी जो बहुत सफल रही। अतः, नई दिल्ली की गोष्ठी की ओर उत्सुकता से देखना स्वाभाविक है। गोष्ठी के कार्यक्रम के अन्तर्गत ४ बार क्षेत्रीय यात्रा, जिसमें से प्रत्येक द्वारा काफी मात्रा में खेती के प्रबन्ध के एक विशेष ढंग, जैसे गांव के आधार पर खेती के आयोजन और प्रबन्ध में वैकल्पिक बजट के परिणाम, सिंचाई की सुविधा होने पर खेती के प्रबन्ध और आयोजन में परिवर्तन, सामुदायिक विकास का अध्ययन और सामाजिक तथा आर्थिक मानदण्डों मे परिवर्तन और खेती का आयोजन और प्रबन्ध पर प्रकाश डालना; खेती के क्षमतापूर्ण आयोजन

और प्रबन्ध के विभिन्न पक्षों पर भाषण; यंत्रशाला के प्रयोगों द्वारा खेती की प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याओं पर प्रयोगात्मक प्रदर्शन; और प्रत्येक देश में खेती के प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याओं और कार्यक्रमों पर रोशनी डालना शामिल है। एशिया के विभिन्न देशों से गोष्ठी में भाग लेने के लिए आने वाले १४ विशेषज्ञ अपने-अपने देशों के खेती के प्रबन्ध सम्बन्धी अनुभवों से गोष्ठी को अवगत करेंगे। भारत अपने पड़ोसी देशों के अनुभवों से काफी सबक सीख सकता है।

अलग-अलग फार्मों के प्रबन्ध की समस्या खेती की इकाई के आकार, खेती के कार्यों को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए आवश्यक साधनों की मात्रा, इन आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए पूर्त्ति के साधनों तक पहुँच, जमीन पर इन साधनों के क्षमतापूर्ण उपयोग, खेती की उपज के विक्रय के लिए उपलब्ध सुविधाओं तथा उस सामान्य अर्थ-व्यवस्था पर जिसके अन्तर्गत इकाई क्रियाशील होती है, निर्भर करती है। सामान्य तौर पर, जहां फार्मों का आकार लाभकर हो और उनका प्रबन्ध गुणी किसान कर रहे हों, वहां समस्याएं गम्भीर नहीं। प्रत्येक इकाई स्वयं अपनी परिस्थिति के अन्तर्गत, क्षमतापूर्ण ढंग पर क्रियाशील हो सकती है और सहयोगी कार्यों का क्षेत्र उत्पादन की पूरक सहायताओं की पूर्त्ति तक ही सीमित रहेगा। भारत जैसे देश में, जहां आराजियां छोटी-छोटी अलाभकर इकाइयों में विभाजित हैं, और छितरे खेतों पर खेती होती है, जहां पूंजी का अभाव है और किसानों का प्राविधिक ज्ञान अत्यन्त सीमित है, खेती के प्रबन्ध की समस्यायें सर्वथा भिन्न प्रकार की होंगी। ऐसे देश में स्पष्टतः कोई न कोई ऐसा साधन ढूंढ़ना पड़ेगा, जिससे व्यक्तिगत किसानों के साधन एकत्र किये जा सकें, ताकि उसकी सहायता से खेती-बाड़ी का धंधा अधिक तर्कसंगत ढंग पर संचालित किया जा सके। छोटे-छोटे टुकड़ों पर एकदम व्यक्तिगत किस्म की खेती, जैसी कि अधिकांश एशियाई देशों में प्रचलित है, आर्थिक दृष्टि से वर्बादी भरी और सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय है, इसलिए, गोष्ठी द्वारा इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करना बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा कि प्रत्येक देश के अनुभवों के आधार पर श्रेष्ठतर प्रबन्ध और क्रियाशीलता प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत खेती को सहकारिता के क्षेत्र में किस हद तक लाया जा सकता है ?

दस्तकारी बोर्ड की सराहनीय प्रगति

अखिल भारतीय दस्तकारी बोर्ड ने देश के दस्तकारी उद्योग की आर्थिक क्षमता बढ़ाने के लिए बहुत ही श्लाघ्य कार्य किया है। उसका यह कार्य उसकी स्थापना से ही जारी है। १९५६-५७ के वर्ष की बोर्ड की रिपोर्ट से यह बात एकदम स्पष्ट है। बोर्ड ने ४२ उद्योगों की प्रगति पर रोशनी डाली है जिनमें मिट्टी के बर्तन, चटाई, खिलौने, छींट के कपड़े, बांस के सामान, बेंत सम्बन्धी उद्योग, हाथी दांत के उद्योग, ऊन और ऊनी सामान, सूती कपड़े की बुनाई, रेशमी साड़ी, आदि उद्योग शामिल हैं। बोर्ड के कार्य हैं: (१) राज्य सरकारों द्वारा प्राप्त योजनाओं के लिए केन्द्रीय सरकार से सहायता की सिफारिश और (२) केन्द्रीय सरकार द्वारा चालू की जाने वाली योजनाओं का सुझाव देना। अभी तक बोर्ड ने न सिर्फ दस्तकारी उद्योगों के लिए वित्तीय सहायता की मंजूरी दी है, बल्कि उनके द्वारा तैयार वस्तुओं के क्रय-विक्रय में मदद तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों द्वारा निर्यात बाजारों के विकास में सहायता भी दी है। कुछ ही समय पहले बोर्ड ने भारतीय सहकारी संघ के जरिये दस्तकारी द्वारा तैयार सामान के क्रय-विक्रय की समस्या के विभिन्न पहलुओं का भी सर्वेक्षण किया था। संघ द्वारा दिये गये सुझावों पर कार्यवाही भी कर दी गई है। इसके अलावा, बोर्ड ने विदेशों में दस्तकारियों के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए लगभग २४ अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में हिस्सा लिया। किन्तु दस्तकारियों के सम्मुख अभी भी कारखानों द्वारा बने सामानों से प्रतियोगिता की जबर्दस्त समस्या है। वे विकास संबंधी प्रयत्नों के बावजूद निर्बल होती जा रही हैं। चूंकि दस्तकारी उद्योग और कारखानों के बीच विशिष्ट क्षेत्रों में प्रतिस्पर्द्धा की मात्रा और उसके स्वभाव के बारे में आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए अखिल भारतीय दस्तकारी बोर्ड ने दस्तकारियों और तत्संबंधी मशीनी उद्योगों के बीच प्रतियोगिता के विशेष अध्ययन का संगठन किया है। जब यह रिपोर्ट प्रकाशित हो जायेगी, तब उससे संभवतः संस्थात्मक चुंगी लगाने, आर्थिक सहायता देने, या क्षेत्र सुरक्षित करने की वांछनीयता पर कुछ रोशनी पड़ेगी।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत, दस्तकारियों के विकास के लिए ९ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी है। १९५६-५७ के लिए बोर्ड के जरिये दस्तकारियों के विकास के उद्देश्य से भारत सरकार ने ९० लाख रुपये का बजट मंजूर किया है, जिसमें से ६० लाख रुपये अनुदान और ३० लाख रुपये ऋण के रूप में दिये गये हैं। इस वर्ष के भीतर बोर्ड ने राज्य सरकारों की योजनाओं की जांच की और भारत सरकार से १४० नई योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता देने की सिफारिश की। इसी अवधि के लिए बोर्ड ने १२९ योजनाएं लागू करने के उद्देश्य से ५९.२५ लाख रुपये की मंजूरी प्राप्त की। रिपोर्ट में यह शिकायत की गई है कि १६ राज्य सरकारों में से, जिनमें कि वह मंजूरशुदा रकम बांटी गई है, कुछ थोड़ी सी ही सरकारों ने अपने कार्यों के बारे में रिपोर्ट दी है। राज्यों के कार्यक्रम लागू करने में विलम्ब होने की वजह पर रोशनी डालते हुए बोर्ड ने बतलाया है कि राज्य स्तर पर दस्तकारियों के विकास को बढ़ावा देने के लिए कोई विशेष व्यवस्था नहीं है। इसके अलावा, विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन या देख रेख के लिए राज्य स्तर की समितियां या बोर्ड नहीं हैं और न ही राज्यों में प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए पर्याप्त कर्मचारी हैं। बोर्ड राज्य सरकारों की सहायता के लिए क्षेत्रीय संगठन की व्यवस्था नहीं कर सका। बोर्ड का कहना है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा मंजूरी प्राप्त करने में औपचारिकतापूर्ण कार्यवाहियों का सामना करना पड़ता है। १९५६-५८ के लिए बोर्ड के कार्यक्रम के अन्तर्गत फोर्ड फाउन्डेशन से मिले अनुदान की सहायता से एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन दल की नियुक्ति करना शामिल है। यह दल राष्ट्रीय संगठन संबंधी ढांचे के विषय में सुझाव देगा जो कि शिल्पियों को इस बात की सूचना देगा कि वे किन वस्तुओं का निर्माण और बिक्री करें। वह जो अन्य सुझाव देगा, उनमें शिल्पियों को प्राविधिक विस्तार सेवा प्रदान करना तथा ऋण, डिजाइनिंग, कच्चे माल की प्राप्ति और क्रय-विक्रय संबंधी जरूरतों के बारे में नीति निर्धारित करना और संगठन बनाना शामिल है। बोर्ड ३ प्रादेशिक सर्वेक्षण दल भी नियुक्त करना चाहता है, जो कि अपने-अपने क्षेत्रों में दस्तकारियों का अलग अलग अध्ययन करेंगे और सूती वस्त्र, हाथ की रंगाई के उद्योग और मिल की रंगाई उद्योग के बीच प्रतियोगिता संबंधी अध्ययन को पूरा करेंगे। ये दल हाथ की रंगाई उद्योग की सहायता के लिए उपायों का सुझाव देंगे। दस्तकारी उद्योगों को परोपजीवी कारखानेदार व्यापारियों के चंगुल से मुक्त करने के लिए बोर्ड देश भरमें क्रय-विक्रय केन्द्रों का जाल बिछा देना चाहता है जो कि अपने अपने क्षेत्रों में विक्रय की वस्तुओं को बेचेंगे। शुरू में, हर राज्य सरकार अपने इलाके में, केन्द्रों की स्थापना करेंगी, लेकिन इसके पीछे भावना यह है कि अन्त में इसका प्रबन्ध सहकारी और रजिस्ट्री शुदा संगठनों को सौंप दिया जायेगा। निश्चय ही, इन उपायों के साथ-साथ सहकारी विकास, नई डिजाइनों के विकास, निर्यात को प्रोत्साहन, प्राविधिक सुधार, प्रशिक्षण और नमूने के केन्द्रों संबंधी बोर्ड के कार्यक्रम से भारत के दस्तकारी उद्योगों को बहुत सहायता मिलेगी और भारत तथा बहुत से दूसरे देशों के उपभोक्ता इन वस्तुओं को तरजीह देने लगेंगे।

उत्तर प्रदेश द्वारा आराजी की उच्चतम सीमा का कम करना

इलाहाबाद से २८ सितम्बर को लिखते हुए दैनिक **स्टेट्समैन** के संवाददाता ने बतलाया है कि उत्तर प्रदेश सरकार जमींदारी उन्मूलन कानूनों को संशोधित करने के प्रश्न पर विचार कर रही है। विचाराधीन प्रस्ताव आराजियों की अधिकतम सीमा को, जिसे कि कोई व्यक्ति भविष्य में उपार्जित कर सकता है, ३० एकड़ (वर्तमान सीमा) से घटा कर लगभग १३ एकड़ कर देता है। वर्तमान ३० एकड़ की सीमा १९५१ में जमींदारी उन्मूलन के बाद भविष्य में उपार्जित आराजी पर ही लागू होती है। लेकिन कानून के अन्तर्गत बहुत से जमींदारों और भूस्वत्त्वाधारियों को ३० एकड़ से भी अधिक आराजी अपने कब्जे में रखने की स्वीकृति प्राप्त थी, बशर्ते कि वे जमींदारी के उन्मूलन के समय उस पर वस्तुतः काबिज रहे हों। उत्तरप्रदेश के जमींदारी उन्मूलन कानून के अन्तर्गत इस दोष के फलस्वरूप, अधिकार प्राप्त जमींदारों ने जबर्दस्ती और गैर-कानूनी तौर पर काश्तकारों को बेदखल करना शुरू किया, और इस प्रकार, उनकी आराजी बहुत बड़ी हो गयी, जिनके अन्तर्गत राज्य के कुल कृषिगत क्षेत्र का लगभग १० प्रतिशत भाग शामिल है। यह सर्व विदित है कि ये जमींदार हल की मूठ छूना भी पाप समझते हैं। ऐसी हालत में अगर उत्तर प्रदेश की बड़े आकार वाली आराजियों की उपज घटती जा रही हो तो यह आश्चर्यजनक नहीं। दूसरी ओर, जिन काश्तकारों को भूमि पर मौरूसी हक मिल गया है, वे बहुत ही उत्साही किसान साबित हुए हैं, हालांकि उनकी आराजियों के आकार अलाभकर हैं। ऐसे समय में, जब कि देश खेती की उपज बढ़ाने के लिए मजबूत नींव डालने पर जोर दे रहा है, बड़े-बड़े जमीन के टुकड़ों को मुफ्तखोर परोपजीवी लोगों के हाथों में रख छोड़ने का कोई औचित्य नहीं। हम उत्तर प्रदेश सरकार की सबसे ताजी कार्यवाही का स्वागत करते हैं, जिसके अनुसार वह व्यक्तिगत आराजी के आकार की अधिकतम सीमा को घटा कर लगभग १३ एकड़ कर देना चाहती है। हमें आशा है कि संशोधित अधिनियम शीघ्र ही कानून बन जायेगा।

जापान में सामाजिक सुरक्षा

जापान में युद्ध के उपरान्त सामाजिक सुरक्षा संबंधी उपायों का क्रमशः विस्तार हुआ है और उन्हें दृढ़तर बनाया गया है। इस दिशा में विशेष रूप से उल्लेखनीय वे ठोस प्रयत्न हैं, जो कि चालू (३१ मार्च १९५७ को समाप्त होने वाले) वित्तीय वर्ष के भीतर सामाजिक बीमा प्रणाली तथा क्षय-विरोधी उपायों को मजबूत बनाने के लिये किये गये हैं। अंशतः यह प्रगति इधर हाल के वर्षों में जापान की आर्थिक समृद्धि की द्योतक है, किन्तु समूची जनसंख्या को प्राप्त होने वाले लाभ की दृष्टि से परिस्थिति अभी भी एकदम सन्तोषजनक नहीं है। जहां पर वर्तमान प्रणाली अपने समूचे रूप में स्वभावतः बहुत अधिक विविधतापूर्ण है, वहीं प्रदान किये गये लाभ में कुछ उल्लेखनीय कमियां भी मौजूद हैं।

जापानी सामाजिक सुरक्षा का सामान्य स्वरूप

जापान की सामाजिक सुरक्षा प्रणाली के ढांचा संबंधी चार प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं : (१) सार्वजनिक आर्थिक सहायता; (२) सामाजिक बीमा; (३) सामाजिक कल्याण के उपाय; और (४) चिकित्सा संबंधी सहायता।

सार्वजनिक आर्थिक सहायता की एकमात्र प्रणाली वह है जो आजीविका संरक्षण कानून के अन्तर्गत प्रशासित होती है; और इस उपाय द्वारा सभी अकिंचन व्यक्तियों के लिये एक निम्नतम मात्रा में सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था की गयी है।

सामाजिक बीमा द्वारा बीमारी, बेरोजगारी, बुढ़ापे और काम संबंधी दुर्घटनाओं जैसी आकस्मिक स्थितियों के लिये सहायता की व्यवस्था की गयी है। इस संबंध में जो लाभ प्रदान किये जाते हैं, उनके रूप या उनके भुगतान के तरीके अत्यधिक भिन्नतापूर्ण होते हैं। रोजगार प्राप्त लोगों के लिये ११ प्रकार के बीमे की व्यवस्था की गयी है, जिनका प्रशासन राष्ट्रीय स्तर पर होता है। ये हैं : स्वास्थ्य बीमा, दिवस श्रमिक स्वास्थ्य बीमा, कल्याण वार्षिकी, नाविक बीमा, बेरोजगारी बीमा, श्रमिक दुर्घटना क्षति-पूर्ति, राष्ट्रीय और सार्वजनिक श्रमिक पारस्परिक सहायता, सार्वजनिक उपक्रम श्रमिक पारस्परिक सहायता, नगरपालिका, कस्बा और ग्राम श्रमिक पारस्परिक सहायता, निजी शिक्षा संबंधी श्रमिक पारस्परिक सहायता तथा कस्बा और ग्राम श्रमिक पेंशन निधि। इन बातों से ही सम्बद्ध अन्य उपाय हैं : सरकारी और सार्वजनिक श्रमिक पेंशन प्रणाली (कस्बे और ग्रामों के कर्मचारियों को छोड़कर, दुर्घटना क्षति, पूर्ति तथा सिलीकोसिस तथा अन्य पेशे संबंधी बीमारियों में सहायता।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा एक अन्य उल्लेखनीय प्रणाली है, जो कि उन व्यक्तियों को लाभ पहुंचाती है जो रोजगार में नहीं हैं।

सामाजिक कल्याण संबंधी उपायों के अन्तर्गत वे उपाय आते हैं, जो शिशु-कल्याण, असमर्थ व्यक्तियों, मृत सैनिकों के परिवार के सदस्यों तथा अधिकारहीन माताओं के लिये लागू किये गये हैं। इनके लिये कोष की व्यवस्था ऋण देकर की जाती है।

राज्य द्वारा जो चिकित्सा सहायता प्रदान की जाती है, उसके अन्तर्गत क्षय-विरोधी उपाय मुख्य हैं। इसके अलावा, छूत के रोगों के निरोध और रोकथाम संबंधी उपायों की भी व्यवस्था की जाती है।

भूतपूर्व सैन्य कर्मचारियों को दी जाने वाली पेंशन भी कभी-कभी सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत शामिल की जाती है। इनके अलावा, बेरोजगारी विरोधी उपाय और कम आय वाले परिवारों के लिये सार्वजनिक गृह-निर्माण की भी व्यवस्था की जाती है।

सामाजिक सुरक्षा का विस्तार

सामाजिक सुरक्षा-प्रणाली संबंधी विचार-विमर्श समिति द्वारा अगस्त १९५६ में सम्पन्न सर्वेक्षण के अनुसार, विभिन्न सामाजिक बीमा प्रणालियों द्वारा जितने लोगों को सहायता पहुंचायी गयी, उनकी संख्या इस प्रकार है:

चिकित्सा संबंधी बीमा	१ करोड़ २५ लाख
बेरोजगारी बीमा	१ करोड़ १९ लाख
वार्षिकी बीमा	१ करोड़ १५ लाख
श्रमिक दुर्घटना क्षतिपूर्त्ति	१ करोड़ ३६ लाख

इनकी संख्याएं रोजगार प्राप्त जनसंख्या के क्रमशः ७३ प्रतिशत, ७० प्रतिशत, ६७ प्रतिशत और ८० प्रतिशत के बराबर हैं। फलस्वरूप, सामाजिक सुरक्षा द्वारा जितने लोगों को सहायता प्रदान की गयी है उनकी संख्या इस समय रोजगार प्राप्त लोगों के औसतन ७० प्रतिशत के बराबर है। ४० लाख असंरक्षित श्रमिकों में मुख्यतः वे श्रमिक शामिल हैं जो मुख्यतः ऐसे मालिकों के यहां काम करते हैं जिनके पास ५ से कम श्रमिक काम करते हैं। इनके अलावा, दिन में काम करने वाले तथा अन्य अस्थायी श्रमिकों को भी शामिल करना चाहिए। जहां तक चिकित्सा बीमा का सम्बन्ध है, जब हम १ करोड़ २५ लाख बीमा-युक्त व्यक्तियों में उनके आश्रितों की संख्या, तथा उन लोगों की संख्या जिन्हें राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा प्रणाली के लाभ प्राप्त हैं, जोड़ देते हैं, तो उनकी कुल संख्या लगभग ६ करोड़ १० लाख हो जाती है जो, जापान की जनसंख्या के लगभग ६८ प्रतिशत के बराबर है। किन्तु, सार्वजनिक स्वास्थ्य बीमा के किसी भी किस्म में चन्दा न देने वालों की संख्या अभी भी २ करोड़ ९० लाख है।

सरकार द्वारा व्यय

चालू वित्तीय वर्ष के भीतर सरकारी खजाने से सार्वजनिक सुरक्षा की मद पर अनुमानित राष्ट्रीय आय का १.५ प्रतिशत खर्च किया जायेगा, जबकि बजट के सामान्य लेखा में शामिल व्यय से तुलना करने पर यह प्रतिशत १०.८ प्रतिशत के बराबर आता है। यह रकम युद्ध पूर्व (१९३४ के बाद) के २ प्रतिशत से कम के व्यय की अपेक्षा निश्चय ही अधिक है।

यदि सामाजिक सुरक्षा की मद पर सरकारी खजाने के व्यय में स्थानीय सरकारों की आर्थिक सहायताओं, अदा की गयी किश्तों तथा चन्दों को जोड़ दें, तो १९५६-५७ के राजकोषीय वर्ष के भीतर कुल व्यय की मात्रा ५७,१३० करोड़ येन, अथवा उस वर्ष की कुल राष्ट्रीय आय के ८.२ प्रतिशत के बराबर हो जाती है। १९५१-५२ के राजकोषीय वर्ष की राष्ट्रीय आय के ५ प्रतिशत से बढ़कर यह व्यय १९५३-५४ में ६.६ प्रतिशत और १९५५-५६ में ८.१ प्रतिशत हो गया है।

तार–आगरा होटल : फोन–२४६०६

आगरा होटल

१६ दरियागंज, दिल्ली–७

नई तथा पुरानी दिल्ली के मध्य स्थित

★ सजे सजाये वातानुकूलित कमरे
★ विस्तृत बाग़ व लान
★ अंग्रेजी और भारतीय ढंग के खाने
★ व्यक्तिगत सुविधाओं पर ध्यान देना
इसकी सर्वश्रेष्ठ विशेषता है।

अरविन्द का यह चिह्न

उच्चतम कोटि
के
कपड़ों के लिए सुप्रसिद्ध

अरविन्द मिल्स लिमिटेड
नरोदा रोड, अहमदाबाद–२

अम्बर चर्खा कार्यक्रम १९५७-५८ की एक समीक्षा

मार्च १९५७ के तीसरे सप्ताह में सरकार ने १,८०,००० अम्बर चर्खों के निर्माण और १,५०,००० चर्खों के वितरण के कार्यक्रम को सैद्धांतिक रूप में स्वीकार कर लिया था और कार्यक्रम के आधे भाग के लिए निधि की भी स्वीकृति प्रदान कर दी थी। शेष निधि की स्वीकृति कार्यक्रम की समीक्षा के उपरान्त दी जानी थी। १९५६-५७ में कार्यक्रम पर किये गये काम के परिणामों के कारण कमीशन ने कार्यक्रम पर फिर से विचार करने का फैसला किया। कार्यक्रम पर, कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए प्राप्य समय और १९५६-५७ के दौरान में प्राप्त अनुभवों के अनुसार विचार किया गया।

कार्यक्रम और लक्ष्य

कमीशन द्वारा परिशोधित अम्बर चर्खा कार्यक्रम में, (१) १,०५,००० चर्खों के निर्माण के लिए १०० अतिरिक्त सरंजाम कार्यालयों, (२) ३,२०० कार्यकर्त्ताओं और १,६०० बढ़इयों को प्रशिक्षित करने के लिए १० अतिरिक्त विद्यालयों, (३) १,१०,००० कातने वालों के लिए स्थानीय अवस्थाओं के अनुसार उचित संख्या में विभिन्न आकार के अम्बर शिक्षा वर्गों का संगठन करने, और (४) ७५,००० चर्खों के वितरण की व्यवस्था की गयी है। ३१ मार्च, १९५७ तक, वितरित किये गये चर्खों की संख्या और १९५७-५८ के दौरान वितरित किये जाने वाले चर्खों की संख्या के आधार पर, तथा साथ ही, हर रोज काम करने के घंटों की संभावित संख्या और चर्खों पर साल के दौरान काम किये गये दिनों की कुल संख्या के आधार पर कमीशन ने सालभर के सूत और कपड़े का उत्पादन क्रमशः ५५ लाख पौंड और २०० लाख वर्ग गज कूता है। चालू साल के कार्यक्रम के लिए नीचे तालिका नं. १ में लक्ष्य नियत किये गये हैं :

तालिका १

लक्ष्य

मद	वर्ष के लिए लक्ष्य (अतिरिक्त)	अनुसूचित समय
संगठन		
(अ) सरंजाम कार्यालय	१००	नवम्बर १९५७
(ब) विद्यालय	१०	अक्टूबर १९५७
प्रशिक्षण		
(अ) कार्यकर्त्ता	३,२००	३१ मार्च, १९५८
(ब) मिस्त्री	१,६००	"
(स) कातने वाले	१,१०,०००	"
चर्खे		
(अ) निर्माण	१,०५,०००	"
(ब) वितरण	७५,०००	"
उत्पादन		
(अ) सूत (लाख पौंड में)	५५	"
(ब) कपड़ा (लाख वर्ग गज में)	२००	"

कार्यक्रम की प्रगति

१९५७-५८ के अन्त तक ७७ सरंजाम कार्यालय खोले जा चुके थे। अप्रैल और अगस्त १९५७ के दौरान १७ अतिरिक्त सरंजाम कार्यालय और संगठित किये गये, और इस प्रकार संगठित कार्यालयों की कुल संख्या ९४ हो गई, जबकि संयुक्त लक्ष्य की संख्या १५० थी। इनके अलावा, अगस्त १९५७ के अन्त तक १५ अतिरिक्त सरंजाम कार्यालय स्थापित करने के लिए प्रबन्ध किये जा चुके थे। इन सरंजाम कार्यालयों में शीघ्र ही उत्पादन प्रारम्भ होने की उम्मीद है। निम्नलिखित तालिका में सरंजाम कार्यालयों के एजेंसीवार वितरण से पता चलता है कि अब तक संगठित किये गये ९४ कार्यालयों में से ८० रजिस्टर्ड संस्थाओं के, ११ राज्य निकायों के, २ कमीशन के और केवल एक राज्य सरकार का है :

तालिका २

राज्य	अ० भा० खा० ग्रामोद्योग बोर्ड	राज्य-निकाय	राज्य सरकार	रजि० संस्थाएं	कुल संख्या
आन्ध्र	१	१	—	५	७
आसाम	—	—	—	—	—
बिहार	—	—	—	७	७
बम्बई	१	६	—	२०	२७
दिल्ली	—	—	—	३	३
जम्मू और कश्मीर	—	—	—	—	—
केरल	—	—	—	५	५
मध्य प्रदेश	—	१	—	—	१
मद्रास	—	—	१	५	६
मैसूर	—	—	—	१२	१२
उड़ीसा	—	१	—	—	१
पंजाब	—	—	—	५	५
राजस्थान	—	१	—	११	१२
उत्तर प्रदेश	—	—	—	६	६
पश्चिमी बंगाल	—	१	—	१	२
कुल	२	११	१	८०	९४

उत्पादन में वृद्धि

अप्रैल से अगस्त १९५७ के दौरान ३७,९०४ अम्बर चर्खों का उत्पादन हुआ, जबकि वर्ष भर का लक्ष्य १,०५,००० था। अप्रैल से अगस्त तक की अवधि में चर्खों के राज्यवार और मासिक उत्पादन का वितरण निम्नलिखित तालिका में पेश किया गया है :

तालिका ३

अम्बर चर्खों का राज्यवार उत्पादन

							१९५७-५८	
राज्य	मार्च तक	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	कुल संख्या	कुल संख्या
आन्ध्र	५१९	३०	२२६	३४४	६७६	२५	१,३०१	१,८२०
आसाम	—	—	—	—	—	—	—	—
बिहार	६,७८६	२७५	१,६७१	८५७	६४४	७१८	४,१६५	१०,९५१
बम्बई	३१,८९७	३,८१०	२,५८१	६८०	१,४२६	१,२१४	९,७११	४१,६०८
दिल्ली	१,४०५	२०	—	४०	—	१२३	१८३	१,५८८
केरल	३३५	१०७	२६	१८	७९	—	२३०	५६५
मध्यप्रदेश	६८६	१००	२६६	१४६	१८९	४८	७४९	१,४३५
मद्रास	५३५	१६३	१४९	१२६	१५२	६०	६५०	१,१८५
मैसूर	६,०२६	६६४	१५५	३८६	५२६	१५५	१,८२६	७,९१२
उड़ीसा	१,२४०	५७१	—	—	—	—	५७१	१,८११
पंजाब	८,२३३	५७०	५३६	९५५	६१७	८४८	३,५२६	११,२५९
राजस्थान	७,७२२	२,३९२	१,०१०	७३१	१,६५९	१,१७६	६,९६८	१४,६९०
उत्तर प्रदेश	१०,७१७	१,२९२	१,२८८	१,४३४	१,१४१	१,५८१	६,७३६	१७,४५३
पश्चिमी बंगाल	६८३	१७७	१८३	१८१	३६१	३२६	१,२२८	१,९११
कुल	७६,७८४	१०,१७१	८,०९१	५,८९८	७,४७०	६,२७४	३७,९०४	१,१४,६८८

जुलाई से लेकर नवम्बर १९५६ के पाँच महीनों के ३०,७४४ चर्खों के उत्पादन के मुकाबले अप्रैल से अगस्त १९५७ काफी के पाँच महीनों का कुल उत्पादन ३७,९०४ चर्खे का था। इससे यह स्पष्ट है कि चर्खों के निर्माण के लिए की गई व्यवस्थायें संतोषजनक रही हैं।

विद्यालयों की स्थापना

मार्च १९५७ तक २,४०० कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित करने के लिए ३० विद्यालय स्थापित करने का लक्ष्य था। लेकिन, इस तारीख तक ३५ मुख्य और १४ उप-विद्यालय संगठित किये गये, और इनमें २,५२८ कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित किया गया। चालू वर्ष के दौरान कितनी ही संस्थाओं, राज्य निकायों और सरकारों से अतिरिक्त विद्यालय खोलने की मांग प्राप्त हुई। इन मांगों को पूरा करने के लिए स्वीकृत विद्यालयों की अतिरिक्त संख्या बहुत कम थी। अतः, कमीशन ने कुछ विद्यालयों को चालू वर्ष की मांग की पूर्ति के लिए बेहतर स्थानों में स्थानान्तरित करने का फैसला किया। अगस्त १९५७ तक क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुसार, पुराने विद्यालयों के स्थानान्तरण और नये विद्यालयों की स्थापना के लिए उपयुक्त स्थान चुनने का काम पूरा कर लिया गया था। अब १ अक्तूबर १९५७ से सभी ४० विद्यालयों में पूरी तरह से काम होने की उम्मीद है।

अप्रैल से अगस्त तक की अवधि में केवल दो विद्यालय संगठित (एक मद्रास में और १ पंजाब में) किये गये। अगस्त के अन्त में ३० मुख्य और १४ उप-विद्यालयों में काम हो रहा था। शेष विद्यालयों में गत वर्ष के प्रशिक्षण का दूसरा कोर्स समाप्त

हो गया है और चालू साल में पहले कोर्स के लिए तैयारी की जा रही है।

प्रशिक्षण

अप्रैल १९५६ से अब तक ३,९१२ कार्यकर्त्ता प्रशिक्षित किये जा चुके हैं, जबकि १९५६-५७ और १९५७-५८ का संयुक्त लक्ष्य ५,६०० का है। अक्तूबर के अन्त तक २८८ और कार्यकर्त्ता अपना प्रशिक्षण पूरा कर लेंगे, ऐसी उम्मीद है।

चर्खों के निर्माण और उनकी मरम्मत के लिए मिस्त्रियों को प्रशिक्षित करने के पृथक विद्यालय स्थापित करने और मिस्त्रियों के लिए प्रशिक्षण कक्षायें चालू करने के लिए चुने गये सरंजाम कार्यालियों को सहायता देने के काम को कमीशन ने अपने हाथ में लिया था। १९५६-५७ के दौरान संगठित किये गये ६ पृथक् मिस्त्री विद्यालयों के अलावा, १४ सरंजाम कार्यालय मिस्त्रियों के लिए प्रशिक्षण कक्षाओं का संचालन कर रहे थे। चालू वर्ष में २ अतिरिक्त विद्यालय स्थापित करने के लिए प्रबन्ध किये जा चुके हैं। १० अतिरिक्त सरंजाम विद्यालयों को प्रशिक्षण कक्षायें चालू करने के लिए चुना गया है।

२,२०० मिस्त्रियों को प्रशिक्षित करने के संयुक्त लक्ष्य (१९५६-५७ में ६०० और १९५७-५८ में १,६००) के मुकाबले में अगस्त १९५७ तक १,२७८ या लक्ष्य के ५० प्रतिशत से थोड़ा अधिक मिस्त्री प्रशिक्षित किये जा चुके थे, जबकि लक्ष्य की अवधि समाप्त होने में लगभग ७ माह शेष थे।

परिश्रमालयों की संख्या

१९५७-५६ के अन्त तक सारे देश में ३५२ मुख्य और ९२२ उप-परिश्रमालय कायम किये जा चुके थे। इसमें से १३९ मुख्य और ३६३ उप-परिश्रमालयों ने चालू वर्ष में अपने क्षेत्रीय स्थानों में अपना काम जारी रखा। अप्रैल से अगस्त १९५७ के दौरान, देश भर में २४५ मुख्य और ९८३ उप-परिश्रमालय कायम किये गये। इनमें से ११६ मुख्य और ६१२ उप-परिश्रमालय उत्तर प्रदेश में, ३० मुख्य और ४९ उप-परिश्रमालय पंजाब में और २७ मुख्य और ६० उप-परिश्रमालय राजस्थान में स्थापित किये गये।

गत वर्ष की तरह ही चालू वर्ष में भी परिश्रमालयों के आकारों में काफी विभिन्नता रही। प्रत्येक मुख्य परिश्रमालय में दस चर्खे से अधिक नहीं थे और उप-परिश्रमालयों में ५ चर्खे या इससे भी कम थे। आकार संबंधी इस विभिन्नता को संगठन-एजेंसियों ने गांवों द्वारा दिये गये स्थान की प्राप्यता और उपयुक्तता के अनुसार नियत की थी। मुख्य और उप-परिश्रमालयों की संख्या से अम्बर चर्खों पर कताई सीखने वाले गांव वालों का उत्साह प्रदर्शित होता है।

चालू साल के लिए निर्धारित लक्ष्यों और गत वर्ष के काम की तुलना में कातने वालों के प्रशिक्षण में काफी संतोषजनक प्रगति हुई है। गत वर्ष की तुलना में चालू वर्ष के दौरान कातने वालों की भर्ती और प्रशिक्षण काफी तेज रही है। जुलाई से नवम्बर १९५६ के पांच महीनों में जहाँ १९,४१५ कातने वाले भर्त्ती हुए थे, वहां अप्रैल से अगस्त १९५७ के पांच महीनों में ४५,७११ कातने वाले भर्त्ती हुए। इनमें से इस अवधि के दौरान प्रशिक्षित किये गये ४०,७८० कातने वाले १९५६-५७ के ८ महीनों में प्रशिक्षित किये गये कातने वालों की कुल संख्या के ८३ प्रतिशत थे।

उत्पादन की क्षमता

जुलाई १९५७ के अन्त तक प्राप्त रिपोर्ट में ३३,६७३ कातने वालों में से ३३,३२६ कातने वालों की उत्पादकता सम्बन्धी आधार-सामग्री प्राप्त है।

३३,३२६ कातने वालों में से १९,६४१ या प्रशिक्षण पाने वाले कतनों में से ५९ प्रतिशत ८ घण्टे के प्रति दिन में ४ गुण्डी या कम उत्पादन करने वाले वर्ग में, ७,९२३ या २४ प्रतिशत प्रति दिन ४ से ६ गुण्डी कातने की क्षमता वाले वर्ग में, ३,४५९ या १०.४ प्रतिशत ६ से ८ गुण्डी कातने की क्षमता वाले वर्ग में, और २,३०३ या ७ प्रतिशत ८ गुण्डी या उससे अधिक कताई करने वाले वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

आर्थिक-समाचार-संकलन

भारतीय

१९५७ की पहली छमाही में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि

वर्ष १९५७ की पहली छमाही में भारत में औद्योगिक उत्पादन बढ़ा। आलोच्य अवधि में औद्योगिक उत्पादन का सूचक अंक (१९५१ को आधार=१०० मान कर) १९५६ के पूरे साल तथा उसकी पहली छमाही के औसत सूचक अंकों से अधिक रहा। पहली छमाही में औद्योगिक योजनाओं के लिये ४२० लाइसेंस दिये गये। इनमें से १०९ नये कारखाने खोलने, २२६ वर्तमान कारखानों का विस्तार करने या उनमें नये सामान बनाने, तथा शेष वर्तमान कारखानों में उत्पादन का काम जारी रखने या उनका स्थान परिवर्तन करने, आदि के लिये थे। साथ ही, मोटरगाड़ी के पुर्जे, सल्फ़्यूरिक एसिड, साइकिल के पुर्जे, मशीनी औजार, कागज, सुपर-फास्फेट, नये औषध और रंगाई के सामान, आदि तैयार करने के या तो नये कारखाने खोले गये या वर्तमान कारखानों का विस्तार किया गया। बुनाई के १० नये कारखानों में भी उत्पादन शुरू हुआ। इस अवधि में सीमेंट का उत्पादन बढ़ कर २६ लाख ७६ हजार टन हो गया। १९५६ की पहली छमाही में २४ लाख ५४ हजार टन सीमेंट तैयार हुआ था। कोयले का उत्पादन २० लाख टन से बढ़कर २१ करोड़ ६० लाख टन हो गया।

आलोच्य अवधि में उपभोक्ता सामग्रियों, जैसे सूती कपड़ा, नमक, साबुन, चीनी, सिगरेट, ब्लेड और साइकिल, का उत्पादन भी काफी बढ़ा। सूती कपड़े के कारखाने में २ अरब ७० करोड़ ९० लाख गज कपड़ा तैयार हुआ। १९५६ की पहली छमाही में २ अरब ५८ करोड़ ३० लाख गज कपड़ा तैयार हुआ था। सूत का उत्पादन ८० करोड़ २० लाख पौंड से बढ़कर लगभग ८९ करोड़ १० लाख पौंड हो गया। इस अवधि में चीनी का उत्पादन १४ लाख ८६ हजार टन से बढ़कर १५ लाख ६२ हजार टन और नमक का उत्पादन ७ करोड़ २७ लाख से बढ़कर ७ करोड़ ७५ लाख मन हो गया। १९५६ की पहली छमाही से लगभग १ लाख अधिक साइकिलें तैयार हुई थीं। आलोच्य अवधि में कुल ३ लाख ८१ हजार ५०० साइकिलें तैयार की गयीं। ब्लेडों का उत्पादन ९ करोड़ ९३ लाख से बढ़कर २० करोड़ ९० लाख हो गया। इस अवधि में सिगरेटों का उत्पादन १२ अरब ५४ करोड़ से बढ़कर लगभग १४ अरब २१ करोड़ ४० लाख हो गया। १९५६ की पहली छमाही में १४ हजार ८०० मोटरगाड़ियां तैयार हुई थीं। आलोच्य अवधि में विभिन्न प्रकार की १६,६०० मोटर गाड़ियां तैयार हुईं।

आलोच्य अवधि में ७,०७६ डीजल इंजन तैयार हुए। गत वर्ष की पहली छमाही में ५,६५६ डीजल इंजन तैयार हुए थे। मशीनी औजारों का उत्पादन शत प्रतिशत बढ़ा। पिछले वर्ष की इसी अवधि में ८४२ लाख ५० हजार रुपये मूल्य की मशीनी औजार बने थे, लेकिन आलोच्य अवधि में १ करोड़ रुपये से भी अधिक मूल्य के मशीनी औजार बने। रेडियोसेटों का उत्पादन ७१ हजार से बढ़कर ९१ हजार ८०० और बिजली के पंखों का उत्पादन १ लाख ६५ हजार ७०० से बढ़कर २ लाख ४७ हजार हो गया।

कोयले का उत्पादन और निकासी

जुलाई १९५७ में, देश में कोयले की खानों से ३३,३१,२५७ टन कोयला निकाला गया और ३०,७७,३६७ टन कोयले का चालान किया गया। अगस्त १९५७ में बंगाल और बिहार की कोयला-खानों में प्रतिदिन औसतन ३,७९४ माल-डिब्बों का लदान हुआ। पिछले महीने प्रतिदिन औसतन ३,५७६ माल-डिब्बों का लदान हुआ था।

अगस्त १९५७ में, एक दिन में सबसे अधिक लदान ४,६०८ माल-डिब्बों में और सबसे कम २,२६ माल-डिब्बों में हुआ। इस अवधि में २९ जहाजों में लगभग १,८८,४७२ टन कोयला लादा गया। अगस्त १९५७ में पाकिस्तान को ९५,७०० टन कोयला भेजा गया।

खनिज लोहे का उत्पादन

भारतीय खान कार्यालय के अनुसार, जून १९५७ में समाप्त तिमाही में देश में १२,०६,००० टन खनिज लोहा

पैदा हुआ। इसमें से ५,१२,००० टन खनिज लोहा बिहार में, ४,९३,००० टन उड़ीसा में, १,२५,००० टन मैसूर में और ५५,००० टन आंध्र प्रदेश में पैदा हुआ।

पिछले साल की इसी तिमाही से इस वर्ष की इस तिमाही का उत्पादन ६३,००० टन अधिक है। जून १९५७ तक का उत्पादन २५,०९,००० टन था। यह पिछले वर्ष की पहली छमाही से २६,००० टन कम था।

चीनी के उत्पादन में वृद्धि

चालू मौसम में, ३० सितम्बर, १९५७ तक, देश में २० लाख २४ हजार टन चीनी बनी। पिछले वर्ष इस अवधि में १८ लाख ५९ हजार टन चीनी बनी थी।

चीनी की कुल निकासी १९ लाख ४२ हजार टन हुई; इसमें निर्यात के लिये दी गयी चीनी भी शामिल है। ३० सितम्बर, १९५७ को कारखानों के पास ६ लाख २० हजार टन चीनी थी।

१९५६ में प्लास्टिक की वस्तुओं का उत्पादन

सन् १९५६ में भारत में प्लास्टिक की वस्तुएं बनाने वाले बड़े-बड़े कारखानों में ४ करोड़ रु० से भी अधिक की वस्तुओं का उत्पादन हुआ। इस समय देश में १२० सुव्यवस्थित कारखाने प्लास्टिक की वस्तुएं बना रहे हैं। १९३६ में केवल पांच कारखाने थे। इनके अलावा, बहुत से छोटे कारखाने भी हैं, जो घरेलू उद्योग के रूप में काम कर रहे हैं। यद्यपि प्लास्टिक की वस्तुएं अमृतसर, कानपुर, कोयम्बटूर, और हैदराबाद में भी बनायी जाती हैं, फिर भी बम्बई और कलकत्ता इनके बड़े गढ़ हैं।

१९५६ में प्लास्टिक के बड़े-बड़े कारखानों के उत्पादन का अनुमान इन आंकड़ों से लगाया जा सकता है : ढले हुए प्लास्टिक की वस्तुएं—२ करोड़ १५ लाख गुर्स से भी अधिक; लेदर क्लाथ—२६ लाख गज; पी० वी० सी० शीट—२ लाख ६३ हजार वर्ग गज; पोलिथीन फिल्म—११ लाख ५७ हजार पौंड; और फेनोलिक लेमिनेट—२३२ टन। भारत के प्लास्टिक कारखानों में आधुनिकतम किस्म की मशीनें लगायी गयी हैं और सरकार ने संरक्षण तथा प्राविधिक सहायता के द्वारा उद्योग को बढ़ने में काफी सहारा दिया है।

१९५६ में दो कारखानों ने लगभग २२ लाख रु० के मूल्य का ९८५ टन फेनोल फोरमल्डीहाइड मोल्डिंग पाउडर तैयार किया। पोलिस्टाइरिन का उत्पादन इस वर्ष मई में शुरू हुआ और अब १० लाख पौंड सालाना के हिसाब से उत्पादन हो रहा है। पोलिथाइलीन बनाने के लिये दो कारखानों को अनुमति दी गयी है, जिनमें ५,१०० टन सालाना उत्पादन होगा। इनमें से एक कारखाना कलकत्ते में और दूसरा बम्बई में होगा।

विदेशी

यूगोस्लाविया में विद्युत शक्ति का उत्पादन

यूगोस्लाविया ने १९४७-५६ की अवधि में, १९५५ के मूल्यों के अनुसार, विद्युत शक्ति उत्पादन पर २५३ अरब दिनार व्यय किये। कुल व्यय का ६५.६ प्रतिशत हाइड्रो-इलेक्ट्रिक प्लांटों पर, १७.८ प्रतिशत थर्मिक प्लांटों पर तथा १६.६ प्रतिशत विद्युत शक्ति के एक स्थान से दूसरे पर ले जाने की तारों, आदि और ट्रांसफार्मर स्टेशनों पर लगाया गया। इस व्यय से हाइड्रो-इलेक्ट्रिक शक्ति उत्पादन-क्षमता में ४६४ मेगावाट्स की तथा थर्मिक शक्ति में ३०५ मेगावाट्स की वृद्धि हुई।

निम्नलिखित तालिका में विद्युत शक्ति के उत्पादन में इस प्रकार वृद्धि हुई :

(१० लाख किलोवाट घंटों में)

	१९३९	१९४७	१९५०	१९५६
हाइड्रो-शक्ति	५६६	५९८	१,१७५	२,८६९]
थर्मिक-शक्ति	६०७	८५५	१,२३३	२,१७८
कुल	१,१७३	१,४५३	२,४०८	५,०४७

भारत-चेकोस्लोवाकिया व्यापार करार

भारत और चेकोस्लोवाकिया ने एक नये व्यापार करार

पर हस्ताक्षर किये हैं, जो १ अक्तूबर १९५७ से १९६० के अंत तक लागू रहेगा। दोनों देशों के बीच पिछला व्यापार करार १९५३ में हुआ था। तब से दोनों देशों के बीच व्यापार बढ़ता रहा है। इस समय भारत और चेकोस्लोवाकिया के बीच प्रति वर्ष ८-९ करोड़ रुपये का व्यापार होता है। १९५६-५७ में भारत से चैकोस्लोवाकिया को ३ करोड़ रु० का माल भेजा गया।

नये व्यापार-करार में दोनों देशों की सरकारों ने कुछ विशेष वस्तुओं के आयात और निर्यात की सुविधाएं देना स्वीकार किया है। करार के अनुसार, व्यापारिक तथा गैर-व्यापारिक लेन-देन का भुगतान अब रुपये में किया जायगा। माल लाने-ले जाने के लिय यथासंभव भारतीय जहाज ही काम में लाये जायेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ाने के लिये दोनों देश अन्य देशों के साथ व्यापार करने को भी प्रोत्साहन देंगे।

भारत को विश्व बैंक से १९५६-५७ में प्राप्त ऋण

विश्व बैंक की बारहवीं वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, ३० जून को समाप्त होने वाले वित्तीय वर्ष में विश्व बैंक ने भारत को ३५४ लाख डालर का ऋण दिया। विश्व बैंक चालू होने से अब तक उससे भारत को २,३३८ लाख डालर धन-राशि ऋण-स्वरूप मिल चुकी है। आलोच्य वित्तीय वर्ष में इस्पात उत्पादन, हवाई जहाज और विद्युत शक्ति के लिये ऋण व्यवस्था की गयी थी।

उपरोक्त कुल ऋण में से, इस्पात कारखाने के लिये इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कंपनी, लिमिटेड, को २०० लाख डालर दिये गये। इस ऋण की सहायता से कम्पनी के लिये अपने उत्पादन को ८,००,००० टन तक बढ़ाना सम्भव हो गया है।

विश्व बैंक ने एयर इंडिया इन्टरनेशनल को ५६ लाख डालर का ऋण तीन लम्बी उड़ान वाले जेट जहाजों पर डालर व्यय की पूर्ति के लिये दिये। इसके अतिरिक्त, भारत ने पहली बार अमरीकी बाजार में ११२ लाख डालर का ऋण पांच अमरीकी व्यापार बैंकों से भी लिया।

तीसरा ऋण ट्राम्बे थर्मल विद्युत-शक्ति प्लांट के विकास के लिये ९८ लाख डालर का ऋण विश्व बैंक से लिया गया।

आस्ट्रेलिया का पेट्रोल-शोधक उद्योग

आस्ट्रेलिया का पेट्रोल शोधक उद्योग उस सीमा तक पहुंच चुका है, जहां से वह न केवल डीजल और जलाने संबंधी वहां की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है, अपितु अतिरिक्त उत्पादन का निर्यात करने में भी समर्थ है। आस्ट्रेलिया की मोटर स्पिरिट और हवाई जहाजों के पेट्रोल की आवश्यकता का क्रमशः १५ प्रतिशत तथा ५० प्रतिशत आयात करना पड़ता है।

निम्नलिखित तालिका में शुद्ध किये गये पेट्रोल का उत्पादन और उसके उपयोग का ब्यौरा दिया गया है:

(हजार गैलन में)

पेट्रोल की किस्म	शुद्ध पेट्रोल १९५६	उपभोग १९५६
हवाई जहाज का पेट्रोल	८०,०२४	४५,५४३
मोटर स्पिरिट	४३४,१७३	९४१,१३१
हवाई जहाज का हल्का पेट्रोल और मिट्टी का तेल	२०,२६९	२१,७६०
पावर तेल	५,५७०	६७,४७७
आटो-डीजल तेल	१४५,८१९	१४२,७९८
औद्योगिक डीजल तेल	२७६,१२९	२२७,०९६
ईंधन का तेल	६६१,७३९	५५८,८८९
ल्यूब्रिकेटिंग तेल	८,६१८	५१,९३६
बिट्यूमेन	४४,१९६	४१,८००

सफेद बालोंको श्याम बनाने वाला
लोमा
रजिस्टर्ड
• मधुर सुवास देता है,
• दिमाग को ठंडक पहुंचाता है,
• सर्वत्र बिकता है,
B.SHAH
सोल अेजन्ट:- अेम. अेम. खंभातवाळा
अहमदाबाद-१

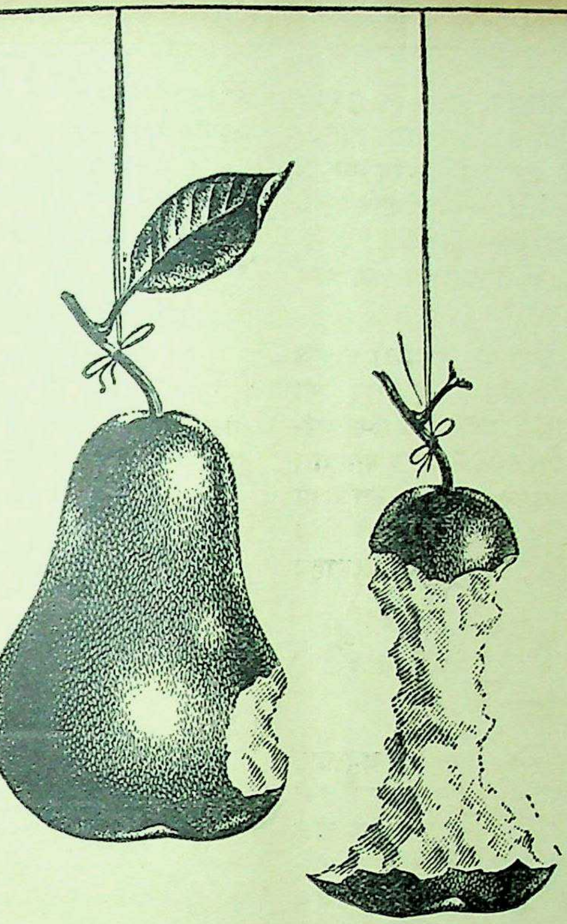

एक डाल के दो फल पर स्वाद जुदा जुदा...

...और इन के स्वाद को आप देख कर नहीं बल्कि चख कर जान पायेंगे। इस लिये नज़र के धोखे से बचिये! लेकिन आप को साबुन खरीदना हो तो इस की परीक्षा भला चख के कैसे करेंगे! इसी लिये समझदार ग्राहक ऐसी चीज़ें उसी **नाम** और **छाप** की ख़रीदते हैं जिन्हें इस्तेमाल कर के वे विश्वासयोग्य पा चुके हैं।

लगभग ७० वर्ष से लोग हिन्दुस्तान लीवर के उत्पादनों का एतबार करते आ रहे हैं क्योंकि इन के गुण सदा से अच्छे रहे हैं और यह इस लिये कि हमारे कारखानों में **हर एक** उत्पादन की, तय्यार होने तक, बार बार परीक्षा की जाती है। हम इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि वे देर तक पड़े पड़े ख़राब न हों। प्रयोगशाला में हर प्रकार के जलवायु का वातावरण बना कर हर उत्पादन पर उस का प्रभाव देखा जाता है।

इस तरह **हर सप्ताह** में लाइफ़बॉय साबुन, डालडा वनस्पति और गिब्ज़ एस. आर. टूथपेस्ट इत्यादि उत्पादनों की **१२०० परीक्षायें** होती हैं—और इन जाने पहचाने उत्पादनों पर दूर दूर एतबार किया जाता है क्योंकि ये कड़ी परीक्षाओं से गुज़रते हैं—पहले हमारे हाथों और फिर उपयोग में आ कर!

HINDUSTAN LEVER LIMITED
THE SEAL OF QUALITY

हिन्दुस्तान लीवर का आदर्श—घर घर की सेवा

HLL. 5-X52 HI

रजिस्टर्ड नं० डी० ४७५

एक पड़ोसी से

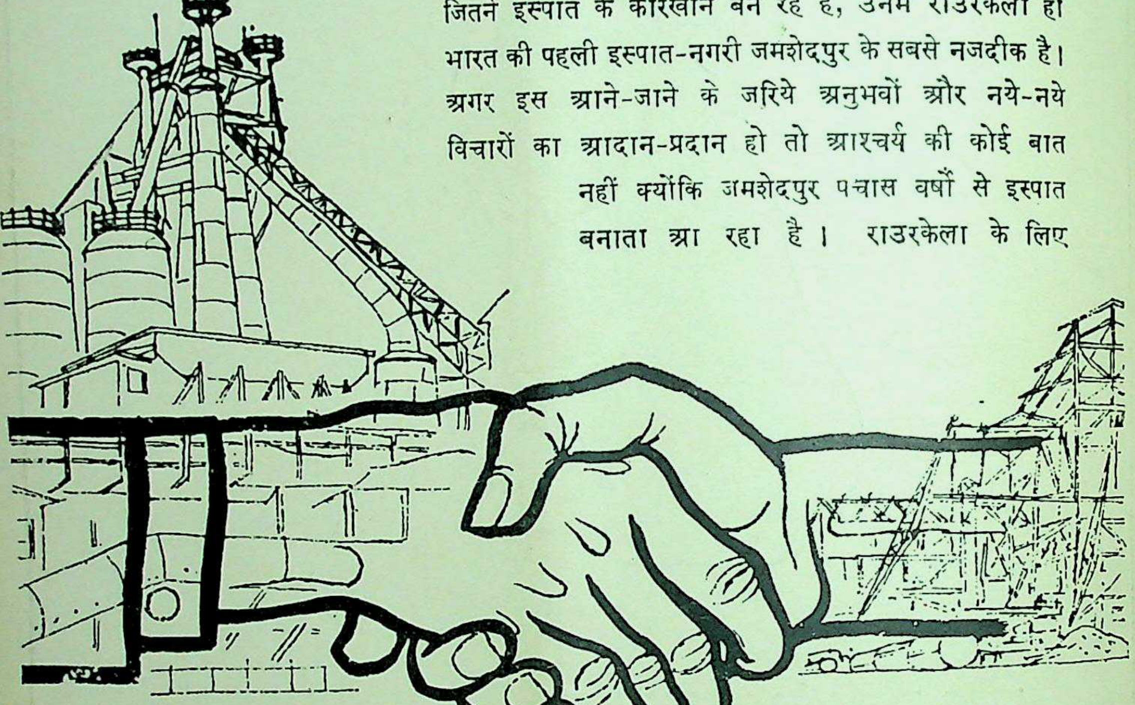

जमशेदपुर और राउरकेला के बीच आज जो लोगों का आवागमन हो रहा है, यह स्वाभाविक ही है क्योंकि इस समय जितने इस्पात के कारखाने बन रहे हैं, उनमें राउरकेला ही भारत की पहली इस्पात-नगरी जमशेदपुर के सबसे नजदीक है। अगर इस आने-जाने के जरिये अनुभवों और नये-नये विचारों का आदान-प्रदान हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं क्योंकि जमशेदपुर पचास वर्षों से इस्पात बनाता आ रहा है। राउरकेला के लिए इंजीनियरों और कारीगरों को शिक्षा देने का मौका मिलना जमशेदपुर के लिए बड़ी खुशी की बात है। इस समय जमशेदपुर में १५० कार्यकर्त्ता शिक्षा पा रहे हैं जिनमें ऊँचे अफ़सरों के साथ साधारण कारीगर भी हैं।

जमशेदपुर के बहुत से पुराने कर्मचारी जो अब राउरकेला में हैं मित्रता के इस बन्धन को दृढ़ बना रहे हैं। जमशेदपुर इन्हें और इनके साथियों को शुभकामना और अभिवादन भेजता है।

राउरकेला के प्रति शुभकामना

टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड

TN 1500

अ० भा० कांग्रेस कमेटी के लिए श्री बालकृष्णन् द्वारा प्रकाशित और नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित

कर्त्तव्यम् सुसमीक्षितम्

आर्थिक-समीक्ष

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आर्थिक-राजनीतिक अनुसन्धान विभाग का पाक्षिक पत्र

वर्ष ७, संख्या २ } नयी दिल्ली : मङ्गलवार, ५ नवम्बर १९५७ { पूर्णांक १४०

सभी राष्ट्रों की आवाज—विश्व-शान्ति

"भारत की शांति और मित्रता की बुनियादी नीति सभी राष्ट्रों के लोगों की आवाज का इजहार है। मुझे इसमें तनिक भी शक नहीं कि भारत गुटबन्दी में शामिल न होने और शांति कायम रखने की जिस नीति का पालन करता आ रहा है, वह भारत की सही और वाजिब नीति है। कई शताब्दी पहले अशोक ने जिन महान सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था, वे ही इस नीति के मूल स्रोत हैं। हम यहां-वहां गलती कर सकते हैं, लेकिन बुनियादी नीति कायम रहेगी। यह एक ठोस नीति है और दुनिया भर के सभी शांतिप्रिय राष्ट्रों पर इसका असर पड़ा है। आखिर में चलकर, एक सच्ची और वाजिब नीति हमेशा कामयाब होगी। मुझे पूरा यकीन है कि हमारी नीति दुनिया के सामने पेश मसलों को हल करने के लिये सही समाधान प्रस्तुत करती है। मुख्तलिफ देशों की सरकारों ने जो भी रास्ता अख्तियार किया हो, उसके बावजूद दुनिया के लोगों में शांति की जो जबर्दस्त ख्वाहिश मौजूद है, उसे इसमें स्वीकार किया गया है।

"भारत सैनिक गुटबन्दियों और गुटों के विरुद्ध है, क्योंकि वह अपनी आजादी और कार्य करने की स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण समझता है। हम किसी से लड़ना नहीं चाहते; हम सभी से मैत्री के इच्छुक हैं। अगर हम अपनी आजादी का मोल भाव करने लगेंगे तो फिर रहेंगे कहां?

"महात्मा गांधी का यह उपदेश कि साधन भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं, जितने लक्ष्य, न सिर्फ व्यक्तियों पर बल्कि राष्ट्रों पर भी लागू होता है। इस सिद्धान्त को मानने वाले राष्ट्रों को अस्थायी नाकामयाबियों का सामना करना पड़ सकता है, लेकिन वे कभी पराजित नहीं हो सकते। महात्मा गांधी ने दुनिया को अहिंसा का उपदेश दिया है; और गांधी जी ने जो भी शिक्षा दी है, उस पर हमें गर्व है।"

——जवाहरलाल नेहरू

(सं. रा. संघ दिवस पर २४ अक्तूबर १९५७ को दिल्ली की एक सभा में किये गये भाषण से)

वार्षिक मूल्य
५ रुपये

अन्दर देखिए :—

- ★चतुर्थ परिमाण
- ★भारत का विदेशी व्यापार
- ★कृषि संबंधी भावी नीति : श्रीनगर सम्मेलन की समीक्षा
- ★कल्याणकारी अर्थशास्त्र : भारत के आर्थिक विकास के सन्दर्भ में

एक प्रति
२२ नये पैसे

सम्पादक मण्डल

गुलजारीलाल नन्दा
टी. टी. कृष्णमाचारी
खण्डूभाई देसाई
मनुभाई शाह
अरुण चन्द्र गुहा

प्रधान सम्पादक––श्रीमन्नारायण

सम्पादक––सुनील गुहा

विषय-सूची

पृष्ठ

१. चतुर्थ परिमाण — **श्रीमन्नारायण** ३
२. भारत का विदेशी व्यापार — **मनुभाई शाह** ५
३. कृषि संबंधी भावी नीति : श्रीनगर सम्मेलन की समीक्षा — **अरुणचन्द्र गुहा** १४
४. गांधीजी की खादी और उसका वर्त्तमान रूपांतर — **न. र. मलकानी** १८
५. क्षेत्रीय समितियों के कार्य — **के. पी. सेन गुप्त** २२
६. कल्याणकारी अर्थशास्त्र : भारत के आर्थिक विकास के संदर्भ में — **सुनील गुहा** २५
७. श्री जमनालाल बजाज केंद्रीय ग्रामोद्योग गवेषणा संस्थान : क्षेत्र, कार्य और संगठन ३१
८. आर्थिक टिप्पणियां : ३५
    (अ) हमारी खाद्य-स्थिति

पृष्ठ

    (ब) दिल्ली में दक्षिण-पूर्व एशियाई ग्रामीण स्वास्थ्य सम्मेलन
    (स) भूमि-सुधारों के लिये निर्देशन समिति
    (द) औद्योगिक सामंजस्य के लिए आह्वान
    (य) विहार में भूमिहीन परिवारों के पुनर्वास की योजना
    (र) मद्रास के ग्रामीण उद्योग
    सुनील गुहा
९. आर्थिक-समाचार-संकलन :
    भारतीय ३९
    विदेशी ४२
१०. कवर पृष्ठ पर
    (अ) सभी राष्ट्रों की आवाज—विश्व-शांति — **जवाहरलाल नेहरू** कवर एक

आर्थिक-समीक्षा

वर्ष ७, संख्या २] नयी दिल्ली : मङ्गलवार, ५ नवम्बर १९५७ [पूर्णाङ्क १४०

श्रीमन्नारायण

चतुर्थ परिमाण

हांगकांग में अपने सम्मान में भारतीय समाज द्वारा आयोजित एक स्वागत समारोह का उत्तर देते हुए प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने कहा कि दुनिया के लिए यह जरूरी है कि वह युद्ध का स्वरूप बदल देने वाले अधिक तकनीकी विकास से उत्पन्न मसले सुलझाने के लिए एक नये दिमागी परिमाण, "चतुर्थ परिमाण", को विकसित करे। उन्होंने कहा कि यह नया परिमाण 'नैतिक' है। उन्होंने बताया कि वैज्ञानिक उन्नति और 'भू-उपग्रह' से समस्या हल करने के नैतिक तरीके परिवर्तित नहीं होते। "सारी तकनीकी उन्नति न तो बुराई को अच्छाई बना सकती है, और न अच्छाई को बुराई।" उन्होंने आगे कहा : "हम आशा करते हैं कि दुनिया धीरे-धीरे सभ्य बनेगी। दरअसल, आज यह सभ्य नहीं। वैज्ञानिक और तकनीकी दृष्टि से इसने बहुत अधिक उन्नति की है, लेकिन यह सभ्य हर्गिज नहीं है। जब इस तकनीकी तरक्की का इस्तेमाल मानवता का विनाश करने की बजाय, मानवता के कल्याण के लिए होने लगेगा, तब यह सभ्य बन जायेगी।··· विज्ञान तरक्की कर रहा है, टेकनालाजी बेहद तेज चाल से आगे बढ़ रही है, लेकिन हमारे दिमाग की ताकत पिछड़ गई है और उसका साथ पकड़ पाने में असमर्थ है।" श्री नेहरू ने यह भी कहा कि हमें अपने दिमाग को इस तरह शिक्षित करना है, ताकि वह "इस नये युग में जिसमें हम रह रहे हैं, जो परमाणु युग है, जो अन्तरिक्ष युग है, नये तरीके से सोच सकें। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हमारे लिए पूर्ण विनाश ही एक मात्र विकल्प रह जाता है।"

प्रधान मंत्री की इस भविष्यवाणी पर न सिर्फ हम भारतीयों को, बल्कि दुनिया के सभी देशों के जनमत के नेताओं को गंभीरता के साथ सोचना चाहिए। आज का युग वैज्ञानिक विकास का युग है। प्रति दिन मनुष्य के सामने नये क्षितिज उत्पन्न हो रहे हैं, जिनसे अकल्पनीय संभावनायें और आशायें उत्पन्न हो रही हैं; यहां तक कि अणु बम और परमाणु अस्त्र अब पुराने साबित हो रहे हैं। अगर वैज्ञानिक लोग शक्ति के नये स्रोतों का पता लगाते हैं, जिनसे मानवीय कल्याण और खुशहाली को बढ़ावा मिल सकता हो, तो कोई हानि नहीं। लेकिन, यदि विश्व के राष्ट्र विज्ञान और टेकनालोजी की इस अपूर्व उन्नति का उपयोग सही भावना के साथ नहीं करेंगे, तो उससे मानवता का पूर्ण उन्मूलन और विनाश होकर रहेगा। भविष्य में अन्तरिक्ष संबंधी अस्तित्व की कल्पना करना ठीक है। लेकिन सही किस्म का दृष्टिकोण न अपनाने पर ये नई वैज्ञानिक प्रगतियां असीम उलझनें पैदा कर देंगी और आखिर में चल कर पूर्ण विनाश होकर रहेगा।

यही वजह थी कि गांधी जी हमेशा जीवन में नैतिक और धार्मिक मूल्यों पर जोर देते रहे। उनके विचार से नैतिक और धार्मिक मान्यताओं की पृष्ठभूमि बिना भौतिक, तात्विक और वैज्ञानिक उन्नति व्यर्थ है। उनकी अभिलाषा थी कि हम दुनिया भर की मानवता के साथ, यहां तक कि समस्त सृष्टि के साथ, सामंजस्य स्थापित कर लें। लेकिन, गांधी जी के अनुसार, सृष्टि के साथ इन सजीव संपर्कों का आधार स्वार्थपूर्ण और शोषणमय होने की बजाय, सहकारितपूर्ण और नैतिक होना चाहिए। अधिकतम अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का समर्थन करते हुए गांधी जी ने एक देश द्वारा दूसरे देश के सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक शोषण

के सभी साधनों का दृढ़ता के साथ विरोध किया। गांधी जी ने कहा था कि "हमारी राष्ट्रीयता दूसरे राष्ट्रों के लिए खतरा नहीं हो सकती, क्योंकि हम न तो किसी का शोषण करेंगे और न ही किसी को अपना शोषण करने देंगे।" हालांकि वे देश के लोगों के रहन-सहन के स्तर को उठाना चाहते थे, लेकिन उन्होंने सबसे ज्यादा जोर **जीवन के स्तर** को उठाने पर दिया था। उनका कहना था कि उच्चतर संस्कृति और सभ्यता तभी हासिल की जा सकती है, जब कि किसी देश का प्रत्येक नागरिक अपने नैतिक और आध्यात्मिक स्तर को उठाने की कोशिश करे, जिससे कि श्रेष्ठतर सामाजिक संबंध की स्थापना हो सके। गांधी जी ने हमसे हमेशा यही कहा कि हमें "मन के भीतर की ओर प्रकाश का रुख फेर कर" शुरुआत करनी चाहिए। बहुत पहले, सन् १९२८ में ही, उन्होंने **यंग इंडिया** में लिखा था, "हम किसी विशेष समय पर जितनी आन्तरिक स्वतंत्रता विकसित कर चुके होंगे: ठीक उसी अनुपात में वह बाह्य स्वतंत्रता भी होगी, जिसे कि हम हासिल करेंगे। और अगर यह स्वतंत्रता का सही दृष्टिकोण है, तो हमारा मुख्य प्रयत्न **आन्तरिक सुधार** पर केन्द्रित होना चाहिए।"

आचार्य विनोबा भावे भी, जो कि सर्वोदय दर्शन के सबसे बड़े जीवित प्रतिपादक हैं, हमसे अक्सर कहते रहे हैं कि आधुनिक विज्ञान केवल उसी दशा में फल-फूल सकता है, समृद्ध हो सकता है, जबकि वह शांति और अहिंसा से संयुक्त हो। हिंसा से युक्त होने पर विज्ञान मानवता का पूर्ण संहार करके रहेगा, किन्तु अहिंसा से संयुक्त होकर विज्ञान मानवीय उन्नति और कल्याण की अनन्त सम्भावनायें उन्मुक्त कर सकता है। यही वजह है कि विनोबा जी अपने भूदान और ग्रामदान आन्दोलनों द्वारा पारस्परिक सहयोग और नैतिक पुनर्जीवन की आवश्यकता पर बहुत अधिक जोर देते रहे हैं। उन्होंने अभी हाल में अहिंसक स्वैच्छिक दल या **शांति सेना** के निर्माण की जो योजना शुरू की है, वह इस नैतिक या आध्यात्मिक समाधान का ही तर्कसंगत परिणाम है। जबतक कि हम अपनी सभी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को पुलिस या सैनिक टुकड़ियों की मदद बगैर शांतिपूर्ण और अहिंसक तरीकों से ही हल करना नहीं सीखेंगे, तब तक हम न तो भारत में और न ही उसके बाहर अहिंसक समाज की स्थापना की आशा कर सकते हैं। 'शांति सेना' की स्थापना साधारण पुलिस या सैनिक दस्ते की तरह मशीनी या नियमित तरीके से नहीं हो सकती। 'शांति सेना' दस्ते के लिए दैनिक जीवन में बुनियादी मूल्यों के पुनर्नवीकरण की आवश्यकता पड़ती है। यह सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में लगातार सेवा और त्याग के बल पर ही सफल हो सकती है। संक्षेप में, 'शांति सेना' संख्या में छोटी होने के बावजूद, परमाणु शक्ति के विरुद्ध एक प्रभावकारी अस्त्र तभी हो सकती है, जबकि जीवन के प्रति भौतिक और स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण अख्तियार करने की बजाय मानवता विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में नैतिक या आध्यात्मिक तरीकों या प्रयत्नों का सहारा ले।

उस दृष्टि से, भारत को एक विशेष जिम्मेदारी निभानी है। उसकी अन्तर्गत संस्कृति और दर्शन जीवन की नैतिक तथा आध्यात्मिक मान्यताओं पर आधारित है। प्राचीन काल से भारत के ऋषि विचारक और नेता शांति, अहिंसा और आध्यात्मिक शक्ति पर सबसे अधिक जोर देते आ रहे हैं। जैसा कि हमारे प्रधान मंत्री ने अभी हाल में दिल्ली के एक पत्र प्रतिनिधि सम्मेलन में कहा है, हमारी पंचशील और अहस्तक्षेप की विदेशी नीति अनिवार्य रूप से इन्हीं बुनियादी सिद्धांतों पर आधारित है। यह कोई ऐसी नीति नहीं है जिसे आर्थिक परिस्थितियों के कारण मजबूर होकर अपनाना पड़ा हो। यह बुद्ध और अशोक के समय से चली आती परम्पराओं पर आधारित है। हम इस विचार की समाप्ति हांगकांग में श्री नेहरू के स्मरणीय भाषण के इस उद्धरण द्वारा करना उचित समझते हैं: "मैं साहस से कहता हूँ कि अशोक की आवाज ही भारत की सच्ची आवाज है, जो युगों से ध्वनित होती आ रही है—वह आवाज जिससे भारत को ताकत मिलती है। अनेक बार पराजित होने के बावजूद इस अभूतपूर्व आध्यात्मिक तत्त्व ने उसे जीवित और संचालित रखा। अगर वर्तमान पीढ़ी के हम लोग उस आवाज को, जो कि हमारी पीढ़ी में महात्मा गांधी द्वारा आयी है, भूल जायें, अगर हम कुछ ज्यादा व्यावहारिक फायदे के लिए उस आवाज को भुला दें और दूसरे रास्ते अख्तियार कर लें, तो वह दिन भारत के लिए अभिशप्त दिन साबित होगा।"

श्री मनुभाई शाह
केन्द्रीय उद्योग मन्त्री

भारत का विदेशी व्यापार

यह सर्वविदित बात है कि पिछले वर्ष या उससे कुछ समय पहले से हमारा विदेशी व्यापार संबंधी घाटा बढ़ता रहा है, और हमारे सामने गंभीर विदेशी विनिमय की कठिनाइयां प्रस्तुत रही हैं। सन् १९५६-५७ में हमारा प्रतिकूल व्यापार-संतुलन २३६ करोड़ रुपये का था और चालू वर्ष के प्रथम तीन महीनों में इसकी मात्रा ११३ करोड़ रुपये रही है। सरकार ने न सिर्फ आयातों को घटाने के लिए, बल्कि निर्यातों को बढ़ाने के लिये भी अनेक कदम उठाये हैं और देश के दीर्घकालीन भुगतान-संतुलन को दुरुस्त करने के लिए एक समन्वित कार्यक्रम चालू किया है। इस लेख का उद्देश्य मोटे तौर पर इस बात की व्याख्या करना है कि हमारी वर्तमान कठिनाइयों का कारण क्या है। यहां हम वर्तमान व्यापार-संतुलन को दुरुस्त करने के लिये सरकार द्वारा उठाये गये विभिन्न कदमों की विस्तार के साथ व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

हमारी खेती के कुछ सबसे अच्छे भूमि-खंडों के पाकिस्तान में चले जाने के कारण देश की अर्थ-व्यवस्था और विदेशी व्यापार पर गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। विभाजन के फलस्वरूप, हमारे देश में खाद्यान्नों का अभाव हो गया और हमें बाध्य होकर बड़ी मात्रा में आयात करना पड़ा। इसी भांति, हम रुई और पटसन के संबंध में भी अभाव का अनुभव करने लगे और हमें पटसन और सूती मिलों के उत्पादन को कायम रखने और बढ़ाने के लिये बड़ी मात्रा में उनका आयात करना पड़ा। इतनी मात्रा में आयात करने के कारण ही स्वतन्त्रता के बाद हमारे व्यापारिक घाटों की मात्रा बढ़ी है। इतना अवश्य है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के सफल कार्यान्वियन के फलस्वरूप, परिस्थिति में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस योजना में कृषि-उत्पादन पर विशेष जोर दिया गया था। जब कृषि-उत्पादन बढ़ गया तो खाद्यान्नों के आयात में काफी कमी हो गयी। जहां हम योजना के प्रारंभ में २१३ करोड़ रुपये के अनाज का आयात करते थे, वहीं योजना के अन्त में उसका मूल्य घटकर १८ करोड़ रुपये हो गया। यथासंभव कच्चे पटसन और कच्ची रुई के आयातों में भी कमी हुई। इसके फलस्वरूप, हमारा प्रतिकूल व्यापार-संतुलन, जो योजना के शुरू में २०० करोड़ रुपये से अधिक का था, घटकर योजना के अन्त में १०० करोड़ रुपये से कम का हो गया।

भारत के आयात और निर्यात

यद्यपि पहली पंचवर्षीय योजना में विशेष जोर कृषि-उत्पादन पर दिया गया था, फिर भी, औद्योगिक उत्पादन को भुलाया नहीं गया था। वस्तुतः, अनेक उद्योगों के विकास के लिए बहुत बड़ी व्यवस्था की गयी थी। अतः, पहली योजना कार्यान्वित करने के फलस्वरूप उत्पादक और पूंजीगत वस्तुओं की मांग में काफी वृद्धि हुई, जिन्हें अधिकांशतः विदेशों से आयात करना पड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि पहली पंचवर्षीय योजना के अन्त में इन वस्तुओं का जितना आयात हुआ, वह १९५२-५३ की अपेक्षा बहुत ही अधिक था। उदाहरण के लिए, १९५५-५६ में पूंजीगत वस्तुओं का आयात १५० करोड़ रुपये का था, जबकि १९५६-५७ में इसका मूल्य २५३ करोड़ रुपया हो गया। १९५२-५३ में तो इस तरह के आयात का मूल्य १०२ करोड़ रुपये था। इसी भांति, उत्पादक वस्तुओं का आयात, जो पहली योजना के अंत में ३८५ करोड़ रुपये का था, १९५२-५३ की अपेक्षा ८३ करोड़ रुपये अधिक हो गया। १९५६-५७ में उत्पादक वस्तुओं का यह आयात ४३८ करोड़ रुपये हो गया।

१९५२-५३ के बाद भारत के आयातों का मूल्य

(करोड़ रुपयें में)

	१९५२-५३	१९५३-५४	१९५४-५५	१९५५-५६	१९५६-५७*
उपभोक्ता वस्तुएं	२५६	१७८	२१८	१४४	१४९
उत्पादक वस्तुएं	३१३	२९७	३३६	३८५	४३८
पूंजीगत वस्तुएं	१०२	९७	१०२	१५०	२५३
कुल	६७१	५७२	६५६	६७९	८४०

*१९५६-५७ के आंकड़े आनुमानिक हैं।

इस तालिका से स्पष्ट है कि १९५२-५३ के बाद १९५६-५७ तक हमने उपभोक्ता वस्तुओं के आयात में लगभग ४२ प्रतिशत (१९५२-५३ में २५६ करोड़ से घटकर १९५६-५७ में १४९ करोड़ रुपये) की कमी की, जबकि पूंजीगत तथा उत्पादक वस्तुओं के आयात में ६६ प्रतिशत की वृद्धि हुई, अर्थात् १९५२-५३ के ४१५ करोड़ रुपये से बढ़कर उसका मूल्य १९५६-५७ में ६९१ करोड रुपये हो गया। इस नीति का अनुशीलन इस उद्देश्य से किया गया है कि हमारे भुगतान-संतुलन पर उपभोक्ता-वस्तुओं के आयात का भार कम किया जा सके और पूंजीगत तथा उपभोक्ता वस्तुओं के आयात में वृद्धि करके औद्योगिक विकास कार्यक्रम को बढ़ावा दिया जा सके।

विभाजन के बाद कच्चे पटसन और रुई संबंधी अभाव के कारण विदेशी विनिमय के उपार्जनन संबंधी दो बहुमूल्य साधन हमारे हाथों से निकल गये। दरअसल, देश की आंतरिक मांग की वृद्धि और इन दोनों वस्तुओं के कारण हमारे निर्यातों में काफी कमी हो सकती थी, लेकिन पहली योजना में चालू किये गये खेती संबंधी और औद्योगिक विकास कार्यक्रमों के फलस्वरूप हम अपने कुल निर्यातों की मात्रा को स्थिर रखने में बहुत कुछ सफल रहे। सन् १९५६-५७ में निर्यातों का मूल्य, जिनमें पुनर्निर्यात भी शामिल था, ६०३ करोड़ रुपये था, जबकि उनका मूल्य १९५२-५३ में ५७७ करोड़ रुपये था। मुख्य रूप से चाय और तम्बाकू जैसी व्यापारिक वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि हुई। कच्ची धातुओं और कच्चे मालों के निर्यात में भी मध्यम दरजे की वृद्धि हुई। इन सबके फलस्वरूप, कच्चे पटसन और कच्ची रुई के कारण जो घाटा उठाना पड़ा, वह बहुत कुछ पूरा हो गया। इसके अलावा, देश के औद्योगिक विकास के फलस्वरूप तैयार वस्तुओं के निर्यात म भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई और पहली योजना के अन्त में कुल निर्यातों में उनका हिस्सा ४२ प्रतिशत के बराबर था, जबकि १९३८-३९ में उनका हिस्सा केवल ३० प्रतिशत था। निम्नलिखित तालिका में १९५०-५१ से लेकर १९५६-५७ तक भारत की (समुद्री, हवाई और स्थल संबंधी) व्यापारिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

१९५०-५१ के बाद भारत का व्यापार-संतुलन

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	आयात	पुर्ननिर्यात सहित कुल निर्यात	व्यापार-सन्तुलन
१९५०-५१	६५०	६०१	४९
१९५१-५२	९७०	७३३	२३७
१९५२-५३	६६७	५७७	९०
१९५३-५४	५६७	५३१	३६
१९५४-५५	६५६	५९४	६३
१९५५-५६	७०५	६०९	९६
१९५६-५७	८४०	६०३	२३७

द्वितीय पंचवर्षीय योजना लागू करने के फलस्वरूप, हमारे आयात और निर्यात व्यापार के ढांचे में ये प्रवृत्तियां विशेष रूप से दिखलायी पड़ने लगीं। औद्योगिक उत्पादन पर विशेष जोर देने और लोहा तथा इस्पात जैसे उद्योगों के बड़े कार्यक्रमों के लिए विस्तृत व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पादक और पूंजीगत वस्तुओं के आयात में गहरी वृद्धि हुई। दरअसल, १९५६-५७ में कुल आयातों का मूल्य ८४० करोड़ रुपये होने का प्रमुख कारण इनका आयात ही था। इनमें भी अकेले मशीनों का ही आयात १७८ करोड़ रुपये का था, जबकि लोहे और इस्पात की बनी हुई वस्तुओं का आयात १४८ करोड़ रुपये का था। उत्पादक वस्तुओं के अन्य निर्यातों में अधिकांशतः विकास संबंधी वस्तुएं जैसे, यातायात के उपकरण, और औद्योगिक कच्चे माल जैसे पटसन, रुई, अलौह धातुएं, आदि शामिल थीं। ये सभी वस्तुएं योजना की सफलता के लिये बेहद जरूरी हैं। हमारे उद्योगों के विकास और संचालन में उनका महत्वपूर्ण योग है। दुर्भाग्य से हमारे आयात निर्यातों की इस अनवरत वृद्धि का साथ न दे सके। फलस्वरूप हमें गहरे व्यापारिक घाटे का सामना करना पड़ रहा है।' जिसे तत्काल कम करना जरूरी है।

एक विस्तारशील और विकासशील अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से यह पूर्णतया स्वाभाविक है कि पूंजीगत और उत्पादक वस्तुओं के आयात में व्यापक वृद्धि हो। किसी भी विकासशील और विस्तारशील अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत पूंजीगत और उत्पादक वस्तुओं के आयात पर इतने अधिक अनिवार्य व्यय को पूरा करने के लिये अनेक क़दम उठाने जरूरी होते हैं। किसी एक उपाय से कार्य सम्पन्न नहीं किया जा सकता।

इस परिस्थिति के कारण ही हमें देश की आयात नीति को गत कुछ वर्षों के भीतर एक विशेष रूप देना पड़ा है। उसे इस तरह तैयार करना पड़ा है कि देशी वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ावा मिले। गत पांच वर्षों के भीतर आयात की वस्तुओं की मात्रा और किस्म के अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा कि सरकार वस्तुओं की मात्रा और किस्म के संबंध में सदैव सतर्क रही है। ऐसी वस्तुओं के आयात में गहरी कटौती की गयी या रुकावट लगायी है जिन्हें तैयार करने में देश की खेती और यहां के उद्योग उत्तरोत्तर समर्थ होते जा रहे हैं। लगातार इस बात का भी प्रयत्न किया गया है कि उद्योगों में यथासंभव विदेश से मंगाये गये कच्चे माल की बजाय देशी कच्चे माल का प्रयोग किया जाय। मैं पाठकों का बहुत समय उन कदमों के विस्तार में जाने पर नहीं व्यय करना चाहता जिन्हें पिछले कुछ वर्षों के भीतर भुगतान-संतुलन को दुरुस्त करने के लिये उठाया गया है। दरअसल, यह सभी उपाय सर्वविदित हैं।

पंचसूत्रीय आन्दोलन

१९५७ के प्रारंभ से ही देश के बाह्य भुगतानों की स्थिति सुधारने के उद्देश्य से एक पंचसूत्रीय आन्दोलन चलाया गया है। इसका उद्देश्य हमारे आन्तरिक और विदेशी व्यापार की जरूरतों के बीच सम्भाव्य सन्तुलन कायम रखना भी है। इन पंचसूत्रीय उपायों का उल्लेख संक्षेप में इस प्रकार है:

(१) **आयातों में अधिकतम कटौती करना:** हमें आयात संबंधी सभी वस्तुओं में अधिक से अधिक कटौती करनी पड़ेगी, और यह कटौती उस हद तक करनी पड़ेगी जिससे उसे कम करना असम्भव हो। अल्पकालीन अवधि में ऐसा करने के फलस्वरूप कुछ कठिनाइयां निश्चय ही उपस्थित होंगी। कहीं-कहीं आयातों की वस्तुओं के मूल्य में कुछ वृद्धि होगी। सरकार इस दिशा में काफी सतर्क है और इस बात के लिये प्रयत्नशील है कि व्यापक रूप से मूल्य-स्तर को यथासम्भव स्थिर रखा जाय। आयात-नियंत्रणों का शुद्ध परिणाम स्वभावतः यह होगा कि देशी-उत्पादन को विकसित होने में काफी प्रोत्साहन मिलेगा। इस बात का ध्यान अनेक प्रकार की वस्तुओं के संबंध में खास तौर पर रखा जायेगा। इंजीनियरिंग वस्तुओं, रसायनों, दवाइयों, उपभोक्ता वस्तुओं, उत्पादक वस्तुओं और मध्यम तथा भारी मशीनों के उत्पादन के संबंध में इस बात का ध्यान विशेष रूप से रखा जायगा।

(२) **देशी उत्पादन को बढ़ाना और उसकी अधिकतम मात्रा प्राप्त करना:** द्वितीय महत्वपूर्ण कदम, यथासंभव शीघ्रता के साथ देशी उत्पादन को बढ़ाने और अधिकतम करने की दिशा में उठाया गया है। इसके लिये (अ) जहां कहीं सम्भव होगा अधिक पालियों में काम करने पर, (ब) उपकरणों को उनकी वर्तमान क्षमता तक उत्पादन करने में बढ़ावा देने पर, (स) वर्तमान उपकरणों को आधुनिकतम रूप देने और उन्हें नवीनतम स्वरूप में लाने के प्रयत्न पर, ताकि औद्योगिक ढांचा अधिक स्वस्थतम हो जाय, और (द) देशी और विदेशी कच्चे मालों, उपकरणों तथा पूंजीगत और उत्पादक वस्तुओं का अधिक से अधिक प्रयोग करने पर, जोर देकर चाहे, उनकी किस्म आयात की वस्तुओं से कुछ खराब ही क्यों न हो, देशी उत्पादन को बढ़ाने के लिये प्रेरणा दी जा रही है। जब तक कि राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत, देशी और स्वदेशी वस्तुओं का संचार नहीं होता, तब तक विदेशी वस्तुओं के संबंध में उपभोक्ताओं की दीर्घकालीन अधिमान्यता को खतम करना असम्भव होगा। इससे भी औद्योगिक और कृषि संबंधी उन वस्तुओं के उत्पादन में बढ़ावा मिलेगा, जिनके संबंध में देश में कभी भी विचार नहीं किया गया है। यह सौभाग्य की बात है कि देश में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखलायी पड़ने लगी है। उद्योगपति और उपक्रमी ऐसी वस्तुओं के उत्पादन की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं जिनका उत्पादन भूतकाल में पहले कभी भी नहीं हुआ था। उद्योग, व्यापार, उपभोक्ता

और सरकार के सहयोग तथा अनवरत सावधानी के फलस्वरूप इन वस्तुओं की किस्म में भी लगातार सुधार होता जा रहा है। अनेक विकास समितियां, भारतीय प्रमाण संस्था, किस्म निर्माण योजना, निर्यात प्रोत्साहन समिति और उत्पादन से सम्बन्धित सभी संस्थायें वस्तुओं के गुणों के सुधार पर अधिक से अधिक ध्यान दे रही हैं और उनके प्रमाणों का निर्धारण हो रहा है।

(३) **निर्यातों को प्रोत्साहन** : तृतीय उपाय निर्यातों को प्रोत्साहन देने से सम्बद्ध है। यह एक प्रत्यक्ष कदम है, क्योंकि इससे प्रत्यक्ष रूप से विदेशी विनिमय का उपार्जन होता है। इसके विपरीत, अन्य चारों उपायों द्वारा विदेशी विनिमय की बचत की जाती है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण यथार्थ कदम है और इसके द्वारा विदेशी विनिमय की स्थिति को दुरुस्त करने में विशेष सहायता मिलती है। मैं इस विषय पर बाद में चलकर विस्तार के साथ विचार करूंगा।

(४) **मशीनों और उपकरणों के आयात के संबंध स्थगित-भुगतान का आधार तैयार करना** : चौथा उपाय मशीनों और उपकरणों के आयात का आधार तैयार करने से सम्बद्ध है। इस आधार का संबंध मशीन के पुर्जों और महंगे कच्चे मालों के आयात से भी है। यह योजना अब काफी ख्याति पा चुकी है और इस साल के प्रारंभ से ही पांच से सात साल की अवधि वाले स्थगित-भुगतान के समझौते लागू हो चुके हैं और उनसे काफी सुखद और फलदायक परिणाम हासिल हुए हैं। अगस्त के अन्त तक हमने कुल ५९.२७ करोड़ रुपये के मूल्य की १३७ स्थगित भुगतान योजनाओं पर स्वीकृत प्रदान की है। इनमें ५.९४ करोड़ रुपये के विदेशी पूंजी के निवेश और ३६.९८ करोड़ रुपये के स्थगित भुगतान भी शामिल हैं। इनके अलावा, १६.९५ करोड़ रुपये का भुगतान नकदी तौर पर करना है। इन स्थगित भुगतान कार्यक्रमों का सम्बन्ध २७ चीनी योजनाओं, १९ लोहा और इस्पात उद्योगों, १४ इंजीनियरिंग, १४ रसायन और दवा संबंधी योजनाओं, १० सूती वस्त्र, १० भारी विद्युतीय मशीनों, ८ सिमेंट, ७ कागज और ५ आटोमोबाइल योजनाओं से हैं। इनके अलावा स्थगित भुगतान योजनाओं से सम्बद्ध बहुत से प्रार्थनापत्र सरकार के पास पड़े हुए हैं और उन पर विचार किया जा रहा है। समूचे रूप में विदेशी पूर्तिकर्त्ताओं की ओर से स्थगित भुगतान योजनाओं के संबंध में बहुत ही उत्साहजनक उत्तर प्राप्त हुए हैं। इसका श्रेय उद्योगपतियों, सरकार तथा विदेशियों के सद्भावनापूर्ण प्रयत्नों को ही है।

(५) **आवश्यक विदेशी ऋण के लिए लिखा-पढ़ी** : पंचम बड़ा कदम विदेशी ऋण प्राप्त करने के लिये लिखा-पढ़ी से सम्बद्ध है। हमें अनुभव है कि हमारे देश में ऋण के साधन निम्नलिखित सूत्रों द्वारा प्राप्त किये जारहे हैं : (अ) योजना बनाम योजना के आधार पर लिखा-पढ़ी द्वारा (ब), द्विपक्षीय समझौतों द्वारा, (स) विभिन्न देशों से राज्य व्यापार निगम के माध्यम से पारस्परिक लाभ समझौते द्वारा, और (द) विभिन्न विदेशी बैंकिंग और साख संस्थाओं, जैसे विश्व बैंक, द्वारा दिये गये ऋण द्वारा। रूस द्वारा दिया गया ऋण, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष से मिला ऋण, विश्व बैंक से प्राप्त ऋण, कोलम्बो योजना से प्राप्त सहायता तथा विश्व के विभिन्न आयात-निर्यात बैंकों से प्राप्त ऋण इस दिशा में उल्लेखनीय हैं। तत्काल अधिक मूल्य वाली पूंजीगत और उत्पादक वस्तुओं के आयात के लिए दीर्घकालीन भुगतान की व्यवस्था करने में इन ऋणों से हमें काफी सहायता मिल रही है। दुनिया कें सभी देशों से हमारे सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध के फलस्वरूप हमें इस तरह के ऋण प्राप्त करने में आसानी हो रही है। हमें आशा है कि निकट भविष्य में और भी अधिक मात्रा में ऋण सुविधाएं प्राप्त होंगी। भुगतान-सन्तुलन की स्थिति को दुरुस्त करने के लिये ऊपर जो पंचसूत्रीय उपाय बतलाये गये हैं, वे बहुत ही व्यापक, सुसमन्वित तथा एकीकृत नीति के द्योतक हैं। इनमें से मैं विस्तार के साथ देश की आयात और निर्यात नीति पर विचार करूंगा।

आयात-निर्यात नीति

ऐसी स्थिति में, प्रथम और तात्कालिक कदम के रूप में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों के अनुरूप यथासंभव कड़े आयात नियंत्रण लगाने का निश्चय किया गया है। जनवरी-जून १९५७ की अवधि में ५०९ वस्तुओं के आयात कोटाओं में कमी की गई। जिन वस्तुओं के कोटे कम किये गये, उनमें अधिक महत्वपूर्ण फल, मसाले, सुपारी, नशीले पेय, सिगार, सिगरेट, शृंगार की वस्तुएं, शीशे की पेंसिलें, कागज, ऊनी, सूती और बनावटी रेशम के कपड़े, बर्तन, शीशे, साइकिलें, पेटेंट दवाएं,

कोलतार के रंग और कुछ मशीनी वस्तुएं शामिल हैं। इनके अलावा, उदारतापूर्ण लायसेंस देने की योजना को खत्म कर दिया गया है, और नये व्यापारियों को लायसेंस देना बन्द कर दिया गया है। जुलाई-सितम्बर १९५७ के बीच एक अन्तःकालीन नीति की घोषणा की गयी ताकि स्थिति का मूल्यांकन किया जा सके।

अभी हाल में अक्तूबर १९५७ से मार्च १९५८ तक के लिये जो आयात नीति घोषित की गयी है, उसका निर्माण भी देश के आयातों में अधिक से अधिक बचत करने के उद्देश्य को ध्यान में रख कर किया गया है। और अनेक उपभोक्ता वस्तुओं के आयात में कड़ी कटौती की गयी है। तम्बाकू के बने सामान, ऊनी कपड़े, साइकिल, घड़ी, फाउंटेनपेन, बरतन, आदि १०७ उपभोक्ता वस्तुओं का आयात आगामी ६ महीनें के भीतर पूर्णतया रोक दिया गया है। इसके साथ ही साथ, कुछ अत्यन्त अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुयें, जैसे बच्चों के लिये दूध के सामान कुछ किस्म के मसाले, आदि, को यथासंभव व्यावहारिक सीमा तक आयात करने की आज्ञा दी गयी है। उपभोक्ता वस्तुओं के आयात के संबंध में, खास तौर पर दवाओं के संबंध में, एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है कि एक साथ अधिक मात्रा में उनके आयात की अनुमदित दी गयी है, ताकि उनका कोटा घटाने पर भी इनका आयात निम्नपतर लागत सीमा के भीतर पर्याप्त मात्रा में किया जा सके।

यद्यपि अक्तूबर-मार्च के लिये घोषित नीति में उपभोक्ता वस्तुओं के आयात में कड़ी कटौती की गयी है, फिर भी उद्योगों के कच्चे माल सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिये पर्याप्त व्यवस्था की गयी है और सुधरे मशीनी हिस्सों तथा प्रतिस्थापक मशीनों के पर्याप्त आयात की सुविधा भी दी गयी है। पूंजीगत वस्तुओं के आयात के संबंध में नयी नीति उस सीमा तक ही अनुमति देगी, जिनका भुगतान विदेशों से प्राप्त पूंजी तथा विदेशी ऋण द्वारा हो सकेगा, अथवा जिनके संबंध में स्थगित भुगतान की सुविधा प्राप्त हो सकेगी, ताकि भुगतान की जिम्मेदारी इस तरह से बटी हुई हो कि केवल उसी समय भुगतान करना पड़े, जबकि आयात वाली पूंजीगत वस्तुओं के प्रयोग से बढ़े हुए उत्पादन के फलस्वरूप वस्तुओं के निर्यात में शुद्ध वृद्धि हुई हो, अथवा ऐसे आयातों को कम करने से विदेशी विनिमय में बचत हुई हो जो कि अन्यथा आवश्यक होते। इस बात की व्यवस्था की गयी है कि ऐसी अवस्था में जहां अधिकांश प्लांट पहले ही आयात किये जा चुके हों, वहां प्लांटों और उपकरणों को संतुलित करने के लिये नकदी लायसेंस दिये जा सकेंगे। नयी नीति की एक विशेषता निर्यात प्रोत्साहन योजना के अन्तर्गत सस्ते मालों के आयात की अनुमति देने से सम्बद्ध है, जो कि कच्चे मालों, आदि के पूरे आयात में सुविधा पहुंचायेंगी, जिनकी जरूरत कच्चे माल के आधार पर होने वाले अतिरिक्त निर्यात के लिये सबल निर्यात प्रोत्साहन नीति के अनुशीलन के लिये होगी।

व्यापार-नियंत्रण नीति का अनुशीलन एक लोचशील ढंग पर किया गया है, ताकि परिवर्तित परिस्थितियों का सामना किया जा सके, और उसके फलस्वरूप, औद्योगिक विकास की दिशा में यथार्थ योगदान प्राप्त हो सके। यह देश की पूंजीगत और उत्पादक वस्तुओं की जरूरत के प्रति, और साथ ही साथ, विदेशी विनिमय सुरक्षित रखने की जरूरत के प्रति, सहानुभूतिपूर्ण रही है। इस नीति के अनुशीलन के दौरान में लगातार इस बात की सावधानी बरती जारही है कि मूल्य-स्तर को स्थिर बनाये रखा जाय और देशी वस्तुओं की किस्म में सुधार हो सके। इन दिशाओं में लगातार अनेक कदम उठाये जा रहे हैं।

जैसा कि पहले बताया गया है, वास्तविक समाधान निर्यातों को प्रोत्साहन देने में ही निहित है, क्योंकि हम उसके बल पर अधिक मात्रा में विदेशी विनिमय का उपार्जन कर सकेंगे। साथ ही साथ, हम इतने बड़े पैमाने पर अनिवार्य विकासशील वस्तुओं का आयात भी कर सकेंगे जो कि पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त होगा। ऐसी दशा में निर्यात प्रोत्साहनों पर विशेष जोर देना होगा और हमें अपना निर्यात बढ़ाने में सर्वश्रेष्ठ योगदान करना पड़ेगा। इस दिशा में भी अनेक उपाय अपनाये गये हैं।

संगठित निर्यात-त्सप्रोहन

१९५६ के वर्ष के भीतर सामान्य रूप से सभी निर्यातों पर, और विशेष रूप से संगठित निर्यातों पर, लगे नियंत्रण को उत्तरोत्तर ढीला करने की नीति का पालन किया गया। बहुत सी वस्तुओं को निःशुल्क लायसेंस सूची में शामिल किया गया,

जिनमें से विशेष रूप से उल्लेखनीय तांबे की वस्तुएं, ऊनी सूत, ऊन के बने होजियरी के सामान, गोंद, आदि हैं। लेकिन कुछ प्रकार के खाद्य-पदार्थों पर निर्यात-नियंत्रण कड़ा करना जरूरी है, क्योंकि बढ़ती हुई देशी मांग और बढ़ते हुए मूल्यों का दबाव ऐसा करने के लिए मजबूर कर रहे हैं। इससे प्रभावित वस्तुओं में चावल, ज्वार, दाल, गेहूं, मूंगफली का तेल, सरसों का तेल और मिर्च शामिल हैं। वनस्पति तेल के मूल्य को बढ़ने से रोकने के लिए अलसी के तेल और अरण्डी के तेल तथा नाइगर तेल पर निर्यात कर लगाये गये हैं। अरण्डी के तेल पर लगे निर्यात कर को बढ़ा दिया गया है, लेकिन विदेशी मूल्य स्तर के घट जाने की वजह से अलसी के तेल पर लगा हुआ कर हटा दिया गया है, ताकि इस तेल के निर्यात में बाधा न पड़े। संक्षेप में, देश से निर्यात होने वाली वस्तुओं के प्रवाह के प्रति निरन्तर सावधानी दिखलायी गयी और निर्यात कर को समायोजित करने तथा निर्यात नियंत्रणों की कड़ाई या ढिलाई, आदि उपाय समय-समय पर लाग किये गये, ताकि बदली हुई परिस्थितियों का सामना किया जासके।

व्यापार की दिशा

१९५६ के वर्ष में भारत के विदेशी व्यापार की दिशा बहुत कुछ वैसी ही रही, जैसी कि उसके पहले वाले वर्ष में थी। ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका भारत के सबसे महत्वपूर्ण क्रेता और पूर्तिकर्ता देश बने रहे। ब्रिटेन से १९५६ में जो आयात हुआ, वह १९५५ की अपेक्षा ४७ करोड़ रुपये अधिक था, जबकि संयुक्त राज्य अमरीका से मंगायी गयी वस्तुओं का मूल्य १९५५ की अपेक्षा ६ करोड़ रुपये अधिक था। भारत से ब्रिटेन को भेजे गये मालों के मूल्य में १८ करोड रुपये की वृद्धि हुई। कुछ यूरोपीय देशों से मंगायी गयी वस्तुओं के मूल्य में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। पश्चिमी जर्मनी से हुआ आयात १९५५ के ५४ करोड़ से बढकर १९५६ में ८२ करोड़ रुपये का हो गया। इसी प्रकार, इटली, बेल्जियम, स्विट्जरलैंड और स्वीडन से आयातों के मूल्य में क्रमशः ९ करोड़, १५ करोड़, ५ करोड़ और ४ करोड़ रुपये की वृद्धि हुई। जापान से मंगाये गये आयातों में भी ३२ करोड़ से ४४ करोड़ रुपये की वृद्धि हुई। किन्तु इन देशों को भेजे गये निर्यातों में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ। जहां सं. रा. अमरीका के आयात के संबंध में १९५५ के ३ करोड़ से १९५६ में १५ करोड़ रुपये की मात्रा तक पहुंचा जा सका, वहीं पर निर्यातों में भी वृद्धि हुई और उसकी मात्रा १९५५ के २ करोड़ रुपये से बढ़कर १९५६ में १२ करोड़ रुपये पहुंच गयी। आस्ट्रेलिया और कीनिया से हुए आयातों में कमी हुई, जबकि नेदरलैंड को हुए निर्यातों में १९५५ के स्तर से ६ करोड़ रुपये का घाटा हुआ।

निर्यात-प्रोत्साहन कार्य

इस समय देश में कुल १४ निर्यात-प्रोत्साहन समितियां मौजूद हैं। हमारे यहां सूती वस्त्र, रेशम और रेयन के वस्त्र, प्लास्टिक के सामान, इंजीनियरिंग के सामान, काली मिर्च, तम्बाकू, अबरक, चमड़ा, ऊनी वस्त्र, साइकिल, इंजिन और शक्ति संचालित पम्प, लाख, तेल के सामान और रसायन उद्योगों के लिए, निर्यात-प्रोत्साहन समितियां क्रियाशील हैं। चाय बोर्ड, काफी बोर्ड तथा चटाई बोर्ड ने भी अपनी निर्यात प्रोत्साहन समितियां कायम कर ली हैं।

निर्यात-प्रोत्साहन समितियों ने अनेक प्रतिनिधि-मंडल विदेशों में भेजे। इंजीनियरिंग समिति ने जनवरी १९५६ में अपना एक प्रतिनिधि-मंडल बर्मा भेजा और दूसरा १९५७ में पूर्वी अफ्रीका के देशों में भेजा। मई १९५६ में तम्बाकू समिति ने अपना प्रतिनिधि-मंडल पश्चिम एशियाई और अफ्रीकी देशों में भेजा। सुपारी और काली मिर्च समिति ने अपना प्रतिनिधि-मंडल यूरोपीय देशों में भेजा। इसी प्रकार, रेयन समिति और प्लास्टिक समिति ने अपने प्रतिनिधि-मंडल क्रमशः अक्तूबर १९५६ और मार्च १९५७ में पश्चिमी एशियाई और पूर्वी अफ्रीकी देशों में भेजा। निर्यात-प्रोत्साहन समितियों ने विदेशों में आयोजित प्रदर्शनियों और प्रदर्शनालयों में भी हिस्सा लिया। अंकारा, लागोस, पोर्टलुई, बम्बासा, फ्रेंकफट, प्राग, जगरेब, लिबिजिक, कोलम्बो, करांची, बैंगकाक, आदि स्थानों पर उन समितियों ने प्रदर्शनियों में हिस्सा लिया और प्रदर्शनालयों में अपनी वस्तुओं का प्रदर्शन किया। निर्यात प्रोत्साहन समितियों ने तम्बाकू, सुपारी, रेशम और रेयन के सूत, आदि के नमूने के पैकेट भी विदेशों में वितरण के लिये भेजे।

बाजार सर्वेक्षण

इसके अलावा, अनेक समितियों ने विदेशों में बाजार सर्वेक्षण का कार्य अपने हाथ में लिया है। इंजीनियरिंग समिति ने मिस्र और स्वीडन में तथा प्लास्टिक समिति ने मिस्र में बाजार सर्वेक्षण पूरा कर लिया है। सूती वस्त्र समिति बगदाद, सिंगापुर, लागोस, रंगून, अदन और मम्बासा में अपने अधिकारियों द्वारा सर्वेक्षण करा रही है। विभिन्न समितियों द्वारा तैयार किये गये बुलेटिनों के जरिये भी भारतीय वस्तुओं का प्रचार हो रहा है। इन संगठनों ने भारतीय निर्यातकर्ताओं और विदेशी आयातकर्ताओं के बीच पैदा हुई शिकायतों की जांच का काम भी अपने ऊपर लिया है। एक दूसरा महत्वपूर्ण कार्य वस्तुओं की किस्म के नियंत्रण से सम्बद्ध है, जिसकी ओर कुछ समितियों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। जनवरी १९५६ से निर्यात वाले सूती वस्त्रों के लिए एक वास्तविक जांच योजना कार्यान्वित की गयी है। विभिन्न उद्योगों की विकास समितियां भी निर्यात-प्रोत्साहन में योग दे रही हैं। ऊनी वस्त्र, साइकिल और शक्ति संचालित पम्पों की विकास समितियों ने अपनी स्थायी समितियां बना ली हैं। दवा और अन्य चिकित्सा संबंधी वस्तुओं की विकास समितियों ने भी इस तरह की समितियों को बनाने का निश्चय किया है। ये स्थायी समितियां अपनी-अपनी वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहित करने में मदद पहुंचायेंगी।

विदेशी व्यापार बोर्ड

विदेशी विनिमय के साधनों की कमी को पूरा करने के उद्देश्य से निर्यातों को प्रोत्साहन देने के सर्वतोमुखी प्रयत्नों की आवश्यकता के सन्दर्भ में वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय ने ८ जुलाई '५७ को एक विदेशी व्यापार बोर्ड की स्थापना की। इस बोर्ड के प्रमुख कार्यों में निर्यातों को बढ़ावा देने वाले उपायों पर अपने प्रयत्न केन्द्रित करना तथा व्यापारिक नीति, व्यापारिक लिखा-पढ़ी, अलग-अलग देशों के साथ व्यापारिक समस्याओं, व्यापारिक और वाणिज्य संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और राज्य व्यापार निगम के कार्यों से सम्बद्ध आन्तरिक और बाह्य नीतियों वाले मंत्रालय के विभिन्न संगठनों और शाखाओं के बीच समन्वय स्थापित करना शामिल है। विदेशी व्यापार विभाग के डायरेक्टर जनरल इस विदेशी व्यापार बोर्ड के अध्यक्ष हैं।

निर्यात प्रोत्साहन के लिए राजकोषीय उपाय

विदेशी बाजारों में भारत में बने सामानों को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उन्हें दूर करने के लिए कुछ राजकोषीय उपाय भी अपनाये गये हैं। उदाहरण के लिए, निर्मित वस्तुओं के आयात किये गये हिस्सों पर वसूल की गयी आयात चुंगी को वापस करने के लिए व्यवस्था की जा रही है। इन चुंगियों का संबंध उन्हीं वस्तुओं से है, जिन्हें मंगाने के बाद फिर से निर्यात करना है। १३ वस्तुओं के संबंध में, जिनमें रेयन के कपड़े, सूती वस्त्र, हाथ-करघे की वस्तुएं, बनावटी रेशम के कपड़े, साड़ियां, आदि शामिल हैं, इस तरह की चुंगी वापस करने के संबंध में नियम बना दिये गये हैं। छाते और अल्युमिनियम वस्तुओं के संबंध में भी इस तरह के नियम बना दिये गये हैं। निम्नलिखित वस्तुओं के संबंध में उत्पादन कर वापस करने की कार्यवाही को सरल करने की कोशिश की गयी है : (अ) शक्तिचालित करघों की वस्तुओं और भारत से बाहर भेजी जाने वाली वस्तुओं के उत्पादन कर की छूट के अनुदान के लिये कार्यवाही, (ब) मद्रास, बम्बई और कलकत्ता के बन्दरगाहों से समुद्र के रास्ते निर्यात होने वाली उन सभी वस्तुओं (वनस्पति तेल और चाय को छोड़कर) के निर्यात के संबंध में कार्यवाही, जिन पर उत्पादन कर लगाया जाएगा, (स) तैयार कपड़े, खेमा तथा चीनी से बने सामान जिनमें बिस्कुट और फल भी शामिल हैं, के निर्माण में इस्तेमाल होने वाली कच्ची वस्तुओं पर लगने वाले उत्पादन कर को वापस करने के संबंध में कार्यवाही, बशर्ते कि इन वस्तुओं का निर्यात हो।

क़िस्म सम्बन्धी नियंत्रण

कृषि उत्पादन (वर्गीकरण और क्रय-विक्रय) अधिनियम, १९३७, की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत वस्तुओं की किस्म के नियंत्रण की समस्या की ओर भी ध्यान दिया गया है। तम्बाकू, सन, कच्चे ऊन के संबंध में निर्यात के पहले अनिवार्य रूप से वर्गी-

करण करने के नियम लागू हो चुके हैं। आलोच्य अवधि में उपर्युक्त अधिनियम के अन्तर्गत निर्यात के पहले नींबू के तेल और चन्दन के तेल पर भी वर्गीकरण के नियम लागू किये गये हैं।

निर्यात प्रोत्साहन की दिशा में जहाजरानी संबंधी कठिनाई एक जबरदस्त बाधा रही है। जहाजरानी संबंधी समस्याओं की जांच के लिए यातायात मंत्रालय ने एक केन्द्रीय परामर्शदात्री समिति की स्थापना की है, जिसका संबंध विदेशी जहाजरानी हितों से है। इस समिति की प्रादेशिक शाखायें बम्बई और कलकत्ता में हैं। आशा है कि यह समिति विभेदात्मक करों और अभावजन्य जहाजी स्थान से संबंधित समस्याओं का उचित हल निकालने में मदद देगी और जहाजरानी संबंधी अवसरों को बढ़ाने में योग देगी। रेल यातायात के संबंध में तम्बाकू, सुपारी जिनका कि निर्यात करना है, के आवागमन पर विशेष सुविधा दी गयी है।

निर्यात ऋण-प्रत्याभूति समिति

निर्यात ऋण-प्रत्याभूति समिति की स्थापना एक ऐसी योजना तैयार करने के लिये हुई थी, जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल हो। समिति की रिपोर्ट जून १९५६ में पेश की गयी, जिसकी जांच सरकार ने कर ली है। उसके अनुसार, एक निर्यात जोखिम बीमा निगम की स्थापना का निश्चय किया गया है जिसका प्रधान कार्यालय बम्बई में होगा और अधिकृत पूंजी ५ करोड़ रुपये तथा प्रार्थित पूंजी २ करोड़ रुपये होगी। इस निगम की चुकता पूंजी ५० लाख रुपये है। निगम की स्थापना हो चुकी है।

निर्यात प्रोत्साहन संबंधी पहलुओं के व्यापक सर्वेक्षण के उद्देश्य से सरकार ने एक निर्यात-प्रोत्साहन समिति की नियुक्ति की है। समिति ने अपनी अंतरिम रिपोर्ट पेश कर दी है और उसकी अंतिम रिपोर्ट छप रही है। सरकार इस रिपोर्ट पर विचार कर रही है और उसके सुझावों के संबंध में सरकारी फैसला शीघ्र ही घोषित कर दिया जायगा।

आलोच्य अवधि के भीतर भारत ने कैलिफोर्निया राज्य व्यापार मेला, सेक्रिमेंटो (सं. रा. अमरीका) अन्तर्राष्ट्रीय मेला, फ्रैंकफर्ट, जगरेब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मेला तथा मेसेना, मम्बासा, बैंगकाक, लिपजिक, आदि के मेलों में हिस्सा लिया। इनके अलावा, पूर्वी पाकिस्तान के कागमारी स्थान पर पाकिस्तानी सांस्कृतिक सम्मेलन में आयोजित प्रदर्शनी में भारतीय वस्तुओं की प्रदर्शनी की भी व्यवस्था की गयी थी। विदेशों में व्यापारिक सेवा के विस्तार के संबंध में काफी कार्य हुआ। खारतून, सेलिसबरी, फूनपेंच और बैंकुअर में नये दफ्तर खोलने का निश्चय किया गया। मिस्र में निकटतर व्यापारिक संबंध विकसित करने के उद्देश्य से, काहिरा के कोनसल जनरल के पद को कोंसिलर के पद में परिणत कर दिया गया है।

व्यापार विस्तार सम्बन्धी समझौते

इस अवधि में पुराने व्यापारिक समझौतों को फिर से ताजा करके और बहुत से नये समझौते करके विदेशी व्यापार को विकसित करने के लिये पर्याप्त सुविधाएं प्राप्त करने की कोशिश की गयी हैं। सोवियत रूस और जर्मनी लोकतंत्र के साथ व्यापारिक समझौते की सूचियों को संशोधित किया गया। आस्ट्रिया, जेकोस्लोवाकिया, हंगरी, रूमानिया, ईराक और इंडोनेशिया के संबंध में व्यापारिक समझौते की अवधि बढ़ा दी गयी और समझौतों में उचित संशोधन किये गये। जब अक्तूबर १९५६ में चीन के साथ व्यापारिक समझौता खत्म हो गया, उसके बाद एक नया समझौता किया गया। स्वीडन, फिनलैंड और नार्वे के साथ व्यापारिक समझौतों की अवधि बढ़ाने का सवाल विचाराधीन है। बर्मा, यूगोस्लाविया, बल्गेरिया, पोलैंड, जर्मन लोकतंत्र, उत्तरी वियताम, चिली और पाकिस्तान के साथ नये व्यापारिक समझौते किये गये।

मोटे तौर पर, व्यापारिक समझौतों द्वारा समझौते वाले देशों के लिए 'सबसे अधिक सुविधा प्राप्त राष्ट्र' के व्यवहार की व्यवस्था की गयी। बर्मा के संबंध में दोनों देशों ने व्यावहारिक दृष्टि से अधिकतम मात्रा तक संतुलन हासिल करने के लिए प्रयत्न करने की जिम्मेदारी ली है। पाकिस्तान के मामले में पश्चिमी बंगाल, आसाम और त्रिपुरा तथा पूर्वी पाकिस्तान के बीच

सीमावर्ती व्यापार के लिये सुविधा देने की व्यवस्था की गयी है। भारत से पूर्वी पाकिस्तान की कुछ खास जरूरतों को पूरा करने के लिये व्यवस्था की गयी है। सोवियत रूस, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया और मिस्र जैसे अनेक देशों के साथ जो समझौते हुए हैं, उनमें व्यापारिक लेन-देन को रुपये के रूप में तय करने की व्यवस्था की गयी है।

इनमें से किसी भी एक या अधिक उपाय का प्रभाव देश के व्यापार के विकास पर कितना पड़ा है इसे ठीक-ठीक बतलाना कठिन है, फिर भी यह बात उल्लेखनीय है कि समझौते वाले देशों के साथ भारत का व्यापार १९५३-५४ के ७८ करोड़ रु० से बढ़कर १९५४-५५ में ८८ करोड़ रुपये और १९५५-५६ में ९८ करोड़ रुपये हो गया। इन देशों के साथ जनवरी से नवम्बर १९५६ के बीच के ग्यारह महीनों में कुल ९३ करोड़ रुपये का निर्यात हुआ।

निर्यात-प्रोत्साहन समितियों द्वारा भेजे गये प्रतिनिधि-मंडलों के अलावा भारत सरकार ने भी मई, १९५६ में स्वीडन, इंग्लैंड और डेनमार्क को एक औद्योगिक व्यापारिक शिष्ट मंडल भेजा था। इस शिष्ट-मंडल के भेजने का उद्देश्य उन देशों के विभिन्न उद्योगों की प्रगति का अध्ययन करना तथा औद्योगिक सम्बन्ध की सम्भावना की जांच करना था। उसे भारत के निर्यात के बढ़ावे के संबंध में भी सूचना इकट्ठी करनी थी। प्राविधिक विशेषज्ञों का एक सर्वेक्षण दल कम्बोडिया को और दूसरा एथियोपिया को भेजा जाने वाला था। भारत के निर्यात व्यापार संबंधी क्षमता और औद्योगिक प्रगति की जानकारी हासिल करने के उद्देश्य से अनेक देशों से प्रतिनिधि-मंडलों को निमंत्रित भी किया गया है। इस अवधि में भारत सरकार ने द० वियतनाम, बर्मा, एथियोपिया, चिली, जर्मन लोकतंत्र, पाकिस्तान, डेनमार्क तथा स्वीडन के प्रतिनिधि-मंडलों को बुलाया था।

व्यापारिक विकास के लिए राज्य द्वारा व्यापार

देश के विदेशी व्यापार में राज्य द्वारा हिस्सा लेने का प्रश्न अनेक वर्षों से विचाराधीन रहा है। १९५६ में राज्य व्यापार निगम के नाम से एक निगम की स्थापना करने का निश्चय किया गया था, ताकि देश के विदेशी व्यापार को विकसित करने में इससे सहायता मिल सके। मई १९५६ में कम्पनी अधिनियम, १९५६, के अन्तर्गत एक निजी लिमिटेड कम्पनी के रूप में राज्य व्यापार निगम प्राइवेट लिमिटेड की स्थापना की गयी। निगम के संस्था-अन्तर्नियमों में उद्देश्यों का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि इसका उद्देश्य ऐसी वस्तुओं के भारत से निर्यात और भारत में आयात को संगठित करना, जिनके संबंध में समय-समय पर कम्पनी निश्चित करे; और ऐसे सभी काम करना जिनसे कि उपर्युक्त उद्देश्यों को हासिल करने में मदद मिले। किन्तु निगम का मुख्य काम यथार्थ रूप से व्यापार संबंधी कठिनाइयों और समस्याओं को सुलझाना है और इस बात का प्रयत्न करना है, कि हमें विदेशों से अनिवार्य आयात की वस्तुयें मितव्ययिता के साथ मिल सकें और भारत के निर्यातों का क्षेत्र बढ़ सके।

यह बात बड़ी ही संतोषजनक है कि राज्य व्यापार निगम ने आयात और निर्यात, दोनों के ही संबंध में काफी मात्रा में विदेशी व्यापार का सौदा किया है। ३० जून १९५७ तक इस निगम ने १५.१५ करोड रुपये के मूल्य का आयात और २७.१४ करोड़ के मूल्य का निर्यात किया है। निर्यात वाली मुख्य वस्तुओं में कास्टिक सोडा, सोडा ऐश, जिप्सम, अमोनियम सल्फेट, कच्चा रेशम, मशीन, चावल, सीमेंट शामिल हैं। निर्यातों में काफी, चाय, तम्बाकू, चटाई, हाथ से बने सामान, हाथ-करघे के बने सामान, जूते, पटसन के बोरे, लोहे और मैंगनीज की धातुयें शामिल हैं। निर्यातों के क्षेत्र में निगम ने अधिकांश व्यवसाय सोवियत रूस, चेकोस्लोवाकिया, पू० जर्मनी, सं. रा. अमरीका, इंग्लैंड, चीन और जापान के साथ तथा आयातों के क्षेत्र में इंग्लैंड, सं. रा. अमरीका, यूगोसलाविया, जापान और पाकिस्तान के साथ सौदे किये हैं।

अपने जीवन की इस अल्प अवधि में ही निगम ने बहुत अधिक मात्रा में बहुमूल्य व्यापारिक समझौते पूरे किये हैं। निर्यात के पक्ष में कच्ची धातुओं के व्यापार को ठोस बनाने की कोशिश की गयी है, ताकि विदेशों के उपभोक्ताओं को यातायात की कठिनाइयों के बावजूद लगातार वस्तुओं की पूर्ति होती रहे। इन सभी उपायों के फलस्वरूप निश्चय ही हमारी विदेशी विनिमय संबंधी स्थिति में पर्याप्त सुधार होगा और आयात तथा निर्यात दोनों ही प्रकार के विदेशी व्यापार के लिये दृढ़ आधार निर्मित होगा।

श्री अरुणचन्द्र गुहा
संसद सदस्य

कृषि सम्बन्धी भावी नीति : श्रीनगर सम्मेलन की समीक्षा

इस बात के सैद्धान्तिक विवाद में पड़े बगैर, कि कृषि द्वितीय पंचवर्षीय योजना का आधार अथवा मर्म है या नहीं, हम बिना मतभेद की आशंका के यह कह सकते हैं कि योजना की सफलता कृषि के क्षेत्र में हमारी सफलता पर ही मुख्यतः निर्भर करती है। पहली पंचवर्षीय योजना को मुख्यतः इसलिये ही सफल माना गया था कि उसमें खेती की पैदावार बहुत अच्छी हुई थी। दूसरी ओर, द्वितीय योजना के प्रथम दो वर्षों में खेती के क्षेत्र में गहरी असफलता के कारण हमें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। हम कह सकते हैं कि पहली योजना के प्रथम दो वर्षों में लगातार अच्छी फसल हो जाने के कारण सरकार खेती के संबंध में बहुत कुछ आत्म-तुष्ट हो गई थी, और यह बात निश्चितरूप से मान ली गई थी कि प्रकृति हमेशा हमारे अनुकूल रहेगी और बहुत अधिक प्रयत्न किये बगैर ही हम खाद्य सामग्री की पूर्ति के संबंध में आत्मनिर्भर हो जाएंगे। खुले तौर पर अधिकृत रूप से यह घोषणा भी की गई थी कि हम खाद्यान्नों का निर्यात करके विदेशी विनिमय का उपार्जन कर सकते हैं। इस आत्म-तुष्टि के कारण कुछ गलतियां भी की गई; प्रथमतः, द्वितीय योजना में कृषि को कम प्राथमिकता दी गई, और दूसरे, खाद्यान्न मोर्चे पर प्रशासनिक दृष्टि से ढीलापन दिखलाया गया। द्वितीय योजना के प्रथम वर्ष के भीतर खाद्यान्नों का पर्याप्त भंडार रखने की ओर ध्यान नहीं दिया गया। सच तो यह है कि जो कुछ खाद्यान्न संचित कर रखा गया था उसे भी खत्म हो जाने दिया गया। व्यापारियों ने इस स्थिति का पूरा-पूरा दुरुपयोग किया, जिससे योजना में काफी बाधा पैदा हुई।

मसूरी सम्मेलन का महत्व

सरकार ने गलती जरूर महसूस की, लेकिन काफी देर से। गत वर्ष मसूरी में कृषि-मंत्रियों का जो सम्मेलन हुआ था, वह सरकार की गलत नीति और संतुष्ट दृष्टिकोण की चरम सीमा का द्योतक था। इस वर्ष, अभी हाल में, श्रीनगर में कृषि-मंत्रियों का जो सम्मेलन हुआ है, उसमें खाद्य मोर्चे की लड़ाई लड़ने की दिशा में अधिक दृढ़ प्रतिज्ञा और तत्परता का दृष्टिकोण अपनाया गया है। बेशक, इस सम्मेलन पर राष्ट्रीय विकास समिति के वाद-विवादों और निर्णयों की पृष्ठभूमि में ही विचार करना होगा। दरअसल, राष्ट्रीय विकास समिति ने इस आत्म-तुष्टि की भावना को झकझोर दिया, और तबसे, सरकार देश की आर्थिक व्यवस्था में कृषि को उचित प्राथमिकता देने की कोशिश कर रही है। इस सम्मेलन ने बारह प्रस्ताव स्वीकार किए। इनमें से कुछ प्रस्ताव ऐसे हैं, जिन्हें कार्यान्वित करने के लिये अधिक दृढ़ता की आवश्यकता पड़ेगी। देश की अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से प्रथम और अंतिम प्रस्ताव विशेष महत्व रखते हैं।

निम्नतम मूल्य-निर्धारण की समस्या

प्रथम प्रस्ताव में खेती की पैदावार का निम्नतम मूल्य निर्धारित करने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। हमें इस बात का पूरा यकीन नहीं है कि राज्यों के कृषि-मंत्री सचमुच उस विश्वास को हृदय में रखकर लौटे होंगे या नहीं, जो कि प्रस्ताव में निर्दिष्ट है। उसमें कहा गया है कि "इस प्रकार का (निम्नतम मूल्य के संबंध में) निश्चित विश्वास दिलाये बगैर, कृषकों को भूमि पर अधिक पूंजी लगाने के लिये प्रेरित करना कठिन होगा।" यह भी मानना पड़ेगा कि यदि राज्यों के मंत्रिगण अपने हृदय में यह विश्वास ग्रहण भी कर चुके हों, तो भी इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करना उनके लिये आसान नहीं। इसका अर्थ यह भी होगा कि खेती की वस्तुओं के बढ़े हुए मूल्य के रूप में उपभोक्ताओं को कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। जहां तक नकदी फसलों, खास तौर पर पटसन, तिलहन, आदि, का संबंध है, बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि विदेशी खरीदार

उच्चतर मूल्य अदा करने के लिये इच्छुक हैं या नहीं। हमें इस संबंध में ये याद रखना होगा कि खेतिहर मजदूरों के लिये निम्नतम मजदूरी निर्धारित करने की सरकारी नीति के संबंध में क्या हुआ है। गत सात वर्षों से यह अधिनियम लगातार संशोधित हो रहा है और खेतिहर मजदूरों की निम्नतम मजदूरी निर्धारित करने की तिथि बढ़ती रही है। हम केवल यह चाहते हैं कि यह प्रस्ताव भी उसी प्रकार की कठिनाइयों में न पड़ जाय। इसके लिये उपभोक्ताओं में प्रचार की जरूरत पड़ेगी, जिससे उन्हें यह बताया जा सके कि विकासशील अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत उपभोक्ता वस्तुओं के, जिनमें प्राथमिक आवश्यकता की वस्तुएं भी शामिल हैं, मूल्य अवश्य बढ़ेंगे।

यदि खेती की पैदावार के लिये निम्नतम मूल्य निर्धारित करना है, तो उसके साथ-साथ ही, सरकार को मूल्य की अधिकतम सीमा भी निर्धारित करने की कोशिश करनी चाहिए। पिछले साल और इस साल के अनुभव बतलाते हैं कि अनाज जैसी अनिवार्य वस्तुओं के मूल्य मुनाफा कमाने की भावना से उन्हें छिपाकर रखने वालों के कार्यों द्वारा आसानी से बढ़ाये जा सकते हैं। यदि किसानों को उपज बढ़ाने के उद्देश्य से प्रोत्साहन देने के लिए निम्नतम मूल्य देना जरूरी है, तो सरकार के लिए यह जिम्मेदारी भी निभानी आवश्यक है कि वह मुनाफा कमाने वालों और अनाज छिपा कर रखने वालों की चालों पर रुकावट लगाए, ताकि अनाज जैसी आवश्यक वस्तुएं उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर मिल सकें। बार-बार संशोधन करने के बावजूद, अनिवार्य वस्तु-अधिनियम प्रभावकारी नहीं सिद्ध हुआ है; फिर भी, सरकार को यह मानना पड़ेगा कि इन दोनों को साथ-साथ कार्यान्वित होना चाहिए। अन्य शब्दों में, यदि निम्नतम मूल्य निर्धारित करना है तो अधिकतम मूल्य पर भी रुकावट लगनी चाहिए।

भूमि-सुधार और खेतिहर मजदूर

सम्मेलन का अंतिम प्रस्ताव भूमि-सुधारों की आवश्यकता पर जोर देता है। हमारे देश की ७५ प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खेती पर निर्भर करती है। इस समय जमीन पर जनसंख्या का भार हद से ज्यादा है, और निकट भविष्य में उसके कम होने की भी संभावना नहीं है। कोई भी तर्कसम्मत भूमि-नीति तभी सफल हो सकती है, जबकि उसमें यथासंभव जमीन को उचित आधार पर बांटने की कोशिश की जाय और उसका दृष्टिकोण खेती की पैदावार को बढाने के लिये प्रोत्साहन देने और अवसर पैदा करने से सम्बद्ध हो। हमारे खेतिहर लोगों में २५ प्रतिशत भूमिहीन मजदूर हैं, अर्थात् उनके पास या तो जमीन नहीं है या बहुत ही कम है। वे दूसरे के खेतों पर मजदूरी करके भी पूर्णतः या अधिकांशतः अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं। ये २५ प्रतिशत लोग ही खेतिहर सेना का निर्माण करते हैं। वे ही खेती में सबसे अधिक कठिन श्रम करते हैं, लेकिन उनका जीवन भी सबसे अधिक कठिन है। ऐसी हालत में, जो भी भूमि-सुधार किए जाएं, उनके द्वारा इन भूमिहीन श्रमिकों के लिये जमीन की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। जमीन पर अधिकतम सीमा निर्धारित करनी पड़ेगी और इस प्रकार प्राप्त अतिरिक्त जमीन को भूमिहीन मजदूरों में बांट देनी चाहिए। हम यह अपेक्षा नहीं करते कि इस तरह प्रत्येक भूमिहीन खेतिहर परिवार इतनी जमीन पा जाएगा, जिससे उसका निर्वाह आराम से हो सकेगा, लेकिन, भले ही इससे उनकी सारी समस्याएं हल न हों, उनके एक बहुत बड़े वर्ग को आजीविका का पर्याप्त साधन तो प्राप्त ही हो जायगा।

अधिकांश राज्यों में जमींदारियों का उन्मूलन हो चुका है, किन्तु यह कदम भी, अपने अंतिम रूप म, नहीं उठाया जा सका है। इस प्रकार, खेतिहर लोगों में एक प्रकार की अनिश्चितता पैदा हो गई है। हम यहां पर क्रियाशील होने वाले भूमि-सुधारों के विस्तार में पड़ना नहीं चाहते। हमारा मत है कि अभी हाल में राष्ट्रीय विकास समिति ने जो वाद-विवाद किये, उसके सिलसिले में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। यह सही है कि भूमि-सुधारों का एक ही रूप सभी राज्यों पर लागू नहीं हो सकता। स्थानीय विभिन्नताएं उनमें अवश्य पाई जायेंगी। लेकिन हमें कहना पड़ता है कि श्रीनगर सम्मेलन के तत्संबंधी प्रस्ताव से कुछ हद तक निराशा होती है। जिस रूप में प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है, वह प्रायः एक खोखली और थोथी आशा जैसा ही है। उसे एक निर्देशन कहना मुश्किल है। कोई भी अंतिम तिथि निश्चित नहीं की गई है। इस बात पर जोर भी नहीं दिया गया

है कि समय-समय पर तत्संबंधी प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाएं। हम जानते हैं कि यह कोई आसान काम नहीं है, उसमें कई वास्तविक और गंभीर कठिनाइयां हैं। हमें आशा है कि भारत सरकार का कृषि-मंत्रालय राज्य सरकारों से अनुरोध करेगा कि वे इस संबंध में प्रगति संबंधी प्रतिवेदन प्रस्तुत करें। राष्ट्रीय विकास समिति की स्थायी समिति ने इस बात पर खास जोर दिया है और राज्य सरकारों को यह जिम्मेदारी महसूस करानी चाहिये कि वे इसे कार्यान्वित करें।

छोटी सिंचाई की योजनाएं

अन्य प्रस्तावों और फैसलों में हम छोटी सिंचाई की योजनाओं से संबंधित फैसलों पर खास तौर पर ध्यान खींचना चाहते हैं। इस विषय पर जो प्रस्ताव (प्रस्ताव संख्या ४) रखा गया था, उसमें कुछ प्रशासनिक बातों का निर्देश हैं, जिनके संबंध में हमारा ख्याल है कि उन्हें काफी पहले ही लागू कर दिया जाना चाहिए था और इस संबंध में उन्हें रुकावट पैदा करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहती थी। यह बिल्कुल उचित है कि 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन के संबंध में छोटी सिंचाई योजनाओं और दूसरे उपायों के संबंध में तिमाही रिपोर्ट तैयार करने का आदेश दिया गया है। हम छोटी सिंचाई योजनाओं द्वारा तत्काल खेती की पैदावार बढ़ाने की दिशा में अच्छे परिणाम हासिल कर सकते हैं और हमारे खेतिहर भी इन छोटी सिंचाई योजनाओं के लाभ और आशय को बड़ी नदी-घाटी योजनाओं की अपेक्षा अधिक समझेंगे और पसन्द करेंगे। इन पर न तो अधिक पूंजी ही लगानी पड़ेगी और न ही अधिक विदेशी विनिमय लगाने पड़ेंगे। इनसे परिणाम हासिल करने में देर होने की भी सम्भा- वना नहीं। अतः इन योजनाओं की प्रगति में प्रशासनिक उलझनों व वित्तीय कठिनाइयों द्वारा बाधा नहीं उत्पन्न होनी चाहिए। हमारी खेती के लिये यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इसे प्रकृति की स्वेच्छाओं पर बहुत कुछ निर्भर करना पड़ता है। खुद इसी साल हमारे उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री उस राज्य के बहुत से हिस्सों में प्रकृति द्वारा उत्पन्न संकटों को कोस रहे हैं। कहीं सूखा है और कहीं पर बाढ़। इस स्थिति को दुरुस्त करने में तनिक भी विलम्ब करना उचित नहीं। और यह बात सिंचाई की योजनाओं और छोटी नहर योजनाओं द्वारा आसानी से पूरी की जा सकती है। संसद के वर्षाकालीन अधिवेशन के सिलसिले में बार-बार बड़ी नदी-घाटी योजनाओं से प्रवाहित सिंचाई के पानी के अनुपयोग का प्रश्न उठाया गया था। संसद के बहुत से सदस्यों ने, जिनमें अनेक कांग्रेसी सदस्य भी शामिल थे, इस विषय में सरकार की आलोचना की। हमारे कृषकों को खेती के नए तरीकों और सिंचाई के पानी के उपयोग की शिक्षा देनी होगी। सरकार को बहुत पहले ही इस तरह के कदम उठाने चाहते थे, जिनके जरिये वह किसानों को सिंचाई के पानी के फायदों को महसूस कराने के लिये पर्याप्त प्रोत्साहन देती। जरूरत होने पर शुरू की अवस्था में उन्हें मुफ्त में पानी देना चाहता था। सम्मेलन ने यह सुझाव दिया है कि "प्रथम कुछ वर्षों तक सिंचाई का पानी कुछ छूट की दरों पर देना चाहिए।" हम आशा करते हैं कि यह नीति तत्काल कार्यान्वित की जायगी। अधिकांश मामलों में केन्द्रीय सरकार को ही इस दिशा में सबसे पहले कदम उठाना चाहिए।

ग्रामीण विद्युतीकरण

ग्रामीण विद्युतीकरण संबंधी फैसला भी लाभप्रद है। हम यह नहीं मालूम कि सरकार के लिए इस बात का निश्चय करने में कितना समय लगेगा कि ग्रामीण क्षेत्रों में खेती के काम के लिये पर्याप्त मात्रा में बिजली की पूर्त्ति की जाय। फिर भी, हमारा मत है कि इस तरह की सुविधाएं ग्रामीण क्षेत्रों में बहुदत ही कम हैं। राज्य सरकारों की वर्तमान वित्तीय कठिनाइयां ऐसी हैं कि वे ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली की पूर्ति का विस्तार आसानी से नहीं कर सकेंगी, विशेष रूप से जब हम इस बात का विचार करते हैं कि शुरू की अवस्थाओं में ऐसा करने में काफी घाटा उठाना पड़ेगा।

खाद और उर्वरक

इन प्रस्तावों या निर्णयों में से अधिकांश ऐसे हैं कि उन्हें कार्यान्वित करने के लिये राज्य सरकारों को दृढ़ प्रतिज्ञ

होकर आन्दोलन चलाना पड़ेगा। हम यह नहीं कह सकते कि ऐसा करना कहां तक सम्भव होगा। सम्मेलन ने उर्वरकों और दूसरी खादों के संबंध म खास तौर पर जोर दिया। उसने और अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरक आयात करने का अनुरोध किया है। ऐसा करने में निश्चय ही विदेशी विनिमय का प्रश्न खड़ा होगा। लेकिन, हमें इस बात का भी विश्वास नहीं कि राज्य सरकारें ग्रामीण क्षेत्रों में हरी खाद और कूड़े करकट से तैयार की गई खाद के संबंध में दृढ़ प्रयत्न कर रही हैं या नहीं। सम्मेलन ने स्वीकार किया है कि देश में हरी और स्थानीय खादों के विकास की प्रगति तत्संबंधी क्षमता की अपेक्षा बहुत ही धीमी रही है। अच्छा तो यह हुआ होता कि सम्मेलन इस दिशा में कुछ स्पष्ट निर्देश देता, न कि रासायनिक उर्वरकों के आयात का सुझाव देता। हम चाहते हैं कि इस समय भी कृषि-मंत्रालय राज्य सरकारों से इस दिशा में उठाए गए कदमों और प्रगति के बारे में प्रतिवेदन पेश करने का अनुरोध करे।

यह स्वीकार किया गया है कि उर्वरकों का वितरण पूर्णतः संतोषजनक नहीं है। सम्मेलन ने परोक्ष रूप से स्वीकार किया है कि इस दिशा में चोरबाजारी, मिलावट और छिपाकर रखने की प्रवृत्ति जारी है। सम्मेलन में भाग लेने वालों को खेती संबंधी अनुसंधान कार्यक्रम भी संतोषजनक नहीं प्रतीत हुए। सम्मेलन ने भारतीय कृषि अनुसंधान समिति द्वारा स्वीकृत योजनाओं की फिर से जांच करने और उन्हें संशोधित करने की आवश्यकता महसूस की। यह बहुत दिनों से शिकायत रही है कि कृषि संबंधी हमारे अनुसंधान सैद्धान्तिक अधिक हैं, व्यावहारिक कम। क्या हम आशा करें कि इस बुराई को दूर किया जायगा? सम्मेलन ने दूध की पूर्ति के लिये दुग्ध विकास योजनाओं के बारे में चालू किए गए केन्द्रीय ग्राम कार्यक्रम, कुक्कुट विकास योजना, मिट्टी के संरक्षण संबंधी योजना, आदि की प्रगति को भी असंतोषजनक माना है। अच्छे बीज की पूर्ति की आवश्यकत पर जोर देने की पुनः कोई जरूरत नहीं है। इस संबंध में भी हमारी प्रगति अच्छी नहीं रही। यह एक अच्छी बात थी कि राज्य मंत्रियों ने स्वयं अपनी आलोचना की, और खेती के विभिन्न क्षेत्रों में अपने कार्यों का विश्लेषण किया।

सहकारिता की उपेक्षा

सम्मेलन के प्रस्ताव को पढ़ लेने पर यह पूछना ही पड़ता है कि राज्य के कृषि और खाद्य मंत्रियों के हृदय में खेती के क्षेत्र में सहकारी आन्दोलन के लिए कोई विश्वास है या नहीं। यह सम्मेलन राष्ट्रीय विकास समिति की स्थायी समिति की बैठक के तत्काल बाद हुआ है, फिर भी, इसमें खेती के क्षेत्र में सहकारिता आन्दोलन की कुछ भी चर्चा नहीं की गई। यह बात निश्चय ही चिन्ताजनक है। हम मानते हैं कि हम उस हद तक सहकारिता के विषय में उत्साहपूर्ण नहीं हो सकते, जिस हद तक चीन गए हुए भारतीय प्रतिनिधि मंडल की बहुमत रिपोर्ट हमसे अपेक्षा करती है। लेकिन हम यह जरूर सोचते हैं कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट तथा कांग्रेस विचारधारा के अन्तर्गत भी सहकारिता को एक निश्चित स्थान प्रदान किया गया है। अतः, पूरे तीन दिन के बाद—विवाद के बाद श्रीनगर सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्तावों की सूची में खेती की पैदावार बढ़ाने के तरीके अथवा भूमि-सुधार के रूप में सहकारिता आन्दोलन की चर्चा न पाकर हम स्वभावतः यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि भारत सरकार के खाद्य और कृषि मंत्रालय को सहकारिता आन्दोलन में कुछ विश्वास है या नहीं। सहकारिता समितियों की चर्चा केवल उर्वरकों के संग्रह और वितरण तथा फसलों के रोगों को दूर करने के संबंध में ही हुई है। गत वर्ष एक अधिनियम स्वीकृत हुआ था, जिसमें सहकारी मालगोदाम और क्रय-विक्रय समितियों की देश भर में स्थापना का फैसला किया गया। उस अधिनियम की व्यवस्थाओं को लागू करने में विशेष प्रगति नहीं हुई है और यह सम्मेलन भी उस अधिनियम की कोई चर्चा नहीं करता है। इसमें इस बात का तनिक भी विचार नहीं किया गया है कि अभी तक कितनी प्रगति हुई है या पर्याप्त प्रगति नहीं हुई। सम्मेलन के लिये उचित यह था कि वह इतने अधिक प्रस्ताव स्वीकृत करने की अपेक्षा, एक निश्चित कार्यक्रम तैयार करता। ऐसा करने पर इसका रूप बहुत कुछ व्यावहारिक प्रतीत होता। फिर भी, हम आशा करते हैं और चाहते हैं कि स्वीकृत प्रस्तावों को दृढ़ निश्चय के साथ लागू किया जायगा, ताकि हमारी खेती की पैदावार बढ़ाई जा सके और द्वितीय पंचवर्षीय योजना की सफलता के रास्ते के इस महान संकट को दूर किया जा सके।

श्री न० र० मलकानी
संसद सदस्य

●

गांधीजी की खादी और उसका वर्त्तमान रूपान्तर

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में चर्खे की खोज की कहानी का उल्लेख स्वयं अपने ही अद्वितीय ढंग पर किया है। उन्होंने एक महिला की सहायता से काफी मेहनत और बड़ी दिलचस्पी के साथ गुजरात में इसकी खोज की थी। उन्होंने बहुत पहले दक्षिण अफ्रीका में ही गांवों के पुर्ननिर्माण के लिए वस्त्र-उद्योग की सम्भाव्यताओं को महसूस कर लिया था। लेकिन भारत में उन्होंने चर्खे को हाथ-करघे से भिन्न मानकर इस दिशा में पहला पाठ सीखा था। उसके बाद के वर्षों में चर्खे की कल्पना एक कला में परिणत हो गयी, और फिर, कताई के विज्ञान की बुनियाद पड़ी। अब न तो यह कल्पना रह गया है और न ही कला, बल्कि यह एक ऐसा विज्ञान बन गया है जो आशातीत उन्नति कर रहा है। प्रारंभ में इसकी सम्भाव्यताएं केवल गांधीजी के स्वप्न के रूप में थीं, लेकिन अब उत्तरोत्तर वास्तविकता में परिवर्तित हो रही हैं। लेकिन मेरा विश्वास है कि स्वराज्य के बाद यद्यपि पृष्ठभूमि अग्रभूमि ही बनी हुई है, फिर भी खादी का भविष्य नयी दिशाएं उन्मुक्त कर रहा है और गांधी जी के विचार पहले ही जैसे प्राणमय बने हुए हैं। इतना अवश्य है कि कालान्तर से उनके विचारों और उनके मन्तव्यों में परिवर्तन होंगे। अथवा, जैसा कि वह कहा करते थे, "मैं भूतकाल के अनुरूप नहीं, मेरी अनुरूपता केवल सत्य के साथ है", और उनका सत्य हमेशा यथार्थ की पृष्ठभूमि पर दृढ़ता से जमा हुआ था।

खादी की भावना

गांधी जी को चर्खे के लिये प्रिय और आकर्षक नामों के प्रयोग में बड़ा आनन्द आता था। वह इसे अपनी 'कामधेनु' अपनी 'अन्नपूर्णा' और अपने बाह्य कार्यों का 'सबसे स्थायी और सबसे लाभकारी रूप' मानते थे। लेकिन उनके कार्यों का बाह्य रूप उनकी महान आन्तरिक क्रान्ति का प्रतीक मात्र था। खादी से उनका आशय खादी की भावना से था और वह हमेशा इस बात पर जोर देते थे कि उनकी खादी के 'मन्तव्यों' को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। खादी उनकी स्वदेशी का बाह्य प्रतीक थी। स्वदेशी से उनका मतलब व्यापक रूप में अपने पड़ोसी की सेवा से था। इस प्रकार की स्वदेशी उनके लिये आर्थिक लाभ-विहीन, किन्तु मानवता के विज्ञान पर आधारित, एक 'जीवन का नियम' थी। उनके लिये खादी वस्त्र तथा अन्य बातों में सरलता का प्रतीक भी थी। खादी पहन कर कोई व्यक्ति भौतिक आवश्यकताओं में लीन नहीं हो सकता। खादी उनके सूर्यमंडल का सूर्य भी थी, जिसके उपग्रह सभी ग्रामीण उद्योग थे। इस प्रकार ही विभिन्न वर्गों और आम जनता में एकरूपता स्थापित हो सकती है, क्योंकि ऐसी हालत में सभी वर्ग आम जनता के लाभ के लिये हृदय से महसूस करेंगे और उसकी ही भांति रहने की कोशिश करेंगे। मेरे विचार से खादी के ये सभी मन्तव्य पृष्ठभूमि में फेंक दिये गये हैं और शायद ही कोई व्यक्ति विचार या व्यवहार में उनकी ओर ध्यान देता हो। गांधीजी की अभिलाषा के अनुसार, खादी एक स्थायी वस्त्र बन चुकी है और कताई एक अनवरत क्रियाशीलता का प्रतीक हो चुकी है, लेकिन खादी की 'भावना' किसी कारणवश उड़ चुकी है। आधुनिक जीवन की वास्तविकताएं इतनी कठोर हैं कि इस तरह की भावना पृथ्वी पर निवास ही नहीं कर सकती।

स्वतन्त्रता के उपरान्त परिवर्तन

किन्तु, स्वराज्य के बाद हमारे राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था में खादी की सापेक्ष स्थिति भी बदल चुकी है। गांवों की बलात् अकर्मण्यता के रूप में सोचने पर गांधीजी ने कहा था कि "खेती में क्रांतिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता नहीं। भारतीय किसान के लिए एक पूरक उद्योग की आवश्यकता है। इस तरह का सबसे स्वाभाविक उद्योग चर्खा है।" १९४७ से पहले यह बात सर्वथा उचित थी, लेकिन उसके बाद यह उतनी ही उचित नहीं रही। सबसे प्रमुख स्थान भूमि-समस्याओं ने ले लिया है और लक्ष्यों के बीच भूमि-सुधारों का सबसे अधिक महत्व है। इस समस्या की ओर राष्ट्र के ध्यान को विनोबा जी के भूदान की अपेक्षा किसी अन्य

बात ने अधिक आकृष्ट नहीं किया है। इस आन्दोलन ने, जिसमें अन्य दान भी शामिल हैं, ग्रामीण उद्योगों को दूसरे या तीसरे सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य के रूप में उपस्थित कर दिया है। व्यापक रूप से यह विश्वास किया जाने लगा है कि प्रत्येक ग्रामीण उद्योग की प्रगति भूमि-सुधारों से बंधी हुई है और उन पर ही निर्भर करती है। यदि ग्रामीण उद्योग फेंफड़े हैं, तो भूमि ग्रामीण जीवन का हृदय। और फिर, यह कहना एक तरह का फैशन हो गया है कि हमारी कृषि एशियाई स्तरों की तुलना में भी सबसे पिछड़ी हुई है और इसमें प्रविधि, संगठन, कर्मचारी, आदि के संबंध में क्रांतिकारी परिवर्तन की जरूरत है। इस समय द्वितीय पंचवर्षीय योजना, 'उद्योग-प्रधान' होने की अपेक्षा 'कृषि-प्रधान' सी ही अधिक प्रतीत होती है; इसमें मूल्य-स्तर को स्थिर रखने, उद्योगों के लिये कच्चे माल की पूर्ति करने, विदेशी विनिमय का उपार्जन और संरक्षण करने, और आम जनता को भोजन देने के लिए ३० से ४० प्रतिशत तक खेती की पैदावार बढाने का प्रयत्न किया जा रहा है। उस समय संभवतः खादी 'स्वतन्त्रता का बाना' थी, लेकिन इस समय हल और बैल समृद्धि की निशानी बन चुके हैं।

ग्रामीण उद्योग

किन्तु गांधीजी की सबसे मार्मिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये खादी का अस्तित्व स्थायी बन चुका है। अब ग्रामीण उद्योगों को ग्रामीण तथा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का अविच्छिन्न अंग माना जाने लगा है। उन्हें द्वितीय पंचवर्षीय योजना में, आर्थिक विशेषज्ञों की जानकारी और अनचाही अनुमति से यदि गर्व का नहीं, तो सम्मान का स्थान तो प्राप्त ही हो चुका है। जबसे हमने स्वराज्य हासिल किया है, तब ही से बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी के दैत्य हमारा पीछा पकड़े हुए हैं और रात दिन हमें परेशान कर रहे हैं। वे हमारे 'समाजवादी राज्य', या यहां तक कि 'कल्याणकारी राज्य', या किसी भी प्रगतिशील राज्य, के आदर्शों की खिल्ली उड़ाते हैं। गहन और सहकारी खेती से सम्भवतः श्रमशक्ति बहुत कुछ उन्मुक्त होगी। संगठित उद्योग कई लाख लोगों को बेरोजगार करके कुछ-एक लाख लोगों को रोजगार प्रदान करेगा। छोटे-छोटे व्यापारों में पहले ही से लोगों की भीड़ लगी हुई है, और वे स्वयं इतने परोपजीवी हैं कि उन्हें कोई और प्रोत्साहन मिलने की आशा नहीं। लेकिन ग्रामीण और छोटे उद्योग लाखों व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार और करोड़ों को आंशिक रोजगार प्रदान कर सकते हैं। आधुनिक प्रविधियां, प्रशिक्षित कर्मचारी, सहकारी संगठन और उदार वित्त-व्यवस्था द्वारा इन छोटे उद्योगों को भी वैसे ही लाभ प्राप्त होंगे, जैसे संगठित उद्योगों को। वित्त-विशेषज्ञों की भाषा में, ये छोटे उद्योग पूंजी-गहन नहीं हैं और इनसे विदेशी विनिमय की काफी बचत हो सकती है। यही वजह है कि ग्रामीण उद्योगों को पहली योजना में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था और वे द्वितीय योजना में भी तेजी से प्रगति कर रहे हैं। १९५६ में हाथ-करघे का उत्पादन बढ़कर १५० करोड़ ९० लाख गज हो गया, और यह आशा की गई है कि १९६२ में इसका उत्पादन बढ़कर २५० करोड़ गज हो जाएगा, जबकि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस पर कुल ३६.५ करोड़ रुपये व्यय करने की व्यवस्था की गई है। साधारण खादी के उत्पादन में भी इसी तरह की प्रगति हुई है। १९५५-५६ में खादी बोर्ड ने २ करोड़ ५४ लाख गज और १९५६-५७ में ३ करोड़ ४५ लाख गज कपड़े तैयार किये। अनुमान लगाया गया है कि १९६२ में इसके उत्पादन में १० गुनी वृद्धि हो जायगी। अन्य उद्योग भी वस्त्र उद्योग के अनुसार ही उत्पादन वृद्धि में योग दे रहे हैं, हालांकि उनका स्थान उत्पादन की दृष्टि से तीसरा या चौथा है, लेकिन लक्ष्य निर्धारित कर लिये गए हैं और उनकी गति का भी गणितीय निर्धारण हो चुका है। काफी काम हो चुका है और अभी भी बहुत कुछ करना शेष है और किया जाएगा।

मिल और चर्खा

लेकिन यह सारी प्रगति ऐसे ढंग से हो रही है जो कि गांधीजी की इच्छाओं या उनके अनुमान से बिल्कुल भिन्न है। खादी की तरक्की धीमी गति से हो रही है, हाथ-करघे की बुनाई बहुत ही तेजी से हो रही है, लेकिन मिलों का उत्पादन तो आसमान छू रहा है। सन् १९०० में वस्त्र-निर्माण करने वाले कारखानों की संख्या केवल १९३ थी, किन्तु १९२० में उनकी संख्या २५३ और १९५६ में ४६५ हो गयी। सन् १९०० में मिल के कपड़े का उत्पादन ५० करोड़ गज था, लेकिन १९५६ में इसकी मात्रा

बढ़कर ५३० करोड़ गज हो गयी है। मिलों के मालिक १९६२ तक इस उत्पादन को बढ़ाकर ७०० करोड़ गज तक कर देना चाहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मिलों ने अपना स्थायी स्थान बना लिया है और इससे भी बढ़कर बात यह है कि वे संगठित और आक्रामक ढंग पर वस्त्र-नीति को प्रभावित करती हुई प्रतीत हो रही हैं। सबसे अच्छी बात सिर्फ यह हो रही है कि उन्हें अन्य क्षेत्रों के ऊपर रखने की बजाय एक समानता का स्तर देने की कोशिश की जा रही है। २१-७-१९२० की **यंग इंडिया** में गांधीजी ने लिखा था : "इस बात की कोई वजह नहीं कि जिस तरह घरेलू चूल्हा होटलों के साथ सह-अस्तित्व में रह सकता है, उसी तरह चर्खा भी मिलों के साथ सह-अस्तित्व में नहीं रह सकता।" २२-५-१९२४ को उनके कथन में विश्वास का पुट था : "मिल से बने कपड़े के स्थायी राष्ट्रीय बहिष्कार का कोई सवाल ही नहीं। लेकिन भारतीय मिलें कपड़े की वर्तमान मांग को पूरा नहीं कर सकतीं, जबकि चर्खा उसे पूरा कर सकता है।" थोड़े समय बाद उन्होंने फिर कहा कि "मिलें उतनी ज्यादा संख्या में विकसित नहीं हो सकतीं, जितनी संख्या में चर्खा", क्योंकि हर घर में चर्खा चलाया जा सकता है और हर गांव में करघा खोला जा सकता है। ५-४-१९२८ को उनके दृष्टिकोण में कड़ाई आ चुकी थी : "राष्ट्रीय जीवन की अर्थ-व्यवस्था में उस सीमा तक ही मिलों के लिये स्थान है, जहां तक कि वे हाथ की कताई के राष्ट्रीय उद्योग के पूरक का काम कर सकें। . . . . यदि वे उनके साथ प्रतियोगिता करेंगी और उन्हें उखाड़ फेंकने की कोशिश करेंगी, तो निश्चय ही बाधक होंगी।" २७-१०-१९२८ को उनके स्वर में एक संघर्षपूर्ण पुट था : "यदि देश के लाखों-करोड़ों लोगों को किसी भी हद तक आराम की जिन्दगी देनी है, तो मिलों को चाहिए कि वे भारत से बाहर अपनी आय ढूंढें।" १०-४-१९३७ को पहली बार बड़े उत्साह और विश्वास के साथ समाजवादी सिद्धान्त की व्याख्या की गई थी : "दोनों के आधार भिन्न हैं। उनके उद्देश्य परस्पर विपरीत हैं . . . . । खादी आम जनता की सेवा करती है। मिल के कपड़े वर्गों की सेवा के उद्देश्य से तैयार किये जाते हैं। खादी मजदूरों की सेवा करती है। मिल के कपड़े उनका शोषण करते हैं।" १०-१२-१९३८ को मिल के कपड़ों की मृत्यु की मानों घंटी बजा दी गई : "इसमें सन्देह नहीं कि खादी मिल के कपड़े से प्रतियोगिता नहीं कर सकती। इसका उद्देश्य भी कभी यह नहीं रहा।" ३-९-१९३९ को जैसे मृत्यु-दंड की घोषणा कर दी गयी हो : "हाथ की कताई की सम्भावना अत्यधिक उत्साहवर्धक परिणाम देगी। मेरे तर्क के पीछे, निश्चय ही, सभी मिलों के हित उन्मूलित करने की मान्यता छिपी हुई है।" और सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्होंने ये विचार उस समय व्यक्त किये थे, जबकि अम्बर चर्खे की मशीनी अपूर्वता का आभास तक नहीं मिला था।

सम्मिलित उत्पादन नीति

लेकिन हाथ-करघा मोर्चे पर इससे भी बढ़कर अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। भारत में २० लाख से अधिक हाथ-करघे हैं, जिनमें से करीब-करीब आधे सहकारिता क्षेत्र में हैं और इनके द्वारा लगभग सवा व्यक्ति प्रति करघा रोजगार प्रस्तुत किया जा रहा है। मैंने पहले ही बतलाया है कि इस क्षेत्र ने सन् १९५० के बाद कितनी तेज प्रगति की है। अभी भी, यहां तक कि अम्बर चर्खे से, हाथ की कताई के बारे में हिचकिचाहट हो सकती है। लेकिन हाथ-करघा के भविष्य के बारे में यह दावा किया जाता है कि यह एक स्थायी, पूरे समय का, ग्रामीण पेशा बन सकता है। बुनकर पहले से ही एक मजबूत आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में है। उसकी प्रगति संबंधी नीति और कार्यक्रम को द्वितीय योजना में साफ-साफ व्याख्या कर दी गई है। शीघ्र ही बुनकर गांव में किसान के बाद दूसरी मजबूत ताकत बन जाएगा। ११ नवम्बर १९२६ को गांधीजी ने लिखा था कि "मैं हाथ-करघ के खिलाफ नहीं हूं। अगर चर्खा सफल रहा तो हाथ-करघा खुद ही तरक्की करेगा। चर्खे की मृत्यु के साथ इसकी भी मृत्यु अवश्यम्भावी है।" उनका विचार यह था कि हाथ की बुनाई और मिल की बुनाई में परस्पर विरोध है, जबकि हाथ की कताई और हाथ की बुनाई एक दूसरे की पूरक है, "जैसा कि इस समय अनुभव द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।" ९ सितम्बर १९३९ को उन्होंने चुनौती देते हुए कहा था : "मेरा विचार हमेशा यह रहा है कि ऐसे बुनकरों को मदद देना जो कि विदेशी या भारतीय मिलों के सूत का प्रयोग करते हैं, धन और श्रम का दुरुपयोग है। मैं इस विचार का इसलिए हूं कि मिल के सूत के बुनकरों का उन्मूलन कुछ थोड़े समय का ही प्रश्न रह गया है।" यह सोचा जा सकता है कि अब यह सवाल शायद ही पैदा हो, क्योंकि अब काफी समय बीत चुका। हाथ-करघों की शक्ति बढ़ रही है और वे भी भारतीय मिलों के सूत का प्रयोग कर रहे हैं। उन्हें

सिर्फ पर्याप्त मात्रा में सूत की पूर्ति होनी चाहिए, जिसकी दर उचित हो और किस्म अच्छी हो। हमने बुनकरों द्वारा संचालित सहकारी कताई मिलों के रूप में और निजी मिलों को सहकारी मिलों में परिवर्तित कर देने के रूप में इसका उत्तर प्राप्त कर लिया है। यह उत्तर इस बात से ही स्पष्ट कर दिया गया है कि कुल उत्पादन का एक तिहाई और कुछ खास किस्म के कपड़ों का पूरा-पूरा उत्पादन इनके जिम्मे कर दिया गया है। इसके अलावा, ऋण और आर्थिक सहायताएं दी गई हैं, ताकि मिलों के साथ मूल्य-समता कायम करके प्रतिस्पर्द्धा की तीव्रता कम की जा सके। खादी क्षेत्र अधिक से अधिक इसी बात का दावा कर सकता है कि उसे अम्बर सूत की हाथ-करघे की बुनाई का अधिकाधिक अंश प्रदान कर दिया जाए और बुनकर अम्बर सूत पर ही निर्भर करें तथा उसकी बुनाई और कताई भी उनके ही द्वारा हो। ऐसा तभी हो सकता है, जब कि एकही मंत्रालय के अन्तर्गत केन्द्र में एक सामान्य एजेंसी द्वारा सम्मिलित उत्पादन नीति लागू की जाए।

खादी के लिए महत्त्व का स्थान

एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन उन स्तरों से सम्बद्ध है, जिन पर खादी और मिल के वस्त्र एक दूसरे के साथ सह-अस्तित्व में रहने का प्रयत्न कर रहे हैं। गांधीजी के अनुसार, "वह अर्थशास्त्र जो नैतिक और भावात्मक मान्यताओं की अवहेलना करता है, जीवनहीन कार्य जैसा है।" जिस तरह से भारत को घर का बना भोजन ग्रहण करना जरूरी है, उसी तरह उसे एकमात्र हाथ से कता वस्त्र ही पहनना चाहिए, चाहे उसकी लागत जितनी भी हो। उनकी दृष्टि से वही कपड़ा प्रिय था जो कि खरीदार के लिए कुछ आने की बचत करता हो, और साथ ही, पुरुषों और महिलाओं के जीवन को सस्ता बनाता हो; वही स्वराज्य वास्तविक था जो कि बुरे किस्म के धन-लाभ के रूप में होने की बजाय, स्वस्थ जीवन के रूप में व्यक्त हो। ४-६-१९३१ को उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा था : "खादी का तरीका अर्थशास्त्र के अन्तर्गत एक नया तरीका है, जिस तरह से राजनीति के अन्तर्गत अहिंसा का तरीका एक नया तरीका है।" २१-९-१९३४ को उन्होंने अपने विचारों को एकदम वैज्ञानिक भाषा में व्यक्त किया था : "वस्तुतः यह 'मानवीय तत्व' ही वह चीज है, जिस पर खादी का समस्त अर्थशास्त्र आधारित है और मानवीय स्वार्थ जो कि ऐडम स्मिथ के विशुद्ध अर्थशास्त्र की अन्तर्भूत प्रेरणा है, 'अशांतिकारक' तत्व है और उस पर विजय पाना जरूरी है। अतः, जो बात मिल के कपड़े पर लागू होती है, वह खादी पर लागू नहीं होती।" सौभाग्य से 'मानवीय तत्व' और 'आर्थिक प्रेरणा' के स्थान को एक दूसरे से परिवर्तित करने की जरूरत नहीं रह गई है, और मिल के वस्त्र तथा अम्बर खादी, दोनों ही करीब-करीब एक ही किस्म का कपड़ा तैयार करते हैं जिनमें मानवीय या आर्थिक किसी भी तत्व का बलिदान नहीं करना पडता। खादी बड़ी तेजी से एक 'आर्थिक मान्यता' बनती जा रही है, जबकि वह पहले से ही 'मानवीय मान्यता' बनी हुई है। अम्बर चर्खा और उसकी सम्भाव्यताएं अद्भुत हैं। यदि विश्वास, बुद्धिमत्ता और दृढ़ता के साथ खादी के विज्ञान का अनुशीलन किया जाए, जैसा कि गांधी जी ने सोचा था, तो काफी लाभ प्राप्त हो सकता है। गांधीजी को बुनकरों को यह बात समझाने में काफी तर्क का सहारा लेना पडा था कि अगर खादी को घर पर ही इस्तेमाल के लिए तैयार किया जाए, तो वह उतनी ही सस्ती होगी जितना कि मिल का बना वस्त्र—केवल श्रम ही अधिक लगेगा। अगर अम्बर खादी को घर के उपयोग के लिए तैयार किया जाए, तो उसका मुकाबला करना मुश्किल है। लेकिन घर पर अम्बर चर्खा इतनी ज्यादा अधिक मात्रा में खादी पैदा कर सकता है कि प्रति व्यक्ति २० गज वस्त्र देने के बाद भी इससे ६० गज अतिरिक्त कपड़े के लिए सूत बच जाएगा, जिसे बेचा जा सकता है। उत्पादन की प्रविधियों से सम्बद्ध चुनौती का मुकाबला वैज्ञानिक ढंग पर और संतोषजनक ढंग पर किया जा रहा है, लेकिन संगठन और क्रय-विक्रय की वित्तीय व्यवस्था की चुनौती का तरीका अभी भी निकालना है। जब यह सब कर लिया जाएगा, तो अम्बर खादी करीब-करीब समानता के आधार पर देश के भीतर मिल के कपड़ों का मुकाबला कर सकेगी। वह दिन दूर नहीं, जब अनिवार्य रूप से सभी मोटे कपड़े, और कुछ अंश तक दरम्यानी किस्म के कपड़े भी, एकमात्र अम्बर चर्खे के क्षेत्र में होंगे। इस समय निम्नतम मजदूरी पाने वाले मजदूर अर्थात् कत्तनों की प्रामाणिक मजदूरी को बढ़ाकर प्रतिदिन एक रुपया कर देना संभव हो गया है। भारतीय गांवों में खादी ने स्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है। अब उसे एक निश्चित आर्थिक आधार देना शेष रह गया है ताकि वह अन्य क्षेत्रों के साथ सह-अस्तित्व में रह सके।

श्री के० पी० सेन गुप्त

क्षेत्रीय समितियों के कार्य

राज्य पुनस्संगठन के पश्चात एक वर्ष के अन्दर ही क्षेत्रीय समितियों ने आपस में मिल-जुल कर काम करने की आदत को विकसित कर लिया है। इस प्रकार काम करने पर प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने प्रथमतः राज्य पुनस्संगठन आयोग के सुझावों पर संसदीय वाद-विवाद के दौरान क्षेत्रीय समितियां बनाने का विचार प्रकट करते हुए जोर दिया था। २३ अप्रैल १९५७ से लेकर अब तक पांचों क्षेत्रीय समितियों की कम से कम एक बार, केन्द्रीय गृहमंत्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्त की अध्यक्षता में, बैठक हो चुकी है; दक्षिणी तथा पश्चिमी क्षेत्र समितियों की बैठक तो दो बार संपन्न हो चुकी है। लाभप्रद कार्य संपूर्ण किये गये हैं और इससे भी अधिक मुफीद कार्य करने का आयोजन किया गया है। इस बात की आशा करना उचित ही है कि यदि दक्षिणी और पश्चिमी क्षेत्रीय समितियों के नक्शेकदम पर चला जाय और उसे सुधारा जाय, तो भारतीय सहकारी स्वराज्य को अधिक सुदृढ़ बनाने में ये अन्तर्राज्यीय सहकारिता समितियां मूल्यवान साधन हो सकती हैं।

भारत में राज्य अभी तक विकासशील संगठन है। संविधान का लक्ष्य केन्द्रीय संघ और बहुत काफी हद तक खुदमुख्तार राज्यों के बीच आपस में नजदीकी तालमेल बनाये रखना है। देश के प्रशासनिक भूगोल का पुनस्संगठन जितने शांतिपूर्ण ढंग से संपन्न हुआ है, उससे विदेशी निरीक्षक आश्चर्य चकित हैं, किन्तु उसे हमारे कार्यक्रम का अन्त नहीं कहा जा सकता। रद्दोबदल और सुधार तो हर समय संभव है और कभी भी दकियानूसी ढंग से उनका विरोध नहीं किया जा सकता। तथापि अधिक आवश्यक कार्य संघीय ढांचे के बीच सभी राज्यों में आपस में, तथा राज्यों तथा केन्द्र में, सहकारिता स्थापित करने के लिए प्रभावपूर्ण ढांचा विकसित किया जाना चाहिए। इस समय इस प्रकार के कई संगठन हैं भी, जिनमें राष्ट्रीय विकास परिषद मुख्यतम है। फिर समय-समय पर केन्द्रीय सरकार के तत्त्वावधान में उच्च स्तरीय सम्मेलन भी होते हैं। लेकिन क्षेत्रीय समितियां इनसे परिमाण और विशेषताओं में भिन्न हैं। ये समितियां आपस में आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कारणों से इकट्ठे हुए राज्यों द्वारा सहकारी प्रयत्नों के लिए क्षेत्रीय संगठन हैं। इसमें केन्द्र की भूमिका एक पथ-प्रदर्शक, दार्शनिक और मित्र की है। क्षेत्रीय समितियों की कामयाबी केन्द्र के प्रारम्भिक उत्साह पर आधारित नहीं, अपितु क्षेत्रीय राज्यों द्वारा एक जैसी समस्याओं पर एक दूसरे से सलाह मशविरा करने एवं, एक जैसे हल ढूंढ़ने की तत्परता पर है। यह राज्य सरकारों की स्वेच्छा पर निर्भर है कि वे क्षेत्रीय समितियों के सम्मुख अधिक से अधिक ऐसी समस्यायें रखें, जिन पर आपस में विचार-विनिमय हो सके और एक जैसा कार्यक्रम अपनाया जा सके।

दक्षिण क्षेत्रीय समिति

इस दृष्टि से देखते हुए, दक्षिणी क्षेत्रीय समिति ने प्रशंसनीय कार्य किया है। सितम्बर के अन्त में हुई बैठक में, समिति ने कई बड़ी-बड़ी समस्याओं को सहकारिता और सौहार्द्र की भावना से हल किया। दक्षिण क्षेत्रीय समिति की इस बैठक में जो सबसे महत्त्वपूर्ण समझौता हुआ, वह मद्रास और आन्ध्र के बीच की परिसीमा के झगड़े से सम्बद्ध था। १९५३ में आन्ध्र को मद्रास से पृथक किया गया था और तभी से सीमाओं के झगड़ों से आन्दोलन और वैमनस्य बढ़ता रहा है। अब समझौता होने के पश्चात् तिरुत्तनी तालुके का बहुत काफी भाग, (जिसमें ऐतिहासिक मंदिर वाला नगर भी शामिल है) मद्रास में सम्मिलित किया गया है, जबकि पोन्नेरी और तिरुवल्लूर तालुकों के मुख्यतः तेलगू भाषी क्षेत्र आन्ध्र को दिये गये हैं। इसके फलस्वरूप, अरनियार योजना आन्ध्र के अन्तर्गत आ गयी है। लेकिन, इससे मद्रास के लिए चिन्ता का कोई कारण नहीं है, क्योंकि इस योजना से मद्रास राज्य के २१ गांवों को सिंचाई सुविधा प्राप्त होती रहेगी। सीमा संबंधी झगड़े के निपटारे से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात सौहार्द्र की वह भावना और वातावरण है जिसके अन्तर्गत दोनों सरकारों ने इस समस्या को हल किया है। यद्यपि उन्हें पाटस्कर रिपोर्ट से भी सहायता मिली थी, तथापि, यदि दोनों सरकारों ने समझौता करने की ओर तत्परता न दिखायी होती, तो यह इतना पुराना झगड़ा इस कदर आसानी से नहीं सुलझ सकता था।

सहकारिता का वातावरण

दक्षिण भारत के राज्यों ने दक्षिण में जल और शक्ति के साधनों को विकसित करने की सख्त जरूरत को ठीक तरह से समझने का सबूत दिया है। दक्षिणी क्षेत्र की कुल जनसंख्या ७.५ करोड़ है। औद्योगिक दृष्टि से, उत्तर की अपेक्षा दक्षिण बहुत कम विकसित है और औद्योगीकरण की प्रत्येक स्कीम की सफलता का आधार शक्ति और परिवहन हैं। अतः दक्षिण के साधनों का बहुमुखी विकास अत्यावश्यक है। भौगोलिक, ऐतिहासिक और परम्परा की दृष्टि से प्रत्येक राज्य अन्य राज्यों से इस प्रकार सम्बद्ध है कि साधनों की महान् समस्या को सफलतापूर्ण ढंग से हल करने के लिए संगठित प्रयत्न की जरूरत है। उदाहरण के तौर पर, मद्रास राज्य के उन जिलों को, जहां सिचाई के लिए जल की बहुत सख्त जरूरत है, पानी तब तक नहीं मिल सकता, जब तक कि आन्ध्र की सहायता प्राप्त न हो, क्योंकि गोदावरी और कृष्णा की मुख्य नदियां आन्ध्र प्रदेश में प्रारम्भ होती हैं। इस तरह, केरल की नदियों के पानी से (जो इस समय नष्ट हो रहा है) जल विद्युत-शक्ति और सिंचाई सुविधायें प्राप्त करना मद्रास राज्य के लिए भी लाभप्रद है। बकिंघम नहर का विकास, जो आन्ध्र और मद्रास के बीच माल के यातायात में बहुत सहायक सिद्ध होगी, भी दक्षिणी क्षेत्र के हित में है।

दक्षिणी क्षेत्र में सहकारिता का यही वह पहलू था, जिसकी ओर श्री गोविन्दवल्लभ पंत ने अपने प्रारंभिक भाषण में मुख्य मंत्रियों का ध्यान आकर्षित कराया था। उन्होंने दक्षिण भारत की नदियों को उपयोग में लाने के लिए एक बड़े आयोजन की आवश्यकता पर भी जोर दिया, यद्यपि उन्होंने यह भी कहा कि यह भी संभव है कि वर्तमान आर्थिक कठिनाइयों के कारण हम और बड़ी योजना हाथ में लेने से असमर्थ रहें—विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जबकि वह द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निर्धारित की गयी प्राथमिकतों से बाहर हो।

मुख्य मंत्रियों ने इकट्ठी पुलिस शक्ति संगठित करने के सुझाव का परीक्षण करने लिए और मानव-शक्ति का आयोजन करने के लिए समितियां नियुक्त करने का फैसला किया। उन्होंने एक-से हितों के प्रश्नों पर जैसे आराजी की उच्चतम सीमा निर्धारित करने तथा अनुसूचित सहकारी मुलाजिमों और ग्राम अधिकारियों के वेतन में सुधार करने और एक दूसरे से विचार-विमर्श करने का भी निश्चय किया। भाषा के आधार पर अल्प-संख्यकों की समस्या पर भी उचित गौर किया गया। आन्ध्र में कुछ हजार तमिल-भाषी लोग बसते हैं और मद्रास में कुछ तेलगू-भाषी नागरिक हैं। उनके हितों की रक्षा करना आवश्यक है और उन्हें शिक्षा की सुविधायें तथा रोजगार के अवसर प्रदान करना लाजिमी है। क्षेत्रीय समिति ने भाषा पर आधारित अल्पसंख्यकों की समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिए एक उच्च स्तरीय समिति के नियुक्त करने का निश्चय किया।

इससे पूर्व ११ जुलाई को, जबकि दक्षिण क्षेत्रीय समिति की प्रथम बैठक हुई थी, नदी और सड़क विकास की समस्याओं तथा औद्योगिक उन्नति के प्रश्नों पर कुछ प्रारम्भिक गौर किया गया था। मैसूर के मुख्य मंत्री विशेष आमंत्रण पर इस बैठक में शामिल हुए, क्योंकि मैसूर के पश्चिमी क्षेत्र में स्थित होने के बावजूद, उसकी अधिकतर समस्याएँ द्विभाषी बम्बई जैसी नहीं, अपितु दक्षिणी राज्यों जैसी ही हैं।

पश्चिमी क्षेत्रीय समिति

पश्चिमी क्षेत्रीय समिति की प्रथम बैठक २० सितम्बर को हुई थी। यहां भी, अध्यक्ष के भाषण में अधिक सूझ-बूझ, आर्थिक साधनों के विकास की जानकारी और उस ओर प्रयत्नशील होने पर जोरदार शब्दों में अपील की गयी थी। जो इलाके पहले बम्बई राज्य में थे और अब मैसूर में सम्मिलित कर दिये गये हैं, उनकी कई बातें अब भी बम्बई के इतनी समान हैं—विशेष रूप से व्यापार, वाणिज्य और परिवहन के क्षेत्रों में—कि पश्चिमी क्षेत्रीय समिति को सहकारिता से काम करने के लिए काफी क्षेत्र प्राप्त होता है। दोनों राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने भविष्य की समस्याओं और वर्तमान अवसरों के प्रति जागरूकता दिखायी।

मध्यवर्त्ती क्षेत्रीय समिति

मध्यवर्त्ती क्षेत्रीय समिति की दूसरी बैठक इस महीने होने की आशा है। पहली मई १९५७ को हुई प्रथम बैठक ने योजना आयोग द्वारा दिये गये दो नोटों पर जो क्षेत्र में राज्यों की विकास योजनाओं तथा कृषि के संशोधित उत्पादन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नये कार्यक्रम से संबंधित हैं, गौर किया। मध्य प्रदेश में डकैती की भीषण समस्या पर भी विचार किया गया और उत्तर प्रदेश सरकार ने इसके निदान के लिए सहायता देने का वचन दिया। समिति ने मध्य प्रदेश के इलाकों में उत्तर प्रदेश की नहरों से सिंचाई होने के प्रशासनार्थ उत्तरीय भारत नहर और नाला अधिनियम, १८७३ को मध्य प्रदेश में भी लागू करने के सुझाव पर सोच विचार किया। समिति में यह बात मानी गयी कि रिहंद बांध के लिए शीघ्रातिशीघ्र भूमि का हस्तांतरण करने के लिए आवश्यक कदम उठाये जाने चाहिएं, क्योंकि रिहन्द बांध की सफलतापूर्वक संपूर्णता पर ही उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों तथा मध्य प्रदेश के साथ लगने वाले नजदीकी इलाकों का भविष्य सुरक्षित होगा।

पूर्वीय क्षेत्रीय समिति

पूर्वी क्षेत्रीय समिति ने, जिसका उद्घाटन १३ अप्रैल १९५७ को हुआ था, शरणार्थी पुनस्संस्थापन को असाधारण प्राथमिकता दी। इसने योजना आयोग द्वारा भेजे गये दो नोटों—जो पूर्वी क्षेत्र के राज्यों के विकास और कृषि के संशोधित उत्पादन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नये कार्यक्रम से संबंधित हैं—पर सोच-विचार किया।

उत्तरी क्षेत्रीय समिति

उत्तरी क्षेत्रीय समिति, जिसकी बैठक पांचों समितियों में सबसे पहले हुई, ने पाकिस्तान द्वारा संयुक्त राष्ट्र को भेजे गये एक विरोध-पत्र को अपने सम्मुख रखा, क्योंकि कराची के मतानुसार, यह समिति कश्मीर को शेष भारत के साथ और अधिक सुदृढ़ रूप से संगठित करती है। इसी बैठक में श्री पन्त ने क्षेत्रीय स्कीम के छः प्रमुख लक्ष्य स्पष्ट किये थे—क्षेत्रीय समितियों द्वारा देश की भावनात्मक एकता स्थापित करना, राज्यीय भावना, क्षेत्रीयता, भाषावाद और पृथकतावाद की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोकने में सहायता देना, कुछ स्थानों पर बिलगाव के कारण पैदा होने वाले प्रभावों को खत्म करने में सहायता देना, ताकि पुनर्संगठन, एकीकरण और आर्थिक विकास का कार्य एक साथ संपन्न हो सके, केन्द्र और राज्यों को आपस में सहकारिता से काम करने तथा विचारों और अनुभवों के आदान-प्रदान करने में समर्थ बनाना, बड़ी-बड़ी विकास योजनाओं के तेजी से क्रियान्वयन के लिए आपस में सहकारिता का वातावरण पैदा करना और देश के विभिन्न भागों में एक प्रकार का राजनीतिक संतुलन कायम करना।

क्षेत्रीय समितियों की परिसीमा

क्षेत्रीय समितियों संबंधी विचार कोई बिल्कुल नया विचार नहीं है। विभिन्न स्वरूपों में यह पहले भी सामने आ चुका है। १९४४ की कूपलैण्ड योजना का मूलभूत विचार यही था। इस योजना द्वारा केन्द्र की शक्ति को कम करना, और केन्द्र तथा राज्यों के बीच क्षेत्रीय उपसंघ कायम करना था। किन्तु हमारी वर्तमान क्षेत्रीय समितियां इससे बिल्कुल भिन्न हैं, वे केवल विचारक एवं परामर्शदात्री संघटन हैं और वे सिर्फ उन्हीं मामलों पर विचार कर सकती हैं, जो समिति में शामिल राज्यों के समान हितों से सम्बद्ध हों। किन्तु उनका कार्य-क्षेत्र बहुत बड़ा और और भिन्न-भिन्न किस्म का है। इसमें न केवल आर्थिक और सामाजिक नियोजन शामिल है, अपितु सीमा संबंधी झगड़े, भाषावार अल्पसंख्यक, अन्तर्राज्यीय यातायात और राज्य पुनस्संगठन के कारण पैदा हुए प्रश्न भी सम्मिलित हैं। अमरीका और आस्ट्रेलिया में भी इसी प्रकार के संगठन स्थापित हैं। इन दोनों देशों में फेडरेल स्कीम को क्षेत्रीय संगठनों के कार्य से काफी लाभ हुआ है। भारत का यह तजुर्बा भी निस्संदेह सफल होगा।

सुनील गुहा

कल्याणकारी अर्थशास्त्र : भारत के आर्थिक विकास के सन्दर्भ में

मार्शल, पिगू, कीन्स, विलियम बेवरिज, बर्गसन तथा हाल के दूसरे अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र संबंधी जिन सैद्धांतिक ढांचों का निर्माण किया, उन्हीं से 'आय के पुर्नवितरण', 'पूर्णतर रोजगार' और 'वृहत्तर सामाजिक कल्याण' के आधुनिक आन्दोलन का उद्भव हुआ है। प्रत्यक्ष और सामाजिक दृष्टि से अनुचित असमानताओं के खिलाफ जो विरोध हुए, उन्होंने मार्शल को अपनी विख्यात अर्थशास्त्रीय धारणा, 'उपभोक्ता की बचत',के प्रतिपादन के लिए प्रेरणा दी, जो कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र का प्रथम सैद्धांतिक उपकरण सिद्ध हुआ। उन्होंने इस धारणा का प्रतिपादन अपनी पुस्तक '**प्रिंस्पल्स**' के १३वें अध्याय में किया है। यह धारणा उपभोक्ता के दृष्टिकोण से सम्पत्ति की न्यूनतर असमानता की आवश्यकता समझाने और स्पष्ट करने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई। संपत्ति के अपेक्षाकृत अधिक उचित वितरण के फलस्वरूप समाज की आर्थिक संतुष्टि को बढ़ावा मिलेगा, जिससे सामाजिक तनावों में कमी तथा समाज के रहन-सहन के स्तर में उत्तरोतर सुधार होगा। इस विश्लेषण ने प्रगतिशील करों की आवश्यकता की पुष्टि की, और श्रमिकों के शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए सामाजिक बीमा योजनाओं की उपयोगिता पर जोर दिया।

प्रोफेसर पिगू का योगदान

यद्यपि प्रोफेसर पिगू को मार्शल से ही प्रेरणा प्राप्त हुई, किन्तु वे इस विषय के लागत-उत्पादन पक्ष की ओर ही विशेष रूप से आकृष्ट हुए। उनके सूक्ष्म विश्लेषण से, जिसने उत्पादन की सीमान्त सामाजिक लागत और सीमान्त निजी लागत के बीच सम्भाव्य अन्तर के अस्तित्त्व को प्रमाणित किया, कल्याणकारी अर्थशास्त्र की प्रारम्भिक आधार भूमि तैयार हो गयी। प्रोफेसर पिगू के तर्क संक्षेप में इस प्रकार हैं : प्लान्ट या फर्म का मालिक केवल उसके संचालन लागत की चिन्ता करता है, जो कि उस हालत में उसे लगानी पड़ेगी, जबकि वह फर्म या प्लान्ट उत्पादन शुरू कर देगा। ऐसा इसलिए होता है कि उत्पादित वस्तु की निश्चित मात्रा के उत्पादन की सीमान्त संचालन-लागत उसके व्यक्तिगत लाभ के लिए तर्कसंगत होती है। लेकिन जब उत्पादन शुरू हो जाता है, तब लागत का एक अनिर्दिष्ट तत्त्व पैदा हो जाता है, जो कि निजी लागत में तो प्रविष्ट नहीं होता, लेकिन समाज पर प्रभाव अवश्य डालता है। यही शुद्ध सामाजिक उत्पादन लागत होती है, जो कि सामाजिक लाभ या हानि के संदर्भ में तर्क-संगत होती है। उदाहरण के लिए, एक सघन बसे इलाके में किसी प्लाण्ट या कारखाने के विस्तार के फलस्वरूप सार्वजनिक निगम को उस इलाके में सफाई और स्वास्थ्य की स्थिति सुरक्षित रखने के लिए अतिरिक्त काम करने की आवश्यकता पड़ सकती है। लागत की यह मद निजी उपक्रम की लागत की मदों में वस्तुतः प्रविष्ट नहीं होती, बल्कि फिर समाज के ऊपर जा पड़ती है। इसके अलावा, उत्पादन की सामाजिक लागत का संबंध उत्पादन की वर्तमान लागत और भावी लागत, दोनों ही से होता है। उदाहरण के लिए, कोयले की खानों के मालिक लाभ की लालच में अच्छे किस्म के कोयले के समस्त साधनों को उपयोग करके खत्म कर सकते हैं। फलस्वरूप, भावी पीढ़िया अच्छे कोयले की पूर्त्ति से वंचित हो जायेंगी। इसमें एक यथार्थ आर्थिक हानि निहित है। यदि समाज तरक्की करना चाहता है तो उसे अपने वर्तमान और भावी दोनों ही कल्याणों की देखरेख करनी चाहिए। भावी सामाजिक लाभों के महत्त्व को किसी भी रूप में कम करने से अनिवार्यतः भौतिक कल्याण और संपन्नता के रास्ते में बाधा उत्पन्न हो सकती है। कोई भी ठोस आर्थिक नीति, जो कि वर्तमान तथा भविष्य दोनों का समान सम्मान करती है, विवेकहीन प्रतियोगिता को जारी नहीं रहने दे सकती, क्योंकि आंकड़ों के विश्लेषण द्वारा यह पता लगाया गया है कि व्यक्तिगत उपक्रमी वर्तमान संतुष्टि हासिल करने के उद्देश्य से भावी सामाजिक लाभों को कम महत्त्व देते हैं। अतः प्रोफेसर पिगू ने उन तमाम स्थितियों में राज्य द्वारा हस्तक्षेप को उचित बतलाया है, जहां सामाजिक शुद्ध सीमान्त उत्पादन का मूल्य निजी शुद्ध सीमान्त उत्पादन के

मूल्य के ठीक-ठीक बराबर नहीं होता। उन्होंने कहा कि सार्वजनिक अधिकारी का उद्देश्य उपयुक्त राजकोषीय उपायों द्वारा इन दोनों तत्त्वों के बीच की खाई को भरना होना चाहिए। इस संबंध में प्रोफेसर पिगू ने जिन उपायों का सुझाव दिया था, उनमें प्रगतिशील कर, एकाधिकारी मूल्यों का नियमन तथा सार्वजनिक कल्याण सेवाओं का नियंत्रण मुख्य थे।

सन् १९३० की महान मन्दी और नवीन विश्लेषणात्मक उपकरण की खोज

१९२९-३२ की विश्वव्यापी मन्दी ने, जो कि समूचे पूंजीवादी जगत पर छा गयी थी, पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्थाओं के केन्द्रीय विरोधाभास—पूंजी निवेश और रोजगारीकी अन्तर्भूत अस्थिरता जो आवर्त्ती आर्थिक संकटों को जन्म देती है—को प्रकाश में ला दिया। उस समय बड़े व्यापक पैमाने पर बेरोजगारी फैल गयी और आमदनियां घट गयीं। वालरा, मार्शल और पिगू को अर्वाचीन शास्त्रीय अर्थशास्त्र उस स्थिति का उपयुक्त समाधान प्रस्तुत नहीं कर सका, क्योंकि उसकी योगजन्य विश्लेषण की प्रविधि अभी भी ठोस विश्लेषण और निदान के लिए परिपक्व नहीं हो पायी थी। उसका ढांचा अनिवार्य रूप से स्थिर था और उसको कुछ बुनियादी मान्यताएं, जैसे अपेक्षाओं की स्थिर स्थिति तथा पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था की पूर्ण रोजगार देने की क्षमता में विश्वास, अनिवार्य रूप से वास्तविक तथ्यों के अनुरूप नहीं हो पाती थीं। व्यावहारिक अनुभवों से यह पता चला कि पूर्ण रोजगार के स्तर पर बचत और पूंजी निवेश को समान करने के लिए व्याज दर पर हद से ज्यादा निर्भर करना उपयुक्त नहीं। न ही नकदी मजदूरी घटाने से रोजगार की मात्रा विस्तृत करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार, शास्त्रीय अर्थशास्त्र को १९३० के बाद की दशाब्दी में सबसे अधिक मुंह की खानी पड़ी; और वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करने और राष्ट्रों की राजकोषीय नीतियों को प्रभावित करने के लिए एक नये सैद्धांतिक नमूने की आवश्यकता तीव्र हो उठीं।

कल्याणकारी राज्य की धारणा

ठीक उसी समय. प्रो. हेरोल्ड लास्की, प्रो. शेफर्ड, प्रो. सिडनी और बियट्रिस वेव जैसे राजनीतिक विचारकों ने आर्थिक लोकतंत्र के विचार तथा 'कल्याणकारी राज्य' की धारणा का प्रचार शुरू कर दिया। उनका कहना था कि एक राजनीतिक संगठन के रूप में राज्य पर यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के लिए रहन सहन का एक निम्नतम स्तर और पूर्ण रोजगार स्थिति उत्पन्न करे, क्योंकि इसके बगैर लोकतंत्र व्यर्थ है। फिर भी, 'कल्याणकारी राज्य' के संबंध में यथार्थ प्रयत्न तब तक विकसित न हो सके, जब तक कि लार्ड कीन्स की महान् पुस्तक **जनरल थियरी आफ एम्पलायमेण्ट, इन्टरेस्ट ऐण्ड मनी** प्रकाशित नहीं हो गयी।

कीन्स की 'जनरल थियरी'

लार्ड कीन्स की पुस्तक **जनरल थियरी** के साथ आर्थिक विचारधारा के विकास में एक नया सोपान शुरू होता है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि अर्वाचीन-शास्त्रीय अर्थशास्त्री बिना विचार किये ही प्रोफेसर से के नियम को स्वीकार करके, वस्तुतः जो कुछ सचमुच हो रहा है, उसके संबंध में असंभव बातों का पोषण कर रहे हैं। उस प्रारम्भिक विन्दु से चल कर वे पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का गहराई से सूक्ष्म विश्लेषण करने में सफल रहे, जिससे पता चलता है कि मन्दी और बेरोजगारी, असंभव होने की बजाय, ऐसे स्वाभाविक लक्ष्य हैं, जिनकी ओर जाने के लिए उस अर्थ-व्यवस्था में स्वाभाविक प्रवृत्ति पायी जाती है। इस विश्लेषण ने हमेशा के लिए निजी और सार्वजनिक हितों के बीच सामंजस्य की कपोल कल्पना को निर्मूल सिद्ध कर दिया, जो कि १९वीं शताब्दी के उदारतावाद की आधार-शिला थी।

लार्ड कीन्स ने अर्थशास्त्र के सभी अन्तर्संबंधों की दृष्टि से उसके अध्ययन की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से दिखला दिया, क्योंकि आर्थिक साधन अपने संयुक्त रूप जैसे उपभोग, बचत, निवेश, तरलता, अधिमान आदि में एक दूसरे से कार्य कारण के आधार पर सम्बद्ध हैं। अतः, किसी एक साधन को अन्य साधनों से पृथक करने का प्रयत्न करने पर दोषपूर्ण निष्कर्ष निकल सकते

हैं, क्योंकि ऐसा होने पर किसी निश्चित स्थिति संबंधी हमारे विश्लेषण में व्यापकता का अभाव हो सकता है। कीन्स ने आर्थिक वस्तुस्थिति को चार तालिकाओं द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। वे तालिकाएँ हैं : पूंजी की सीमान्त क्षमता की तालिका (जो कि पूंजी की संभाव्य आय और उसके चालू पूर्त्ति-मूल्य के बीच संबंध स्थापित करती है); ब्याज दर की तालिका (जो कि बैंकिंग नीति और तरलता के संबंध में समाज के व्यवहार पर निर्भर करती है); उपभोग की सीमान्त क्षमता (जो कि समाज की अतिरिक्त आय के साथ उस आय से उपभोग पर किये गये व्यय का अनुमान व्यक्त करती है), और तरलता-अधिमान की तालिका। कीन्स का विश्लेषण योग-जन्य है और मुद्रा-सिद्धांत तथा मूल्य-सिद्धांत के बीच के अंतर को दूर करने के लिए पर्याप्त परिपक्व है।

बचत और पूंजी-निवेश

जनरल थियरी के अनुसार, प्रभावकारी मांग का स्थायी अभाव ही, जो कि पूंजीवादी प्रणाली की विशेषता है, अस्वैच्छिक बेरोजगारी के अस्तित्त्व के लिए जिम्मेदार है। प्रो० से के नियम में जिस स्वतंत्र बाजार की कल्पना की गयी है, उसकी व्यवस्था स्वतंत्र अर्थ-व्यवस्था द्वारा प्रभावकारी मांग को उस हद तक विकसित नहीं होने देती, जो कि पूर्ण रोजगार कायम रखने के लिए ठीक-ठीक पर्याप्त होगी। विशेष रूप से, ऐसी अर्थ-व्यवस्था जो कि अत्यधिक उद्योग प्रधान और प्रौढ़ है, जिसमें उपभोग की सीमा व क्षमता बहुत ही न्यून होती है, और पूंजी-निवेश के अवसर बहुत ही सीमित होते हैं, पूर्ण रोजगार के सन्तुलन विन्दु तक अपने आप मुश्किल से विस्तृत हो सकती है। अतः, पूंजीवादी समाज में अन्तर्भूत कारणों से व्यावहारिक जगत में अर्द्ध-पूर्ण रोजगार संबंधी संतुलन सामान्य रूप से पाये जाते हैं। उत्पादन, रोजगार और पूंजी-निवेश के चक्रीय परिवर्तन, जिन्हें आम तौर पर व्यापारिक चक्र कहते हैं, की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि इनका उद्भव राष्ट्रीय आय के एक निश्चित स्तर में से बचत करने की क्षमता, और राष्ट्रीय आय के उस स्तर पर पूंजी-निवेश की क्षमता के बीच अंतर होने के कारण होता है। लेकिन कुल बचतों के योग के वास्तविक मूल्य और कुल पूंजी-निवेशों के योग के वास्तविक मूल्य राष्ट्रीय आय द्वारा रोजगार के प्रत्येक स्तर पर समान कर दिये जाते हैं। हमारी बाजार संबंधी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत, जहां कुल बिक्री हमेशा कुल खरीद के बराबर जरूर होती है, सौदों का द्विपक्षीय स्वभाव ही उसका कारण है, हालांकि खरीद और बिक्री के उद्देश्य एक दूसरे से भिन्न हो सकते हैं। अतः, हमारी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत वास्तविक संतुलनकारी तत्व राष्ट्रीय आय है न कि ब्याज दर।

कीन्स के अनुसार, ब्याज की दर वर्तमान और भविष्य के बीच की कड़ी है और हमारे तरलता-अधिमान को व्यक्त करती है। उनके ही शब्दों में, ब्याज तरलता के त्याग का पुरस्कार है। और इस पुरस्कार की दर ही वह तत्व है, जोकि विभिन्न प्रकार की परिसंपत्तियों को कब्जे में रखने के संबंध में निवेशकर्त्ता के निर्णयों को अनुशासित करता है। कीन्स के विश्लेषण की सबसे महत्त्वपूर्ण बात इस स्पष्ट वक्तव्य में निहित है कि यदि ब्याज दर को अनिश्चित काल तक बहुत ही निम्न स्तर पर रखा जाय, तो भी पूंजी-निवेश की नीयत को उस विन्दु तक प्रेरित नहीं किया जा सकता, जो कि पूर्ण रोजगार के अनुकूल हो। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ण रोजगार और अर्द्ध-पूर्ण रोजगार के बीच की खाई को उपभोग की मात्रा बढ़ा कर, अथवा विकल्प के रूप में, पूंजी-निवेश की मात्रा बढ़ा कर करना चाहिए।

सार्वजनिक राजस्व की भूमिका

साथ-साथ ही, सार्वजनिक राजस्व के सिद्धांत भी परिवर्त्तित होते रहे। घाटे का व्यय अब स्वतः कोई बुराई नहीं माना जाता। जब तक कि घाटे के व्यय के (जिसकी वित्त-व्यवस्था निर्गमित मुद्रा या ऋण द्वारा की जाती हो) साथ-साथ राष्ट्रीय उत्पादन और रोजगार भी बढ़ता रहेगा, तब तक मुद्रास्फीति नहीं उत्पन्न हो सकती और वास्तविक वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह और क्रयशक्ति के प्रवाह के बीच आनुपातिक संबंध बना रहेगा। प्रारम्भिक व्यय के फलस्वरूप आय और रोजगार जिस मात्रा में बढ़ेगा, वह हर हालत में मांग की नयी दशाओं और पूर्त्ति की भौतिक स्थितियों के प्रति उद्योग के रुझान की तीव्रता पर

निर्भर करेगी। यह समस्या सार्वजनिक व्यय की उस मात्रा का ठीक-ठीक अनुमान लगाने में निहित है, जो कि पूर्ण रोजगार के लिए एकदम पर्याप्त होगी।

पूर्ण रोजगार की लागत अनेक साधनों द्वारा हासिल की जा सकती है। 'गड्ढा खोदने और फिर से उसे भर देने' की धारणा अनेक रूपों में व्यक्त हो सकती है। मिसाल के तौर पर, बर्बादीपूर्ण युद्ध व्यय द्वारा पूर्ण रोजगार की व्यवस्था हो सकती है। संरक्षण और विनिमय-नियंत्रण का सारा भार उपभोक्ताओं पर डाल कर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों के बलिदान द्वारा भी यह लक्ष्य हासिल किया जा सकता है। इस तरह की नीतियों में वर्तमान समय में रोजगार को कायम रखने के लिए भावी सामाजिक लाभ को ताख पर रख देने की अन्तर्भूत प्रवृत्ति पायी जाती है।

विशुद्ध अर्थशास्त्र और कल्याणकारी अर्थशस्त्र

विशुद्ध अर्थशास्त्र लक्ष्य हासिल करने के लिए निम्नतम लागत वाले साधन को निर्धारित करने का प्रयत्न करता है। दूसरी ओर, कल्याणकारी अर्थशास्त्र लक्ष्य को हासिल करने के लिए निम्नतम अवांछनीय साधन ढूंढ़ निकालने की कोशिश करता है। विशुद्ध अर्थशास्त्र के विपरीत कल्याणकारी अर्थशास्त्र का संबंध उपभोग और पूंजी-निवेश की कुल योग-जन्य मात्रा से नहीं होता, बल्कि उसका संबंध सामाजिक दृष्टि से वांछनीय उपभोग और पूंजी निवेश की कुल योग-जन्य मात्रा से होता है। मिसाल के तौर पर, आय और उपभोग पर लगे कर की दरों में गहरी कटौती, रोजगार और उत्पादन पर पड़ने वाले अपने अनुकूल प्रभावों के कारण उचित हो सकती है, लेकिन कल्याण की दृष्टि से इस तरह के उपायों का समर्थक होना कठिन हो सकता है। क्योंकि अगर निजी उपभोग गलत रुख पकड़ ले, तो ऐसे पूंजी-निवेश, जिनका सामाजिक मूल्य कम है, प्रोत्साहित हो जावेंगे और ऐसे पूंजी-निवेश पिछड़ जायेंगे जिन्हें सामाजिक दृष्टि से प्राथमिकता मिलनी चाहिए। इस प्रकार का तर्क आवश्यक और वांछनीय तथा अनावश्यक और अवांछनीय के बीच भेद करता है।

कल्याणकारी अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से रोजगार की समस्या के समाधान संबंधी प्रयत्नों की व्याख्या लार्ड विलियम बेवरीज ने अपनी पुस्तक **फुल एम्प्लायमेंट इन ए फ्री सोसाइटी** (स्वतंत्र समाज में पूर्ण रोजगार) में अच्छी तरह की है। लार्ड बेवरिज ने पूर्ण रोजगार की जो परिभाषा प्रस्तुत की है, उसमें "बेरोजगार व्यक्तियों की अपेक्षा खाली कामों की अधिक संख्या" की पूर्व कल्पना की गयी है। निश्चय ही, इस परिभाषा के पीछे नैतिकता की भावना छिपी हुई है। अनिवार्य पूर्वावश्यकता यह है कि श्रम-बाजार विक्रेता-प्रधान बाजार होना चाहिए न कि क्रेता-प्रधान बाजार। यह परिभाषा इस नैतिक या राजनीतिक धारणा पर आधारित है कि समाज का अस्तित्त्व व्यक्ति के लिए है और उस पर एक ऐसा वातावरण कायम रखने की जिम्मेदारी है, जिसके भीतर प्रत्येक व्यक्ति अपनी संभाव्यताओं को विकसित करने के लिए यथासंभव सर्व श्रेष्ठ अवसर प्राप्त कर सके। "इस उद्देश्य से कि मनुष्यों का मूल्य हो और वे मूल्य का मन्तव्य समझें, यह आवश्यक है कि हमेशा क्रियान्वित होने के लिए उपयोगी कार्य मौजूद हों और उनके करने के उपलक्ष्य में अदा करने के लिए धन भी हो। मनुष्य की बजाय कार्य या रोजगार को ही प्रतीक्षा करनी चाहिए।" नैतिक आधार पर पूर्ण रोजगार की यह परिभाषा शायद सबसे अधिक वांछनीय है, लेकिन विशुद्ध अर्थशास्त्र की दृष्टि से श्रम को क्रेता-प्रधान बाजार से हटा कर विक्रेता-प्रधान बाजार की ओर उन्मुख करने के प्रयत्न पर इसलिए आक्षेप उठाया गया है कि इसकी भारी लागत का बोझ वर्तमान पीढ़ी पर पड़ेगा।

बेवरिज के तीन पन्थ

लार्ड बेवरिज का सुझाव यह है कि आयोजित पूंजीगत व्यय का एक दीर्घकालीन कार्यक्रम होना चाहिए, जो सामाजिक प्राथमिकताओं से निर्दिष्ट हो और जिसका उद्देश्य आर्थिक प्रणाली को स्थायित्त्व प्रदान करना तथा उसे विस्तृत करना हो। समाज की कुल मानव शक्ति को निर्दिष्ट आधार मान कर कुल पूंजी-व्यय को इस तरह जानबूझ कर आयोजित करना चाहिए, जिससे कुल निर्दिष्ट मानव-शक्ति रोजगार प्राप्त कर सके। एक राष्ट्रीय पूंजी-निवेश बोर्ड संगठित होना चाहिए जो सार्वजनिक

निर्माण-कार्यों और सरकारी उपक्रमों को उनकी सापेक्ष लागतों और सामाजिक प्राथमिकताओं के अनुसार आयोजित कर सके। इस कार्यक्रम के अनुसार एक नये किस्म का बजट तैयार करना जरूरी होता है, जिसे (अ) पूंजी बजट और (ब) चालू बजट में विभाजित कर सकते हैं। लार्ड बेवरिज के अनुसार, यह बात वांछनीय है कि चालू व्यय की वित्त-व्यवस्था चालू राजस्व से ही की जाय, हालांकि पूंजीगत व्यय की वित्त-व्यवस्था ऋणों द्वारा या घाटे के व्यय द्वारा की जा सकती है। उनका कहना है कि व्यय के लिए वित्तीय साधनों की व्यवस्था ऋण की अपेक्षा कर लगा कर करना श्रेष्ठतर है। करों को उन्होंने तरजीह इसलिए दी कि उन्हें एक लगानोपजीवी वर्ग के विकास से घृणा थी। वे आय पर लगे कर को घटा कर उपभोग को बढ़ावा देने के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि उन्हें भय था कि ऐसा करने से निजी उपभोग गलत दिशा में होने लगेगा। इस प्रकार, लार्ड बेवरिज के अनुसार, पूर्ण रोजगार के तीन पंथ थे : (१) पूंजी के कुल व्यय को पर्याप्त मात्रा में कायम रखना, (२) श्रम की नियंत्रित गतिशीलता, और (३) उद्योग का नियंत्रित स्थानीयकरण। अब हम भारत के संदर्भ में 'पूर्ण रोजगार' के औचित्य की जांच करेंगे।

भारत में पूर्ण रोजगार

'पूर्ण रोजगार' की एक अनिवार्य पूर्वावश्यकता यह है कि वर्तमान उपकरणों और उपलब्ध श्रम के बीच एक उचित संबंध मौजूद हो; अथवा श्रम और पूंजी के बीच जो कि अर्थ-व्यवस्था की 'निवेश-संभाव्यता' का प्रतीक है, एक प्राविधिक सम्पूरकता का होना जरूरी है। पूर्ण रोजगार की दूसरी शर्त यह है कि पूंजीगत साधनों का स्वरूप न सिर्फ उपलब्ध श्रम के स्वभाव और उसकी प्राविधिक कार्य-क्षमता के समानकूल होना चाहिए, बल्कि उपलब्ध मानव शक्ति को रोजगार देने, और साथ ही, विभिन्न आधारभूत उद्योगों के लिए प्रारक्षित श्रम शक्ति बनाये रखने के लिए पर्याप्त भी होना चाहिए।

सभी अन्य अविकसित देशों की भांति भारत में भी उपकरणों की अधिकतम क्षमता कुल बेरोजगार श्रम को खपा सकने में अपर्याप्त है। अतः यदि (वर्तमान औद्योगिक क्षमता के पूर्ण उपयोग के फलस्वरूप) संगठित औद्योगिक क्षेत्र में पूर्ण रोजगार की स्थिति पैदा हो जाय, तो भी इससे हमारी बेरोजगारी की समस्या पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसकी वजह यह है कि 'छिपी बेरोजगारी' (कृषि क्षेत्र में श्रम का बर्बादी से युक्त ऐसा इस्तेमाल जिससे खेती के उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती) जो हमारी अर्थ-व्यवस्था की स्थायी विशेषता बन गयी है, दर असल पूंजीगत उपकरणों और अन्य पूरक साधनों की कमी के कारण ही अस्तित्व में है। भारतीय राजकोषीय आयोग (१९४९-५०) ने अनुमान लगाया था कि भारत के उद्योग प्रति वर्ष अधिक से अधिक ३० लाख व्यक्तियों को रोजगार दे सकते हैं। लेकिन यदि हम कृषि क्षेत्र में छिपी बेरोजगारी को निर्मूल करना चाहते हैं तो बीस वर्ष तक प्रति वर्ष १५ लाख व्यक्तियों के हिसाब से खेती के क्षेत्र से लोगों को हटाना जरूरी होगा। देश की सम्भाव्य श्रम शक्ति में प्रति वर्ष जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप १५ से २० लाख व्यक्तियों की और भी वृद्धि होगी। यह समस्या इस वजह से और भी अधिक जटिल हो गयी है कि भारत के मजदूर बेहद गतिहीन होते हैं और वे अपने पुश्तैनी पेशे को छोड़ना नहीं चाहते, चाहे उन्हें इस वजह से वर्ष में काफी लम्बे अर्से तक बेकार ही क्यों न रहना पड़े। अभी हाल के एक अनुमान के अनुसार, जो कि काम दिलाऊ दफ्तरों में रजिस्ट्री शुदा बेरोजगारों की संख्या पर आधारित है, भारत में बेरोजगारों की संख्या १९५१ के ३,३८,००० से बढ़ कर १९५६ में ७,९७,००० हो गयी। इससे इस बात का भी आभास होता है कि पेशों के उपयुक्त आयोजन के लिए कितने प्रयत्नों की आवश्यकता है, ताकि अधिक से अधिक लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकें, और उत्पादकता बढ़ सके। यद्यपि सरकार श्रम के संगठन को सुधारने के लिए सभी संभव कदम उठा रही है और जानकारी का प्रचार और सामूहिक भावना को प्रोत्साहित करके श्रम की गतिहीनता दूर करने की कोशिश कर रही है, फिर भी यह जरूरी है कि मजदूर संघ तथा अन्य स्वैच्छिक संगठन भी इस दिशा में कुछ ठोस उपाय अपनायें। इसके अलावा, स्वयं मजदूरों को अपना दृष्टिकोण बदल देना चाहिए और यदि रोजगार के अच्छे अवसर प्राप्त हों तो उन्हें दूरस्थ जगहों पर जाने से हिचकना नहीं चाहिए।

और फिर, प्रारक्षित श्रम-शक्ति का भी सवाल है। अगर आधारभूत उद्योगों में प्रारक्षित श्रम-शक्ति न हो, या अपर्याप्त हो, तो अल्पकालीन अवधि में पूर्ण रोजगार का लक्ष्य हासिल करने के लिए अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण के प्रयत्नों द्वारा

विभागीय गतिरोधों के कारण मुद्रास्फीतिक प्रवृत्तियां आसानी से उभर सकती हैं । पुनर्निर्माण के लिये अतिरिक्त व्यय के कारण विभिन्न उद्योगों के उत्पादनों की मांग में अतिरिक्त वृद्धि होगी; इस तरह की अतिरिक्त मांग की मात्रा अर्थ-व्यवस्था में क्रियाशील 'क्रमागत आरोहण' सिद्धान्त पर निर्भर करेगी । अगर उद्योग अपने मौजूदा उपकरणों का उपयोग उनकी स्थापित क्षमता तक कर चुके होंगे, तो अतिरिक्त मांग असंतुष्ट बनी रहेगी और विकास की प्रक्रिया में सिर्फ लोचशील पूर्ति के अभाव के कारण, बाधा उत्पन्न हो जायगी । यदि इस तरह के विभागीय गतिरोधों को उपयुक्त ढंग पर रोका नहीं जायगा, तो उनसे मुद्रास्फीतिक स्थितियां बड़ी आसानी से पैदा हो सकती हैं । दरअसरल, भारत में इस तरह की वस्तु स्थिति पहले ही से दिखलायी पड़ रही है, और अनिवार्य वस्तुओं के मूल्य में समय-समय पर अचानक वृद्धि केवल पूर्ति के सापेक्ष अभाव का सूचक है ।

स्वस्थ आर्थिक प्रगति के लिए यह बात पूर्वापेक्षित है कि पूंजीगत वस्तुओं (जिनमें मशीनी औजार, ईंधन, अर्ध-निर्मित उत्पादन, जिनका प्रयोग आधारभूत उद्योगों में कच्चे माल के रूप में होता है, शामिल हैं) के विस्तार और उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पूर्ण रोजगार की अवस्था प्राप्त हो जाने पर, समुचित रूप से सन्तुलित हो जायं । ठीक इस अवस्था में सन्तुलन न उत्पन्न होने के कारण ही पूर्ण रोजगार की स्थिति जारी नहीं रह पाती । इस प्रकार के विश्लेषण के अन्तर्गत, यह वांछनीय है कि राज्य महत्वपूर्ण निजी उद्योगों की उत्पादन योजनाओं को, यदि प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित नहीं तो, नियमित अवश्य करें। पाठक को यह बात ज्ञात होनी चाहिए कि सरकार की नयी औद्योगिक नीति तथा उद्योग (विकास और नियमन) अधिनियम का उद्देश्य अन्य बातों के अलावा इस विभागीय सन्तुलन को स्थापित करना ही है जो कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र का बेहद महत्वपूर्ण पहलू है । हमने अभी तक भारत में पूर्ण रोजगार की समस्या पर विचार किया है । आगामी अंक में हम उन कठिनाइयों और बाधाओं पर विचार करेंगे जो भारत में एक व्यापक कल्याणकारी कार्यक्रम कार्यान्वित करने में सामने आती हैं और यह भी बतलायेंगे कि इधर हाल के वर्षों में हमारी आर्थिक नीति के विभिन्न पक्षों में क्या-क्या कल्याणकारी नवीकरण सम्पन्न हुए हैं ।

(क्रमशः)

सफेद बालोंको श्याम बनाने वाला
लोमा
रजिस्टर्ड
• मधुर सुवास देता है,
• दिमाग को ठंडक पहुंचाता है,
• सर्वत्र बिकता है।
B.SHAH
सोल एजन्ट:- एम. एम. खंभातवाला
अहमदाबाद-१

अरविन्द का यह चिह्न

उच्चतम कोटि
के
कपड़ों के लिए सुप्रसिद्ध

अरविन्द मिल्स लिमिटेड
नरोदा रोड, अहमदाबाद–२

श्री जमनालाल बजाज केन्द्रीय ग्रामोद्योग गवेषणा संस्थान

क्षेत्र, कार्य और संगठन

बेरोजगारी की भीषणता को कम करने और देश के आयोजित विकास के प्रारंभिक काल में उपभोक्ता वस्तुओं की मांग और पूर्ति के बीच के भारी फर्क को कम करने में ग्रामोद्योगों और लघु उद्योगों की प्रत्यक्ष शक्ति के संबंध में बढ़ती हुई जागरूकता के साथ-साथ यह अनिवार्य हो गया है कि राष्ट्रीय नियोजन के अन्तर्गत ग्रामीण और औद्योगिक विकास कार्यक्रम में इनके महत्व को समझा जाय। जहां ग्रामोद्योगों को सरकार द्वारा सहायता दिया जाना आवश्यक माना गया है, वहां यह भी कहा गया है कि इस सहायता का महत्व तब तक अल्पकालीन ही रहेगा, जब तक कि इनके उत्पादन के तरीकों और औजारों में तेजी से संशोधन नहीं किया जाता। इस कार्य को समक्ष रखते हुए, योजना आयोग ने सुझाव दिया कि अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड द्वारा तैयार की गयी स्कीम के अनुसार ग्रामोद्योगों में गवेषणा कार्य करने के लिए एक केन्द्रीय संस्थान की स्थापना की जाय। बोर्ड ने १९५३ में एक गवेषणा कमेटी की नियुक्ति की जिसने ग्रामोद्योगों के लिए तत्कालीन गवेषणा सुविधाओं का अध्ययन करने के बाद उन के लिए एक केन्द्रीय गवेषणा संस्थान स्थापित करने के लिए एक स्कीम बनायी। इस स्कीम को बोर्ड ने मंजूर कर लिया और बाद में भारत सरकार ने भी इसे स्वीकार किया। इसी स्कीम के आधार पर, नवम्बर १९५५ में मगनवाड़ी, वर्धा, में केन्द्रीय ग्रामोद्योग गवेषणा संस्थान की स्थापना की गयी। पहली अप्रैल, १९५७ से यह संस्थान, भारत सरकार के १९५४ के केन्द्रीय अधिनियम सं. ६१ के द्वारा नियुक्त किये गये खादी और ग्रामोद्योग कमीशन के अन्तर्गत लाया गया है, और इसका नाम बदल कर 'श्री जमनालाल बजाज केन्द्रीय ग्रामोद्योग गवेषणा संस्थान' रखा गया।

गवेषणा का महत्व

ग्रामोद्योगों के संबंध में 'गवेषणा' शब्द का प्रयोग करते हुए उसमें मूलभूत और प्रयोगात्मक गवेषणा कार्य को सम्मिलित नहीं किया जाता। इसके विपरीत, गवेषणा कार्य का संबंध ग्रामोद्योगों के क्षेत्र में की गयी गवेषणा के परिणामों को इन उद्योगों की समस्याओं को हल करने के लिए व्यवहार में लाने से होता है। इसकी परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है: ग्रामोद्योगों के वर्तमान ढांचे और कार्य प्रणाली की जानकारी हासिल करना और उस जानकारी को इन उद्योगों की समस्याएं हल करने के लिए वर्तमान वैज्ञानिक, टेक्नीकल और आर्थिक ज्ञान से सम्बद्ध करना, ताकि उनके उत्पादन के तरीकों में सुधार हो सके। ग्रामोद्योगों के प्राविधिक विकास की समस्याएं को व्यावहारिक अथवा उत्पादन स्तर पर, जहां पर कि वह पेश आती हैं, हल करना होगा, न कि मूलभूत और प्रयोगात्मक विज्ञानशालाओं में। और इसका मुख्य उद्देश्य रोजगार बढ़ाना और ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थ-व्यवस्था को विकसित करना है।

संस्थान का क्षेत्र, कार्य और सीमाएं

केन्द्रीय ग्रामोद्योग गवेषणा संस्थान के क्षेत्र, कार्य, आदि का सम्बन्ध ग्रामोद्योगों की समस्याओं की आयोजित और सुव्यवस्थित ढंग से जांच करने से है, ताकि इन उद्योगों को वृहद मात्रा में वह आर्थिक और प्राविधिक सहायता दी जा सके जो द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत खादी और ग्रामोद्योग कमीशन अपने कई संगठनों द्वारा उपलब्ध करवा रहा है। यह मानना पड़ेगा कि विकेन्द्रित या लघु उद्योगों के रूप में विकसित होने वाले ग्रामोद्योगों की समस्याएं ऐसी प्राविधिक समस्याएं हैं जो एक स्थिर अवस्था से प्रगतिशील वैज्ञानिक स्तर की ओर बढ़ने के साथ पैदा होती हैं। प्राविधिक विकास के प्रथम चरण में ये समस्याएं ऐसे उपलब्ध वैज्ञानिक और प्राविधिक ज्ञान को ग्रामोद्योगों में इस्तेमाल होने वाले उत्पादन यंत्रों को सुधारने के लिए

प्रयोग में लाने से संबंधित होती हैं जिन्हें अभी तक प्रयोग में न लाया गया हो। प्रयोगात्मक अनुसंधान कार्य के उन परिणामों को, जो वर्तमान काल में राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में उच्च स्तर की गवेषणा के फलस्वरूप प्राप्त हुए हों, अल्पकाल या दीर्घ काल के आधार पर औद्योगिक विकास के लिए प्रयोग में लाना तभी सम्भव है, जब ग्रामोद्योगों का विकास स्तर वर्तमान प्राविधिक स्तर से ऊंचा उठ जाय। राष्ट्रीय नियोजन में गांवों की विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था को विकसित करने के ध्येय को सामने रखते हुए, ग्रामोद्योगों की समस्याओं को केवल प्राविधिक विकास द्वारा ही नहीं, अपितु सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों—अधिकाधिक रोजगार उपलब्ध करना तथा उत्पादक का जीवन यापन का स्तर ऊंचा उठाना—को हल करके हल किया जा सकता है। साधारण उपकरणों द्वारा ग्रामोद्योगों का विकास करने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय गवेषणा कार्य को ग्रामोद्योगों के लिए विकसित किया जा सके, और सरकार की नीति के अन्तर्गत, ग्रामोद्योगों की उन्नति के लिए आविष्कार और व्यापार-स्थापन के साधनों को विकसित किया जाए। ऐसी परिस्थिति में, इस प्रकार के संस्थान की स्थापना करने के लिए, जो केवल ग्रामोद्योगों की समस्याओं की जांच करके उनके प्राविधिक विकास में सहायता दे, और अधिक औचित्य सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है।

जांच करने के लिए समस्याएं

ग्रामोद्योगों में पेश आने वाली समस्याएं आधुनिक और वृहद आकार के बड़े उद्योगों की समस्याओं से सर्वथा भिन्न हैं। लघु स्तर के या विकेन्द्रित उद्योगों में जिनका मुख्य कार्य वृहद रूप से रोजगार में वृद्धि करना है, प्राविधिक विकास को अन्दरूनी तौर पर रोकने वाले कारण निम्नलिखित हैं :

(क) औद्योगिक कार्य-संचालन अपेक्षाकृत कम होना चाहिए;

(ख) पूंजीगत रूप से लगायी गयी प्रति व्यक्ति पूंजी की मात्रा अपेक्षाकृत थोड़ी होनी चाहिए; और

(ग) पूंजी-उत्पादन अनुपात अपेक्षाकृत अधिक होना चाहिए।

इन रुकावटों के फलस्वरूप, प्राविधिक सुधारों को प्रयोग में लाने से उत्पादन में वचत बढ़ाने तथा रोजगार में वृद्धि करने के बीच एक वैमनस्य पैदा हो जाता है। इस प्रकार, बड़े उद्योगों में, जहां ऐसी रुकावटें नहीं होतीं, प्राविधिक विकास की साधारण प्रतीत होने वाली समस्याएं, ग्रामोद्योगों में बहुत ही पेचीदा और कठिन रूप धारण कर लेती हैं। प्राविधिक विकास के लिये उठाया जाने वाला प्रत्येक कदम विकेन्द्रित उद्योगों के रूप में सम्पूर्ण ग्रामोद्योगों की विकास संबंधी समस्याओं द्वारा निश्चित होता है। उपरोक्त विचारों के आधार पर इस समस्या को हल करने के लिए निम्नलिखित साधारण मान्यताएं स्पष्ट होती हैं :

(१) उत्पादन के औजारों और तरीकों में सुधार की समस्याएं स्थिर समस्या-हल की नहीं, अपितु प्रगतिशील विकास से संबंधित हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि इस समय ढूंढ़े गये हल ऐसे होने चाहियें जिनसे भविष्य में और अधिक विकास सम्भव हो। छोटे-मोटे सुधार जिनका अर्थ-व्यवस्था या रोजगारों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, इस शर्त को पूरा नहीं करते।

(२) ये समस्याएं रोजगार की समस्या से पृथक रूप में हल नहीं की जा सकतीं।

(३) समस्याओं का हल इस प्रकार का होना चाहिए कि उत्पादन के स्तर के बीच ही, प्रति व्यक्ति उत्पादकता में वृद्धि हो जिससे उत्पादन में अधिक से अधिक बचत संभव हो सके।

(४) किसी भी हल के परिणामस्वरूप प्राविधिक बेरोजगारी कम से कम होनी चाहिए।

(५) ये हल छोटे स्तर के उत्पादन में प्राविधिक रूप से मुमकिन होने चाहिएं।

(६) ये हल ऐसे होने चाहिएं जिनमें ऊंचे दर्जे के औद्योगिक कार्य संचालन शामिल न हों और जो ग्रामीण उत्पादक की प्राविधिक सूझ-बूझ और क्षमता के लिए सम्भव हों।

ग्रामीण और लघु उद्योगों के संबंध में जांच करने के क्षेत्र में, अन्य बातों के अतिरिक्त, औजारों की समस्या, उत्पादन

की किस्म की समस्या और किस्म का स्तर निर्धारित करने की समस्या शामिल हैं। वर्धा में 'जमनालाल बजाज केन्द्रीय ग्रामोद्योग गवेषणा संस्थान' इन समस्याओं का, उपरोक्त मान्यताओं के अन्तर्गत, हल ढूंढ़ने के महान प्रयत्न में लगा हुआ है।

संगठनात्मक ढांचा

केन्द्रीय गवेषणा संस्थान में भांति-भांति की समस्याओं की जांच करने के लिए यह अनिवार्य है कि गवेषणा सुविधा और प्राविधिक क्षमतापूर्ण व्यक्ति उपलब्ध कराने के कार्य पर काफी संगठनात्मक और नियोजनात्मक सोच-विचार किया जाय। संस्थान का संगठन विशेष कार्य-समस्या-दलीय आधार पर किया गया है। इस प्रकार के संगठन अधिक उचित और लोचशील माने गये हैं, क्योंकि इनमें न केवल जांच के सीमित क्षेत्र में कम खर्च वाली गवेषणा सुविधाओं की आवश्यकता पड़ती है, बल्कि यह समस्या-हल वाले ढांचे के अत्यन्त अनुकूल है। इस तरीके के अन्तर्गत, पहले समस्या के अन्तर्गत आने वाले अन्यान्य क्षेत्रों का निरीक्षण किया जाता है, तदनन्तर जांच करने वालों का दल इस प्रकार चुना जाता है कि प्रत्येक क्षेत्र की समस्या के निरीक्षणों में एक विशेषज्ञ हो। इस प्रकार के विशेष कार्य की किस्म व समस्या-दलों के विशेषज्ञ बहुत ही निपुण होने चाहिएं। उन्हें अपने ज्ञान का उपयोग केवल किताबी ढंग पर न करके वास्तविकता को समझते हुए करना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे समस्या के विशेष रूपों का निरीक्षण करें और उसके हल को किताबी प्राविधिक तरीकों के धरातल से नीचे उतार कर उस रूप में परिणत करें जो उस उद्योग में लगे निचले स्तर के कार्यकर्त्ताओं की समझ में आ सके।

गवेषणा संस्थान के प्रमुख विभाग हैं: प्रायोगिक उत्पादन केन्द्र अथवा जांच के अन्तर्गत प्रत्येक ग्रामोद्योग के लिए केन्द्र; उत्पादन के औजारों का नूमूना बनाने और उन्हें सुधारने के लिए प्रायोगिक इंजीनियरिंग कारखाने, नियंत्रण और निरीक्षण के लिए प्रयोगशालाएं, सूचना सेवाएं और उद्योगों को सहायता देने के विभाग। ये जांचें केवल संस्थान तक ही सीमित नहीं, अपितु खादी और ग्रामोद्योग कमीशन के केन्द्रों के लाभार्थ भी की जाती हैं।

प्रायोगिक उत्पादन केन्द्रों में शामिल किये गये ग्रामोद्योगों में गांव का तेल उद्योग, धान की हाथ-कुटाई, आटा चक्की, कुटीर साबुन उद्योग, ग्राम में मिट्टी के बर्तन बनाने का उद्योग, हाथ का बना कागज उद्योग, तथा ग्राम चमड़ा उद्योग, आदि हैं। निकट भविष्य में इस प्रकार का प्रायोगिक उत्पादन अन्य ग्रामोद्योगों तक विकसित किये जाने का सुझाव है। प्रत्येक उत्पादन यूनिट अपने आप में सम्पूर्ण—अलग स्थान, अपने कर्मचारियों और दक्ष कारीगरों, कच्चे माल, आदि समेत—होता है। उत्पादन तो जांच और प्रयोग के दौरान होता है। हर किस्म का उत्पादन-व्यय संबंधी हिसाब रखा जाता है। प्रायोगिक उत्पादन के दौरान गवेषणा संस्थान के प्राविधिक विशेषज्ञ प्रत्येक उद्योग के कार्य संचालन का अध्ययन करते हैं। प्राविधिक कर्मचारी मार्ग दर्शन और नमूनों और सूचना को ठीक करने के अलावा अन्य कोई काम नहीं करते। इस ढंग से प्रत्येक ग्रामोद्योग की समस्याओं की विभिन्न किस्मों की पूरी तरह जांच करना और उन्हें समझना सम्भव हो जाता है।

प्रायोगिक इंजीनियरिंग कारखानों में मशीन विभाग, धातु-चादर विभाग, वेल्डिंग विभाग, फिटिंग विभाग, लोहे, और फौलाद लोहार विभाग, तरखान विभाग तथा नमूना और डिजाइन कार्यालय होते हैं। काफी मात्रा में सूक्ष्म यंत्र भी उपलब्ध किये जाते हैं। कारखानों का निर्माण छोटे स्तर पर कार्य करने के लिए होता है, न कि बड़ी मात्रा में उत्पादन करने के लिए। गवेषणा संस्थान में इंजीनियरिंग कारखाना रखने का यह लाभ है कि ग्रामोद्योगों के लिए औजारों के सुधार के लिए अभी तक के लोहारों और तरखानों को उपलब्ध सुविधाओं से अधिक सुविधाएं हासिल होना अब संभव हुआ है।

गवेषणा संस्थान की प्रयोगशालाओं का विकास मुख्यतः नियंत्रण और निरीक्षण करने के हेतु किया गया है। ये प्रयोगशालाएं छोटे-छोटे यूनिटों में ठीक किस्म के औजारों के साथ विभक्त हैं।

गवेषणा संस्थान में ग्रामोद्योग संबंधी वैज्ञानिक और प्राविधिक विषयों पर एक काफी बड़ा पुस्तकालय भी बनाया जा रहा है। इसमें लगभग १,५०० पुस्तकें हैं और इसमें करीब ५० वैज्ञानिक और प्राविधिक पत्र-पत्रिकाएं मंगवाई जाती हैं।

इन गवेषणाओं के परिणामों की सूचना, प्राविधिक और गैर-प्राविधिक तरीकों से फैलाने के लिए, निम्न तरीके

सुझाये गये हैं : (१) विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों के लिए प्राविधिक किस्म के अनुसंधानात्मक नोट, (२) ऐसे गवेषणा-पत्र जो गैर-प्राविधिक भाषा में हों और जो औद्यागिक कार्य-प्रणाली को सुधारने के लिए सीधे उपयोग में लाए जा सकें, (३) प्रत्येक ग्रामोद्योग पर अर्द्ध-प्राविधिक भाषा में पूरी जानकारी देने वाली पुस्तिकाएं, (४) कार्य-क्षेत्र में प्रयोग में लाने और इसी प्रकार के और औजार बनाने के लिए सुधारे गये औजारों के नमूने, (५) संस्थान द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों और विकास केंद्रों पर उत्पादन के सुधारे गये औजारों और तरीकों का प्रदर्शन, और (६) खास समस्याओं पर नसीहत और सहायता करना।

यह जानना लाभकर होगा कि गवेषणा से संबंधित दो महत्वपूर्ण बातें इस संस्थान के कार्य से संबद्ध हैं। प्रथम, औद्योगिक समस्याओं पर हाथ में ली जाने वाले योजनाएं अल्पकाल के लिए होती हैं। ग्रामोद्योगों से संबंधित दीर्घकालीन योजनाएं इस संस्थान के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आतीं, क्योंकि उनका संबंध प्रयोगात्मक वैज्ञानिक गवेषणा से है। द्वितीय, इस तरीके के अन्तर्गत काम करने वाला गवेषणा संगठन विकासशील रहेगा, क्योंकि दो अलग-अलग समयों पर कार्य विभिन्न होंगे।

प्राविधिक सेवाएं और प्राविधिक सहायता

यह संस्थान कमीशन के अन्तर्गत काम करने वाले अधिकारियों, संगठनों और संस्थानों तथा सामुदायिक विकास क्षेत्रों एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं के नीचे काम करने वालों को प्राविधिक सेवाएं और सहायता प्रदान करता है। यह ग्रामोद्योगों के विकास के लिए निम्नलिखित तरीकों से सहायता दे सकता है :

(१) **उत्पादन में किस्म निश्चित करना :** यह उत्पादन के वर्तमान तरीकों को सुधारने का सरल तथा तेज ढंग है। गवेषणा संस्थान इन कार्यों के लिए सहायता दे सकता है : (१) ग्रामोद्योगों के सभी प्रकार के उत्पादनों के लिए किस्में निर्धारित करने में विशेष मान्यताएं स्पष्ट करना, (२) उत्पादन केन्द्रों में निरीक्षण करने और स्तर-नियंत्रण के तरीके निकालना, और (३) स्तर-नियंत्रण से पैदा होने वाली अन्य समस्याओं को हल करना।

(२) **ग्रामोद्योगों के संगठन में सुधार लाकर उत्पादन के तरीकों में सुधार करना :** व्यक्तियों, तरीकों और उत्पादन के औजारों में सुधार के सीधे तरीके इस्तेमाल में लाने से ही उत्पादन में वृद्धि संभव है। अव्यवस्थित ग्रामोद्योगों में उत्पादन के साधनों, तरीकों और औजारों के पुनर्गठन से उत्पादकता में आश्चर्यजनक वृद्धि होने की सम्भावना है। इस कार्य में अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी। उत्पादन की बहुत-सी वर्तमान समस्याओं को, औजारों को तब्दील करने के अतिरिक्त, केवल संगठन में परिवर्तन लाकर हल किया जा सकता है। यह एक स्थानीय समस्या होती है और इसका हल भी स्थानीय तौर पर ही हो सकता है। लेकिन यदि किसी प्रकार की कोई कठिनाई पेश पाये तो केन्द्रीय गवेषणा केन्द्र से सहायता ली जा सकती है।

(३) **उत्पादन केन्द्रों में सुधरे औजार और उपकरण जारी करने में सहायता :** सुधरे औजार और उपकरण जारी करने का फैसला करने में इस बात का अनुसंधान और प्रयोग करने की जरूरत पड़ती है कि विकेन्द्रित उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए सबसे उपयुक्त किस्म के औजार क्या होंगे। अनुसंधान संस्थान इस तरह के प्रयोग करती है और तत्संबंधी सूचना प्रकाशित पुस्तकों और सुधरे औजारों के नमूनों द्वारा प्रदान की जाती है। उत्पादन में सुधरे औजार प्रयोग में लाने में भी यह संस्थान सक्रिय सहायता प्रदान करता है।

(४) **सूचना सेवाएं ;** यदि जानकारी की मांग की जाती है तो ग्रामीण उद्योग के संबंध में यह संस्था प्राविधिक सूचनाएं भी प्रदान करती है। इनसे उत्पादन संबंधी तात्कालिक समस्याएं सुलझाई जा सकती हैं। यदि उसके सामने कोई समस्या रखी जाय तो उसकी खोज भी यह संस्था करती है।

आर्थिक टिप्पणियां

सुनील गुहा

हमारी खाद्य-स्थिति

बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल के कुछ हिस्सों में व्यापक रूप से सूखे कीं स्थिति पदा हो जाने से यह बात एक बार पुन: स्पष्ट हो गयी है कि भारतीय कृषि का भविष्य मौसम के अनिश्चित तत्व द्वारा ही अधिकांशत: निर्धारित हो रहा है, और दो-एक साल बेहद अच्छे मानसून के होने पर भी देश को अपनी खाद्य-स्थिति के संबंध में आत्मतुष्ट हर्गिज नहीं होना चाहिए। फसलों को जो क्षति पहुंची है, वह अनुमानत: बहुत ही गहरी है। बिहार की खरीफ फसल को लगभग ४० प्रतिशत, पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा की फसल को लगभग २० प्रतिशत और पूर्वी उत्तर-प्रदेश की फसलों को लगभग १५ प्रतिशत क्षति पहुंचने का अनुमान लगाया गया है। यह आशंका भी प्रगट की जा रही है कि मध्य प्रदेश और उड़ीसा की खरीफ फसल का आधिक्य, जिससे अनेक राज्यों को नियमित रूप से खाद्यान्न प्राप्त होते हैं, वर्तमान सूखे के फलस्वरूप पूर्णतया विनष्ट हो जायगा। एक ओर तो फसलों का भविष्य इतना निराशाजनक है, और दूसरी ओर, केन्द्रीय सरकार के पास इस समय संचित खाद्यान्न की कुल मात्रा ८ लाख टन की है, जबकि व्यापारियों के पास अनुमानत: २ लाख टन अनाज है। इतने खाद्यान्न के बल पर समूचे देश के लिए ३ महीने के भोजन की व्यवस्था की जा सकती है। जाहिर है कि इस हालत में लगभग २० लाख टन अनाज का आयात करना पड़ेगा, जिसका संकेत केन्द्रीय खाद्य मंत्री श्री अजित प्रसाद जैन ने भी दिया है। लेकिन इस संबंध में यह बात विचारणीय है कि यद्यपि अधिकांश गेहूं का आयात संयुक्त राज्य अमरीका से हुए समझौते (पी. एल. ४८०) के अन्तर्गत हो जायगा, फिर भी चावल के आयात पर हमें अपना बहुमूल्य विदेशी विनिमय व्यय करना ही पड़ेगा, जिसकी स्थिति पहले से ही संकटपूर्ण बनी हुई है। इस प्रकार, खाद्यान्न मोर्चे की लड़ाई बहुत ही गहन होने जा रही है, लेकिन जैसा कि प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने कहा है, राष्ट्र को चाहिए कि वह इस लड़ाई को दृढ़ता, साहस और सहयोग से लड़े। अत:, सरकार और जनता दोनों ही पर बड़ी जिम्मेदारियां आ पड़ी हैं। सरकार को ऐसे सभी कदम उठाने चाहिएं, जिससे उत्पादन बढ़ाने में किसानों का नैतिक उत्साह बढ़ाया जा सके और मूल्य-स्तर को उचित सीमाओं के भीतर कायम रखा जा सके। अभाव की स्थिति में, अनाज छिपा कर रखने वाले और सटोरिये अनाज को फिर छिपाना शुरू कर देंगे और स्थिति को और भी ज्यादा खराब करने में योग देंगे। सरकार को चाहिए कि वह ऐसी हालत हर्गिज पैदा न होने दे। जरूरत पड़ने पर अब तक लागू उपाय की अपेक्षा और भी कड़ा मौद्रिक-संकुचन का उपाय लागू किया जा सकता है। साथ ही, यह भी जरूरी है कि अभावग्रस्त इलाकों में अनाज की पर्याप्त पूर्ति की जाय। यद्यपि सरकार की वितरण-व्यवस्था में अनुकूल सक्रियता का संचार हो चुका है, फिर भी उसे विस्तृत करना जरूरी होगा। यह बहुत ही अच्छी बात है कि बिहार को अनेक क्षेत्रों में बांटा जाने वाला है और उपयुक्त स्थानों पर अनाज का संग्रह रखा जायगा। किन्तु, स्थिति का वास्तविक समाधान उत्पादन वृद्धि में ही निहित है। अत:, खड़ी फसल को यथासंभव अधिकतम मात्रा में बचाने और जाड़े की उपज बढ़ाने के लिए सभी जरूरी उपाय अपनाये जाने चाहिएं। हम खास तौर से इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि सूखे वाले क्षेत्रों में लगान या करों के बकाये तथा कृषि संबंधी ऋणों की वसूली तत्काल रोक दी जाय, ताकि किसानों को यह विश्वास हो जाय कि संकट दूर करने में सरकार उनके साथ है। इसके अलावा, किसानों को अधिक सिंचाई की सुविधाएं, सस्ती खाद और उर्वरक, आदि देने की व्यवस्था होनी चाहिए। हमें यह जान कर आश्चर्य होता है कि उड़ीसा के सूखा पीड़ित क्षेत्र के अधिकांश (८२,००,००० एकड़) में सिंचाई का कोई साधन नहीं है, और यह समस्त इलाका पूर्णतया मौसम की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। १९५४ के बाद उड़ीसा में लगभग हर साल सूखा पड़ा है और किसानों को सिंचाई की सुविधा प्रदान करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया है।

दिल्ली में दक्षिण-पूर्व एशियाई ग्रामीण स्वास्थ्य सम्मेलन

दिल्ली में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अभी हाल में आयोजित एक सम्मेलन में दक्षिण-पूर्वी एशिया के ९ देशों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। यह सम्मेलन ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं के सिद्धान्त और उद्देश्य की समीक्षा करने और उनके विस्तार के लिए नये उपाय निकालने के उद्देश्य से बुलाया गया था। सम्मेलन के वाद-विवाद के फलस्वरूप दो प्रमुख विषय सामने आये : (१) यद्यपि चिकित्सा संबंधी सेवा ग्रामीण स्वास्थ्य कार्य का अविच्छिन्न अंग होनी चाहिए, फिर भी विशेष जोर निरोधात्मक उपायों तथा स्वास्थ्य संरक्षण पर ही देना चाहिए। (२) यदि जनसंख्या नियंत्रण के लिए समयानुकूल और प्रभावकारी उपाय भी नहीं अपनाये जायेंगे, तो इस क्षेत्र की ग्रामीण स्वास्थ्य योजनाएं छिन्न-भिन्न होकर रहेंगी। सम्मेलन में उद्घाटन भाषण करते हुए केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री डी. पी. करमरकर ने इन दोनों ही पक्षों पर विशेष जोर दिया। उन्होंने कर्मचारियों की समस्या की ओर खास तौर पर ध्यान आकृष्ट किया और कहा कि पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित कर्मचारी तैयार करना और स्पष्ट रूप से निरोधात्मक तथा ग्रामीण पुट के साथ प्रशिक्षण कार्यक्रम का पुनर्नवीकरण करना—ये ही समस्या के दो पहलू हैं। राकफेलर फाउण्डेशन के डाइरेक्टर ले राय अलेन ने भी लगभग इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये। उन्होंने दक्षिण पूर्व एशिया के नर्सिंग स्कूलों और मेडिकल कालेजों की वर्तमान प्रशिक्षण प्रणाली की आलोचना की और कहा कि इस समय इनमें प्रशिक्षण कार्य "एकदम कृत्रिम वातावरण" में हो रहा है। डा. अलेन ने इस बात पर जोर दिया कि चूंकि ८० प्रतिशत छात्रों को गांवों में जाना है और ग्रामीण वातावरण में कार्य करना है, इसलिये उद्देश्यों पर पुनर्विचार करना जरूरी है, ताकि इस क्षेत्र की स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों के मुताबिक एक वास्तविक प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार किया जा सके। स्वास्थ्य सेवाओं के डाइरेक्टर जनरल लेफ्टिनेंट कर्नल लक्ष्मणन ने प्रारंभिक बैठक में भाषण करते हुए कहा कि भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम का उद्देश्य स्वास्थ्य समस्या को तीन सोपानों में हल करना है। बुनियाद तो राष्ट्रीय विस्तार सेवा के स्तर पर तैयार की जाती है, जबकि द्वितीय या गहन विकास की अवस्था में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना की जाती है। ले. कर्नल लक्ष्मणन् ने इस बात पर जोर दिया कि प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र भारत के स्वास्थ्य आयोजन का मूलाधार है और इसके जरिये समन्वित ढंग पर निरोधात्मक तथा रोग ठीक करने, दोनों तरह की स्वास्थ्य सेवाएं प्रस्तुत की जाती हैं। अंतिम सोपान सामान्यीकरण का है, जबकि राज्य सरकारें इन स्वास्थ्य सेवाओं की व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने जिम्मे ले लेंगी। यद्यपि भारतीय योजना उस योजना से बहुत भिन्न नहीं है जिसका सुझाव सम्मेलन ने दिया है, फिर भी उसे पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के लिए स्वास्थ्य कर्मचारियों को बड़ी संख्या में प्रशिक्षित करना बेहद जरूरी है। हमें आशा है कि सरकार ग्रामीण स्वास्थ्य समस्या के इस पहलू पर गंभीरता से ध्यान देगी।

श्री करमरकर ने जनसंख्या-नियंत्रण के संबंध में जो विचार व्यक्त किये, वे भारत के संबंध में बहुत अधिक संगत प्रतीत होते हैं। भारत में जनसंख्या वृद्धि की क्षमता अधिक होने के दो कारण हैं : पहला यह कि यहां आधारभूत जनसंख्या बहुत ही अधिक है। दूसरे, यहां जन्म दर में भी अनुपात से ह्रास हुए बगैर मृत्यु दर में ह्रास का होना अधिक सम्भाव्य है। प्रो. ऐंसली कोल और प्रो. एग्गर हूवर ने 'जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास' नामक हाल में लिखी गयी अपनी पुस्तिका में अनुमान लगाया है कि अगले २५ वर्षों के भीतर भारत की जनसंख्या में ६३ प्रतिशत वृद्धि होगी, जबकि योजना आयोग के अनुमान के अनुसार यह वृद्धि ३४ प्रतिशत होगी। उपर्युक्त प्रोफेसरों ने जिन मान्यताओं पर अपना अनुमान आधारित किया है, वे निश्चय ही योजना आयोग की मान्यताओं से भिन्न हैं। फिर भी, इससे सम्भाव्य प्रवृत्ति का संकेत मिलता है और इस बात की आवश्यकता पर रोशनी पड़ती है कि हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि पर तेजी के साथ और प्रभावकारी नियंत्रण लगना चाहिए। अभी परिवार आयोजन एक शहरी आन्दोलन तक ही सीमित रहा है और यद्यपि द्वितीय योजना में २ हजार ग्रामीण क्लिनिक खोलने की व्यवस्था की गयी है, फिर भी अधिक उन्नति नहीं हो सकी है। फिर भी, हम कहना चाहेंगे कि गांव के रूढ़िवादी सीधे सादे लोगों को जनसंख्या-नियंत्रण के बनावटी तरीकों के औचित्य की जानकारी कराना आसान नहीं होगा। हमारी राय में,

यदि भारतीय ग्रामों में पर्याप्त शिक्षा और प्रचार हो तो यहां का परम्परागत आत्मसंयम का तरीका इस दिशा में अधिक लाभदायक साबित होगा। गांवों में कृत्रिम उपायों का प्रयोग तब तक नहीं करना चाहिए, जब तक कि इसके पक्ष में जनमत तैयार न कर लिया जाय।

भूमि-सुधारों के लिए निर्देशन समिति

योजना आयोग की अनुसंधान कार्यक्रम समिति की स्थायी समिति ने हाल में तीन सदस्यों की एक निर्देशन समिति नियुक्त की है जिस पर राज्यों में भूमि-सुधारों की प्रगति और प्रभाव की जांच संबंधी समान ढंग निकालने और उपयुक्त प्रविधि का निर्माण करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी है। इस समिति की नियुक्ति विशेष रूप से इसलिए भी वांच्छनीय है कि अभी तक राज्य सरकारें भूमि-सुधार की प्रगति तेज करने में असफल रही हैं (हालांकि द्वितीय योजना में भूमि-नीति के संबंध में काफी लोचशीलता और सहूलियत की व्यवस्था की गयी है),और इस असफलता के कारणों की जांच करना जरूरी है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में यह बात साफ-साफ निर्दिष्ट है कि यद्यपि निर्देशन स्पष्ट होगा, फिर भी प्रत्येक राज्य की स्थानीय दशाओं के अनुसार ही भूमि-सुधार कार्यक्रम के रूप और प्रगति को निश्चित करना पड़ेगा। प्रत्येक राज्य को अपनी सामाजिक दशाओं तथा अन्य न्यायसंगत वार्ता को ध्यान में रख कर अपनी स्वेच्छा से यह तय करने की भी अनुमति दी गयी है कि भूमि कर अधिकतम व्यक्तिगत आराजी पर लागू होगी या पारिवारिक आराजी पर। दुर्भाग्यवश अभी तक अधिकांश राज्य मध्यस्थों के उन्मूलन को छोड़कर अन्यथा भूमि-सुधार की दिशा में नाकामयाव रहे हैं। बहुत बड़े पैमाने पर काश्तकारों की बेदखली हुई है, लेकिन बहुत ही कम राज्यों ने काश्तकारों को पुनः आराजियां वापस करने के लिए सक्रिय कदम उठाया है। न ही राज्य सरकारों ने अभी तक व्यक्तिगत खेती की ठीक ठीक परिभाषा व्यक्त की है, ताकि बड़े पैमाने पर बेदखली को रोका जा सके, आराजियों की अधिकतम सीमा निर्धारित की जा सके, लगान नियमित हो सके और सहकारी खेती को प्रोत्साहन मिल सके। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पिछली बैठक में प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने भूमि-सुधारों की धीमी प्रगति पर गहरी चिन्ता व्यक्त की थी। हम आशा करते हैं कि समिति तत्काल उन कार्यों में लग जायगी जिनकी जिम्मेदारी उस पर सौंपी गयी है, राज्य सरकारों की तत्संबंधी कठिनाइयों की ठीक-ठीक जांच करेगी और उपयुक्त समाधान का सुझाव देगी। भूमि-सुधार की समस्या के संबंध में अब और अधिक विलम्ब नहीं किया जा सकता, क्योंकि इन सुधारों के पूरे हो जाने पर ही किसानों को कृषि-उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

औद्योगिक सामंजस्य के लिए आह्वान

इस बात पर बार-बार जोर दिया गया है कि तेज और अनवरत औद्योगिक विकास के लिए औद्योगिक शान्ति को कायम रखना वेहद जरूरी है। दुर्भाग्यवश, पिछले कुछ समय के भीतर प्रायः धीमे चलने की नीति के अनुशीलन, तालाबन्दी तथा बिना सूचना दिये हड़ताल करने के कारण देश की समस्त औद्योगिक व्यवस्था विच्छिन्न हो गयी है जिसके फलस्वरूप अत्यधिक राष्ट्रीय संपत्ति को क्षति उठानी पड़ी है। न तो श्रम संबंधी फैसलों को कार्यान्वित करने के लिए अकेले मालिक आरोप के भागी हैं और न ही यह सही है कि झगड़ों के लिए मजदूर जिम्मेदार नहीं। दरअसल, मालिक और मजदूर दोनों ही औद्योगिक शांति और सामंजस्य भंग करने या कायम रखने के लिए बराबर जिम्मेदार हैं। अभी हाल में नयी दिल्ली में राज्य-श्रम मंत्रियों का जो सम्मेलन हुआ है, उसने यह निर्णय किया है कि फैसले कार्यान्वित न करने पर कड़ी से कड़ी सजा दी जानी चाहिए, और वेतन बोर्डों के सुझाव नियमतः लागू होने चाहिएं। इस आशंका से कि मालिक लोग इस फैसले का गलत अर्थ न लगाने लगें और निर्णयों का लागू करना सिर्फ अपनी जिम्मेदारी न समझने लगें, केन्द्रीय श्रम और आयोजन मंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने यह बात स्पष्ट कर दी कि वेतन बोर्डों के निर्णयों का पालन करना मालिक और मजदूर दोनों की ही जिम्मेदारी होगी। किन्तु, स्थायी श्रम समिति के १६वें अधिवेशन में भाषण करते हुए श्री नन्दा ने मालिकों और मजदूरों से अनुरोध किया कि वे निर्णयों और समझौतों को निश्चित रूप से कार्यान्वित करने के उद्देश्य से स्वयं अपने दंड और नियम को बनालें। उन्होंने कहा कि इस तरह के दंड औद्योगिक शांति के लिए वैधानिक दंडों की अपेक्षा अधिक ताकतवर साबित होंगे। श्रम मंत्री ने सचमुच इस बात पर जोर देने

की कोशिश की कि यदि मालिक और मजदूर दोनों एक दूसरे की कठिनाइयों पर सहानुभूति के साथ विचार करें, यदि प्रभावित पक्ष जिसमें सरकार भी शामिल है, शांति और समझौते के लिए उत्सुक हों, तो मजदूरों को प्रभावित करने वाले अधिकांश झगड़े स्वैच्छिक आधार पर सुलझाये जा सकते हैं। फिर भी, हम इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि हाल में झगड़े और हड़तालें ऐसे क्षेत्रों में हुई हैं, जो औद्योगिक झगड़ा अधिनियम के प्रभाव क्षेत्र के बाहर हैं, जैसे सरकारी उपक्रमों जैसे रेलवे, डाक और तार, आदि में। इसलिए, यह जरूरी है कि इन उपक्रमों को भी औद्योगिक झगड़ा अधिनियम के प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत ला दिया जाय और इसके लिए अधिनियम में जो संशोधन करने हों, उन्हें कर दिया जाय। हम इस बात पर भी जोर देना चाहेंगे कि जब तक मजदूरियों को उत्पादकता से संबद्ध नहीं किया जायेगा, और जब तक इसके लिए कोई कानून नहीं बना दिया जायेगा, तब तक भारतीय अर्थ-व्यवस्था में निम्न उत्पादन का दोष कायम रहेगा। हम स्थायी श्रम समिति द्वारा स्वीकृत उद्योग संबंधी अनुशासन नियमों का स्वागत करते हैं। इन नियमों का निर्माण भारतीय श्रम सम्मेलन की त्रिपक्षीय उपसमिति ने अपने पिछले अधिवेशन में किया था। इसमें यह व्यवस्था की गयी है कि मालिक और मजदूर पर यह नियम अनिवार्य रूप से लागू होगा कि वे अपने बीच के सभी झगड़ों को पारस्परिक लिखा पढ़ी, समझौते और स्वैच्छिक मध्यस्थता द्वारा तय करने की कोशिश करेंगे और धीमे चलने की नीति, तालाबन्दी और बिना सूचना दिये हड़ताल करने से बचेंगे भी। हमें खुशी है कि मालिक और मजदूर संगठनों के प्रतिनिधियों ने अपने-अपने संगठनों द्वारा दिसम्बर १९५७ के अन्त तक अनुशासन नियम को स्वीकार करा लेना स्वीकार कर लिया है। यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि यह नियम सार्वजनिक और निजी दोनों ही क्षेत्रों के प्रयोगों पर समान रूप से लागू होगा। इस नियम द्वारा देश के लिए दृढ औद्योगिक विकास का युग प्रारम्भ होगा, किन्तु इसके लिए शर्त यही है कि मजदूर और मालिक इसकी भावना को स्वीकार करें और इसके लिए आवश्यक सद्भावना और पारस्परिक सहयोग का प्रदर्शन करें।

बिहार में भूमिहीन परिवारों के पुनर्वास की योजना

भारत में खेती की उत्पादकता बढ़ाने की दृष्टि से भूमि स्वामित्व के स्वरूप को तब्दील करने का महत्त्व इसी बात से समझा जा सकता है कि भारत में केवल ५ प्रतिशत खेतिहरों के कब्जे में कुल कृषिगत भूमि का ३५ प्रतिशत है, जबकि ३६ प्रतिशत खेतिहरों के पास कुल क्षेत्रफल का केवल १५ प्रतिशत है। १९ प्रतिशत ऐसे खेतिहर हैं जिनके पास तनिक भी जमीन नहीं है। इस पृष्ठभूमि के संदर्भ में बिहार सरकार की योजना विशेष रूप से प्रशंसनीय है, जिसके अन्तर्गत २० लाख रुपये की लागत से केन्द्रीय ट्रैक्टर संगठन द्वारा ऊसर भूमि खेती लायक बना कर छोटा नागपुर के पठार पर ६०० भूमिहीन किसान परिवारों को वहां बसाया जायेगा। इन ६०० परिवारों को दो समूहों में आदर्श गांव बना कर ३००० एकड़ नयी भूमि पर बसाया जायेगा। यद्यपि जिस जमीन पर बिहार सरकार इन भूमिहीन परिवारों को बसाने जा रही है, वह ऐसी नहीं है जो आराजियों पर अधिकतम सीमा लागू करने की वजह से आधिक्य के रूप में प्राप्त हुई हो, फिर भी यदि आराजियों की अधिकतम सीमा लागू करने में देर हो तो, अन्य राज्यों के लिए बिहार सरकार का यह कदम अनुकरणीय है। वे भी बंजर जमीनों को खेती लायक बना कर उन पर भूमिहीन परिवारों को बसा सकते हैं। फिर भी, हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि कुछ राज्यों में इस तरह की बंजर जमीन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होगी। इसलिए, आराजियों पर अधिकतम सीमा लागू करने की भी अविलम्ब कोशिश करनी चाहिए, ताकि भूमिहीनों को बसाने के लिए आवश्यक अतिरिक्त भूमि प्राप्त हो जाय।

मद्रास के ग्रामीण उद्योग

मद्रास सरकार शीघ्र ही राज्य के ९ सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंडों में ग्रामीण औद्योगीकरण कार्यक्रम लागू करने वाली है। इस योजना के अन्तर्गत,५ गांवों या १५,००० जनसंख्या के लिए एक प्रतिनिधि ग्रामीण वर्ग समिति ऐसे ग्रामीण उद्योगों की योजना तैयार करेगी, जो तत्संबंधी क्षेत्र के उपयुक्त हो और यह योजना सरकार के पास स्वीकृत के लिए भेजेगी। सरकार इस कार्यक्रम को लागू करने में जो योगदान करेगी वह यह है कि वह प्रत्येक वर्ग समिति के लिए १५,००० वार्षिक अनुदान देगी। यह विचार निश्चय ही दिलचस्प है और इसकी क्रियाशीलता की ओर उत्सुकता से देखा जायगा। लेकिन बहुत कुछ सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि इन योजनाओं में स्थानीय जनता कितना सहयोग प्रदान करती है। इस संबंध में योजना तैयार करते समय वर्ग समिति को चाहिए कि वह स्थानीय साधनों का अध्ययन करे और किसी खास शिल्प में स्थानीयता की रुझान पर ध्यान दे। हम महसूस करते हैं कि मद्रास की इस योजना से ग्रामीण बेरोजगारी दूर **करने और देशी उद्योगों को प्रोत्साहन देने में बड़ी सहायता मिलेगी।**

आर्थिक-समाचार-संकलन

भारतीय

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की सफलताएं

सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंडों में जो कार्य हुए हैं, उनकी तुलना देश के बाकी भाग से करने का प्रयत्न किया गया है। यह तुलना कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, संचार, आदि विकास-कार्यक्रमों के संबंध में की गयी है। तुलना से पता चलता है कि सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंडों में देश के अन्य भागों से अधिक काम हुआ है। देश के अन्य भागों में जितना काम हुआ, उसका कितने प्रतिशत काम इन खंडों में हुआ, यह नीचे की तालिका दिया गया है :

	कार्य (प्रतिशत)
कृषि :	
(क) नाइट्रोजन और फास्फेट युक्त उर्वरक की खपत	२५९
(ख) बंजर जमीन का सुधार	२९७
(ग) सिंचाई के छोटे साधन	१२२
सहकारिता :	
(क) कृषि-ऋण-संस्थाएं	६६०
(ख) कृषि सहकारी संस्थाओं की सदस्यता	४०५
शिक्षा :	
(क) गांवों में आरम्भिक स्कूल	१४६
(ख) गांवों में छोटे बुनियादी स्कूल	४७०
(ग) राष्ट्रीय तथा सहायक सैन्य शिक्षार्थी दलों के शिविरों में भाग लेने वाले शिक्षार्थी	२८५
स्वास्थ्य :	
(क) अस्पताल तथा दवाखाने	३९४
(ख) जच्चा-बच्चा तथा बाल-कल्याण केन्द्र	२७१
संचार :	
सड़कें	७५९
वैध संस्थाएं :	
पंचायतें	२११

प्रथम योजना की अवधि में सिंचाई की प्रगति

इस समय देश में इस बात पर काफी वाद-विवाद चल रहा है कि सिंचाई योजनाओं के पूरी तरह मुकम्मल होने और उन योजनाओं द्वारा प्राप्य सिंचाई सुविधाओं को उपयोग में लाने के बीच समय का इतना अंतर क्यों रह गया है और कि सिंचाई सुविधाओं को ठीक समय पर इस्तेमाल में न लाये जाने के क्या कारण हैं। इन कारणों में मुख्य हैं : नहर निर्माण में विलम्ब, प्रशिक्षित कर्मचारियों व मशीनों की न्यूनता, राज्यों में सिंचाई विभागों का सुसंगठित न होना, अनुपजाऊ भूमि को शीघ्र खेती-योग्य न बनाया जाना, और कृषकों को खेती संबंधी आधुनिक ज्ञान न होना।

देश भर में प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बड़ी और छोटी सिंचाई योजनाओं का लक्ष्य ८५ लाख एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधा प्रदान करना था। इसके मुकाबले में, योजना काल के पश्चात् केवल ६३ लाख एकड़ भूमि तक यह सुविधाएं पहुंचाई जा सकीं, जबकि वास्तव में कुल ४० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई-लाभ उठाया गया।

निम्नलिखित तालिका में सिंचाई संबंधी निर्धारित किये गये लक्ष्य तथा प्राप्त किये गये लक्ष्य बताये गये हैं :

(लाख एकड़ में)

राज्य	लक्ष्य	वास्तविक सिंचाई
मद्रास	४.३५	२.२१
मध्यप्रदेश	१.१४	०.१
पंजाब	६.६६	४.६६
सौराष्ट्र	१.२९७	०.५६
उत्तर प्रदेश	१६.७५	७.४
पश्चिमी बंगाल	३.५०	२.२२

पश्चिमी पाकिस्तान के विस्थापितों का पुनस्संस्थापन

पूर्व और पश्चिमी पाकिस्तान के विस्थापितों को फिर से बसाने और उनकी सहायता करने के मद में अब तक

३०० करोड़ से भी अधिक रु० खर्च हो चुका है।

पुनस्संस्थापन मंत्रालय की आवास योजना के अन्तर्गत देश भर में लगभग ६० करोड़ रुपये खर्च हो चुके हैं। सिर्फ पश्चिम पाकिस्तान के विस्थापितों के लिये लगभग २ लाख मकान बनाये गये हैं। मकान बनाने का काम अब खत्म हो रहा है और आशा है कि दिल्ली, बम्बई और अन्य राज्यों का बाकी काम लगभग साल भर के भीतर खतम हो जाएगा। पश्चिम पाकिस्तान के विस्थापितों की शिक्षा पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से ७ करोड़ रु० से भी अधिक खर्च हुआ। पुनस्संस्थापन मंत्रालय की शिक्षा योजनाओं से विस्थापितों के ११ लाख बच्चों को शिक्षा मिली। जो शिक्षा या सांस्कृतिक संस्थाएं बन्द हो चुकी थीं उन्हें फिर उसे चालू करने के लिए १ करोड़ ५० लाख रु० की आर्थिक सहायता दी गयी। पुनस्संस्थापन मंत्रालय यह सहायता साल दो साल और देगा। इसके बाद यह काम शिक्षा मंत्रालय को सौंप दिया जाएगा। ८० हजार विस्थापितों को प्रशिक्षण देने पर पुनस्संस्थापन मंत्रालय ने अब तक लगभग २ करोड़ ५७ लाख रु० खर्च किये हैं। पश्चिम पाकिस्तान के और ६ हजार विस्थापितों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है। विचार है कि व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र श्रम मंत्रालय को सौंप दिये जाएंगे।

व्यापारिक बेड़े के कर्मचारियों का प्रशिक्षण

भारत सरकार ने १९४८ में विशेषज्ञों की जो विशेष समिति नियुक्त की थी, उसकी सलाह से १९४९ में डेक के अधिकारियों को प्रशिक्षण पोत 'डफरिन' में नाविक बनने की शिक्षा पद्धति का पुनर्गठन किया। जहाज इंजीनियरी प्रशिक्षण निदेशालय के अन्तर्गत इंजीनियरी के लिए अलग से प्रशिक्षण संस्था खोली गयी। शिक्षा पद्धति के पुनर्गठन से पहले डफरिन में हर साल २५ गोदी अधिकारियों तथा २५ इंजीनियरों को काम सिखाया जाता था किन्तु अब वहां हर साल दोनों संस्थाओं में ५०-५० कर्मचारियों को काम सिखाया जाता है। नाविक बनने के बाद के उच्च प्राविधिक प्रशिक्षण के लिए बम्बई में १९४९ में एक नाविक तथा इंजीनियरी कालेज खोला गया। इस कालेज में जहाजरानी तथा इंजीनियरी दोनों की शिक्षा दी जाती है। दिसम्बर १९५६ के अन्त तक, ३,५०० से अधिक व्यापारिक बेड़े के अधिकारियों ने इस कालेज में शिक्षा पायी। व्यापारिक बेड़े के नाविकों को शिक्षा देने के लिए १९५० में प्रशिक्षण पोत "भाद्र" (कलकत्ता) तथा १९५१ में प्रशिक्षण पोत "मेखला" (विशाखापत्तनम) की स्थापना की गयी। ऐसी ही एक तीसरी संस्था प्रशिक्षण पोत "नव-लक्ष्मी" (नव लाख्वी) १९५५ में खोली गयी। इन तीनों संस्थाओं में हर साल १,६८० नाविक शिक्षा पाते हैं।

उत्तर प्रदेश राज्य में जापानी ढंग से धान की खेती

अर्थ एवं संख्या विभाग के अगस्त १९५७ की प्रगति समीक्षा के अनुसार, उत्तर प्रदेश में राज्य में इस माह एक लाख पन्द्रह हजार चौंतीस एकड़ भूमि पर जापानी पद्धति द्वारा धान की खेती की गयी। इस प्रकार इस पद्धति से की जाने वाली खेती का रकबा अब बढ़कर एक लाख अठाहत्तर हजार आठ सौ बारह एकड हो गया है जो वार्षिक लक्ष्य का लगभग अड़तालिस प्रतिशत है। जुलाई मास में यह लक्ष्य का चौंतीस प्रतिशत ही था। आलोच्य अवधि में दस हजार नौ सौ अट्ठासी मन हरी खाद भी कृषकों में वितरित की गयी।

दस्तकारी के विकास के लिए १८ नये केन्द्र

अखिल भारतीय दस्तकारी मण्डल ने भारत की पुरानी दस्तकारियों का नये ढंग से विकास करने के लिए छः प्रशिक्षण केन्द्र, तीन प्रशिक्षण तथा उत्पादन केन्द्र, सात खोज तथा परीक्षण केन्द्र और दो उत्पादन केन्द्र खोले हैं। छः और केन्द्र चालू वित्तीय वर्ष में खोले जाएंगे। किस क्षेत्र में कौन-सी दस्तकारी पनप सकती है, इस बात को ध्यान में रखकर ही ये केन्द्र खोले गए हैं।

१९५२ में स्थापित अखिल भारतीय दस्तकारी मंडल सरकार को दस्कारी के सम्बन्ध में सलाह देता है। राज्य सरकारों की दस्तकारी विकास योजनाओं पर मंडल विचार

करता है। और उन्हें वित्तीय सहायता देने के लिए केन्द्र से सिफारिश करता है। इसके अलावा मंडल भारतीय दस्तकारियों के प्रचार के लिए देश-विदेश में प्रदर्शनियों का आयोजन करता है और दस्कारी की वस्तुओं को बेचने की व्यवस्था भी करता है।

दूसरी योजना में दस्तकारी के विकास के लिए ९ करोड़ रु० की व्यवस्था है। दस्कारी-विकास-योजनाओं का उद्देश्य जरूरी चीजों का उत्पादन बढ़ाना और अधिक से अधिक लोगों को काम दिलाना है। जो लोग पहले से ही विभिन्न दस्तकारियों में लगे हैं, उन्हें सुविधाएं देने के अलावा दूसरी योजना में ३० हजार और लोगों को काम दिलाया जायेगा। चालू वित्तीय वर्ष में दस्तकारी के विकास पर १ करोड़ रुपया खर्च होने का अनुमान है। इसमें से ६६ लाख रुपया राज्य सरकारों तथा दस्तकारी मंडल को अनुदान के रूप में और ३४ लाख रु० कर्ज के रूप में दिया जाएगा।

दस्तकारी की वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने के लिए मण्डल देश भर में बिक्री-केन्द्र खोलेगा। कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, दिल्ली, बंगलौर और लखनऊ में जो बिक्री-केन्द्र चल रहे हैं उनके काम की मण्डल जांच करेगा और उन्हें सहायता देगा, ताकि वे अपने काम को और बढ़ा सकें। मंडल की योजना इस वर्ष ७५ नये बिक्री-केन्द्र खोलने की है। ये केन्द्र दस्कारों से वस्तुएं खरीद कर बेचेंगे। १९५६-५७ में विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मेलों में भारतीय दस्तकारियों का प्रदर्शन किया गया। कलकत्ता, बम्बई, बंगलौर और दिल्ली में चार क्षेत्रीय डिजाइन-केन्द्र खोले गये हैं, जो दस्तकारों को नये-नये डिजाइन देते हैं। श्रीनगर और लखनऊ में भी ऐसे केन्द्र खोले जाएंगे।

दिल्ली में रोजगार की स्थिति

जून १९५७ में समाप्त तिमाही में दिल्ली में रोजगार की स्थिति सुधरी। १८२१ गैर-सरकारी मालिकों से जो विवरण प्राप्त हुआ है, उससे पता चलता है कि इस तिमाही में रोजगार पाने वालों की संख्या ८४,३०२ से बढ़कर ८५,३१७ हो गयी। यह वृद्धि सूती मिलों, चीनी मिट्टी के बर्तनों और बाइसिकलों, आदि के कारखानों में हुई। रासायनिक वस्तुओं, मोजा-बनियान, लकड़ी के सामान के कारखानों तथा सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के छापेखानों में रोजगार कुछ नीचे गिरा।

सरकारी क्षेत्र में ५०७ संस्थाओं से जो विवरण प्राप्त हुआ है उससे पता चलता है कि उक्त तिमाही में रोजगार पाने वालों की संख्या १,६७,७८२ से बढ़कर १,७१,२९० हो गयी। यह वृद्धि रेलों, डाक-तार तथा टेलिफोन विभागों में और दिल्ली प्रशासन के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य तथा स्थानीय निकायों में हुई।

दिल्ली के कामदिलाऊ दफ्तर से पता चलता है कि काम चाहने वाले लोगों की संख्या घट रही है। जून के अंत में वहां ४२,९२१ लोगों के नाम दर्ज थे, जबकि मार्च में ४५,०६८ लोगों के थे। इनमें शिक्षित बेकारों की संख्या अधिक थी। इनमें से लगभग ४० प्रतिशत बेकार दफ्तरों में कलर्क बनना चाहते थे और २५ प्रतिशत दफ्तरों में अन्य नौकरियां चाहते थे। उक्त तिमाही में शिल्पिक तथा अन्य व्यावसायिक स्थानों के लिए योग्य व्यक्तियों की कमी रही। उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि दिल्ली में कुशल कारिगरों की मांग बढ़ रही है और उनकी संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है।

चीनी का उत्पादन,

चालू मौसम में १५ अक्तूबर १९५७ तक देश में चीनी का उत्पादन २० लाख २५ हजार टन हुआ, जबकि पिछले वर्ष इसी मौसम में वह १८ लाख ५९ हजार टन था। चीनी की निकासी कुल २० लाख २४ हजार टन हुई जिसमें निर्यात की गयी चीनी भी शामिल है। १५ अक्तूबर, १९५७ को कारखानों में १५ लाख ४४ हजार टन चीनी शेष थी।

पिछड़े क्षेत्रों में जच्चा-बच्चा कल्याण केन्द्र

पिछले क्षेत्रों में जच्चाबच्चा कल्याण केन्द्र खोलने के लिए भारत सरकार ने बिहार और उड़ीसा की सरकारों को क्रमश: ५८,५७५ रु० और २९,३१६ रु० की सहायता देना मंजूर किया है।

बिहार के पिछड़े क्षेत्रों में १९५६ में १० जच्चाबच्चा कल्याण केन्द्र खोले गये थे। इन केन्द्रों के आवर्तक खर्च के लिए उक्त सहायता दी गयी है। उड़ीसा की सरकार को जो सहायता दी गयी है, वह पांच जच्चाबच्चा कल्याण केन्द्रों के लिए है। ये केन्द्र १९५५ में खोले गए थे।

विदेशी

१९५६ में पटसन की वस्तुओं का विश्व-व्यापार

सन् १९५६ में पटसन की बनी वस्तुओं के विश्व-व्यापार में, निर्यातक के रूप में पाकिस्तान का महत्व बढ़ना, बर्मा, थाईलैंड, फिलीपाइन्स, चीन तथा मध्य-पूर्व के कुछ देशों के उत्पादन में वृद्धि, और यूरोप में पटसन उद्योग में नयी मशीनें लगाया जाना, प्रमुख हैं।

यद्यपि अमरीका ने १९५६ में बर्लप का कुछ अधिक आयात किया, तथापि उसके भारत से आयात में कमी हुई, और पाकिस्तान तथा किसी हद तक जापान से आयात में वृद्धि हुई। मगर, फिर भी, १९५६ की अंतिम तिमाही में भारत के निर्यात में फिर से वृद्धि होना प्रारंभ हो गया था।

पाकिस्तान में भारतीय बैंक

भारत विभाजन के बाद पाकिस्तान में स्थित भारतीय बैंकों की संख्या व उनके व्यापार में निरन्तर कमी होती रही है। यह कमी १९५५ में कुछ रुकी थी, किन्तु १९५६ में फिर वही स्थिति उत्पन्न हो गयी। १९५६ में राज्य बैंक की तीन ब्रांचों और एक अननुसूचित बैंक के एक कार्यालय को बन्द किये जाने के फलस्वरूप पाकिस्तान में भारतीय बैंकों की कुल संख्या ६२ रह गयी। तथापि कुल लेनदारियों या देनदारियों की मात्रा में थोड़ी ही कमी आई। यह मात्रा आलोच्य काल में, १२ लाख रुपये कम होकर ३३.४ करोड़ रुपये रह गयी, जबकि पिछले वर्ष इसमें १०.६ करोड़ रुपये की कमी हुई थी।

यद्यपि पाकिस्तान में बैंकों में जमा किये गये धन की वृद्धि हुई, तथापि पाकिस्तान में भारतीय बैंकों के जमा-खातों में कम रकम जमा की गयी। इस जमा में ३ करोड़ रुपये की कमी हुई। १९५५ में इस जमा धन में १०.३ करोड़ रुपये की कमी हुई थी।

पोलैण्ड का जहाज-निर्माण उद्योग

हाल में प्रकाशित किये गये आंकड़ों के अनुसार, पोलैंड के व्यापारी समुद्री बेड़े पर १९५७ के प्रथमार्ध में, १,४०५,००० टन माल ढोया गया। यह संख्या पिछले वर्ष की इसी अवधि की संख्या से २३ प्रतिशत अधिक है। पोलैंड की बन्दरगाहों से बाहर जाने वाले माल तथा पोलैंड में आयात होने वाले सामान में ३३१,००० टन कोयला, २३८,००० टन धातुएं, ५९,००० टन तरल पदार्थ, ३,००० टन लकड़ी और ५३३,००० टन विभिन्न सामान था।

चीन में यांगसी नदी पर पुल निर्मित

वूहान (चीन) में यांगसी नदी पर एक बहुत बड़े पुल का निर्माण-कार्य सम्पूर्ण हो चुका है और औपचारिक रूप से १५ अक्तूबर १९५७ को इसका उद्घाटन किया गया। पुल बनाने के कार्यक्रम में यह कार्य शामिल थे : यांगसी नदी पर पुल जिसमें १,६७० मीटर लम्बी रेल लाइन की पटरी तथा अन्य सड़कें, हान नदी पर ३०० मीटर लम्बा रेल का पुल, हान नदी पर ३२२ मीटर लम्बा सड़क पुल, ४८० मीटर की कुल लम्बाई वाले १० छोटे मिट्टी के पुल, रेल-लाइन मिलाने के लिए ४.८ किलोमीटर लम्बी लाइनें, और आपस में सड़कें मिलाने के लिये ४.५ किलोमीटर सड़क बनाना। यांगसी पुल की २० मंजिलें हैं।

इस पुल-निर्माण योजना पर व्यय का प्रारंभिक अनुमान १७२,३२०,००० यूआन था, किन्तु वास्तव में केवल १३८,४००,००० यूआन ही, अर्थात् २० प्रतिशत कम, खर्च हुए। इस निर्माण-कार्य के दौरान २,४१२ साधारण श्रमिकों को दक्ष श्रमिक बनने का प्रशिक्षण दिया गया। ९० कारीगरों और प्रशिक्षकों को इंजीनियरी का प्रशिक्षण दिया गया। इस कार्य के दौरान ४,४६१ श्रमिकों और ८०१ इंजीनियरों ने भी अपना टैक्नीकल स्तर ऊंचा उठाया।

भारत से जापान को कोयले का निर्यात

एक लम्बे अर्से के पश्चात् जापान ने फिर भारतीय कोयले के आयात में दिलचस्पी दिखाई है। १९५७ की प्रथम तिमाही में जापान को भारत ने ६०,९६७ टन कोयले का निर्यात किया।

आज से कुछ वर्ष पूर्व जापान भारतीय कोयले का एक प्रमुख ग्राहक था, और १९५२ में इसने ७६५,७६७ टन कोयला आयात किया। लेकिन इस द्वारा आयात धीरे-धीरे कम होता गया और १९५४ में ९३,६६५ टन, १९५५ में १७,३१९ टन पिछले वर्ष केवल ११,८२४ टन और रह गया था।

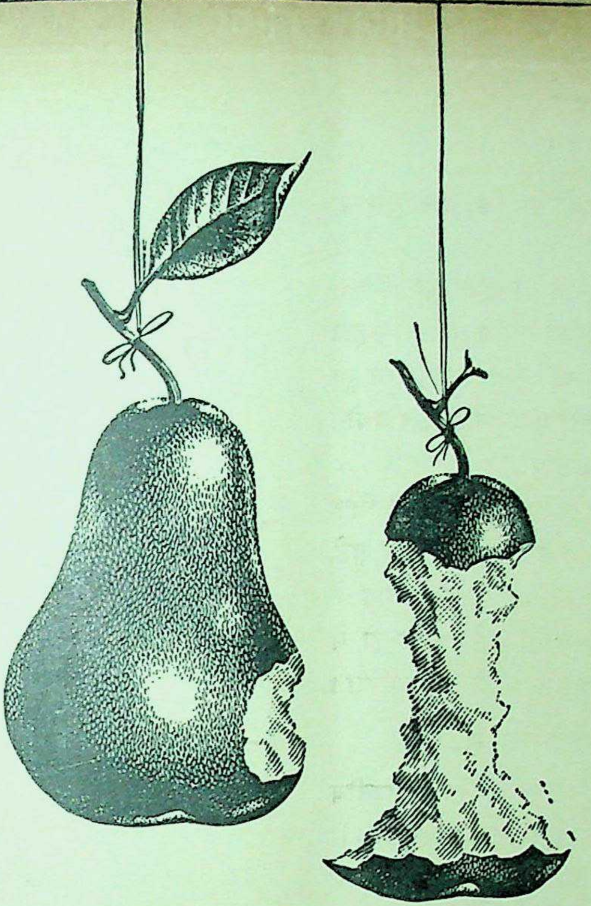

एक डाल के दो फल पर स्वाद जुदा जुदा...

...और इन के स्वाद को आप देख कर नहीं बल्कि चख कर जान पायेंगे। इस लिये नज़र के धोखे से बचिये! लेकिन आप को साबुन खरीदना हो तो इस की परीक्षा भला चख के कैसे करेंगे! इसी लिये समझदार ग्राहक ऐसी चीज़ें उसी **नाम** और **छाप** की ख़रीदते हैं जिन्हें इस्तेमाल कर के वे विश्वासयोग्य पा चुके हैं।

लगभग ७० वर्ष से लोग हिन्दुस्तान लीवर के उत्पादनों का एतबार करते आ रहे हैं क्योंकि इन के गुण सदा से अच्छे रहे हैं और यह इस लिये कि हमारे कारखानों में **हर एक** उत्पादन की, तय्यार होने तक, बार बार परीक्षा की जाती है। हम इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि वे देर तक पड़े पड़े ख़राब न हों। प्रयोगशाला में हर प्रकार के जलवायु का वातावरण बना कर हर उत्पादन पर उस का प्रभाव देखा जाता है।

इस तरह **हर सप्ताह** में लाइफ़बॉय साबुन, डालडा वनस्पति और गिब्ज़ एस. आर. टूथपेस्ट इत्यादि उत्पादनों की **१२०० परीक्षायें** होती हैं—और इन जाने पहचाने उत्पादनों पर दूर दूर एतबार किया जाता है क्योंकि ये कड़ी परीक्षाओं से गुज़रते हैं—पहले हमारे हाथों और फिर उपयोग में आ कर!

HINDUSTAN LEVER LIMITED
THE SEAL OF QUALITY

हिन्दुस्तान लीवर का आदर्श—घर घर की सेवा

HLL. 5-X52 HI

डालमिया उत्पादन

प्रयोग-सिद्ध एवं उच्च-कोटि के

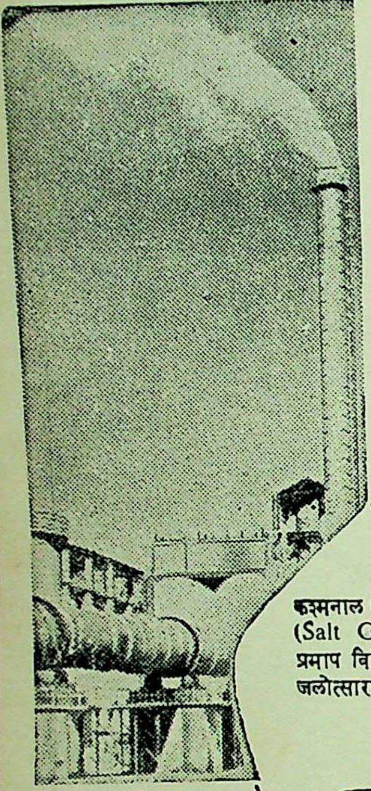

डालमियापुरम् मिल की सिमेंट भट्ठी का एक दृश्य

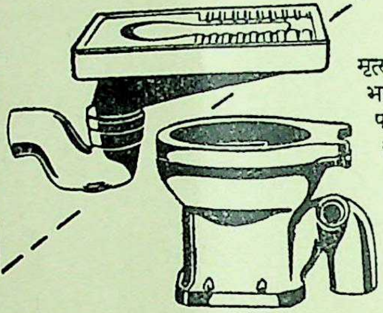

मृत्सा-आरोग्यपात्र (Porcelain sanitary ware) भारतीय और योरोपीय शौच कुंड (closets) धावन पात्री (Wash basins) मूत्रकुंड (Urinals), इत्यादि विसवाहक (Insulations) एवं क्षाररोधक खर्परी (Tiles) भी मिल सकती है।

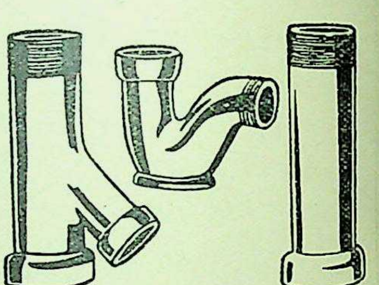

कश्मनाल (Stone ware Pipes) पूर्ण रूपेण लवण काचित (Salt Glazed) क्षार रोधक (Acid Resistant) एवं प्रमाप विशिष्ट (Tested of standard specification) जलोत्सारण (Drainage) के लिये

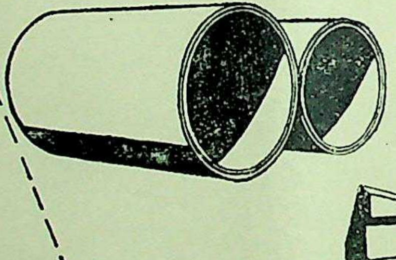

वज्रचूर्ण-आयसंघा नाल (R. C. C. Spun pipes) सिंचाई, पुलियाओं (Culverst) जलप्रदाय और जलोत्सारण (Cupply and drainage) के लिये सभी श्रेणियों और मापों में प्राप्य।

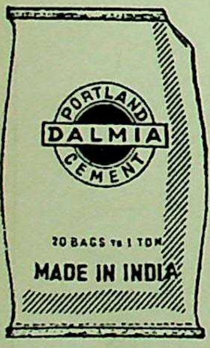

पोर्टलैंड सिमेंट सामान्य निर्माण के लिये

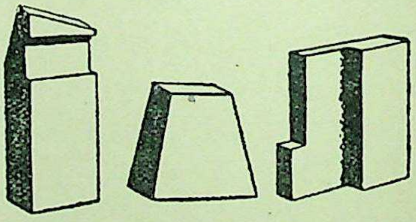

उष्मसह (Refractories) अग्नीष्ट कार्ये (Fire Bricks) संमृद (Mortors) तथा समस्त ताप-सीमाओं और आकृतियों में प्राप्य विसंवाहक ईस्ट कार्ये (Insulating Blocks) सभी औद्योगिक आवश्यकताओं के लिये

A.I.A.B. D/C H2

डालमिया सिमेंट [भारत] लिमिटेड

डाकघर – डालमियापुरम्
जिला – तिरूचिरापल्ली, दक्षिण भारत

अ० भा० कांग्रेस कमेटी के लिए श्री बालकृष्णन् द्वारा प्रकाशित और नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित

कर्त्तव्यम् सुसमीक्षितम्

आर्थिक-समीक्षा

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आर्थिक-राजनीतिक अनुसन्धान विभाग का पाक्षिक पत्र

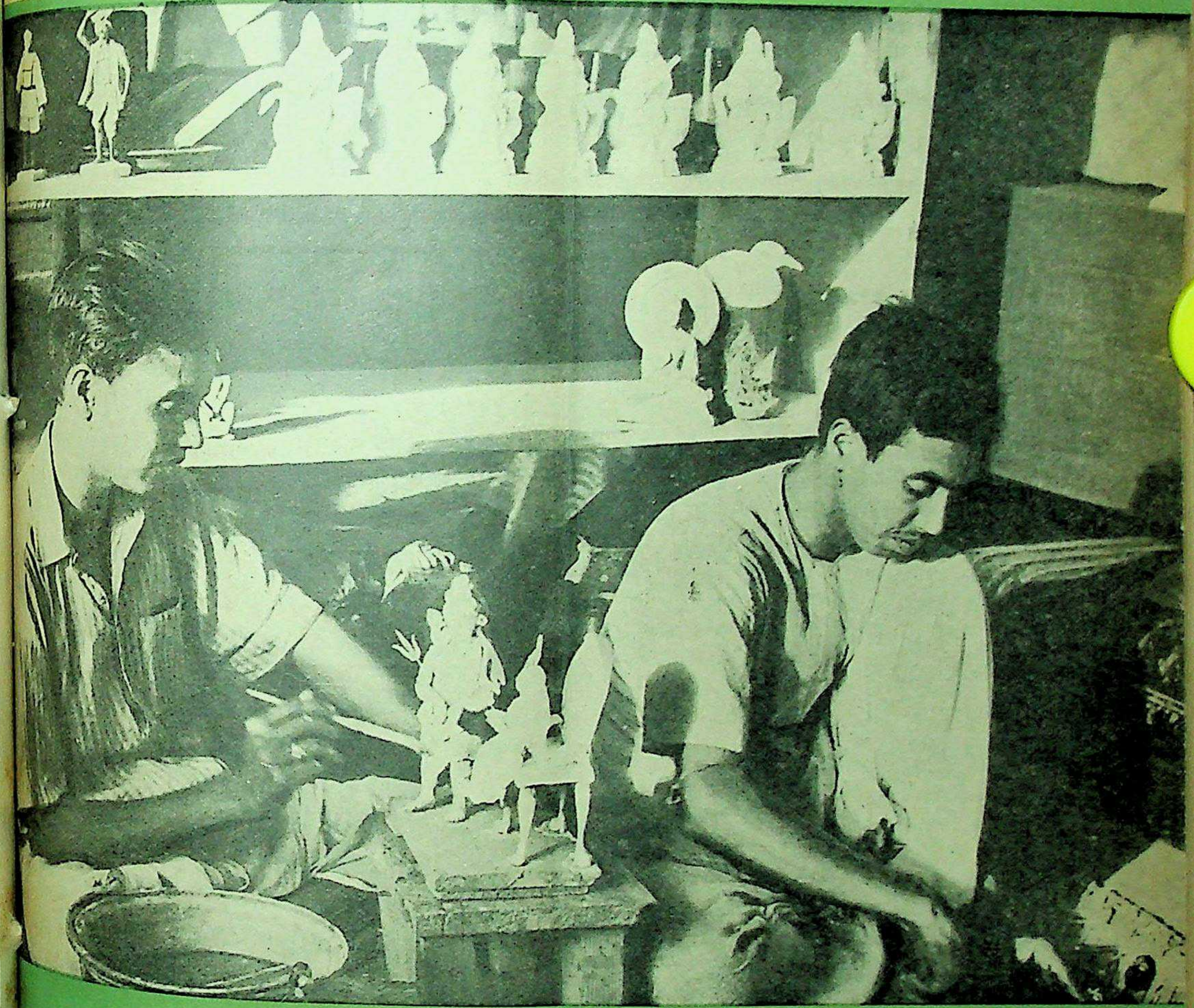

वार्षिक मूल्य
५ रुपये
एक प्रति
१२ नये पैसे

अन्दर देखिए :—

- ★उत्पादकता आन्दोलन
- ★उद्देश्यपूर्ण आयोजन
- ★कोलम्बो योजना क्षेत्र में आर्थिक विकास की समस्याएं
- ★खाद्यान्न समस्या का उद्देश्यपूर्ण मूल्यांकन करने की जरूरत

नयी दिल्ली
१९ नवम्बर १९५७
वर्ष ७, संख्या ३
पूर्णांक १४१

सम्पादक मण्डल

गुलजारीलाल नन्दा
टी. टी. कृष्णमाचारी
खण्डूभाई देसाई
मनुभाई शाह
अरुण चन्द्र गुहा

प्रधान सम्पादक—श्रीमन्नारायण

सम्पादक—सुनील गुहा

विषय-सूची

पृष्ठ

१. उत्पादकता आन्दोलन — श्रीमन्नारायण ३
२. उद्देश्यपूर्ण आयोजन — वी. टी. कृष्णमाचारी ६
३. कोलम्बो योजना क्षेत्रों में आर्थिक विकास की समस्याएँ — बी. आर. भगत ९
४. स्थानीय स्वायत्त प्रशासन के केन्द्रीय परिपद् की तृतीय बैठक और लोकतंत्रीय विकेन्द्रीकरण — न. र. मलकानी १४
५. खाद्यान्न समस्या का उद्देश्यपूर्ण मूल्यांकन करने की जरूरत — सुनील गुहा १७
६. आर्थिक टिप्पणियां : २३
    (१) मुद्रा कोष में कमी
    (२) निर्यात प्रोत्साहन समिति की रिपोर्ट
    (३) विदेशी कम्पनियों में भारतीययों की वृद्धि
    सुनील गुहा

पृष्ठ

७. नये प्रकाशन — प्रेमप्रकाश शर्मा २६
८. आर्थिक-समाचार-संकलन :
    (क) भारतीय २८
    (ख) विदेशी ३१

कवर पृष्ठ पर

कुछ समय पूर्व भारत सरकार ने देश की पुरानी दस्तकारी—खिलौने बनाना—को कायम रखने, सुदृढ़ बनाने और नयी पद्धति पर लाने के लिए सात राज्यों को वित्तीय सहायता प्रदान की।

भारतीय पद्धति के खिलौने अपने रंग और नमूने की दृष्टि से ऊँचे दर्जे की कला के उदाहरण हैं। ये मिट्टी, लकड़ी, लुम्दी, कपड़े, बांस के लुम्दी आदि से बनाये जाते हैं। मुख पृष्ठ पर चित्र में कलाकार मिट्टी से भांति-भांति के खिलौने बनाने में व्यस्त दिखाई देते हैं।

आर्थिक-समीक्षा

वर्ष ७, संख्या ३] नयी दिल्ली : मङ्गलवार, १९ नवम्बर १९५७ [पूर्णाङ्क १४१

श्रीमन्नारायण

उत्पादकता आन्दोलन

केन्द्रीय व्यापार और उद्योग मंत्रालय द्वारा औद्योगिक तथा अन्य क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद की स्थापना संतोष का विषय है। अभी हाल ही में, केन्द्रीय उद्योग मंत्री ने एक द्वि-दिवसीय सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए मालिकों और श्रमिक वर्ग, दोनों से अपील की कि वे देश में धन के अधिक उत्पादन हेतु एक-दूसरे से मिल-जुल कर काम करें। उत्पादकता परिषद में सरकार, मालिकों, मजदूरों, प्राविधिक विशेषज्ञों, विद्वानों, अनुसंधानकर्त्ताओं और पेशेवर सलाहकारों के प्रतिनिधि होंगे। यह परिषद उन इलाकों में, जहां उद्योग केन्द्रित हैं, स्थानीय उत्पादकता परिषद स्थापित करने में भी सहायता देगा। शुरू में उत्पादकता परिषद का लक्ष्य औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ाना होगा, और बाद में परिषद अपना कार्य अन्य क्षेत्रों, जैसे परिवहन और कृषि, में भी बढ़ायेगा।

ब्रिटेन, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, आस्ट्रिया, बेल्जियम और हालैण्ड जैसे ऊँचे स्तर के औद्योगिक देशों ने भी यह जरूरी समझा है कि वे अपने देशवासियों के जीवनयापन का स्तर ऊँचा उठाने के लिए उत्पादन के तरीकों में सुधार करने और भौतिक साधनों का अधिक लाभप्रद उपयोग करने के लिए उत्पादकता में और ज्यादा वृद्धि करें। इस प्रकार के उत्पादकता आन्दोलन भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देशों के लिए और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यह भी साफ जाहिर है कि किसी भी विकसित अथवा अर्द्ध-विकसित देश में उत्पादकता आन्दोलन तभी सफल हो सकता है जब मालिकों और कर्मचारियों में पूर्णतया सहयोग हो। इस प्रकार के सहयोग के परिणामस्वरूप देश की जनसंख्या के प्रत्येक भाग को आर्थिक लाभ होता है। उद्यमी को उत्पादन की लागत में कमी होने तथा उसके आन्तरिक तथा विदेशी मंडियों में अधिक लाभपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा करने के काबिल होने से लाभ होता है। सुधरी प्रविधि के फलस्वरूप श्रमिक भी अधिक पारिश्रमिक हासिल कर सकते हैं। उपभोक्ता को भी बेहतर वस्तुएँ सस्ते दामों पर उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार देश में धन का उत्पादन बढ़ाने पर जोर दिये जाने से संपूर्ण राष्ट्र लाभान्वित होगा।

यह आवश्यक है कि भारत में उत्पादकता आन्दोलन को सिर्फ उद्योगों तक ही सीमित रखने की बजाय, आर्थिक क्षेत्र के प्रत्येक अंग तक फैलाना चाहिए। वास्तव में, हमारे आर्थिक आयोजन में खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने के आन्दोलन को सर्वोच्च प्राथमिकाता दी जानी चाहिये। हमें आशा है कि खाद्य और कृषि मंत्रालय इस बात पर सतर्कता से विचार करेगा और भारतीय अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन-वृद्धि करने के लिए व्यापार और उद्योग मंत्रालय के साथ मिलकर एक संयुक्त परियोजना बनायेगा। अभी अगले कई सालों तक, भारत एक मुख्यतः कृषि-प्रधान देश रहेगा। लेकिन इसके देशवासियों को अधिक लाभप्रद रोजगार प्रदान करके उनके जीवन-यापन का स्तर ऊँचा करने के लिए यह जरूरी होगा कि देश के ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे, ग्रामीण और कुटीर उद्योगों का एक जाल-सा बिछा दिया जाय। इस दृष्टि से, हमें भारत में सही ढंग के एक कृषि-औद्योगिक आधार को सुदृढ़ करना होगा। हमें देश-भर में खेतों, कुटीर उद्योगों और कारखानों को पुनस्संगठित करना होगा, जिससे अधिकतम रोजगार और ऊँचे स्तर की उत्पादकता उपलब्ध हो सके। अंतः हमारे यहां समन्वित उत्पादकता आन्दो-

लन की बेहद जरूरत है। योजना आयोग के लिए इस बात को सम्पूर्ण राष्ट्र हेतु एक समन्वित आर्थिक आयोजन का एक जरूरी अंग समझते हुए विचार करना वांछनीय होगा।

इस संबंध में एक और बात भी है जिस पर सावधानी से विचार किया जाना आवश्यक है। भारत में औद्योगिक और कृषि का उत्पादन बढ़ाने की हार्दिक इच्छा में हमें इस समस्या के मानवीय अंग को नजरअन्दाज नहीं कर देना चाहिये। हमारे आर्थिक आयोजन को दो मजबूत पहियों—ज्यादा उत्पादन और अधिकतर रोजगार—के सहारे ही आगे बढ़ना चाहिए। इन दो में से यदि एक भी पहिया कमजोर हो जाता है तो हमारी आर्थिक योजनाएँ एक संतुलित ढंग से बहुत आगे नहीं बढ़ सकेंगी। यह सच है कि आज के संसार में विज्ञान और प्रविधि का उपयोग करके उत्पादन की बेहतर प्रविधियां इस्तेमाल में लाना अनिवार्य है। लेकिन, साथ ही हमें यह बात भी हमेशा याद रखना चाहिये कि हम मशीन को परिपक्व बनाते हुए, मानवीय पक्ष की महानता को भी सामने रखें। राष्ट्रीय उत्पादकता आन्दोलन संबंधी सम्मेलन में उद्घाटन भाषण करते हुए केन्द्रीय उद्योग मंत्री ने यह बिल्फुल स्पष्ट कर दिया कि उत्पादकता आन्दोलन को इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि बेहतर प्रविधियों के प्रयोग से बेरोजगारी में वृद्धि न हो। लेकिन, रोजगार में वृद्धि करने के लिए यह जरूरी होगा कि एक ऐसे व्यवस्थित संगठन की स्थापना की जाय जो उच्चतर उत्पादकता और अधिकतर रोजगार के अवसरों के बीच सन्तुलन कायम रखे। स्थानीय उत्पादकता परिषदों को निरन्तर इन समस्याओं का अध्ययन करना होगा और उचित संतुलन कायम रखना होगा। हमारा सुझाव है कि ये उत्पादकता परिषदें उच्चतर प्रविधियां जारी करने से पूर्व विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार की संभावनाओं का सावधानी से सर्वेक्षण कर लें, ताकि अतिरिक्त सिद्ध होनेवाले मानवीय श्रम को अन्य अवसर प्रदान न होने की कम-से-कम संभावना रह जाय।

एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था में यह संभव नहीं है कि उत्पादन की वर्तमान प्रविधियों को पुराने स्तर पर ही स्थिर रखा जाय। उच्चतर प्रविधियां आरम्भ करने पर अवश्य ही कुछ अल्पकालीन बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। लेकिन राष्ट्रीय आयोजकों का यह परम कर्तव्य है कि वे आर्थिक योजनाओं का निर्माण और क्रियान्वयन इस प्रकार से करें कि उससे रोजगार में कमी न हो और मानव दुखी न हो। किसी भी स्वतंत्र और लोकशाही देश में प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह सम्मानपूर्ण ढंग से जीविकोपार्जन करने के लिए काम हासिल करे। प्रत्येक मान्य नागरिक को इस प्रकार का लाभपूर्ण रोजगार मुहय्या कराना राष्ट्रीय आयोजकों का प्राथमिक कर्तव्य है। हमारे जैसे अर्द्ध-विकसित देश में आर्थिक आयोजन में मानवीय पक्ष का और भी अधिक महत्त्व है। मानवीय साधनों का इस प्रकार सावधानी से नियोजन किये बिना उच्चतर उत्पादकता से अनावश्यक बेरोजगारी और अर्द्ध-रोजगारी पैदा हो सकती है, जिसके परिणामस्वरूप मानव को बहुत अधिक तकलीफ और परेशानी होती है।

भारत में धान की मिलों में कुटाई की बात लीजिये। कुछ वर्ष पहले कुल का ६० प्रतिशत चावल हाथ-कुटाई से तैयार किया जाता था। देश-भर यें हल्लर और शेल्लर मशीनें स्थापित होने के बाद, पिछले तीन वर्षों में हाथ-कुटे धान का उत्पादन ४० प्रतिशत रह गया, जिसके फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में भारी बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। इसी प्रकार, देश में तेल-मिलों की स्थापना होने के कारण, गांवों में तेल निकालने की घानियों के मालिकों में काफी बेरोजगारी पैदा हो गयी है। हम यह नहीं चाहते कि धान कूटने और तेल निकालने के पुराने और अलाभकर तरीकों को हमेशा के लिए कायम रखा जाय। इन प्रविधियों को सुधारना और इन्हें अधिक क्षमतापूर्ण और उत्पादक बनाना नितान्त आवश्यक है। लेकिन, हमें देश के भौतिक और मानवीय साधनों के पूर्णतर इस्तेमाल के बीच एक संतुलन स्थापित करना है। वास्तव में आयोजकों को यही कार्य सौंपा गया है। उनका यह कर्तव्य है कि वे आर्थिक विकास का ऐसे उचित ढंग से वर्गीकृत कार्यक्रम बनाएँ जिससे अधिक उत्पादन और पूर्णतर रोजगार उपलब्ध हों। आर्थिक आयोजन के किसी भी ऐसे तरीके पर, जिसमें इस प्रकार का न्याय और सुव्यवस्थित नियोजन नहीं किया जाता, यहां या किसी अन्य देश में लाखों व्यक्तियों का भविष्य आश्रत नहीं किया जा सकता।

हमने द्वितीय पंचवर्षीय योजना में लगभग १ करोड़ अधिक व्यक्तियों को विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार दिलाने की व्यवस्था रखी है। हम नहीं कह सकते कि योजना आयोग ने देश के विभिन्न भागों में और उत्पादन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में रोजगार की प्रगति की समीक्षा करने के लिए कोई समिति नियुक्त की है अथवा नहीं। उत्पादन में बेहतर प्रविधियां प्रयोग कर अगले कुछ वर्षों में उत्पादकता में वृद्धि करना संभव हो सकता है। वास्तव में यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात है, क्योंकि कुल उत्पादन में वृद्धि किये बिना लोगों के जीवन यापन का स्तर ऊँचा उठाना संभव नहीं होगा। लेकिन, यदि हम औद्योगिक और कृषि का उत्पादन बढ़ाने की उत्सुकता में अपने आयोजन के रोजगार-पक्ष पर काफी सोच-विचार नहीं करते, तो हम अपने बुनियादी कर्तव्यों का पालन करने में बुरी तरह असफल होंगे। अतः, यह अनिवार्य है कि हमारी आर्थिक योजनाओं में रोजगार पैदा होने की सम्भावनाओं की जांच करने के लिए एक उचित संगठन कायम किया जाय।

हमारा विचार है कि आर्थिक आयोजन में उच्चतर उत्पादकता और अधिक रोजगार के बीच उचित तथा स्वस्थ संतुलन निश्चित करने के लिए आर्थिक योजनाओं के क्रियान्वयन का विकेन्द्रीकरण किया जाना अत्यावश्यक है। अन्ततः, केन्द्रीकृत आयोजन बहुत अधिक जोर-जबर्दस्ती की ओर ले जाता है, जिसमें स्थानीय परिस्थितियों की महत्वपूर्ण जरूरतों पर ध्यान नहीं दिया जा सकता। अतः यह उचित ही है कि हम अपने आर्थिक आयोजन को जिला स्तर तक विकेन्द्रित करें, ताकि स्थानीय योजना समितियां या जिला विकास परिषदें, उत्पादन, उपभोग और रोजगार की स्थानीय जरूरतों की जांच कर सकें और उनके अनुसार अपने विकास कार्यक्रम बना सकें। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत, इस प्रकार के जिला अधिकारियों की स्थापना पर काफी जोर दिया गया है, लेकिन हमारा विचार है कि इस प्रकार के विकेन्द्रित आयोजन पर हमारे देश में अभी तक पर्याप्त मात्रा में गौर नहीं किया गया। वास्तव में, हमारा अन्तिम लक्ष्य हमारे आर्थिक जीवन की जड़ों, अर्थात् ग्राम-समुदाय, तक पहुँचना चाहिए। कुछ समय से आचार्य विनोबा भावे ग्रामदान द्वारा ग्रामराज्य की आवश्यकता पर जोर देते आ रहे हैं। इसका मूलभूत विचार यह है कि प्रत्येक ग्राम-समुदाय को अपने इलाके में अधिक उत्पादन और ज्यादा रोजगार के लिए नियोजन करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक ग्राम-इकाई को स्वावलम्बी बनाने की योजना बनाना निरर्थक होगा। आधुनिक परिस्थितियों में न तो यह उचित है और न ही मुमकिन। लेकिन आर्थिक जीवन को ऐसे निर्धारित करना संभव है जिसमें संपूर्ण विकास-कार्य का उत्तरदायित्व अधिकतम संभव सामाजिक जीवन की बुनियादी इकाइयों द्वारा समझा जाय और उनका प्रतिपालन किया जाय। एक लोकशाही व्यवस्था में, जन-समूह का स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करने के लिए स्थानीय नेतृत्व को प्रोत्साहन देना और विकसित करना आवश्यक है। स्वभावतः इसमें आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का बड़ी मात्रा में विकेन्द्रीकरण जरूरी हो जाता है, जिसके बगैर जनता का स्वाभाविक उत्साह कभी भी जागृत नहीं किया जा सकता।

हमें पूरी आशा है कि योजना आयोग और भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालय इन सब समस्याओं पर समन्वित ढंग से विचार करेंगे, ताकि भारत आर्थिक आयोजन के नये तरीके और ढंग विकसित कर सके, और जिनसे विश्व के अन्य देशों को भी बेहतर मार्ग दिखाई दे। हमारे लिये केवल दूसरे देशों की प्रविधियों और ढांचों की नकल करना ही लाभप्रद नहीं होगा। भारत की अपनी एक प्रतिभा है। इसलिए, हमें अपने आर्थिक आयोजन को अपनी इस राष्ट्रीय प्रतिभा के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। गांधीजी ने हमें राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल करने का रास्ता दिखाया। वही रास्ता विनोबाजी आर्थिक क्षेत्र में दिखा रहे हैं। भारत में आर्थिक आयोजन का संतुलित और न्यायपूर्ण ढांचा बनाने के लिए हमें गांधी जी के अनुभवों और पथ-प्रदर्शन से पूरी तरह लाभान्वित होने का प्रयत्न करना चाहिये।

श्री वी. टी. कृष्णमाचारी

उद्देश्यपूर्ण आयोजन

द्वितीय पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित करने पर विदेशी विनिमय संबंधी कठिनाइयों पर देश में कुछ महीने से काफी चर्चा हो रही है। जैसा कि प्रधानमंत्री ने हाल में कहा है : "हम अपने देश के तेज कदम और बड़े पैमाने के विकास का लक्ष्य हासिल करने के महान् और प्रेरणादायक काम में लगे हुए हैं। भारत जैसे प्राचीन और अर्द्ध-विकसित देश में इस तरह का विकास केवल 'उद्देश्यपूर्ण' आयोजन द्वारा ही संभव है। अपने लोकतंत्रीय सिद्धांतों और परम्पराओं के प्रति सच्ची निष्ठा रखने के कारण हम खुली वार्त्ताओं, परामर्शों तथा योजना कार्यान्वित करने में देश के लोगों का स्वैच्छिक और सक्रिय सहयोग प्राप्त करना चाहते हैं।" हम अपने से जो प्रश्न पूछना चाहते हैं, वह यह है कि "क्या हम अपने निश्चित लक्ष्य हासिल करने के लिए आवश्यक पैमाने पर देश के लाखों-करोड़ों लोगों को संयुक्त रूप से अधिक-से-अधिक स्वैच्छिक प्रयत्न करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं? सहकारिता की शक्तियों को मजबूत करने के लिए हमें ऐसे कौन से अतिरिक्त कदम उठाने चाहिए, ताकि हर परिवार स्वेच्छा से योजना के लिए आवश्यक त्याग करने लगे।"

हमारे लक्ष्य और साधन

हमारे लक्ष्य बहुत साधारण हैं। हम २० वर्ष में अपनी राष्ट्रीय आय को प्रति व्यक्ति २८१ रुपये से बढ़ा कर ५४६ रुपये कर देना चाहते हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में हमारा लक्ष्य अपनी राष्ट्रीय आय को प्रति व्यक्ति २८१ रुपये से बढ़ाकर ३३१ रुपये कर देना है। दुनिया में ऐसे बहुत ही कम देश हैं, जिनमें वर्तमान प्रति व्यक्ति आय उतनी है, जितनी कि हम अपनी पांचवीं योजना के अन्त में हासिल कर लेने की अपेक्षा करते हैं। जहां तक रोजगार के अवसर उत्पन्न करने का सम्बन्ध है, अगर हम अपनी द्वितीय योजना कार्यान्वित करने में सफल रहे, तो हम लाभदायक कामों पर ८० लाख से १ करोड़ अतिरिक्त व्यक्तियों को लगा सकने की अपेक्षा करते हैं। किन्तु इन पांच वर्षों में देश की सक्रिय जनसंख्या में इतनी ही अतिरिक्त वृद्धि भी होगी। अतः रोजगार की दृष्टि से इस समय जो खाई दिखलाई पड़ती है, वह जैसी की तैसी ही बनी रहेगी। इतने सीमित लक्ष्यों को हासिल करने के लिए भी देश को बहुत अधिक पूंजी लगाने की जरूरत पड़ेगी। इसका अनुमान योजना तैयार करते समय ७,१०० करोड़ रुपये लगाया गया था जिसमें से ४,८०० करोड़ तो सार्वजनिक क्षेत्र में और शेष निजी क्षेत्र में व्यय होगा। उस समय के बाद मूल्यों में काफी वृद्धि हुई है और योजनाओं की लागत बहुत बढ़ गई है।

योजना के आधार

राष्ट्रीय विकास समिति को योजना प्रस्तुत करते समय योजना आयोग ने उन शर्तों पर विशेष जोर दिया था, जो कि आयोग की राय में प्रस्तावित आकार की योजना को सफलता के साथ पूरी करने के लिए अवश्य पूरी की जानी चाहिए। मैं संक्षेप में उनकी चर्चा करना चाहूँगा।

सबसे पहली बात यह है कि उत्पादन में, और खास तौर पर खेती के उत्पादन में, काफी वृद्धि होनी चाहिये। योजना आयोग की राय में योजना की अवधि के अन्त तक खेती की पैदावार में ४० प्रतिशत वृद्धि होनी चाहिये ताकि देश की आवश्यकता पूरी करने के अलावा, योजना के अन्तिम वर्षों में देश की विदेशी विनिमय की स्थिति मजबूत बनाने के लिए निर्यातों की मात्रा बढ़ायी जा सके।

दूसरे, योजना के लिए उपलब्ध आन्तरिक साधनों को बढ़ाने के लिए विशेष प्रयत्न होने चाहिये। विशेष रूप से, छोटी बचत आन्दोलन को गहन बनाना चाहिये, ताकि देश के प्रत्येक परिवार तक उसका प्रसार हो सके।

तीसरे, मूल्य का ऐसा स्तर कायम रखना चाहिये, जो कि उपभोक्ताओं और उत्पादकों के लिये उचित हो, ताकि इस बात का निश्चय हो जाय कि मुद्रा-स्फीतिक प्रवृत्तियों को जारी किये बगैर ही, विकास संबंधी कार्यक्रम संचालित किये जा सकें।

योजना आयोग के विचार का तात्पर्य यह था कि योजना उसी हद तक सफल होगी, जहां तक कि बचत करने और उत्पादन बढ़ाने के लिए अपने आप को संगठित करने में जनता को प्रोत्साहित किया जा सकेगा और लोगों को बड़े राष्ट्रीय हित के लिए अपने पर दूसरे आवश्यक नियंत्रण स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया जा सकेगा।

कृषि उत्पादन बढ़ाने के संबंध में राज्य सरकारों से योजना आयोग ने अनेक वार्त्ताएँ चलायीं। उनका नतीजा यह हुआ कि राज्य सरकारों ने ३० प्रतिशत उत्पादन बढ़ाना स्वीकार किया है। मोटे तौर पर, इसके लिए जो कार्यक्रम तैयार किया गया है, उसमें सिंचाई की सुविधाओं का उपयोग तथा खेती के सुधरे तरीकों, जैसे अच्छे बीज, खाद, आदि का अपनाना शामिल है। हर गांव में ग्राम पंचायत, और सहकारी समिति स्थापित होनी चाहिये जिसके जरिये इस बात की निश्चित व्यवस्था की जायगी कि हर परिवार के सामने खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए कार्यक्रम हो। इसमें उसे हर तरह की सहायता दी जायगी। सामान्य तौर पर इस कार्यक्रम की प्रगति चालू वर्ष में काफी तेज हो चुकी है। किन्तु योजना के शेष वर्षों में सभी राज्यों में काफी खाई भरने के लिए शेष है। चूंकि योजना का भविष्य खेती की पैदावार की वृद्धि पर निर्भर करता है, इसलिए राज्यों में इस ओर प्रयत्नों में तेजी लाना जरूरी है और इससे संबद्ध सभी पक्षों को सामुदायिक विकास तथा अन्य क्षेत्रों में लक्ष्य हासिल करने के लिए संयुक्त रूप से कार्य करना चाहिए। देश के अनेक क्षेत्रों में खाद्याभाव की स्थिति को देखते हुए आत्मतुष्ट होना सर्वथा अनुचित है। औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में परिणाम बहुत ही उत्साहवर्द्धक रहे हैं। खेती के क्षेत्र में पैदावार बढ़ने पर औद्योगिक उत्पादन में और अधिक तेजी आयगी।

वित्तीय साधन

अब मैं वित्तीय साधनों के प्रश्न पर विचार करूँगा। केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त कर सम्बन्धी उपायों से हम सभी परिचित हैं। राज्य सरकारों के पास अपनी निजी कर-व्यवस्थाएँ हैं जिन्हें वे कार्यान्वित कर रही हैं। किन्तु इस विषय के कुछ पक्षों पर रोशनी डालना जरूरी है। कर-जांच आयोग ने ऐसे बहुत से मामलों का हवाला दिया है जिनका संबंधी आय-कर और विक्रय-कर के प्रवंचन से है। आशा है कि जनमत इस प्रकार के कर-प्रवंचन का पूरा विरोध करेगा। इसके अलावा यह भी जरूरी है कि इस तरह के मामलों की रोकथाम में प्रशासन को भी अधिक सक्रिय भूमिका अदा करनी पड़ेगी। दूसरी चिन्तनीय बात यह है कि बहुत से राज्यों में मालगुजारी के बकायों, उर्वरक संबंधी तथा अन्य ऋणों की मात्रा बढ़ती जा रही है। साथ ही कल्याणकारी-करों की वसूली भी उन स्थानों पर करनी चाहिये जहां वे बकाया हों। मुझे आशंका है कि ये सब बातें इतने बड़े पैमाने पर हो रही हैं कि जिससे योजना के अनुमान गलत सिद्ध हो सकते हैं। इस मामले में भी मैं आशा करता हूँ कि यथाशीघ्र क्षमतापूर्ण उपायों द्वारा सुधार उत्पन्न कर दिये जायेंगे। इसमें सहकारिता और पंचायतों द्वारा जनता को शिक्षित करके भी संतोषजनक परिणाम हासिल किये जा सकते हैं।

वित्तीय साधनों के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम छोटी बचतों के लिए गहन आन्दोलन का संगठन करना है जिसके अंचल में देश का प्रत्येक परिवार आ जायगा। चूंकि सरकारी ऋणों का कार्यक्रम, जिसकी कल्पना प्रारम्भ में की गयी थी, वर्तमान परिस्थिति में कार्यान्वित नहीं हो सकता, इसलिए छोटी बचतों का आन्दोलन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो गया है, और इस साधन से अधिक-से-अधिक रकम हासिल करने के लिए गहरे प्रयत्न करने की जरूरत है। ऋणों के संबंध में कुछ राज्यों ने काफी अच्छे परिणाम हासिल किये हैं। इन सरकारों को ऋणों के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों को, जो कि वर्ष में अल्पकाल तक सीमित होते हैं, छोटी बचत आन्दोलन की जरूरतों के साथ समन्वित करना पड़ेगा क्योंकि इसका सम्बन्ध समूचे वर्ष से होता है। इसके साथ ही राज्य सरकारों को बड़े-से-बड़े पैमाने पर बचत को प्रोत्साहित करने के लिए संगठन का निर्माण करना चाहिये। इस संगठन को शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के प्रत्येक परिवार के साथ संपर्क स्थापित करना चाहिये। इसका आधार व्यापक होना चाहिये जिसमें गैर-सरकारी संस्थाओं का अधिकतम सहयोग प्राप्त करने की कोशिश की जानी चाहिये, साथ ही इसमें सरकारी सलाह और सहयोग उपलब्ध होना चाहिये। यह बहुत जरूरी है क्योंकि आगामी वर्षों में बचतों को उत्तरोत्तर अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी पड़ेगी। जब सामाजिक लाभ लागू करने वाले सरकारी उपाय प्रभावकारी होने लगेंगे तो ऐसे लोगों के हाथों में व्यय करने की शक्ति पहुँच जायगी जिनमें अभी तक बचाने की आदत थी। इस समय सिर्फ एक ऐसे देशव्यापी संगठन की जरूरत है, जो प्रत्येक परिवार को यह महसूस करने के लिए प्रेरित करेगा कि वह योजना का अविच्छिन्न अंग है और उस पर यथासंभव अविक-से-अधिक बचत करने की जिम्मेदारी है। ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम-पंचायत और ग्रामीण सहकारी समितियां विकसित होनी

चाहिये ताकि प्रत्येक परिवार छोटी बचत आन्दोलन के अंचल में आ जाय। मसूरी में अपने एक भाषण में मैंने बताया था कि ग्रामीण पंचायतों के लक्ष्य क्या होने चाहिये। ये लक्ष्य हैं: (१) १९६०-६१ तक कम-से-कम आधे ग्रामीण परिवारों को अपने आप सहकारी समितियों का सदस्य हो जाना चाहिये, और (२) देश के लोगों को राष्ट्रीय बचत बाण्डों में धन लगाने के अलावा, इस आन्दोलन के लिए जरूरी अल्प और मध्यकालीन ऋण के अधिकांश की स्वयं व्यवस्था करनी चाहिये। सहकारी समितियों के लिए जमा हासिल करने का आन्दोलन अल्प बचत आन्दोलन से सम्बद्ध है। वे एक दूसरे के पूरक हैं। अगर ग्रामीण क्षेत्रों के लोग सहकारिता आन्दोलन के लिए आवश्यक धन की व्यवस्था करलें तो छोटी बचतों में लगाने के लिए शहरी क्षेत्रों से और अधिक धन उपलब्ध होने लगेगा। शहरों में प्रत्येक बड़े दफ्तर और औद्योगिक इकाई में बचत-संगठन का निर्माण होना चाहिये। शहरों को मुहल्लों में बांट देना चाहिये और हर मुहल्ले में शहरी सहकारी समिति स्थापित होनी चाहिये। इस समिति को चाहिये कि वह छोटी बचत के लिए प्रत्येक परिवार से संपर्क स्थापित करे। जब तक यह संगठन बन नहीं जाता, तब तक मौजूदा संस्थाओं के जरिये ही छोटी बचतों को बढ़ावा दिया जाना चाहिये।

मूल्य-स्तर की समस्या

मूल्य-स्तरों के सवाल पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। मूल्य-स्थिति से गम्भीर चिन्ता बढ़ रही है। जून १९५६ और जून १९५७ के बीच थोक मूल्यों के सामान्य सूचनांक में ८.३ प्रतिशत वृद्धि हुई। यह वृद्धि १९५५-५६ में हुई १३.८ प्रतिशत वृद्धि के अतिरिक्त थी। यह साफ जाहिर है कि योजना तब तक कार्यान्वित नहीं हो सकती, जब तक कि राष्ट्र मूल्यों को एक ऐसे स्तर पर कायम रखने की जरूरत को स्वीकार नहीं करता और इस सिलसिले में निम्नतम मात्रा में नियंत्रण को कबूल नहीं करता जो कि उत्पादकों और उपभोक्ताओं के लिए उचित हो, और जिससे विस्तारशील अर्थ-व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलता हो।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात भी उल्लेखनीय है। बेरोजगारी और अर्द्ध-रोजगारी से पीड़ित देश के भीतर देहाती क्षेत्रों में समाज-कल्याण संबंधी कार्यों को सम्पन्न करने के लिए जन-शक्ति के उपयोग का महत्त्व बहुत अधिक है। सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंडों में इस दिशा में काफी काम हो रहा है और श्रमदान सप्ताह लोकप्रिय हो रहे हैं। आगामी वर्षों में ग्रामीण क्षेत्रों के लिए स्थायी परिसम्पत्तियां के निर्माण के उद्देश्य से इस प्रकार के प्रयत्नों का संगठन होना चाहिये। इस तरह की परिसम्पत्तियों में सिंचाई, वन-विकास, मिट्टी-संरक्षण, आदि के कार्य शामिल हैं। प्रत्येक राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंड के लिए एक पंचवर्षीय कार्यक्रम तैयार होना चाहिये जिसमें (१) प्रत्येक गांव, (२) १२ गांवों के समूहों, और (३) समूचे खंड के लिए निर्माण-कार्य सम्बन्धी कार्यक्रम समुचित ढंग पर तैयार होने चाहिये। प्रत्येक ग्राम पंचायत को अपने हिस्से का कार्यक्रम निश्चय ही पूरा करना चाहिये।

जनता का सहयोग

मुझे आशा है कि मैंने जो कुछ कहा है, उससे सामुदायिक विकास आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट हो जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य उत्पादन और बचत बढ़ाने में और योजना लागू करने में जिम्मेदारी उठाने में जनता की सहायता करना है। यह आन्दोलन अभी तक ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित रहा है, किन्तु इसके तरीके और कार्यक्रम शहरी क्षेत्रों में भी लागू हो सकते हैं। यह आन्दोलन सच्चा जन-आन्दोलन होना चाहिये जिसका आधार स्वशासित पंचायतें और सहकारी समितियां होनी चाहिए, और इसकी जांच निम्नलिखित बातों की कसौटी पर की जानी चाहिये:

(१) प्रत्येक परिवार के सामने उत्पादन बढ़ाने का एक कार्यक्रम होना चाहिये, जिसमें उसकी सहायता होनी चाहिये।

(२) प्रत्येक परिवार को कम-से-कम एक सहकारी समिति का सदस्य होना चाहिये और उसे योजना के लिए नियमित रूप से बचत करना चाहिये।

(३) प्रत्येक परिवार को समाज के लिए स्थायी परिसम्पत्ति के निर्माण के लिए अपना कुछ समय अवश्य लगाना चाहिये।

(४) सभी क्षेत्रों में एक सुसंगठित महिला और युवक आन्दोलन विकसित होना चाहिये।

संक्षेप में, लोगों को यह अनुभव करना चाहिये कि योजना उनकी ही है और उन्हें एक साथ मिलकर उसे सफल बनाना चाहिये।

हमें इसी चुनौती का सामना करना है। हमें, सबके बावजूद, देश के सभी क्षेत्रों में हजारों त्यागी पुरुष और महिलाएँ चाहिये जो योजना के लिये जनता का सहयोग प्राप्त कर सकें, और जो रहन-सहन का स्तर उठाने के लिए जनता को त्याग के लिए प्रेरित कर सकें।

(आकाशवाणी के सौजन्य से)

श्री ब० रा० भगत
केन्द्रीय उप वित्त मंत्री

कोलम्बो योजना क्षेत्र में आर्थिक विकास की समस्याएं

कोलम्बो योजना की परामर्शदातृ समिति की ९वीं बैठक अभी हाल ही में सैगोन में खत्म हुई। योजना के अन्तर्गत दक्षिण तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देश आते हैं जो कि पश्चिम में पाकिस्तान से पूर्व में फिलिपाइन्स तक फैले हुए हैं, जिनकी आबादी ६,५०० लाख से ज्यादा होगी। कोलम्बो योजना का विचार जनवरी १९५० में उत्पन्न हुआ, जब राष्ट्र मण्डल के विदेश मंत्री विश्व की समस्याओं, खासतौर से दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व एशिया की आवश्यकताओं, पर विचार-विनिमय करने के ध्येय से कोलम्बो में मिले थे। अतः उस क्षेत्र के राष्ट्र-मण्डलीय देशों के आर्थिक विकास के लिए एक सहकारी प्रयत्न के रूप में योजना की शुरुआत की गयी, जो कि अब सम्पूर्ण क्षेत्र में फैल गया है। सहायता देने वाले देशों में कनाडा, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन तथा न्यूजीलैंड के अलावा अमरीका और जापान भी हैं।

इस क्षेत्र के देश अर्द्धविकसित अर्थ-व्यवस्थाओं के समस्त लक्षण प्रदर्शित करते हैं : वे मुख्यतया कृषिप्रधान हैं और कुछ कच्चे माल उनके निर्यातों में विशेष महत्त्व रखते हैं। मिसाल के तौर पर, मलाया के निर्यातों में लगभग ६६ प्रतिशत भाग रबड़ तथा तांबा का है, थाईलैंड और जापान में चावल का क्रमशः ६० व ८० प्रतिशत। भूमि पर जनसंख्या का भार बहुत है। इस क्षेत्र के सभी देशों में हर तरफ गरीबी, निरक्षरता, खराब स्वास्थ्य, जोखिम लेने की न्यूनता, धन प्राप्ति के साधनों तथा प्राविधिक मानव-शक्ति की कमी एवं काफी क्षेत्र में बेरोजगारी व अर्द्ध-रोजगारी की समस्याएं पायी जाती हैं।

राजनीतिक स्वतंत्रता

युद्धोपरान्त वर्षों में कोलम्बो योजना क्षेत्र में अकल्पनीय राजनीतिक रद्दोबदल दिखायी पड़ा। पहले, नेपाल और थाईलैंड को छोड़कर, सभी देश राजनीतिक दृष्टि से पश्चिमी शक्तियों के अधीन थे। लेकिन, आज सभी, सिंगापुर तथा ब्रिटिश बोर्नियो के अलावा, राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हैं। राजनीतिक स्वाधीनता और लोकतंत्र आर्थिक उन्नति और अवसर की समानता की मांगें भी अपने साथ लाये। पुरानी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था नये राजनीतिक स्वरूप द्वारा प्रस्तुत मांगों को पूरा नहीं करती। क्षेत्र के देशों के सामने सर्वोच्च समस्या उनकी स्वतंत्रता को नया सामाजिक और आर्थिक महत्त्व प्रदान करने की है। यह बड़ी ही आवश्यक किन्तु कठिन समस्या है, और देशों के लिए—पहले से ही विश्व के विकसित देशों से काफी पीछे रहने के कारण—इन समस्याओं को हल करने में समय गंवाने की गुंजाइश नहीं।

अत्यधिक असमानता

अर्थशास्त्री हमें बताते हैं कि औद्योगिक क्रांति के पहले तक, दुनिया के मुख्तलिफ देशों के जीवन-स्तरों में इतना अधिक फर्क नहीं था। लेकिन क्रांति के बाद से ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, स्वेडन, सं. रा. अमरीका तथा कुछ और मुल्कों ने बहुत उन्नति की है। औद्योगीकरण की वजह से वे अत्यधिक बहुमुखी हो गये हैं और उनका जीवन स्तर उस वक्त को देखते हुए आज कई गुना ऊंचा उठ गया है जब उन्होंने औद्योगीकरण तथा आर्थिक विकास के लिए कदम नहीं बढ़ाये थे। लेकिन एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका की अर्थ-व्यवस्था में, जो विश्व की दो-तिहाई जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं, थोड़ा ही परिवर्तन हुआ है। इन देशों के लोगों का जीवन-स्तर विकसित देशों की अपेक्षा बहुत नीचा है। कोलम्बो योजना क्षेत्र के लोगों की वार्षिक औसत प्रति व्यक्ति आय ३०० रु० से भी कम है, जबकि पश्चिमी यूरोप के औद्योगिक देशों में यह ३,५०० रु० और सं. रा. अमरीका में १०,००० रु० है।

नव जागरण

कोलम्बो योजना क्षेत्र के देश औद्योगीकरण तथा आर्थिक विकास के लाभों के प्रति आज जागरूक हो गये हैं।

यह भी कहा जा सकता है कि इन देशों में अत्यधिक क्रान्तिकारी परिवर्तन से आर्थिक विकास के अनुरूप सामाजिक चेतना का विकास रहा है। आर्थिक और सामाजिक उन्नति अब सामाजिक समन्वय का नया आधार बन गयी है। इस क्षेत्र के राष्ट्र आज आम निर्धनता, निरक्षरता तथा खराब स्वास्थ्य को दूर करने में लग गये हैं। लेकिन, इसी दौरान में उनकी बढ़ती हुई आबादी उनके मौजूदा जीवन स्तर को भी कायम रहने देना मुश्किल कर रही है। इनमें तथा अधिक विकसित देशों के बीच वर्तमान आर्थिक खाई घटने की बजाय और बढ़ रही है। आर्थिक उन्नति की गति भी विकसित देशों को देखते हुए कम है। संयुक्त राष्ट्र संघ के 'आर्थिक मामलों के ब्यूरियों' के अनुमानों के अनुसार, विश्व के विकसित क्षेत्रों में सन् १९४८-५४ के बीच प्रति व्यक्ति वस्तु उत्पादन २२ प्रतिशत बढ़ा, जबकि दक्षिण एशिया में सिर्फ १५ प्रतिशत ही। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं अगर हम यह याद रखें कि वहां उच्च आय का काफी बड़ा हिस्सा (१५ से २० प्रतिशत) बचाया और उत्पादन-वर्गों में लगाया जाता है। ठीक इसके विपरीत दक्षिण-पूर्वी एशिया में पूंजी-संग्रह के लिए बहुत कम आय का मामूली हिस्सा (५ से ७ प्रतिशत) बचाया और निवेश किया जाता है। वस्तुतः, विकसित देशों में प्रति व्यक्ति बचत कोलम्बो योजना क्षेत्र के मुल्कों की आय से कहीं ज्यादा है। नयी वैज्ञानिक और प्राविधिक खोजें भी खाई को बढ़ाती हैं, क्योंकि औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों के पास उनका पूरा फायदा उठाने के लिये आवश्यक पूंजी होती है, जो कि निर्धन देशों के पास उपलब्ध नहीं। इन मुश्किलों को देखते हुए, इस क्षेत्र के देशों में हुई आर्थिक उन्नति की मामूली गति को भी महत्त्वपूर्ण समझना चाहिए, खास तौर से इसलिये कि इसने इन देशों की पुरानी आर्थिक जड़ता को भंग कर दिया है।

विकास के लिए योजना

अपने आर्थिक विकास को तेज गति प्रदान करने के ध्येय से इस क्षेत्र के ज्यादातर मुल्कों ने किसी-न-किसी रूप में योजना को स्वीकार कर लिया है, और अलग-अलग अर्थ-व्यवस्थाओं के अनुरूप कार्यक्रम तैयार कर लिये गये हैं। सिर्फ थाईलैंड बिना सम्पूर्ण योजना के विकास नीति पर चल रहा है। इस क्षेत्र के देशों की आर्थिक योजना के उद्देश्यों में बहुत समानता मिलना स्वाभाविक है। आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति एवं जीवन यापन के उच्च स्तर जैसे सामान्य उद्देश्यों के अलावा, इन देशों की विकास योजनाएं आर्थिक विकास, औद्योगिक विकास में तीव्रता लाने तथा रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करने के लिये जरूरी कृषि-उत्पादन तथा सामाजिक व आर्थिक ढांचे के कुछ अंगों, जैसे यातायात, परिवहन, विद्युत, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं, पर जोर देती हैं।

कृषि पर जोर

यह स्वाभाविक ही है कि इन राष्ट्रों की योजनाओं में कृषि पर खास तौर से जोर दिया जाय, क्योंकि यह इनके दो-तिहाई लोगों को काम देती है। यहां तक कि अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना में सफलता प्राप्त करने वाला देश भारत, जिसने कृषि पर अधिक ध्यान दिया, अपने दूसरे आयोजन में भी कृषि पर ही जोर देना जरूरी समझता है। क्षेत्र की अन्न समस्या हल होने से बहुत दूर है। क्षेत्र के पाकिस्तान और भारत जैसे देशों में हाल की अनाज संबंधी कमियों तथा मूल्यों में वृद्धि ने इस बुनियादी बात की सत्यता सिद्ध कर दी है कि औद्योगिक ढांचे के लिये केवल कृषि ही ठोस आधार प्रदान कर सकती है। सामाजिक तथा आर्थिक विकास पर, यद्यपि समस्त देशों की योजनाओं का यही ध्येय होने पर भी, भारत, बर्मा, कम्बोडिया और हिन्देशिया में विशेष रूप से जोर दिया गया है। ज्यादातर देशों में, खनिक और कारखाने के उत्पादन का अपेक्षाकृत थोड़े पैमाने पर आयोजन किया गया है। पर जहां तक भारत का संबंध है, दूसरी पांचसाला योजना में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

इस क्षेत्र के देशों की कई योजनाओं का एक उल्लेखनीय पहलू सरकार को सौंपी गयी प्रमुख भूमिका है। इन देशों में सरकारें स्वयं योजना-कार्य संचालन के लिये काफी आगे बढ़ रही हैं—वह भी इस हद तक कि उनकी जनता उन्हें आर्थिक व सामाजिक कल्याण लाने की कर्णधार समझें। इस क्षेत्र की करीब-करीब सभी आर्थिक विकास योजनाओं का

प्रमुख अंग सार्वजनिक निवेश रहा है। फिर भी, क्षेत्र के आर्थिक विकास में निजी निवेश महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

आर्थिक विकास की समस्याएं और कठिनाइयां

आर्थिक आयोजन की कामयाबी आन्तरिक और बाह्य साधनों की उपलब्धि पर निर्भर करती है। आर्थिक विकास के लिये अच्छी पारिवारिक बचत एक बुनियादी बात है। लेकिन दुर्भाग्य से, इस क्षेत्र के अधिकांश देशों में बचत की दर ६-७ प्रतिशत से ऊपर नहीं उठती। केवल मलाया और बर्मा में युद्धोपरान्त वर्षों में बचत की औसत दर १२ प्रतिशत से अधिक थी। इतनी अल्प बचत भी प्रायः छितरा दी जाती और गलत रूप में विभाजित कर दी जाती है। इन्हें देखते हुए, पश्चिम के विकसित देशों में बचत दर १५ से २० प्रतिशत रही है। नार्वे, नीदरलैंड्स और पश्चिमी जर्मनी जैसे कुछ देशों में यह दर २२ से २५ तक बढ़ चुकी है। अपनी राष्ट्रीय आय का महज ५ से ६ प्रतशत बचाने वाला देश सम्पूर्ण आर्थिक विकास को जीवित नहीं रख सकता; आर्थिक दृष्टि से वह वहीं रहता है जहां वह है। क्षेत्र के देश सार्वजनिक राजस्व अधिक बढ़ाने के लिए विशेष प्रयत्नों के जरिये निःसंदेह ही बचत की दर १० प्रतिशत के लगभग संभव बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। परोक्ष और अपरोक्ष, दोनों करों के क्षेत्र व शक्ति में वृद्धि कर दी गयी है। उदाहरण-स्वरूप, भारत में, पिछले एक या ज्यादा वर्षों में, परोक्ष और अपरोक्ष करों को अतिरिक्त राजस्व लाने के ध्येय से १०० करोड़ रुपयों से अधिक बढ़ा दिया गया है।

बचाइये और निवेश कीजिये

इन प्रयत्नों के बावजूद, इन क्षेत्रों में विकास व्ययों में वृद्धि के साथ-साथ बचत में वृद्धि नहीं हुई। आम जनता से कर, राजस्व या ऋण-प्राप्तियों में कम वृद्धि के कारण सरकारों को काफी बड़े पैमाने पर घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लेना पड़ा। पिछले वर्षों में बैंक से प्राप्त ऋण का निजी खर्च भी बढ़ा है। लेकिन यह प्रक्रिया आर्थिक सुदृढ़ता पर हानिकारक असर किये बिना ज्यादा समय तक जारी नहीं रह सकती। इसने प्रभावपूर्ण मांगों में स्पष्ट वृद्धि भी प्रदर्शित कर दी, जिससे मुद्रास्फीतिक दबाव बढ़ गये हैं और क्षेत्र के बहुत से देशों में शेष रकम देने की परेशानियां पैदा हो गयी हैं। भारत, हिन्देशिया, बर्मा, फिलिपाइन्स, पाकिस्तान तथा श्रीलंका जैसे देश प्रतिकूल व्यापारिक देनदारिओं की अदायगी के लिये अपना विदेशी विनिमय देयताएं घटाने पर मजबूर हो गये हैं, जो कि निवेश और खपत के लिये अत्यधिक घरेलू मांग के कारण बढ़ गयी थीं। मुद्रास्फीतिक भारों को पलटने के लिये भारत जैसे देश सार्वजनिक राजस्व बढ़ाने के साथ-साथ ब्याज में वृद्धि, व्यापारिक बैंकों की आवश्यकताओं को नियंत्रित करने तथा चुनिंदा ऋण-नियंत्रणों को लागू करने जैसे तरीके प्रयोग में ला रहे हैं। आयातों के मूल्य अदा करने के लिए वे आयात-नियन्त्रणों को भी सख्त बना रहे हैं। लेकिन इन देशों की समस्याओं का स्थायी हल अधिक उत्पादन और उच्च बचत के जरिये ही प्राप्त हो सकता है। अपने आर्थिक विकास के भार को सहने में समर्थ बनने के लिये यह लाजिमी है कि ये देश अपनी बढ़ती आयों का ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा बचायें और उसे उत्पादन-कार्यों में लगायें।

मूल्यों की स्थिरता

क्षेत्र के अधिकांश देशों के लिये विकास हेतु, साधनों की समस्या उनके रबड़, तांबा, चाय और जूट जैसी प्राथमिक निर्यात वस्तुओं के मूल्यों में स्थिरता से बंधी हुई है। औद्योगिक देशों में अपेक्षाकृत हल्के गैर-मुद्रास्फीतिक भार प्राथमिक उत्पादक मूल्यों तथा प्राथमिक निर्माताओं की आयों में उल्लेखनीय गिरावट लाते हैं। फलस्वरूप, विकास के लिये साधनों की उपलब्धि पर बड़ा खराब असर पड़ता है। प्राथमिक उत्पादनों के मूल्य कोरियायी युद्ध से पैदा मूल्य-वृद्धि के पश्चात् से धीरे-धीरे गिरते जा रहे हैं, जबकि पूंजीगत वस्तुओं, जैसे औद्योगिक उत्पादक चीजों, के मूल्य मजबूती के साथ बढ़ते जा रहे हैं। मूल्यों में इस उतार-चढ़ावों ने विकास की लागत में वृद्धि कर दी है, और इसके साथ ही इन देशों की

लागत का भार सहने की क्षमता भी कम कर दी है। जब विदेशी विनिमय में पूर्व संचित सुरक्षित कोष खत्म हो जायंगे, विकास साधन ढूंढने की समस्या इस क्षेत्र के देशों के लिये और भयंकर होने की संभावना है।

अन्तर सरकारी ऋण

यदि आन्तरिक पूंजीगत साधन बहुत साधारण हैं और उनमें अनिश्चितता है, तो क्षेत्र की आर्थिक अवस्थाओं को विकसित करने में मददगार बनाने के लिए काफी मात्रा में बाह्य पूंजी मिलने की क्या-क्या संभावनायें हैं? दुर्भाग्य से, विदेशी निजी पूंजी को प्रोत्साहित करने के इच्छुक देशों के प्रयत्नों के बावजूद उपलब्धि कोई बहुत उज्ज्वल नहीं दिखलाई पड़ रही है। बाह्य पूंजी की न तो बहुतायत ही है, और न उसका मिलना आसान है। खासतौर से औद्योगिक देशों में आन्तरिक निवेशों की उच्चतर मांग के कारण युद्धोत्तर वर्षों में निजी अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी का प्रवाह कम हो गया। विकसित देशों में हाल की व्याज दर में वृद्धि से इस क्षेत्र के देशों के लिए पूंजी-उपलब्धि में कमी की ही आशा की जाती है। इसके साथ ही, ऐसे अन्तर्राट्रीय निवेशों पर अधिक लागत होगी। बड़े अन्तर सरकारी ऋण इस स्थिति में बहुत सुधार ला सकते हैं।

निवेश के लिए साधनों की कमी के अलावा, आर्थिक विकास प्राविधिक मानव-शक्ति तथा प्रबन्ध संबंधी प्रतिभा की कमी एवं प्रशासनिक व्यवस्था की अपर्याप्तता के कारण भी धीमा पड़ गया है। यद्यपि ये कमियां सभी देशों में मौजूद हैं, तथापि कुछ में ये अन्य से कहीं ज्यादा हैं।

विदेशी सहायता

अर्थ-व्यवस्था को विकसित करने के प्रयत्न में, क्षेत्र के देश कुछ हद तक अपने आन्तरिक साधनों के पूरक के रूप में विदेशी सहायता प्राप्त कर चुके हैं। कोलम्बो योजना एक महत्त्वपूर्ण ढांचा है, जिसमें विदेशी सहायता उपलब्ध की जाती है। विदेशी मदद की कई किस्में हैं; दो सबसे महत्त्वपूर्ण हैं: पूंजीगत और प्राविधिक सहायता। कोलम्बो योजना के प्रारम्भ से मध्य १९५७ तक, अनुदान देनेवाले देशों से लगभग लाख ३५,००० डालर मिल चुका है। सिर्फ १९५६-५७ में अन्तर सरकारी आधार पर अनुदानदातृ कंपनियों द्वारा लगभग १०,००० लाख डालर उपलब्ध किया गया था। पुनर्निर्माण तथा विकास का अन्तर्राष्ट्रीय बैंक तथा अन्य संयुक्त राष्ट्रसंघीय विशेषज्ञ एजेंसियां भी पूंजी तथा प्राविधिक सहायता प्रदान करती रही हैं। सन १९५० से अब तक अन्तर्राष्ट्रीय बैंक इस क्षेत्र के सदस्यों को ५,५५० लाख डाख ऋण के रूप में दे चुका है। प्राविधिक सहायता की दृष्टि से, कोलम्बो योजना के सदस्यों तथा संयुक्त राष्ट्रसंघीय एजेंसियों ने तब से इस क्षेत्र के १३,००० व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया व ६,००० विशेषज्ञों की सेवाएँ प्रदान कीं। पिछले एक या उससे ज्यादा वर्षों में सोवियत रूस और अन्य पूर्व यूरोपीय देशों ने भी भारत तथा बर्मा जैसे कुछ देशों को आर्थिक सहायता दी है। यद्यपि विदेशी सहायता कभी-कभी बड़ी ही जरूरी साबित हुई है, जैसा कि १९५६-५७ में इन देशों के लिए विदेशी ऋणों और अनुदानों को चुकता करने की मुश्किलें और भीषण भी होतीं, जो प्राप्तकर्ता देशों की आवश्यकताओं को देखते हुए केवल सहायता मिलने के कारण बहुत कम रही हैं।

निष्कर्ष

इन प्रयत्नों के बावजूद, क्षेत्र के देशों में आर्थिक विकास बहुत धीमा रहा ह। आयोजन में खामियों के साथ-साथ विभिन्न किस्म की कमियां बहुत से मामलों के विकास में अवरोधी वजहें बनीं, जिसके परिणामस्वरूप कभी-कभी आयोजित विकास पूर्णरूप से संपन्न नहीं किये जा सके। लेकिन यह मानना ही चाहिए कि क्षेत्र के देशों में चालू विकास संबंधी वृहद गतिविधियां उनकी अर्थ-व्यवस्थाओं की अदम्य क्षमता तथा उनके लोगों के आगे बढ़ने के ही निश्चय की जीती जागती मिसालें हैं। मुद्रास्फीति तथा विदेशी विनिमय की देयताओं के खतरे की समस्याओं को, जो कि विकास-मार्ग के साथ-साथ रहते हैं, हल करने के तरीके लोचशील होने चाहिए। तथापि, ये कठिनाइयां ऐसी नहीं हैं जो हल न हो सकें। ये "सुदृढ़ आर्थिक

विकास काल में प्रवेश करने" के दौरान की तकलीफें हैं; ये आर्थिक जड़ता से आर्थिक उन्नति प्राप्त करने से संबंधित समस्याएँ हैं। इन कठिनाइयों से पार पाने की प्राथमिक जिम्मेदारी क्षेत्र के देशों पर ही है। सामूहिक आर्थिक विकास के प्रयत्नों का श्री गणेश होना चाहिए। अधिक आन्तरिक प्रयत्न करने और कुछ समय के लिए प्रयत्नों के अधिकांश लाभ को न लेने की सख्त जरूरत है, ताकि इन अर्थ-व्यवस्थाओं में निवेश की दर कायम करने और निश्चित करने के लिए बचत की दर बढ़ायी जा सके। फिर भी यह आशा की जाती है कि संपूर्ण क्षेत्र को निर्धनता एवं आर्थिक जड़ता से निकालने के उनके संघर्ष में मदद देने के ध्येय से विदेशी सहायता का स्रोत बराबर जारी रखने तथा उसे और बढ़ाने के लिए जरिये ढूंढ निकाले जा सकते हैं। यह असंभव है कि क्षेत्र के आर्थिक विकास से विश्व के अधिक विकसित देशों को लाभ न हों; इसमें ज्यादा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शक्तियां निहित हैं, और यहां उनके उत्पादनों के लिए ज्यादा खपत होने लगेगी। समृद्धि, शान्ति की तरह ही, अविभाज्य है और इसे विश्व भर में बढाया जाय। किसी भी जगह की गरीबी हरेक स्थान की समद्धि के लिए खतरा है।

★जिस साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, वह निरर्थक है।
★जो साहित्य मानव जाति की सेवा की प्रेरणा नहीं देता, वह निष्प्रयोजन है। और
★जो साहित्य बुद्धि-भेद उत्पन्न करता है, वह अनिष्टकारी है।

जीवन साहित्य

में जीवन, मानव जाति की सेवा की प्रेरणा और एकनिष्ठ बुद्धि से अपने मार्ग पर चलने का बल मिलेगा

एक प्रति अवश्य देखने की कृपा कीजिये

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

तार—आगरा होटल : फोन—२४६०६

आगरा होटल

१६ दरियागंज, दिल्ली—७

नई तथा पुरानी दिल्ली के मध्य स्थित

★ सजे सजाये वातानुकूलित कमरे
★ विस्तृत बाग़ व लान
★ अंग्रेजी और भारतीय ढंग के खाने
★ व्यक्तिगत सुविधाओं पर ध्यान देना इसकी सर्वश्रेष्ठ विशेषता है।

श्री न. र. मलकानी
संसद सदस्य

स्थानीय स्वायत्त प्रशासन के केन्द्रीय परिषद् की तृतीय बैठक और लोकतंत्रीय निकेन्द्रीकरण

मैंने गत २६, २७ और २८ सितम्बर को श्रीनगर में हुई स्थानिक स्वायत्त प्रशासन के केन्द्रीय परिषद की तीसरी बैठक में हिस्सा लिया था। अनिवार्यतः केन्द्रीय परिषद की वार्षिक बैठक तत्संबंधी राज्य-मंत्रियों की औपचारिक बैठक होती है, और अचम्भे की बात तो यह है कि उसकी अध्यक्षता गृहमंत्री की जगह केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्री करते हैं। इसके अलावा, उसमें स्थानीय स्वायत्त संस्थानों के अखिल भारतीय फेडरेशन, स्थानिक स्वायत्त शासन के अखिल भारतीय संस्थान तथा अ. भा. कांग्रेस कमेटी का प्रतिनिधित्व करने के लिए भी तीन सदस्य थे। मैं अन्तिम का प्रतिनिधि था। वाद-विवाद के लिए वार्षिक बैठकों में बहुत से एवं काफी किस्मों के कार्यक्रम होते हैं, लेकिन मेरे विचार में कार्यक्रम के लिए निश्चित ज्यादातर विषय-क्रमों ने विविध किन्तु कम महत्त्वपूर्ण मामलों पर ही विचार-विनिमय संभव बनाया। गत वर्षों में पास किये गये कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव इस साल की बैठक के कार्यक्रम में पुनः रखे गये, क्योंकि राज्य के समस्त मंत्रियों द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार किये जाने पर भी अधिकांश राज्यों ने उन्हें कार्य रूप में परिणत नहीं किया था। मतैक्य संभवतः औपचारिक था या केन्द्र ने उसको बहुत कम कार्य रूप में परिणत किया। लेकिन इस वर्ष अकस्मात ही बैठक में एक बड़े ही महत्त्वपूर्ण मसले पर विचार शुरू हो गया और वह भी बड़े उत्साह के साथ। समस्या 'शक्तियों के लोकतंत्रीय विकेन्द्रीकरण' की थी, जिसे सबसे पहले राजाजी ने सन् १९५२ में सामने रखा था, तथा उस पर विचार-विमर्श किया था। उन्होंने यह सुझाव दिया था कि जिला मंडलों को हटाकर तालुका मंडल कायम किया जाय। इस बार इस विषय को योजनाओं के लिए निर्मित समिति द्वारा श्री बलवन्तराय मेहता, संसद सदस्य, के सभापतित्त्व में नियुक्त अध्ययन दल ने बहुत से परिवर्तनों के बाद पेश किया था। दल की २२ टाइप पृष्ठों की एक टिप्पणी को सदस्यों में वितरित किया गया। सबसे पहले टिप्पणी को कार्यक्रम में शामिल किया जाना पड़ा, तत्पश्चात् उस पर विचार शुरू हुआ, जोकि २॥ दिन की बैठक में से १॥ दिन तक जारी रहा। प्रत्येक सदस्य को इस अहम मसले पर अपने विचार प्रकट करने का अवसर दिया गया। श्री मेहता ने विषय का आरम्भ किया, और उनसे यह भी प्रार्थना की गयी कि वे ही प्रश्नों का उत्तर दें। जब अध्यक्ष, अर्थात् केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्री, ने विचार-गोष्ठी के अन्तिम विचार प्रकट किये तो हम यह देखकर आश्चर्य चकित थे कि टिप्पणी को आशा से कहीं अधिक समर्थन प्राप्त था।

टिप्पणी महत्त्वपूर्ण, किन्तु साधारण वक्तव्य से आरम्भ होती है: "यह आमतौर पर स्वीकार किया गया है कि हाल के वर्षों में गहन ग्रामीण विकास कार्य को अगर किसी पहलू में सबसे कम सफलता प्राप्त हुई तो वह आम जनता में इसके लिए उत्साह व इच्छा पैदा करने में थी।" पर मैंने एक भी सदस्य को लेशमात्र भिन्न मत का नहीं पाया। हममें से अधिकांश ने जो महसूस किया उसे कई वर्षों से योजना अयोग का मूल्यांकन संगठन उद्देश्यात्मक तथा वैज्ञानिक शब्दों में व्यक्त करता रहा है। और फिर भी हरेक व्यक्ति जानता है कि एक लोकतांत्रिक देश में कोई भी योजना जनता के इच्छित सहयोग के बिना नहीं चलायी जा सकती। टिप्पणी के प्रथम अनुच्छेद का अन्तिम वाक्य इसके साथ खत्म होता है कि "जब तक कोई ऐसी प्रतिनिधित्व-प्राप्त तथा लोकशाही संस्था प्रकाश में लायी या निर्मित नहीं की जाती जो स्थानीय उद्देश्यों पर खर्च किये गये रुपये के स्थानिक आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुकूल होने की (सुरक्षा के लिए जरूरी है), जिसे पर्याप्त शक्तियों तथा निर्धारित धनराशि के साथ विनियोजित किया गया हो. और जो स्थानीय हित, निदर्शन तथा देख-भाल की व्यवस्था करेगी, तब तक स्थानीय दिलचस्पी और स्वयं कार्य करने की इच्छा उत्पन्न नहीं होगी।" भारत में ऐसी संस्था के खोजने या निर्मित किये जाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह प्राचीन पंचायत में निहित है। लेकिन आधुनिक अर्थ में यह न तो प्रतिनिधित्व-प्राप्त और न लोकतंत्रीय ही रह गयी है। यह एक जाति या उप-जाति या एक जाति की एक शाखा का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन इसे एक क्षेत्र की

कुल जनसंख्या की प्रतिनिधि सरलता से बनाया जा सकता है। काफी सदस्यों ने स्त्रियों तथा अनुसूचित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित करने का सुझाव दिया। लगभग सभी का यह सुझाव था कि पंचायत 'राजनीतिक' लोकतंत्र नहीं अपितु सामाजिक, आर्थिक एवं शिक्षाप्रद लोकतंत्र का प्रतिनिधित्त्व करे, किसी भी स्थिति में इसे राजनीतिक दलों पर आधारित लोकतंत्र का प्रतिनिधित्त्व नहीं करना चाहिए; तभी सर्वसम्मत या निकट सर्वसम्मत निर्णय हो सकेगा। कई राज्यों, जैसे बिहार, मद्रास, काश्मीर, आदि ने इस आदर्श की प्राप्ति कर ली है, लेकिन इसके साथ ही कुछ राज्यों ने आगाह किया कि मतैक्य एक स्वस्थ विचारों से उत्पन्न हो, उसे किसी जबर्दस्ती लादी गयी चीज का परिणाम नहीं होना चाहिये। लेकिन मताधिकार और हाथ उठाकर मत देना शायद उचित ढंग होगा। दलों का एक मजबूत और स्थायी नियमन दूसरा तरीका होगा। मेरे ख्याल में, उपयुक्त कार्य करने का अधिकार प्रदान करना तीसरा उपाय होगा,—अर्थात् विशेषतया विकास संबंधी कार्यों का अधिकार।

सबसे ज्यादा आश्चर्य मुझे अन्तिम, अर्थात् पंचायतों द्वारा विकास-कार्य के क्रियान्वयन के लिए कार्यों तथा शक्तियों के, महज हस्तांतरण नहीं, उत्तरदायित्व के तौर पर प्रदान करने के संबंध में समस्त सदस्यों के स्वतंत्र एवं पूर्ण मतैक्य पर हुआ। यह भी सुझाव दिया गया था कि समस्त विकास-कार्य, योजना के बाहर आनेवाले कार्य —चाहे केन्द्र द्वारा या राज्य द्वारा निर्धारित हुए हों—पंचायतों को सौंपे जाने चाहिए। विभिन्न सरकारों द्वारा पंचायतों को ऋण दिये और उन्हीं द्वारा प्राप्त किये जायं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अब तक केवल जम्मू और काश्मीर ने ही एक नीति के रूप में और राज्य स्तर पर विकास-कार्य पंचायतों को सौंपा है। राज्य में इसके अलावा और किसी चीज ने पंचायतों की मजबूती तथा योजना कार्य को इतना आगे नहीं बढ़ाया है। यह अनुभव समस्त अन्य राज्यों के लिए एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा है, इसलिए और भी ज्यादा कि कार्यों का हस्तांतरण शीघ्र हुआ था और सफलता तत्काल। जबकि देश-भर में पंचायतें स्थापित की जा चुकी हैं, इसके प्रयोग के लिए वक्त का इन्तजार करने की जरूरत नहीं, बशर्ते कि एक एजेन्सी के रूप में हम पंचायतों की योग्यता पर विश्वास रखते हों। वस्तुतः ग्राम्य, यदि परिवार नहीं तो, नियोजन पंचायतों की मदद से ही सम्भव है। जब योजना धनराशि कम कर दी जाय या खत्म हो जाय, तो योजना कार्य पंचायतों के जरिये कायम रखे और उन्नत किये जा सकते हैं। सरकार पहले की ही तरह विशेषता प्राप्त तथा विस्तार सेवाओं को चालू रखेगी, पर उन्हें पंचायतों को दे दिया गया। तब पंचायतों को कुछ प्रशासनिक कार्य, खासतौर से भूमि-सुधारों को चलाने तथा भूमि-व्यवस्था लेने से संबंधित भी करने पड़ेंगे, लेकिन इस बात पर काफी मतभेद था कि आया पंचायतें भूमि संबंधी लेखा-बहियां रखें और लगान वसूल करें। आज ज्यादातर पंचायतों ने इन कर्तव्यों को पूरा करने में अपने को असमर्थ बताया है। लेकिन जब पंचायतें टैक्स लगाती हैं और विकास-कार्य में दिलचस्पी लेती हैं, तो उन्हें कम-से-कम जबर्दस्ती वसूली की जगह सद्भावनापूर्ण व्यवस्था के जरिये लगान वसूल करने की भी अनुमति दी जा सकती है। कार्यों के इस तरह मूर्तरूप लेने के फलस्वरूप उन्हें माल तथा लगान प्राप्तियों से आय का एक अतिरिक्त साधन उपलब्ध होगा। अध्ययन दल यह सुझाव देता है कि खंड पंचायतों को शुद्ध लगान का एक-तिहाई पाने का अधिकार ग्राम-पंचायतों को दे दिया जाय। इस दिशा में बिहार के अनुभव से प्रेरणा ली जा सकती है।

लेकिन समस्या का कठिनतम पहलू है—जिला बोर्ड तथा ग्राम पंचायत के बीच 'एक मध्यस्थ संस्थान' की जरूरत। भारत में निस्संदेह ही ग्राम-पंचायत एक बुनियादी स्थानिक संस्था है, और हम सब इसकी सफलता के लिए कामना करते हैं। मगर कुछ राज्य ही ईमानदारी से इसका उपयोग करने में प्रयत्नशील हैं। वास्तव में, झगडे की असली जड़ तो यह है कि मध्यस्थ स्थानिक संस्थान खंड स्तर पर हो या तहसील स्तर पर। अध्ययन दल की टिप्पणी में यह स्पष्ट दिया गया था कि पहली ही उपयुक्त संस्था हो सकती है, दूसरी नहीं। सभी विकास-कार्यों के लिए खंड-संगठन स्थायी तौर पर ग्रामों तथा उनकी पंचायतों की यथा निकट संस्थाओं का रूप ले चुके हैं। ये अकेले ही ग्राम्य (तथा परिवार) नियोजन तैयार कर सकते हैं, तथा स्थानीय व्ययों के लिए समस्त स्थानिक साधनों का सर्वेक्षण कर सकते हैं। जन-उत्साह उत्पन्न करके ग्रामीणों के इच्छित

एवं प्रिय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऐसे साधनों को काम में लगाने से 'जन-सहयोग' सुरक्षित किया जा सकता है। अनिवार्य कार्यों का यह सीमित अधिकार क्षेत्र एकाग्र प्रयत्न लाने तथा बर्बादी और विलम्ब पर कड़ी नजर रखने में सहायक होगा, जोकि हमारी उन्नति में रुकावट के कारण रहे हैं। खंड स्तर का आरम्भ विशुद्ध वातावरण में होगा, जबकि तहसील स्तर में तहसीलदार तथा मालगुजारी विभाग की परम्पराओं की बू साथ रहेगी।

बाद में अध्ययन दल ने एक दूसरा और पहले से कहीं शक्तिशाली विचार पेश किया। उसमें यह मांग की गयी थी कि पंचायत को एक पूर्णतया चुनी हुई तथा लोकतांत्रिक संस्था होनी चाहिए, जिसमें समस्त विकास-कार्य के लिए शक्तियों का पूर्ण हस्तांतरण हो। अध्यक्ष अनौपचारिक हो। खंड में पंचायतों द्वारा चुने गये समस्त सरपंच या पंच सदस्य होने चाहिए; कुछ स्थान महिलाओं तथा अनुसूचित जातियों एवं आदिवासियों के लिए सुरक्षित रखे जा सकते हैं; जहां सहकारिता आन्दोलन मजबूत हो वहां चुने गये स्थान सहकारी समितियों के संचालकों में विभाजित किये जा सकते हैं। खण्ड विकास अधिकारी खण्ड का प्रधान तथा खंड पंचायत का सचिव होगा। आवश्यकता पड़ने पर विस्तार अधिकारी सलाह-मश्विरे के लिए बुलाए जा सकेंगे। खण्ड पंचायत को विकास-कार्यों की पूर्त्ति के लिए निश्चित तथा पर्याप्त साधन उपलब्ध होंगे। सबसे महत्त्वपूर्ण साधन होगा— राज्य की शुद्ध मालगुजारी प्राप्ति का ५० प्रतिशत, जिसमें ग्राम-पंचायतों को हिस्सेदार बनाना ही पड़ेगा। किसी ने भी विकेन्द्रित लोकतंत्र की दिशा में इस कदम के उठाये जाने पर एतराज प्रकट न किया। अधिकार और धनराशि उपलब्ध होने पर ये अकेले ही संतोषजनक ढंग से कार्य पूरे कर लेंगी। निश्चित शक्ति की कमी के कारण तालुका स्तर पर सामुदायिक योजनाओं के जनपद संगठन असफल हो गये हैं। काश्मीर में विस्तार कार्यालयों के तहसील संगठन भी नाकामयाब हो रहे हैं, क्योंकि वे बहुत भिन्न तथा खराब ढंग से समन्वित किये गये। मद्रास राज्य ने खण्ड स्तर पर परिनियत पंचायत संघों को स्थापित भी कर दिया है, जिनके पास इतना धन, कर्मचारी तथा प्राविधिक सहायता होगी, जिससे कि वे जिला मंडलों के समस्त कार्य निभा सकेंगे। श्रीनगर सम्मेलन में केवल केरल ने ही असंतोष प्रकट किया और इस विकेन्द्रीकरण को अपने १५० खंडों में 'लोकतंत्र का खंडन' बताया, क्योंकि उनके पास प्रशासनिक व्यवस्था अपर्याप्त है; और खण्डों को खर्च करने का अधिकार है किन्तु टैक्स लगाने का नहीं। (वास्तव में, अध्ययन दल टैक्स लगाने के विशिष्ट अधिकार प्रदान करता है)। उत्तर प्रदेश संकोच में था और वह ८०० खंडों को अधिकार प्रदान करने की जोखिम उठाने के पहले हवा का रुख देखेगा। मेरे विचार से, हमें अपने लोकतंत्र की बुनियाद ग्राम पंचायतों पर ही रखना चाहिए। लेकिन अगला और जरूरी ऊपरी ढांचा संघ या फिरका या खण्ड पंचायत है, जो अकेले ही ऐसे व्यापक आधार पर एक मजबूत कल्याणकारी (या समाजवादी) राज्य का निर्माण कर सकती है। तब सामुदायिक विकास प्रशासन एक आकस्मिक ढंग पर शुरू किये गये संगठन के रूप में नहीं देखा जायेगा, जो हमेशा अन्य किस्म के विभागों से सहयोग की भीख मांगता रहे। विकास महज एक विभागीय न रह कर हमारे जीवन का एक ढंग तथा उस जीवन की सांस बन जायगा।

अन्त में अध्ययन दल ने खण्ड पंचायतों की देख-रेख के लिए जिला परिषदों की स्थापना का सुझाव दिया। जिला परिषदें, जैसा कि आजकल जिला परामर्शदातृ समितियां कर रही हैं, समस्त अन्य विकास विभागों के प्रयत्नों को समन्वित करने में भी मदद देंगी। कलेक्टर उसका अध्यक्ष होगा, हालांकि मैं इसके लिए जिला विकास अधिकारी को उचित समझता हूँ, जो एक सहायक मिलने पर अपने प्रशासनिक कर्तव्यों को निभा सकता है। जिला परिषद खण्डों के लिए विकास बजट की जांच और उसकी स्वीकृति प्रदान करेगा। फिर पंचायतें आज की तरह जिला बोर्डों और कलेक्टर के दोहरे नियंत्रणों का शिकार नहीं बनेंगी। खण्ड पंचायतों के प्रतिनिधि तथा विभिन्न विभागों के जिला-विकास अधिकारी जिला परिषद के सदस्य होंगे। इस स्तर पर जिले के केवल विधान सभा तथा संसद के सदस्य ही एक सम्मिलित सार्वजनिक मकसद के लिए अधिकारियों के साथ संबंध बनायेंगे। इसी तरह, प्रसिद्ध अनौपचारिक, कल्याणकारी संगठनों के प्रतिनिधि इसके सदस्य के रूप में नामजद किये जायेंगे, ताकि जिला परिषद को एक निश्चित अनौपचारिक संस्था का रूप दिया जा सके। अब यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक ही है कि मौजूदा जिला बोर्ड जिला परिषदों को अपने अंचल में लें अथवा नहीं? यह सर्वविदित है कि वर्तमान जिला बोर्ड बहुत से कारणों की वजह से लोप होते जा रहे हैं और धीरे-धीरे उनके कर्तव्य राज्य सरकारें अपने हाथों में लेती जा रही हैं। आइये हम सब विश्वास के साथ इस समस्या को पूरी संजीदगी से, ग्राम पंचायतों को समस्त विकास कार्य सौंप कर और उन्हें मजबूत बनाते हुए, अपने हाथ में लें। उनका विकास और मजबूती शायद हमें यह तय करने में मदद देगी कि विकेन्द्रीकरण की दिशा में पहला कदम खंड होगा अथवा पंचायत।

सुनील गुहा

खाद्यान्न समस्या का उद्देश्यपूर्ण मूल्यांकन करने की जरूरत

जुलाई में यह सोचा गया था कि इस बार देश में अच्छी फसल होगी, लेकिन इसके विरुद्ध उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, कश्मीर और मध्य प्रदेश के कुछ भागों की सूखा और बाढ़ की घटनाओं ने फिर एक बार यह जाहिर कर दिया है कि अभी भी भारतीय कृषि अधिकतर मौसम पर निर्भर करती है। सरकार ने अब यह महसूस किया है कि देश की खाद्य स्थिति के सम्बन्ध में आत्म-तुष्ट होकर उसने सही काम नहीं किया है और दूसरी योजना में कृषि को न्यून स्थान देकर उसने गलती की है। वास्तव में योजना की निर्विघ्न प्रगति उस समय तक असंभव होगी, जब तक कि कृषि को मौसम की अनिश्चितता से पूरी तरह पृथक् नहीं किया जाता। खाद्य को अब योजना का मूल-भाग माना जा रहा है, अतः यह आवश्यक हो गया कि खाद्य-स्थिति का नये सिरे से और उद्देश्यपूर्ण मूल्यांकन किया जाय। यह निश्चित किये बिना कि प्रक्रिया को कायम रखने के लिए खाद्यान्नों का स्थिरता के साथ बढ़ता हुआ बाजार, जो अतिरिक्त संग्रह प्राप्य रहेगा, औद्योगिक विकास के कार्यक्रम को बढ़ाना संभव नहीं होगा; और न ही अमरीका, कनाडा और अन्य मित्र राष्ट्रों की उदार भेंटों के बावजूद हम अनिश्चित स्थितियों का सामना करने के लिए पर्याप्त संग्रह के निर्माण के लिए पूरी तरह आयात पर निर्भर कर सकते हैं।

रोम में आयोजित खाद्य और कृषि संगठन के अधिवेशन में भारत के खाद्यमंत्री श्री अजितप्रसाद जैन ने अपने भाषण में कहा है कि भारत का बर्मा के साथ चावल-समझौते और अमरीका के साथ सार्वजनिक ऋण—४८० समझौते के कारण भारत १० लाख टन से थोड़ा अधिक चावल और गेहूँ का संग्रह करने की स्थिति में हो गया है, लेकिन सूखा पड़ने के कारण पैदा हुई मांगों ने देश के संग्रह को बढ़ाने की प्रक्रिया को न केवल रोक ही दिया है, वरन् १९५८ के प्रारम्भ में देश को अपने संग्रहों में से माल निकालना शुरू करना पड़ेगा। श्री जैन ने यह भी कहा : "हो सकता है कि १९५८ के पूरे वर्ष भर हमें कठिनाइयों का सामना करना पड़े और अपने वर्तमान संग्रह तथा इन दो समझौतों के अन्तर्गत भविष्य में होने वाले आयातों के बावजूद १९५९ के मध्य हमारे पास खाद्यान्न न रहे।" आगे आने वाली स्थिति से बचाव का एक ही तरीका है कि हम खड़ी फसल का अधिक से अधिक भाग बचायें और किसानों को हर प्रकार की आवश्यक मदद देकर सर्दी की फसल को बढ़ा लें।

अभी हाल में सूखा और बाढ़ के कारण हुआ नुकसान बहुत भारी अनुमानित किया गया है : बिहार की खरीफ फसल लगभग ५० प्रतिशत खराब हो गई है; (श्री श्यामनन्दन मिश्र, उप योजना मंत्री ने उत्तर बिहार के सूखा-ग्रस्त क्षेत्र में लगभग ३,००० मील का दौरा किया और कहा कि फसल के नुकसान का प्रतिशत के रूप में मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, क्योंकि ८० प्रतिशत फसल पूरी तरह से नष्ट हो गई है और शेष रही २० प्रतिशत फसल से उत्पादन की लागत भी वसूल नहीं होगी); पश्चिम बंगाल और उड़ीसा की लगभग २० प्रतिशत और और पूर्वी उत्तर प्रदेश की लगभग २० प्रतिशत, मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र में धान की फसल भी काफी खराब हो गई है, तथा कार्यों के अभाव में रीवा (विंध्य-प्रदेश का चावल कुंड) और सिधि क्षेत्र की तमाम फसल नष्ट हो गई है; कशमीर घाटी की हजारों एकड़ की धान की फसल नष्ट हो गई है। कशमीर घाटी का यह नुकसान जून, जूलाई तथा अगस्त में बाढ़ के कारण हुए नुकसान के अलावा है। इस बात की आशंका है कि वर्तमान सूखे के कारण उड़ीसा और मध्य प्रदेश की खरीफ की अतिरिक्त फसल भी पूरी तरह नष्ट हो जायगी। सामानयतः उड़ीसा लगभग २२,७०,००० टन वार्षिक खाद्यान्न का उत्पादन करता और अखिल भारतीय खाद्यान्न संग्रह में लगभग दो लाख टन अतिरिक्त खाद्यान जमा करता है।

समाचार प्राप्त हुए हैं कि गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ के लगभग ४,००० गांव वर्षा के अभाव के कारण अभाव की स्थिति में आ गये हैं। खरीफ फसल के नष्ट हो जाने के कारण राजस्थान के बारह जिलों में भी कमी की स्थिति हो गई है।

संग्रहों की स्थिति

फसल की इस स्थिति के मुकाबले में देश के पास इस समय गेहूँ और चावल का दस लाख टन का संग्रह है और पन्द्रह लाख टन खाद्यान्न के आयात का प्रबन्ध किया गया है। दस लाख टन का मौजूदा संग्रह तीन माह में समाप्त हो जाएगा। भारत के खाद्य-मंत्री ने अमरीका के कृषि सचिव से कहा है कि हमें १९५८ में कम-से-कम २० लाख टन खाद्यान्न की जरूरत पड़ेगी। सार्वजनिक ऋण ४८० कार्यक्रम के भाग के रूप में अतिरिक्त खाद्यान्न के आयात के लिए भारत की प्रार्थना के पूरा होने के बहुत कम अवसर हैं क्योंकि इस कार्यक्रम की मद में अमरीकी संसद ने जो कोष निर्धारित किया था, वह समाप्त हो गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत १७२ करोड़ रुपये की कृषि उपज का आयात किया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वित्त की कमी के विचार को सामने रखते हुए श्री बेन्सन ने भारत के खाद्यमंत्री को अमरीका के व्यापार-ऋण निगम स्कीम के अन्तर्गत कर्ज पर या अन्य उपाय से माल लेने का सुझाव दिया है। कोलम्बो योजना के अन्तर्गत कनाडा आसन्न स्थिति पर काबू पाने के लिए भारत को शीघ्र ही एक लाख टन गेहूँ भेज रहा है। योजना की शेष अवधि में खाद्यान्न की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संग्रह के निर्माण में हम आयातों पर पूरी तरह से निर्भर कर सकते हैं, यह बात संदेहपूर्ण है। अतः, यह साफ है कि हमारा जोर आन्तरिक उत्पादन को बढ़ाने पर होगा, ताकि विस्तृत माध्यमिक भाग और बढ़ती हुई गैर-काश्तकार आबादी की खाद्यान्नों की मांगों को हमारे नियोजित निवेश में बिना कटौती किये पूरा किया जा सके। इस दीर्घ अवधि प्रक्रिया को हाथ में लेने से पूर्व हमें अभावग्रस्त क्षेत्रों के लिए स्थिर वितरण को सुरक्षित करने की आसन्न समस्याओं को हल करना होगा, यह हल सट्टेबाजों और संग्रह करने वालों की कुटिल गतिविधियों को रोककर तथा उचित सीमा में मूल्य स्तर को कायम रखकर किया जा सकेगा। कुछ लोगों ने सुझाव दिया है कि १९५० के संकट के समान इस मौजूदा संकट का मुकाबला करने के लिए कुछ प्रत्यक्ष नियंत्रण लगाने आवश्यक हैं। लेकिन, मूल्य नियंत्रण के लिए किये गए हमारे काम के अनुभवों को सामने रखते हुए इन सुझावों का कोई महत्त्व नहीं है। इन सुझावों से बुनियादी समस्या हल नहीं होगी।

नियंत्रण समाधान नहीं

खाद्यान्नों की कीमतों में उभार कमजोर आर्थिक-स्थिति, जैसी कि हमारी है और जिसमें आय की राशि को सबसे पहले खाद्यान्न पर खर्च किया जाता है, की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को प्रकट करती है। अतः स्थिति का सही हल केवल मंडी में बेचने योग्य अतिरिक्त खाद्यान्न है, न कि नियंत्रण। दूसरे, अगर खाद्यान्नों की कीमतों को नियंत्रित कर दिया जाता है, तो गिरते हुए लाभ के कारण ईमानदार किसान तक भी उन व्यापारिक फसलों का उत्पादन प्रारम्भ कर देंगे जिन पर नियंत्रण नहीं होगा, और इस तरह खाद्यान्नों की कमी और बढ़ जायेगी।

तीसरे, हम यह नहीं कह सकते कि नियंत्रण को सफल रूप से चलाने के लिए हमारे पास आवश्यक प्रशासनिक शक्ति है और फिर भारत जैसे विशाल देश में नियंत्रण के प्रसार के परिणामस्वरूप कई प्रकार की विचित्र प्रशासनकि समस्याएँ भी उठ खड़ी होंगी।

चौथे, अनुभवों ने यह जाहिर कर दिया है कि हमारे यहां आवश्यक नागरिक अनुशासन का सर्वथा अभाव है, जो नियंत्रण के प्रशासन के लिए आवश्यक होता है। अन्त में, नियंत्रण से हमारी योजना के लोकतांत्रिक लक्ष्यों को आपति में डालने वाले गम्भीर राजनीतिक परिणाम भी पैदा हो सकते हैं।

हालांकि सरकार की वितरण मशीनरी ने इस ओर ध्यान दिया है, लेकिन उसे और अधिक विस्तृत किया जाना चाहिए। सूखा-ग्रस्त क्षेत्रों में यह सामान्य भावना फैली हुई है कि अगर सरकार ग्रामीण क्षेत्रों में उचित मूल्य वाली दूकानों के जरिये तेजी के कारण खाद्य वितरण का प्रबन्ध नहीं करती है, तो स्थिति को सम्भालने के लिए दी गई वित्तीय सहायता का भी कोई लाभ नहीं होगा। उचित मूल्य वाली दुकानों की उपयोगिता ऐसी दूकानों की संख्या और उनमें नियमित और सुचारु

रूप से खाद्यान्न के वितरण पर निर्भर करती है। जहां ऐसी उचित मूल्यों वाली दुकानों की संख्या को बढ़ाना जरूरी है, वहां इस बात पर भी निगाह रखना निहायत जरूरी है कि इन दुकानों को दिया जाने वाला खाद्यान्न ज्यादा लाभ कमाने वालों के हाथ में न चला जाए, जैसा कि अभी हाल ही में उत्तरप्रदेश में हुआ। साथ ही, अभाव ग्रस्त क्षेत्रों में स्थिर वितरण की राह में परिवहन, आदि की रुकावटें नहीं आनी चाहिए। रेलवे में खाद्यान्न के वितरण को मुख्य प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

जब कभी कमी की स्थिति आती है, तो नाजायज ढंग से संग्रह करनेवाले और सट्टेबाज ऊँची कीमतों की आशा में संग्रह करना शुरू कर देते हैं और इस प्रकार स्थिति को और अधिक खराब कर देते हैं। जहां रिजर्व बैंक के निर्देशन बैंकों द्वारा दिए जानेवाली ऋण को सीमित कर दिया है वहां एक अधिसूचना द्वारा राज्य सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे किसी भी संग्रहकर्त्ता के संग्रह की जांच करें और उसे अपने माल को गत तीन माह की औसत कीमत पर बेचने को कहे। इन दोनों कदमों से पर्याप्त संतोषजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं; फिर भी कीमतों पर पड़ने वाले नए दबावों की आशंका को रोकने के लिए और अधिक कठोर मुद्रा-नियंत्रण लागू किए जाने चाहिए।

संग्रह करने की समस्या का एक और पहलू ठोस काश्तकारों की "संग्रह करने की प्रवृत्ति है।" इस प्रवृत्ति का विकास विकसित आर्थिक स्थिति में बढ़ती हुई मांगों और वर्षा के अभाव के कारण होने वाली कमी के द्वारा होता है। वास्तव में, भूमि-सुधार के द्वारा भारतीय ग्रामीण आर्थिक स्थिति में लाए गए परिवर्तन इस प्रकार के हैं कि उन्होंने कृषि उत्पादन और विशेष कर मंडी में बेचे जाने लायक अतिरिक्त उत्पादन की बड़ी मात्रा को ठोस काश्तकारों के हाथ में सीमित कर दिया है।

मई १९५६ में रिजर्व बैंक आफ इंडिया ने अनुमान लगाया था कि भारत में व्यापारियों के पास खाद्यान्न का संग्रह १९५५ के संग्रह से दुगुना है। आगामी सालों के दौरान सम्भावित वितरण को प्रत्यक्षतः सम्भालने और मंडी में बेचने योग्य अतिरिक्त खाद्यान्नों को संकुचन से बचाने का एक ही रास्ता है कि या तो (१) खाद्यान्न व्यापार में से मध्यस्थों को समाप्त कर दिया जाए या लाइसेंस प्रणाली का प्रचलन किया जाए जो व्यापारियों द्वारा किये जानेवाले संग्रह को रोकना संभव कर देंगे, और (२) जहां आवश्यक हो वहां इसके स्थान पर विवेकपूर्ण अर्जन की प्रणाली जारी की जाए। इस काम के लिए, ग्रामीण क्षेत्रों में कोठागार निर्माण के दूसरी योजना के कार्यक्रम को उच्चतम प्राथमिकता देना आवश्यक है। विवेकपूर्ण अर्जन में तीन बातों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए: (१) प्राप्त की जानेवाली राशि उस व्यक्ति की अदा करने की सामर्थ्य के अनुसार होनी चाहिए जिससे राशि ली जा रही है; (२) प्रशासनिक और अन्य खर्चे अर्जन द्वारा हासिल की गई राशि के भाग से अधिक नहीं हों; (३) अर्जन का प्रभाव यह न हो कि गैर-खाद्यान्न उत्पादकों के लिए खाद्यान्न की कीमतें बढ़ जाएँ।

एक मात्र हल--उत्पादन में वृद्धि

जहां किसानों को वित्तीय सहायता, कर संग्रह रोक देना, शोषष ऋणों की अदायगी रोक देना, नौकरी के अन्य अवसर प्रदान करना, जरूरी है, वहां देश के खाद्य-उत्पादन को बढ़ाने के सवाल पर भी निरन्तर ध्यान देना जरूरी है। मूलतः कृषि प्रयत्नों का विस्तार पूरी तरह से या अधिकतर सार्वजनिक निवेश का मामला नहीं है। वल्कि उसके विरुद्ध यही एक क्षेत्र है जहां व्यक्तिगत पूंजी और व्यक्तिगत प्रयासों को प्राप्त किया जा सकता है और शीघ्रगामी परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं; बशर्तेकि दोनों को उत्पादन संबंधी सही प्रोत्साहन प्रदान किया जाए।

खाद्य-उत्पादन को भूमि की प्रत्येक इकाई की उपज और श्रम की प्रत्येक इकाई की उपज की वृद्धि के द्वारा बढ़ाया जा सकता है। अनुमान लगाया गया है कि देश में ६,९२० लाख एकड़ बंजर भूमि और ६०० लाख एकड़ कृषि योग्य बेकार भूमि है। अगर हम इस १,३०० लाख एकड़ खेती न की गई भूमि से लगभग ७५०लाख एकड़ भमि को इस्तेमाल में ले भी लें तो भी वर्तमान फसल का स्तर समान ही रहेगा। देश की वर्तमान पैदावार के आधार पर हम लगभग १६० से १७० लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न प्राप्त कर सकेंगे। कई लाख एकड़ भूमि, खास तौर पर पंजाब में, जलमग्न है और इस भूमि को कृषि योग्य बनाकर काफी खाद्य उत्पादन किया जा सकता है।

सघन खेती

सघन खेती द्वारा प्रति एकड़ उपज बढ़ाने की भी काफी संभावनायें हैं। वास्तव में, यह बात असंतोषजनक है कि जब कि चावल की खेती से चीन में प्रतिएकड़ १,६०० पौंड, मिस्र में ३,१६५ पौंड, जापान में ३,२८१ पौंड और इटली में ४,०५० पौंड चावल उत्पन्न होता है, वहीं भारत में प्रथम योजना के पश्चात् भी केवल ७०० पौंड प्रति एकड़ चावल की उपज होती है। युद्धोत्तर काल के अत्यन्त खाद्याभाव के दुर्दिनों में यह सुझाव दिया जाता था कि यदि खाद्योत्पादन बढ़ाने के लिए कुछ डेल्टा क्षेत्रों में सुव्यवस्थित प्रयत्न किये जाएं तो खाद्यान्न समस्या शीघ्र ही हल हो सकती है। इस सुझाव पर कभी अमल नहीं किया गया, किन्तु सिंचित भूमि का क्षेत्र दिनोंदिन बढ़ने के फलस्वरूप लाभप्रद ढंग की सघन खेती करने के क्षेत्र में विस्तार होता जा रहा है। दुर्भाग्य से, इतना अधिक धन व्यय करके उपलब्ध किये गये जल को उपयोग में नहीं लाया गया। इस वर्ष के प्रारम्भ में मसूरी में विकास कमिश्नरों के छठे सम्मेलन में अपने उद्घाटन भाषण में श्री वी. टी. कृष्णमाचारी ने बताया कि राज्य सरकारों का लक्ष्य ६८ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई करना था, किन्तु केवल ४० लाख एकड़ भूमि पर ही सिंचाई हुई। मूल्यांकन रिपोर्टों तथा योजना कार्यक्रमों की समिति के अनुसार, विभिन्न कारणों से किसान सिंचाई सुविधाओं का एक बड़ा भाग, चाहे वह बहुउद्देश्यीय योजनाओं से अथवा छोटी योजनाओं, जैसे ट्यूबवेल निर्माण, से प्राप्त हुई हों, उपयोग में नहीं लाते। यदि वर्तमान सुविधाओं और द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विकसित होनेवाले साधनों का पूरा इस्तेमाल किया जाय तो देश में लाखों मन अधिक अनाज पैदा किया जा सकता है।

सिंचाई सुविधाओं का पूर्णतर उपयोग

इस समस्या के कुछ पहलुओं पर संजीदगी से विचार करना जरूरी है। सर्वप्रथम, कृषक के पुराने और रूढ़िवादी दृष्टिकोण को बदलना होगा, जो कि पुरातन काल से एक विशेष तरीके से खेती करता आया है। वह वर्ष में एक ही फसल पैदा करता है और उसका विश्वास है कि भूमि को बहुत अधिक नमी देने से, जैसा कि सिंचाई सुविधाओं के उपयोग से होगा, फसल खराब हो जाती है। बृहद रूप से विस्तार कार्यक्रमों को विकसित करके किसानों को खेती के नये तरीके अपनाने और वर्ष में दो फसलें उगाने का प्रयत्न करने के लिए राजी किया जा सकता है। उचित ढंग से प्रदर्शन, रासायनिक खादों की उचित मात्रा में पूर्ति, सुधरे बीज और औजारों से भी इस कार्य में मदद मिलेगी। हाल में श्रीनगर में हुई राज्य कृषि मंत्रियों के सम्मेलन में श्री अजितप्रसाद जैन ने कहा कि किसानों को सिंचाई-प्राप्त खेतों में बोई जाने वाली फसलों को उचित मात्रा में पानी देने और फसल बुआई में परिवर्तन, आदि सम्बन्धी मामलों में विस्तार सेवाओं द्वारा सलाह दिये जाने की जरूरत है।

सिंचाई सुविधाओं का उपयोग न किये जाने का एक और कारण जल-कर अथवा सुधार-टैक्स देने के प्रति विरोध है। तीसरी विचारणीय बात यह है कि बड़े और छोटे सिंचाई-कार्यों से खेतों तक जल ले जाने का कार्य साथ-साथ पूरा हो जाना चाहिए ताकि सिंचाई सुविधाओं के संपूर्ण होने और नदी-नालों आदि के निर्माण के बीच अनावश्यक रूप से समय नष्ट न हो।

जहां तक ट्यूबवेलों का सम्बन्ध है, प्रथम योजना में लगभग ५,६०० नलकूप निर्मित किये गये थे और प्रायः ४,००० और ट्यूबवेल द्वितीय योजनाकाल में स्थापित करना निर्धारित किया गया है। अभी तक लगाये गये ट्यूबवेलों से २० लाख एकड़ भूमि को सींचा जा सकता था, जिससे लगभग १० लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पन्न हो सकते थे। लेकिन, अभी तक ऐसी कुल सिंचाई सुविधा में से केवल ५० प्रतिशत ही उपयोग में लायी गयी है। इसका कारण यह बताया जाता है कि ट्यूबवेलों को शक्ति प्रदान करना और पानी के लिए नाले, आदि बनाना राज्य सरकारों का काम था और इसमें उनके कार्य की प्रगति ट्यूबवेल लगाने के साथ-साथ नहीं रही।

केन्द्रीय सरकार ने अभी हाल में राज्य सरकारों को यह सुझाव दिया है कि नदी और ट्यूबवेल सिंचाई सुविधाओं के जल-कर को संयुक्त किया जा सकता है। इससे किसान संतुष्ट ही होंगे, यद्यपि नदी-जल-कर में पहले से कुछ वृद्धि होगी। किन्तु इससे निश्चय ही ट्यूबवेल के पानी की दर कम होगी। राज्य कृषि-मंत्रियों ने भी कई प्रस्ताव स्वीकार किये। अगर इन प्रस्तावों को सही मानों में कार्यान्वित किया जाय, तो इससे कृषकों को निस्संदेह बहुत अधिक लाभ होगा।

सुधरे बीजों का प्रयोग

कृषि की उत्पादकता में वृद्धि का सुधरे बीजों से सीधा सम्बन्ध है। योजना में यह लक्ष्य निर्धारित किया गया था कि योजना काल के प्रथम तीन वर्षों में बीज-वृद्धि फार्म स्थापित कर दिये जायेंगे, ताकि योजना-अवधि में ही अतिरिक्त उत्पादन के लाभ प्राप्त हो सकें। लेकिन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की स्थायी विशेषज्ञ समिति द्वारा हाल में की गयी एक समीक्षा से निराशापूर्ण परिणाम सामने आते हैं। साथ ही, प्रत्येक सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार खंड में २५ एकड़ भूमि पर स्थापित किये जानेवाले फार्म के ढांचे में भी बहुत परिवर्तन कर दिये गये हैं। श्रीनगर सम्मेलन में केन्द्रीय खाद्यमंत्री ने बताया कि बीज फार्म और विस्तार व विकास खंड को एक ही क्षेत्र में रखने का अभिप्राय यह है कि सुधरे बीजों का प्रचलन बढ़ाने की जिम्मेदारी खंड अधिकारियों, विशेषतया ग्राम-सेवकों, पर डाली जाय। अतः यह आवश्यक है कि इस व्यवस्था को पूरी तरह अपनाया जाय।

हरी खाद और खाद प्राप्ति के स्थानीय साधन

विदेशों से नाइट्रोजन-तत्त्व प्रधान रासायनिक खादों के आयात पर रुकावटें लगने के फलस्वरूप हरी खाद का प्रचलन बढ़ाने और खाद के स्थानीय साधनों को विकसित करने पर अधिक बल दिया जाने लगा है। श्रीनगर सम्मेलन ने इस क्षेत्र में धीमी प्रगति पर चिन्ता प्रकट की और सुझाव दिया कि सभी राज्यों में इस ओर गहन प्रयत्न किये जायं ताकि दो वर्ष के भीतर ही प्रत्येक आराजी इस काबिल हो जाय कि वह अपने खेत की सीमाओं और फालतू भूमि में बीज की उपज करके अपनी हरी खाद की आवश्यकताओं को पूरा कर सके।

जहां तक खाद के स्थानीय साधन विकसित करने का प्रश्न है, २,००० पंचायतों से अधिक को मल, आदि से खाद बनाने के लिए मंजूरी दी जा चुकी है। लेकिन अभी इस कार्य के लिए पंचायतों का चुनाव करना बाकी है। श्रीनगर सम्मेलन ने इस बात पर जोर दिया है कि पंचायतें चुनने का काय शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न होना चाहिए और १९६०-६१ तक कम-से-कम ६,००० पंचायतें इस प्रकार की खाद बनाने के कार्य में संलग्न हों जायं। इसने यह भी सुझाव दिया कि छोटे गांवों में खाद बनाने की एक मार्ग-प्रदर्शक योजना भी शीघ्र ही बनायी जानी चाहिए, और विकास और विस्तार-खंडों तथा पंचायतों में अधिकतम मात्रा में ऐसी खाद बनाने और इस्तेमाल करने वालों को उचित इनाम दिये जाने चाहिये।

रासायनिक खादों का महत्व

कृषि उत्पादन कार्यक्रमों पर रासायनिकों के अभाव के सम्भावित प्रभाव पर भी श्रीनगर सम्मेलन में काफी विचार किया गया। जापानी ढंग पर धान की खेती करने के लिए रासायनिक खादों की उपलब्धि एक शर्त है। द्वितीय योजना काल में जापानी ढंग से धान की खेती करने का लक्ष्य ८० लाख एकड़ रखा गया है, जिसमें से १९५७-५८ के लिए ३५ लाख एकड़ का लक्ष्य है। यह अन्दाज लगाया गया है कि जनवरी १९५७ से मार्च १९५८ तक १३.४८ लाख टन अमोनियम सल्फेट की आवश्यकता होगी और देश में ३.०६ लाख टन की कमी होगी। अप्रैल १९५८ से मार्च १९५९ के बीच राज्य सरकारों को सम्भवतः १४.५ लाख टन अमोनियम सल्फेट की जरूरत होगी, इसके विपरीत आन्तरिक उत्पादन से केवल ५.४ लाख टन की पूर्त्ति हो सकेगी, अर्थात् ९.१ लाख टन खाद की कमी रहेगी। क्योंकि ३ लाख टन अमोनियम सल्फेट का आयात करने की स्वीकृति दी गयी है, कुल कमी ६.१ लाख टन की होगी। अतः श्रीनगर सम्मेलन ने सुझाव दिया है कि रासायनिक खादों की कमी को अन्य साधनों से पूरा करने के लिए अभी से प्रयत्न किये जाने चाहिए और नाइट्रोजन-तत्त्व प्रधान साधनों, जैसे अभोज्य तेलयुक्त पदार्थों आदि का प्रचार किया जाना चाहिये।

उत्पादन बढ़ाने के अन्य तरीके

प्रति एकड़ उत्पादन में कई और तरीकों से भी काफी वृद्धि की जा सकती है, जसे कृषिगत भूमि का बेहतर उपयोग, फसलों का बचाव, व्यर्थ छोड़ी जाने वाली भूमि का सही इस्तेमाल (भारत में प्रतिवर्ष कुल कृषिगत भूमि के १० प्रतिशत भाग को खाली छोड़ दिया जाता है, जबकि मुख्य फसलों के अतिरिक्त चारे, आदि की भी बहुत सख्त जरूरत रहती है और जिसे सुगमता व

लाभपूर्ण ढंग से इस पर उगाया जा सकता है), कम गहरी गुड़ाई (इससे उपज में कम से कम २५ प्रतिशत वृद्धि होती है), आदि। असिंचित क्षेत्रों में पानी रोकने और सूखी खेती करने के तरीकों पर जोर दिया जाना चाहिए। यद्यपि पानी रोकने के लिए अभी प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की कमी है, तथापि राज्य सरकारों ने केन्द्रीय सरकार द्वारा मुहय्या की गई प्रशिक्षण सुविधाओं का पूरा लाभ उठाने के प्रति उत्सुकता नहीं दिखाई।

श्रीनगर सम्मेलन ने यह देखते हुए, कि असिंचित क्षेत्रों में ज़ल रोक़ने और सूखी खेती करने से उपज में लगभग ५० प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है, सुझाव दिया है कि राज्य सरकारें प्रति वर्ष ५० एकड़ के ब्लाक में १० एकड़ पर जल-रुकाव प्रदर्शन योजनायें चालू करें, जिनसे प्रतिवर्ष कुल का पांचवां हिस्सा लाभान्वित हो, और इस प्रकार पांच वर्षों में ऐसी सारी भूमि पर उपरोक्त ढंग से काश्त होने लगे। राज्यों को चाहिए कि वे अन्य सुझावों की तरह, इसे भी उच्च प्राथमिकता दें।

शीघ्र भूमि-सुधार

योजना में भूमि-सुधार कार्यक्रम बहुत सावधानी और सतर्कता से नियोजित किये गए थे, लेकिन उनके कार्यान्वयन संबंधी निर्णय न लिये जाने और विलम्ब होने से पैदा हुई अनिश्चितता के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि करने में रुकावटें पैदा हो रही हैं। कृषकों से उत्पादकता बढ़ाने की आशा कैसे की जा सकती है, जबकि भूस्वामियों द्वारा भूमि-हस्तांतरण के पर्दे में काश्तकारों की बेदखलियों का क्रम जोरों पर है? कई राज्यों में अभी तक भूस्वामियों द्वारा भूमि-हस्तांतरण के लिए कोई अवधि निश्चित नहीं की गयी और न ही काश्तकारों को बेदखली या स्वेच्छिक भूमि वापस करने से बचाने का प्रभावपूर्ण प्रयत्न ही किया गया है। मुजारों को हस्तांतरित न की जा सकने वाली भूमि की आसान किश्तों पर मिल्कियत दिलाने के लिए जरूरी कदम उठाये जाने चाहिये, ताकि उनका सीधा सम्बन्ध सरकार से स्थापित हो सके।

इसी प्रकार, आराजी की उच्चतम सीमा निर्धारित करने और चकबन्दी कार्यक्रम को पूरा करने में अनावश्यक देरी हो रही है। अनिश्चितता की अवस्था में मालिक भूमि में कोई पूंजिगत व्यय करने से हिचकिचायेगा, और यह अनिश्चितता तभी दूर हो सकती है जब आराजी की उच्चतम सीमा निर्धारित करके उसे लागू कर दिया जाय। जिन राज्यों ने इस ओर आवश्यक विधेयक पास किये हैं, उन्हें एक निश्चित अवधि में कार्यक्रम को कार्यान्वित करने का विश्वास दिलाना चाहिये। जिन राज्यों ने सीमा-निर्धारण सम्बन्धी विधेयक पास नहीं किये, उन्हें भी एक निश्चित काल में जरूरी कार्यवाही पूरी करनी चाहिये।

द्वितीय योजना में आराजी चकबन्दी को कृषि-उत्पादन कार्यक्रम का अविभाज्य अंग माना गया है। केन्द्रीय खाद्य और कृषि मंत्रालय ने चकबन्दी को 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन का भाग मानकर उसके लिए सहायता देना स्वीकार कर लिया है। आशा की जाती है कि राज्य सरकारें पर्याप्त संगठन की व्यवस्था करेंगी और अपने कर्मचारियों के लिये अविलम्ब आवश्यक प्रशिक्षण सुविधाएँ उपलब्ध करेंगी। श्रीनगर सम्मेलन ने भूमि-सुधारों की धीमी प्रगति पर चिन्ता व्यक्त की और केन्द्रीय और राज्य सरकारों से जोरदार शब्दों में कहा कि आवश्यक वैधानिक कार्यवाही की रफ्तार तेज की जाय ताकि किसान अपनी पूर्ण ताकत कृषि का उत्पादन बढ़ाने में लगा सकें। अब जबकि भूमि-सुधारों की प्रगति और उनके प्रभावों की जांच करने के लिए एक-जैसा ढांचा निर्मित करने के लिए एक निर्देश समिति स्थापित हो चुकी है, राज्यों में भूमि-सुधार कार्यक्रमों के अविलम्ब क्रियान्वयन और उनसे प्राप्त होने वाले कृषि-उत्पादन की लाभ की आशा की जा सकती है।

कृषि की व्यवस्था को सुदृढ़ एवं सुचारु बनाने के लिए सहकारी खेती सबसे महत्त्वपूर्ण साधन प्रस्तुत करती है। एक अकेला कृषक, जो अशिक्षित अथवा बहुत कम शिक्षित है, और जिसके पास साधनों का अभाव है, चाहे कृषि को बेहतर बनाने और उत्पादन बढ़ाने की उसकी इच्छा कितनी भी प्रबल क्यों न हो, ऐसा करने में असमर्थ होगा। इसके विपरीत, सहकारी खेती समितियों के अन्तर्गत साधनों के एकत्रीकरण और सामूहिक प्रयत्नों से निश्चय ही बेहतर परिणाम हासिल होंगे। वर्तमान १,५०० सहकारी खेती समितियों के अनुभवों से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। इस प्रकार के १०,००० नये प्रयोग करने में हमें चीन के अनुभवों से भी काफी लाभ हो सकता है। इन प्रयोगों द्वारा हम देश की अपनी प्रतिभा के अनुसार अपने ढंग की व्यवस्था प्रारम्भ कर सकते हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि श्रीनगर सम्मेलन ने सहकारी खेती की कोई चर्चा नहीं की। राष्ट्र के सम्मुख खाद्यान्न समस्या की यह मांग है कि देश के किसान पूरी तन्मयता और संजीदगी के साथ सहकारी खेती को अपनाएं और सरकार भी इस कार्य में किसानों के सम्मुख आने वाली कठिनाइयों को दूर करने में सहायता करेगी। विशेष रूप से, सिंचित क्षेत्रों और ग्रामदान में मिले ग्रामों में सहकारी खेती (जिसमें काश्त के लिए भूमि एकत्र की जायगी लेकिन सबकी मिल्कियत अपनी-अपनी रहेगी) के लिए उत्तम वातावरण मौजूद है। इस समय करीब-करीब ३,००० ग्रामदान के गांव हैं, जिनमें १००-१०० एकड़ की सहकारी खेती समितियां फौरन आरम्भ की जा सकती हैं, और जिनके परिणाम आशामय होने की पूरी उम्मीद है।

सुनील गुहा

आर्थिक टिप्पणियां

मुद्रा कोष में कमी

जैसा कि प्रतिपादित किया गया था, भारतीय रुपये के लिए न्यूनतम मुद्रा कोष की परिनियत मात्रा गत ३१ अक्तूबर को एक अध्यादेश द्वारा बहुत कम कर २०० करोड़ रुपये निश्चित कर दी गयी। संशोधन से पहले की न्यूनतम मात्रा में ४०० करोड़ रुपये की विदेशी सिक्योरिटियां तथा ११५ करोड़ रुपये का सोना था; अब ११५ करोड़ रुपया सोने के रूप में होगा। इस कदम से भारत अपनी तात्कालिक विदेशी विनिमय की कठिनाइयां हल करने में समर्थ हो जायगा। संसद के चालू अधिवेशन के दौरान भारत सरकार द्वारा रिजर्व बैंक आफ इंडिया के विदेशी मुद्रा कोष की परिनियत न्यूनतम मात्रा को घटाने के लिए रिजर्व बैंक आफ इंडिया अधिनियम में संशोधन लाने के ध्येय से एक विधेयक पेश करने की संभावना है। प्रस्तावित संशोधन रिजर्व बैंक को अपना मुद्रा संरक्षित कोष १०० करोड़ रुपये तक घटाने की अनुमति देता है। अध्यादेश द्वारा रिजर्व बैंक अधिनियम में किये गये एक दूसरे संशोधन के कारण बैंक भारत सरकार की पूर्वानुमति प्राप्त कर ८५ करोड़ रुपये तक की चालू सिक्योरिटियां पास रख सकता है। इस तरह नयी यवस्था से द्वितीय योजना के लिए स्टर्लिंग सिक्योरिटियों के रूप में २४३ करोड़ रुपये की अतिरिक्त उपलब्धि होगी। गत १५ अगस्त १९५७ के हमारे 'रेव्यू' में प्रकाशित "विदेशी विनिमय की समस्या" शीर्षक लेख में हमने यह सुझाव दिया था कि चूंकि मुद्रा संरक्षित कोष संकटों के समय प्रयोग के लिए समझा गया है, हम मुद्रा संरक्षित कोष को इस्तेमाल न करने की धारणा मिटा दें और हमारी सरकार स्टर्लिंग कोष में ४०० करोड़ रुपये से बहुत कम धन रखने के अधिकार ले ले। हमने यह भी बताया था कि ऐसा कदम विदेशों में भारतीय रुपये की शक्ति पर नुकसानदेह प्रभाव नहीं करेगा। भारत सरकार के मुख्य वित्त सचिव, श्री एच. एम. पटेल ने कहा है कि रिजर्व बैंक आफ इंडिया एक्ट को संशोधित करने वाला यह अध्यादेश भारत के विदेशी ऋण में कमी नहीं लायेगा, और कि संशोधन से विदेशी सम्पत्तियों की कानूनी आवश्यकताएं देश की चालू आवश्यकताओं के ज्यादा अनुकूल हो जायंगी तथा यह द्वितीय योजना के क्रियान्वयन के लिए जरूरी लोचशीलता सम्भव बनाएगा।

इस अध्यादेश ने ब्रिटेन में कोई आश्चर्य नहीं पैदा किया। **दी टाइम्स** के नगर सम्पादक ने, जिन्हें मौद्रिक मामलों पर अधिकारी माना जाता है, कहा कि चूंकि भारत अपने निर्यात की आयों तथा विदेशी सहायता पर पूरी तरह से निर्भर नहीं कर सकता अतः भारतीय अधिकारियों को कुछ परेशानियों से बचाने के लिए आयातों में और कमी का आदेश दिया जाना लाजिमी था। **फाइनेंशियल टाइम्स** ने कहा कि इस कदम से ब्रिटेन को दो किस्म के नुकसान होंगे: प्रथम, जिस हद तक यह मुद्रा ब्रिटेन की वस्तुओं पर खर्च की गयी, उस हद तक बदले में लाभ-स्वरूप कोई विदेशी मुद्रा प्राप्त न करते हुए ब्रिटेन भारत को निर्यात करता रहेगा और दूसरे, जिस हद तक मुद्रा स्टर्लिंग क्षेत्र के बाहर खर्च होती है, उसके लिए वह लंदन से स्वर्ण और संरक्षित डालर की मांग करेगा। **दी मैन्चेस्टर गार्जियन** ने भी व्यक्त किया है कि 'स्टर्लिंग पद्धति' उसके सदस्यों के बीच अच्छे सहयोग और पारस्परिक विचारशीलता पर निर्भर करती है। एक महत्त्वपूर्ण सदस्य से इस तरह का सहयोग न मिलना, हालांकि वह सदस्य परिस्थितियों का शिकार है, ढांचे पर सहन शक्ति से कहीं ज्यादा भार रखना साबित हो सकता है। कुछ भी हो, द्वितीय योजना में सफलता पाने के लिए अपने स्टर्लिंग कोष को प्रयोग में लाते हुए हम अपनी ही मुद्रा का इस्तेमाल कर रहे हैं जिसे हमने ज्यादातर ब्रिटिश शासन काल में एकत्र किया था और जिसका निश्चित ध्येय युद्धोपरान्त आर्थिक विकास ही था। ऐसी परिस्थितियों से हमें दुख है। लेकिन इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता भी तो नहीं था। फिर भी, हमें यह देख कर प्रसन्नता है कि अक्तूबर १९५७ में स्टर्लिंग क्षेत्र के स्वर्ण तथा डालर संरक्षित कोषों में २,४३० लाख डालर की वृद्धि हुई और उस माह के अन्त में कुल रकम २०,९३० लाख डालर थी।

निर्यात प्रोत्साहन समिति की रिपोर्ट

इसी वर्ष फरवरी में नियुक्त निर्यात प्रोत्साहन समिति की रिपोर्ट अभी-अभी प्रकाशित की गयी है। समिति ने अपनी सिफारिशों को अधिकतम निर्यात की आवश्यकताओं पर आधारित किया है। वे हैं: उत्पादन में, विशेषतया कृषि उत्पादन में एक स्थिर वृद्धि, मूल्यों को प्रतियोगिता के स्तरों पर कायम रखना; आन्तरिक उपभोग में कुछ कमी कर भी निर्यातों को प्रोत्साहन; निर्यात वस्तुओं और मंडियों में विविधता लाना; जिन वस्तुओं का पहले से निर्यात होता आया है उनके नये नये प्रयोगों की खोज, तथा उनका नये ढंगों पर आन्तरिक उत्पादन। समिति की मुख्य सिफारिशें चार भागों में बांट दी गयी हैं, जैसे उत्पादन बढ़ाने के लिए कदम उठाना, निर्यातकों को प्रोत्साहन, बेहतर ऋण सुविधाएं तथा अपने अनुकूल व्यापारिक समझौते। समिति ने, विशेष रूप से, तिलहन तथा कपास के उत्पादन पर बहुत जोर दिया है और व्यक्त किया है कि निर्माण करने की लागत को उत्पादन के नये तरीके प्रयोग कर घटाया जाय, उपरी खर्च कम किये जायं और श्रम उत्पादकता बढ़ायी जाय। समिति ने यह भी सिफारिश की है कि अन्य बहुत से देशों की तरह ही यहां भी भाड़े की वर्तमान व्यवस्थामें उचित परिवर्तन लाकर तथा सड़क यातायात की कठिनाइयों को दूर कर आयात की गयी वस्तुओं पर यातायात व्यय कम किया जाय। जहां तक निर्यातों पर कर लगाये जाने का संबंध है, समिति ने उत्पादन कर तथा विक्रय कर से निर्यात की वस्तुओं को पूर्णतया मुक्ति और निर्यात करों में कमी करने की सिफारिश की है। निर्यातकों को काफी प्रोत्साहन दिये जाने की भी समिति द्वारा सिफारिश हुई है, जिसमें आय कर से छूट है, जो कि निर्यातों की वास्तविक वृद्धि, निर्यातक के कुल निर्यात तथा उसके द्वारा दिये जाने वाले आय कर पर निर्भर करेगी। आगे चल कर समिति सिफारिश करती है कि सरकार निर्यात-वृद्धि, देख-रेख, आदि के साधनों के रूप में सार्वजनिक या निजी एकहरी एजेंसियों द्वारा निर्यातों को बढ़ाने की छानबीन करे, चाहे एकहरी एजेंसी का चुनाव व्यावहारिक आधारों पर ही क्यों न हुआ हो।

समिति के अनुसार हमारे निर्यात व्यापार का एक बड़ा ही दुःखद पहलू यह रहा है कि विदेशों में हमारी वस्तुओं का पर्याप्त प्रचार नहीं किया जाता है। इस संबंध में हम आपका ध्यान विशेष रूप से पश्चिमी जर्मनी को गये एक औद्योगिक शिष्ट मंडल के इस निष्कर्ष की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं कि भारत, पश्चिमी जर्मनी की मंडी की अत्यधिक संभावनाओं का सदुपयोग करने में खास तौर से इस कारण से असमर्थ है कि वहां की जनता और व्यापारी उन वस्तुओं से, जिन्हें वह भेंट कर सकता है, करीब-करीब नहीं के बराबर परिचित है। समिति और अधिक प्रचार, पैकिंग, लेबिल लगाने, आदि में भी और ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता पर जोर देती है। समिति, विदेशी विनिमय के साधनों की कमी को ध्यान में रखते हुए, इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि द्वितीय योजना के अन्त के लिए निर्धारित ६१५ करोड़ रुपये के निर्यात लक्ष्य की जगह इसे काफी बढ़ाकर ७०० करोड़ रुपये से ७५० करोड़ रुपये वार्षिक कर देना पड़ेगा। समिति की रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि यूरोपीय सामान्य मंडी बन जाने पर भारत को किस तरह नुकसान पहुंच सकता है। रिपोर्ट की जांच सरकार द्वारा की जा रही है और व्यावहारिक सिफारिशों को जल्दी क्रियान्वित किया जायगा।

विदेशी कम्पनियों में भारतीयों की वृद्धि

विदेशी कम्पमियों में भारतीयों को रोजगार दिलाने के संबंध में भारत सरकार की प्रोत्साहक नीति जारी है, साधारण परिवत्तनों के दौरान किसी विदेशी को नौकरी से हटाये बगैर सिर्फ शिक्षित भारतीयों को रोजगार देने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। यह देखने में आया है कि विदेशी प्राविधिक एवं प्रबंधक कर्मचारियों में किसी किस्म की कमी आये बिना विदेशी कम्पनियों में भारतीय कर्मचारियों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही है। यह सूचना भारत सरकार द्वारा जारी की गयी एक सार्वजनिक प्रश्नावली के उपरान्त प्रकाश में आये एक विश्लेषण में मिलती है। याद रहे, इस में विदेशी कम्पनियों से उनके यहां काम करने वाले भारतीयों के विवरण की मांग की गयी थी। विश्लेषण से पता चलता है

कि विदेशी व विदेशियों द्वारा नियंत्रित कम्पनियों में पिछले दस वर्षों में भारतीयों की संख्या १० गुनी बढ़ी है। १ जनवरी १९५७ को १,००० रु० या उससे अधिक वेतन पाने वाले विदेशियों की संख्या ६,०२५ और भारतीयों की ५,६१४ थी।

अलग-अलग वेतन-वर्गों को देखने पर पता चलता है कि १,००० रुपये और उससे ऊपर, १,०००-१,५०० रुपये के वेतन-वर्ग में भारतीयों की संख्या ८० प्रतिशत है, पिछले वर्ष (१९५६) में यह संख्या ६७.९ प्रतिशत और १९५५ में ६१.५ प्रतिशत थी। इसके अगले वेतन वर्ग अर्थात् १,५०१—३,००० रुपये तक के पद पर ४०.९ प्रतिशत भारतीय थे। सन् १९५६ में यह ३४ प्रतिशत और १९५५ में २७.४ प्रतिशत थे। ३,००० रु० से ऊपर तनख्वाह पाने वालों यानी, सबसे ऊंचे वेतन वर्ग में सिर्फ ११.४ प्रतिशत ही भारतीय थे, जो पिछले दो वर्षों से कहीं ज्यादा, अर्थात् १९५६ में १०.६ प्रतिशत और १९५५ में ७.० प्रतिशत। विदेशी कम्पनियों के निम्नांकित ११ समूहों में विदेशियों का अनुपात आधे से कम था : चीनी और शराब बनाना (४८.० प्र. श.); मशीन, पुर्जे, साज-सामान तथा इंजीनियरिंग कम्पनियां (४५.१ प्र. श.); मुद्रण, प्रकाशन तथा स्टेशनरी एवं तत्संबधी व्यापार (४३.४ प्र. श.); कपास की मिलें और प्रेस (४०.७ प्र. श.); धातु, जिनमें इस्पात और लोहा शामिल हैं (३८.३ प्र. श.) ; रसायन तथा तत्संबधी व्यापार (३५.२ प्र. श.) ; तेल कम्पनियां (३३.१ प्र. श.); कोयला कम्पनियां (३१.२ प्र. श.); चमड़ा और रबड़ (व्यापार और उत्पादन) कम्पनियां (२८.५ प्र. श.); सार्वजनिक लाभ कम्पनियां (२७.४ प्र. श.), तथा अन्य सभी कम्पनियां (४९.३ प्र. श.)।

भारत सरकार
के वाणिज्य और उद्योग मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित
'उद्योग-व्यापार पत्रिका'
★ प्रमुख व्यापारी और औद्योगिक इसे प्रतिमास पढ़ते हैं।
★ देश के कोने-कोने में यह मंगाई जाती है।
★ व्यापार और उद्योग सम्बन्धी प्रामाणिक लेख, जानकारी और आंकड़ों का यह साधन है।
प्रतिमास ठोस सामग्री युक्त बड़े आकार के ८०-९० पृष्ठ : मूल्य केवल ६ रु० वार्षिक।
एजेण्टों को भरपूर कमीशन। विज्ञापन देने का अचूक अवसर
ग्राहक बनने, एजेन्सी लेने अथवा विज्ञापन छापने के लिए
आज ही पत्र लिखिए—
सम्पादक
उद्योग-व्यापार पत्रिका
व्यापार और उद्योग मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

प्रेमप्रकाश शर्मा

नये प्रकाशन

दीवान-ए-जफ़र : सम्पादक—श्री बालमुकुन्द मिश्र; प्रकाशक—दिल्ली पुस्तक सदन, १२६, कमला मार्केट, नई दिल्ली; —मूल्य पांच रुपए।

प्रस्तुत पुस्तक दिल्ली के आखिरी ताजदार बादशाह बहादुर शाह जफ़र के कलाम का संग्रह है। बहादुरशाह बादशाह से अधिक शायर थे। 'वह प्रकृति माता के उदर से ही अपने सीने में कवित्त लेकर आये थे।' जफ़र के कलाम में मुहब्बत है, परेशानी है, बेचैनी है, निराशा है, अपनों के प्रति शिकायत है, शिकवा है और है नश्वर संसार के प्रति उदासीनता की भावना। शृंगार, करुण और शांत रस में उन्होंने खूब लिखा है। जफ़र निरे शायर ही नहीं थे, शैलीकार भी थे। कठिन से कठिन विषयों, अटपटे और बेहद मुश्किल रदीफ-काफियों के इस्तेमाल में उन्हें बेहद आनन्द मिलता था। उन्होंने लम्बी से लम्बी और छोटी से छोटी पंक्तियों की कविताएं कही हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री बालमुकुन्द मिश्र ने शायर के सभी रूपों को बहुत सशक्तता के साथ पेश किया है। उनका यह संकलन उर्दू के एक शायर के कलाम का, अन्य कई इसी क्रम की पुस्तकों के समान, केवल हिन्दी-रूपान्तर मात्र नहीं है। पुस्तक के निर्माण में जिस ईमानदारी, जिस लगन के साथ श्रम किया गया है, उसकी झलक पुस्तक के पन्ने-पन्ने से झलकती है। आरम्भ के पच्चीस पृष्ठों में शायर के जीवन और उसकी शायरी का विशद विवेचन किया गया है। 'जफ़र की शायरी' और 'प्रकाशन-क्रम' वाले भाग की सामग्री को पढ़कर अनायास ऐसा महसूस होता है, मानो सम्पादक ने जफ़र पर एक छोटा-सा 'थीसिस' लिखा है। इसके अलावा, सम्पादक ने उर्दू के उच्चारण को सुरक्षित रखने का अपनी पुस्तक में पर्याप्त प्रयास किया है। विभिन्न जुम्लों-निशानों आदि के द्वारा प्रयोग में उर्दू के शब्दों को ज्यों का त्यों पेश किया गया है।

हालांकि जफ़र ने बहुत लिखा है और खूब लिखा है, लेकिन फिर भी बदकिस्मती से एक शायर के रूप में उन्हें वह रुतबा, वह इज्जत हासिल नहीं हुई, जो उनके सम-सामयिक अन्य शायरों को हासिल हुई है। किसी कदर इनका सबब उसका बादशाह होना है। श्री मिश्र का यह संग्रह अनायास ही हिन्दी भाषियों से शायर जफ़र को उसका वाजिब रुतबा दिला देगा, ऐसी उम्मीद है। और इतना ही भर नहीं, साहित्य के आदान-प्रदान के क्षेत्र में यह प्रयास प्रशंसनीय और पथ-प्रदर्शनीय भी साबित होगा। निस्संदेह, प्रस्तुत पुस्तक के रूप में "इस क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ है।"

अठारह सौ सत्तावन : लेखक–श्री निवास गालाजी हर्डिकर; प्रकाशक–सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; मूल्य—ढाई रुपए।

१८५७ के ऐतिहासिक स्वतंत्रता संग्राम के सम्बन्ध में इधर कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। सभी ने घटनाओं और तथ्यों का अपने-अपने ढंग से ब्योरा पेश किया है। तथ्यों के संबंध में एक राय का अभी तक अभाव है। फलतः इतिहास के विद्यार्थियों और विशेषकर १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में दिलचस्पी रखने वाले पाठकों में एक उलझन-सी अभी कायम है। एक ओर ऐसे इतिहासकार हैं जो यह मानते हैं कि १८५७ का युद्ध देश की स्वतंत्रता के लिए किया गया प्रथम प्रयास था; दूसरी ओर, ऐसे इतिहासकार हैं जो इसे केवल सिपाही विद्रोह मात्र मानते हैं। कुछ ऐसे भी इतिहासकार सामने आये हैं, जो इसे स्वार्थों के लिए किया गया संघर्ष मात्र मानते हैं। श्री हार्डीकर किसी कदर पहली श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। श्री हार्डीकर की यह पुस्तक "हमारे राष्ट्रीय पुरुषार्थ की इस महान् घटना का गौरवमय इतिहास न होना हमारे राष्ट्रीय सम्मान के लिए ठेस पहुँचाने वाली बात थी" की प्रतिक्रियास्वरूप किया गया प्रयास है। पुस्तक में ऐतिहासिक तथ्यों को प्रमाणित साबित करने पर आवश्यक जोर न देकर लेखक

ने उन्हें वर्णनप्रधान और रोचक बनाने का प्रयास अधिक किया है। निस्संदेह, पुस्तक की भाषा और शैली काफी रोचक, और सजीव है। इतिहास की-सी नीरसता और बोझिलता से पुस्तक बिल्कुल मुक्त है।

जीवन ज्योति : लेखक--श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति; प्रकाशक--राजपाल एण्ड संस, दिल्ली; मूल्य--तीन रुपए।

नव शिक्षितों और मैट्रिक तक के छात्रों के लिए इधर देश-विदेश के महापुरुषों पर जीवन-संबंधी लेखों की बाढ़-सी आयी हुई है। प्रस्तुत पुस्तक में भी भारतीय महापुरुषों के जीवन-संबंधी १३ लेख संगृहीत हैं। भाषा, शैली और सामग्री के दृष्टिकोण से लेख पर्याप्त सबल और सजीव हैं, किन्तु पुस्तक के लिए किया गया महापुरुषों का चयन बहुत अटपटा-सा है। लेखों का क्रम भी बहुत अव्यवस्थित है। नव शिक्षितों और छात्रों के लिए पुस्तक काफी उपयोगी है।

मील के पत्थर : लेखक--श्री रामवृक्ष बेनीपुरी; प्रकाशक--सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; मूल्य--दो रुपए।

मील के पत्थर हिन्दी के प्रतिष्ठा-लब्ध शब्द-शिल्पी श्री रामवृक्ष बेनीपुरी के कुछ चुने हुए रेखा-चित्रों और संस्मरणों का संग्रह है। पुस्तक में भारतीय नेताओं, चिंतकों एवं लेखकों के अलावा अनेक विदेशी लेखकों और कलाकारों के १५ स्केच और संस्मरण संगृहीत हैं। गिने-चुने शब्दों में एक बड़ी बात कह देना, वृहद रूप उपस्थित कर देना ही बेनीपुरी जी की लेखनी का विशेष गुण है। इस फन में उनका सानी शायद ही कोई मिले। 'माटी की मूरतें' और 'गेहूँ और गुलाब' द्वारा उनकी लेखनी के इस जौहर से सारा हिन्दी संसार परिचित है। प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा उन्होंने अपने स्केचों के क्षेत्र में एक और मील का पत्थर स्थापित कर दिया है। छोटे-छोटे वाक्यों, सरल प्रवाहमयी भाषा में देश-विदेश के लेखकों-कलाकारों का व्यक्तित्व एक अनोखे ढंग से चमक उठा है। इन स्केचों में 'हमारे राष्ट्रपति' हैं, यूरोप के कलाकार हैं, बापू हैं, विनोबा हैं, 'एक भारतीय आत्मा' है, प्रेमचन्द हैं, आचार्य नरेन्द्रदेव हैं, 'कथा के जादूगर' हैं, 'भूख और कला' है, 'रोटी और शराब' है, और इन सब में हैं बेनीपुरी की चुहल, चुटकियां, सरलता और सूक्ष्म दृष्टि।

श्री बेनीपुरी के ये स्केच और संस्मरण अपनी शैली को लेकर निश्चय ही अपने ढंग के अनोखे संस्मरण हैं।

सत्य की खोज : लेखक--श्री भगवानदीन; प्रकाशक--अ० भा० सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी; मूल्य--डेढ़ रुपया।

कितने ही वहमों, रीति-रिवाजों, जादू-टोनों, इहलोक-परलोक के भय प्रलोभनों, अन्ध-विश्वासों में ग्रस्त मनुष्य समाज को सत्य का दर्शन कराने में यह पुस्तक निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी। सामान्यतः यह समझा जाता है कि जो बात जैसी हो, उसको वैसा ही कह देना मात्र सत्य है। लेकिन, बात वैसी नहीं है। सत्य एक विराट दर्शन है। **सत्य की खोज** में लेखक ने सत्य के इसी विराट दर्शन का सफल विवेचन किया है। विषय को नितान्त सूक्ष्मता, किन्तु सरलता और सहजता के साथ समझाया गया है। समाज में व्याप्त कितनी ही झूठी मान्यताओं, रूढ़ियों और ढकोसलों का नकाब लेखक ने अनायास ही अनोखे ढंग से उतार दिया है। लेखक का कहना है, "जो बात सौ बार परीक्षा करने पर निन्यानवे बार ठीक निकले, उसको भी मत मानो। उसकी फिर परीक्षा करो। जब तक वह सौ में सौ बार ठीक न निकले, तब तक वह सत्य नहीं मानी जा सकती।"

सर्व-सेवा-संघ की अन्य पुस्तकों की भांति यह पुस्तक भी पाठक को नया दृष्टिकोण, नयी प्रेरणा और नई चेतना प्रदान करती है। इस विचारपूर्ण पुस्तक के लिए हम लेखक और प्रकाशक दोनों के आभारी हैं।

आर्थिक-समाचार-संकलन

भारतीय

समाज कल्याण योजनाओं की प्रगति

केन्द्रीय समाज कल्याण मंडल के अक्तूबर १९५५ से अगस्त १९५७ तक के प्रतिवेदन के अनुसार, मंडल ने गांवों और पिछड़े क्षेत्रों में २,००० कल्याण केन्द्र खोले और समाज कल्याण का काम करने वाली ४,५०० संस्थाओं की सहायता की। दूसरी आयोजना की अवधि में मंडल १,५७० योजनाएं शुरू करेगा। इन योजनाओं के अन्तर्गत १,२०,००० गांवों में २०,००० केन्द्र कायम किये जायेंगे। प्रतिवेदन में कहा गया कि मार्च १९५७ के अन्त तक ३०० से ऊपर संस्थाओं को लगभग १.८६ करोड़ रुपये के अनुदान दिये गये।

राज्य परिवहन संगठनों की प्रगति

स्वतंत्र भारत में सड़क परिवहन के क्षेत्र में राज्य परिवहन संगठनों ने अपना स्थान बना लिया है। पहली पंचवर्षीय योजना में राज्य सरकारों ने सड़क परिवहन में १२ करोड़ रु० और लगाया। इस अवधि में ३,००० मोटर गाड़ियां बढ़ा कर उनकी संख्या ११,००० की गयी। पहले आयोजन के अन्त में लगभग दो-तिहाई यात्री-परिवहन और पूरे माल-परिवहन का काम निजी संस्थाओं के हाथ में था।

दूसरी योजना में सरकार परिवहन के विकास के लिए २६ करोड़ ५० लाख रु. खर्च करेगी। इसमें दिल्ली परिवहन सेवा के लिए परिवहन विभाग के ३ करोड़ रुपये की योजना और रेल की १० करोड़ रुपये की योजना भी शामिल है, जिसके अनुसार रेलें सड़क परिवहन निगम से सहयोग करेंगी। दूसरी योजना के अन्त तक ५,००० और मोटर गाड़ियां खरीद ली जायेंगी और लगभग आधा यात्री-परिवहन सरकारों के हाथ में आ जायेगा।

देश में, राज्य परिवहन सेवा सबसे पहले ग्वालियर, हैदराबाद और त्रिवांकुर में आरम्भ हुई। त्रिवांकुर राज्य में १९३८ से, कच्छ में १९४५ से और मध्यप्रदेश, मद्रास तथा उत्तर प्रदेश में १९४७ से सरकारी मोटर-गाड़ियां चलनी आरम्भ हुई। इसके बाद असम, बिहार, बम्बई, उड़ीसा, पंजाब, प. बंगाल, मैसूर और दिल्ली राज्य में १९४८ से और इसके एक साल बाद सौराष्ट्र और हिमाचल प्रदेश में सरकारी मोटर-गाड़ियां चलनी आरम्भ हुई।

बम्बई राज्य सड़क परिवहन निगम अन्य सभी राज्यों की सड़क परिवहन सेवाओं से बड़ा है। इसमें लगभग ३,१६३ मोटर-गाड़ियां हैं, जो कि १९१६ से भी अधिक मार्गों पर लगभग ४८,१७५ मील चलती हैं। बम्बई के बाद उत्तर प्रदेश के पास सबसे अधिक मोटर-गाड़ियां हैं। इनकी संख्या १,६६८ है।

दूसरी योजना में विभिन्न राज्यों में जो मोटर-गाड़ियां बढ़ाई जायंगी, उनकी संख्या इस प्रकार है :—असम—२३७; बिहार—४३०; उड़ीसा—२७८; बम्बई—७८१; त्रिवांकुर-कोचीन (अब केरल)—४६०; उत्तर प्रदेश—१०१; पश्चिमी बंगाल—७५३; और दिल्ली—३३४। इस प्रकार, १९६१ तक पश्चिमी बंगाल, पंजाब और केरल परिवहन सेवाओं के पास एक-एक हजार मोटर-गाड़ियों से भी अधिक हो जायेंगी और बम्बई निगम की मोटर-गाड़ियों की संख्या ४ हजार तक पहुँच जायेगी।

दूसरी योजना में मकान

दूसरी योजना में सरकारी और निजी क्षेत्रों में लगभग १९ लाख मकान बनाये जाने की आशा है। पहली योजना में १३ लाख मकान बनाये गये थे। सरकार की सहायता से शहरों में मकान बनाने के लिए योजना में जो १०५ करोड़ रु. रखे गये हैं, उनसे ३,०६,००० मकान बनाये जायेंगे। इसके अलावा केन्द्रीय और राज्य-सरकारें अपने कर्मचारियों और कोयला-अभ्रक की खानों तथा बागानों में काम करने वालों के लिए ७,६९,००० मकान बनायंगी। निजी क्षेत्र में शहरों में लगभग ८०० करोड़ रुपये की पूंजी से ८ लाख मकान बनाये जाने की आशा है।

झरिया कोयला-क्षेत्र में लगभग १२ अरब टन कोयले का भण्डार

झरिया कोयला क्षेत्र में २,००० फुट की गहराई तक ११,७२,७०,२०,००० टन कोयले का भंडार मौजूद है।

यह अनमान भारतीय भौमिक सर्वे द्वारा किये गये एक सर्वे के अनुसार लगाया गया है । १९२६-२८ के सर्वे के बाद यह अनुमान लगाया गया था कि कोयले का भंडार ४,५३,७०,-००,००० टन, अर्थात् नये अनुमान के आधे से भी कम है । कोयले के इस भंडार में से २,१४,५०,००,००० टन कोयला बढ़िया किस्म का है । नये सर्वे से इस क्षेत्र में कोयले की अनेक नयी तहों का पता चला है ।

१८९५ से १९५१ के बीच झरिया कोयला-क्षेत्र से लगभग ४५ करोड़ टन कोयला निकाला गया । सर्वे के अनुसार अब तक ५० प्रतिशत और, अर्थात् कुल ६७,५०,००,००० टन, कोयला निकाला जा चुका होगा । झरिया कोयला क्षेत्र से पिछले ५० वर्ष में प्रतिवर्ष औसतन ७० लाख टन, अर्थात् कुल ३५ करोड़ टन कोयला निकला है । इसमें वह ५० प्रतिशत कोयला शामिल नहीं है जो खुदाई के समय नष्ट हुआ । इस प्रकार बढ़िया किस्म का कुल ५२ करोड़ ५० लाख टन कोयला निकाला गया है । बाकी कोयला घटिया किस्म का था । झरिया कोयला क्षेत्र के अलावा रानीगंज कोयला-क्षेत्र के भंडार का भी अनुमान लगाया गया है । रानीगंज कोयला-क्षेत्र में बढ़िया किस्म का कुल १८ करोड़ टन कोयला है ।

कपड़े के उत्पादन में निरंतर वृद्धि

पिछले छः वर्षों से कपड़े के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही है । १९५६ में ७ अरब १२ करोड़ ४० लाख गज से भी अधिक कपड़ा तैयार हुआ, जबकि १९५० में ४ अरब ६१ करोड़ ८० लाख गज कपड़ा तैयार हुआ था । इस प्रकार, १९५६ में १९५० की तुलना में ५४ प्रतिशत अधिक कपड़ा तैयार हुआ । सूत के उत्पादन में भी वृद्धि हुई है । १९५६ में १ अरब ६७ करोड़ १० लाख पौंड सूत तैयार हुआ, जबकि १९५० में १ अरब १७ करोड़ ४० लाख पौंड तैयार हुआ था ।

१९५० की तुलना में १९५६ में हथकरघा कपड़ा ९० प्रतिशत अधिक तैयार हुआ । १९५६ में १ अरब ५४ करोड़ गज हथकरघा कपड़ा तैयार हुआ, जबकि १९५० में ८० करोड़ ४८ लाख गज तैयार हुआ था । बिजली करघों द्वारा १९५६ में २७ करोड़ ८० लाख गज कपड़ा तैयार हुआ, जबकि १९५० में १४ करोड़ ८२ लाख ५० हजार गज कपड़ा, अर्थात् ६८ प्रतिशत, अधिक तैयार हुआ था ।

मिलों के कपड़े का उत्पादन १९५० के ३ अरब ६६ करोड़ ५० लाख गज से बढ़कर १९५६ में ५ अरब ३० करोड़ ६० लाख गज, अर्थात् ४५ प्रतिशत अधिक हो गया । १९५७ के पिछले ६ महीनों में २ अरब ७० करोड़ ९० लाख गज मिल का कपड़ा तैयार हुआ, जबकि पिछले साल इसी अवधि में २ अरब ५८ करोड़ ३० लाख गज कपड़ा तैयार हुआ था । पहली योजना में मिलों तथा हथकरघों से ६ अरब ४० करोड़ गज कपड़ा तैयार करने का जो लक्ष्य रखा गया था, वह १९५४ में ही पूरा हो गया । १९५६ में ७ अरब १२ करोड़ ४० लाख गज कपड़ा तैयार हुआ । इस प्रकार १९५६ में प्रतिव्यक्ति १६.५ गज कपड़ा उपलब्ध रहा ।

दूसरी योजना में कपड़े के उत्पादन का लक्ष्य प्रतिवर्ष ८ अरब ४० करोड़ गज रखा गया है । इसमें विदेशों को भेजा जाने वाला १ अरब गज कपड़ा भी शामिल है । दूसरी योजना के अन्त तक प्रतिव्यक्ति १८.५ गज कपड़े की खपत होने लगेगी ।

पर्यटकों को सड़क-यात्रा की सुविधाएं

देशवासियों में अपने देश को देखने की इच्छा बढ़ने के साथ-साथ अनेकों यात्रा-स्थलों को सड़कें निकाली जा रही हैं और मोटरों तथा बसों से यात्रा की सुविधाएं भी दिनों-दिन बढ़ती जा रही हैं । दूसरी पंचवर्षीय योजना में पर्यटन को प्रोत्साहन देने के लिए केवल सड़क-यात्रा की सुविधाएं बढ़ाने के लिए ही ३ लाख २५ हजार रु० की व्यवस्था है । सड़कें सुधारने और बसों, आदि का अच्छा प्रबन्ध करने की इन सारी योजनाओं का खर्च राज्य सरकारें उठायेंगी । दूसरी योजना की अवधि में मुख्यतः सांची (मध्यप्रदेश) बदामी और बीजापुर (मसूर), एहोली (बम्बई), बाघ की गुफाओं और मांडू (मध्य प्रदेश), हास्पेट (मैसूर), पुरी (उड़ीसा), को आने-जाने के लिए बसों, आदि की अधिक सुविधाएं दी जायेंगी । इसी प्रकार, हिमाचल प्रदेश में पांच बसों का और पठानकोट से कुल्लू और कांगड़ा जाने के लिए भी बसों का अच्छा प्रबंध किया जायेगा ।

पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा राजस्थान की कृषि व ग्राम-स्थिति में प्रगति

राजस्थान ने दूसरी पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष में सार्वजनिक प्रवृत्तियों के विभिन्न क्षेत्रों में काफी प्रगति

की है। खाद्य के क्षेत्र में योजना के लक्ष्य ७.८७ लाख टन, अतिरिक्त खाद्यान्नों का उत्पादन, रुई की गांठें १ लाख, गन्ना ३५ हजार टन तथा तिलहन १ लाख टन है। भूमि संरक्षण योजना के अन्तर्गत ७५,००० एकड़ भूमि को पुनः कृषि योग्य बनाया जायेगा तथा गन्ने की खेती का क्षेत्र ४५,००० एकड़ से बढ़ा कर ७५,००० एकड़ कर दिया जायेगा। तीस लाख एकड़ भूमि बन्दोबस्त में ली जायगी।

इन लक्ष्यों में से १९५६-५७ में १.८ लाख मन सुधरा हुआ गेहूं का बीज, १२,००० मन कपास का बीज तथा ३०,००० मन गन्ने का बीज किसानों में वितरित किया गया। लगभग ३,१५० टन उर्वरक भी वितरित किये गये तथा कुएं खोदने और पंपिंग सेट्स व रहट लगाने के लिये २० लाख रुपये तकावी के रूप में दिये गये। ४,८६,५८४ एकड़ से भी अधिक भूमि में वृक्ष संरक्षण का कार्य किया गया, तथा कृषि उपज के लिये मंडियों की स्थापना, कृषि संबंधी आंकड़ों के एकत्रीकरण, कृषि अनुसंधान कार्य को दृढ़ करने और कृषि संबंधी प्रचार की योजनाएं भी हाथ में ली गयीं। छोटी तथा मध्यम श्रेणी के सिंचाई कार्यों सहित इन सब योजनाओं से इस वर्ष ६१,००० टन अतिरिक्त खाद्यान्नों के उत्पादन की आशा है।

१९५६-५७ में सिंचाई योजनाओं पर लगभग ५३८.४५ लाख रुपये खर्च किये गये। इनमें से ३९७.६७ लाख बहु-उद्देशीय योजनाओं पर व्यय किये गये तथा १८७ योजनाएं हाथ में ली गयीं।

योजना की अवधि में १,००० अल्पावधि ऋण सहकारी समितियां, १६ सहकारी बैंकों तथा एक केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक के अतिरिक्त ५०० विशाल पैमाने की कृषि सहकारी समितियां संगठित की जायंगी। कुल मिलाकर राज्य के ३० प्रतिशत गांव तथा १५ प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या सहकारिता क्षेत्र के अन्तर्गत लायी जायगी। १९५६-५७ में राज्य में सहकारी समितियों की कुल संख्या ३,१७,२४५ की सदस्यता के साथ ८,७४७ हो गई थी। एक शीर्ष सहकारी बैंक इन समितियों के लिये कर्ज का प्रबन्ध करता है जिसकी राशि अब १,२४,००,००० रुपये हो गई है।

नई आयात नीति और ऊनी कपड़ा

३१ मार्च, १९५८ तक की अवधि की नई आयात नीति की घोषणा में अन्य कई चीजों के साथ-साथ, ऊन के पूरे तैयार माल का भारत में सब आयात बंद कर दिया गया है।

विदेशी विनिमय की स्थिति से संबंधित हाल ही की सरकारी घोषणाओं को देखते हुए यह नीति अनुपेक्षित नहीं थी। पहले की अवधियों में आयात की मात्रा में कमी की गई थी, परन्तु फिर भी १९५६ में ऊनी कपड़े तथा कम्बलों का आयात २० लाख पौण्ड से अधिक रहा।

ऊनी धागों (जिसमें हाथ-बुनाई का ऊनी धागा शामिल नहीं) के आयात के लिये वास्तविक प्रयोक्ताओं को लाइसेंस दिये जायेंगे। लाइसेंस की अर्जियों पर बम्बई का संयुक्त प्रमुख आयात नियंत्रक टेक्सटाइल कमिश्नर की सलाह से विचार करेगा। ये लाइसेंस छः मास के लिये होंगे।

निम्नलिखित तालिका में समुद्र के रास्ते भारत में ऊनी माल के आयात के आंकड़े दिये गये हैं :

कच्ची ऊन का आयात (हजार पौंडों में)

निर्यातक देश	१९५४	१९५५	१९५६
आस्ट्रेलिया	१,१३३	१,०३४	१,२९५
न्यूजीलैंड	९७०	१.८४३	१,२४३
ब्रिटेन	१,०१५	१,२३०	१,४८४
अन्य देशों	३५	१२५	९८
कुल	३,१५४	४,२३२	४,१२०

तय्यार ऊनी माल का आयात (हजार पौंडों में)

सामान	१९५४	१९५५	१९५६
ऊनी तथा वर्स्टिड कपड़ा	४०८	६२८	४८२
घटिया कपड़ा	९०७	७०२	३६६
मिलाजुला ऊनी कपड़ा	१,४७१	१,२९१	२६१
कुल ऊनी टिश्यू	२,७८६	२,६२१	१,१०९
कम्बल तथा धुस्से	७३८	९६७	१,१०८
कालीन तथा फर्शी धुस्से	१८	१८	१५

विदेशों में भारतीय मिर्च और काजू की बिक्री

चेकेस्लोवाकिया, पोलैंड, बल्गारिया, रूमानिया, पूर्व जर्मनी, डेनमार्क और स्विट्जरलैंड को भारत से और अधिक

मिर्च का निर्यात होने लगेगा। १९५६-५७ में इन देशों को लगभग ३० लाख रु० की १,१०० टन से भी अधिक मिर्च भेजी गयी। इसमें से चेकोस्लोवाकिया को ५१७ टन मिर्च भेजी गयी। वहां १९५६-५७ से पहले मिर्च का निर्यात नहीं किया जाता था, केवल १९५३-५४ में अल्प मात्रा में मिर्च भेजी गयी थी। पोलैंड को १९५६-५७ में २९५ टन मिर्च भेजी गयी, जबकि १९५५-५६ में केवल ४० टन भेजी गयी थी। इससे पहले पोलैंड को मिर्च नहीं भेजी जाती थी। बल्गारिया को १९५४-५५ में १२ टन, १९५५-५६ में ४१ टन और १९५६-५७ में १३५ टन मिर्च भेजी गयी। १९५६-५७ में रूमानिया को १०० टन, पूर्व जर्मनी को १५ टन, डेनमार्क को १६ टन और स्विट्जरलैंड को ४ टन मिर्च भेजी गयी। डेनमार्क और स्विट्जरलैंड ने इससे पहले भारत से मिर्च नहीं मंगाई थी। रूस काफी मात्रा में भारत से मिर्च मंगाता है। उसने १९५४-५५ में ६७५ टन और १९५५-५६ में ३,९५० टन मिर्च मंगायी। १९५६-५७ के पहले १० महीनों में रूस १,१०० टन मिर्च मंगा चुका है।

देश में १९५४-५५ में २६,००० टन मिर्च पैदा होती थी, १९५५-५६ में यह मात्रा बढ़कर ३२,००० टन हो गई। १९५६-५७ में भी इतनी ही मिर्च पैदा हुई। दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक मिर्च के उत्पादन का लक्ष्य ३६,००० टन रखा गया है। भारत ने १९५६-५७ में कुल १४,८४० टन मिर्च का निर्यात किया, १९५५-५६ में १३,१२७ टन का और १९५४-५५ में १४,७७८ टन मिर्च का निर्यात किया था।

काजू का भी रूस, पूर्व जर्मनी, स्विट्जरलैंड और फ्रांस को और अधिक निर्यात किया जाने लगेगा। इन देशों को १९५७ के पहले तीन महीनों में लगभग २५ लाख रु० का ५३६ टन काजू भेजा गया। १९५५-५६ में देश से १२ करोड़ ९२ लाख रु० का ३०,८६२.७५ टन काजू भेजा गया। जबकि १९५४-५५ में १० करोड़ ७० लाख रु० का ३४,०११.८ टन काजू भेजा गया था। १९५६ में देश में ५५ हजार टन काजू पैदा हुआ था। अनुमान है कि १९५७ में ६० हजार टन काजू पैदा होगा। दूसरी योजना के अन्त तक काजू का उत्पादन बढ़ाकर १,०६,००० टन तक का लक्ष्य है। अब तक भारत से अमरीका और ब्रिटेन को ही मुख्यतः काजू भेजा जाता था जो कुल निर्यातित काजू का लगभग ७५ प्रतिशत होता था।

* * *

विदेशी

भारत और रूस के बीच व्यापारिक समझौता

नौ नवम्बर को भारत और रूस के बीच एक व्यापार करार पर हस्ताक्षर किये गये, जिसके अन्तर्गत भारत में भारी मशीनें, कोयला खानों में काम आने वाली मशीनें तथा ऐनक के शीशे तैयार करने वाला एक-एक कारखाना और २॥ लाख किलोवाट ताप-बिजली तैयार करने वाला एक बिजलीघर खोला जायेगा। इन कारखानों और बिजलीघर की योजना रूस की एक व्यापार-संस्था तैयार करेगी और इन योजनाओं को पूरा करने के लिए आवश्यक मशीनें देगी। रूस इन योजनाओं के लिए २॥ प्रतिशत वार्षिक व्याज पर ५० करोड़ रूबल ऋण देगा, जो १२ वार्षिक किश्तों में लौटाया जायगा।

भारत स्थित विदेशी कम्पनियों में भारतीय कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि

दिसम्बर १९५६ को भारत सरकार ने एक विज्ञप्ति द्वारा भारत स्थित विदेशी व्यापारी और औद्योगिक कंपनियों में काम करनेवाले कर्मचारियों के संबंध में सूचना दी थी। अब एक नयी विज्ञप्ति द्वारा पहली जनवरी, १९५७ तक की तत्संबंधी जानकारी उपलब्ध करायी गयी है।

इस सूचना से पता चलता है कि न केवल विदेशी कंपनियों में भारतीय कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि हुई है, बल्कि इन कम्पनियों में अधिक वेतन पानेवाले वर्गों में भी भारतीय कर्मचारी पहले से अधिक है।

निम्नलिखित तालिका में विदेशी कंपनियों में विदेशी तथा

भारतीय कर्मचारियों की संख्याएँ दी गयी हैं :

वर्ष	भारतीय	विदेशी	कुल
१९४७	५०४	५,८४४	६,३४८
१९४८	४७२	६,३६०	७,१०२
१९४९	१,०८५	६,७०९	७,७९४
१९५०	१,४०६	६,८७१	७,२७७
१९५१	१,७८४	६,९५३	८,७३७
१९५२	२,२९०	७,१०४	९,३९४
१९५४	३,३४६	७,००८	९,३५४
१९५५	३,९९५	६,८१०	१०,८०५
१९५६	४,६८५	६,५६६	११,२५१
१९५७	५,६१४	६,०२५	११,६३९

अमरीका से भारत में पी.एल. ४८० इकरार के अन्तर्गत आयात

पहली सितम्बर, १९५७ तक भारत में अमरीका से पी. एल.-४८० इकरार के अधीन निम्नलिखित कृषि वस्तुओं का आयात किया गया :

गेहूँ—१८,००,००० मीट्रिक टन
चावल—१,९८,००० मीट्रिक टन
कपास—१,३५,००० गांठ (प्रति गांठ ४८० पौंड)

इस इकरारनामे के अन्तर्गत १७२ करोड़ रुपये की वस्तुओं का आयात किया जायगा। इसमें से ९५.२ करोड़ रुपये का गेहूँ, १२.६ करोड़ रुपये का चावल तथा ३३.३ करोड़ रुपये की कपास भारत में मँगायी जायगी। यह इकरारनामा ३ वर्ष के लिए है, किन्तु चावल के लिए यह अवधि एक वर्ष के लिए ही है।

सफेद बालोंको श्याम बनाने वाला
लोमा
रजिस्टर्ड
• मधुर सुवास देता है,
• दिमाग को ठंडक पहुँचाता है,
• सर्वत्र बिकता है,
B.SHAH
सोल अेजन्टः अेम. अेम. खंभातवाला
अहमदाबाद-१

अरविन्द का यह चिह्न

उच्चतम कोटि
के
कपड़ों के लिए सुप्रसिद्ध

अरविन्द मिल्स लिमिटेड
नरोदा रोड, अहमदाबाद-२

ह्यूम पाइप

३० वर्ष से अधिक काल से राष्ट्र की सेवा कर रहे हैं

ह्यूम पाइप का निर्माण रीइन्फोर्सड सीमेण्ट कंक्रीट से सेंट्रीफ्यूगल पद्धति से किया जाता है, जिससे कंक्रीट में लगभग सम्पूर्ण स्वच्छन्द वायु और फालतू जल पाइप की अन्दरूनी सतह में दबाव से भर जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि अनावश्यक जल बाहर निकल जाता है और जिस दबाव को सहन करने के लिए पाइप बनाया गया होता है, उस दबाव तक वह दुर्भेद्य हो जाता है। इसका घनत्व ग्रेनाइट के बराबर हो जाता है। इसमें मुर्चा या अन्य खराबियां नहीं होतीं, और यह अन्दर और बाहर से काफी मुलायम होता है। विभिन्न म्यूनिसिपल कमेटियां और सरकारी विभाग कई वर्षों से **ह्यूम पाइप** को जल-पूर्ति, सिंचाई और गन्दा पानी निकालने के लिए प्रयोग में लाते आ रहे हैं, और उन्हें इनसे बिना कष्ट के अत्युत्तम सेवा प्राप्त हो रही है। ये पाइप देश भर में फैले हमारे ६० कारखानों में से कहीं से भी उपलब्ध कराये जा सकते हैं। अपनी आवश्यकताओं के लिए हमारे निकटतम स्थित कारखाने या सीधे इस पते पर लिखिये :—

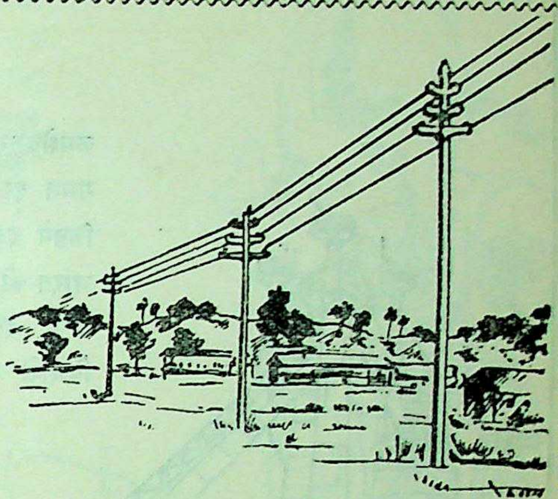

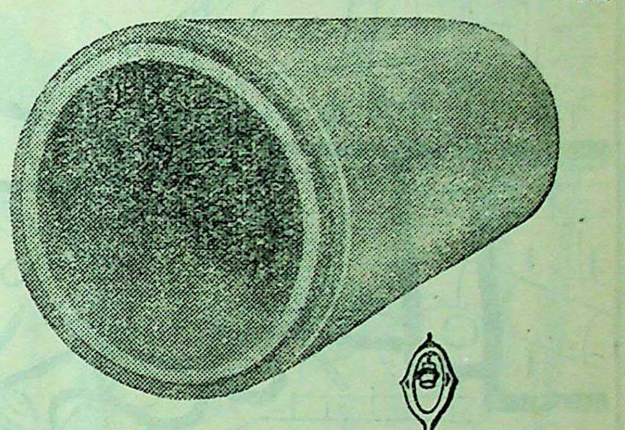

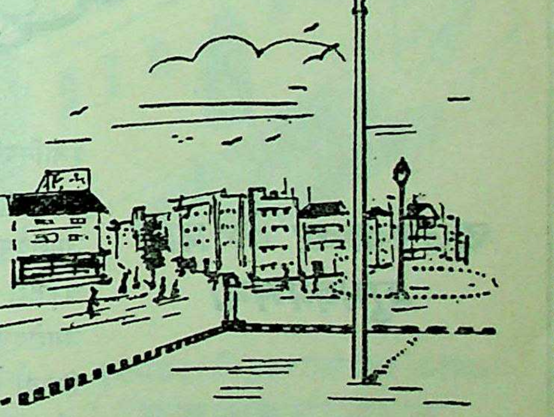

दी इण्डियन ह्यूम पाइप कम्पनी लि०,
हेड आफिस : कन्सट्रक्शन हाउस, बेलार्ड इस्टेट, बम्बई-१
तार : 'ह्यूम पाइप' फोन : २६२९९४
दिल्ली फैक्टरी : सराय रोहिल्ला, दिल्ली-६।

एक पड़ोसी से

जमशेदपुर और राउरकेला के बीच आज जो लोगों का आवागमन हो रहा है, यह स्वाभाविक ही है क्योंकि इस समय जितने इस्पात के कारखाने बन रहे हैं, उनमें राउरकेला ही भारत की पहली इस्पात-नगरी जमशेदपुर के सबसे नजदीक है। अगर इस आने-जाने के जरिये अनुभवों और नये-नये विचारों का आदान-प्रदान हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं क्योंकि जमशेदपुर पचास वर्षों से इस्पात बनाता आ रहा है। राउरकेला के लिए इंजीनियरों और कारीगरों को शिक्षा देने का मौका मिलना जमशेदपुर के लिए बड़ी खुशी की बात है। इस समय जमशेदपुर में १५० कार्यकर्त्ता शिक्षा पा रहे हैं जिनमें ऊँचे अफ़सरों के साथ साधारण कारीगर भी हैं।

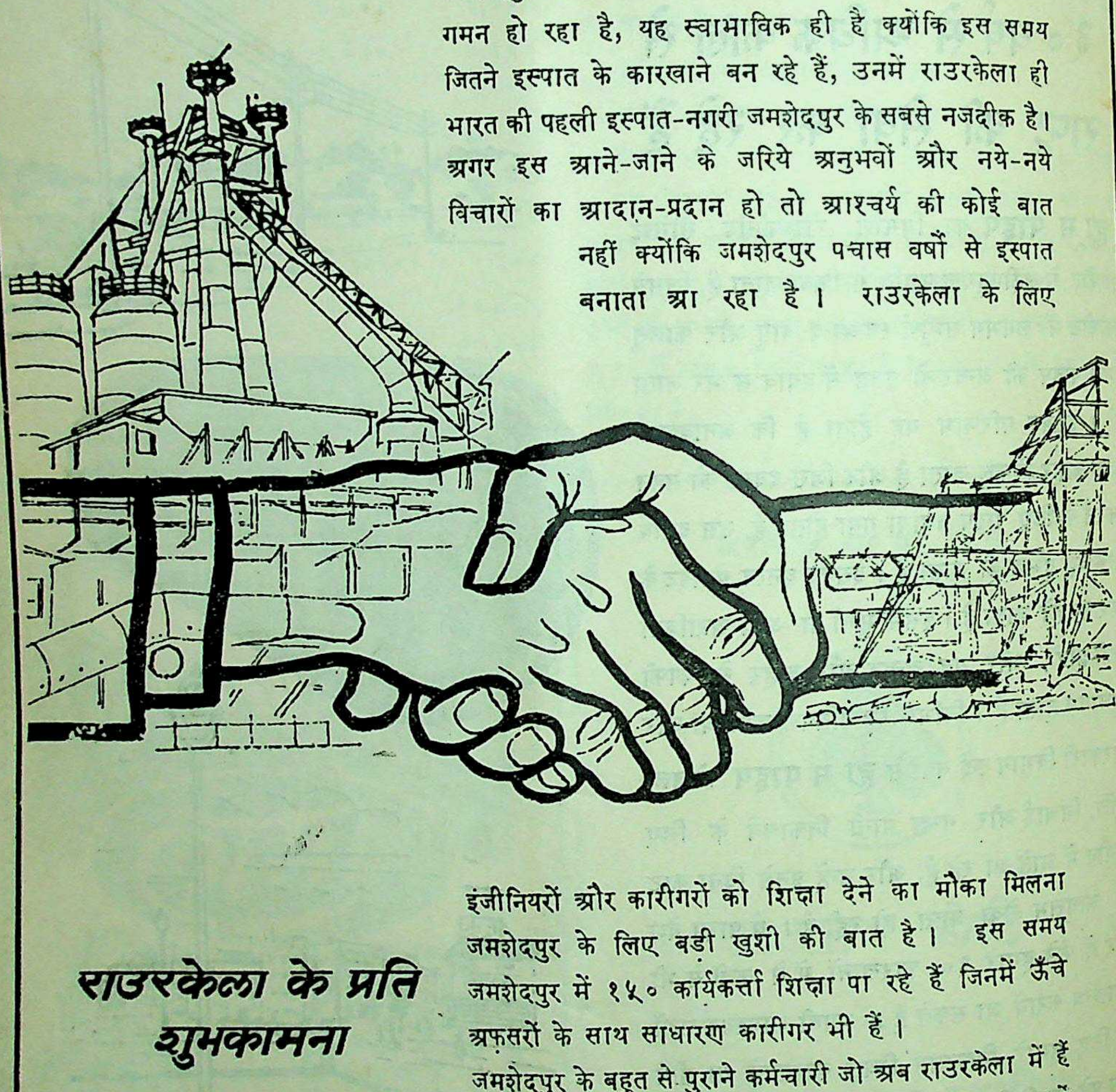

जमशेदपुर के बहुत से पुराने कर्मचारी जो अब राउरकेला में हैं मित्रता के इस बन्धन को दृढ़ बना रहे हैं। जमशेदपुर इन्हें और इनके साथियों को शुभकामना और अभिवादन भेजता है।

राउरकेला के प्रति शुभकामना

टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड

TN 1500

जुहू बीच पर एक महल...

इन स्वस्थ, गोलमटोल और प्यारे-प्यारे हाथों का कमाल देखिए... रेत थोप-थोप कर और थपथपाकर जुहू बीच पर एक महल का निर्माण किया जा रहा है! और यहाँ से कुछ ही मील दूर कुर्ला, बम्बई में दूसरे हाथ भी रेत ही से निर्माण-कार्य कर रहे हैं... वे हमारे स्टील कास्टिंग्स के लिए साँचे तैयार कर रहे हैं। विशेष प्रकार की रेत और **विशेष प्रकार के ही हाथ**; क्योंकि साँचों में **रत्तीभर** भी फर्क न आना चाहिए। यह कौशल वर्षों के अनुभव से ही प्राप्त होता है।

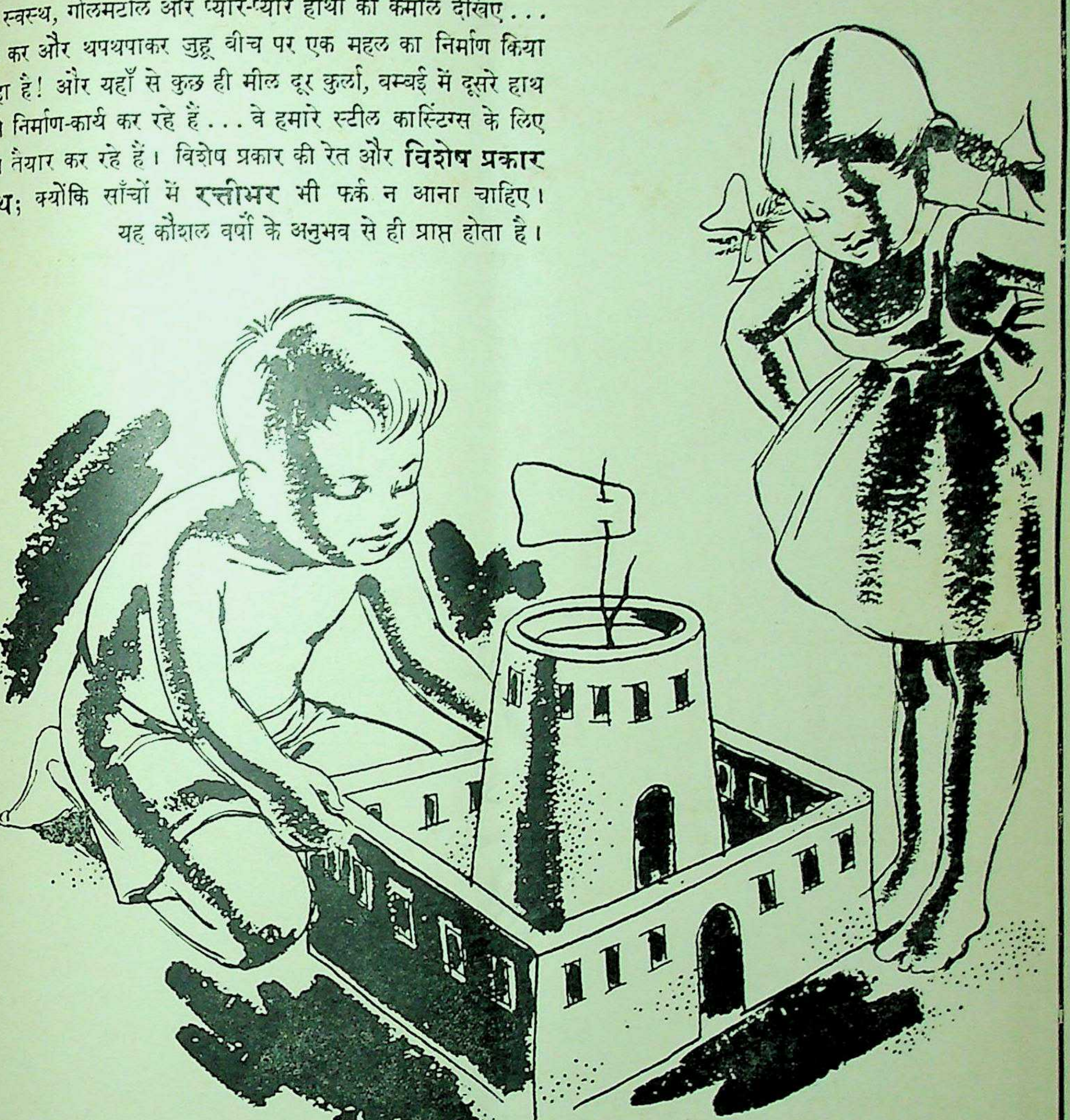

हम सगर्व जाहिर करते हैं कि हमने सुप्रसिद्ध ब्रिटिश स्टील फाउण्ड्री, दी डेविड-ब्राउन इण्डस्ट्रीज़ लि. के साथ एक दीर्घकालीन यांत्रिक सहायता सम्बन्धी समझौता किया है। इस समझौते का दोहरा **उद्देश्य** है; एक तो यह कि हम दिसम्बर १९५८ तक अपने स्टील कास्टिंग्स का उत्पादन ३२५ टन प्रति मास से बढ़ाकर ६५० टन प्रति मास कर सकें, और दूसरा यह कि नये उत्पादनों का विकास कर हम अपने स्टील कास्टिंग्स की किस्में भी बढ़ा सकें।

इस्पात की *प्रगति* का प्रतीक

मुकन्द

मुकन्द आयर्न एण्ड स्टील वर्क्स लि.
कुर्ला – बम्बई-३७

मैनेजिंग एजेण्ट्स:
जीवन प्राइवेट लिमिटेड
[illegible] रोड, बम्बई-१

कांग्रेस प्रकाशन

आर्थिक-समीक्षा : प्रत्येक मास की ५वीं तथा १९वीं तारीख को प्रकाशित होती है। वार्षिक मूल्य पाँच रुपया भारत में, तथा सात रुपया विदेश में।

कांग्रेस पत्रिका : प्रत्येक मास की १० तारीख को प्रकाशित होती है। वार्षिक चन्दा चार रु० भारत में, तथा विदेश में छः रु०।

युवक कांग्रेस : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के युवक विभाग का पाक्षिक-पत्र। वार्षिक मूल्य भारत में तीन रु०, विदेश में चार रु०।

महिला प्रगति के पथ पर : अ. भा. कां. क. के महिला विभाग का मासिक पत्र। वार्षिक मूल्य भारत में तीन रु०, विदेश में चार रु०।

दल समाचार : अ. भा. कां. क. के सेवादल विभाग का मासिक पत्र। वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया मात्र।

	मूल्य एक प्रति	डाक व्यय
कांग्रेस संविधान (नवीनतम)	0.25	0.07
कांग्रेस संविधान की धाराओं के अन्तर्गत नियम (नवीनतम)	0.25	0.07
कांग्रेस ग्राम पंचायत कमेटी की रिपोर्ट (जुलाई १९५४)	1.50	0.25
आवडी अधिवेशन में पास हुए प्रस्ताव (१९५५)	0.13	0.07
अ. भा. कां. क. की ब्रह्मपुर मीटिंग में पास हुए प्रस्ताव (मई १९५५)	0.13	0.07
अ. भा. कां. क. के बम्बई अधिवेशन में पास हुए प्रस्ताव (१९५६)	0.13	0.07
सिंचाई और बिजली	0.25	0.07
गांव के उद्योग धंधे	0.25	0.07
सामुदायिक योजना	0.25	0.07
अन्न समस्या का हल	0.25	0.07
आजादी का दसवां वर्ष (अगस्त '५६-अगस्त '५७)	3.00	0.75
कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की पुस्तिका १९५७	0.37	0.13
सर्वधर्म समभाव	0.75	0.19
युवक कांग्रेस सूचना पुस्तक	0.75	0.19
आर. एस. एस. ध्येय, नीति और प्रचार कला — गोविन्दसहाय	0.75	0.13
समाजवादी अर्थशास्त्र की ओर— श्रीमन्नारायण	1.50	0.25
समाजवादी सहकारी स्वराज्य की ओर उ. न. ढेबर	0.25	0.07

	मूल्य एक प्रति	डाक व्यय
कांग्रेस रचनात्मक कार्य समिति की रिपोर्ट (१९५५)	0.50	0.13
रचनात्मक कार्य सूचना पुस्तक	1.00	0.25
रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन का विवरण (फरवरी '५६)	0.25	0.07
रचनात्मक कार्यक्रम (१९५६)	0.25	0.07
व्यक्तिगत आचरण —श्री प्रकाश	0.19	0.07
गौतम बुद्ध का संदेश	0.19	0.07
गीतावली भाग १	0.25	0.07
गीतावली भाग २	0.25	0.07
सेवादल मैनुअल नं. १	0.37	0.07
सेवादल मैनुअल नं. ३	0.37	0.07
सेवादल मैनुअल नं. ४	0.50	0.13
सेवादल मैनुअल नं. ५	0.75	0.13
सेवादल मैनुअल नं. ७	0.75	0.13
आर्थिक-समीक्षा, 'इंदौर कांग्रेस अधिवेशनांक' (१९५७)	1.00	0.25
आर्थिक-समीक्षा '१९५७ शताब्दि विशेषांक' (१५ अगस्त १९५७)	0.75	0.25
आर्थिक-समीक्षा 'सर्वोदय विशेषांक' (१९५७)	0.75	0.25
महिलाएं और चुनाव	0.12	0.07
महिलाओं के लिए रचनात्मक कार्यक्रम सूचना पुस्तक	0.50	0.19
विवाह सम्बन्ध विच्छेद तथा उत्तराधिकार	0.12	0.07

अपना आर्डर किसी भी स्थानीय कांग्रेस कमेटी या सीधे निम्नलिखित पते को भेजें :—

प्रकाशन विभाग

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी,

७, जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली

नोट : पुस्तकों का आर्डर तथा मूल्य भेजते समय 50 नये पैसे रजिस्ट्री की फीस भेजना न भूलें।

अ० भा० कांग्रेस कमेटी के लिए श्री [illegible] द्वारा प्रकाशित और नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

कर्त्तव्यम् सुसमीक्षितम्

आर्थिक-समीक्ष

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आर्थिक-राजनीतिक अनुसन्धान विभाग का पाक्षिक पत्र

र्षिक मूल्य
रुपये
क प्रति
नये पैसे

अन्दर देखिए :—

★नवीन भारत में पंचायतों की भूमिका

★खाद्य-स्थिति

★आयोजित अर्थ-व्यवस्था में आय-समीकरण की समस्या

★खाद्यान्न जांच-समिति के प्रतिवेदन पर एक दृष्टि

नयी दिल्ली
५ दिसम्बर १९५७
वर्ष ७, संख्या ४
पूर्णांक १४२

सम्पादक मण्डल

गुलजारीलाल नन्दा
टी. टी. कृष्णमाचारी
खण्डूभाई देसाई
मनुभाई शाह
अरुण चन्द्र गुहा

प्रधान सम्पादक—श्रीमन्नारायण

सम्पादक—सुनील गुहा

विषय-सूची

पृष्ठ

१. नवीन भारत में पंचायतों की भूमिका
उच्छंग राय ढेबर ३
२. खाद्य-समस्या श्रीमन्नारायण १४
३. आयोजित अर्थ-व्यवस्था में आय-समीकरण की समस्या आर. के. पाटिल १६
४. संसद के कक्ष से संसदज्ञ १९
५. खाद्यान्न जांच-समिति के प्रतिवेदन पर एक दृष्टि सुनील गुहा २२
६. आर्थिक टिप्पणियां : २६
(अ) वित्त आयोग का प्रतिवेदन
(ब) केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड
(स) सं. रा. अमरीका की मान्यताओं में परिवर्तन
(द) राज्य व्यापार निगम

पृष्ठ

(य) महिला बचत-आंदोलन
सु० गु०
(र) ग्रामदान की भावना
एम० वी० रा०
७. लघु उद्योग की समस्याएं ३२
८. खाद्य-समस्या पर कांग्रेस कार्य समिति का प्रस्ताव ३६
९. अम्बर चर्खा कार्यक्रम : १९५७-५८ की प्रगति ३८
१०. आर्थिक-समाचार-संकलन : ३९
भारतीय ४१
विदेशी
११. कवर पृष्ठ पर :
(क) गेहूं की लहलहाती बालियां कवर एक

आर्थिक-समीक्षा

वर्ष ७, संख्या ४] नयी दिल्ली : बृहस्पतिवार, ५ दिसम्बर १९५७ [पूर्णाङ्क १४२

श्री उच्छंगराय ढेबर

नवीन भारत में पंचायतों की भूमिका

भारतीय संविधान की धारा ४० में कहा गया है :

"राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने और उन्हें ऐसे अधिकार और कार्य सुपुर्द करने के लिए कदम उठायेगा, जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने में समर्थ बनायेंगे।"

हममें से कुछ लोग यह सोचने या विश्वास करने लगे हैं कि संविधान की भावना के अनुसार, ग्राम-पंचायत राज्य की समस्त प्रशासनिक व्यवस्था का आधार और उसका प्रधान स्रोत है, जिससे सभी क्रियाशीलताएँ प्रवाहित होती हैं। फिर, कुछ दूसर लोग भी हैं जो इस विश्वास के अन्तर्गत कार्य करते रहे हैं कि यद्यपि यह न तो केन्द्र है और न हो ही सकती है, फिर भी यह राज्य की एक अपरिहार्य विकेन्द्रित प्रशासनिक व्यवस्था का एक अपरिहार्य प्रशासनिक माध्यम होगी। अन्त में, वे लोग भी हैं, जो यही कहते रहे हैं कि पंचायत का निर्माण चाहे जैसी भी भावनात्मक या तुच्छ घोषणाओं के साथ हो, वह राज्य की स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओं की क्रमिक व्यवस्था में केवल एक सामान्य इकाई ही होगी—यह स्वयं आधार नहीं होगी, बल्कि इसकी स्थिति समूचे ढांचे के आधार पर होगी। नागरिक के लिए समस्या यह है कि वह देश की राजनीतिक व्यवस्था और संविधान के भीतर पंचायत की भूमिका और उसके स्थान को सही-सही निश्चित कर ल। प्रथम श्रेणी के लोग इसे केन्द्र और आधार मानते हैं, दूसरी श्रेणी के लोग इसे प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी समझते हैं, जबकि तृतीय श्रेणी के लोग इसका स्थान प्रशासनिक परिधि के निकट कहीं पर मानते हैं।

इंग्लैण्ड में स्थानीय सरकार

ब्रिटिश स्थानीय सरकार के विषय में चर्चा करत हुए प्रो० जी. डी. एच. कोल ने कहा है:

"ब्रिटिश स्थानीय सरकार का कार्य मुख्यतः प्रशासनिक है, अर्थात् उसका संबंध संसद द्वारा स्वीकृत कानूनों, अथवा प्राचीन घोषणा-पत्रों, और शायद, आधुनिक कानूनों द्वारा सुपुर्द किये गए कार्यों को कार्यान्वित करने से है।"

अन्य शब्दों में, यह तृतीय श्रेणी के लोगों के दृष्टिकोण का समर्थक है। प्रशासनिक परिधि पर स्थित होने पर भी, इसे, निश्चय ही, सफाई, सड़क-व्यवस्था, आदि प्राविधिक समस्याओं को सुलझाना पड़ता है, और साथ ही, राज्य-व्यवस्था से, अथवा ज्यादा सही अर्थ में, उन व्यक्तियों से जो उसका संचालन करते हैं, निबटना भी पड़ता है, चाहे वे राजनीतिज्ञ हों या नौकरशाह। इस संबंध में इसे ऐसे शासकों द्वारा शासन करने का दुष्परिणाम भोगना पड़ेगा, जिनकी स्वयं अपनी 'धारणाएँ' या 'अभिलाषाएँ' हैं। यदि सरकार प्रतिक्रियावादी हुई तो इस बात का प्रयत्न करेगी कि स्थानीय स्वायत्त-शासन संस्थाएँ कमजोर और भयभीत माध्यमों के रूप में ही क्रियाशील हों, और इस प्रकार, वे एक स्वायत्त-शासन ढांचे के गतिशील संयुक्त विन्दु कदापि न बनने पायें। केवल वे सरकारें ही स्थानीय स्वायत्त-शासन संस्थाओं पर पूरा-पूरा विश्वास करने और जनता के प्रतिनिधियों को अत्यन्त अनि-

वार्य मामलों के अलावा, अन्यथा अन्तिम सत्ता प्रदान करने का साहस कर सकती हैं, जिन्हें अपने नागरिकों की आधारभूत राज्य-भक्ति और दृढ़ सामान्य ज्ञान पर अच्छी तरह विश्वास हो। इन संस्थाओं को पंचायतों के कार्यों के संबंध में गांव के जन-साधारण की प्रतिक्रिया पर भी अच्छी तरह गौर करना पड़ेगा। अतः पंचायतों की स्थिति प्रशासनिक परिधि पर मानने से भी कार्य सरल नहीं होगा। कभी न कभी यह बात स्पष्ट हो जायगी कि अधिकांश मामलों में ग्राम पंचायतों के प्रत्यक्ष अधिकार इतने कम और उनके साधन इतने सीमित हैं कि ग्राम पंचायत के संचालन का सारा व्यवसाय इस निःशक्त चीज को बढ़ावा देने में लगाये गये प्रयत्नों की क्षतिपूर्त्ति कदापि न कर पायेगा।

सन् १९४७ में लिखते हुए प्रो० कोल ने इंग्लैण्ड की स्थानीय स्वायत्त-शासन संस्थाओं की कार्य-प्रणाली के संबंध में अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त की थी :

"मेरा सुझाव यह है कि स्थानीय सरकार की समस्या में इस समय जो दिलचस्पी की कमी दिखलायी पड़ती है, उसका कारण सिर्फ सफाई संबंधी कार्यों की, जिनसे आधुनिक स्थानीय सरकार का विकास हुआ है, अरुचि ही नहीं है, बल्कि स्थानीय सरकार के संबंध में एक सर्वथा निराधार धारणा भी है जिसे हमने उस समय से विरासत में पाया है, जबकि आम तौर पर यह माना जाता था कि इसके कार्य अनिवार्य रूप से स्थानीय ही होने चाहिये।............उसे ऐसी गन्दगियों और बुराइयों की सफाई करने वाला भंगी समझने की बजाय, जिन्हें कोई अन्य संस्था न तो कर सकती है, और न करेगी, हमें उसको सामुदायिक जीवन के ताने-बाने का कुशल शिल्पी मानना चाहिये।..........यह पूछने की बजाय कि अन्य संस्थाएँ 'एक चलन' के रूप में क्या करने के लिए प्रेरित की जा सकती हैं, हमें, दरअसल, यह पूछना चाहिये कि स्थानीय समाज, संपन्न की जानेवाली सेवा के स्वभाव के अनुसार ज्यादा विस्तृत या संकुचित क्षेत्र में, अपने कल्याण के लिए सर्वश्रेष्ठ ढंग पर क्या कर सकता है। हमें चाहिये कि हम अन्तर पूरा करने या खाइयां भरने का काम अन्य संस्थाओं पर छोड़ दें, न कि उन संस्थाओं द्वारा छोड़ी गयी कमियों को दूर करने के साधन के रूप में स्थानीय सरकार का इस्तेमाल करें।"

प्राचीन भारत में

यद्यपि यह बात ब्रिटिश स्थानीय स्वायत्त-शासन संस्थाओं के सम्बन्ध में सही है, किन्तु इस तर्क को भारतीय परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में ग्राम-पंचायतों पर दूने जोर के साथ दुहराया जा सकता है। साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में कहा है :

"किन्तु, भारतीय ग्राम-जीवन के मूल तथ्यों का अस्तित्त्व कायम है और उनका महत्त्व वैधानिक सुधारक और कृषि परामर्शदाता, दोनों ही द्वारा समान रूप में मान्य होना चाहिये।"

ब्रिटिश माल, न्याय और पुलिस प्रशासन के भार के अन्तर्गत ध्वस्त होने के पूर्व भारतीय ग्राम एक गतिशील सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत करता था। डा. एस. राधाकृष्णन् के शब्दों में, यह राष्ट्र को 'एक उद्देश्य, एक मन्तव्य और एक बिश्वास' प्रदान करता था। चार्ल्स मेटकाफ के शब्दों में :

"ग्राम-पंचायतें छोटे लोकतंत्र हैं, जिनके स्वयं अपने भीतर प्रायः प्रत्येक चीज, जिसकी उन्हें जरूरत हो सकती है, मौजूद है, और जो किसी भी विदेशी संबंध से लगभग मुक्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे नश्वरों के बीच अनश्वर हैं। शासन पर शासन ध्वस्त होते जाते हैं, क्रांति के बाद क्रांति आती है, लेकिन ग्राम-पंचायत का अनवरत क्रम जारी है।..........अतः मैं चाहता हूँ कि ग्राम संबंधी विधानों में परिवर्तन न किये जायें। मैं ऐसी प्रत्येक चीज से भयभीत हूँ जिसमें उन्हें भंग कर देने की प्रवृत्ति पायी जाती है।"

फिर भी, जान बूझकर ग्राम्य-समुदाय को नष्ट भ्रष्ट करने की कोशिश की गयी। सरकारी अधिकारियों के हाथों में कार्यकारिणी तथा न्याय संबंधी अधिकारों के अत्यधिक केन्द्रीकरण तथा जमींदारी प्रथा ने गांवों के सामुदायिक जीवन के छोटे और बड़े विभाजक का कार्य किया। युगों से चली आती उनकी समानता तथा ग्रामों और ग्रामीणों के मसलों पर उनकी सत्ता और उनके प्रभाव उनसे छीन लिये गये। जिन बातों को निरंकुश राजाओं के शासन तथा 'क्रांति के बाद आनेवाली क्रांतियां' भी नष्ट न कर सकीं, उन्हें जान बूझकर, बुरी नीयत से आयोजित प्रयासों द्वारा, नष्ट कर डाला गया।

डा. राधाकुमद मुकर्जी ने ग्रामों पर इस प्रकार का संकट आने के पूर्व पाये जाने वाले भारतीय ग्रामीण प्रशासनिक ढांचे का चित्र प्रस्तुत किया है। वह कहते हैं :

> "भारत राज्य और समाज के ऐसे सहअस्तित्व का अद्भुत और उल्लेखनीय चित्र प्रस्तुत करता है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक दूसरे से पृथक और कुछ अंश में स्वतंत्र होता है, और साथ ही, स्पष्टतया पृथक इकाई भी होता है। इस चित्र में समाज और राज्य, दोनों ही राष्ट्रीय, लोकप्रिय और सामूहिक जीवन तथा कार्य के स्वतंत्र केन्द्र होते हैं। ये दोनों ही स्वतंत्र संगठन थे और इनका ढांचा भी एकदम प्रत्यक्ष और सुनिश्चित था। इनके विकास और प्रगति के नियम भी अपने-अपने थे।"

आगे जब हम ग्राम पंचायत प्रशासन की समस्या के अन्य दो दृष्टिकोणों पर विचार करेंगे, तो इस विषय पर विस्तार से विचार करेंगे।

सही दृष्टिकोण

यदि ग्राम पंचायत को श्री जी. डी. एच. कोल के शब्दों में, गांव के लोगों के भाग्य का 'कुशल शिल्पी' होना है, यदि उसे सामूहिक जीवन-यापन का उदाहरण प्रस्तुत करना है, यदि उसे डा. राधाकुमुद मुकर्जी के शब्दों में, राष्ट्रीय, लोकप्रिय और सामूहिक जीवन का केन्द्र होना है, यदि उसे डा. राधाकृष्णन के शब्दों में, राष्ट्र को एक उद्देश्य, एक सार्थकता और एक विश्वास प्रदान करना है, यदि उसे अपनी मदद आप करने और आत्मनिर्भर होने के लिये प्रेरणा उत्पन्न करनी है, तो हमें अपने विचारों में पुनर्नवीनता लानी होगी और पंचायत के अधिकारों, उसकी सत्ता और उसके साधनों की समस्या पर स्वायत्त-शासन की स्थानीय निम्नतम् इकाई के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि स्वायत्त-शासन की एक ऐसी इकाई के दृष्टिकोण से विचार करना पड़ेगा, जिस पर कुछ बुनियादी जिम्मेदारियों का भार रक्खा गया हो। कहने की जरूरत नहीं कि इस अर्थ में उसे कुछ बुनियादी अधिकार भी प्राप्त होने चाहिए। ये अधिकार और ये जिम्मेदारियां क्या हैं, अथवा संविधान तथा ग्राम पंचायत संस्थाओं को अनुशासित करने वाले कानूनों के शब्दों में, वे अधिकार और कर्त्तव्य क्या होने चाहिए--इन पर हम आगे चल कर विचार करेंगे।

आइये, हम द्वितीय दृष्टिकोण पर विचार करें। प्रशासन के विकेन्द्रित ढांचे की धारणा अनेक स्पष्ट दृष्टिकोणों से उत्पन्न होती है। आधुनिक राज्य की प्रवृत्ति केन्द्रीयकरण की दिशा में अग्रसर होने की होती है, चाहे वह लोकतंत्रीय संविधान पर आधारित होती हो, या अधिकार और सत्ता की एकतंत्रीय धारणा पर। शहरी और औद्योगिक समाज की जटिल समस्यायें, जनता द्वारा रहन-सहन और सुविधाओं के कुछ आधारभूत स्तरों की मांग, तथाकथित स्वतन्त्र संसार में जो कि मुद्रा-स्फीति, मुद्रा-अस्फीति और उससे उत्पन्न राष्ट्रीय राजकोषीय नीतियों की समस्या से संयुक्त है, मुद्रा-बाजार की गहन संवेदनशीलता, आणविक अस्त्रों के संदर्भ में राष्ट्रीय सुरक्षा की समस्यायें तथा संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे संगठनों के माध्यम से युद्ध सुरक्षा, बीमारी और गरीबी की महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के प्रयत्न—ये सभी बातें हमें अनिवार्य रूप से केन्द्रीयकरण की ओर ले जाती हैं। यह एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है।

विकेन्द्रीकरण : परस्पर विरोधी पक्ष

सत्ता के केन्द्रीकरण को रोकने वाले उपाय के रूप में विकेन्द्रीकरण की धारणा, उसकी उस धारणा से भिन्न है, जो केन्द्रीकृत सरकार की क्रियाशीलता का परिणाम होती है। एक का जन्म एक सिद्धान्त की सचेत मान्यता का फल है, जबकि दूसरी धारणा केवल उस सिद्धान्त से परिचित होती है, और सिर्फ उसी हालत में विकेन्द्रीकरण करती है, जबकि आवश्यकता, सुविधा अथवा अधिक क्षमता की दृष्टि से ऐसा करना अनिवार्य होता है। हमें ग्राम पंचायत प्रशासन के संदर्भ में इस अन्तर को ध्यान में रखना पड़ेगा। एक मामले में तो यह विश्वास और श्रद्धा की बात होती है, जब कि दूसरे में केवल परिणामजन्य। अगर हम इस प्रश्न पर निर्णय करने की दृष्टि से विचार करें, तो यह अन्तर अच्छी तरह समझा जा सकता है। निर्णय करना प्रशासन का सार तत्व है। हमेशा सवाल यह उठता है कि "किसे और किस स्तर पर निर्णय करना है ?" निर्णयों के अन्तर्गत, उच्च नीतियों से सम्बद्ध निर्णय, साधारण नीति संबंधी प्रश्नों पर निर्णय, प्रशासन संबंधी मामलों पर निर्णय तथा इस बात के संबंध में निर्णय कि इन निर्णयों को किस प्रकार कार्यान्वित किया जाय, शामिल होते हैं। मोटे तौर पर, हम उनकी परिभाषा करते हुए कह सकते हैं कि ये बुनियादी नीतियों, प्रशासनिक नीतियों और कार्यान्वयन संबंधी नीतियों के बारे में किये जाने वाले निर्णय होते हैं। हमेशा यह संघर्ष चलता रहता है कि कौन ये निर्णय करेगा और कौन इन्हें कार्यान्वित करेगा। समाधान का बुनियादी अन्तर, जिसकी चर्चा मैंने ऊपर की है, उस समय क्रियाशील होता है, जबकि निर्णय करने के अधिकार पर मतभेद हो। नौकरशाही समाधान की प्रवृत्ति समानता, प्रमाणीकरण और इस भय के नाम पर कि बातें ठीक या वांच्छनीय ढंग पर नहीं की जायंगी, कि निम्नतर संस्थाओं में विच्छेदकारी शक्ति-केन्द्र विकसित हो जायेंगे, कि प्रगति बहुत ही धीमी होगी, बहुत कुछ निम्नतम अधिकार हस्तान्तरित करने के पक्ष में होती है। इसी प्रकार, कुछ राजनीतिक कारण भी हो सकते हैं। पितृप्रधान नेतृत्व की ओर एक अन्तः-प्रेरित प्रवृत्ति भी होती है। नेतृत्व के प्रतीक, जिन पर नेतृत्व की प्रतिष्ठा निर्भर करती है, कालान्तर से व्यक्ति के अविच्छिन्न अंग बन जाते हैं। किन्तु इन सबके पीछे भावनात्मक प्रौढ़ता की, इस विश्वास की कमी है कि जो बात सभी के हित में है, वह सर्वश्रेष्ठ तथा सभी के लिए सन्तोषप्रद ढंग पर केवल तभी की जा सकती है, जबकि प्रत्येक व्यक्ति उसे हासिल करने में हिस्सा ले। जब यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है कि किसी व्यक्ति का अस्तित्व उच्चतम पद पर है, तो यह तय है कि तले पर कोई व्यक्ति दबा अवश्य है, और उस हालत में सम्मिलित प्रयत्न के भीतर सामुदायिक या पंचायती क्रियाशीलता का तत्व नहीं मिलेगा। जब तक कि उपर्युक्त दोनों समाधानों के पारस्परिक विरोध दुरुस्त नहीं कर लिये जायेंगे, तब तक प्रधान कार्यालयी क्रियाशीलता और क्षेत्रीय क्रियाशीलता प्रशासन के लिये समस्याएं उत्पन्न करती ही रहेंगी। कार्य-क्षमता की चिन्ता के नाम पर हम हमेशा प्रतियोगिता की शक्तियां उत्पन्न करते रहेंगे, जिससे सत्ता के संबंध में गलत धारणाएं पैदा होती रहेंगी, जब कि प्रशासन का कार्य यही है कि वह इस सत्ता को जनता की सेवा के नाम पर सन्तुलित और समतापूर्ण बनाये रखे। प्रशासन का कार्य सरकार के नियमित कार्यों को ही सम्पन्न करना नहीं है। उसे अधिक व्यापक सामाजिक कार्य भी पूरा करना है। संगठन के पक्ष में उसे भावनात्मक, सामाजिक और आर्थिक स्तरों पर अविवेकपूर्ण प्रवृत्तियों को, कम से कम, घटाकर, चाहे वह उन्हें पूर्णतः भले ही विनष्ट न कर सके, राज्य की स्थिरता को सुरक्षित रखना पड़ता है, और साथ ही साथ, शांति, व्यवस्था तथा प्रगति की समस्याओं से लड़ना पड़ता है। प्रबन्ध पक्ष में, उसे मार्गदर्शन, समन्वय और नियंत्रण करना पड़ता है। यह प्रक्रिया तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक कि सरकारी ताने-बाने का प्रत्येक धागा एकलय होकर कार्य न करता हो और स्वार्थ से ऊपर उठकर समान अंश में उत्साह और सेवा भावना से प्रेरित न हो।

सत्ता और अधिकार

सत्ता के संबंध में यह याद रखना भी जरूरी है कि सत्ता के एक पक्ष में आन्तरिक सामाजिक नियंत्रण, और दूसरे पक्ष में, राज्य में निहित सत्ता होती है। समाज अपने अंगों—व्यक्ति, परिवार, गांव, राज्य और केन्द्र—के माध्यम से कार्य करता है।

अतः ग्राम इस क्रियाशीलता का केन्द्र होता है। मुख्यतः आदत और परम्परा पर आधारित वांच्छनीय दृष्टिकोण प्रेरित करके उसे आन्तरिक सामाजिक और सामूहिक नियंत्रण का निर्माण करना चाहिए और सामाजिक संबंधों में व्यवस्था की निश्चित प्रतिष्ठा करने के लिये जिम्मेदार होना चाहिए। इस संबंध के सन्दर्भ में ही हमें डा. राधाकुमुद मुकर्जी के उस कथन का पाठ करना चाहिए जिसका उद्धरण मैंने ऊपर दिया है।

इस प्रकार, ग्राम पंचायत प्रशासन को एक अधिक व्यापक उद्देश्य से पूर्ण होना चाहिए, जिसे एक विशेष प्रकार के कार्यों द्वारा पूरा करना समाज और राज्य का उद्देश्य होना चाहिए। इन कार्यों में से कुछ स्वभावतः सामाजिक कार्य होंगे और शेष प्रशासनिक कार्य। अतः प्रशासनिक स्तर पर पंचायतों के सम्मुख पेश सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के संबंध में निर्णय करने के अधिकार बगैर, अथवा प्रशासनिक और क्रियाशीलता संबंधी नीतियों के बारे में निर्णय करने के अधिकार बगैर सत्ता और कार्यों की बात करना उस एकदम निम्नतम अधिकार को इंकार करने के समान है जो पंचायत द्वारा अपनी भूमिका अदा करने के लिये आवश्यक है। इस तरह की लंगड़ी या निर्जीव संस्था से यह अपेक्षा हर्गिज नहीं की जा सकती कि वह उन कार्यों को कामयावी से पूरा कर लेगी, जिनका उल्लेख मैंने ऊपर किया है। ये कार्य हैं: 'अविवेक पूर्ण प्रवृत्तियों को कम करना', या 'शांति और अव्यवस्था की समस्याओं से लड़ना' या 'मार्गदर्शन, समन्वय और नियंत्रण करना।' इस प्रारंभिक असुविधा से प्रारंभ करने पर उससे यह अपेक्षा हर्गिज नहीं की जा सकती कि वह 'वांच्छनीय दृष्टिकोण प्रेरित' करेगी या 'आन्तरिक नियंत्रण का निर्माण' करेगी, या 'सामाजिक संबंध में निश्चित व्यवस्था' कायम करने की जिम्मेदारी लेगी।

इस पृष्ठभूमि में, आइये, हम देखें कि आज से २० वर्ष पूर्व गांधी जी ने **हरिजन** में क्या लिखा था:

> "मैं यह कहता रहा हूं कि अगर छूतछात की भावना कायम रही तो हिन्दू धर्म का अस्तित्व खतम हो जायगा; उसी तरह मैं कहूंगा कि अगर गांव विनष्ट हुआ, तो भारत भी नष्ट होकर रहेगा। वह भारत नहीं रह जायगा। विश्व में स्वयं उसका अपना आदर्श खत्म हो जायगा।"

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि देश की भावी रूपरेखा में गांधीजी ग्रामों से किस तरह की भूमिका अदा करने की अपेक्षा करते थे। आधुनिक ख्यालों के भारतीय को उनके विचार में बहुत ही सीमित विश्वास था, क्योंकि गांधीजी जिस तरह की सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करते थे उसमें उसका सीमित विश्वास था। आधुनिक ख्यालों के भारतीय की अपनी धारणाएं, अपनी कल्पनाएं थीं। वह गांवों के विकास के लिये यथाशक्ति सब कुछ करने के लिये तैयार था। किन्तु उसके लक्ष्य का मूलतत्व यह था कि वह देहातों का शहरीकरण करना चाहता था। अतः उसके लिये पंचायत एक छोटी प्रशासनिक इकाई थी—अधिक से अधिक एक छोटी नगरपालिका का प्रारंभिक रूप। उसने दुबारा सोचने पर गांधीजी की सलाह से संविधान में यह व्यवस्था शामिल करना मंजूर कर लिया।

इतिहास का निर्माण जनता द्वारा होता है। लेकिन इस प्रक्रिया में वह भी जनता का स्वरूप-निर्माण करता है। इतिहास की प्रत्येक घटना, इस प्रक्रिया में प्राप्त प्रत्येक अनुभव, न सिर्फ कुछ बाहरी परिणाम उत्पन्न करता है, बल्कि आम जनता को भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी प्रभावित करता है। इतिहास के मोड़ अपनी छाप छोड़ जाते हैं और जनता के मस्तिष्क को एक ऐसा मोड़ देते हैं, जोकि उन भौतिक परिणामों की अपेक्षा जिन्हें ऐतिहासिक घटनाएं प्रत्यक्ष उत्पन्न करती हैं, अधिक शाश्वत और स्थायी होता है। वे नागरिकों के मस्तिष्क और हृदय के कुछ गुणों को सबल बनाते तथा कुछ को दबा देते हैं, ठीक उतना ही जितना वे कुछ कमजोरियों को बढ़ाते और कुछ को दबा देते हैं। नतीजा यह होता है कि एक विशेष दृष्टिकोण विकसित हो जाता है। राष्ट्र केवल एक समूह नहीं होता। भारत आज जो कुछ है, वह उन सभी बातों का सम्मिलित रूप है जो उसे इतिहास से विरासत में मिली है और जिन्हें उसने अनुभव किया है।

एक नवीन विराट अभियान

भारत ने एक नवीन लम्बा अभियान प्रारम्भ किया है। उसने एक नवीन अध्याय खोला है, जो कि न पहला है

और न अन्तिम। हम अपने भाग्य के मार्ग का सर्वेक्षण और नक्शा तैयार कर रहे हैं। इसमें मानव प्राणियों के छठे हिस्से का भाग्य शामिल हैं जिनमें से ८० फी सदी गांवों में रहते है। मशीन या व्यवस्था एक माध्यम होती है। यह सिर्फ वाहक है—एक साधन। अतः, आइये, हम इस सवाल पर कि भारत की प्रशासनिक व्यवस्था में हम ग्राम पंचायत को कौन सा स्थान देते हैं, एक सन्तुलित निर्णय करें। मैंने राष्ट्रों की विशेष प्रवृत्ति की चर्चा की है। मैंने ग्राम पंचायत की भूमिका का भी उल्लेख किया है। जब गांधीजी ने भारत और विश्व में भारत के आदर्श के जीवित रहने की बात कही थी, तो उनके दिमाग में ये दोनों ही बातें थीं।

यह सामान्य तर्क की बात है कि मनुष्य के अनुभव और ज्ञान में प्रत्येक वृद्धि के साथ, चाहे वह सामाजिक या आर्थिक क्षेत्र में हो, उन संस्थाओं में परिवर्तन अवश्य होगा जो लोगों के जीवन को अनुशासित करती हैं। किन्तु इसमें एक शर्त भी है। इस प्रकार परिवर्तन में बढ़े हुए ज्ञान और अनुभव से उत्पन्न शक्ति प्रतिबिम्बित होनी चाहिये। इसका मन्तव्य अनिवार्य रूप से लोगों की सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं के आधार को व्यापक बनाना होता है। यदि राजनीतिक और आर्थिक उत्थान के प्रत्येक कदम पर भारत में समाज के जीवन को अनुशासित करने वाली संस्थाओं का आधार व्यापक होता रहता, तो गांधीजी को कोई एतराज न होता। उन्होंने एक बार कहा था कि :

> "असंख्य ग्रामों से निर्मित इस ढांचे में अनवरत विस्तारशील वृत्त होंगे जो कदापि ऊर्ध्वगामी नहीं होंगे। जीवन एक पिरामिड नहीं होगा जिसका शिखर तले पर अवलम्बित होता है। उसका आशय तो होगा महासागरीय वृत्त और परिधियां जो कि उस महासागर की विशालता का अंश होंगी, जिसकी वे अविच्छिन्न अंग है।"

और उन्होंने आगे कहा :

> "बाह्यतम परिधि इसलिये सत्ता का उपयोग नहीं करेगी कि वह आन्तरिक वृत्तों को खत्म करदें, बल्कि उन सभी को शक्ति देगी जो उसके अन्दर होंगे और उनसे स्वयं शक्ति हासिल करेगी।"

तो, यह तीसरा दृष्टिकोण है, जिसे मैं प्रस्तुत कर रहा हूं। मेरा उद्देश्य यह दिखलाना है कि आधुनिक विचारधारा भी हमें इसी निष्कर्ष तक ले जाती है। इसमें से अधिकांश, जिनमें मैं भी हूं, के सामने कुछ बाधाएं हैं। हम अपने आपको, कुछ हद तक ग्रामीण जीवन से बौद्धिक और भावनात्मक स्तर पर पृथक समझते रहे हैं, हालांकि शारीरिक स्तर पर हम में से कुछ लोग अभी भी उससे सम्पर्क बनाये हुए हैं। अतः ग्रामीण व्यक्ति के विचारों को समझने में कुछ प्रयत्न करने की जरूरत पड़ती है, जो कि निश्चय ही खोखले नहीं। प्रकृति को शून्यता से घृणा है। उसका मस्तिष्क नये विचारों को ग्रहण कर रहा है और बड़ी तेजी से विकसित हो रहा, जैसा कि होना स्वाभाविक भी है। वह आजादी के प्रतिफल तथा वैज्ञानिक और प्राविधिक विकास के लाभों में हिस्सा बंटाने में गहरी दिलचस्पी ले रहा है। उसकी प्रवृत्ति भी शहरी हो रही है। अगर भारत की भौतिक स्थितियां वर्तमान जैसी न होतीं, तो ऐसा होने दिया जाता। किन्तु मस्तिष्क का शहरीकरण और जीवन की ग्रामीण परिस्थितियां ऐसे तनाव पैदा करेंगी, जिन्हें हम भुला नहीं सकते, क्योंकि हम चाहने पर भी ऐसी परिस्थितियां पैदा करने की आशा नहीं कर सकते, जो एक निश्चित समय के भीतर हमारी सभी उचित आशाएं पूरी कर सके। अतः इन तनावों पर जो कि एक प्रकार के विस्फोट के रूप में विकसित हो रहे हैं, एक सम्भव नियंत्रण यह है कि हम ग्रामीण व्यक्ति को राष्ट्रीय प्रयास के बड़े ताने-बाने में मिलाकर बुन लें, ताकि वह राष्ट्र के सामने पेश इस महान कार्य में हिस्सा लेने वाले की हैसियत से यह जान सके कि सचमुच यह एक महान कार्य है और कोई भी उसे पीछे रहने देना नहीं चाहता। इस उद्देश्य को पूरा करने का एकमात्र सम्भव माध्यम ग्राम पंचायत है।

आत्मनिर्भरता

दूसरे, किसी भी देश का विकास उन साधनों पर निर्भर करता है जिन्हें वह विकास में लगा सके। एक अर्द्ध-विकसित

देश के लिये जो कि अपनी अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करने की कोशिश कर रहा हो, कुछ समय तक दूसरों पर निर्भर रहने की स्थिति से बच पाना मुश्किल है। किन्तु एक सीमा होती है, जिसके बाद इस तरह की निर्भरता, अगर उसकी आजादी को नहीं, तो कम से कम, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में अपनी नीति लागू करने या उसका अनुशीलन करने की उसकी स्वतन्त्र इच्छा पर, प्रभाव डाल सकती है । वह सीमा क्या होगी—यह एक निर्णय का प्रश्न है । किन्तु, पिछले तीन महीनों के दौरान आप सबने एक ऐसा वातावरण देखा होगा, जिसमें सामान्यत: विवेकशील व्यक्ति भी "अस्तित्व के लिये सहायता" के रूप में सोचने लगे थे, जबकि उन्हें "अस्तित्व के लिए सर्वोच्च आन्तरिक प्रयास" के रूप में सोचना चाहिये था ।

पूंजी-निवेश का कार्यक्रम जो कि निश्चित जिम्मेदारियां पैदा करता है, देश में ही कुछ आधिक्यों की, अथवा विदेशी सहायता की उपलब्धि की, कल्पना करता है । भारत में हमारे पास धन के आधिक्य की कमी है और हमें अनिवार्य रूप से अकसर दूसरे विकल्प का सहारा लेना पड़ता है, हालांकि हम ऐसा स्वेच्छा से नहीं, बल्कि परिस्थितियों से बाध्य होकर करते हैं । लेकिन इस विकल्प में उपर्युक्त जोखिम भी होता है । इस स्थिति का सामना करने के लिये हमें क्या करना चाहिये ? मैं अर्थशास्त्री नहीं हूं, लेकिन महसूस करता हूं कि हमें अधिक से अधिक आत्मनिर्भरता के रूप में सोचना शुरू कर देना चाहिये । इसका मतलब यह हर्गिज नहीं कि हम बड़े पैमाने के उद्योगों पर पूंजी लगाना बन्द कर देंगे । उसका मतलब यह भी नहीं कि हम किसी ऐसे कार्य के रूप में सोचेंगे ही नहीं जिसमें विदेशी विनिमय की जरूरत होगी । जहां तक मैं देख सकता हूं, उन योजनाओं को पूरा करने के लिए काफी मात्रा में विदेशी विनिमय की जरूरत होगी, जिन्हें हम पहले से शुरू कर चुके हैं, क्योंकि हम अपनी पूंजी का कोई अंश बन्द कर रखना नहीं चाहते । लेकिन, फिर भी विकल्प बिलकुल स्पष्ट है । मैं अपने देश के आन्तरिक साधनों के अधिक उपयोग के रूप में सोच रहा हूं । हमारे पास मानव-शक्ति का अपार अप्रयुक्त साधन पड़ा हुआ है । हमारे पास दूसरे भी साधन बड़ी मात्रा में बिखरे पड़े हैं जिनका उपयोग हम अभी तक सिर्फ इसलिये नहीं कर सके हैं कि हम ऐसा करने में असमर्थ रहे हैं । मेरा ख्याल है कि जब गांधीजी ने आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के पक्ष पर जोर दिया था, तो उनके विचार के पीछे अप्रयुक्त बिखरे साधन और बेकार या अर्द्ध-बेकार किन्तु अत्यधिक सम्भाव्यता वाली अपार मानव-शक्ति ही थी । इनका उपयोग केन्द्रीय और राज्य सरकारें नहीं कर सकतीं, क्योंकि वे एक दूरी से कार्य करती हैं और ऐसा करने में काफी विस्तार पूर्ण ध्यान देने की जरूरत होती है ।

साधनों की प्रचुरता

बिखरे हुए साधनों की विभिन्नता मुर्झाये पत्तों तथा अन्य फेंकी हुई अनुपयोगी वस्तुओं से बनी खाद के ढेरों से लेकर जन-मानस के आत्मिक साधनों तक फैली हुई है । उपयोग में लाए जाने योग्य साधनों का एक बड़ा भंडार हमारे पास है; किसी न किसी को उसे इस्तेमाल में लाना ही होगा । यह कार्य केवल ग्राम पंचायतें ही कर सकती हैं । जब तक सारा देश ग्राम्य जीवन के मूल्यों को भारतीय स्वराज्य की इमारत को बनाने में आधारभूत मान्यता के रूप में अपना नहीं लेता, तब तक क्या वे ऐसा करने में दिलचस्पी दिखायेंगे ? यदि भारत के ग्रामीण समुदायों में निहित शक्ति का अधिकतम उपयोग करना है, तो हमें यह मानना पड़ेगा कि हमें एक दीर्घकाल तक गांवों पर आश्रित रहना होगा; हम जीवन में ऐसे झुकावों को बर्दाश्त नहीं कर सकते जो कि ग्राम्य जीवन से छुटकारा पाना चाहते हैं ।

तब सहकारी सामाजिक व आर्थिक क्रांति में गांव एक सम्बल बन जाता है ; इसके लिये ऐसा बनना सम्भव नहीं है, जब तक कि इसे आवश्यक शुरुआत या विकास करने के जरूरी अवसर प्रदान नहीं किये जाते तथा इसे अनिवार्य आवश्यकतायें, जैसे सहूलियतें, प्राविधिक सहायता, वित्तीय तथा प्रशासनिक शक्ति, उपलब्ध नहीं की जातीं । आजीविकोपार्जन करने वाले और धनोपार्जन में सहायक व्यक्ति, इन दोनों में अंतर है । एक उपासक है, और दूसरा शोषित । गांव को स्तर और शक्ति, दोनों ही तरफ अपने आपको ऊपर उठाना है । इसे पुनः शक्तिवान बनाना होगा ताकि यह राष्ट्र के सामाजिक व आर्थिक सम्मान का अन्तिम आधार बन सके ।

अन्ततः, गांधी जी ने संसार की परिस्थितियों के सन्दर्भ में भारत की विशेष देन के बारे में लिखा था। केवल वही संस्कृति जीवित रहने की आशा रख सकती है जिसका लक्ष्य मानव-जाति का सम्पूर्ण विकास करना हो, और इस विकास का माध्यम हर प्रकार के विचारों और मतों के प्रति सहिष्णुता हो। अभी कुछ ही समय पूर्व तक भारत का प्रत्येक ग्राम स्वसहायता, सहकारिता और पंचशील के दर्शन का प्रतीक रहा है। हमारा लक्ष्य इसे पुनर्जीवित करना है। इसके पुनरुत्थान के साथ ही सारे मसले को पुनः स्पष्ट रूप से समझ लेना है; जिस वैज्ञानिक और प्राविधिक युग में हम रह रहे हैं, उसकी यह मांग है। सामाजिक रूप से समन्वित जाति ही इस उत्तरदायित्व को निभा सकती है। इस प्रकार के अभिप्राय के लिए, हमें गांवों की जनता को एक बड़ी इकाई के अंश के रूप में सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य दृष्टियों से, मुख्यतः स्थानीय-उपलब्ध साधनों और उनकी अपनी पसन्द द्वारा विकसित होने के अवसर उपलब्ध कराने चाहियें। हम इस बात की उचित ही आशा कर सकते हैं कि इस प्रकार के सम्मानयुक्त रचनात्मक प्रयत्न द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करने पर वे एक समन्वित व्यक्तित्व प्राप्त कर लेंगे। जनतंत्र केवल अस्थायी सांख्यिकी आधिक्य का ही शासन नहीं होता। यह तो बाह्य जोर जबर्दस्ती द्वारा भ्रष्ट हुए बिना सम्पूर्ण समाज की आकांक्षाओं और कार्यों की अभिव्यक्ति है, जिसका परिणाम रचनात्मक प्रयत्न में भाग लेने, इससे पूर्व उसके आयोजन में भाग लेने, और अन्त में उससे प्राप्तियों के बराबर वितरण करने से हुई सन्तृप्ति में होता है। जब तक इस भावना का अभाव रहेगा, तब तक प्रशासनिक या विकास सम्बन्धी कार्यों में शारीरिक प्रयत्न, चाहे जितनी भी मात्रा में किया जाय, जनतंत्र में हमारा यह तजरुबा गहरी नींव नहीं पकड़ सकेगा। हम इसी प्रकार विश्व-शांति और विश्व-जनतंत्र को सुदृढ़ बनाने में भाग लेना चाहते हैं।

हम जो भी कार्यक्रम या स्कीम बनाते हैं, उसे इन मूलभूत लक्ष्यों को बढ़ाने में सहयोग देना चाहिये, न कि इनके रास्ते में रुकावट डाले।

आदर्श पंचायत प्रशासन

ग्राम्य ढांचे की जिस धारणा का उल्लेख मैंने ऊपर किया है, उससे 'पंचायत प्रशासन' की धारणा पर अवश्यमेव प्रभाव पड़ना चाहिये। यह केवल ऐसा अधिकारी नहीं होगा जो कि परिधि पर काम कर रहा हो। यह राज्य के प्रशासनिक ढांचे का विकेन्द्रित अंश भी नहीं होगा। इसे जीवन के विशेष मूल्यों के आधार पर नयी सामाजिक व्यवस्था की नींव बनना है। इसे शान्तिमय सामाजिक क्रांति का एक प्रभावपूर्ण औजार बनकर कार्य करना है। इसे राजनीतिक और आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण का माध्यम बनना है। इसको संगठित जनतंत्र का एक नमूना बनना है। और यह सभी कुछ इसे एक विशेष रचनात्मक दृष्टिकोण द्वारा ही प्राप्त करना है।

मैं अच्छी तरह समझता हूं कि मैंने जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह फौरन ही कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। गांधी जी ने भी कहा था :

> "मुझ पर यह ताना कसा जा सकता है कि यह सब अत्यन्त कल्पनाजन्य है, और इसलिये इसका मूल्य भी विचार के बराबर नहीं। यदि यूक्लिड का बिन्दु, जिसे अंकित करना किसी भी मानव के लिये असम्भव था, शाश्वत महत्व रखता है, तो मैंने जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसका भी मानवता के अस्तित्व के लिए अपना शाश्वत महत्व है। भारत इस सच्चे चित्र के लिये कायम रहे, हालांकि यह पूर्ण रूप में कदापि हासिल नहीं किया जा सकता। इसके पहले कि हम अपनी आकांक्षा जैसा चित्र उपलब्ध कर सकें, हमारे सामने जो कुछ हम चाहते हैं, उसका सही चित्र होना ही चाहिये। यदि भारत के प्रत्येक ग्राम को लोकतंत्र बनना है, तो मैं अपने आदर्श के औचित्य का दावा करूंगा, जिसमें अंतिम का महत्व प्रथम के समान ही है, या अन्य शब्दों में, किसी को भी न प्रथम होना है न अंतिम।"

लोगों की चेतना के विकास और उनके बीच एक सामान्य किस्म के नेतृत्व के विकास के साथ-साथ इस प्रकार के प्रयोग को भी विकसित होना चाहिये। पश्चिमी किस्म का चुनाव स्वयं गलती करने और सुधारने की लम्बी प्रक्रिया का अंतिम स्वरूप

है। गांवों में पायी जाने वाली चेतना को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि इसे इसके अतिरिक्त गणितीय महत्व के अलावा अन्यथा समझा नहीं जा सकता। गांव की जनसंख्या तो अलग रही, हममें से भी कितनों को अभी लोकतंत्र का यह पहलू समझना है। अतः गांवों के लोगों के लिए इसे समझना कितना ज्यादा कठिन होगा। मैंने अन्यत्र कहा था :

“अतः मतदान द्वारा जनता के आपसी सम्वन्ध को विच्छिन्न होने नहीं दिया जा सकता। अपनी कड़ी मानसिक सीमाओं के कारण राजनीतिक दल, कम से कम वर्तमान परिस्थिति में, सामाजिक विलय और एकीकरण की इस बुनियादी आवश्यकता को तिलांजलि दिये बगैर, तथा सामुदायिक अस्तित्व की प्रक्रिया को क्षति पहुंचाये बगैर, क्रियाशील ही नहीं हो सकते। अतः, मैं बिना हिचक कह सकता हूं कि दलों के आधार पर होने वाले चुनाव गांवों की जनता के प्रति की गयी सबसे बुरी सेवा सिद्ध होंगे।”

प्रो. जी. डी. एच. कोल ने पेरिश कौंसिलों की दलगत राजनीति का उल्लेख करते हुए कहा है :

“यदि हमारा दल चुनाव में पेरिश कौंसिल की सभी जगहों पर सफलता हासिल कर ले, तो पेरिश कौंसिल शायद ही अच्छी तरह कार्य कर सके। इसके लिये समूचे रूप से स्थानीय सामुदायिक सरकार के स्वरूप का प्रतिविम्वित करना तथा अपने सदस्यों में, उनके राजनीतिक मतभेदों के बावजूद, सहकारिता का संगठन करना बेहद जरूरी है।”

मैं इस तरह के चुनावों के विरुद्ध वैधानिक रोक लगाने का अनुरोध करने की सीमा तक जाना चाहूंगा।

मैंने उस समय यह भी कहा था :

“हालांकि चुनाव जनता की इच्छा का मूल्यांकन करने के लिये जरूरी है, महत्वपूर्ण बात यह है कि जनता की इच्छा का मूल्यांकन किस तरह किया जाय, न कि कोई विशेष तरीका। अतः मैं जनता की इच्छा का निश्चय करने के इस सवाल के मौलिक समाधान पर जोर दूंगा। अगर हम गांवों में एकता कायम रखने पर जोर देते हैं, तो हमें अभी भी हर गांव में कुछ ऐसे व्यक्ति मिल सकते हैं जिनमें ग्राम-समाज अपना विश्वास दृढ़ रखने के लिये तैयार होगा। जरूरत है ऐसे कार्यकर्ताओं की जो कि ग्रामीण जनता के विचारों और प्रचलित धाराओं को अच्छी तरह समझते हों, न कि सिर्फ चुनाव सम्बन्धी कानून की प्राविधिक गणित को ही संतुष्ट करते हों।”

निस्संदेह, मतैक्य का मतलब शत प्रतिशत एकता नहीं होता है। यदि पंचायत को अपनी भारी जिम्मेदारियां निभानी हैं, तो गांव के बासिन्दों का उसके साथ रहना लाजिमी है। अन्यथा उसका काफी समय और शक्ति झगड़े और विद्वेष में ही बीत जायगा। अन्तिम रूप में परिणाम विचित्रता और असन्तोष होगा। इस हालत में हम वैयक्तिक तथा दलगत भावनाओं की वेदी पर महान और विशाल लक्ष्य की आहुति चढ़ा देंगे और एक गन्दे किस्म का नेतृत्व उत्पन्न करेंगे जो कि शेष आवश्यक गुणों को भी चूस लेगा।

एकता की सफलता

इस दलील का उत्तर देना मेरे लिये कठिन है कि ग्रामों में मौजूद फूट के बीच एकता कैसे हासिल की जा सकती है। सौराष्ट्र का उदाहरण देकर मैं केवल अपनी प्रामाणिकता प्रस्तुत कर सकता हूं। लेकिन, इसके अलावा, मैं ग्रामीण की अनिवार्य बुद्धिमत्ता में अपने विश्वास को मिटा नहीं सकता। यदि उचित ढंग से उन तक पहुंचा जाय और उन व्यक्तियों द्वारा जिनमें वे विश्वास रखते हों, तो वे विवेक और बुद्धिमत्ता की आवाज को सुनेंगे। शान्तिपूर्ण, संतुष्ट और लाभप्रद अस्तित्व के लिये प्रेम उनके हृदयों पर असर करता है और उनके विचारों पर शासन करता है।

मैं भी पंचायतों के वर्गीकरण के पक्ष में रहा हूं। जैसे-जैसे वे अधिक अनुभवशील और परिपक्व होती जायं, उन्हें उत्तरोत्तर उच्च स्थान प्रदान किया जाय। इस दिशा में भी प्रयत्न किया गया और सौराष्ट्र में यह सफल साबित हुआ। ‘स’ श्रेणी की पंचायतें सामान्य स्वच्छता तथा अन्य कार्य सम्पन्न करती हैं। ‘ब’ श्रेणी की पंचायतें राज्य के सरकारी बकाये वसूल

करती हैं, जिसमें मालगुजारी तथा छोटे तकावी ऋणों के अनुदान भी शामिल हैं, तथा पटवारी या सर्किल निरीक्षकों के अन्य कार्य करती हैं। 'अ' श्रेणी की पंचायतों पर न्याय सम्बन्धी कार्यों का भार है। जिस अनुपात से ये कार्य सम्पन्न करती हैं उसी अनुपात से सरकारी अंशदान में वृद्धि होती है। सामान्य रूप से, 'ब' श्रेणी की पंचायतों तक पहुंचने के लिये 'स' श्रेणी की पंचायत को दो वर्ष लगते हैं और एक या दो से अधिक 'ब' श्रेणी को पंचायत को 'अ' श्रेणी तक पहुंचने के लिये। मेरा ऐसा विचार है कि ग्रामीण को उत्तरदायित्व की दृष्टि से केवल उसी हद तक प्रभावित किया जा सकता है जिस सीमा तक राज्य के नेतृत्व में पंचायत को जिम्मेदारी हस्तान्तरित करने का उद्योग होता है। यह तथ्य, कि सरकार वास्तविक, उचित तथा वृहत्तम सम्भव अधिकार हस्तान्तरित करने को दृढ़ प्रतिज्ञ है, पंचायत को प्रभावपूर्ण बनाने तथा उससे श्रेष्टतम प्राप्त करने में बहुत प्रभावकारी रहा है।

ग्रामीण प्रशासन लोगों के निकटतम रह कर ही कार्य कर करता है। उसमें अधिकार या सत्ता के बनावटी रोब को बनाने या भय पैदा करने की कोई गुंजाइश नहीं, जो कि मंत्रियों या अधिकारियों में हैं। ग्रामीण लोगों तथा ग्रामीण नेतृत्व दोनों के हित में निरंकुश शक्तियों का कोई प्रयोग नहीं होना चाहिये, जो कि उन्हें स्वीकार करने की जरूरत पड़ सकती हैं। एकमात्र प्रभावपूर्ण तरीका समझाना-बुझाना तथा हृदय परिवर्तन ही हो सकता है। उचित ढंग तो जीवन के एक नये सहयोगी तथा सभ्य तरीके के मूल्यों के प्रति वफादारी पैदा करना है। ग्राम पंचायत को सामाजिक शिक्षा तथा सामूहिक जीवन का तथा उसके लिये अवसर प्रदान करने का माध्यम बननां चाहिये।

गांव को पुलिस के प्रबन्ध से भर देने की भी गुंजाइश नहीं। आन्तरिक या आत्म-संयम एक गांव के सामाजिक जीवन में एकमात्र सुरक्षा यंत्र है। एक धर्म-निरपेक्ष लोकतंत्र में भी लोगों को अपने पूर्वजों की आस्था से शिक्षा ग्रहण करने और अपने बच्चों के चरित्र के लिये बुनियाद तैयार करने की गुंजाइश है। हम धर्म का मजाक नहीं उड़ा सकते। ग्रामीण स्तर पर धर्म कम से कम विच्छिन्नता या उथल-पुथल मचायेगा।

पंचायतों के कार्य

पंचायत के कार्यों को अच्छी तरह बताया जाना चाहिये। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन में योजना आयोग ने यही बताने का प्रयत्न किया है। उसने कार्यों को दो व्यापक वर्गों में बांट दिया है, जैसे प्रशासनिक तथा न्याय सम्बन्धी। न्याय सम्बन्धी कार्यों के अन्तर्गत नागरिक तथा आपराधिक न्याय का प्रशासन, श्रम कानून, खास तौर से कृषि मजदूरों में न्यूनतम वेतन का अधिनियम तथा भूमि से सम्बन्धित साधारण झगड़ों में उगका लागू किया जाना आता है। प्रशासनिक कार्यों में नागरिक कार्य तथा भूमि व्यवस्था तथा विकास सम्बन्धी कार्य शामिल हैं। नागरिक कार्यों में ग्रामीण स्वच्छता, देख-रेख तथा जन्म और मृत्यु के लेखन कार्य आते हैं। देख-रेख सम्बन्धी कार्य गांव के बड़ों द्वारा सम्पादित होने चाहिए। एक पंचायत के न्याय सम्बन्धी अधिकार उसके स्थान और प्रतिष्ठा का निर्माण करते हैं। मालगुजारी का संग्रह तथा उसका सदुपयोग और न्याय पंचायत से लोगों पर उसका आवश्यक प्रभाव जमेगा। अध्याय ७ के अनुच्छेद १२ में इस पर विस्तार पूर्वक विचार करते हुए योजना आयोग ने इन बातों की व्यवस्था की है :

(अ) भूमि-सुधार लागू करन में पंचायतों का सहयोग;
(ब) भूमि के उपयोग का नियमन, और खास तौर पर प्रतिमान, अच्छे प्रबन्ध और कृषि के तरीके अपनाना।
(स) खेती और गांव में उत्पादन सम्बन्धी कार्यक्रम कार्यान्वित करना;
(द) सहकारिता और सहकारी प्रयत्नों को बढ़ावा देना;
(य) कुटीर, ग्रामीण और लघु उद्योगों को बढ़ावा देना; तथा
(र) समूचे रूप में योजना कार्यान्वित करने के लिये जनता के सहयोग का उपयोग।

इस सम्बन्ध में, स्वभावतः हम अपना ध्यान राष्ट्रीय विस्तार सेवा और सामुदायिक योजना खंडों की ओर ले जा सकते हैं। निस्संदेह, यह भूतकालीन विचारधारा के आगे बढ़ा हुआ कदम है। भारत की गरीबी और उसके पिछड़ेपन की प्रत्यक्ष वास्तविकता से जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में दिखलायी पड़ती है, यह बात जरूरी हो जाती है कि ग्राम पंचायतों के माध्यम से सर्वतोन्मुखी प्रयास किये जाय जिनके द्वारा देश की ग्रामीण जनता का इस बात के लिये आह्वान किया जा सके कि वह देश के जीवन के भावनात्मक, सांस्कृतिक और उत्पादन के क्षेत्रों में अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान प्रदान करे।

वित्त और कर्मचारी

प्रशासन के सन्दर्भ में जिस समस्या पर विचार करना शेष है, वह वित्त और कर्मचारियों से सम्बद्ध है। यह सही है कि राज्य सरकारों के पास धन की कमी है। मैंने ऊपर यह बताया है कि अभी भी धन के अलावा ऐसे बहुत से साधन गांवों में सर्वत्र बिखरे पड़े हैं जिनका उपयोग नहीं हो सका है। इस समय जरूरत यह है कि इस तरह बिखरी मानव शक्ति और भौतिक साधनों का उपयोग किया जाय। प्रशासनिक क्षमता की कसौटी इस मामले को सफलता के साथ हल करने में निहित है। इस सन्दर्भ में श्रम-कर विचारणीय हो सकता है, जिसकी अदायगी के सम्बन्ध में यह स्वेच्छा हो कि उसे चाहे नकद अदा किया जाय या श्रम या वस्तु के रूप में। १० करोड़ प्रौढ़ जनसंख्या एक साल में २४ दिन के श्रम की दर पर (जो कि पुराने जमाने में प्रचलित था) श्रम के रूप में १०० करोड़ रुपये प्रदान कर सकती है, बशर्ते कि एक दिन के श्रम का मूल्य आठ आना हो। इससे, और उन साधनों का उपयोग कर जो कि बेकार पड़े हुए हैं या बर्बाद हो रहे हैं, जिनमें बेकार जमीनें और अंशदान, बचत, आदि भी शामिल हैं, काफी मात्रा में पूंजी का निर्माण हो सकता है। हो सकता है कि मैं अति-आशावादी होऊं, लेकिन मुझे निराशावादी को उत्तर देना है। हम अभी शुरुआत भर कर सकते हैं।' इसके बाद कार्यकर्ताओं का सवाल आता है जिनमें पंचायतों से से सम्बद्ध सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही प्रकार के कार्यकर्ता शामिल हैं। जब तक कि पंचायत के सदस्यों और सरकारी तथा गैर-सरकारी कार्यकर्त्ताओं के बीच वह भावनात्मक सद्भावना न होगी, तब तक हम आसानी के साथ तरक्की करने की आशा नहीं कर वकते। मैंने ऊपर उस क्षेत्र में उपलब्ध एक प्रकार की ऐसी अर्द्ध-सरकारी या गैर-सरकारी व्यवस्था की स्थापना की जरूरत का सुझाव दिया है, जो कि नियंत्रण करने या आदेश देने की बजाय ग्राम पंचायत की सहायता और रहनुमायी कर सके। हमें पंचायतों का मित्र, विचारक और मार्गदर्शक बनना है जो कि उस जगह प्रशंसा करने के लिये तत्पर हो जहां प्रशंसा करना उचित हो, और हमेशा उसके मार्ग के बाधक तत्वों को दूर करने से सम्वद्ध उसकी जिम्मेदारियों में हाथ बंटाने के लिए सहायता करने को तैयार भी। हमें निराशा का त्याग कर देना चाहिये। हमें उसका आलोचक नहीं होना चाहिये। ग्राम भारत की आशा है। हमें स्वयं आशावादी बनकर आशा उत्पन्न करने की शिक्षा लेनी होगी।

एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात स्थानीय अधिकारियों और ग्राम पंचायत का पारस्परिक सम्बन्ध है। यदि ग्राम पंचायत को राष्ट्र के समूचे ढांचे का अंग मानना है, यदि उसे राष्ट्रीय उन्मुक्ति के लिये किये गये कुल प्रयत्नों में हिस्सेदार समझना है, तो संघर्ष या समानान्तर क्रियाशीलता का सवाल ही नहीं उठता। अंत में, कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण की समस्या भी है। हमें मानना पड़ेगा कि वर्तमान प्रशिक्षण-प्रणाली बेकार सी है। भारत ग्रामों में रहता है। अतः अगर प्रशिक्षण में इस सत्यता को प्रतिबिम्बित होना है, तो प्रशिक्षण का कार्य स्कूल से ही प्रारम्भ हो जाना चाहिये। अगर स्कूल स्तर पर युवकों को इस दिशा में कुछ प्रशिक्षण मिलने लगे तो ग्राम पंचायतों की आवश्यकताएं श्रेष्ठतर ढंग पर पूरी हो सकती हैं।

(२९ नवम्बर १९५७ को पटना विश्वविद्यालय के 'इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन' में किया गया भाषण)

श्रीमन्नारायण

खाद्य-स्थिति

भारत की खाद्य-स्थिति चिन्ताजनक बनी हुई है। देश के कुछ हिस्सों में घोर वर्षा और बाढ़ के कारण, तथा पहाड़ी इलाकों में सामान्य मौसम से काफी पहले गहरे हिमपात की वजह से, इस साल फसलों को काफी नुकसान पहुंचा है। उसके बाद ही, पिछले दो महीनों के भीतर वर्षा न होने की वजह से, खास तौर पर बिहार, उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल, मध्यप्रदेश और बम्बई के कुछ हिस्सों में सूखे की हालत पैदा हो गयी। इन आपदाओं के कारण खाद्य-स्थिति और भी खराब हो गयी और कुछ अंश तक अगली फसल के लिए भी खतरा पैदा हो गया। यद्यपि इस समय देश में उपलब्ध खाद्यान्नों की कमी पूरी करने के लिए सरकार के पास पर्याप्त मात्रा में अन्न का प्रारक्षित कोष मौजूद है, फिर भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि अगले साल अन्न-संकट पर हावी होने के लिए अभी से विशेष कदम उठाये जायं। यह भी जरूरी है कि अनाज के वर्त्तमान भंडार को सुरक्षित रखने और सभी तरह की बर्बादी से बचने के लिए विशेष उपाय अपनाये जायं। हालांकि निकट भविष्य में अनाज की कमी से भयभीत होने की कोई वजह नहीं, फिर भी हम खाद्य-स्थिति के बारे में आत्म-तुष्ट होकर नहीं रह सकते। केन्द्रीय और राज्य सरकारों को तथा आम जनता को भी सन १९५८ में मुश्किलों का मुकाबला करने के लिए मजबूत इरादे के साथ पर्याप्त तैयारी करनी पड़ेगी।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने १ जून १९५७ को अपनी बैठक में खाद्य-स्थिति पर एक विस्तृत प्रस्ताव स्वीकार किया था,जिसमें देश की कृषि-पैदावार बढ़ाने के लिए एक १८-सूत्रीय कार्यक्रम दिया गया था। कार्य समिति ने इस विषय पर पुन: एक विस्तृत प्रस्ताव स्वीकार किया है, जिसमें नियमित और आयोजित ढंग पर कठिन खाद्य-स्थिति का मुकाबला करने के लिए बहुत से अल्पकालीन और दीर्घकालीन उपायों का उल्लेख दिया गया है जिन्हें सरकार और जनता को अपनाना चाहिए। भोजनालयों, होटलों, जलपान-गृहों, भोजों और प्रीतिभोजों में खाद्यान्नों की हर तरह की बर्बादी से बचने की ओर खास तौर पर ध्यान आकृष्ट किया गया है। यह भी कहा गया है कि जिन क्षेत्रो में मुख्य रूप से गेहूं खाया जाता है, उन में चावल पर इतनी कड़ाई से रोक लगनी चाहिए जिससे मुख्य रूप से चावल खाने वाले क्षेत्रों के लिए पर्याप्त मात्रा में चावल उपलब्ध हो सके। पूरक खाद्य-पदार्थों का इस्तेमाल शुरू करने और खाद्य-उपभोग के स्वरूप में कुछ परिवर्तन करते हुए सन्तुलित भोजन की व्यवस्था करने के लिए संगठित प्रयत्न होने चाहिए। कार्य समिति ने यह भी सुझाव दिया है कि, जहां कहीं संभव हो, कुछ मोटे अनाजों और मक्के जैसी अल्पकालीन फसलें पैदा की जानी चाहिएं। आलू और केले का उपभोग भी मुख्य खाद्य-सामग्री के रूप में होना चाहिए। इन अल्पकालीन फसलों की खेती के लिए सिंचाई की निश्चित व्यवस्था करने के उद्देश्य से देश के विभिन्न हिस्सों में श्रमदान द्वारा कच्चे कुओं का निर्माण होना चाहिए। मुख्तलिफ क्षेत्रों में उपयुक्त किस्म की फसलें पैदा करने के लिए ऊसर और क्षार वाली जमीनों का भी इस्तेमाल करना चाहिए।

कार्य-समिति ने यह भी सुझाव दिया है कि सूखाग्रस्त क्षेत्रों में लोगों को सहायता पहुंचाने के विचार से जो विभिन्न निर्माण-कार्य संचालित किये जाते हैं, उनका संबंध खास तौर पर खेती की पैदावार से होना चाहिए। इस तरह की छोटी-छोटी योजनाओं को बढ़ावा देना चाहिए और इन योजनाओं की जिम्मेदारी ग्राम पंचायतों को सौंप दी जानी चाहिए। लोगों को मदद पहुंचाने के लिए संचालित इन छोटी-छोटी योजनाओं में सामुदायिक विकास खंडों को विशेष दिलचस्पी लेनी चाहिए। दान देने की वजाय, लोगों को औजार और उपकरण प्रदान करने के उद्देश्य से विभिन्न योजनाएं कार्यान्वित करने और खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए हर कोशिश होनी चाहिए। कहने की जरूरत नहीं कि सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों के बीच पूर्ण समन्वय होना चाहिए। हर गांव में, और जहां कहीं संभव हो, हर परिवार के लिए, अल्पकालीन उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित कर लेना चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह जनमत को शिक्षित करके अनाज छिपा रखने की कोशिशों पर प्रभावकारी तरीके से रोक लगाये। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में वृक्षों के अभाव और वनों की कटाई की वजह से भी वर्षा का सामान्य स्वभाव

अव्यवस्थित हो गया है। इसलिए, यह जरूरी है कि वनों की रक्षा की जाय और बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण की योजनाएं तैयार की जायं।

देश की कठिन खाद्य-स्थिति का मुकाबला करने की चिंता में, हमें विदेशों से खाद्यान्नों के आयात पर हद से ज्यादा निर्भर नहीं करना चाहिए। यह सही है कि अगले साल खाद्य-संकट पर हावी होने के लिए कुछ मात्रा में आयात करना जरूरी होगा। किन्तु, आयात की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करना चाहिए। आत्म-विश्वास पर और खाद्यान्न के मामले में देश के भीतर ही आत्म-निर्भर होने पर हमें मुख्य रूप से जोर देना चाहिए। ऐसी हालत में, जब कि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति कुछ बहुत अच्छी नहीं, खाद्यान्नों के आयात पर निर्भर करना अक्लमंदी की बात नहीं। यही वजह है कि हम बार-बार यह कहते आ रहे हैं कि खाद्यान्नों के मामले में आत्मनिर्भरता हासिल करने को राष्ट्रीय सुरक्षा का अविच्छिन्न अंग मानना चाहिए। जो देश अपनी राजनीतिक आजादी को सुरक्षित रखना चाहता है, उसके लिए खाद्यान्न जैसी प्रारंभिक आवश्यकता की वस्तुओं के लिए विदेशों पर निर्भर करना कदापि वांच्छनीय नहीं। हमें यह जानकर खेद है कि अभी तक जब कभी जरूरत पड़ी विदेशों से अनाज के आयात पर ही हद से ज्यादा ध्यान दिया गया है। लेकिन, अब इस तरह की प्रवृत्ति का परित्याग कर देना होगा। राष्ट्र को चाहिए कि वह विभिन्न अल्पकालीन और दीर्घकालीन तरीकों के जरिये अनाज की उपज बढ़ाने के अपने आन्तरिक प्रयत्नों द्वारा ही सभी आकस्मिक संकटों का मुकाबला करने के लिए मनोवैज्ञानिक स्तर पर तैयार हो जाय।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि देश में खाद्यान्नों की पैदावार की दिशा में अभी तक विभिन्न राज्य सरकारों के कृषि विभाग पर्याप्त परिणाम हासिल नहीं कर सके हैं। बेशक, इस क्षेत्र में सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा-खंडों ने अच्छी सफलता हासिल की है। लेकिन, भविष्य में निश्चित रूप से श्रेष्ठतर परिणाम हासिल करने के उद्देश्य से कृषि-विभागों की क्रियाशीलता को और ज्यादा बढ़ाना पड़ेगा। कृषि-सबंधी स्कूलों और कालेजों में जो प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है, उसका भी एकीकरण होना चाहिए। छात्रों को श्रेष्ठतर व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करने पर ज्यादा जोर देना चाहिए, ताकि वे अपना काम अधिक यथार्थ ढंग से सम्पन्न कर सकें। जैसा कि हाल की अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट में सुझाव दिया गया है, हर तहसील में कम से कम एक कृषि हाई स्कूल की स्थापना करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए, और जहां तक सम्भव हो, ग्रामीण क्षेत्रों के सभी साधारण माध्यमिक स्कूलों में अखिल भारतीय माध्यमिक-शिक्षा समिति द्वारा तैयार ऐसे पाठ्यक्रम लागू होने चाहिए, जिनका झुकाव कृषि की ओर हो। इस दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी शिक्षा का असर बहुत ही ज्यादा व्यावहारिक महत्त्व का साबित होगा। सचमुच, आजकल की स्थिति में ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे साधारण स्कूलों का प्रसार निरर्थक सिद्ध होगा, जिनमें खेती पर जोर न दिया गया हो।

अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट में 'सुरक्षित अन्न-भंडार' के निर्माण संबंधी कार्रवाइयों द्वारा मूल्य-स्तर के प्रतिमानीकरण, अर्थात् मूल्यों को उचित स्तर पर कायम रखने के लिए खाद्यान्नों की ख़रीद-फरोख्त, की जरूरत पर बहुत जोर दिया गया है। समिति ने सिफारिश की है कि इसके लिए १०० करोड़ रुपये की प्रारंभिक पूंजी से एक खाद्यान्न स्थिरकारी संगठन की स्थापना होनी चाहिए। यद्यपि इस प्रकार के संगठन की स्थापना, निश्चय ही, मूल्य को एक उचित स्तर पर कायम रखने के लिए फायदेमन्द साबित होगी, किन्तु हमें हमेशा याद रखना चाहिए कि देश के भीतर खाद्यान्नों की वास्तविक उपज बढ़ाने के लिए शीघ्रग्रामी और प्रभावकारी कदम उठाने में ही असली उपाय निहित है। उन क्षेत्रों में, जो कि सूखे से बहुत ज्यादा प्रभावित हैं, आकस्मिक संकट की स्थिति का सामना करने के लिए किसी न किसी रूप में आंशिक नियंत्रण लागू करना, और अनिवार्य अन्न-संचय भी, आवश्यक हो सकता है। लेकिन, इस तरह के उपाय केवल अस्थायी महत्त्व के होते हैं; असली समाधान ज्यादा उत्पादन के आयोजन में ही निहित है, ताकि न सिर्फ हम अपने देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के भोजन की व्यवस्था करने में समर्थ हो सकें, बल्कि हमारे पास पूंजीगत वस्तुओं के आयात के उद्देश्य से निर्यात करने को भी काफी उपज बच सके। अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट का सुझाव है कि द्वितीय योजना की अवधि में केवल १ करोड़ ३ लाख टन अनाज की वृद्धि ही सम्भव है। लेकिन हम प्रधान मंत्री से इस बात में सहमत हैं कि अन्नोत्पादन वृद्धि का हमारा लक्ष्य १ करोड़ ५५ लाख टन ही बना रहना चाहिए जिसे कि योजना आयोग ने निर्धारित किया है। यदि देश की जनता और राज्य सरकारें खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने के लिए अपना दृढ़ प्रयत्न जारी रखें, तो हमें कोई वजह नहीं दिखलायी देती कि खेती के अच्छे तरीके अपना कर और सिंचाई के वर्तमान साधनों का अधिक उचित उपयोग करके भारत अपने खाद्यान्नों की उपज में काफी वृद्धि करने में क्यों समर्थ नहीं हो सकता। भारत में खाद्यान्नों के मामले में आत्मनिर्भरता की हालत पैदा करने के लिए एक दृढ़ इरादे का विकसित करना जरूरी है। कुछ साल पहले प्रधान मंत्री ने यह स्पष्ट मत जाहिर किया था कि भारत को खाद्यान्नों के संबंध में आत्मनिर्भर हो ही जाना चाहिए। लेकिन, दुर्भाग्यवश, हमारे आर्थिक आयोजन में इस पक्ष पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। अब समय आ गया है कि हम अधिक खाद्यान्न उत्पादन की इस समस्या को द्वितीय पंचवर्षीय योजना की सफलता के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मान लें। हमें पूर्ण आशा है कि अगर सभी लोग दृढ़ता से प्रयत्न करें तो हम अवश्य कामयाब होंगे। अगर दूसरे देशों ने अपने खाद्यान्न मोर्चे पर कामयाबी हासिल की है, तो कोई वजह नहीं कि भारत पिछड़ा रहे।

श्री आर. के. पाटिल

आयोजित अर्थ-व्यवस्था में आय-समीकरण की समस्या

विकास की समस्या की परिभाषा करते हुए प्रथम पंचवर्षीय योजना में कहा गया है : "इसलिए, आयोजन का उद्देश्य समाज में उपलब्ध मानवीय और भौतिक साधनों का अधिक प्रभावकारी उपयोग करना, ताकि उनसे अधिक मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन हासिल किया जा सके, और साथ ही साथ, आय, सम्पत्ति और अवसरों की असमानताओं को कम करना—यह दोनों ही होना चाहिए। . . . . अतः हमारा कार्यक्रम दोहरा होना चाहिए, जिससे एक साथ ही अधिक उत्पादकता तथा असमानता में ह्रास के परिणाम हासिल किये जा सकें।" (प्रथम पंचवर्षीय योजना, संक्षिप्त संस्करण, पृष्ठ १.)

इससे स्पष्ट है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के दो मुख्य आधार थे : बढ़ा हुआ उत्पादन और असमानताओं में कमी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के उद्देश्यों में बताया गया है :

"इस व्यापक दृष्टि को ध्यान में रखकर निम्न उद्देश्य प्राप्त करने के लिए दूसरी पंचवर्षीय योजना बनाई गई है :

"१. राष्ट्रीय आय में इतनी अधिक वृद्धि करना जिससे देश के रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो;

"२. मूल और भारी उद्योगों के विकास पर जोर देते हुए देश का तेजी से औद्योगीकरण;

"३. रोजगार के अवसरों का अधिक विस्तार; और

"४. आय और सम्पत्ति की असमानताओं को कम करना और आर्थिक शक्ति का अपेक्षाकृत अधिक समान वितरण।"

उपर्युक्त चार उद्देश्यों में पहले तीन तो सभी प्रकार की विकास-योजनाओं के लिए आवश्यक हैं, चाहे वे पूंजीवादी हों या समाजवादी। समाजवादी आयोजन, या कम से कम हमारी दोनों पंचवर्षीय योजनाएं, तो न केवल बढ़े हुए उत्पादन पर, वरन असमानताओं के कम करने पर भी जोर देती प्रतीत होती हैं। अतः, इस नतीजे पर पहुंचना ठीक ही होगा कि हमारी दोनों पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता, समाजवादी व्यवस्था के प्रति उनकी आस्था की दृष्टि से, इस बिना पर आंकी जानी चाहिये कि वे आय और सम्पत्ति की असमानताओं को कम करने में किस हद तक कामयाब हुई हैं।

आय सम्बन्धी असमानताओं में वृद्धि

इसीलिये बजट पर कांग्रेस महामंत्री द्वारा की गई टिप्पणियों में यह पढ़कर थोड़ी घबराहट सी होती है कि सभी प्राप्त आंकड़े यही बताते हैं कि विगत कुछ वर्षों में असमानताओं में कमी होने की बजाय वृद्धि हुई है।* इस प्रश्न पर मुझे एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री से, जो दोनों योजनाओं से सम्बन्धित रहे हैं, बातें करने का मौका मिला भी है। उनका विचार है कि पिछले कुछ वर्षों में चोटी के उद्योगपतियों और अधिकतम आय की सीमा में आने वाले व्यक्तियों की आमदनी में एक विचारणीय वृद्धि हुई है; फिर भी पर्याप्त आंकड़ों के अभाव में देश के विभिन्न आर्थिक स्तरों पर असमानताओं की कमी या वृद्धि के बारे में कोई आम वक्तव्य देना कठिन है। किन्तु यदि कांग्रेस के महामंत्री का कथन उसी रूप में मान लिया जाय तो प्रतीत होगा कि पंचवर्षीय योजनाओं का एकमात्र वही उद्देश्य, जो पूंजीवादी आयोजन से भिन्न कहा जा सकता है, भी प्राप्त नहीं हो पाया।

---

*एकनामिक रिव्यू १५ मई १९५७।

असमानताओं में कमी लाने के लिये द्वितीय पंचवर्षीय योजना में दिए गए उपायों पर गौर करना भी मुनासिब है। वे उपाय हैं : आयकर, व्यय-कर और सम्पत्ति-कर, सम्पदा-शुल्क और आय की अधिकतम सीमा का निर्धारण, आदि । किंतु योजना में पर्याप्त चेतावनियां भी दी गई हैं, जो इस बात की ओर संकेत करती हैं कि असमानताओं का कम करना न तो सरल कार्य है और न उसके उद्देश्यों के लिए कोई सीधी या सरल राह दी है। यह निम्नांकित उद्धरण से स्पष्ट है :

"लोकतंत्रीय दशाओं में किसी महत्वपूर्ण पैमाने पर विकास की इस दिशा (आय में निम्नतम स्तरों पर वृद्धि और उच्चतम स्तरों पर कमी) में अब तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। ऐसे कोई ऐतिहासिक उदाहरण या योजनाएं भी नहीं हैं जो अविकसित देशों की इस खास समस्या का हल प्रस्तुत कर सकें। समस्या का मजबूती के साथ सामना करना ही पड़ेगा। . . . दूसरी ओर, यह पूरी तरह महसूस किया जा रहा है कि यदि समस्या को नहीं सुलझाया गया तो 'आर्थिक विकास' के साथ ही आय और सम्पत्ति की असमानताएं भी बढ़ती रहेंगी।" (**द्वितीय पंचवर्षीय योजना, द्वितीय** परिच्छेद) ।

अनुचित वितरण और उसके परिणाम

आय की अधिकतम सीमा के निर्धारण को छोड़कर ऊपर बताए गए सभी उपाय कार्यान्वित किए जा चुके हैं। इतने पर भी यदि असमानताएं बढ़ती हैं तो निष्कर्ष यही होगा कि अपनाई जाने वाली सम्पूर्ण प्रणाली में ही कोई त्रुटि है । उपलब्ध आधार से यदि असमानताएं बढ़ती हैं तो उसका यही कारण हो सकता है कि समाज में बढ़े हुए उत्पादन का वितरण ऐसे औसत से किया गया है जो छोटी आय के लोगों के लिए प्रारम्भिक स्थिति की तुलना में कम लाभदायक है । यदि बढ़े हुए उत्पादन का वितरण उसी अनुपात से किया जाता, जो प्रारम्भिक काल में था, तो हालत ज्यों की त्यों अथवा स्थिर रहती; यदि अनुपात छोटी आय वालों के लिए अधिक लाभदायक होता तो असमानताओं का रुख घटौती की ओर होता। निष्कर्ष यह है कि अपनाए गए तरीकों के परिणाम स्वरूप बढ़े हुए उत्पादन को समाज में एक ऐसे औसत से लौटाया जा रहा है जो निम्न स्तरों के लिए पहले की अपेक्षा कम लाभदायक है।

भारत के मौजूदा आर्थिक ढांचे में असमानताओं को कम करने का क्रियांतमक रूप कैसा होना चाहिए ? उसके दो रूप हो सकते हैं। दोनों का सम्मिलित रूप भी हो सकता है। पहला तो यह कि अल्प वेतन-भोगियों की आय के स्तर में पर्याप्त वृद्धि की जाय और अल्पतम वेतन पाने वालों का वेतन भी बढ़ाया जाय। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की हाल की बैठक में श्री भागवत झा आजाद का कदाचित यही प्रस्ताव था, जिसे प्रधानमंत्री ने "बहुत अच्छा किंतु मौजूदा काल में बिलकुल अनुपयोगी" की संज्ञा दी थी। भारतीय जनता का एक बड़ा बहुमत, जिसमें खेतिहर मजदूर, छोटे किसान, शहरी क्षेत्र के अदक्ष श्रमिक और अल्प वेतन-भोगी, आदि शामिल है, इस श्रेणी में आते हैं। इन लोगों के पास मालिक से भाव-ताव करने की शक्ति बहुत कम अथवा नहीं के बराबर है। ये सभी असंगठित और पूरी तरह से अपने मालिकों की दया पर निर्भर रहते हैं। आर्थिक असमानताओं को कम करने के उद्देश्य से अपनाए गए सभी तरीके किसी भी दशा में इनकी आय बढ़ाने में सहायक नहीं हो सकते। इनसे लाभ उठाने के लिये पहले उन्हें संगठित होकर अपने में मालिकों से भाव-ताव करने की शक्ति को बढ़ाना पड़ेगा। इसी तरह वे बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय में हिस्सा बंटाने के योग्य बन सकते हैं। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि उत्पादन के वे साधन, जिनपर उनकी नियुक्तियां आधारित हैं, किसी ऐसे सामाजिक प्रतिबन्धों के अंतर्गत लाए जांय जिनके द्वारा उनकी आमदनी बढ़ी हुई उत्पत्ति को किसी अंश तक सहन कर सके। इन दोनों उपायों की अनुपस्थिति में यह उम्मीद करना व्यर्थ है कि इस तबके की आमदनी बढ़ाने की सीधी प्रणाली द्वारा इनमें व्याप्त असमानताओं में कमी की जा सकती है। और इस तबके में कदाचित हमारी जनसंख्या का अधिक नहीं तो लगभग ७० प्रतिशत भाग तो आ ही जाता है।

समानता लानेवाली सामाजिक सुविधाएं

असमानताओं में कमी करने के प्रश्न पर विचार करने का कदाचित एक और दूसरा और अप्रत्यक्ष तरीका भी है। सीधी आमदनी में खालिस वृद्धि करने की बजाय इस वर्ग के लोगों के लिए जीवन सम्बन्धी उपलब्ध सुविधाओं में इतनी वृद्धि कर दी जाय कि वे उन्हें दो प्रकार से लाभ पहुँचाएँ। पहला लाभ तो यह कि उन्हें वे सुविधाएँ निःशुल्क प्रदान की जायं, जिनके लिए उन्हें खर्च करना पड़ता है; इस प्रकार उनके रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करने में सहायता दी जाय। दूसरा लाभ यह है कि वे सुविधाएँ उनकी संतानों के लिए सुअवसर प्रदान कर सकती हैं। पहले वर्ग में निःशुल्क डाक्टरी सहायता तथा दूसरे वर्ग में बालकों की निःशुल्क शिक्षा आती है। यह कहना कठिन है कि ये प्रवृत्तियां किस हद तक गुणकारी हैं। जहां तक शिक्षा का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि उसका कार्य विचाराधीन वर्गों के हित में बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है। मौजूदा सामाजिक ढांचे में अधिकतर मध्यवर्ग, शहरी क्षेत्रों की मेहनतकश जनता और उच्च वर्ग के लोग ही हाल के शैक्षिक विकासों से लाभ उठाते प्रतीत होते हैं।

एक सुआयोजित अर्थ-व्यवस्था की मांग है कि असमानताएँ अवश्य ही कम की जायँ। इसके बिना वह असफल हो जायगी। परन्तु प्रतीत यह होता है कि ऐसी व्यवस्था में, जहां निजी लाभ के लिए नियुक्तियों की स्वीकृति है, मालिक द्वारा आर्थिक "अतिरेक मूल्य" का झुकाव सदैव ही असमानताओं की ओर ही रहेगा, जब तक कि समाज आगे बढ़कर नौकर और मालिक के सम्बन्धित हिस्सों में यथोचित सुधार नहीं करता। यह निश्चय ही निजी व्यवसाय पर एक प्रकार के ऐसे सामाजिक प्रतिबन्ध से सम्बद्ध है, जो विकासपूर्ण स्थितिमें, उस संपूर्ण समाजवादी व्यवस्था से भिन्न नहीं है, जिसमें निजी व्यवसाय के लिए मानवीय श्रम का शोषण असहनीय है।

कुछ तबकों में कहा जाता है कि संपत्ति का अधिकार लोकतंत्र का एक जरूरी तत्त्व है और इस अधिकार के अभाव में लोकतंत्र खतरे में पड़ जायगा। यहां 'संपत्ति' से आशय उस वैभव से हैं, जिसमें नियुक्तियों की व्यवस्था हो सके। लोकतंत्र के इस स्वरूप में आर्थिक असमानताएँ अवश्य रहेंगी और कदाचित उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि भी होगी, क्योंकि कोई भी चीज सदैव स्थिर नहीं रहती। निजी संपत्ति के स्वामित्त्व में ही एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को नौकर रखकर अपने निजी लाभ के लिए उसका शोषण कर सकता है। कांग्रेस महामंत्री अपने नवीनतम लेख में कहते हैं कि "अन्तिम विवेचन में, नौकर और मालिक के बीच का अन्तर खत्म होना ही चाहिए।" निजी संपत्ति को बिना किसी प्रतिबन्ध में रखे हुए क्या हम इस उद्देश्य की पूर्त्ति कर सकते हैं?

सम्पत्ति का सामाजिक स्वामित्व

यहां हमारा मतलब इस व्यापक प्रश्न से नहीं है कि एक लोकतंत्रीय व्यवस्था में ऐसी स्थिति किस प्रकार लायी जा सकती है। हमारा प्रयोजन तो केवल इस छोटे से प्रश्न से है कि ऐसी स्थिति को लाने के लिए व्यक्ति की स्वतंत्रता कम या प्रतिबन्धित की जाय अथवा नहीं और यदि की जाय तो किस हद तक। स्पष्ट है कि संपत्ति के अधिकार, जिन अर्थों में उनका उल्लेख किया जा चुका है, जब तक कड़ाई के साथ काटे या सीमित नहीं किये जाते, वह स्थिति नहीं लाई जा सकती। समाजवादी व्यवस्था की सच्ची कसौटी भी यही है। इसके संबंध में सैद्धांतिक स्पष्टता जितनी ही जल्दी हो जाय, हम सबके लिए उतना अच्छा है। तभी हम महसूस कर सकेंगे कि कांग्रेस जैसे राजनीतिक संगठन के साथ, जिस रूपमें आज वह संगठित है, हमारे लिए इस आदर्श की पूर्त्ति कितनी असंभव है।

एक लोकतंत्रीय समाजवादी समाज में व्यक्ति के लिए अपन विचार प्रकट करन, उनका प्रचार करने की स्वाधीनता के साथ ही भय और अभावों से मुक्ति मिलनी जरूरी है। यह सब तभी हो सकता है, जब संपत्ति वैयक्तिक स्वामित्त्व के पंजों से मुक्त होकर सामाजिक स्वामित्त्व, प्रतिबन्ध और नियमादि के अधीन हो जाय।

संसदज्ञ

संसद के कक्ष से

संसद के वर्तमान अधिवेशन के प्रथम सप्ताह में लोकसभा ने दो विधेयक स्वीकार किये हैं, जो आर्थिक और औद्योगिक दृष्टि से प्रत्यक्ष महत्त्व के हैं। इसी प्रकार का एक अन्य विधेयक संयुक्त प्रवर समिति को सुपुर्द किया गया है। यह अन्तिम, खान और खनिज (नियमन और विकास) विधेयक, शुरू में विचार और स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत किया गया था, किन्तु तीन कांग्रेसी सदस्यों ने एक प्रवर समिति को यह विधेयक सुपुर्द करने के लिए संशोधन पेश किया। १९४८ में इसी नाम का एक अन्य विधेयक जो कि वर्तमान विधेयक से काफी छोटा था, सरकारी प्रस्ताव पर प्रवर समिति के पास भेजा गया था। अतः इस बार परिवर्तन करने होने की कोई वजह न थी। प्रस्तुत रूप में विधेयक के अन्तर्गत हमारी अर्थ-व्यवस्था के एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के लिए, जो कि द्वितीय योजना के मूलाधार का अविच्छिन्न अंग है, महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाएं दी गई हैं। फिर भी, मंत्री महोदय के लिए यह अच्छा ही था कि उन्होंने इस विचार को तुरन्त स्वीकार कर लिया और स्वयं ही दोनों सदनों की एक संयुक्त प्रवर समिति का प्रस्ताव पेश किया। हम आशा करते हैं कि प्रवर समिति के पास से यह विधेयक उचित रूप में संशोधित तथा सुधारयुक्त होकर आयेगा।

वर्तमान अधिवेशन के प्रथम सप्ताह में स्वीकृत दो विधेयक ये हैं: औद्योगिक वित्त निगम (संशोधन) विधेयक और टैरिफ (संशोधन) विधेयक।

औद्योगिक वित्त निगम

औद्योगिक वित्त निगम का इतिहास काफी विवादपूर्ण रहा है। १९५२ में औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम का एक अन्य संशोधन-विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया गया था। एक कांग्रेसी सदस्य ने निगम की संचालन-प्रणाली के विरुद्ध गंभीर आरोप लगाये। इन पर कांग्रेस संसदीय दल की कार्यकारिणी समिति की बैठक में विचार किया गया। उस पर सरकार ने श्रीमती सुचेता कृपलानी (जो उस समय प्रजा समाजवादी दल में थीं) की अध्यक्षता में एक जांच समिति नियुक्त करने का निश्चय किया। सरकार ने समिति के प्रायः सभी सुझावों को स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप, निगम के संगठन और उसकी कार्य-प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन किये गये। उसके बाद से औद्योगिक वित्त निगम की कार्य-प्रणाली में उल्लेखनीय सुधार हुए हैं। अब इस समय पिछली बातों के संदर्भ में जाना उचित नहीं; किन्तु चार साल के बाद भी ऐसा प्रतीत होता है कि संसद सदस्यों को वे आक्षेप भूले नहीं। हालांकि वे आक्षेप एकदम संगत नहीं, फिर भी कुछ सदस्यों ने उन आक्षेपों का हवाला दिया। विधेयक में दो महत्त्वपूर्ण संशोधन और कुछ छोटे-मोटे संशोधन करने का प्रस्ताव है। तेज औद्योगीकरण तथा विदेशी विनिमय की कमी ने पूंजीगत वस्तुओं का आयात स्थगित भुगतान के आधार पर करने के लिए बाध्य कर दिया है। यह विशेष व्यवस्था स्वभावतः केवल निजी क्षेत्र पर ही लागू हो सकती है। विदेशी निर्यातकर्त्ता इस तरह उधार पर की गयी माल की पूर्त्ति के लिए सरकारी या अर्द्ध-सरकारी जमानत चाहते हैं। सरकारी खरीदों के मामले में सरकारी जमानत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से होती ही है। किन्तु निजी क्षेत्र के आयातों के मामले में स्थिति भिन्न है। विदेशों में की गयी ऐसी खरीदों के लिए, जिन पर देश के सामान्य औद्योगिक विकास को दृष्टिगत रखकर लाइसेंस दिया गया हो या दिया जाने वाला हो, सरकार को यह जरूरी होता है कि वह आवश्यक विदेशी विनिमय प्रदान करे। अतः, जब सरकार इतना विदेशी विनिमय प्रदान करने में असफल हो जाती है, तो यह उचित ही है कि वह इस तरह के स्थगित भुगतान की जमानत दे।

कुछ सदस्यों ने, और खासकर कम्युनिस्ट सदस्यों ने, यह आक्षेप लगाने की कोशिश की कि इस व्यवस्था से बड़े व्यवसायी सरकार से विशेष अधिकार प्राप्त करेंगे। कम्युनिस्ट सदस्यों का दृष्टिकोण बहुत कुछ नकारात्मक रहा, क्योंकि उन्होंने समूचे रूप में विधेयक का विरोध किया। यहां तक कि कुछ कांग्रेसी सदस्यों ने भी भूतकाल का हवाला देकर कि औद्योगिक वित्त निगम बड़े व्यवसायियों की ही सहायता कर रहा है, आक्षेप प्रस्तुत किया। चार साल पहले इस शिकायत का कुछ आधार भी था, किन्तु

इस समय तो इसका कोई औचित्य नहीं। अब राज्य वित्त निगम ने कार्य प्रारम्भ कर दिया है और छोटे उद्योगों की आवश्यकताएं पूरी कर रहा है। रिजर्व बैंक राज्य वित्त निगमों के कार्यों की देखरेख और उनका समन्वय करता है, जो कि १० लाख रुपये तक ऋण देते हैं; औद्योगिक वित्त निगम को उन **उद्योगों** की व्यवस्था करनी पड़ती है जिन्हें १० लाख रुपये से ज्यादा की आवश्यकता हो।

दो महत्त्वपूर्ण संशोधनों में से स्थगित भुगतान वाली धारा का विरोध विरोधी पक्ष के सदस्यों ने मुख्यतः इस आधार पर किया कि बड़े व्यवसायियों को विशेष लाभ प्राप्त हो रहे हैं। जैसा कि हमने कहा है, विदेशी विनिमय की कमी तथा तेज औद्योगिक विकास की आवश्यकता की दृष्टि से इस संशोधन का विशेष महत्त्व है। दूसरे संशोधन का उद्देश्य औद्योगिक वित्त निगम को अपनी क्रियाशील पूंजी के दसगुने के बराबर, न कि वर्तमान ५ गुने के बराबर, पूंजी प्राप्त करने में समर्थ बनाना है। औद्योगिक वित्त निगम का व्यवसाय काफी बढ़ गया है, जैसा कि पिछली वार्षिक रिपोर्ट से स्पष्ट है। इसके पहले दिये गये वार्षिक ऋणों की मात्रा बहुत ही कम थी। राज्यों के पुनर्गठन के बाद, अब ऋण शीघ्रता से मंजूर किये और दे दिये जाते हैं। ३० जून १९५७ को समाप्त होने वाले गत तीन वर्षों में दिये गये ऋणों की मात्राएँ इस प्रकार थीं :

१९५५—१.६४ करोड़ रुपये
१९५६—२.२० करोड़ रुपये
१९५७—९.७७ करोड़ रुपये

अब निगम को काफी मुनाफा भी होने लगा है। फलस्वरूप, वह सरकारी सहायता बगैर ही, स्वयं अपने मुनाफे से, प्रत्याभूत लाभांश अदा करने में समर्थ रहा है। यह भी उल्लेखनीय है कि गत दो वर्षों के भीतर निगम ने सहकारी चीनी कारखानों को १० करोड़ रुपये से अधिक ऋण की मंजूरी दी है। इस प्रकार, यह एक महत्त्वपूर्ण वस्तु के सहकारी उत्पादन में सहायता कर रहा है। ये सहकारी चीनी के कारखाने स्थगित भुगतान वाली व्यवस्था से भी अधिकांशतः लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि उन्हें विदेशों से मशीनों का आयात करना है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि निगम ने पिछले कुप्रबन्ध की विरासत को दूर कर लिया है। केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक तथा जीवन बीमा निगम इसके ८० प्रतिशत से अधिक हिस्सों की पूंजी के मालिक हैं। अतः इसे सार्वजनिक क्षेत्र की संस्था कहा जा सकता है। इसने सोदपुर ग्लास फैक्टरी के कारण उत्पन्न निकृष्ट ऋणों को समाप्त कर दिया है। यह सर्व विदित है कि इस एक ही सौदे में निगम को लगभग ६० लाख रुपये की क्षति उठानी पड़ी है। इसे छोड़ दें तो निगम द्वारा अन्य स्थानों पर पूंजी का निवेश ठीक ही हुआ है; निकृष्ट या संदेहपूर्ण ऋणों की मात्रा २ प्रतिशत से अधिक नहीं। यह भी स्मरणीय है कि औद्योगिक वित्त निगम केवल बैंकिंग संस्था नहीं। इसकी स्थापना उद्योगों के विकास के उद्देश्य से की गयी थी। स्वभावतः इससे यह अपेक्षा की गयी थी कि यह कुछ अंश तक जोखिम उठाते हुए धन्धा करेगा। अतः औद्योगिक वित्त निगम की आलोचना करते समय हमें उन बुनियादी मकसदों को नहीं भुलाना चाहिए जिनके लिए इसकी स्थापना हुई थी।

भारतीय टैरिफ विधेयक

दूसरा विधेयक जिसकी चर्चा हम करेंगे, भारतीय टैरिफ विधेयक है, जिसमें आटोमोबाइल, कोको पाउडर और चाकलेट, कैल्शियम लैक्टेट, रुई और ऊन के कमरबन्द, लकड़ी के पेंचकश तथा एन्टीमोनी उद्योगों के लिए संरक्षण-कर की व्यवस्था की गयी है, जिसका सुझाव टैरिफ आयोग ने दिया है। मंत्री और सदस्य—सभी ने आटोमोबाइल उद्योग पर अपना पूरा समय और ध्यान दिया है। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उद्योग है। परोक्ष रूप से मंत्री महोदय ने स्वीकार किया कि सरकार द्वारा ८ या ९ किस्म की सवारी वाली कारों और ६ या ७ किस्म की ट्रकों के निर्माण की अनुमति देना गलत है। इस उद्योग की सभी इकाइयों की अनुमानित क्षमता लगभग ५० हजार कारों और ट्रकों की है। लेकिन उन्होंने उसके ५० प्रतिशत के बराबर मुश्किल से उत्पादन किया है। इस उद्योग में निविष्ट कुल पंजी लगभग ५० करोड़ रुपये होगी। प्रत्येक निर्माणकारी इकाई को एक बड़ी संख्या में

निरीक्षक कर्मचारी रखने पड़ते हैं, जिससे ऊपरी लागत काफी अधिक पड़ती है। लगभग सभी सदस्यों ने इस बात का उल्लेख किया है कि ६ निर्माणकारी इकाइयों को उत्पादन करने की इजाजत नहीं मिलनी चाहिये थी और कारों और ट्रकों की इतनी अधिक किस्मों की अनुमति भी देना ठीक नहीं था। टैरिफ आयोग ने भी इस बात का उल्लेख किया है और बताया है कि अधिकांश औद्योगिक इकाइयां सिर्फ इसलिए अपना कार्यक्रम पूरा करने में असफल रहीं कि उन्होंने एक साथ ही तीन या चार माडल की गाड़ियां तैयार करनी शुरु किया। सदस्यों ने मंत्री महोदय के इस कथन का स्वागत किया कि स्टुडिबेकर और डाज नामक कारों के निर्माण का कार्यक्रम रद कर दिया गया है। उन्होंने यह घोषणा भी की इस समय ३ किस्म की हल्की कारों के निर्माण की नीति अपनायी जा रही है और यदि औद्योगिक इकाइयां बेबी कारों को विकसित कर सकेंगी तो उनकी भी दो किस्मों के निर्माण की अनुमति दी जायगी। कांग्रेसी और विरोधी——सभी सदस्यों ने इस प्रकार के सीमित निर्माण कार्यक्रम की मांग की। भारत का काम हल्की कारों से अच्छी तरह चल सकता है और उसे भारी और बड़ी कारों के निर्माण में संलग्न होना ठीक नहीं।

कुछ कांग्रेसी सदस्यों ने मूल्य निश्चित करने की नीति का उल्लेख किया। टैरिफ कमीशन ने कहा है कि सरकार ने लागत की उचित जांच नहीं की। अतः यह कहना ठीक नहीं कि सरकार द्वारा निर्धारित तथाकथित उचित मूल्य सचमुच उचित था। मंत्री महोदय ने आश्वासन दिया कि "हम किसी भी मूल्य को सरकार की जमानत या पूर्व सूचना बगैर या मनमाने ढंग पर बढ़ाने नहीं देंगे।" लेकिन मंत्री ने इस बात का कोई आश्वासन नहीं दिया कि उचित ढंग पर लागत की जांच की जायगी या नहीं। उन्होंने टैरिफ कमीशन की कुछ दूसरी सिफारिशों के बारे में भी कोई आश्वासन नहीं दिया, जिनमें उद्योग पर कुछ जिम्मेदारियां डालने की बात कही गई है। हम आशा करते हैं कि टैरिफ कमीशन के इन सुझावों पर सरकार अवश्य विचार करेगी।

जहां तक इस विधेयक में शामिल अन्य उद्योगों का सम्बन्ध है, कुछ अधिक कहना नहीं है। इन उद्योगों का कार्य काफी अच्छी तरह चल रहा है। देशी मांग और देशी उत्पादन के बीच के अन्तर को इन इकाइयों द्वारा उत्पादन बढ़ाकर आसानी से कम किया जा सकता है। इनमें से दो उद्योगों——ऐण्टीमोनी और कैल्शियम लैक्टेट——में हमारी प्रतियोगिता चीन के साथ है, जिसकी लागत हमारी लागत से बहुत ही कम है। इनकी अनुमानित उत्पादन-क्षमता हमारी देशी मांगसे कहीं ज्यादा है। सरकार को चाहिए कि वह इन इकाइयों द्वारा उत्पादन बढ़ाने पर जोर दे, ताकि उनसे न सिर्फ देश की भीतरी मांग पूरी की जा सके, बल्कि निर्यात भी किया जा सके।

ये दोनों विधेयक राज्यसभा द्वारा भी स्वीकृत हो चुके हैं। वहां कोई नयी बात नहीं उठायी गई।

———

सफेद बालोंको श्याम बनाने वाला
लोमा
रजिस्टर्ड
• मधुर सुवास देता है,
• दिमाग को ठंडक पहुंचाता है,
• सर्वत्र बिकता है।
B. SHAH
सोल अेजन्ट: अेम. अेम. खंभातवाळा
अहमदाबाद-१

सुनील गुहा

खाद्यान्न जांच-समिति के प्रतिवेदन पर एक दृष्टि

श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में गत २४ जन को नियुक्त खाद्यान्न जांच-समिति ने अपना प्रतिवेदन अभी हाल में प्रस्तुत किया है। निश्चय ही, यह प्रतिवेदन एक संक्षिप्त किन्तु व्यापक प्रलेख है, जिसमें देश की खाद्य-समस्या के प्रत्येक पक्ष को स्पर्श किया गया है; उन कारणों पर रोशनी डाली गई है, जो हाल में खाद्यान्नों की मूल्य-वृद्धि के लिए उत्तरदायी रहे हैं; अन्नाभाव के विस्फोट केन्द्रों का निर्देश किया गया है; और दूरगामी प्रभाव वाले सुझाव दिये गए हैं। यदि इन सुझावों को तत्परता से कार्यान्वित किया जाय तो खाद्यान्नों का मूल्य स्थिर करने और अर्थ-व्यवस्था को आत्मनिर्भरता की दिशा में उत्तरोत्तर अग्रसर करने में बड़ी सहायता मिलेगी। समिति के दो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष ये हैं: (१) एक ऐसे देश में, जहां अधिकांश जनसंख्या को पूरे पेट भोजन नहीं मिलता, और उत्पादन तथा आय में थोड़ी-सी भी वृद्धि होन पर उपभोग की मात्रा में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है, 'खाद्य संबंधी आत्मनिर्भरता' का आदर्श व्यवहार में एक 'गतिशील लक्ष्य' बन जाता है; और (२) विकासशील अर्थ-व्यवस्था में मूल्य-वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवत्ति अवश्य मौजूद रहेगी, हालांकि मूल्यों में उतार-चढ़ाव होते रहेंगे।

मूल्य-वृद्धि के कारण

समिति की राय में पिछले कुछ वर्षों से सामान्य मूल्य-स्तर में वृद्धि का कारण मांग में सामान्य वृद्धि का होना रहा रहा है, जो कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में पूंजी के बढ़ते हुए निवेश, तथा उसके साथ ही साथ, की गयी घाटे की वित्त-व्यवस्था और साख-विस्तार का परिणाम थी। सामान्य मुद्रास्फीतिक शक्तियों की अभिव्यक्ति खाद्यान्नों के मांग-पक्ष में अनेक तत्त्वों के माध्यम से हुई। ये तत्त्व हैं: (१) जनसंख्या के अनेक वर्गों के खाद्यान्न-उपभोग की मात्रा और स्वरूप में परिवर्तन, जिसके फल-स्वरूप बिक्री के लिए बाजार में भेजे जानेवाले अतिरिक्त खाद्यान्न की मात्रा, और विशेष रूप से, मोटे और छोटे अनाजों की बजाय चावल और गेहूँ की पूर्त्ति, पर दबाव पड़ना; (२) अन्न-संचय की प्रवृत्ति में परिवर्त्तन, जो कि १९५६ में न्यून उत्पादन तथा बढ़ते हुए विकास व्ययों की व्यवस्था के दौरान साथ-साथ ही उत्पन्न हुआ, और जिसमें व्यापारिक बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों से योग मिला जिससे मूल्य-वृद्धि ज्यादा तीव्र हो उठी। समिति का कहना है कि जहां १९५५-५६ में अधिकांशतः व्यापारियों द्वारा ही संचित अन्न के भण्डार का निर्माण हुआ था, वहीं १९५६-५७ में अधिकांश अन्न-भंडार का निर्माण बड़े और मध्यम श्रेणी के उत्पादकों द्वारा हुआ। हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि समिति ने मूल्य-वृद्धि के लिए उत्तरदायी तत्त्वों का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह उस संस्मरण-पत्र में निर्दिष्ट विश्लेषण से भिन्न नहीं, जिसे हमने अपनी ओर से समिति के पास भेजा था।

अनाज का उत्पादन

समिति का मत है कि सन् १९४९-५० की अपेक्षा प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में अनाज के उत्पादन में जो वास्तविक वृद्धि हुई थी, वह लगभग १३.७ प्रतिशत या मोटे तौर पर ७३ लाख टन थी जैसा कि खाद्य और कृषि मंत्रालय द्वारा प्रकाशित उत्पादन-सूचनांकों द्वारा निर्दिष्ट है; यह वृद्धि उत्पादन के असंमजित आंकड़ों द्वारा निर्दिष्ट २०.८ प्रतिशत तो हर्गिज नहीं थी। प्रतिवेदन में कहा गया है कि छोटे अनाजों के उत्पादन में १९५५-५६ में ३० लाख टन और १९५६-५७ में लगभग २० लाख टन की कमी ने चावल और गेहूँ की मांग पर अनिवार्य रूप से प्रभाव डाला, जिससे उनके मूल्य बढ़ गये।

इस बात पर जोर देते हुए कि मूल्यों की दृष्टि से उत्पादन संबंधी परिवर्तनों से भी अधिक महत्त्व खाद्यान्नों की उस अतिरिक्त मात्रा के परिवर्तनों का है, जो बच जाने के कारण बाजार में बेची जा सकती है (जिस पर हमने अपने संस्मरण-पत्र में भी जोर दिया था)। समिति ने विभिन्न अनुसंधान संगठनों द्वारा अपनी ओर से एकत्र आंकड़ों के आधार पर कहा है कि सन् १९५५-५६ की अपेक्षा १९५६-५७ में फ़र्मों के स्तर पर अन्न-भंडार के निर्माण में बहुत अधिक वृद्धि हुई। मोटे तौर पर, १९५६-५७ में फ़सल कटने के दो या तीन महीनों के भीतर ६० प्रतिशत से कम, और कुछ क्षेत्रों में तो ५० प्रतिशत से भी कम, फसल बिक्री के

लिये बाजार में आई, जबकि सामान्य वर्षों में इसकी मात्रा ७० से ८० प्रतिशत होती है। किन्तु, समिति की राय में उत्पादकों द्वारा ऐसा करना अनुचित नहीं, क्योंकि उनका यह कार्य बहुत दिनों से स्वीकृत कृषि संबंधी ऋण और आर्थिक नीति के लक्ष्य के अनुरूप ही है। यह लक्ष्य रहा है : किसान द्वारा अपनी फसल अपने पास संचित कर रखने की क्षमता को बढ़ाना, ताकि वह आर्थिक कठिनाइयों के कारण फसल कटने के तुरन्त बाद अपना अनाज बेचने के लिए मजबूर न हो सके, और उसके फलस्वरूप, मूल्यों में तेज गिरावट न होने पाये।

अभावग्रस्त क्षेत्र

समिति ने अभावग्रस्त क्षेत्रों को, जहां अन्नाभाव के भय के कारण समय-समय पर सट्टेबाजी के उद्देश्य से अनाज छिपा रखने और मूल्य के बढ़ने का दुश्चक्र परिचालित हो जाता है, जिससे निकटवर्त्ती क्षेत्रों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है, चार प्रमुख किस्मों में विभाजित किया है। वे हैं : (१) पूर्वी उत्तर प्रदेश और उत्तरी बिहार जैसे क्षेत्र, जहां आबादी घनी, आराजियां बेहद छोटी और प्रति व्यक्ति आय बहुत ही कम होती है, और जो मुख्य रूप से चावल उत्पन्न करनेवाले इलाके हैं, जिनमें बहुत ही घोर वर्षा होती है और अक्सर बाढ़ तथा दूसरे प्राकृतिक संकट आते रहते हैं। मौसम प्रतिकूल होने पर साधारण सी अव्यवस्था होने पर भी मूल्य तेजी से ऊँचे उठ जाते हैं जिससे ये इलाके निकटवर्त्ती क्षेत्रों में भी मूल्यों की और अधिक वृद्धि पर प्रभाव डालने वाले केन्द्र बन जाते हैं। (२) पश्चिमी बंगाल के कलकत्ता के निकटवर्त्ती जिलों जैसे इलाके जिनकी आर्थिक और जनसंख्या संबंधी स्थिति लगभग ऐसी ही है, और जहां किसी भी कारणवश मूल्यों में वृद्धि की प्रवृत्ति उत्पन्न होने पर अव्यवस्था उत्पन्न करनेवाला तत्त्व प्रायः मांग का दबाव हुआ करता है; जिसमें पड़ोस के राजधानी वाले कलकत्ता शहर से उद्भूत ऊँची क्रयशक्ति और भी अधिक योग देती ह; (३) शुष्क क्षेत्र, अर्थात् पश्चिमी भारत और दक्षिणी पठार के छोटे अनाज उत्पन्न करनेवाले क्षेत्र, जिनकी आबादी अपेक्षाकृत बिखरी हुई है, और जहां वर्षा बहुत ही कम होती है; इन क्षेत्रों में प्रति एकड़ पैदावार बहुत ही कम होती है। इनमें प्रायः सूखा पड़ता रहता है, जिससे फसल मारे जाने का दुश्चक्र परिचालित हो जाता है और फिर मूल्यों में वृद्धि, लोगों में भय, अन्न छिपा रखने की प्रवृत्ति, और मूल्यों में और अधिक वृद्धि का क्रम शुरू हो जाता है। (४) आसाम और मध्यभारत के कबायली इलाके जहां प्रति व्यक्ति आय कम तथा यातायात का खर्च अधिक होता है और अर्थ-व्यवस्था न सिर्फ पिछड़ी हुई है, बल्कि देश के शेष भाग से प्रायः पृथक भी है। स्थानीय फसल खराब हो जाने पर इन क्षेत्रों में असामान्य विपदा छा जाती है। किन्तु, समिति का कहना है कि अन्न संबंधी कठिनाई के प्रथम चिन्ह मुख्य रूप से पहले तीन अभावग्रस्त क्षेत्रों में ही दिखलायी पड़ते हैं, और यदि समय रहते ही सुधार के उपाय अपना लिये जायें, तो भय तथा मूल्यों में आशंका-जन्य वृद्धि को रोका जा सकता है।

भविष्य में खाद्य-स्थिति

भविष्य के संबंध में समिति का अनुमान है कि यदि स्थिति सामान्य रही तो १९६०-६१ में खाद्यान्नों की मांग लगभग ७ करोड़ ९० लाख टन की होगी, जबकि उत्पादन ७ करोड़ ७० लाख टन का होगा। इस प्रकार, द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में भी प्रति वर्ष लगभग २० लाख टन अनाज की कमी बनी रहेगी। किन्तु, तेज मुद्रास्फीतिक प्रवृत्ति और मौसम की खराबी के कारण उत्पादन की क्षति के फलस्वरूप मांग में और अधिक वृद्धि की संभावना बनी रहेगी, जिससे सामान्य वर्ष में भी २० से ३० लाख टन अनाज का आयात करना ही पड़ेगा। समिति ने चावल के आयात के लिए बर्मा के साथ दीर्घकालीन समझौता करने और सार्वजनिक कानून ४८० के अन्तर्गत सं. रा. अमरीका से काफी मात्रा में गेहूँ और चावल आयात करने की आवश्यकता पर बहुत जोर दिया है।

समस्या का समाधान : मध्य मार्ग

समिति का विचार है कि खाद्य-समस्या का समाधान पूर्ण स्वतंत्र व्यापार और पूर्ण नियंत्रण के बीच में ही कहीं होगा। चूंकि अर्थ-व्यवस्था के असंतुलनों की तीव्रता और किस्में भिन्न-भिन्न हैं, अतः उनका सुधार सामान्य अथवा पूर्ण नियंत्रण के उपायों, और विशेष परिस्थिति के स्वभाव और तीव्रता के अनुकूल लाग किये गये विशिष्ट नियमों, के संयोग के माध्यम से करना पड़ेगा।

समिति का सुझाव है कि इन कार्रवाइयों में से कुछ तो व्यापक, जैसे मौद्रिक और राजकोषीय होंगी और कुछ चुनी चुनाई, जैसे किसी विशेष अनाज का प्रत्यक्ष क्रय-विक्रय, अनाज के व्यापारियों को लाइसेंस देना, आदि होंगी। इस समय तो सामान्यतः इतना ही काफी होगा कि सरकार नियमित उपाय के रूप में खुले बाजार में अनाज का क्रय-विक्रय कर, अंशतः थोक व्यापार का सामाजीकरण करे, लाइसेंस की प्रणाली द्वारा शेष बाजार में व्यापारियों के कार्यों पर नियंत्रण रखे, गेहूँ और चावल का प्रारक्षित कोष बना रखे, कुछ परिमाण में चावल और गेहूँ का नियमित रूप से आयात कर और सहायक खाद्य-पदार्थों के उपभोग और उत्पादन के लिए प्रचार का संगठन करे। किन्तु, मूल्यों के बढ़ने की अवधि में, उपर्युक्त उपायों के साथ-साथ, और अधिक आयात करना, संशोधित राशन की दुकानों के जरिये सरकार द्वारा अनाज की प्रत्यक्ष बिक्री, अन्न के आवागमन और स्थानीय अन्न-पूर्ति पर अनुचित दबाव को रोकने के उद्देश्य से क्षेत्रों का निर्माण, तथा सरकार द्वारा अपन प्रारक्षित अन्न-कोष की कमी को पूरा करने के लिए आधिक्य वाले क्षेत्रों में अनिवार्य रूप से अन्न-संचय करना आवश्यक होगा। समिति इस बात को स्वीकार करती है कि जब मूल्यों में तेज गिरावट की संभावना दिखलायी पड़े, तो देश भर में निम्नतम मूल्यों की घोषणा करके उन्हें लागू करना जरूरी होगा।

समिति ने एक समन्वित व्यवस्था के निर्माण की सिफारिश की है, जिसमें (१) 'मूल्य स्थिरकारी बोर्ड' नामक एक उच्च अधिकार-संपन्न नीति-निर्मातृ संस्था; (२) 'खाद्यान्न स्थिरकारी संगठन' नामक एक संगठन जो मूल्य स्थिरकारी बोर्ड द्वारा तैयार नीति और कार्यक्रम के उस अंश को कार्यान्वित करेगा, जिसका संबंध विशेष रूप से खाद्यान्नों के क्षेत्रों में क्रय-विक्रय के कार्यों से होगा; (३) केन्द्रीय 'खाद्य परामर्शदातृ बोर्ड' नामक गैर-सरकारी व्यक्तियों की संस्था; तथा (४) 'मूल्य सूचना विभाग' नामक संगठन जो सभी उचित सूचनायें एकत्र करेगा, शामिल होंगे।

चूंकि खाद्यान्न-मूल्यों को स्थिर करने में अनाज के प्रारिक्षत भंडार का निर्माण करना सबसे अधिक प्रभावकारी साधन हो सकता है—और इस पर ग्रेगरी समिति (१९४३) तथा कृष्णमाचारी समिति (१९४९), दोनों ही ने जोर दिया था—इसलिए यह प्रस्तावित 'खाद्यान्न स्थिरकारी संगठन' का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होना चाहिए। इस संगठन को चाहिये कि वह इस तरह के कार्य उन दोनों ही अवस्थाओं में सम्पन्न करे, जब कि मूल्यों में गिरावट की प्रवृत्ति हो या वे बढ़ रहे हों, क्योंकि ऐसा करने से क्रमशः उत्पादकों और उपभोक्ताओं को संरक्षण प्राप्त होगा। समिति का कहना है कि यदि यह संगठन अच्छी फसल के साल अतिरिक्त अनाज को खरीद ले और उसे खराब फसल वाले वर्ष तक संचित कर रखे, तो उसे मूल्य परिवर्तन को कम करके स्थिरता पैदा करने में अवश्य सफलता मिलेगी।

हमारे पास थोक मूल्यों के जो अखिल भारतीय सूचनांक उपलब्ध हैं, उनसे विभिन्न क्षेत्रीय और वर्गगत असमानताओं पर रोशनी नहीं पड़ती। अतः, समिति का यह सोचना सही है कि क्षेत्रीय सूचनांक तैयार करना जरूरी है, क्योंकि यदि उनका सावधानी से पर्यवेक्षण किया जायगा तो सरकार को अन्न-संकट के वास्तविक स्रोत का पता लगाने में आसानी होगी और वह उनके रोकने के लिए सम्भाव्य उपाय अपना सकेगी।

समिति का विचार है कि किसी न किसी रूप में अनिवार्य अन्न-संचय का उपाय अपनाना जरूरी होगा, ताकि इस बात का विश्वसनीय निश्चय हो सके कि देश के अन्नाधिक्य वाले क्षेत्रों से कम से कम ६ से ७ लाख टन चावल हासिल किया जा रहा है। ऐसा करने का सबसे सरल तरीका यह है कि कुछ आधिक्य वाले क्षेत्रों को पृथक् कर दिया जाय और इन क्षेत्रों में निर्यात के लिये अनाज खरीदने का अधिकार एकमात्र 'अन्न स्थिरकारी संगठन' को सौंप दिया जाय। इस उद्देश्य से कि यह प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य कर सके, खाद्यान्न (संचय और लाइसेंस) आदेश, १९५२, जैसा एक आदेश जारी कर देना चाहिए, जिसके अन्तर्गत उन सभी व्यापारियों और बड़े उत्पादकों के लिये लाइसेंस लेना जरूरी कर दिया जाय जो १०० मन से अधिक अनाज का भंडार रखते हैं, या उसका व्यापार करते हैं।

विशेष विभाग की स्थापना का सुझाव

मूल्य परिवर्तनों की अत्यधिक प्रादेशिक असमानताओं तथा स्थानीय मूल्य-वृद्धियों को दृष्टिगत रख कर समिति ने सुझाव दिया है कि उन राज्य सरकारों के मातहत, जिन्हें भारी अन्नाभाव का सामना करना पड़ता हो, तथा केन्द्रीय सरकार के खाद्य मंत्रालय के अन्तर्गत भी, एक विशेष विभाग स्थापित कर देना चाहिए जिसका कार्य सम्भाव्य बाढ़ों और सूखों से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों का पूर्वानुमान लगाना, अभावग्रस्त इलाकों का पता लगाना और उनके समाधान के लिये तत्काल उपाय लागू करना हो। समिति का यह सुझाव वर्तमान खाद्य-संकट के सन्दर्भ में विशेष महत्व रखता है; और इसमें सन्देह नहीं कि यदि सरकार ने इस बात का पहले से अनुमान लगा लिया होता कि खाद्यान्न-संकट सिर पर खड़ा है, तो शायद खाद्यान्न मोर्चे की कठिनाइयों से बहुत कुछ बचा जा सकता था।

उत्पादन के संबंध में समिति ने कहा है कि द्वितीय योजना की अवधि में अतिरिक्त उत्पादन का यथार्थ अनुमान १ करोड़ ३ लाख टन, अर्थात् आयोजित लक्ष्य के लगभग दो तिहाई के बराबर होगा; और इस न्यूनतर मात्रा को उत्पन्न करने के लिये भी और अधिक प्रयत्नों की आवश्यकता पड़ेगी। समिति ने खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाने के लिये अनेक उपायों का सुझाव दिया है, जिनमें से अधिकांश का उल्लेख हमने स्वयं 'आर्थिक-समीक्षा' के पिछले अंक में प्रकाशित एक विशेष लेख में किया है। इस प्रकार, समिति के सुझावों का उद्देश्य यह है कि भारत की खाद्यान्न व्यवस्था को मौसम के अनिश्चित तत्व के प्रभावों से मुक्त कर दिया जाय और देश को क्रमशः आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ाया जाय। फिर भी, यदि सरकार समिति के सभी सुझावों को अविलम्ब कार्यान्वित और किसानों का उचित मार्ग-प्रदर्शन कर सके, तो हमें पूरा विश्वास है कि द्वितीय योजना की अवधि में योजना आयोग द्वारा निर्धारित खाद्यान्न उत्पादन-लक्ष्य, अर्थात् १ करोड़ ५५ लाख टन का हासिल करना असम्भव नहीं।

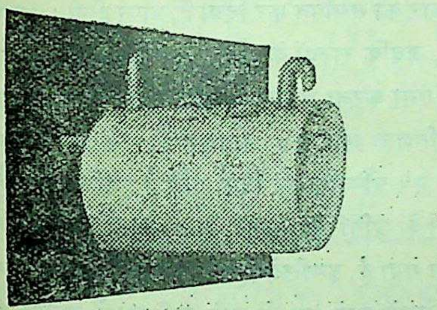

ह्यूम सेप्टिक टैंक

पाखानों के बहाव में
सहायता पहुँचाते हैं

ये सेप्टिक टैंक आधुनिक बस्तियों और बंगलों में अच्छी सफाई के लिए बड़े विस्तृत पैमाने पर प्रयुक्त होते हैं। इन सेप्टिक टैंकों में बैक्टेरियल कार्य होते हैं और आर्गनिक पदार्थों को द्रव तथा ठोस पदार्थों और गैसों में विभाजित कर देते हैं। गैसों को मुड़े पाइप से निकल जाने दिया जाता है। द्रव पदार्थ जो हानिकारक नहीं होता है, मुख द्वार से निकलकर सोकिंग पिट में पहुंच जाता है या बगीचों में प्रयुक्त होता है। जो ठोस पदार्थ शेष रह जाता है, वह तले में स्लज के रूप में जमा हो जाता है और समय से हटा दिया जाता है।

BUNGALOWS
COLONIES
GARDENS

आकार (डायमीटर)	क्षमता	मूल्य
३०″	१५ व्यक्ति	२२५ रु. शुद्ध
३६″	२५ ,,	२६० ,,
४२″	३० ,,	२३५ ,,
४८″	५० ,,	४२० ,,

निर्माता और पूर्तिकर्त्ता:

दी इण्डियन ह्यूम पाइप कं० लिमिटेड
प्रधान कार्यालय: कंस्ट्रक्शन हाउस, बलार्ड इस्टेट, बम्बई-१
दिल्ली कारखाना: सराय रोहिल्ला दिल्ली

सुनील गुहा, एम. वी. रमण राव

आर्थिक टिप्पणियां

वित्त आयोग का प्रतिवेदन

यद्यपि सन्तानम आयोग ने वित्तीय विभाजन का जो ढांचा तैयार किया है, वह इसके पहले वाले वित्त आयोग द्वारा तैयार ढांचे से बहुत भिन्न नहीं, फिर भी इसके प्रति राज्य सरकारों की प्रतिक्रिया निराशाजनक होने की बजाय आनन्दमिश्रित ही होनी चाहिए, क्योंकि सुझाव देते समय आयोग ने न सिर्फ द्वितीय योजना संबंधी आयोजनाएं कार्यान्वित करने में राज्यों को वित्तीय सहायता प्रदान करने की प्रमुख आवश्यकता को ध्यान में रखा है, बल्कि इस बात की भी सच्ची कोशिश की है कि राज्यों को विभाज्य कोष से वसूली की मात्रा की बजाय अधिकांशत: आवश्यकता के आधार पर अधिकतम राजस्व प्रदान किया जाय। सरकार ने आयोग के सुझाव स्वीकार कर लिये हैं और तत्संबंधी परिवर्त्तन शीघ्र ही लागू कर दिये जायेंगे। इस प्रकार, यह स्पष्ट हो गया है कि केन्द्रीय सरकार को सभी राज्य सरकारों की वित्तीय स्थिरता की चिन्ता है, और साथ ही, वह आर्थिक दृष्टि से पिछड़े राज्यों की वित्तीय आवश्यकताओं से अपरिचित नहीं। जब नया वित्तीय विभाजन लागू हो जायगा तो १४ राज्यों को संयुक्त रूप से ४७ करोड़ रुपये की अतिरिक्त आय प्राप्त हो जायगी जिससे चालू राजकोषीय वर्ष में केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को हस्तान्तरित रकम की मात्रा बढ़ कर १४० करोड़ रुपये हो जायगी। राज्यों के हिस्से में यह वृद्धि आयकर से, उत्पादन करों से, जिनमें ५ अन्य नयी वस्तुओं पर लगे कर भी शामिल हैं, रेल भाड़े पर नये कर से और कुछ वस्तुओं के विक्रय कर से जिन्हें राज्य सरकारों ने केन्द्रीय सरकार को समर्पित कर दिया है, प्राप्त होगी। आयकर की विभाज्य मात्रा को ५५ प्रतिशत से बढ़ाकर ६० प्रतिशत कर दिया गया है, जबकि राज्यों के बीच उसका विभाजन ९० प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर और १० प्रतिशत वसूली के आधार पर होगा (ऐसा करना अधिक जनसंख्या वाले तथा अपेक्षाकृत अविकसित राज्यों के अनुकूल होगा)। इसके पहले ये आधार क्रमश: ८० प्रतिशत और २० प्रतिशत थे। केन्द्रीय उत्पादन कर की शुद्ध प्राप्ति के वितरण के वर्तमान आधार को संशोधित करके ४० से २५ प्रतिशत कर दिया गया है; लेकिन, चूंकि इस कर के क्षेत्र को दियासलाई, तम्बाकू और वानस्पतिक उत्पादनों पर लगे करों के अतिरिक्त काफी, चाय, चीनी, कागज और गैर जरूरी वानस्पतिक तेलों पर लगे करों को शामिल करके विस्तृत कर दिया गया है, इसलिये हिस्सों की प्रतिशत दर को कम करने के बावजूद, इस साधन से राज्यों का हिस्सा सम्भवत: बढ़ जायगा। अगले पृष्ठ पर दी गयी तालिका में आयोग द्वारा राज्यों के बीच प्रतिशत वित्तीय वितरण का ढांचा प्रस्तुत किया गया है।

आयोग ने सुझाव दिया है कि विक्रय कर को मिलों में तैयार कपड़े, चीनी और तम्बाकू पर लगे उत्पादन कर में विलीन कर दिया जाय और राज्यों के अंश के वितरण का निर्धारण अंशत: जनसंख्या के आधार पर और अंशत: उपभोग के आधार पर किया जाय। यद्यपि यह व्यवस्था संघीय वित्त-व्यवस्था के स्थापित ढांचे से एकदम भिन्न है, फिर भी सम्भावना यही है कि राज्यों को अब तक विक्रय कर की आय से जो प्राप्ति (३२.५० करोड़ रुपये) होती रही है, उसकी अपेक्षा अधिक मात्रा में उन्हें अतिरिक्त उत्पादन करों की आय से प्राप्त होगा।

आयोग ने सम्पदा कर के विभाजन संबंधी विवादग्रस्त प्रश्न के मामले में जो सुझाव दिया है, वह भी इतना ही ठोस और उचित है। आयोग इस पक्ष में है कि उससे प्राप्त आय का विवरण विभिन्न जायदादों के बीच किसी कड़े अनुपात की बजाय जायदादों के अनुमानित मूल्य के आधार पर होना चाहिए। इस समय राज्यों के बीच सम्पदा कर की प्राप्तियों का वितरण अस्थायी तौर पर उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार आयकर की शुद्ध प्राप्ति का; अन्तर सिर्फ इतना ही है कि जहां आयकर, के मामले में ५५ प्रतिशत का वितरण होता है, वहीं सम्पदा कर की कुल आय में से केन्द्र द्वारा अनुशासित क्षेत्रों को प्राप्त होने वाले अंश को घटाकर शेष का वितरण किया जाता है। ३१ मार्च १९५७ तक की अवधि के लिये आयोग ने सुझाव दिया है कि इस

तालिका

	आयकर में हिस्सा	केन्द्रीय उत्पादन कर में हिस्सा	धारा २७३ के अंतर्गत सहायक अनुदान[१]	धारा २७२ (१) के अंतर्गत सहायक अनुदान	सम्पदा कर में हिस्सा	रेल भाड़ा में हिस्सा	अतिरिक्त उत्पादन कर	
							निश्चित आय	शेष का वितरण
राज्यों का हिस्सा	६०%	२५%	—	—	९९%	९९.७५%	—	९७.७५%
वितरण	प्रतिशत	प्रतिशत	लाख रु०	लाख रु०	प्रतिशत †	प्रतिशत	लाख रुपये	प्रतिशत
आंध्र प्रदेश	८.१२	९.३८	—	४००	८.७६	८.८६	२३५	७.८१
आसाम	२.४४	३.४६	७५.००	३७५ *	२.५३	२.७१	८५	२.७३
बिहार	९.९४	१०.५७	७२.३१	३५० *	१०.८६	९.३९	१३०	१०.०४
बम्बई	१५.९७	१२.१७	—	—	१३.५२	१६.२८	९६०	१७.५२
केरल	३.६४	३.८४	—	१७५	३.७९	१.८१	९५	३.१५
मध्य प्रदेश	६.७२	७.४६	—	३००	७.३०	८.३१	१५५	७.१६
मद्रास	८.४०	७.५६	—	—	८.४०	६.४६	२८५	७.७४
मैसूर	५.१४	६.५२	—	६००	५.४३	४.४५	१००	५.१३
उड़ीसा	३.७५	४.४६	१५.००	३२५ *	४.१०	१.७८	८५	३.००
पंजाब	४.२४	५.५९	—	२२५	४.५२	८.११	१७५	५.७१
राजस्थान	४.०९	४.७१	—	२५०	४.४७	६.७७	९०	४.३२
उत्तर प्रदेश	१६.३६	१५.९४	—	—	१७.७१	१८.७६	५७५	१७.१८
पश्चिमी बंगाल	१०.०८	७.५९	१५२.६९	३२५ *	७.३७	६.३१	२८०	८.३१
जम्मू और कश्मीर	१.१३	१.७५	—	३००	१.२४	—	—	‡

अस्थायी वितरण को औपचारिक रूप से कानून द्वारा मंजूर कर लिया जाय। भविष्य के लिये आयोग का सुझाव है कि केन्द्र द्वारा अनुशासित क्षेत्रों के लिए १ प्रतिशत सुरक्षित करके शुद्ध प्राप्ति के शेष अंश को विवेकपूर्ण ढंग पर अचल और अन्य संपत्तियों के बीच, प्रतिवर्ष इस तरह की मूल्यांकित सम्पत्ति के कुल मूल्य के अनुपात में, बांट देना चाहिए। इस प्रकार, अचल संपत्ति पर प्राप्त होने वाला अंश प्रत्येक राज्य में स्थित ऐसी सम्पत्ति के मूल्य के अनुपात में, और शेष अंश राज्य की जनसंख्या के अनुपात में, वितरित होगा।

पिछले बजट में रेल-भाड़े पर कर लगाने का प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए वित्त मंत्री ने इस बात का संकेत किया था कि इस कर की कुल प्राप्ति राज्यों के राजस्व को बढ़ाने में प्रयुक्त होगी। सन्तानम आयोग ने इसके वितरण का जो आधार तैयार किया है, उसके अनुसार, केन्द्रीय सरकार केन्द्र द्वारा अनुशासित क्षेत्रों के हिस्से के रूप में रेलभाड़ा कर का केवल १ प्रतिशत लेगी, जबकि शेष रकम राज्यों को दी जायगी। राज्यों के बीच इस शेष अंश के वितरण का आधार मार्च १९५६ के पहले के तीन

---

[१] १-४-१९६० से समाप्त हो जायगा।

* १९६०-६१ और १९६१-६२ में अनुदान की मात्रा आसाम के लिये ४५० लाख रुपये, बिहार के लिये ४२५ लाख रुपये, उड़ीसा के लिए ३५० लाख रुपये और पश्चिमी बंगाल के लिये ४७५ लाख रुपये होगी।

† अचल संपत्ति के अलावा अन्य सम्पत्तियों पर लगे कर पर लागू।

‡ जम्मू और कश्मीर को मुआविजा नहीं मिला; किन्तु उसे कुल प्राप्ति का १। प्रतिशत प्राप्त होगा।

वर्ष के भीतर प्रत्येक क्षेत्र का औसत आयोपार्जन होगा ।

आयोग ने १४ राज्यों में से ११ राज्यों के लिए पर्याप्त सहायक अनुदान दने का सुझाव दिया है । लेकिन इसके पहले वाले वित्त आयोग के विपरीत, यह आयोग विशिष्ट उद्देश्यों के लिये अनुदान देने के पक्ष में नहीं ।

इस प्रकार, यद्यपि सन्तानम आयोग की वित्तीय वितरण की योजना राज्यों को उनका बजट सन्तुलित करने में कुछ हद तक सहायक सिद्ध होगी (१९५७-५८ के वित्तीय वर्ष के लिये सभी राज्यों के बजटों का कुल घाटा ८५ करोड़ रुपये है), फिर भी यह बात सन्देहजनक ही बनी हुई है कि उन्हें अब जो अतिरिक्त रकम प्राप्त हो रही है, उसकी सहायता से वे अपनी योजनाएं सफलता के साथ कार्यान्वित कर लेंगे । राज्यों की द्वितीय पंचवर्षीय योजना का कुल आकार २१०३ करोड़ रुपये निश्चित किया गया है, और उनसे आशा की गयी है कि वे अपने राजस्व और पूंजी लेखे से ८२३ करोड़ रुपये के वित्तीय साधन जुटायेंगे । द्वितीय योजना की अवधि में अतिरिक्त कर से ४५० करोड़ रुपये हासिल करने के कार्यक्रम में राज्यों से अपेक्षा की गयी है कि वे २२५ करोड़ रुपये प्राप्त करेंगे। केन्द्रीय वित्त मंत्री ने यह पूर्व चेतावनी दे दी थी कि केन्द्रीय समंजन और सन्तानम आयोग के सुझावों के फलस्वरूप जो भी सहायता प्राप्त हो, किन्तु राज्यों को आवर्त्ती व्ययों की पूर्ति के लिये अतिरिक्त राजस्व की व्यवस्था करनी ही पड़ेगी । आयोग के सुझावों का ज्ञान न होने के कारण अधिकांश राज्यों ने अपने १९५७-५८ के बजट में नये कर प्रस्ताव शामिल करने में हिचकिचाहट दिखलायी, जब कि कुछ थोड़े से राज्यों ने इस समस्या की ओर जबानी प्रयत्न किये और सिर्फ इस बात का संकेत किया कि किन मदों से अतिरिक्त और नयी आय हासिल की जायगी। पहली योजना की अवधि में बम्बई, आसाम और राजस्थान के अलावा, अधिकांश राज्यों के कर संबंधी प्रयत्न उनके द्वारा स्वीकृत लक्ष्यों से बेहद कम साबित हुए । बहुत से राज्यों में मालगुजारी, सिंचाई कर तथा ऋणों का बकाया उत्तरोत्तर बढ़ता रहा है। कई राज्यों में यातायात, औद्योगिक तथा व्यापारिक व्यवसायों के संचालन में काफी घाटा हुआ । आयोग ने इन बातों की कड़ी शिकायत की है । दरअसल, अपने वित्त का प्रबन्ध विवेकपूर्ण ढंग पर और अच्छी तरह करने में राज्य असफल रहे हैं।

राज्यों द्वारा अपनी कर संबंधी संभावनाओं और छोटी बचतों का पूर्णतर उपयोग करना एक ऐसा कार्य है, जिसे अब और अधिक स्थगित करना या भुलाना उचित नहीं । उन्हें केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदान की गयी रकम का अपव्यय या अविवेकपूर्ण व्यय भी कदापि नहीं करना चाहिए । इसमें सन्देह नहीं कि अब तक पिछले सालों के भीतर राज्यों द्वारा अपने वित्त-प्रबन्ध का इतिहास कुछ अधिक सुखद नहीं रहा है । किन्तु इसके बावजूद सन्तानम आयोग ने उनके साथ बड़ी उदारता दिखलायी है । हम आशा करते हैं कि अब राज्य सरकारें अपने योजना संबंधी व्ययों को पूरा करने के लिये अपने सभी साधनों का पूरा-पूरा उपयोग करेंगी ।

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने बालक और प्रौढ़ दुष्टों तथा परित्यक्त और निराश्रित महिलाओं की, जिनके सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये साधनों की व्यवस्था करनी है, समस्याओं का अध्ययन करने के लिये दो परामर्शदातृ समितियां नियुक्त की हैं । बोर्ड का विचार है कि इस समस्या को राजकीय गृहों से संलग्न उत्पादन-केन्द्रों द्वारा पुनःस्थापन की व्यवस्था करके सर्वश्रेष्ठ ढंग पर सुलझाया जा सकता है । अभी तक बोर्ड ने २० सेवा-गृहों तथा २० उत्पादन केन्द्रों से संयुक्त ४२ जिला शरण-स्थलों की स्थापना कर ली है, जिनसे १० हजार व्यक्तियों को लाभ पहुंच रहा है । अक्तूबर १९५३ से लेकर अगस्त १९५७ तक बोर्ड ने ४,५०० से अधिक संस्थाओं की सहायता के लिये १९५.१७ लाख रुपये खर्च किये और ग्रामीण तथा पिछड़े इलाकों में २ हजार से अधिक कल्याण-केन्द्र खोले । अनुमान है कि द्वितीय योजना की अवधि के अन्त तक इन संस्थाओं की संख्या बढ़ कर ७ हजार तक तथा उन पर खर्च की जाने वाली रकम बढ़ कर ३७५.१२ लाख रुपये तक पहुंच जायगी । इसके अलावा, आशा है कि उस समय तक भारत के प्रत्येक जिले में ८ सेवा-गृहों और ३३० शरण-स्थलों की स्थापना हो जायेगी, और ८० उत्पादन-केन्द्र भी संचालित हो जायंगे, जिनसे ४० हजार व्यक्तियों की

आवश्यकता पूरी हो सकेगी। बोर्ड का एक महत्वपूर्ण निर्णय यह है कि वह सभी सामुदायिक विकास खंडों में महिलाओं, बच्चों तथा शारीरिक दृष्टि से असमर्थों के लिये कल्याण कार्य संचालित करेगा। इसके लिए २० हजार केन्द्र संचालित करने की योजना बनायी गयी है, जिनके अन्तर्गत १ लाख २० हजार गांव शामिल होंगे। इसमें १० हजार निःशुल्क महिला कार्यकर्त्रियां नियुक्त की जायंगी। हम बोर्ड को उसके अच्छे कार्यों के लिए बधाई देते हैं।

सं० रा० अमरीका की मान्यताओं में परिवर्तन

यद्यपि भू-उपग्रहों की दिशा में सोवियत रूस की सफलता के कारण सं. रा. अमरीका श्रेष्ठतर वैज्ञानिक शिक्षा, अनुसंधान और प्रशिक्षण के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर प्रयत्नशील होने के लिए निश्चय ही प्रेरित होगा, फिर भी अमरीका के विनम्र और विवेकशील लोग यह सन्देह करने लगे हैं कि सचमुच संयुक्त राज्य अमरीका को आज की स्थिति में, या पिछले वर्षों में, इसी चीज की आवश्यकता है या थी। **न्यूयार्क टाइम्स** के १२ नवम्बर १९५७ के अन्तर्राष्ट्रीय संस्करण में 'शिक्षित व्यक्ति' शीर्षक से लिखे गये चिन्तनशील अग्रलेख में इस समस्या के मूल तत्व को सामने रखा गया है, और कहा गया है : "यदि प्रथम और द्वितीय भू-उपग्रहों ने हमारे देशवासियों और राजनीतिक नेताओं को एक ज्वलन्त आवश्यकता के संबंध में केवल जागरूक भी कर दिया है, तो इसके लिये भी हमें कृतज्ञ ही होना चाहिए। लेकिन सं. रा. अमरीका में इस बात को मान्यता देने के लिये कि हमें केवल अधिक **वैज्ञानिक शिक्षा** की ही नहीं, बल्कि अधिक **शिक्षा** की भी आवश्यकता है, किस बात की आवश्यकता है?" सं. रा. अमरीका के नवयुवकों को (बड़े-बूढ़ों की बात तो अलग रही) शिक्षित पुरुष और महिलाएं बनने के लिये अधिक अवसर, अधिक प्रेरणा और अधिक निर्देशन की आवश्यकता है।

"यह सही है कि वैज्ञानिकों और प्रविधि-विशेषज्ञों की आवश्यकता है, और उनकी संख्या जितनी ही अधिक हो, उतना ही अच्छा है। लेकिन वैज्ञानिक, प्रविधि-विशेषज्ञ या कुछ अन्य बनने से पहले अनिवार्य आधार यह है कि जीवन के वृहत्तर क्षितिज की झलक प्राप्त की जाय; उस भाषा और मानवीय अध्ययन को ग्रहण किया जाय जो हमारी संस्कृति की आधारशिला हैं; और उन्हें युगों और भूतकालीन मानवता के अनुभवों के सम्मुख रखा जाय। इसी की आवश्यकता हमें सचमुच है और हमेशा रही। हमें इस बात की व्यवस्था करनी है कि विज्ञान के स्तर के आकस्मिक उत्थान में हम इसे कहीं खो न दें।"

इस बात पर जोर देते हुए कि वैज्ञानिक और मानवीय शिक्षाएं परस्पर सम्बद्ध हैं, अग्रलेख ने अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील कड़ियों के विकास की आवश्यकता बतलायी है, जो विज्ञानों, सामाजिक विज्ञानों और मानव-शास्त्रों को आपस में जोड़ सके। उसमें कहा गया है : "यदि हम शिक्षित व्यक्तियों की बजाय, अधिक संख्या में प्रविधि-विशेषज्ञ तैयार करने का लक्ष्य सामने रखेंगे, तो विज्ञान पर जो नया जोर दिया जा रहा है, वह स्वयं अपनी पराजय के बीज वपन करेगा। ...... हमें शिक्षा के यथार्थ अर्थ में शिक्षा पर विचार करना है। उच्चतर शिक्षा क्या है और उसे क्या होना चाहिए—इस संबंध में हमें अधिक प्रौढ़ दृष्टिकोण अपनाने पड़ेंगे।"

निस्संदेह, केवल शिक्षा की वही प्रणाली, जो वैज्ञानिक और मानवीय शिक्षा, दोनों पर समानुपातिक जोर देती है, ऐसे शिक्षित व्यक्ति तैयार कर सकती है जो कि अपनी नैतिक और धार्मिक जिम्मेदारियों से परिचित होंगे। आणविक दैत्यों और धार्मिक शिशुओं के हमारे इस विश्व में इस तरह के शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता अधिक है।

राज्य व्यापार निगम

लगभग १६ महीने पहले, जब राज्य व्यापार निगम की स्थापना की गयी थी, निजी व्यापारियों द्वारा प्रतिकूल आलोचनाओं के बावजूद सरकार की दृष्टि में इस संस्था की मुनाफा कमाने की क्षमता का उतना महत्व नहीं था, जितना विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करने की इस की सम्भाव्य क्षमता का। कर-जांच आयोग की भी राय यही थी कि आय-प्राप्ति की दृष्टि से अल्पकालीन अवधि में राज्य द्वारा व्यापार-संचालन से किसी महत्वपूर्ण परिणाम की

अपेक्षा नहीं की जा सकती; और निर्यात प्रोत्साहन समिति ने, जिसकी रिपोर्ट अभी हाल में प्रकाशित हुई है, कहा था कि केवल १६ महीने की व्यावसायिक क्रियाशीलता के आधार हम इस बात का सही-सही मूल्यांकन नहीं कर सकते कि निर्यातों को बढ़ावा देन में राज्य-व्यापार निगम का योग कितना है। किन्तु, १८ मई १९५६ से ३० जून १९५७ की प्रथम वर्ष की अवधि के संबंध में निगम की जो प्रगति रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उसमें न सिर्फ ३२.६३ लाख रुपये का शुद्ध लाभ दिखलाया गया है, बल्कि यह भी बतलाया गया है कि निगम ने सेवा प्रदान करने वाले माध्यम की हैसियत से कार्य करने और हमारे निर्यातों के लिए नये बाजारों का पता लगाने की दिशा में पर्याप्त अच्छा कार्य सम्पन्न किया है। यह सही है कि निगम ने देश के भीतर ही लगभग ६५ करोड़ रुपये की सीमेंट के वितरण का कार्य सम्पन्न करने के सिलसिले में एजेंट की हैसियत से काम करने के लिए प्राप्त कमीशन तथा सेवा-शुल्कों द्वारा ही अधिकांश मुनाफा कमाया है, किन्तु इससे भी बढ़कर महत्वपूर्ण और सही बात यह है कि निगम ने इटली (जिसे इसने १,७५,००० टन कच्चा लोहा बेचा), सोवियत रूस और चेकोस्लोवाकिया (जहां इसने भारतीय दस्तकारी की वस्तुएं बेचीं), इंडोनेशिया (जहां इसने नमक का निर्यात किया) और वियतनाम (जहां इसने जूट की बोरियां और सन की बिक्री की) में नये बाजार विकसित करने में काफी सफलता प्राप्त की। रिपोर्ट के अनुसार, निगम के प्रबन्धकर्त्ताओं ने नयी वस्तुओं के निर्यात के लिए स्वीकार्य शर्तें तैयार करने, स्वीकार्य किस्मों की वस्तुएं उपलब्ध करनेमें उत्पादको की सहायता करने तथा सामान्यतः विविध प्रकार के क्रेताओं को आकृष्ट करने की कोशिश पूरी तत्परता से की है। इस प्रकार, यद्यपि निगम ने अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध कर दिया है, किन्तु उसे अपने कार्य-क्षेत्र को और अधिक विस्तृत करने का प्रयत्न तब तक नहीं करना चाहिए, जब तक कि उसे विश्वास न हो जाय कि उसे इस कार्य के लिये व्यवसाय में विशिष्ट ज्ञान-सम्पन्न कर्मचारी पर्याप्त संख्या में निश्चित रूप से उपलब्ध हो जायगें।

महिला बचत-आन्दोलन

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के वित्तीय कार्यक्रम के अन्तर्गत छोटी बचतों को प्रदान की गयी महत्वपूर्ण भूमिका को दृष्टिगत रख कर जब हम १९५६-५७ में बचत की वसूली के लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में महिला बचत-आन्दोलन द्वारा प्राप्त सफलता पर दृष्टिपात करते हैं, तो उसकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है। इस आन्दोलन ने प्रथम वर्ष, अर्थात् १९५३-५४ में केवल ९४.३ लाख रुपये की वसूली की थी। किन्तु पिछले वर्ष इसकी वसूली ४ करोड़ रुपये से अधिक रही, जबकि उसका लक्ष्य ५ करोड़ रुपये रखा गया था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वसूली का खर्च केवल ०.४ प्रतिशत (कमीशन सहित) रहा। निश्चय ही, यह उल्लेखनीय प्रगति है और आन्दोलन की महान सम्भावनाओं पर रोशनी डालती है। अभी तक इस आन्दोलन की सबसे बड़ी कमजोरी यह रही है कि इसने अपना कार्यक्षेत्र शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित कर रखा था। अतः हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आन्दोलन के केन्द्रीय परामर्शदातृ बोर्ड के दो दिनों के सम्मेलन ने, जो कि अभी-अभी दिल्ली में सम्पन्न हुआ है, न सिर्फ और अधिक प्रयत्न करके अपनी सफलता को ठोस बनाने का निश्चय किया है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी बचत साधनों को प्राप्त करने के लिये अपने कार्यो का विस्तार करने का फैसला किया है। ग्रामीण जनता——पुरुष और महिलाएं——आम तौर पर सन्देह-बुद्धि वाली होती हैं। उनके बीच सफलता हासिल करने में स्वैच्छिक संगठनों को जितनी सफलता मिल सकती है, उतनी निजी कमीशन एजेंटों को नहीं। ये संगठन उन्हें छोटी बचत योजना में पूंजी लगाने के लिये प्रेरित कर सकते हैं। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की अध्यक्षा श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख ने यह घोषणा करके बड़ी उदारता का परिचय दिया है कि कल्याण बोर्ड के विभिन्न केन्द्र छोटी बचत-आन्दोलन को बढ़ावा देने में पूर्ण सहयोग देंगे। आन्दोलन को इसका स्वागत करना चाहिए। जैसा कि राष्ट्रीय बचत-आन्दोलन के अध्यक्ष श्री एन. वी. नायडू ने सुझाव दिया है, आन्दोलन के लिये यह अच्छा होगा कि वह अपनी समितियों में वास्तविक कार्यकर्ताओं को भी शामिल करे।

——सु० गु०

ग्रामदान की भावना

प्रत्येक नये आन्दोलन की आलोचना होती है। कुछ आलोचक नाक-भौं सिकोड़ते हैं, तो कुछ वाक्-छल का प्रयोग करते हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने रचनात्मक विचारों से आन्दोलन को सहायता देने का यत्न करते हैं। जब महात्मा गांधी ने स्वाधीनता संग्राम के व्यापक आन्दोलन के आवश्यक अंग के रूप में अपने रचनात्मक कार्यक्रम की घोषणा की थी, तब उनमें विश्वास रखने वाले अनेक लोगों ने उनका अनुसरण किया। किन्तु संदेही प्रवृत्ति के वशीभूत अनेक लोगों ने उनका छिद्रान्वेषण करके कार्यक्रम के महत्व को कम करने का प्रयास भी किया। आज भूदान और ग्रामदान आन्दोलन के प्रवर्तक विनोबा जी को भी अनुदार और गन्दी आलोचनाओं का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे अनेक सवाल हैं जो आन्दोलन को बदनाम करने और उसके कार्यकर्ताओं एवं समर्थकों को निरुत्साहित करने के लिये उठाए जाते हैं। उनमें से कुछ हैं—'क्या भूदान लोगों के दिल और दिमाग को परिवर्तित करने में सफल हो सका? क्या ग्रामदान साम्यवाद तथा संगीनों के आधार पर एक बंधी-कसी व्यवस्था लाने वाला और लोकतंत्र के लक्ष्य को वशीभूत करने वाला एक अविनीत आन्दोलन नहीं है? ग्रामदान के बाद ताल्लुकादान और जिला दान, आदि की क्रमिक मांग न होगी? आदि।' इसलिये यह आवश्यक है कि आन्दोलन के उद्देश्य का सही रूप में ज्ञान कराया जाय जिससे कि अनजान जनता पक्षपातपूर्ण आलोचनाओं से गुमराह न हो सके।

भूदान एक बुनियादी स्तर है और ग्रामदान उसी भावना का विकसित रूप है। जो लोग यह समझ कर भूदान की तारीफ करते हैं कि वह आध्यात्मिक परिवर्तन द्वारा जनता की सामाजिक और आर्थिक असमानता की समस्या को हल करने में स्पष्ट अथवा अस्पष्ट योग दे रहा है, उनके लिये ग्रामदान का स्वागत करना आवश्यक है। ग्रामदान में दवाव या मजबूरी का किंचित भाव भी नहीं है। उसमें व्यक्ति का तनिक भी लोप नहीं होता, जैसा कि प्रचारित किया जाता है। ग्रामदान के पीछे लोगों की सामूहिक भावना ही नहीं है, किन्तु सामूहिक हित और प्रत्येक व्यक्ति की अपनी उन्नति की सहकारी स्वीकृति भी है। इस बात की शंका करना अप्रासंगिक है कि इस आन्दोलन में व्यक्ति समुदाय में मिल जाता है और 'वैयक्तिक स्वतंत्रता'—जो लोकतंत्र का बुनियादी आधार है—समाप्त हो जाती है। इसमें किसी प्रकार का दवाव या सरकारी प्रतिबन्ध न होना ही लोकतंत्रीय स्वतंत्रता का पूरा आश्वासन है। जहां व्यक्ति की स्वीकृति नहीं है वहां ग्रामदान का काम ही ठप्प हो जाता है। फिर, यदि सहकारी खेती ही ग्रामदान का प्रतिफलित तथ्य है, तो वह भी तभी सफल हो सकती है जब प्रत्येक व्यक्ति उस सामूहिक कार्य में स्वेच्छा और उत्साह से योग दे। इसलिये यह विचार, कि भूदान के निर्दोष और निर्विकार प्रारंभ के बाद 'ग्रामदान' एक गुप्त घूंसे के रूप में सामने आया है, निश्चय ही एक विकृत मस्तिष्क की उपज है। वह इस आध्यात्मिक आन्दोलन के उन बुनियादी विचारों से मेल नहीं खाता, जिनकी सफलता से दुःसाध्य अविश्वासों की आंखें चकाचौंध हो गई हैं।

जब कि भारतीय आलोचक, जो आन्दोलन के अधिक निकट हैं, सन्देह की पीड़ा से ग्रसित हैं और उसे घोर निराशा की दृष्टि से देखते हैं, पश्चिमी आलोचक इस नई क्रांति को अधिक गहराई से समझता और उसके सित-असित पक्षों को अपेक्षाकृत उचित रीति से आंकता है। वह विनोबा जी के आन्दोलन में एक नैतिक क्रांति देखता है। वह ठीक ही सोचता है कि भूदान की तुलना में ग्रामदान की आलोचना का क्षेत्र संकुचित है। उसकी दृष्टि में ग्रामदान 'गांव की एकता और अधिकार शक्ति' का उद्धारक है। ग्रामदान में व्यक्ति अपना स्थान नहीं खोता। उससे वही काम कराया जाता है जो वह अपनी निजी जमीन पर करता है। उसकी आवश्यकता की वस्तुएं उसे मिलती हैं; उसकी हैसियत भी कम नहीं होती। अनेक ऐसी सुविधाएं भी मिलती हैं जिन्हें कदाचित वह अकेले नहीं जुटा पाता। इससे स्पष्ट है कि ग्रामदान संगीनों के आधार पर बंधी-कसी व्यवस्था नहीं है, वरन सहयोग है। न वह साम्यवाद ही है जो अधिकांशतः बड़े पैमाने पर दबाव, हिंसा और अधिकार के बल पर किसी चीज को लाग करने वाली प्रवृत्ति पर निर्भर रहता है।

विनोबा जी के आन्दोलन द्वारा लाया गया नैतिक परिवर्तन अभी भले ही संपूर्ण न हो, किन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि वह बूंद-बूंद करके मानवीय हृदय में प्रवेश पा रहा है और एक समय ऐसा आयेगा जब नाक-भौं सिकोड़ने वाले आलोचकों के बावजूद, मनुष्य का हृदय उससे परिप्लावित हो उठेगा।

—एम० वी० रा०

लघु उद्योगों की समस्या

[लघु उद्योग बोर्ड की ९वीं बैठक में भारतीय लघु उद्योगों की समस्याओं पर विचार किया गया था। हम नीचे उस बैठक की कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। —सम्पादक]

भारतीय लघु उद्योग बोर्ड की ९वीं बैठक २८ और २९ सितम्बर १९५७ को केन्द्रीय उद्योग मंत्री श्री मनु भाई शाह की अध्यक्षता में हुई थी। इस बैठक में अन्य व्यक्तियों के अतिरिक्त, बोर्ड के सदस्यों, राज्यों के उद्योग मंत्रियों और सरकारी सदस्यों और कुछ अन्य निमंत्रित व्यक्तियों ने हिस्सा लिया। सामान्य वाद-विवाद के सिलसिले में पूंजी और कच्चे माल की कमी, प्राविधिक ज्ञान के अभाव, बड़े उद्योगों से सहायक उत्पादन के लिए मांग प्राप्त करने, बिक्री कर, श्रमिक कानून, आदि से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों के कारण छोटे पैमाने के उद्योगों के सम्मुख पेश मुश्किलों की चर्चा हुई।

बोर्ड ने निम्नलिखित विषयों पर चार समितियां नियुक्त कीं: (१) औद्योगिक विस्तार सेवा, (२) क्रय-विक्रय सेवा तथा कच्चे माल की पूर्त्ति, (३) राज्य सरकारों की योजनाएँ, और (४) साख सुविधाएँ और अन्य विषय।

साख-सुविधाएं प्रदान करने वाली संस्थाओं को प्रोत्साहन

लघु उद्योगों के सम्मुख उपस्थित ऋण सुविधाएँ प्राप्त करने की समस्या पर विस्तार के साथ विचार किया गया। यह महसूस किया गया कि प्रोत्साहन देने की अवस्था में सरकार द्वारा छोटे पैमाने के उद्योगों की वित्तीय सहायता करना जरूरी है। उसके बाद यह कार्य ऋण-दातृ संस्थाओं को हस्तांतरित किया जा सकता है। बोर्ड को इस बात की सूचना भी प्राप्त हुई कि उत्तर प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश में लघु-औद्योगिक इकाइयों को ऋण देने के लिए राज्य सरकारों ने राज्य-वित्त आयोगों को एजेंट नियुक्त किया है। मैसूर में राज्य सरकार ने कोष वितरण के लिए ग्रामीण सरकारी बैंक को पूरा अधिकार दे दिया है, किन्तु बम्बई में राज्य वित्त निगम कीजगह उद्योग संचालक द्वारा कोष का वितरण किया जाता है। बोर्ड ने सुझाव दिया कि राज्य सरकारों द्वारा दिये गये ऋण का १० प्रतिशत राज्य वित्त निगमों के माध्यम से वितरित होना चाहिए, ताकि इस प्रकार उन्हें क्रमशः लघु उद्योगों की वित्तीय व्यवस्था के क्षेत्र में आकृष्ट किया जा सके। बोर्ड ने यह भी सुझाव दिया कि सरकार द्वारा लघु औद्योगिक इकाइयों को दिए गए ऋण के कम से कम १० प्रतिशत का वितरण करने के लिए प्रत्येक राज्य में कम से कम ६ शहरी सहकारी बैंकों की स्थापना का कार्य शीघ्रातिशीघ्र पूरा हो जाना चाहिए। यह बात अंकित कर ली गई कि उन पक्षों को चालू पूंजी प्रदान करने के कार्यक्रम का विवरण भारतीय राज्य बैंक द्वारा तैयार हो रहा है जिन्होंने राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम से या उसके माध्यम से आदेश हासिल किया। बोर्ड का मत है कि जिन औद्योगिक इकाइयों ने राज्य सरकारों से आदेश प्राप्त किया है उनके लिए भी इस प्रकार की वित्तीय सहायता की रूप रेखा तैयार की जा सकती है।

इस बात पर भी गौर किया गया कि औद्योगिक सहकारी समितियों को सहकारी वित्त-संस्थाओं से कोष प्राप्त करने में कठिनाई हो रही है, क्योंकि उनमें से अधिकांश कृषि की वित्त-व्यवस्था में व्यस्त हैं। इसलिए यह तय किया गया है कि राज्य सरकारें एक ओर तो सहकारी वित्तीय संस्थाओं द्वारा, और दूसरी ओर, भारतीय राज्य बैंक द्वारा औद्योगिक सहकारी समितियों के लिए कोष की व्यवस्था करने की संभावनाओं की जांच करें। इसके अलावा, जिन शर्तों पर केन्द्रीय सरकार लघु उद्योगों को ऋण देती है उनकी भी जांच की गई और उन्हें पर्याप्त पाया गया। किन्तु यह देखा गया है कि कुछ राज्यों में केन्द्र द्वारा प्रस्तुत कोष का पूरा-पूरा उपयोग नहीं किया गया। इन कोषों के पूर्णतः उपयोग के उद्देश्य से यह सुझाव दिया गया कि ऋण के लिए आवश्यकतानुसार अधिक से अधिक बार प्रार्थनाएं ली जायं। यह देखा गया कि सरकार द्वारा दिये गए ऋणों के और अधिक शीघ्र वितरण के लिए तत्संबंधी कार्यवाही में सुधार करने की जरूरत है। यह सुझाव दिया गया कि वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय राज्य सरकारों से अनुरोध करें कि वे वित्तीय सहायता के उदार तरीकों को स्वीकार करें, जिसके

अन्तर्गत छोटे उपक्रमियों से अधिक से अधिक ३ प्रतिशत व्याज दर और औद्योगिक सहकारी समितियों से ५०,००० रु. तक के ऋण पर २॥ प्रतिशत व्याज लिया जाय।

बोर्ड ने प्रिंटिंग प्रेस उद्योग संबंधी अपने पूर्व निर्णयों पर पुनर्विचार किया और यह निश्चय किया कि उसे सरकारी सहायता क्षेत्र से बाहर करने की जरूरत नहीं है, भले ही उसे विभिन्न राज्यों के अधीन कोष पर निर्भर होने के सिलसिले में कम प्राथमिकता दी जाय।

लघु उद्योग-कार्यक्रम का मूल्यांकन

देश के विभिन्न भागों के २७ केन्द्रों में की जाने वाली चुने हुए उद्योगों की सामयिक जांच से संबंधित प्रस्ताव पर विचार हुआ।

यह सिफारिश की गई कि वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय सम्मिलित सुविधा केन्द्रों के स्थायी खर्चों को राज्य और केन्द्र द्वारा आधा-आधा बर्दाश्त करने की संभावना पर तीन वर्ष तक परीक्षण करे, जिससे केन्द्र अधिक संतोषप्रद रूप से चलने में समर्थ हो सकें।

औद्योगिक सहकारिता और क्षेत्र

आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए शिल्पकारों में सहकारी समितियों के निर्माण को प्रोत्साहन देने के लिए औद्योगिक सहकारी समितियों की स्थापना संबंधी खर्चों को तीन वर्ष तक बर्दाश्त करने की संभावना पर विचार किया गया। यह निश्चित किया गया कि इस प्रश्न को वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय द्वारा नामजद औद्योगिक सहकारी-समितियों के क्रियाशील समूहों के पास विचारार्थ भेज दिया जाय।

छोटे ग्रामीण औद्योगिक क्षेत्रों की स्थापना के प्रस्ताव पर भी विचार हुआ और निश्चय किया गया कि वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय चालू औद्योगिक क्षेत्रों के तजुर्बों के आधार पर इस योजना के विभिन्न पक्षों का परीक्षण करे। मौजूदा स्थिति में ग्रामीण शिल्पियों के लिए संचालित कारखानों के बाद सम्मिलित सुविधा-केन्द्रों की स्थापना ही काफी है।

आदर्श योजनाएं

आदर्श योजनाओं के बारे में भी एक निर्णय किया गया। इस बात की प्रशंसा की गई कि वे आम उपयोग की क्षमता रखती हैं तथा खास मामलों में उन्हें लागू करने के लिए उनमें कुछ सुधार किये जाने चाहिए। बोर्ड ने सिफारिश की कि इन योजनाओं को कच्चे माल और मशीनों के लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकताओं का स्पष्ट संकेत देना चाहिए। छोटे उपक्रमियों के लिए आदर्श योजनाओं के निर्माण का सुझाव भी दिया गया।

विशेषज्ञों की राय की व्यवस्था के बारे में यह सुझाव दिया गया कि निजी उद्योगों में लगे प्राविधिक व्यक्तियों में से चुनकर विशेषज्ञों की एक समिति बनाई जाय। यह भी सुझाव दिया गया कि केन्द्रीय सरकार के संगठनों की आवश्यकताओं के बावजूद केन्द्र लगभग ५० प्राविधिक अफसरों की नियुक्ति करे, जो राज्य के विभागों को मदद करने के साथ ही खास-खास योजनाओं को पूरा करने में सहायता दें।

आयात-सुविधाएं

इस बात पर विचार किया गया कि जुलाई से अक्तूबर १९५७ तक की तिमाही में आयात-निर्यात के प्रधान नियंत्रक ने छोटे पैमाने के उद्योगों की आवश्यकताओं के लिए २५ लाख रुपये की कामचलाऊ व्यवस्था की थी। निर्यात के माल का प्रतिमान कायम रखने के लिये यह सुझाव दिया गया कि किस्म संबंधी प्रतिमान-चिह्नों वाली वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन दिया जाय।

शिक्षित बेरोजगारों के लिए उत्पादन-केन्द्र

शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार संबंधी सुविधाएं देने के लिए बोर्ड ने शिक्षित बेरोजगारों के लिए १७ उत्पादन केंद्र स्थापित करने का सुझाव स्वीकार किया। इन में ऐसी अनेक छोटी इकाइयां होंगी जो १० से १५ व्यक्तियों को रोजगार दे सकेंगी। ये केन्द्र केन्द्रीय सम्मिलित-सुविधा कारखाने द्वारा संचालित होंगे। इन्हीं को आगे चल कर भविष्य में सहकारी समितियों में बदला जा सकता है।

अनुसंधान और वस्तुओं की सरकारी खरीद

इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं है कि छोटे उत्पादन केंद्रों को मजबूत आर्थिक इकाइयों में विकसित करने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है। बोर्ड ने वैज्ञानिकों की सिफारिशों तथा खास तौर से कच्चे माल के परीक्षण के लिए मौजूदा प्रयोगशालाओं के प्रयोग की संभावनाओं पर विचार भी किया।

लघु उद्योगों के बाजार पक्ष पर भी यथोचित विचार किया गया। आज सरकार और सरकारी विभाग बाजार के इस क्षेत्र के खास अंग हैं। बोर्ड ने वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय से जोरदार सिफारिश की है कि वह सप्लाई और डिस्पोजल के डाइरेक्टर जनरल से निवेदन करे कि वह अपने और राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के बीच कार्यवाही का शीघ्र निबटारा करे। यह आशा की जाती है कि यह निबटारा काम में आसानी लाएगा और सरकारी खरीद में छोटे पैमाने के उद्योग की वस्तुएं अधिक मात्रा में खप सकेंगी।

बोर्ड ने राष्ट्रीय लघु-उद्योग निगम द्वारा सप्लाई और डिस्पोजल के डाइरेक्टर जनरल को दिये गए उन विभिन्न सुझावों का व्योरा भी पेश किया, जो ठेकेदार द्वारा उप-ठेकेदारों के जरिए छोटे पैमाने की इकाई से मांग पेश करने के संबंध में थे।

अधीन उद्योगों के रूप में छोटे पैमाने की इकाइयां

यह अनुभव किया गया कि बड़े पैमाने और छोटे पैमाने के उद्योग एक दूसरे के पूरक और सहायक हों और दोनों के बीच किसी प्रकार की अस्वस्थ होड़ न हो। वस्तुतः, छोटे उद्योग का विकास बड़े पैमानों की फैक्टरियों के अधीन ही किया जा सकता है। बोर्ड ने इस बात को जरूरी समझा कि लोहे के जो तीन बड़े कारखाने बन रहे हैं, उनके मातहत पनपने वाले लघु-उद्योगों की संभावनाओं की खोज की जाय। सम्मिलित उत्पादन-कार्यक्रम भी मातहत उद्योगों के लिए उत्पादन के कुछ नए क्षेत्र प्रदान कर सकता है। बोर्ड का कहना है कि मातहत इकाइयों को मजबूत करने के लिए नई औद्योगिक इकाइयों से यह कहा जा सकता है कि वे अपनी जरूरत का सामान छोटे पैमाने की मातहत इकाइयों से ही खरीदें।

निर्यात-प्रोत्साहन

बोर्ड ने यह सिफारिश भी की कि विभिन्न क्षेत्रों की वस्तुएं थोक अथवा फुटकल के रूप में खरीद कर—घूमने वाले विक्रय-वाहनों द्वारा बहुतायत से बेची जायं। एक सफल और मितव्ययी थोक बिक्री का डिपो चलाने और उसकी कम से कम होने वाली आवश्यक बिक्री की सुरक्षा के लिए उद्योगों का और डिपो के लिए स्थान का चुनाव एक महत्वपूर्ण बात है। बोर्ड ने सिफारिश की कि इस मसले पर संबंधित विभाग द्वारा राज्यों के उद्योग डाइरेक्टरों की सलाह ली जाय। निर्यात प्रोत्साहन कार्यवाहियों को भी वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय और विभिन्न संबंधित एजेंसियों के सहयोग में किया जाना चाहिए।

जहां तक किराये के आधार पर मशीनों की खरीद का प्रश्न है, बोर्ड ने इस बात की सिफारिश की है कि निगम सुथरी मशीनों के साथ ही प्रामाणिक किस्मों की बिना सुथरी हुई मशीनें भी सप्लाई करे। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम को मशीनों की और लघु उद्योग योजनाओं को पूरा करने के लिए आवश्यक सामानों की खरीद में उन राज्य सरकारों को मदद देना चाहिए, जिनके पास इसके लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं। बोर्ड का कहना है कि यद्यपि लोहा और इस्पात के वितरण की मौजूदा प्रणाली

संतोषप्रद है, फिर भी केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित नमूने की योजना वाले कारखानों और औद्योगिक क्षेत्रों की नव-स्थापित इकाइयों के लिए अतिरिक्त कोटा लेने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

भारत में लघु उद्योगों को हमारी अर्थ-व्यवस्था के शक्तिशाली क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया गया है। उनकी कम लागत, विदेशी विनिमय की कम आवश्यकता, अधिक रोजगार और खपत की वस्तुओं के उत्पादन की क्षमता, आदि के कारण उनके विकास पर उत्तरोत्तर जोर दिया जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की ओर से श्री वान वार्मेलो ने बोर्ड की बैठक में दर्शक के रूप में भाग लिया। उन्होंने कहा कि लघु उद्योगों के प्रोत्साहन के लिए भारत में उठाए गए कदम और अपनाए गए तरीके इस देश के लिये ही नहीं, वरन अन्य एशियाई देशों के लिए भी खास महत्त्व रखते हैं। अन्त में, बोर्ड के अध्यक्ष ने इस बात पर जोर दिया कि पहले स्थानीय उद्यम और स्थानीय संगठनों को लघु उद्योगों के इस कार्यक्रम की नींव बनना चाहिए; सरकारी कार्य का नम्बर दूसरा होना चाहिए। दूसरी जरूरी बात यह है कि राज्य सरकारों को लघु उद्योगों के विकास की ज्यादा जिम्मेदारियां लेनी चाहिए। यह भी कहा गया कि बोर्ड का कार्य विचारों के परिष्कार तक ही ठीक है और लघु उद्योग विशेषज्ञों की समिति का विचार राज्यों के उद्योग-विभागों से मिला देना चाहिए। लघु उद्योगों के विकास का मौजूदा कार्यक्रम तभी भली प्रकार कार्यान्वित किया जा सकेगा, जब कार्य प्रणाली के गत्यवरोधों को दूर कर दिया जाय और राज्य सरकारें, उद्योग विभाग, उत्पादक, मालिक तथा नौकर—सभी मिल कर विकास की दिशा में बढ़ें।

"भारत का प्रगतिशील औद्योगिक संगठन"
सर जे० पी० श्रीवास्तव उद्योग-संगठन
पो० बा० नं० ३७६, कानपुर
वस्त्र-उत्पादक
दि न्यू विक्टोरिया मिल्स कम्पनी लिमिटेड, कानपुर : दि राजा टेक्सटाइल लिमिटेड, रामपुर
दि न्यू भोपाल टेक्सटाइल्स लिमिटेड, भोपाल : श्री सादुल टेक्सटाइल्स लिमिटेड, श्रीगंगानगर
(बारीक, दरम्याना और मोटे कपड़े व सूत के निर्माता)
तम्बू, दरी, पहनने के कपड़े
दि ज्वाला फैब्रिक्स लिमिटेड, रामपुर
(सिलाई का सूती धागा, गोल जाली, मच्छरदानी और बनियानों, मोजों, आदि का सूत)
दि कानपुर डाइंग एण्ड क्लाथ प्रिंटिंग कम्पनी लिमिटेड, कानपुर
(तंबू, दरी, रंगने और छापने के विशेषज्ञ)
दि ग्वालियर शूगर कम्पनी लिमिटेड, दावरा (म० भा०)
दि ग्वालियर एग्रीकल्चर कंपनी लिमिटेड, दावरा (म० भा)
(हर प्रकार की चीनी, गुड़ और खेती की पैदावार)
आयात, निर्यात, उत्पादकों के प्रतिनिधि, एजेंट्स, बीमा और शिपिंग
दि पायोनियर कन्सोलिडेटेड कंपनी आफ इण्डिया लिमिटेड
हर प्रकार के रोजिन और तारपीन के निर्यातकर्त्ता
विक्रय प्रतिनिधि:— **दि इंडियन टर्पिनटाइन एण्ड रोजिन कं० लि० : शाखाय:—बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई दिल्ली**
(कराची, लन्दन, ज्यूरिक में संबंधित कम्पनियां)
फिल्म स्टुडियो के मालिक तथा हर प्रकार के चलचित्र निर्माता
कैलाश पिक्चर्स : लखनऊ

खाद्य-समस्या पर कांग्रेस कार्य समिति का प्रस्ताव

(गत १६ और १७ नवम्बर १९५७ को नयी दिल्ली में कांग्रेस कार्य समिति ने बाढ़ और सूखे से उत्पन्न देश की गम्भीर खाद्य-स्थिति पर काफी विचार किया और निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया ।)

नयी दिल्ली में, १ जून १९५७ को हुई अपनी बैठक में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने खाद्यान्न उत्पादन पर एक प्रस्ताव स्वीकार किया था । प्रस्ताव में खराब मौसम और बार-बार और बड़े पैमानों पर आनेवाली आपदाओं के कारण पैदा हुई गम्भीर स्थिति की ओर ध्यान खींचा गया था । इन आपदाओं के बावजूद, खाद्य-उत्पादन में प्रगतिशील वृद्धि हुई। लेकिन यह वृद्धि बड़ी मात्रा में खपत और बढ़ती हुई आबादी के लिए पर्याप्त न थी । समिति ने इस समस्या को अत्यावश्यक राष्ट्रीय महत्त्व की समस्या स्वीकार किया और कुछ विस्तार के साथ ऐसे कितने ही कदमों की सिफारिश की, जो विभिन्न सरकारों और जनता द्वारा उठाये जाने चाहिए ।

देश के कुछ भागों में हुई अति वृष्टि और बाढ़ों तथा पहाड़ी क्षेत्र में अधिक मात्रा में पड़ी बर्फ ने फसलों को बहुत नुकसान पहुँचाया । इसके बाद, सितम्बर और अक्तूबर में बारिश की कमी के परिणामस्वरूप बिहार, उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल के कुछ भागों, मध्य प्रदेश तथा बम्बई में स्थिति और भी खराब हो गई । इन तमाम आपदाओं के कारण खाद्य-स्थिति और खराब हो गई, यहां तक कि आंशिक रूप में आनेवाली फसल को भी इसने खतरे में डाल दिया ।

कार्य समिति को पता चला है कि सरकार के पास देश में प्राप्त खाद्यान्नों की कमी की पूर्त्ति करने के लायक इस समय पर्याप्त संग्रह है । अगर इस संग्रह के उचित इस्तेमाल के बारे में सावधानी बरती गई, तो यह संग्रह कुछ महीनों के लिए पर्याप्त होगा । खाद्यान्नों का आयात करने का सुझाव दिया गया है । इन आयातों में अधिक मात्रा गेहूँ और दूसरे मोटे अनाजों की है, क्योंकि विश्व बाजार में इस समय पर्याप्त मात्रा में चावल प्राप्त नहीं है ।

हालांकि निकट भविष्य में भय का कोई कारण नहीं है, फिर भी यह निहायत जरूरी है कि केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें और जनता इस संबंध में पर्याप्त प्रयत्न करे, ताकि १९५८ का संभावित कठिनाई का काल बिना किसी अनावश्यक परेशानी के गुजर जाये । साथ ही, भविष्य में अत्यधिक खाद्य उत्पादन के लिए भी बुनियाद डाली जानी चाहिए । इसके अतिरिक्त, खाद्यान्नों के मूल्यों को उचित स्तर पर रखना भी जरूरी है ।

श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में नियुक्त कमेटी ने अपनी रिपोर्ट अभी हाल में पेश कर दी है; मगर कार्य-समिति के सामने यह रिपोर्ट नहीं थी । आशा है कि रिपोर्ट आगामी नीतियों को निर्धारित करने में काफी सहायता देगी । फिर भी, इस बीच के काल में यह अनिवार्य है कि स्थिति की समीक्षा की जाए और अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन, दोनों दृष्टिकोणों से काफी प्रबन्ध किए जाएँ ।

अल्पकालीन दृष्टिकोण से निम्नलिखित व्यवस्थाएं अत्यावश्यक हैं :

(१) अन्न की बर्बादी रोकी जाए और खाद्यान्नों को सावधानी से सुरक्षित किया जाए । होटलों, रेस्ट्युरेंटों और इस प्रकार की अन्य संस्थाओं को इस संबंध में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए । दावतों और भोजों का आयोजन बहुत सादे ढंग पर किया जाना चाहिए तथा अतिथियों को सीमित संख्या में निमंत्रित करना चाहिए ।

(२) गेहूँ खानेवाले इलाकों में चावल की खपत कम होनी चाहिए, ताकि चावल को भारत के अन्य भागों में, जहां केवल चावल खाया जाता है , भेजा जा सके ।

(३) अन्न के अलावा अन्य खाने की चीजों के प्रचलन के लिए संगठित प्रयत्न किए जाने चाहिए और संतुलित भोजन को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए । हो सकता है कि इन प्रयत्नों के कारण अन्न के उपभोग के तरीके में भी परिवर्तन करना पड़े । अक्सर कहा जाता है कि देश की मौजूदा खाद्य-उपभोग की आदतें स्वास्थ्य के लिए लाभदायक नहीं हैं । प्रसिद्ध चिकित्सकों और भोजन विशेषज्ञों की राय है कि स्वास्थ्य और आहार दोनों ही दृष्टि से अधिक संतुलित भोजन के लिए कुछ परिवर्तनों का किया जाना अवाश्यक हैं । जिन भागों म चावल मूल भोजन है, वहां इसके स्थान पर गेहूँ और अन्य अनाजों का भी प्रयोग प्रारम्भ किया जाना चाहिए । वनस्पतियों का उत्पादन और उपभोग बढ़ाया जाना चाहिए ।

(४) अल्पकालीन फसलों का उत्पादन शीघ्र ही ठीक ढंग के साथ शुरू किया जाना चाहिए। जहां कहीं संभव हो, अल्पकालीन फसलों में मक्का और कुछ मोटे अनाजों की खेती की जानी चाहिए। आलू और केलों का भी प्रयोग करना चाहिए। इन अल्पकालीन फसलों की सिंचाई के लिए कच्चे कुएँ खोदे जान चाहिए।

(५) मछलियों का उत्पादन बढ़ाया जाना चाहिए और जो लोग मछलियां खाते हैं, उन्हें इनका काफी उपभोग करना चाहिए।

(६) भूमि के प्रत्येक छोटे टुकड़े को, खास तौर पर उनको जो गांवों के पास हैं, सब्जियां, आदि उगाने के लिए इस्तेमाल करना चाहिए। एक या अधिक एकड़ के उन भूभागों को समीप के परिवारों को अस्थायी तौर पर दे देना चाहिए, जिन पर इस समय खेती नहीं की जा रही है। इसके लिए कोई बड़ा प्रबन्ध करने की जरूरत नहीं है।

ऊसर और क्षार वाली जमीनों को, जहां कहीं मुमकिन हो, उपयुक्त फसल पैदा करने के लिए इस्तेमाल करना चाहिए और इन जमीनों पर इस ढंग से काम करना चाहिए कि वे खेती के लायक हो सकें।

(७) कृषि उत्पादन के लिए सहायता कार्य शुरू किये जाने चाहिए। छोटी-छोटी योजनाओं को उत्साहित किया जाना चाहिए और गांव पंचायतों को उन योजनाओं का इंचार्ज बना दिया जाना चाहिए। सामुदायिक विकास खंडों की विशेप रूप से इन योजनाओं में दिलचस्पी पैदा की जानी चाहिए। इस अल्पकालीन उत्पादन के जरिए खाद्याभाव को पूरा करने के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न किए जाने चाहिए। यह महसूस किया जाना चाहिए कि वर्तमान संकट को अधिकृत और अनधिकृत एजेंसियों के बीच पूरा समन्वय कायम कर के ही टाला जा सकता है। इस अल्पकालीन उत्पादन के लिए लक्ष्य निर्धारित किये जाने चाहिए और प्रत्येक गांव, प्रत्येक परिवार को इस सिलसिले में अपना-अपना लक्ष्य कायम करना चाहिए।

(८) राज्य सरकारों के कृषि विभागों को अधिक क्रियाशील किया जाना चाहिए और इस बात को प्राथमिकता और राष्ट्रीय महत्त्व के काम के रूप में सम्पन्न करना चाहिए।

(९) किसी प्रकार के गलत अन्न-संग्रह नहीं किए जाने चाहिए और उनको रोकने के लिए सरकार को प्रभावशाली कदम उटाने चाहिए।

समस्या के हल के लिए यह अल्पकालीन व्यवस्था तो केवल कुछ काल के लिए हैं; लेकिन यह जरूरी है कि दीर्घकालीन कदमों को सामने रखा जाए और उनके लिए तैयारी की जाए। खाद्य समस्या का एकमात्र हल अत्यधिक उत्पादन है। वास्तव में, देश की सारी तरक्की, दूसरी योजना और औद्योगीकरण, आदि का विकास अन्ततः कृषि उत्पादन और विशेपकर अनाजों के उत्पादन पर निर्भर करता है। यह नींव है जिस पर प्रत्येक चीज का निर्माण किया जायगा। हालांकि गत सालों में खाद्य-उत्पादन की प्रगति जारी रही, मगर इस प्रगति की चाल पर्याप्त नहीं थी। अतः उसे तेज करना होगा।

मौसम में होनेवाले परिवर्तनों ने, जिनसे वर्षा की सामान्यता पर काफी प्रभाव पड़ता है, हमारे लिए यह जरूरी कर दिया है कि हम तेजी के साथ खाद्य-उत्पादन बढ़ाएँ। इस के लिए यह जरूरी है कि तमाम ऊसर और क्षार वाली जमीनों को कृषियोग्य जमीनों में परिवर्त्तित किया जाय।

खाद्य-उत्पादन मुख्यतः नियमित वर्षा पर निर्भर करता है। जंगलों और पेड़ों द्वारा इस पर काफी मात्रा में नियंत्रण किया गया है। पेड़ों के अभाव में अनियमित और अधिक वर्षा से बड़ी मात्रा में फसलें नष्ट हो जाती हैं और जमीन में क्षरण पैदा हो जाता है। रेगिस्तानी क्षेत्रों में आम तौर पर काफी मात्रा में निरन्तर वर्षा होती है और उसके बाद शुष्क मौसम आता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ भागों में भी इसी प्रकार अचानक और निरन्तर वर्षा से यह जाहिर है कि स्थिति खराब हो रही है और इसके लिए दीर्घकालीन कदम उटाने होंगे। रेगिस्तानी क्षेत्रों को बढ़ने से ही केवल रोकना नहीं होगा, बल्कि इन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर जंगल लगाकर इनको लाभदायक भी बनाना होगा।

पंजाब में ऐसी बहुत जमीनें हैं जो पानी उभड़ आने के कारण खराब हैं। यह बहुत खतरनाक बात है और इसे शीघ्र ही ठीक किया जाना चाहिए।

हालांकि स्थिति बहुत खतरनाक है, फिर भी उपर्युक्त आधारों पर अगर सरकार और जनता मिलकर काम करे तो आसानी के साथ इसका सामना किया जा सकता है। इस वर्ष के कितने ही संकटों और गत दो वर्षों के खराब मौसम के कारण देश को जो नुकसान हुआ है, वह केवल दस प्रतिशत है। इसे आंशिक रूप में आसानी से पूरा किया जा सकता है। शेष भाग की पूर्त्ति अधिक उत्पादन, बर्बादी और फिज़ूलखर्ची को रोककर तथा समान वितरण द्वारा की जानी चाहिए।

कार्यसमिति का जनता से आग्रह है कि वह इस कार्यक्रम पर शीघ्र ही काम करना शुरू कर दे।

अम्बर चर्खा कार्यक्रम : १९५७-५८ की प्रगति

खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने अम्बर चर्खा कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के सिलसिले में सितम्बर १९५७ की कार्यवाहियों की सूचना प्रकाशित की है। यह सूचना विभिन्न संस्थाओं तथा एजेन्सियों द्वारा भेजी गई रिपोर्टों पर आधारित है। नीचे दिये गए आंकड़ों में श्री गान्धी आश्रम, मेरठ, और बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ, जो देश की दो सबसे बड़ी खादी-संस्थाएँ हैं, के सितम्बर मास के कार्य शामिल नहीं हैं।

निम्नांकित तालिका में कामों का जिक्र करते हुए "वर्ष में" का जो समय सबन्धी संकेत है उसका तात्पर्य उस वर्ष से है जो १ अप्रैल सन् १९५७ से प्रारम्भ हुआ है, किन्तु जहां "प्रगतिशील योग" का संकेत है, वहां वर्ष का तात्पर्य जुलाई १९५६ से है, जब से अम्बर चर्खा कार्यक्रम पहली बार स्वीकृत किया गया है :

	संख्या
(१) अम्बर चर्खों का निर्माण	
(क) महीने में	३,४९८
(ख) वर्ष में	४२,१३९
(ग) प्रगतिशील योग	१,१८,९२३
(२) प्रशिक्षित कत्तनों में वितरित अम्बर चर्खे	
(क) महीने में	३,४३६
(ख) वर्ष में	३४,७९६
(ग) प्रगतिशील योग	८०,५३८
(३) व्यक्तियों को प्रशिक्षण	
(अ) प्रशिक्षक	
(क) महीने में	२५०
(ख) वर्ष में	१,६४८
(ग) प्रगतिशील योग	४,१७६
(ब) बढ़ई	
(क) महीने में	२१
(ख) वर्ष में	५४६
(ग) प्रगतिशील योग	१,२९९
(स) कत्तन	
(क) महीने में	३,७३३
(ख) वर्ष में	४४,५१४
(ग) प्रगतिशील योग	९३,१८३
(४) परिश्रमालय	
(क) महीने में स्थापित	१९
(ख) वर्ष में स्थापित	२७६
(ग) चालू परिश्रमालयों का प्रगतिशील योग अप्राप्य, किन्तु निर्दिष्ट संख्यानुसार	२३०
(५) विद्यालय	
(क) महीने में स्थापित	३
(ख) वर्ष में स्थापित	३
(ग) चालू विद्यालयों का प्रगतिशील जोड़	२८

	संख्या
(६) सरंजाम कार्यालय	
(क) महीने में स्थापित	१
(ख) वर्ष में स्थापित	१९
(ग) चालू सरंजाम कार्यालयों का प्रगतिशील योग	९६
(७) सूत उत्पादन	
(क) महीने में	५२,७४४ पौंड
(ख) वर्ष में	११,८५,३०५ पौंड
(ग) प्रगतिशील योग	१९,०७,८२७ पौंड
(८) कपड़ा-उत्पादन	
(क) महीने में	३,२३,६७६ गज
(ख) वर्ष में	३२,३३,७३० गज
(ग) प्रगतिशील योग	५१,१९,५५९ गज

	संख्या
(९) रोजगार	
(अ) कताई करने वाले	
(क) महीने में	३,४३६
(ख) वर्ष में	३४,७९६
(ग) प्रगतिशील योग	८०,५३८
(ब) बुनकर	
(क) महीने में	१,३८८
(ख) वर्ष में	६,१९२
(ग) प्रगतिशील योग	अप्राप्य
(१०) अदा की गई मजदूरी	
(अ) कताई करने वाले	
(क) महीने में	७,२९८
(ख) वर्ष में	५,२१,९३४
(ग) प्रगतिशील योग	अप्राप्य
(ब) बुनकर	
(क) महीने में	१,३२,४५७
(ख) वर्ष म	४,६२,२५१
(ग) प्रगतिशील योग	अप्राप्य

१०५ संस्थाओं में से लगभग ४० ने रोजगार के बारे में और ५० ने मजदूरी के बारे में सूचित किया है।

आर्थिक-समाचार-संकलन

भारतीय

सिंदरी कारखाने के उत्पादन में वृद्धि

मार्च १९५७ में समाप्त वर्ष में भारत सरकार के सिंदरी उर्वरक और रसायन कारखाने को ४,०९,५९,८७३ रु. का लाभ हुआ। यह रकम पिछले साल के लाभ से ३४,४२,०९५ रु. अधिक है। इस वर्ष १७ करोड़ रु. की लागत पूंजी पर ५ प्रतिशत, अर्थात् ८५ लाख रु. का लाभांश देना घोषित किया गया है। पिछले साल ६८ लाख रु. का लाभांश दिया गया था।

कारखाने की वार्षिक रिपोर्ट में बताया गया है कि कारखाने में सभी क्षेत्र में विकास और सुधार हुआ। १९५६-५७ में कारखाने में ३,३३,७०५ टन अमोनियम सल्फेट तैयार किया गया, जबकि पिछले साल ३,२६,०६२ टन तैयार किया गया था। इस प्रकार, इस साल, ७,६४३ टन अधिक अमोनियम सल्फेट तैयार किया गया। अक्तूबर १९५६ में ३२,३९७ टन अमोनियम सल्फेट तैयार किया गया था। इस प्रकार एक दिन का औसत उत्पादन १,०४५ टन रहा, जो अब तक के दैनिक उत्पादन में सबसे अधिक है। १९५६-५७ में ३,६१,०८२ टन उर्वरक की निकासी हुई, जबकि इससे पहले साल ३,१७,५३४ टन की निकासी हुई थी।

सिंदरी के विस्तार के लिए ११ करोड़ रुपये की योजना है। इस साल योजना में काफी प्रगति हुई। नयी लगायी जाने वाली काफी मशीनों का आयात हो चुका है और वे लगा दी गयी हैं।

नये इंजीनियरों और शिल्पियों को काम सिखाने के लिए भी सुविधाएँ बढ़ायी गई हैं। इस वर्ष १०४ इंजीनियर-स्नातक और ६४ ट्रेंड अप्रेंटिस शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इसके अलावा, नांगल उर्वरक कारखाने के लिए ५९ और हिन्दुस्तान कारखाने के लिए ४४ ट्रेंड अप्रेंटिसों को शिक्षा दी जा रही थी। १९४५ में काम सिखाने के लिए जिन्हें भर्त्ती किया गया था, उनमें से १९५७ में ७२ शिक्षा पूरी कर चुके हैं।

इस साल कर्मचारियों के लिए १३० नये मकान बनाये गये। इसके अलावा, ४३१ क्वार्टर बनाये जा रहे थे। लड़कियों के लिये हाई स्कूल और बच्चों के किंडरगार्टन स्कूल के भवन भी बन चुके हैं।

एक निर्णय के अनुसार, उर्वरक कारखाने में दैनिक मजदूरी पर काम करनेवालों की कम से कम मजदूरी २ रु. से बढ़ाकर २॥ रु. कर दी गई है।

इस साल भारत सरकार ने कर्मचारियों को पुरस्कार देने के लिए १६ लाख रु. रखे थे। इसमें से १० लाख रु. के नकद पुरस्कार बांटे गये और छः लाख रुपये मजदूर सुविधा कोष को दे दिये गये।

जिन मजदूरों को दैनिक मजदूरी पर काम करते हुए १ साल से अधिक हो गया है, उन्हें अस्पताल में मुफ्त भोजन की की भी सुविधा और उनमें से १५० रु. से कम आय वालों के बच्चों को मैट्रिक तक निःशुल्क शिक्षा की सुविधा दी गयी है।

खादी उत्पादन एवं बिक्री में प्रगति

विगत अप्रैल से सितम्बर १९५७ तक खादी के उत्पादन और बिक्री के जो आंकड़े १५ राज्यों से हाल में मिले हैं, वे उसके विशाल उद्रेक के परिचायक हैं। इन छः महीनों में सूती खादी ८०,७०,१११ वर्ग गज, ऊनी खादी ७,९०,४२६ वर्ग गज, तथा रेशमी खादी ३,०१,३११ वर्ग गज बनी।

बिहार ने १५,९४,०५५ वर्ग गज खादी बनायी। वह सबसे अव्वल रहा। मद्रास और उत्तर प्रदेश का नम्बर उसके बाद है। उन्होंने क्रमशः १५,००,४०७ वर्ग गज और १४,५७,७९० वर्ग गज खादी बनायी।

सब राज्यों की छः महीने की खुदरा बिक्री कुल १ करोड़ ३५ लाख आठ हजार दो सौ सत्तावन रुपये की हुई।

इसके अतिरिक्त ९४,७५,०९६ रु. मूल्य की ६५,२६,४२९ वर्ग गज स्वावलम्बी खादी भी इसी अवधि में तैयार हुई।

भारत सरकार ने इन छः महीनों में ६१,७७,०६१ रु. की खादी खरीदी।

सूती, ऊनी तथा रेशमी तीनों प्रकार की खादी की उत्पत्ति का विवरण नीचे की तालिका में दिया है।

खादी का उत्पादन

राज्य	सूती (वर्ग गज)	ऊनी (वर्ग गज)	रेशमी (वर्ग गज)	बिक्री रु.
बिहार	१५,९४,०५५	१,७९८	१,४१,०२४	२२,७५,७९५
मद्रास	१५,००,४०७	५३,५१५	२६,२५८	११,०१,४३४
उत्तर प्रदेश	१४,५७,७९०	५३,५१५	२६,२५८	२१,०४,०७६
आन्ध्र	१०,९०,०१३	९४,८५७	--	१८,१५,६१९
पंजाब	८,६३,३२०	८६,९०२	--	१२,७१,६५७
बम्बई	५,५३,८६६	२७,४२७	--	२४,७८,५०३
राजस्थान	४,५४,२८५	२७,३४३	--	३,०३,६२०
मैसूर	२,९०,२८९	३,२५,७५०	४९२	११,५७,११५
मध्यप्रदेश	८६,३०९	--	--	२,२७,१५६
केरल	७८,५६९	--	--	१,३१,५४०
पश्चिम बंगाल	३७,७६६	--	१,०२,७९७	२,९२,२२६
दिल्ली	३४,०७१	--	--	२,६०,९८६
उड़ीसा	२१,५१२	--	--	२४,३८१
काश्मीर	६,६२६	१,१८,३१९	--	३२,७८३
आसाम	१,२३३	--	४,४८३	३०,३६३
योग	८०,७०,११	७,९०,४२६	३,०१,३११	१३५,०८,२५७

प्राविडेंट फंड से ४.९४ लाख कर्मचारियों को लाभ

दिसम्बर १९५६ में संसद द्वारा कर्मचारी प्राविडेण्ट फंड अधिनियम में संशोधन के बाद अब ४.९४ लाख कर्मचारियों को इस से लाभ पहुँच रहा है। यह संख्या ३० सितम्बर, १९५७ तक की है। जिन कारखानों पर यह अधिनियम लागू होता है, उनमें से २९२ कारखानों ने अभी तक प्राविडेंट फंड का धन संबद्ध अधिकारियों के पास जमा नहीं कराया है। अधिनियम की धारा ८ के अधीन यह धन वसूल करने के लिए कार्रवाई की जाएगी। आवश्यकता पड़ने पर मुकदमे भी चलाये गये हैं।

इस्पात कारखानों के लिए खनिज लोहे की पूर्त्ति

तीनों इस्पात कारखानों में से हरेक को प्रति वर्ष २० लाख टन खनिज लोहे की आवश्यकता होगी। राउरकेला इस्पात कारखाने के लिए वहां से ४५ मील दूर बरसुआ में एक नयी खान का विकास किया जा रहा है। जब तक इस खान से लोहा नहीं मिलता, तब तक गुआ क्षेत्र से. खनिज लोहा मँगाया जाएगा। भिलाई कारखाने के लिए भी ६० मील दूर राझड़ा की खानों से खनिज लोहा प्राप्त किया जाएगा। इसी प्रकार दुर्गापुर इस्पात कारखाने के लिए भी एक खान खोदने की तैयारी की जा रही है।

राउरकेला के लिए बरसुआ खान खोदने के लिए यंत्रों, आदि के लगाने का ठेका दिया जा चुका है। भिलाई कारखाने के पास राझड़ा की खानों के विकास की योजना भारतीय और रूसी विशेषज्ञों ने बनायी है। राझड़ा की खानों के लिए यंत्रों आदि के बारे में रूस से करार हो चुका है। कारखाने के काम शुरू करने के ५-६ महीने तक इन खानों में मजदूर हाथ से खुदाई करेंगे। दुर्गापुर इस्पात कारखाने के लिए नयी खानें गुआ क्षेत्र में बोलानी में खोदी जाएँगी। खानों को बाराबिल तक रेल से जोड़ने के लिए सर्वेक्षण हो चुका है और पटरी डालने के लिए टेंडर मांगे जा चुके हैं।

विदेशी

पूर्वी अफ्रीका में आर्थिक प्रगति के विकास

केन्या, टँगानायिका, और यूगान्डा के विकास के लिये, १९६० तक ऋण की आवश्यकताओं का जो अनुमान लगाया गया है, वह ११,००,००,००० पौंडों से भी अधिक है। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् से अफ्रीका के इन तीन राज्य क्षेत्रों ने जो आर्थिक प्रगति की है, उसे यह प्रतिबिम्बित करता है।

तीनों राज्य क्षेत्रों की वित्तीय सफलताएँ ही उचित मापदण्ड हैं, जिससे मालूम किया जा सकता है कि क्या कुछ हो चुका है। राज्य क्षेत्रों के संयुक्त राजस्व का अपूर्व योग ८,४०,००,००० पौंडों तक पहुँच गया है और उनका संयुक्त खर्च ८,१०,००,००० पौंडों तक। व्यापार भी पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है और २६,१०,००,००० पौंडों तक पहुँच चुका है। अन्तर्राज्य क्षेत्रीय व्यापार के अतिरिक्त, तीनों का आयात १३,९०,००,००० पौंडों तक होता है और निर्यात १२,१०,००,००० पौंडों से भी बढ़ गया है। बीस वर्षों पूर्व इस प्रकार की संस्थाएँ स्वप्न प्रतीत होतीं।

केन्या उपनिवेश में अधिक लोगों को रोजगार दिलाने की दृष्टि से कृषि और उद्योग में अनेक नयी योजनायें पूरी की जा चुकी हैं। १९५७-६० की तीन वर्ष की विकास योजना में २,३०,००,००० पौंड खर्च किय जायेंगे, जिनमें से ९०,००,००० पौंड कृषि सुधार के लिये हैं, ५०,००,००० पौंड विद्युत और हवाई अड्डों के विकास पर खर्च होंगे, ४०,००,००० पौंड स्वास्थ्य और आवास योजनाओं के लिए हैं, और २०,००,००० पौंड अफ्रीकी शिक्षा पर लगाये जाएँगे।

टँगानायिका में भौतिक पक्ष की ओर, कृषि, विशेष रूप से रुई, काफी, सीउल, चीनी और चाय में बड़ी उन्नति हुई है। वाह्य साधनों से उद्योगों, विशेषतया खानों, नमक उत्पादन, मांस बनाने, और विद्युत में स्थिर विनियोग किये गये हैं।

युगाण्डा में शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर अधिक जोर दिया जा रहा है और सामुदायिक विकास योजनाओं का स्थान भी प्रमुख है।। हाल के वर्षों में औद्योगिक विकास बहुत कुछ अंशों में आगे बढ़ चुका है। खानों में पर्याप्त विनियोग किया जा चुका है, और सीमेंट, एसबेस्टस तथा टेक्सटाइल उद्योगों की स्थापना की जा चुकी है और अन्य भारी तथा छोटे उद्योगों को प्रारम्भ करने पर विचार किया जा रहा है।

तिब्बत से चांदी के सिक्कों का आयात

१९५६-५७ में तिब्बत से चांदी के २,७६,१०,४५० सिक्के आयात किये गये, जिनका तोल २,३७,०९,७६६ औंस (ट्राय) था और चालू वित्तीय वर्ष में अक्तूबर तक १,४८,९६,२६७ सिक्के आयात किये गए, जिनका तोल १,२८,००,९९९औंस (ट्राय) था। इन सिक्कों पर १९५६-५७ में १,२३,७७,६९९ रु. और १९५७-५८ में (अक्तूबर तक) ६५,०२,००६ रु. आयात शुल्क लिया गया।

ब्रिटेन की सरकारी टकसाल में ५९ करोड़ नये सिक्के ढाले गये

ब्रिटेन की राजशाही टकसाल में गत वर्ष २,९०० टन वजन के ४९,९५,५४,८१३ सिक्के ढाले गये थे, जिनमें ८,७०,००,००० सिक्के, अर्थात् कुल का १७ प्रतिशत राष्ट्र मंडल देशों के लिए और ७,२६,००,००० वैदेशिक शासनों के लिए थे। ये संख्यायें राजशाही टकसाल के वार्षिक प्रतिवेदन में दी गई हैं। जिसके अनुसार यहां जितने सिक्के ढाले गये थे, उनमें से अधिकतर, अर्थात् ६८.१ प्रतिशत, ब्रिटेन में प्रयुक्त किये जाने के लिये थे। इनके अतिरिक्त, राजशाही टकसाल ने १,५३,४२२ तमगे आदि और १,१५,५१६ बिल्ले तथा औपनिवेशिक राज्य क्षेत्रों के लिये, १४ सरकारी ठप्पे भी जारी किये थे।

भारत और प० जर्मनी का व्यापार

१९५६-५७ से पश्चिमी जर्मनी से भारत का आयात, निर्यात से ७५ करोड़ रु. अधिक का हुआ। १९५५-५६ में यह घाटा ४५.४ करोड़ रु. और इसके पहले साल २५.५ करोड़ रुपये का था।

आयात घटाने, निर्यात बढ़ाने और नये-नये देशों से अपना व्यापार बढ़ाने से यह कठिनाई दूर हो सकती है। आशा है कि खनिज-धातुओं, सूती कपड़े, पटसन के माल, चाय, कहवे, मिर्च, काजू, चमड़े के सामान हाथ करघे की चीजों और दस्तकारियों का निर्यात काफी बढ़ाया जा सकता है।

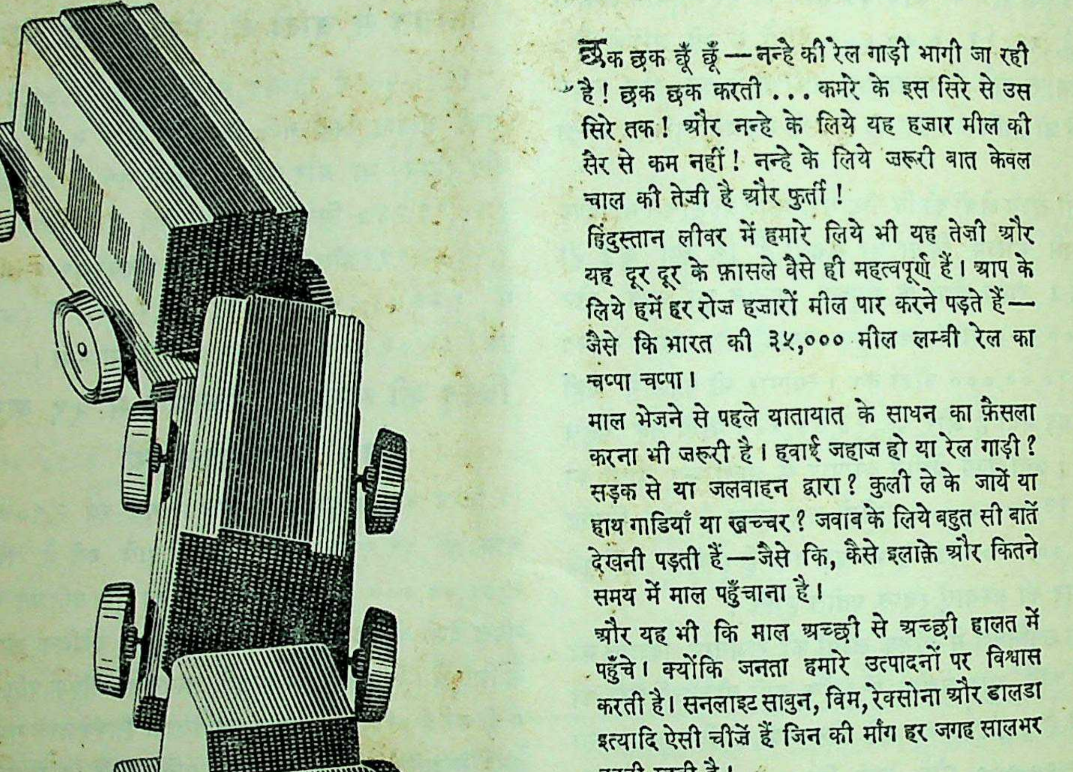

कमरे में १००० मील की सैर!

छक छक चूँ चूँ—नन्हे की रेल गाड़ी भागी जा रही है! छक छक करती ... कमरे के इस सिरे से उस सिरे तक! और नन्हे के लिये यह हजार मील की सैर से कम नहीं! नन्हे के लिये जरूरी बात केवल चाल की तेज़ी है और फुर्ती!

हिंदुस्तान लीवर में हमारे लिये भी यह तेज़ी और यह दूर दूर के फ़ासले वैसे ही महत्वपूर्ण हैं। आप के लिये हमें हर रोज हज़ारों मील पार करने पड़ते हैं—जैसे कि भारत की ३५,००० मील लम्बी रेल का चप्पा चप्पा।

माल भेजने से पहले यातायात के साधन का फ़ैसला करना भी जरूरी है। हवाई जहाज हो या रेल गाड़ी? सड़क से या जलवाहन द्वारा? कुली ले के जायें या हाथ गाडियाँ या खच्चर? जवाब के लिये बहुत सी बातें देखनी पड़ती हैं—जैसे कि, कैसे इलाक़े और कितने समय में माल पहुँचाना है।

और यह भी कि माल अच्छी से अच्छी हालत में पहुँचे। क्योंकि जनता हमारे उत्पादनों पर विश्वास करती है। सनलाइट साबुन, विम, रेक्सोना और डालडा इत्यादि ऐसी चीज़ें हैं जिन की माँग हर जगह सालभर बढ़ती रहती है।

हम इस माँग को पूरा करने की कोशिश करते हैं—और यूँ आप की सेवा के लिये हम जो माल बनाते हैं उसे बाक़ायदा आप तक पहुँचा कर हम आप की दोहरी सेवा करते हैं।

HINDUSTAN LEVER LIMITED
THE SEAL OF QUALITY

हिंदुस्तान लीवर का आदर्श
घर घर की सेवा

HLL. 6-X52 HI

कांग्रेस प्रकाशन

	मूल्य एक प्रति	डाक व्यय
कांग्रेस संविधान	४ आना	१ आना
संविधान की धाराओं के अन्तर्गत नियम	३ आना	१ आना
रचनात्मक कार्यक्रम (१९५३)	६ आना	२ आना
कांग्रेस ग्राम पंचायत कमेटी की रिपोर्ट (जुलाई १९५४)	१ रु. ८ आ.	४ आना
सेवादल मैनुअल : पहला व तीसरा भाग	६ आ. प्रत्येक	२ आ. प्रत्येक
हमारा सेवा दल	४ आना	१ आना
प्रधान मंत्रियों की रिपोर्ट (१९५५)	१ रुपया	४ आना
अध्यक्षीय भाषण (१९५५ आवडी अधिवेशन)	२ आना	१ आना
कांग्रेस को प्रस्तुत की गयी रिपोर्ट--जवाहरलाल नेहरू (१९५५)	२ आना	१ आना
आवड़ी अधिवेशन में पास किये गये प्रस्ताव	२ आना	१ आना
नया भारत	४ आना	१ आना
गीतावली	४ आना	१ आना
समाजवादी ढंग की व्यवस्था	४ आना	१ आना
समाजवादी अर्थशास्त्र की ओर	१ रु. ८ आ.	५ आना
समाजवादी ढंग (कांग्रेस प्रस्तावों के शब्दों में)	४ आना	१ आना
पुनरावलोकन--उ. न. ढेबर	४ आना	१ आना
नवीन कांग्रेस (कांग्रस की नीति पर श्री शंकरराव देव द्वारा १९४७-४९ में लिखे गए लेख)	१ रुपया	३ आना
भारतीय राजनैतिक दल (१९४८)	१ रुपया	४ आना
प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्षों और मंत्रियों का सम्मेलन (मार्च १९५५)	८ आना	३ आना
आजादी के आठ साल (१९५५)	४ आना	१ आना
सिंचाई और बिजली (१९५५)	४ आना	१ आना
गांव के उद्योग-धंधे	४ आना	१ आना
कांग्रस रचनात्मक कार्य समिति की रिपोर्ट	८ आना	३ आना
रचनात्मक कार्य : कांग्रेसजन के लिए सूचना-पुस्तिका	१ रुपया	४ आना
गांधीजी को श्रद्धांजलि	६ आना	२ आना
सर्वोदय के सेवकों से	४ आना	२ आना
सर्वोदय का घोषणापत्र	४ आना	२ आना
आर्थिक-समीक्षा--स्वाधीनता अंक (१५ अगस्त १९५५)	१२ आना	४ आना
आर्थिक-समीक्षा--द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन विशेषांक (२६ सितम्बर १९५५)	८ आना	४ आना
आर्थिक-समीक्षा--अमृतसर कांग्रेस अधिवेशनांक	१ रु. ८ आ.	४ आना
इन्शोरेन्स बिजनेस इन इण्डिया--हर्षदेव मालवीय	२ रुपया	४ आना

नोट : १. मूल्य भेजते समय पुस्तकों के सुरक्षित हालत में पहुंचने के लिए रजिस्ट्री का खर्च ८ आने अवश्य भेजें।
२. दस रुपय से अधिक मूल्य की पुस्तकें मंगाने पर डाक व्यय की छूट दी जायगी।
३. एक ही बार पच्चीस रुपये या अधिक की पुस्तकों के मंगाने पर १२॥ प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा।

पुस्तक मंगाने तथा अन्य जानकारी के लिए लिखें:--

प्रकाशन विभाग, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, ७ जंतर मंतर रोड, नई दिल्ली।

डालमिया उत्पादन

प्रयोग-सिद्ध एवं उच्च-कोटि के

डालमियापुरम् मिल की सिमेंट भट्टी का एक दृश्य

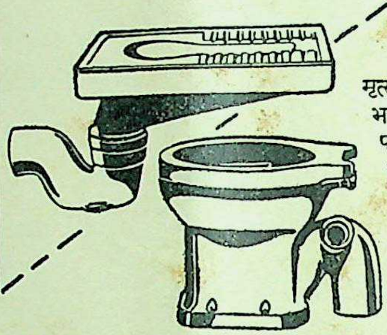

मृत्सा-आरोग्यपात्र (Porcelain sanitary ware) भारतीय और योरोपीय शौच कुंड (closets) धावन पात्री (Wash basins) मूत्रकुंड (Urinals), इत्यादि विसवाहक (Insulations) एवं क्षाररोधक खर्परी (Tiles) भी मिल सकती है।

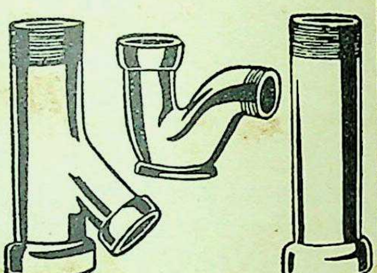

कस्मनाल (Stone ware Pipes) पूर्ण रूपेण लवण काचित (Salt Glazed) क्षार रोधक (Acid Resistant) एवं प्रमाप विशिष्ट (Tested of standard specification) जलोत्सारण (Drainage) के लिये

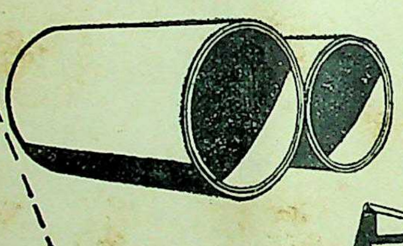

वज्रचूर्ण-आयससंघा नाल (R. C. C. Spun pipes) सिंचाई, पुलियाओं (Culverst) जलप्रदाय और जलोत्सारण (Cupply and drainage) के लिये सभी श्रेणियों और मापों में प्राप्य।

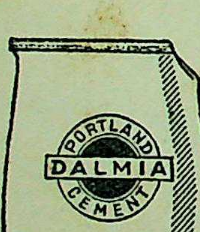

पोटलैण्ड सिमेंट सामान्य निर्माण के लिये

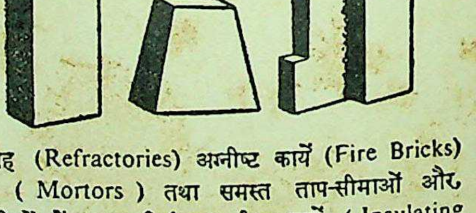

उष्मसह (Refractories) अग्नीष्ट कार्ये (Fire Bricks) संमृद (Mortors) तथा समस्त ताप-सीमाओं और आकृतियों में प्राप्य विसंवाहक ईस्ट कार्ये (Insulating Blocks) सभी औद्योगिक आवश्यकताओं के लिये

A.I.A.B. D/CH2

डालमिया सिमेंट [भारत] लिमिटेड

डाकघर — डालमियापुरम्
जिला — तिरूचिरापल्ली, दक्षिण भारत

अ० भा० कांग्रेस कमेटी के लिए श्री बालकृष्णन् द्वारा प्रकाशित और नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

कर्त्तव्यम् सुसमीक्षितम्

आर्थिक-समीक्ष

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आर्थिक-राजनीतिक अनुसन्धान विभाग का पाक्षिक पत्र

वर्ष ७, संख्या ५ | नयी दिल्ली : बृहस्पतिवार, १९ दिसम्बर १९५७ | पूर्णांक १४३

मानव सम्बन्ध और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

"किसी भी राष्ट्र की विदेश-नीति मानव सम्बन्ध और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग सम्बन्धी समस्याओं के प्रति उस राष्ट्र के अपने मूल दृष्टिकोण से उपजती है। शांति के साथ मिलकर रहने और दूसरे के मामले में दखल न देने की अपनी नीति पर जोर देकर संसार के लोगों में परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में भारत ने योग दिया है, और यही अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का आधार है। लेकिन, इस तरह का रिश्ता कायम करने और इस तरह का सहयोग पाने से पहले ऐसा करने की दृढ़ भावना का मौजूद होना जरूरी है। अगर हमारी नीति कारगर है तो उसे अपने सीधे-सादे तरीके से अमल में लाने के लिये हमें अपने रास्ते की सब रुकावटों को दूर करना होगा।

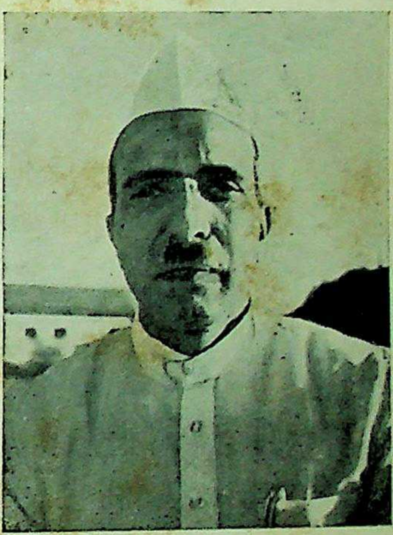

"हमारा यह दृष्टिकोण न केवल हमारे द्वारा अपनाई गई नीति में ही, बल्कि उसके प्रतिपादन में भी प्रतिबिम्बित होना चाहिये। हो सकता है हमारा विचार हितकर हो; परन्तु उसे पेश करने का हमारा तरीका हितकर न हो। जो हम सोचते हैं, उसकी अपेक्षा जो हम बोलते हैं, वह ज्यादा आसानी से समझ में आता है। इसलिये, न सिर्फ मानव सम्बन्ध और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भाषा में सोचने, न केवल इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अनुकूल नीतियां अपनाने में, बल्कि इन उद्देश्यों और अपने मानसिक दृष्टिकोण के अनुकूल भाषा का प्रयोग करने की हमारी खास जिम्मेदारी है। इस श्रेष्ठ कार्य में भाषा और भावना दोनों को जुटाना होगा।

"जैसा कि पंडित जी ने कहा है, आदमी और आदमी के बीच, एक देश की जनता और दूसरे देश की जनता के बीच, बहुत कुछ समान बातें हैं, जिनकी खोज, जिनका अहसास, अभी तक दुनिया के नेताओं ने पूरी तरह नहीं किया है, ताकि आदमी और आदमी के बीच, एक देश की जनता और दूसरे देश की जनता के बीच, बेहतर रिश्ते कायम हो सकें। मानव सम्बन्ध और फलस्वरूप लोकतंत्र का यही सूत्र है। बाहर से थोपा हुआ लोकशाही ढांचा एक भार बन जायगा, जब तक कि वह लोकशाही नजरिए और लोकशाही ढंग की जिन्दगी पर आधारित न होगा।

"भारत पर मानव सम्बन्ध और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के क्षेत्र के विस्तार में योग देने की जिम्मेदारी है। हमें अपने इजहार में विनम्रता की, निश्चय में दृढ़ता की और प्रयत्न में दृढ़-निश्चय की जरूरत है।"

("इंडियन फारेन अफेयर्स" के उद्घाटन अंक के लिए भेजा गया संदेश)

—उच्छंगराय ढेबर

र्षिक मूल्य
५ रुपये
क प्रति
नये पैसे

अन्दर देखिए :—

★ साम्यवाद और साम्प्रदायिकता

★ शिक्षक विनोबा

★ भारत में मजदूर संघ आन्दोलन

★ संसद के कक्ष से

विशेष :

बुनियादी शिक्षा
की समस्याएं

सम्पादक मण्डल

गुलजारीलाल नन्दा
टी. टी. कृष्णमाचारी
खण्डूभाई देसाई
मनुभाई शाह
अरुण चन्द्र गुहा

प्रधान सम्पादक––श्रीमन्नारायण
सम्पादक––सुनील गुहा

विषय-सूची

पृष्ठ
१. राष्ट्रनायक नेहरू जी के प्रति
वामन शिवदास बार्लिंगे ३
२. साम्यवाद और साम्प्रदायिकता **श्रीमन्नारायण** ४
३. ग्राम-विकास द्वारा स्वराज्य **विनोबा** ६
४. बुनियादी शिक्षा की समस्याएँ : ८
  (अ) डा. जाकिर हुसेन का उद्घाटन भाषण
  (ब) सम्मेलन के लिए सन्देश
  (स) सम्मेलन द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव
५. शिक्षक विनोबा **कमलनयन बजाज** १८
६. संसद के कक्ष से **संसदज्ञ** २१
७. आर्थिक टिप्पणियां : २४
  (अ) सामुदायिक विकास किधर ?
  (ब) ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के समक्ष समस्या
  (स) पिछड़े वर्गों का कल्याण
  (द) नजरबन्दी कानून **सु. गु.**
  (य) राष्ट्रीय निम्नतम मजदूरी नीति और मजदूरी गणना **म. मे.**
८. भारत में मजदूर संघ आन्दोलन
प्रकाशचन्द्र त्रिपाठी २८

पृष्ठ
९. चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन **शंकर घोष** ३४
१०. आर्थिक-समाचार-संकलन :
  भारतीय ३७
  विदेशी ४०
११. कवर पृष्ठ पर :
  मानव संबंध और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग
  उच्छंगराय ढेबर

सूचना

'आर्थिक-समीक्षा' का आगामी अंक **'गौहाटी कांग्रेस विशेषांक'** होगा। समीक्षा के विशेषांकों की परम्परा के अनुसार ही यह विशेषांक भी वृहत् आकार का होगा जिसमें चोटी के नेताओं, विख्यात अर्थशास्त्रियों और विद्वानों के लेख, कविताएँ तथा अन्य रुचिकर और उपादेय सामग्रियां होंगी। यह अंक ५ जनवरी की बजाय १५ जनवरी १९५८ को प्रकाशित होगा। ग्राहकों और एजेंटों से निवेदन है कि वे अपनी-अपनी प्रतियां अभी से सुरक्षित करा लें।

––व्यवस्थापक

आर्थिक-समीक्षा

वर्ष ७, संख्या ५] नयी दिल्ली : बृहस्पतिवार, १९ दिसम्बर १९५७ [पूर्णाङ्क १४३

डा० वामन शिवदास बारलिंगे
सदस्य राज्य सभा

राष्ट्र नायक नेहरूजी के प्रति

कारावासतपोविदग्धमनसां राष्ट्रैक्यचिंतावताम् ।
नेताऽसौ नवपंचशीलसुमहातत्वानुसारैषिणाम् ॥
राष्ट्रात्मा कलहातुराखिलजगच्छांत्येकचिन्तामणिः ।
जीयान्नेहरुवंशवासरमणिः प्रज्ञावतामग्रणीः ॥

कारागृह के तप से जिनकी बुद्धि विशुद्ध हो चुकी है, जो राष्ट्र की एकता के प्रति चिन्तावान हैं, और जो नवीन एवं महान पंचशील तत्व का अनुसरण करने की इच्छा रखते हैं, ऐसे व्यक्तियों का नेता, जो राष्ट्र की आत्मा है, जो विश्वव्यापी संघर्ष एवं कलह के वातावरण में शांति का एकमात्र चिंतामणि है, जो प्रज्ञावानों में सबसे अग्रणी है, और जो नेहरु-वंश का सूर्य है, ऐसा हमारा नेता सदा-सर्वदा विजयी हो !

श्रीमन्नारायण

साम्यवाद और साम्प्रदायिकता

अभी हाल में दक्षिण भारत की अपनी यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने द्रविड़ कषगम के कार्यों की, जो कि भारतीय संविधान और भारत के मानचित्र को जलाने का आन्दोलन चला रहे हैं; सख्त निन्दा की। प्रधान मंत्री ने इस तरह के कार्यों और हिंसापूर्ण धमकियों को "राजद्रोह के कार्य" और "सारे देश के सम्मान को चुनौती" देना बतलाया। श्री नइकर भारतीय संविधान और झण्डे को जलाकर तथा ब्राह्मणों की हत्या करके जातीयता खत्म करने का दावा करते हैं। इससे बढ़कर वेवकूफी और जुर्म की बात और क्या हो सकती है ? श्री नेहरू ने कहा : "भारत परमाणु और उद्जन बम को भी अपनी इज्जत को चुनौती देने की इजाजत नहीं दे सकता।" "फिर, यह कैसे हो सकता है कि हम किसी आदमी को ऐसा करने दें ?" उन्होंने पूछा।

गान्धी ग्राम की एक दूसरी सभा में भाषण करते हुए श्री नेहरू ने कहा कि भूतकाल में जाति प्रथा में चाहे जो भी गुण या दोष रहे हों, लेकिन इस समय तो देश में उसके लिये कोई जगह नहीं। फिर भी, अगर उसका अस्तित्व कायम रहा, तो सिवाय लोगों को कमजोर बनाने और उन्हें तरक्की करने से रोकने के उससे और किसी बात की उम्मीद नहीं जा सकती। पिछली कई शताब्दियों के दौरान जाति प्रथा एक अभिशाप बनी रही; इसने भारत को कमजोर बनाया और अपमानित किया। इसने यहां के लोगों में फूट पैदा की, उन्हें विदेशी विजेताओं का दास बनाया। इसने एकता की भावना नष्ट कर दी। प्रधान मंत्री ने घोषणा की कि देश के आजाद हो जाने पर हमारी पहली यात्रा खत्म हो गयी, लेकिन हमने समाजिक और आर्थिक तरक्की तथा आजादी की दिशा में उससे भी बड़ी दूसरी यात्रा शुरू की है।

जातीय और साम्प्रदायिक ख्यालों के लिए एकदम घरेलू और पारिवारिक जीवन में अभी भी थोड़ी बहुत जगह हो सकती है। लेकिन, जब उन्हें सार्वजनिक जीवन में घसीटा जाता है तो वे बहुत ही खतरनाक और विच्छेदकारी साबित होते हैं। जैसा कि गांधी जी कहा करते थे, साम्प्रदायिकता भारत के साफ और नेक नाम पर सबसे बड़ा कलंक है। इसका इजहार एक ओर तो छूत-छात की भावना के रूप में, और दूसरी ओर, ब्राह्मणों की हत्या की धमकी के रूप में होता है। यह दिल और दिमाग को संकुचित बना देती है जिससे भारतीय राष्ट्र की मूलभूत एकता और दृढ़ता के छिन्न-भिन्न हो जाने का खतरा पैदा हो गया है। साम्प्रदायिकता की भावना सामाजिक समानता और लोकतंत्रीय जीवन-यापन की धारणाओं से एकदम मेल नहीं खाती। यह शिष्टता और संस्कृति के सर्वथा विपरीत है।

इस समय जहां मद्रास राज्य में साम्प्रदायिकता के सब से भद्दे और गन्दे रूप का प्रदर्शन हो रहा है, वहीं केरल राज्य पर कम्युनिस्ट सरकार का शासन चल रहा है। साम्यवाद भी एक भद्दे किस्म का भौतिकवादी दर्शन है। यह जीवन की नैतिक या आध्यात्मिक मान्यताओं में विश्वास नहीं करता। यह मानता है कि सामाजिक और आर्थिक उन्नति सिर्फ वर्ग-संघर्ष और आपस की हिंसा को तेज करने से ही सम्भव है। साम्यवाद साधनों की शुद्धता को कोई अहमियत नहीं देता। यह इस विचारधारा का पोषक है कि लक्ष्य ही साधनों का औचित्य सिद्ध करता है। अगर लक्ष्य ऊंचा है तो निम्न किस्म के तरीके अपनाने से कोई नुकसान नहीं होता। कम्युनिस्ट विचारधारा बुनियादी तौर पर गांधीवादी आदर्शों से भिन्न है। गांधीवादी आदर्श ऊंचे लक्ष्यों को हासिल करने में अपनाये गये साधनों और तरीकों की शुद्धता को सबसे ज्यादा महत्व देता है। गांधी जी असत्य और हिंसा के जरिये भारत की आजादी भी हासिल करना नहीं चाहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि गलत और अशुद्ध साधनों से सही और शुद्ध लक्ष्य हासिल नहीं किये जा सकते।

इसके अलावा, यह सोचना गलत है कि कम्युनिस्टों के तरीके लोकतंत्रीय प्रक्रिया से ज्यादा तेज और प्रभावकारी

होते हैं। पिछले ४० वर्षों के भीतर सोवियत रूस का आर्थिक इतिहास यह दिखलाता है कि किस प्रकार सामूहीकरण और बंधी-कसी व्यवस्था के तरीके स्थायी और उत्साहवर्धक नतीजे उत्पन्न करने में नाकामयाब रहे हैं। सोवियत रूस में कई आर्थिक नीतियों के मामले में, पिछले ३० या ४० वर्षों के भीतर हासिल किये गये कटु अनुभवों के बाद, व्यावहारिक दृष्टि से, प्रगति की दिशा को पीछे की ओर मोड़ना पड़ा है। आज भी, यह देखा गया है कि रूस में छोटे-छोटे व्यक्तिगत या निजी फार्मों पर उत्पादन की दर विशाल सामूहिक फार्मों की बनिस्बत ज्यादा ऊंची है। एक भारी और बेहद बंधे-कसे प्रशासनिक ढांचे को सहारा और आश्रय देने के लिये इस प्रक्रिया में शामिल भयंकर हिंसा और अमानवता की तो बात ही अलग है, भारी सैनिक और खुफिया पुलिसों के दस्ते बनाये रखने का आर्थिक और सामाजिक खर्च भी किसी नजरिये से कम महत्व नहीं रखता।

दर असल, साम्यवाद बुनियादी तौर पर लोकतंत्र की आधारभूत धारणा का विरोधी है। केरल में हम एक कम्युनिस्ट सरकार का दिलचस्प रूप देख रहे हैं जो कि लोकतंत्रीय संविधान की सीमाओं के भीतर क्रियाशील होने की कोशिश में लगी हुई है। हमें यह बात स्पष्ट नहीं हो सकी है कि लोकतंत्रीय राज्य के ढांचे के भीतर कम्युनिस्ट विचारधारा का अनुशीलन किस तरह हो सकता है। अधिसत्तावाद के अन्दर एक से ज्यादा राजनीतिक दलों के लिए कोई जगह नहीं; और इस प्रणाली में आजादी के साथ विचार या राय जाहिर किये जाने की गुंजाइश भी नहीं हो सकती। इसके अलावा, सर्वहारा वर्ग की तानाशाही में विश्वास की धारणा, लोकतंत्र की समुचित क्रियाशीलता में विश्वास की धारणा के साथ मेल नहीं खाती। यह आशा की जाती है कि साम्यवाद के अन्तर्गत राज्य आखिर में जाकर हिंसा और वर्ग-संघर्ष के जरिये हासिल की गयी तानाशाही की अस्थायी अवस्था के बाद मिट जायगा। लेकिन अभी तक प्राप्त तजुर्बे ने इस तरह की आशा या अपेक्षा की निरर्थकता को साफ तौर पर दिखला दिया है। जैसा कि श्री जी. डी. एच. कोल ने कहा है: "इतिहास के अध्ययन से यह पता चलता है कि तानाशाहियोंका स्वभाव ही ऐसा है कि वे जैसे-जैसे पुरानी होती जाती हैं, वैसे-वैसे आलोचनाओं के प्रति कम नहीं, बल्कि ज्यादा सीमांतवादी, कम नहीं बल्कि ज्यादा संवेदनापूर्ण और उतावली हो जाती हैं।" इसलिए, केरल की कम्युनिस्ट सरकार को यह साबित करना है कि लोकतंत्रीय ढांचे के भीतर लोकतंत्र के बुनियादी तत्वों का त्याग किये बगैर, साम्यवाद का प्रयोग किस प्रकार हो सकता है। हमारी राय में, यह मकसद सिर्फ तभी हासिल किया जा सकता है, जबकि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी साफ-साफ यह घोषणा कर दे कि इसने साम्यवाद के बुनियादी सिद्धांतों को छोड़ दिया है, और उन्हें जीवन के लोकतंत्रीय तरीके के लिए, जिसके लिए कि भारत प्रतिज्ञाबद्ध है, अब तनिक भी उपयुक्त नहीं समझती। संक्षेप में, भारत के लोग केरल में कम्युनिस्ट शासन के प्रयोग पर तब तक गम्भीरता से विचार नहीं कर सकते, जब तक कि कम्युनिस्ट पार्टी बुनियादी तौर पर अपनी आधारभूत विचारधारा को बदल नहीं देती और लोकतंत्र की सर्व-विदित विचारधारा और उसके तरीकों को अपनाने की प्रतिज्ञा नहीं कर लेती। और, यह भी स्थायी आधार पर, एक स्पष्ट और साफ घोषणा के रूप में किया जाना चाहिये। थोड़े में, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को चाहिये कि वह दूसरे देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों से खुले तौर पर अपने सभी सम्बन्ध तोड़ ले और अपने आपको लोकतंत्रीय ढंग की एक सच्ची समाजवादी पार्टी में तब्दील कर दे। इसके अलावा, भारत में लोकतंत्रीय समाजवाद का मतलब, अन्त में, सर्वोदय या गांधीवादी समाजवाद होगा। आचार्य बिनोवा भावे द्वारा चलाया गया भूदान या ग्रामदान का प्रयोग ही वह असली समाजवाद है, जिसे भारत व्यवहार में ला सकता है और दुनिया के सामने जिसका प्रदर्शन भी कर सकता है। हमें पूरी आशा है कि कम्युनिस्ट पार्टी केरल में विचारधारा सम्बन्धी संघर्ष के इस बुनियादी मसले का मुकाबला साफ तौर से करेगी, ताकि लोग यह समझ सकें कि भारत के लोकतंत्रीय संविधान के भीतर ईमानदारी के साथ साम्यवाद का अनुशीलन किस प्रकार किया जा सकता है।

लेकिन, एक बात के बारे में हमारा दिमाग बिलकुल साफ है। साम्यवाद सचमुच एक गलत विचारधारा है, जो कि बुनियादी तौर पर सर्वोदय या लोकतंत्र की मूलभूत धारणाओं के विरुद्ध है। लेकिन हमें इस बात में भी तनिक सन्देह नहीं कि

साम्प्रदायिकता साम्यवाद से कही ज्यादा बुरी चीज है । साम्यवाद में कम से कम अन्तिम मकसद आकर्षक है, हालांकि वह नापाक और हिंसक तरीकों से कभी भी हासिल नहीं किया जा सकता । लेकिन साम्प्रदायिकता में तो कतई कोई चीज स्वस्थ या आकर्षक नहीं है । यह एकदम भद्दी, बीभत्स और घृणित धारणा है । मद्रास में साम्प्रदायिकता का उच्छृंखल और नग्न प्रदर्शन हो रहा है । केरल में भी काफी साम्प्रदायिकता है । इस सारी स्थिति की सबसे बुरी विशेषता यह है कि साम्यवाद, साधनों की शुद्धता में विश्वास न करने के कारण, खुद अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिये साम्प्रदायिक भावना का पूरा-पूरा दुरुपयोग करने की कोशिश करता है । इस दृष्टि से साम्प्रदायिकता और साम्यवाद एक ही सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के दो पहलू हैं। ये दोनों एक दूसरे से इस प्रकार संयुक्त हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता । हम लोगों को, जो कि लोकतंत्र और सर्वोदय की गांधीवादी धारणा में विश्वास करते हैं, साम्प्रदायिकता की चुनौती का मुकाबला पूरी गम्भीरता के साथ नियमित और आयोजित तरीके से करना है । साम्प्रदायिकता बुनियादी बुराई है । अगर इसे ठीक ढंग पर और समय रहते ही रोका नहीं गया तो यह या तो फासिस्तवाद या साम्यवाद को जन्म देकर ही रहेगी । कुछ भी हो, एक बात बिलकुल तय है कि इसके जरिये हम उस समाजवाद या लोकतंत्र तक नहीं पहुंच सकते, जिसे राष्ट्रपिता ने भारत द्वारा व्यवहार में लाने या ग्रहण करने की इच्छा जाहिर की थी ।

आचार्य विनोबा

ग्राम-विकास द्वारा स्वराज्य

लोग कहते हैं कि आपके काम में हम मदद देंगे । हम कहते हैं कि हमें आपकी मदद की जरूरत नहीं । मेरा काम परमेश्वर करा लेगा । यह भूदान, ग्रामदान,आपका काम है—ऐसा आप मानते हैं तो आपको इसमें लगना है । बाबा को आपकी मदद की जरूरत नहीं । परन्तु समझना चाहिए कि यह आपका काम है, देश का काम है । इसमें सबको लगना चाहिए । यह आपके नेताओं का अनुरोध है । हमारी क्या चलेगी । हमारी न तो चल सकती है, न हम चाहते हैं और न हमारी वैसी रुचि है। इस वास्ते, हम एक व्यक्ति के नाते, रामजी के सेवक के नाते घूम रहे हैं । एक व्यक्ति के सिवाय हमारी दूसरी हैसियत नहीं है। यही हमारी स्थिति है । हमारी हुकूमत न कांग्रेस पर है, न प्रजा समाजवादी दल पर, न रचनात्मक संस्थाओं पर । हमारी हुकूमत किस पर चलेगी ? हम मानते हैं कि इस देह पर ही चले तो बहुत उपकार है ।

सरकारी योजना और सहयोग

आप जरा सोचिये कि देश की हालत क्या है ? अपने देश की योजना दिल्ली में बनती है । कुछ योजना बनती है, फिर समस्या खड़ी होती है कि लोग सहयोग देंगे कि नहीं ? सामुदायिक योजना तो सरकार ने चलायी, पर लोगों की तरफ से सहयोग कहां ?आज जो उठता है,वह चीन का उदाहरण देता है । चीन में लाखों लोग उत्साह से काम में लगे हैं । परन्तु यहां क्या होता है ?सरकार योजना बनाती है न? उसे पूरा करना है तो लोग कहते हैं कि तुम ही करो । सामुदायिक योजना फैलाना तो तुम्हारा ही काम है । जब खूब अनाज बढ़ेगा, जीवन ऊँचा बढ़ाया जायेगा, तो हम वह जीवन जीने के लिए राजी हैं । फल खाने के लिए तैयार हैं । अगर आपने मेवे बनाये तो हम खायेंगे । मिठाई बनाने में हमारा सहयोग किसलिए ? हमने कुछ लोगों को चुनकर दे दिया है । वे ठीक काम करते हैं तो ठीक । अगले साल उनको ही चुनेंगे । काम नहीं करते तो दूसरे को चुनेंगे । दूसरे अच्छे नौकर रखेंगे । हम तो बादशाह हैं । आप हमारे सेवक हैं । आप अगर अच्छी मिठाई बनाते हैं, तो खायेंगे । परन्तु, इससे देश की ताकत नहीं बनती । किसी भी देश की ताकत सरकारी योजना से नहीं बनती । ताली बजती है तो दो हाथों से बजती है । सरकार योजना बनाये और दूसरे हाथ का सहयोग न मिले, तो क्या ताली बजेगी? इसलिए, सरकारी योजना होते हुए भी आपको उसमें सहयोग देना पड़ेगा ।

गांव-गांव की योजना

लेकिन लोकतंत्र का इतना ही अर्थ नहीं है। गांव-गांव की योजना——रक्षण, शिक्षण, पोषण की योजना——गांव-गांव के लोगों को ही करनी चाहिए। फिर थोड़ी सी मदद केन्द्रीय सरकार भी देगी। गांव की योजना दिल्ली में क्या बनेगी? गांव में ही बननी चाहिए। फिर सरकार रेलवे, डाक, खान, परदेश के साथ संबंध जोड़ने के काम करेगी। इससे स्थान-स्थान पर राजकारण में लोग कुशल बनेंगे। आज देश में ऐसे लोग मुट्ठी भर हैं। बाकी को अनुभव ही नहीं। इसलिए यह आवश्यक है कि गांव-गांव में गांव-गांव की योजना बने।

जितना कार्य राष्ट्रीय योजना का होता है, उतना ही कार्य ग्राम-योजना का होता है। गांव के धंधे, खेती का इंतजाम, ऊँच-नीच के भेद मिटाने की योजना, गांववालों का गांव के काम में सहयोग, अच्छी तालीम का इंतजाम, ग्राम की ग्रामीण दुकान, कर्ज की व्यवस्था, गांव के आयात-निर्यात पर नियंत्रण, गांव का नगरों से संबंध, पड़ोसी गांव के साथ संबंध——इस तरह जितने विभाग देश के रहते हैं, उतने गांव में भी होने चाहिए। फिर क्या होगा? ये गांव अपना अनाज का मसला हल करेंगे, फसल बढ़ायेंगे, जैसे मंगरोठ में ३ साल के बाद तीन गुनी फसल बढ़ी है, तो फिर केन्द्रीय मंत्री वहां देखने आयेंगे कि इन्होंने क्या किया? किस कारण फसल बढ़ी? गांव में मुसलमान हैं, हरिजन हैं, दूसरे भी हैं। सब लोग मिल जुलकर रहते हैं। सरकार के लोग यह भी देखने आयेंगे और उनको गांवों से शिक्षण मिलेगा। जो गांव में है, वही योजना बड़े पैमाने पर देश के लिए है। छोटे त्रिकोण में जो सिद्ध किया जाता है, वही बड़े त्रिकोण पर लागू होता है। फिर से नये ढंग से सिद्ध नहीं करना पड़ता। इस तरह, छोटे गांव छोटे पैमाने पर अपना-अपना राज चलायेंगे तो उन्हें ट्रेनिंग मिलेगी।

स्वराज्य की व्याख्या : गलती का हक

लोग समझते हैं कि देश का कारोबार चलाना बड़ी बात है। यह योगी की समाधि से भी बड़ी बात है क्या? योगी की समाधि बड़ी बात है, परन्तु कारोबार चलाना मामूली व्यवहार है। यह तो मामूली गांव में भी चलता है। मिलकर चिन्ता करना, हर काम हिसाब से करना, नियमितता रखना सीधे-सादे गुन होते हैं। वह कोई अद्वितीय वस्तु नहीं। हम वाल्मीकि कवि को अद्वितीय मान सकते हैं। ऐसा कवि नहीं हो सकता, क्योंकि वह प्रतिभा का विषय है। परन्तु कारोबार चलाना मामूली बात है। फिर भी वह बनता नहीं, क्योंकि अनुभव नहीं। गांव में स्वराज्य हो जायेगा तो गांव के लोगों को अनुभव होगा। कुछ गांव में गलतियां होंगी। होने दो, हर्ज नहीं। गांधीजी जब स्वराज्य की बात करते थे तो लोग उनसे कहते थे कि आप स्वराज्य की बात तो करते हैं लेकिन आपके स्वराज्य की व्याख्या क्या है। तो गांधीजी ने व्याख्या की : **स्वराज्य याने गलती करने का हक**। इससे बेहतर व्याख्या क्या हो सकती है। कारोबार निर्दोष चले तो वह स्वराज्य नहीं है। हम ही अपना कारोबार चलायें, भले वह सदोष हो——यही स्वराज्य है।

आपको सोचना चाहिए कि ग्रामदान क्या है? गांवों के उत्थान के लिए यह प्रस्थान है। इससे जनता की शक्ति बनेगी। जगह-जगह स्वयंपूर्ण राज्य चलाये जायेंगे।

फिर गांव में कोई बेकार नहीं, भूमिहीन नहीं, अशिक्षित नहीं होगा। सरकार चाहे तो मदद दे सकती है। परन्तु योजना हमारी रहेगी और हम ही उसे पूरी करेंगे। यहां क्या चलता है? एक पार्टी वाला कहता है : देखो, हमें वोट दो तो हम आपको स्वर्ग में ले जायेंगे। फिर दूसरा कहता है : देखो, उनको वोट दोगे तो नरक में जाओगे। हमको चुनकर दो। लेकिन उसमें से एक भी ऐसा नहीं कहता कि भाइयो, तुम्हारा कल्याण तुम्हारे हाथ में है।

हमें समझना चाहिये कि नैतिक शक्ति ही भारत की ताकत बन सकती है। वह शक्ति लेकर ही जब हम गांव-गांव में जायेंगे और गांव-गांव को स्वावलम्बी बनायेंगे, तो हिन्दुस्तान की नैतिक शक्ति बढ़ेगी। इससे गांव सुखी बनेंगे। अगर लड़ाई शुरू हो जाये तो भी हमारे गांव जिन्दा रहेंगे।

बुनियादी शिक्षा की समस्याएं

(बारहवां बुनियादी शिक्षा सम्मेलन अभी हाल में तुरकी, बिहार, में हुआ है। बिहार के गवर्नर डा. जाकिर हुसेन ने उद्घाटन भाषण किया। प्रधानमंत्री श्री नेहरू और आचार्य विनोबा भावे ने सम्मेलन की सफलता के लिए अपनी शुभ कामनाएं भेजीं। बुनियादी शिक्षा के प्रचार के सम्बन्ध में कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए। हम यहां ये सामग्रियां इस आशा से प्रकाशित कर रहे हैं कि बुनियादी शिक्षा को बढ़ावा देने वाले लोग इन्हें उपयोगी पायेंगे।

--सम्पादक)

उद्घाटन भाषण

(डा. जाकिर हुसेन)

बुनियादी शिक्षा की यह योजना क्या है जो कि गांधी जी के सुझावों के मुताबिक और उनकी देखरेख में तैयार की गयी थी, और जिसे कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में आम जनता ने स्वीकार किया था? इस विषय पर हरिपुरा कांग्रेस में जो प्रस्ताव पास किया गया था, उसमें इसके बुनियादी स्वभाव को बहुत साफ और आसान ढंग पर बतला दिया गया है।

पहली बात यह है कि देश के हर बालक और बालिका को, जिसकी उम्र ७ से १४ वर्ष के बीच हो, तालीम मुफ्त मिलनी चाहिये और वह भी पूरे सात साल तक। एक क्षण के लिये जरा सोचिये तो कि इस मांग में भी अहिंसा की भावना का इजहार किस तरह हो रहा है! ऐसी हालत का होना जहां कुछ थोड़े से लोग तो शिक्षा पायें और बाकी सभी अज्ञानता में डूबे हुए हों, कुछ लोग तो खुशहाल हों और रोशनी का सुख भोगें, जबकि बाकी लोग धूल और धुएं में मशक्कत करें, कुछ थोड़े से लोग तो शब्दजाल के जरिये चोटी पर हों, जबकि बाकी लोग नीचे खून और पसीना एक करके जिन्दगी बसर कर रहे हों--दरअसल, हमारी सामाजिक प्रणाली में हिंसा है। अहिंसक समाज किसी एक व्यक्ति को आगे बढ़ाने के लिये दूसरे को पीछे नहीं ढकेलता। वह सभी को अपना समझता है और सभी की तरक्की के लिये आयोजन करता है। सरकार का यह फर्ज होना चाहिये कि वह देखे कि हर आदमी, जहां तक मुमकिन हो, सबसे अच्छी तालीम पाये और उसे अपनी काबिलियत विकसित करने के लिये पूरा मौका मिले। लेकिन वह एक बहुत दूर की मंजिल है और वहां तक पहुंचने में देर लगेगी। गांधी जी हमेशा कहा करते थे कि "मेरे लिये एक कदम आगे बढ़ना काफी है।" सही रास्ते पर आगे बढ़ाया गया एक कदम भी पीछे आने वाले सभी कदमों के लिये दिशा-निर्देश करेगा। इसलिये गांधी जी ने पहले कदम के रूप में ७ और १४ वर्ष के बीच के सभी बालकों और बालिकाओं की शिक्षा की मांग की थी। बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्ताओं को याद रखना चाहिये कि गांधी जी की नीयत यही थी कि १४ वर्ष की उम्र तक शिक्षा जारी रहनी चाहिये।

ब्रिटिश योजना

जब बुनियादी शिक्षा की यह योजना बनायी गयी थी, उस समय भारत में ब्रिटिश सरकार की हुकूमत थी। दूसरे महायुद्ध के समय कांग्रेस सरकार से हट गयी थी। अंग्रेज अच्छी तरह जानते थे कि वे इस देश में बहुत देर तक नहीं टिक सकेंगे। लड़ाई के जमाने में उन्होंने लड़ाई के बाद लागू करने के लिए कई योजनाएं तैयार कीं, जिनमें एक योजना तालीम के बारे में भी थी। उनका कहना था कि सामान्य शिक्षा की अवधि ७ से १४ वर्ष की उम्र के बीच होने की बजाय, ६ से १४ वर्ष के बीच होनी चाहिये। लेकिन सार्जेण्ट योजना में ८ साल के इस समय को दो हिस्सों में बांट दिया गया था। एक ५ वर्ष का था और दूसरा ३ वर्ष का। बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्ताओं को डर था कि आखिर में सारी योजना पर इस बटवारे का असर पड़ेगा। इसलिये उन्होंने उस समय कहा कि किसी भी हालत में ११ वर्ष की उम्र में ही शिक्षा का खात्मा नहीं होना चाहिये। लेकिन, जैसा कि आप

देखेंगे, कुछ थोड़ी-सी जगहों में ही नहीं, बल्कि अधिकांश मामलों में हुआ यही। अंग्रेज चले गये और अब हम खुद ही कह रहे हैं कि "क्यों नहीं शुरू में ११ वर्ष की उम्र तक के लिये योजना बनायी जाय ?" मेरी समझ में यह बहुत बड़ी गलती है। जो लोग बुनियादी शिक्षा के लिये काम कर रहे हैं, उन्हें देखना चाहिये कि यह तालीम १४ साल की उम्र से पहले समाप्त न होने पाये।

तरक्की की रफ्तार

एक दूसरी बात भी है जो इस सम्बन्ध में पैदा होती है। हालांकि ८ साल की अवधि को कम करके ५ साल कर दिया गया है, फिर भी शिक्षा उतनी तेजी से नहीं बढ़ रही है जितनी उम्मीद की गयी थी। सार्जेण्ट योजना में यह अन्दाज लगाया गया था कि ६ से १४ वर्ष के बीच के सभी बच्चों के लिये स्कूल का इन्तजाम करने में कम-से-कम ४० वर्ष लगेगा। अभी तक तरक्की की जो रफ्तार रही है, उससे मुझे इस योजना के ४० वर्ष में भी पूरा होने में संदेह है। और फिर, ४० वर्ष का अर्सा भी एक खुदमुख्तार मुल्क के लिये बहुत लम्बा है। हमारे राष्ट्र की राय, जिसका इजहार संविधान में हुआ है, यह है कि यह कार्य १० वर्षों में पूरा हो जाना चाहिये। सन् १९४८ में, भारत के शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने दिल्ली में अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन में भाषण करते हुए कहा था :

"आजादी मिल जाने के बाद हम उन्हीं कार्यक्रमों से सन्तुष्ट नहीं रह सकते, जो कि पिछली हुकूमत में काफी समझे गये थे। मिसाल के तौर पर, आज कोई एक क्षण के लिये भी यह बात सह नहीं सकता कि इस देश के सभी बाशिन्दों के लिये बुनियादी शिक्षा की पूरी योजना लागू करने में ४० साल लगें। दरअसल, उसका आधा समय भी बहुतों को काफी लम्बा अर्सा मालूम होगा। इसलिये, हमें ऐसे उपाय निकालने पड़ेंगे जिससे इस देश में शिक्षा का विकास इतनी तेज रफ्तार से बढ़ सके कि हम अपना मकसद और भी ज्यादा जल्दी और कम समय में हासिल कर लें।

"इस समय हमारे सामने जो बहुत सी मुश्किलें और रुकावटें हैं, उन्हें मैं जानता हूं। मैं जानता हूं कि अभी कुछ ही समय पहले जो घटनाएं हुई हैं, उनकी वजह से सरकार और जनता का ध्यान अक्सर रचनात्मक कामों से हटता रहा है। इन सभी बातों पर पूरी तरह विचार करने के बाद, मैं फिर भी कहूंगा शिक्षा अब इन्तजार नहीं कर सकती। चाहे सरकार के दूसरे राष्ट्र निर्माणकारी काम भले ही इन मुश्किलों की वजह से धीमे चलें या टाल दिये जायं, लेकिन शिक्षा को, जहां तक मुमकिन होगा, तेजी से आगे बढ़ाना पड़ेगा। हमें एक क्षण के लिये भी यह नहीं भूलना चाहिये कि कम से कम बुनियादी शिक्षा पाना हर आदमी का पैदायशी हक है। इसके बगैर वह नागरिक की हैसियत से अपने फर्ज पूरी तौर पर अदा नहीं कर सकता।"

शिक्षा मंत्री के ये शब्द राष्ट्र के दिल की आवाज हैं। लेकिन हमारी तरक्की की मौजूदा रफ्तार देखते हुए यह उम्मीद हर्गिज नहीं हो पाती कि इन्हें पूरा किया जा सकेगा। आप सभी अपने-अपने राज्यों के हालात से वाकिफ हैं। यहां, बिहार में, पहली पंचवर्षीय योजना के फलस्वरूप ६ और ११ वर्ष के बीच की उम्र के ३,९४,००० और अधिक बच्चों की भर्ती स्कूलों में की गयी है। स्कूल जाने वाले बच्चों की तादाद में इतनी वृद्धि को देखकर हम खुश हो सकते हैं। लेकिन इन आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि योजना की अवधि में ६ से ११ वर्ष के बीच वाली अवस्था के उन बच्चों की तादाद भी घटी नहीं है जो कि स्कूलों में भर्ती नहीं हैं। इसके विपरीत, पांच साल की इस अवधि के शुरू में इतनी उम्र के जितने बच्चे स्कूल के बाहर थे उनकी अपेक्षा २,२०,००० अधिक बच्चे इस अवधि के आखिर में स्कूल से बाहर थे। इसी तरह, १९५५-५६ में १९५०-५१ की बनिस्बत १,८३,००० अधिक बच्चे, जिनकी उम्र ११ से १४ वर्ष के बीच थी, स्कूल के बाहर थे। इस रफ्तार से ६ से १४ वर्ष के बीच वाली उम्र के सभी बच्चे ४० वर्ष में स्कूल में कैसे भर्ती हो सकते हैं? इस मामले की ओर सिर्फ इस सम्मेलन को ही नहीं, बल्कि देशके सभी शिक्षकों को भी तुरन्त ध्यान देना चाहिये। अगर हम इस देश को राष्ट्रपिता की इच्छाओं के मुताबिक ढालना चाहते हैं; तो राष्ट्रीय कार्यक्रम में शिक्षा को पहला स्थान देना होगा। अगर दूसरी सभी बातें ठीक हैं, और शिक्षा की हालत ठीक नहीं, तो हमारा सारा कार्यक्रम बर्बाद हो जायेगा। अगर शिक्षा की हालत ठीक रही, तो बाकी सभी चीजों का इन्तजाम ठीक हो सकता है।

मातृभाषा

गांधीजी ने जो योजना तैयार की थी और जिसे हरिपुरा कांग्रेस ने मंज़ूर किया था, उसका दूसरा बुनियादी सिद्धांत यह था कि ७ साल की यह शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जानी चाहिये। इसमें भी हमें गांधी जी की अहिंसा की झलक मिलती है। सामाजिक हिंसा कभी-कभी समाज या समाज के किसी एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर उसकी इच्छाओं के खिलाफ अपनी भाषा जबर्दस्ती लादने का रूप भी धारण करती है। यह सही है कि अपने को अच्छी तरह समझाने के लिये या दूसरों को अच्छी तरह समझने के लिए कभी-कभी दूसरों की भाषा अवश्य सीखनी चाहिये, और जब तक कि ऐसा न किया जाय तब तक बहुत से काम ठीक तौर पर पूरे नहीं किये जा सकते। लेकिन बच्चे सब से पहले अपनी मां की जबान सीखते हैं, वे अपनी माता के दूध के साथ ही उसे पीते हैं, वे उसके माध्यम से ही अपने वातावरण को समझते हैं, और यह सीखते हैं कि मनुष्यों और चीजों से उनका ताल्लुक क्या है। वे इसी जबान में सोचते हैं और ख्यालों को इसी जबान का जामा पहनाते हैं। दूसरी भाषा के माध्यम से किसी बच्चे को वह सभी बातें जबर्दस्ती समझाने से उस पर काफी तनाव पड़ता है—यह सभी मंजूर करते हैं। इस तरह की कोशिश को जबर्दस्ती जारी रखना बुनियादी तालीम की अहिंसक भावना से मेल नहीं खाता।

बेशक, जैसा कि मैंने कहा है, अगर मनुष्य को अपनी मातृभाषा में उसकी जरूरत की सभी बातें नहीं मिलती हैं तो उसे दूसरी भाषाएं सीखने की आजादी होनी चाहिये। सवाल यह है कि बुनियादी शिक्षा प्राप्त करने की अवधि में कोई दूसरी भाषा सिखायी जानी चाहिये या नहीं। बुनियादी शिक्षा के प्रारम्भिक पाठ्यक्रम में दूसरी भाषा की पढ़ायी शामिल नहीं की गयी थी। सिर्फ यह व्यवस्था थी कि जिन बच्चों की मातृभाषा हिन्दी न हो, उन्हें ऊंचे दर्जों में दो या तीन साल तक राष्ट्रभाषा का अध्ययन करना चाहिये। यह सिद्धांत आसानी से समझ में आ जाता है। बुनियादी शिक्षा सचमुच **बुनियादी** शिक्षा है, और उसमें जो भी पढ़ाया जाय, वह वही होना चाहिये जिसकी जानकारी सबको जरूरी हो। उसका निश्चय इस बात से होना चाहिये कि हर बच्चा क्या होना चाहता है। यह जरूरी है कि सभी को राष्ट्रभाषा का कुछ सामान्य ज्ञान अवश्य हो, ताकि मुख्तलिफ भाषाओं वाले राज्यों के बीच नजदीकी ताल्लुक कायम हो सके और उनके निवासी एक दूसरे के और करीब आ सकें। इसलिये राष्ट्रभाषा को शामिल कर लिया गया है। लेकिन हर भारतीय के लिये किसी दूसरी भाषा को सीखने की जरूरत कहां है? बेशक हमारे देश में अंग्रेजी भाषा को एक विशेष रुतबा प्राप्त है। इसके अलावा, अंग्रेजी राज की दया से, थोड़े से लोग जो इसे जानते हैं, ऊंचे पदों पर हैं। इसलिये वे कभी-कभी महसूस करते हैं कि अंग्रेजी ही मातृभाषा होनी चाहिये। लेकिन अगर सोचा जाय तो हम देखेंगे कि इस बात की कोई जरूरत नहीं कि हर भारतीय अंग्रेजी सीखे। हमारे निरक्षर किसानों, हमारे निरक्षर कारीगरों और लाखों अशिक्षित शिल्पकारों को अंग्रेजी से क्या फायदा होगा? उनके और उनके सभी कारोबार के लिये उनकी अपनी जबान और राष्ट्रभाषा की जानकारी काफी है। इसलिये, बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम से अंग्रेजी को निकाल दिया गया; और मेरी समझ में यह बिलकुल ठीक था।

अंग्रेजी का स्थान

फिर भी, हमें याद रखना होगा कि बुनियादी शिक्षा हमारे राष्ट्रीय जीवन में कोई अलग पड़ा हुआ टापू नहीं, जिसका बाकी हिस्से से कोई ताल्लुक ही न हो। अगर हम इस ढांचे में जिन्दगी की दूसरी गतिविधियों को ढालना चाहते हैं, तो हो सकता है कि हमें खुद बुनियादी शिक्षा में कुछ हद तक तब्दीलियां करनी पड़ें। जब तक कि हमारे विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती रहेगी, जब तक कि भारत सरकार अपना इतना सारा काम अंग्रेजी में चलाती रहेगी और अंग्रेजी अन्तर्राज्यीय भाषा बनी रहेगी, जब तक कि हमारे वकील अंग्रेजी कानून के मुताबिक काम करेंगे और अंग्रेजी में ही वकालत की जायगी और फैसले दिये जाते रहेंगे, जब तक राज्यों की भाषाओं और हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दों की कमी बनी रहेगी, तब तक मौजूदा हालत कायम रहेगी। जिन लोगों को विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी के जरिये शिक्षा मिलेगी, उन्हें सबसे पहले अंग्रेजी सीखना जरूरी होगा। सबसे अच्छा होगा कि वे बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम के पूरा हो जाने के बाद अंग्रेजी की पढ़ायी शुरू

करें; और मेरा अपना ख्याल है कि अगर यह काम माध्यमिक स्कूलों और कालेजों पर छोड़ दिया जाय, अंग्रेजी के शिक्षकों को ठीक तरह से तैयार किया जाय और भाषा की शिक्षा के सबसे अच्छे नये तरीके अपनाये जाय, तो माध्यमिक शिक्षा की अवस्था में विश्वविद्यालय की शिक्षा के लिये जरूरी अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आसानी से हासिल किया जा सकता है। इसलिये, यह जरूरी होगा कि अंग्रेजी सीखने की अवधि बढ़ा दी जाय और बुनियादी पाठ्यक्रम के आखिरी तीन वर्षों में इसकी शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

आलोचकों को उत्तर

तीसरी बात जिस पर गांधी जी की योजना में बहुत जोर दिया गया है, यह है कि बुनियादी शिक्षा सिर्फ शब्दों और किताबों की गतिविधि नहीं होनी चाहिये, बल्कि जीवन की शिक्षा होनी चाहिये। मनुष्य की जिन्दगी के तीन खास पहलू होते हैं: उसका प्राकृतिक वातावरण, उसकी सामाजिक परिस्थिति और उसका धन्धा। इस योजना में इन तीनों को शिक्षा का तीन पहलू माना गया है। बच्चों को करने के लिये काम होगा—सिर्फ खिलवाड़ नहीं, बल्कि सचमुच काम। बिना मकसद के काम जैसी कोई चीज नहीं, इसलिये काम के फलस्वरूप ऐसी चीज तैयार होनी चाहिये जो कि उन्हें या उनके मित्रों और पड़ोसियों के लिये उपयोगी हो। इस सम्बन्ध में दो बातें याद रखने की हैं। पहली बात तो यह है कि काम ही शिक्षा का एकमात्र पक्ष नहीं। बच्चों के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण भी होते हैं। लेकिन काम को शिक्षा में केन्द्रीय स्थान इसलिये दिया गया है कि जीवन में उसे केन्द्रीय स्थान हासिल है। इस सिद्धांत पर काफी बहस-मुहाबिसे हुए हैं। खास तौर पर हमारे देश के शिक्षित वर्ग शारीरिक काम से इतने अलग हो गये हैं, और अभी भी हैं कि वे शिक्षा के भीतर काम को शामिल करना पसन्द नहीं करते। उन्होंने इसके विरुद्ध हर तरह की शिकायतें की हैं। उनमें से कुछ लोग जो यह नहीं चाहते कि उनके बच्चे काम करें, कहते हैं कि यह कोई स्कूल नहीं, बल्कि कारखाना है। दर असल, जितने लोग हैं उतने तरह के विचार हैं। इसलिये मैं आपका ध्यान खास तौर पर इस मामले की ओर खींचना चाहता हूं, ताकि जो लोग बुनियादी शिक्षा का कार्य करते हैं, वे इसे साफ-साफ समझ लें।

मैं तीस साल तक शिक्षक रह चुका हूं। मैंने शिक्षा के बारे में दूसरे लोगों के विचार पढ़े हैं, और खुद भी इसके बारे में कुछ सोचा-विचारा है। मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि जिस शिक्षा का मकसद जाहिरा तौर पर बुद्धि का विकास करना होता है, वह यह मकसद सिर्फ काम के जरिये ही हासिल कर सकती है। कोई और सम्भावना है ही नहीं। अगर लोग यह बात ठीक तरह से समझ लें, तो हम शिक्षा के बारे में बहुत सी गल्तियां करने से बच जायेंगे।

मैंने कहा कि शिक्षा सिर्फ काम के जरिये दी जा सकती है। इसका मतलब क्या है? एक क्षण के लिये सोचिये कि शिक्षा कैसे ग्रहण की जाती है, बुद्धि का विकास कैसे होता है? यह ठीक आदमी के जिस्म की तरह ही अच्छा, सही किस्म का, दिमागी भोजन खाकर और उसे पचाकर विकसित होती है। जिस्म को अपना खाना पचाने के लिए काम करना पड़ता है, मेहनत करनी पड़ती है। इस तरह शरीर मजबूत होता है, स्वस्थ रहता है और विकसित होता है। इसी तरह, सही किस्म के दिमागी भोजन और कसरत से आदमी की बुद्धि विकसित होती है। बुद्धि आदमी की बुद्धि द्वारा उत्पन्न चीजों से अपना भोजन पाती है। आदमी को अच्छी जिन्दगी के लिये जिन चीजों की जरूरत होती है, वे सभी दिमाग द्वारा सोची और बनायी गयी हैं। खाने की चीजें, पहनने के कपड़े, रहने के मकान, समाज के सभी तरीके और ढंग, उसके रीति-रिवाज, उसके कानून, कला, साहित्य और कविता, उसके दर्शन, पूजा, मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर और गुरुद्वारा—सभी का आविष्कार और निर्माण मनुष्य के दिमाग द्वारा हुआ है।

शिक्षा के साधन

हमें याद रखना चाहिये कि सिर्फ सूचना और हुनर से दिमाग विकसित नहीं होता, अर्थात वे शिक्षित नहीं करते। सिर्फ सूचना और हुनर शिक्षा के सही प्रतिबिम्ब भी नहीं। शिक्षा के उपकरणों या साधनों को तैयार करने में हमें एक तरह की

सूचना और दूसरे तरह की सूचना में फर्क करना पड़ेगा। सूचना दो तरह की हो सकती है। एक तो वह है जिसे कोई अन्य व्यक्ति ढूंढ़ निकालता है और उसके बारे में हमें बतलाता है। दूसरे किस्म की सूचना वह है जिसे हम खुद ही खोज कर और मेहनत से ढूंढ़ निकालते हैं और जो खुद हमारे दिमाग द्वारा तैयार होती है। इसी तरह, हुनर भी दो तरह के होते हैं। एक तो सिर्फ मशीनी हुनर होता है, जो कि किसी दूसरे के काम की आंख मूंद कर नकल करके हासिल किया जाता है। दूसरा हुनर वह होता है, जिसमें हम खुद अपने काम की मंजिल पर पहुंचते हैं और उसके कारण और कार्य के तरीके को खुद समझते हैं। पहले किस्म का ज्ञान और हुनर मानों बाहर से लाकर चिपका दिया गया हो, जबकि दूसरे किस्म का ज्ञान और हुनर भीतर से दिमाग को ढालता और रूप देता है। पहला आंख मूंद कर नकल करना है, दूसरा असली विकास है। पहले के जरिये मनुष्य 'अध्ययन' करता है, दूसरे से वह विकसित होता है। पहले दिन से आखिरी दिन तक शिक्षा के समूचे व्यवहार में, छोटे बच्चों को पढ़ाने से लेकर बड़े-बड़े विद्वानों को पढ़ाने में, यह दूसरे किस्म का ज्ञान और हुनर ही सच्ची शिक्षा का साधन या उपकरण है।

उत्पादक कार्य

शुरू से ही, मैंने शिक्षा के इस उपकरण को 'शिक्षा की दृष्टि से उत्पादक कार्य' बतलाया है, क्योंकि लोग 'उत्पादक कार्य' का मतलब सिर्फ आर्थिक अर्थ में लगाते हैं। मेरी राय में, शिक्षा की दृष्टि से उत्पादक कार्य ही असली शिक्षा है। इसमें आदमी का दिमाग कभी-कभी हाथों के साथ साझे में और कभी-कभी उनके बगैर ही काम करता है। काम शारीरिक या दिमागी हो सकता है। बहुत से शारीरिक कार्य और बहुत से मानसिक कार्य ऐसे होते हैं जो कि शिक्षा की दृष्टि से उत्पादक नहीं होते। इस अर्थ में काम तभी उत्पादक होता है, जबकि वह नये विचारों को प्रेरित करता है, पुराने विचारों में नयी कड़ी जोड़ता है, दिमाग की जिन्दगी को ढालता और सम्पन्न करता है या विचार को जाहिर करने या पूरा करने, की उसकी क्षमता को बढ़ाता है। उद्देश्यपूर्ण होना काम का स्वभाव है। इस वजह से वह खेल से भिन्न होता है। खेल में इस तरह कोई मकसद सामने नहीं होता। इसलिये बच्चों का ध्यान उस पर देर तक टिक नहीं सकता।

चूंकि शिक्षा की दृष्टि से उत्पादक कार्य के सामने विकास का लक्ष्य होता है, इसलिये एक मकसद लगातार बढ़ता हुआ दूसरे में विलीन हो जाता है। जिन्दगी के समुद्र में फेंके गये एक पत्थर के टुकड़े से लहरों की परिधियों पर परिधियां तैयार होती जाती हैं, और सारी जिन्दगी काम में संलग्न हो जाती है और सारी ताकतें उसी पर लग जाती है। आदमी कठिनाइयों में फंसता है और फिर उनसे अपने को मुक्त करता है। वह गिरता है, फिर खड़ा होता है। वह रुकता है, और फिर एक बार आगे बढ़ता है। खुद अपनी इच्छा से वह मेहनत करता है, पसीना बहाता है। वह अपने मकसद को हासिल करने में अपना दिल-दिमाग लगा देता है, और इस तरह, जिन्दगी के विकास में अपनी बुद्धि की ताकत लगाना सीखता है। इसलिये, किसी को यह नहीं सोचना चाहिये कि शिक्षा की दृष्टि से उत्पादक कार्य में बाहर से हासिल किये गये ज्ञान या नकल करके सीखे गये हुनर के लिये जगह ही नहीं। बेशक, उनके लिए एक जरूरी जगह है, लेकिन वह जगह काम का गुलाम बनकर आती है, और इस ज्ञान और हुनर का सारा स्वभाव उसके वातावरण द्वारा तब्दील हो जाता है।

समाज की सेवा

एक और भी बात है जिसे हर्गिज नहीं भूलना चाहिये। बुद्धि का यह विकास हर आदमी द्वारा खुद किया जाता है। यह हर आदमी का व्यक्तिगत काम है। लेकिन शिक्षा का एक इससे भी बढ़कर मकसद है और होना चाहिये। मनुष्य अपनी ही बुद्धि और प्रतिभा के विकास में इतना तल्लीन हो सकते हैं कि वे समाज की जरूरतों के प्रति उदासीन हो सकते हैं—वे सामाजिक दृष्टि से बेकार और अपूर्ण हो जायेंगे। वे बड़े विद्वान और प्रतिभा वाले हो सकते हैं, लेकिन निश्चय ही अपने साथियों पर भार बनकर रहेंगे। इसलिये यह जरूरी है कि दिमाग का विकास चाहे कला द्वारा या विज्ञान द्वारा हो, चाहे साहित्य द्वारा या शिल्पों द्वारा किया जा रहा हो, लेकिन उसका सम्बन्ध समाज की सेवा से इस तरह जुड़ा होना चाहिये, जिससे उसके परिणामस्वरूप मनुष्य सम्पूर्ण बन सके, अपूर्ण नहीं।

लेकिन, चूंकि बेसिक स्कूल ६ से १४ वर्ष तक की उम्र वाले बच्चों के लिये होते हैं, उनमें शिक्षा की दृष्टि से उत्पादक कार्य शारीरिक ही होना चाहिये। इस उम्र में बच्चे काम करना चाहते हैं, वे चीजें बनाते और बिगाड़ते हैं, उनके हाथ हमेशा क्रियाशील होते हैं। वे अपने हाथों का इस्तेमाल करके ही चीजों को जानते और समझते हैं। वे सीखते हैं; इस उम्र में दिमाग को हाथ के कामों से भोजन मिलता है। बाहर के काम में, बुनाई में, दैनिक इस्तेमाल की चीजें बनाने में, आदमी के दिमाग की कोशिश आंख से छिपी होती है। बच्चों के हाथ इन चीजों और कामों में से छिपी शक्तियां निकालते हैं, सोये विचारों को जगा देते हैं, और उन्हें खुद अपने दिमागी विकास का साधन बना लेते हैं। अगर इस उम्र में बच्चे ठीक ढंग पर काम पर लगा दिये जायं तो यह शारीरिक काम शिक्षा की दृष्टि से उत्पादक काम का सबसे अच्छा रूप साबित होगा।

आर्थिक पहलू

मैं इस संबन्ध में एक बात और कहूंगा। बुनियादी शिक्षा में काम को जो केन्द्रीय महत्व प्राप्त है, उसे दूसरे देशों के शिक्षा संबन्धी विचारधारा में भी काफी मान्यता प्राप्त है। लेकिन जब यह कहा जाता है कि इस शिक्षा संबन्धी काम में आर्थिक लाभ मिलेगा या मिलना चाहिए, तो लोग घबड़ा उठते हैं। मैं उनके डर को समझता हूं और अगर मैं यह सोचूं कि बेसिक स्कूलों में काम का एकमात्र उद्देश्य रुपया कमाना है, तो मैं भी वही कहूंगा, जो वे कहते हैं। क्योंकि अगर काम का एकमात्र मकसद धन कमाना है तो काम यंत्रवत हो जाता है। और जैसा कि मैंने कहा है, यंत्रवत काम से न तो शिक्षा हासिल हो सकती, न दिमागी विकास हो सकता है। लेकिन बेसिक स्कूलों के काम का स्वभाव सिर्फ आर्थिक ही नहीं,बल्कि शिक्षा प्रदान करने वाला भी होता है। बेशक, शिक्षा संबन्धी काम में एक मकसद होना चाहिए और जब तैयार वस्तु उस मकसद को ठीक तरह से पूरा करती है, तभी पूरा शिक्षा संबन्धी मूल्य हासिल होता है। अतः, अगर किसी प्रकार वस्तु का पूरा शिक्षा संबन्धी मूल्य हासिल करना है, तो उसका आर्थिक मूल अवश्य होना चाहिए। काम का उद्देश्य आर्थिक मूल्य हर्गिज नही होता, किन्तु वह शिक्षा के रूप में उसकी कामयाबी का मापदण्ड अवश्य होता है। इस कसौटी से मुक्त होने की मांग करना ठीक नहीं।

पृथक श्रेणी क्यों

मैं कुछ बातों के बारे में कहना चाहूंगा, जो कि मुझे उस समय जरूरी मालूम होती हैं, जब मैं देखता हूं कि काम किस तरह हो रहा है। मैं इसे ठीक नहीं समझता कि बुनियादी शिक्षा को पृथक वर्ग में रखा जाय। बुनियादी शिक्षा के सभी सिद्धान्तों को उन लोगों ने स्वीकार कर लिया है, जो देश में शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए जिम्मेदार है। बुनियादी शिक्षा का संचालन राज्य सरकारों द्वारा होता है और भारत सरकार उसका समर्थक है। फिर भी, ऐसा लगता है कि इसे शिक्षा की सामान्य प्रणाली से अलग समझा जाता है। अगर यह अच्छी चीज है तो इसे स्कूल में जहां ७ से १४ वर्ष के बच्चों को शिक्षा दी जाती है, जारी कर देना चाहिए। अगर यह बुरी चीज है तो इसे कहीं भी लागू नहीं करना चाहिये। लेकिन चूंकि केन्द्रीय और राज्यों की सभी सरकारों ने इसे अच्छी चीज मान लिया है, अतः इस बात की घोषणा करदी जानी चाहिए कि इन आठ वर्षों की शिक्षा देनेवाले सभी स्कूल यथाशीघ्र बेसिक स्कूल में तबदील कर दिये जायेंगे। हम कुछ स्कूलों को बेसिक और उनसे १० या २० गुने अथवा ४० या ५० गुने स्कूलों को गैर-बेसिक बनाये रखने की व्यवस्था हमेशा जारी नहीं रख सकते। न ही हम गांवों में तो बेसिक स्कूल और शहरों में गैर-बेसिक स्कूल चलाने की प्रणाली कायम रहने दे सकते। सभी शिक्षकों को नये किस्म का प्रशिक्षण हासिल ही करना पड़ेगा। सभी शिक्षकों को इस काम की जांच करने और उसे बढ़ावा देने की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। उन्हें इसके लिए जिस तरह की तैयारी की जरूरत है, वह उन्हें दी जानी चाहिए। कोई भी नया स्कूल सिवाय नये आधार के अन्यथा नही खोला जाना चाहिये। दरअसल, वर्तमान स्थिति को खत्म करने की हर कोशिश होनी चाहिये। बेसिक स्कूल की हालत ऐसी हो गई है, मानो परिवार में कोई अजनबी आ गया हो, और कोई भी उसे अपनाना नहीं चाहता। इस सारी स्थिति को दुरुस्त करना पड़ेगा।

शारीरिक कार्य

दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि शारीरिक काम का महत्व ६ वर्ष से कम और १४ वर्ष से ज्यादा उम्र के बच्चों की शिक्षा में उतना महत्व नहीं रखता, जितना बुनियादी तालीम वाले बच्चों के लिये। मेरी राय में, ६ वर्ष से पहले का समय खेलने का होता है, और १४ साल के बाद की उम्र में शारीरिक काम सभी केलिए उसी तरह उपयुक्त नहीं जिस तरह ६ से १४ साल के बीच वाले बच्चों के लिए। उसके बाद भी बहुत से ऐसे होंगे जो शारीरिक काम द्वारा सबसे अच्छे तरीके से सीख सकेंगे, और बहुत से ऐसे भी होंगे जो काम की बजाय भावात्मक विचारों, सौंदर्य, आनन्द, आदि के सम्पर्क द्वारा ही सीख सकेंगे। मेरी समझ में इन विभिन्न प्रकार के युवकों को मुख्तलिफ प्रणाली से शिक्षा दी जानी चाहिये। और हमारी सुधरी माध्यमिक शिक्षा में इन विभिन्न प्रणालियों का समावेश होना चाहिये, न कि सभी के लिए एक ही रास्ता हो।

गैरसरकारी संस्थाओं का कार्य

तीसरी बात यह है कि अगर बुनियादी शिक्षा का काम सरकारी साधनों से किया जायगा, जैसा कि अधिकांशतः आजकल हो रहा है, तो हिन्दुस्तानी तालीमी संघ और दूसरे गैरसरकारी संगठनों को चाहिये कि वे यह काम सरकार को सुपुर्द करके उससे अलग हो जायं; और वह जैसा चाहे उसे वैसा करने दें।

निश्चय ही, मेरी राय यह भी है कि शिक्षा के लिये वह बहुत बुरा दिन साबित होगा, जबकि सरकार के बाहर का कोई भी व्यक्ति उसे करने वाला न होगा। स्वतन्त्र समाज में स्वतन्त्र कर्मचारी शिक्षा में नये रास्ते और नये प्रयोगों में रहनुमाई करता है। दूसरा कोई भी काम के प्रति लगन के मामले में उसका मुकाबला नहीं कर सकता। संघ को चाहिये कि वह सरकार का काम सरकार को सौंप दे, लेकिन उसे निश्चय ही बुनियादी शिक्षा का काम जारी रखना चाहिये, जिसे कि उसने शुरू किया था और जिसे जनता ने उसे सुपुर्द किया है। यह काम विनोबा जी के ग्रामदान सम्बन्धी काम से पूरा मेल खाता है। अगर संघ उन गांवों में यह कार्य अपने हाथ में ले ले, जहां जीवन को नये आधार पर फिर से बनाया जा रहा है, तो यह राष्ट्रीय शिक्षा के प्रति की गयी एक महान सेवा होगी।

आप में से जो शिक्षा का काम कर रहे हैं, वह देश की सबसे बड़ी, सबसे अहम और सबसे नाजुक सेवा कर रहे हैं और उनके कन्धों पर बहुत ही भारी जिम्मेदारी है। वे एक नये समाज के बनाने वाले हैं--गांधी जी के स्वप्नों वाला समाज; वह समाज जिसके बनाने के लिए उन्होंने अपना सारा जीवन बिता दिया, और जिसकी नींव में उन्होंने अन्त में अपना खून तक दे दिया, उसी के लिए जीए और उसी के लिए मरे; वह समाज जिसके हर आदमी वह बन सकें जिसकी शक्ति प्रकृति ने उनमें रखी है, जिसमें कोई किसी का मुह न ताके, कोई किसी पर जोर जबरदस्ती न कर सके; मुहब्बत, प्रेम, अहिंसा और सहयोग वाला समाज; वह समाज जिसका धुंधला सा नकशा आज एक भटकती दुखियारी दुनिया की रही सही उम्मीद है। अगर आप जान जायं कि आप इस समाज के बनाने वालों में हैं तो आपका बल हजार गुना बढ़ जायगा और यह ख्वाब हकीकत बन जायगा। कैसा अच्छा हो जो यह विश्वास आपके दिल में जम जाय!

(उद्घाटन भाषण से)

सम्मेलन के लिए संदेश

श्री जवाहरलाल नेहरू

नई तालीम के काम करने वालों की सालाना मजलिस के लिए मैं अपनी ओर से मुबारकबाद पेश करता हूं। कोई भी विषय तालीम से ज्यादा जरूरी या अहम नहीं है। मुल्क के औरत मर्द ही एक कौम को बनाते हैं। लेकिन तालीम वह चीज है जिससे उन औरतों और मर्दों को उस लायक बनाने की उम्मीद की जाती है।

इसी लिए तालीम के तरीके ऐसे होने चाहिए जो मर्द, औरतों को उनकी उम्र और जिम्मेदारियों के लायक बनाने में मददगार हों। उनमें लड़कों और लड़कियों के विकास की वे बुनियादी बातें होनी जरूरी हैं जिनसे उन्हें चरित्र की शक्ति और जिन्दगी का ठीक नजरिया मिल सके। इससे मेरा मतलब यह नहीं कि वे एक खास तरीके में बँधे हों, बल्कि उन्हें चरित्र की जरूरियातों के अलावा दिमाग का ऐसा विकास करना चाहिए जिससे वे प्रशिक्षित हों, किसी बात को समझने और हासिल करने की काबलियत रखते हों, सहनशील हों और अलग-अलग सवालों व समस्यायों पर अच्छी तरह विचार करके उनके हलों तक पहुँचने की कोशिश करने के लायक हों। उन्हें, दरअसल, समन्वयशील आदमियों के रूप में विकास करना चाहिए। समन्वय के मानी केवल यह नहीं कि उसकी प्रक्रिया आदमी के भीतर हो, हालांकि वह भी बहुत जरूरी है, बल्कि उसे मौजूदा हालतों और माहौल के साथ भी एक बड़े पैमाने पर होना चाहिये।

ट्रेनिंग का वह हिस्सा, जो सिर्फ़ चौतरफा मौजूदा हालतों से मतलब रखता है, आदमी की उम्र और उसे सौंपे जाने वाले कामों के लिहाज से जरूरी तौर पर एक जैसा न होगा। जाहिर है कि हम एक बहुत तेजी के साथ बदलने वाली दुनिया में रहते हैं। हम पीछे नहीं लौट सकते, उसे सिर्फ समझ सकते हैं और आने वाली तब्दीलियों का अन्दाज लगा सकते हैं। औद्योगिक क्रांति ने पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में दुनिया की सूरत बदल दी है। एक तरह से वह अब भी जारी है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक और तकनीकी इजाद आए दिन होते जा रहे हैं, उनकी प्रगति की रफ्तार इतनी तेज है कि उसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। इसमें शक नहीं कि वह आदमी की जिन्दगी और उससे रिश्ता रखने वाली हर चीज पर अपना असर डालेगी। इस सबके साथ, हमें अपने को किस तरह निभाना है, और निभाते हुए भी चरित्र की उन बुनियादी बातों को जो जरूरी समझी जाती हैं, किस तरह कायम रखना है? मौजूदा जमाने का यह एक बड़ा सवाल है। शायद हमारी बहुत सी दिक्कतों की एक वजह यह भी है कि आदमी और उसके माहौल के बीच एकता या मेल की कमी है। दुनियावी माहौल इतनी तेजी से बदला है कि आदमी कुछ हद तक बाहरी तौर पर उसके मुताबिक अपने को बदलने के सिवाय, पूरी तरह उसके अनुरूप नहीं बन सका है।

भारत में शायद हम लोगों को, औरों के मुकाबिले, काफी बड़ी तब्दीलियों का सामना करना है, क्योंकि हम, चाहें या न चाहें, तब्दीलियों के जबर्दस्त बहाव से अपने को अलग नहीं कर सकते। हम केवल औद्योगिक जमाने में ही प्रवेश नहीं कर रहे हैं, बल्कि परिमाणु-युग और शायद कुछ समय बाद अंतर्ग्रही जमाने के दौर से भी गुजर रहे हैं। और यह सब हम ऐसे वक्त में कर रहे हैं, जबकि हम अभी उसकी बुनियादी सीढ़ियों पर भी अपने कदमों को नहीं जमा सके हैं।

सवाल बड़ा पेचीदा है, फिर भी उसका सामना करना ही होगा। बुनियादी शिक्षा ने कई बहुत जरूरी बातों पर जोर दिया है, खास तौर से दिमाग और शारीरिक काम के बीच एक समन्वय का रिश्ता कायम करने पर यह एक जरूरी ढंग है। हमें इसको बढ़ावा देना चाहिए। इसी का नतीजा था कि घरेलू उद्योग के विकास पर जोर दिया गया। घरेलू उद्योग और मशीन के जमाने के बीच, जिसमें हम रह रहे हैं, एक ऊपर से दिखाई पड़ने वाला विरोधाभास पैदा हो गया है। जाहिर है कि हम मशीन के जमाने से बाहर नहीं आ सकते। सवाल यह है कि दोनों के बीच किस हद तक मेल रखना जरूरी है और उस मेल को हम किस हद तक ला सकते हैं। दूर भविष्य के सवालों का जवाब देना काफ़ी मुश्किल है। लेकिन मौजूदा जमाने में यह साफ़ जाहिर है कि हम मशीन के जमाने की तकनीकों में चाहें कितना ही आगे बढ़ जांय, और मैं महसूस करता हूं कि हमें बढ़ना भी चाहिये, लेकिन फिर भी हमारे लिए जरूरी है कि हम घरेलू उद्योग और वैसी ही चीजों में काफी आगे बढ़ें। भारत की तरक्की तभी हो सकती है, जब उसके गांवों की तरक्की होगी। गांवों और शहरों के बीच बहुत बड़ी खाई का होना काफी खराब बात है। सामुदायिक विकास योजनाओं का असली मकसद यही है कि मौज़ूदा जमाने के तरीकों पर गांवों की तरक्की की जाय, लेकिन उनका भीतरी आधार कुछ हद तक सुरक्षित भी रहे।

मैं समझता हूं कि बुनियादी शिक्षा, नई तालीम और सामुदायिक विकास योजनाओं में, जो बेशक ग्रामीण भारत में एक जबर्दस्त परिवर्तन लाने जा रही है, गहरा मेल और समन्वय का रिश्ता होना चाहिए।

भारत शान्ति और अहिंसा का समर्थक है, इसीलिए उसकी एक इज्जत है। एक हद तक उसकी यह इज्जत

वाजिब है, लेकिन पूरी तरह नहीं, क्योंकि जहाँ हम शान्ति और अहिंसा की बात करते हैं वहीं घरेलू और कौमी जिन्दगी में हम लगातार इससे मुख्तलिफ कामों में फंसते भी जाते हैं। हमारे अन्दरूनी झगड़े, मुझे पूरा यकीन है, बहुत ही नुकसानदेह हैं। मुझे नहीं मालूम कि इस सवाल को हल करने में बुनियादी तालीम कहां तक मदद दे सकती है। लेकिन उसे इसके लिये भरसक कोशिश जरूर करनी चाहिये। लेकिन यह कोशिश अगर एक छोटे दायरे तक ही सीमित रहती है या कौमी जिन्दगी के बहाव से अलग रहती है, तो यकीनन बहुत अधिक फायदेमन्द या मदददगार नहीं साबित हो सकेगी।

अपने इस संदेश में मैंने तालीम की, खास तौर से बुनियादी तालीम की, कुछ बातों का जिक्र किया है, जिन पर शायद अमूमन पूरी तरह विचार नहीं किया जाता। मुझे उम्मीद है कि यह सम्मेलन इन बातों पर भी गौर करेगा।

विनोबा जी

नयी तालीम के सम्मेलन के लिये कुछ बातें म कहूं, ऐसी मांग की गयी है। ग्रामदान, उसके आधार पर ग्राम-स्वराज्य, यह हमारा कार्यक्रम है। उसमें शिक्षा और रक्षा ऐसे दो बड़े अंग हमको विकसित करने हैं: रक्षा के लिये शान्ति सेना और शिक्षा के लिये ग्राम-जीवन। अब सर्वोदय को इतनी हिम्मत करनी चाहिये कि वह ये दोनों पहलू अपने हाथ में ले। हमने कहा था कि भूदान, और अब ग्रामदान, तो सीता है; और ग्रामोद्योग धनुर्धारी राम है। हमारे हनूमान कौन हैं? नयी तालीम हमारे हनूमान हैं। शिक्षा और रक्षा ऐसे चिंतन के ख्याल से दो पहलू हो जाते हैं। पर अहिंसा में शिक्षा और रक्षा एक ही चीज बन जाती है। जब तक ये दो चीजें अलग-अलग मानी जायेंगी, तब तक अहिंसा अपना पूर्ण रूप नहीं दिखा सकेगी। शासन-मुक्त समाज का अर्थ ही है शिक्षण-युक्त समाज। नयी तालीम की एक-एक नयी कला प्रस्फुटित हो रही है। हमारे शिक्षक-गण उसके ग्रहण में पिछड़ न जायं, यह देखने की बात है।

सम्मेलन द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव

गांधी जी ने सत्य और अहिंसा पर आधारित नये समाज और व्यक्ति के जीवन के विकास के जिस ध्येय को सामने रखकर नयी तालीम के काम को राष्ट्र के सामने रखा था, यह बारहवां नयी तालीम सम्मेलन उस ध्येय में अपने विश्वास को श्रद्धा के साथ दोहराता है और यह संकल्प करता है कि उस ध्येय की ओर अग्रसर होने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करेगा।

यह सम्मेलन यह मानता है कि विनोवा जी द्वारा चलाया गया ग्रामदान आन्दोलन नयी तालीम के काम को अपने ध्येय की ओर अग्रसर होने में मदद करता है। नयी तालीम के कार्यकर्ताओं के लिये यह आन्दोलन एक चुनौती है। यह सम्मेलन नयी तालीम के सब कार्यकर्ताओं से अपील करता है कि वे उसे नयी तालीम के कार्यक्रम के तौर पर अपनायें, इसके द्वारा अपना व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन शुद्ध करें और नव-समाज के निर्माण में सक्रिय भाग लें।

यह सम्मेलन मानता है कि ग्रामदान में मिले हुए गांवों में ग्राम-स्वराज्य की स्थापना नयी तालीम का नया पर्व है। ग्राम-स्वराज्य में हरेक सदस्य का पोषण, शिक्षण और रक्षण राष्ट्रीय शिक्षा का सच्चा कार्यक्रम है। शिक्षा का यह कार्यक्रम विद्यालय की चार दीवारों के अन्दर मर्यादित नहीं रह सकता है। यह समाज के लिये और समाज के द्वारा शिक्षण है। राष्ट्रीय शिक्षा के इस नये कार्यक्रम के लिये शिक्षाक्रम बनाना, कार्यकर्ताओं को इकट्ठा और तैयार करना और गांव-गांव में ग्रामवासियों के सहयोग के आधार पर ग्राम शिक्षा का विकास करना—यह हमारा भावी कार्यक्रम है।

यह सम्मेलन आशा करता है कि विनोबा जी ने ग्राम-शिक्षा और ग्राम-रक्षा, इन दोनों को जोड़कर राष्ट्र के सामने नयी तालीम का जो समग्र कार्यक्रम रखा है, उसके बारे में शिक्षक समाज गम्भीरतापूर्वक विचार करेगा। सच्चा शिक्षक वही

है जो प्रत्येक व्यक्ति में आत्मनिर्भरता का और समाज की प्रवृत्तियों में अनुशासन-युक्त सहयोग की भावना का विकास करे; जो सबका सेवक और सबका मित्र हो; जिसके लिये जाति, धर्म, वर्ण, पन्थ, पक्ष, आदि किसी प्रकार के भेद न हों; जो मैत्री की भावना को फलाने का निरन्तर प्रयत्न करे और प्रेम से द्वेष का सामना करें; जो किसी प्रकार के अन्याय या पाप के साथ समझौता नहीं करे, बल्कि अगर उसे अपने परिवार और मित्रों के विरुद्ध अकेला खड़ा होना पड़े तो भी नम्रता, निर्भयता और प्रेम के साथ उस अन्याय का सामना करे; और अपने जीवन और कृतियों के उदाहरण द्वारा हिंसा और विकृतियों से समाज को बचाने के लिये दूसरों को भी प्रेरित करे।

गान्धी जी के मन में शान्ति-सेना की जो कल्पना थी, विनोबा जी ने राष्ट्र का ध्यान उसकी ओर फिर से खींचा है।

शान्ति सैनिक का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है : "शान्ति-सेना का सैनिक नित्य जन-सेवा करेगा और नियमित तौर पर शान्ति का कार्य करेगा। ऐसे निष्काम निःस्वार्थी, निष्पक्ष, निरपेक्ष सेवकों की सेना खड़ी होनी चाहिये।"

शान्ति-सेना की प्रतिज्ञा लेने का अर्थ क्या होगा ? अर्थ यह होगा कि वे अपना सर्वस्व–जीवन और प्राण–जन-सेवा में अर्पण करते हैं। वे आपकी सेवा में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करेंगे। अहिंसा और सत्य पर चलने की कोशिश करते रहेंगे और लोगों को उसी राह पर ले जायेंगे।

यह सम्मेलन मानता है कि राष्ट्र के शिक्षक ही इस शान्ति-सेना के सैनिक बन सकते हैं। इस शान्ति-सेना में सैनिक भर्ती नहीं किये जा सकते हैं। शान्ति-सैनिक एक स्वयं-सेवक है, और स्वेच्छा से शान्ति-सेना की प्रतिज्ञा लेता है। यह सम्मेलन भारत के सब शिक्षकों को आवाहन देता है कि वे अपने को पूछें कि क्या इस समय जब कि सारा संसार भयभीत है, अपने देश और विश्व-मानव-समाज के प्रति उनका कर्तव्य नहीं है कि वे स्वेच्छा से शान्ति-सेना के स्वयं सेवक-सैनिक बनकर विश्व में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करें।

यह सम्मेलन अनुभव करता है कि अब समय आया है कि राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में बुनियादी और गैर-बुनियादी का भेद मिट जाय और शिक्षा का सम्पूर्ण कार्यक्रम एक राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रम के रूप से संयोजित और संगठित हो।

यह सम्मेलन अनुभव करता है कि शिक्षकों के संग्रह में भावी शिक्षकों के आवश्यक गुणों के बारे में जो प्रचलित कल्पना है, उसमें आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। शिक्षक का पहला आवश्यक गुण यह होना चाहिये कि शिक्षण के काम को वह अपने स्वधर्म के रूप में स्वीकार करे। दूसरे, नयी तालीम का जो सामाजिक आदर्श है, उसे वह अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन में अमल में लाने का यथाशक्ति प्रयत्न करें; और तीसरे, समाज के अनुपयोगी किसी-न-किसी काम या प्रवृत्ति में उसकी दक्षता हो। यह आशा की जाती है कि जो शिक्षार्थी उत्तर-बुनियादी शिक्षाक्रम पूरा करेंगे, उनमें से अधिक संख्या शिक्षण कार्य को अपने जीवन कार्य के रूप में, स्वेच्छा से, अपनायेंगी।

शिक्षक के काम के लिये तैयारी की पद्धति यह होनी चाहिये कि नयी तालीम के आदर्शों पर आधारित एक सहयोगी समाज का वह सदस्य हो और प्रशिक्षण का आर्थिक दर्जा उस जनता के नजदीक हो, जिनकी सेवा के लिये वह अपने को तैयार कर रहा है।

यह सम्मेलन अनुभव करता है कि राष्ट्र के प्रत्येक बालक और बालिका के लिए, जो बुनियादी तालीम की सात या आठ साल की शिक्षा के बाद और आगे शिक्षा प्राप्त करना चाहता है, उसके आगे की शिक्षा का प्रबन्ध करना राष्ट्र का कर्तव्य है। यह शिक्षा उनके पूर्वप्राप्त शिक्षा का ही स्वाभाविक विकास हो, विद्यार्थियों की रुचि, योग्यता और समाज निर्माण की आवश्यकता के अनुकूल हो और अधिक-से-अधिक मात्रा में स्वावलम्बन के आधार पर संगठित हो। सम्मेलन का यह भी मत है कि माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में आज जो विविधता लाने का कार्यक्रम चल रहा है, उसका सामंजस्य ऊपर वर्णित शिक्षा के साथ स्थापित किया जाय।

शिक्षक विनोबा

श्री कमलनयन बजाज

शिक्षक के लिये सबसे बड़ा गुण है—ज्ञान का मोह न होना। जिसके पास मोहरहित ज्ञान हो, उसी को गुरु का अधिकार प्राप्त होता है। ऐसा गुरु उस ज्ञान का विकास भी कर सकता है और उसे दूसरों को दे भी सकता है।

राजा को भय दिखाकर या दिखावटी प्रतिष्ठा का स्वांग रचकर राज्य-व्यवस्था चलानी पड़ती है। जब ईश्वर को भी भय दिखा कर काम करने की बारी आई, तब उसने नरसिंह अवतार लेकर दुर्गुणों का संहार किया। लेकिन गुरु की बात ऐसी नहीं है। उनके काम प्रेम से ही होते हैं। वे जितना ही लघु रूप धारण करें, उतना ही प्रेम का अधिक परिणाम होता है। ईश्वर को जब प्रेम से सिखावन देने की आवश्यकता हुई, तब उसने वामन अवतार धारण किया।

विनोबा से लोगों ने जितनी शिक्षा पायी, उससे कितने ही गुना अधिक शिक्षा विनोबा ने उनसे पायी है। सच्चा गुरु वही होता है, जो सदा सीखता रहता है। वह जितना देता है उससे कितने ही गुना अधिक ग्रहण करने की उसमें क्षमता होती है।

विनोबा जी की शिक्षा-पद्धति

विनोबा जी की शिक्षा-पद्धति सचेतन जीवन-पद्धति है। सच्ची शिक्षा का मतलब केवल साक्षरता नहीं, बल्कि उसके मानी हैं जीवन की सर्वांगीण सार्थकता। विनोबाजी के पास जो कोई रहेगा, उसे इस बात की अनुभूति और दर्शन हुए बगैर नहीं रह सकता।

विनोबा अपने आचार द्वारा अनबोल शिक्षा देते हैं, जबकि विचारों से वे उसका प्रतिपादन करते हैं। उनकी भावनाओं से हम उनकी ओर खिंच जाते हैं, आकर्षित हो जाते हैं, और इससे यह जीवनदर्शी शिक्षा हमारे हृदय में सहज ही उड़ेली जाती है। उनके व्यक्तित्व के या ज्ञान के दबाव से हम दब रहे हैं, ऐसा तिलमात्र असर वे हम पर नहीं रहने देते। विनोबा जी के पास रहते हुए विद्यार्थियों को इतनी निःसंकोच स्वाभाविकता महसूस होती है कि उनके ज्ञान की दान-पद्धति का भार उन्हें नहीं प्रतीत होता। सच तो यह है कि विनोबा जी के व्यक्तित्व और ज्ञान का जो दर्शन उनके सान्निध्य में हुआ होता है, वह उनसे दूर चले जाने के बाद अधिकाधिक विशाल होता जाता है।

राजा का बड़प्पन उसके सान्निध्य में जितना प्रतीत होता है, उतना दूर चले जाने के बाद नहीं भासित होता। किन्तु इससे बिल्कुल उल्टा स्वरूप संतों का होता है। गुरु की भूमिका राजा के समान शासक की दंडनीय भूमिका नहीं होती; वह तो संत की करुणामयी भूमिका होती है। गुरु जब माता और पिता, दोनों के कर्त्तव्य की पूर्ति करते हुए अपने दैवी गुणों का ओज प्रकट करते हैं, तभी मानव समाज को उनमें ज्ञान के मूर्तिमंत विश्वरूप का दर्शन हो पाता है।

विनोबा से मैं मजाक में कहा करता था : "आप कंजूस हैं। आपने हमें क्या दिया? जो कुछ महान् देता है वही सच्चा महापुरुष कहलाता है। आपसे तो हम ही बड़े हैं। आपने हमें केवल शिष्यत्व ही तो दिया? इससे तो हम ही बहुत अच्छे रहे, क्योंकि सबसे महत्व का जो गुरुपद है वह हमने आपको दिया है।" इस पर हंस कर विनोबा जी कबूली देते और कहते कि उन्हें शिष्यों से खूब सीखने को मिला है। गुरु का अर्थ है सिखाने वाला; यही अर्थ हम समझते हैं। पर विनोबा जी की ओर देखने पर गुरु शब्द का सीखने वाला यह अर्थ भी जंच जाता है। जो गुरु खुद नहीं सीखता या जिसकी लियाकत छोटी-मोटी बातों से शिक्षा-ग्रहण करने की नहीं होती, वह दूसरे को क्या सिखाएगा? जो निरन्तर सीखते ही रहते हैं और सिखाते-सिखाते भी सीखते हैं, वही सच्चे शिक्षक होते हैं।

आदर्श शिक्षक

एक बार विनोबा जी बुनाई का काम कर रहे थे। मैं उनके पास बैठा हुआ तकली पर सूत कात रहा था। इतने में

कोई सज्जन एक पुस्तक लेकर आये। उस पुस्तक में एक चित्र था।

विनोबा जी ने मुझसे पूछा : "यह क्या है ?"

मैंने कहा : "यह चित्र है।"

इस पर उन्होंने मुझे समझाया : "चित्र शब्द के दो भाग होते हैं—'चित्+र'। चित् यानी चैतन्य, और 'र' यानी रमने वाला; चैतन्य में रमने वाला, चित्त में रमने वाला सो चित्र।

इस तरह, वे शब्दों का भावार्थ सहजता से और स्वाभाविक ढंग से समझा दिया करते थे। कातते-बुनते हुए, घूमते-फिरते हुए, रसोई बनाते हुए, या किसी भी तरह का काम करते-कराते हुए, किसी भी प्रसंग को लेकर इतिहास, भूगोल, गणित, व्याकरण, आदि विविध विषयों का ज्ञान अपने विद्यार्थियों और साथियों को सतत बड़ी सहजता से विनोबा जी कराते रहते हैं। साथ ही, वेदोपनिषदों का परिचय और आत्मबोध के रमणीय उदाहरण भी देते जाते हैं। वहां मानो नित नयी बुनियादी तालीम का विश्वविद्यालय ही खुल जाता है।

मैं एक बार बीमार हो गया था। विनोबा जी मुझे देखने के लिये आये। मुझे बदहजमी हो गयी है, यह देखकर उन्होंने मुझे एक मंत्र दिया : "प्रभाते मल दर्शनम्"। फिर, उन्होंने मुझे बताया कि "शरीर का सबसे महत्व का धर्म है शौच के बाद मल दर्शन करना।" इससे अगले दिन हमने पेट पर कौन से अत्याचार किये यह मालूम हो जाता है। उस पर से आगे का आहार-विचार और योजना हम कर सकते है। आज मुझे क्या खाना चाहिए, इतना भी अगर हम जीभ की वासना के वश हुए बगैर तय कर सकें तो शरीर का ज्ञान, नियमन और इन दोनों के संबंध में चिन्तन—इतनी बातें हमारे पड़ पल्ले जाती हैं।

महान व्यक्तित्व : एक प्रसंग

एक बार मैं विनोबा जी के वर्ग में बैठा हुआ था। तब उनको एक पत्र दिया गया। उस पत्र के आकार और लेखन-पद्धति से यह अन्दाज मुझे लगा कि वह पत्र बापू जी का है। विनोबा जी ने वह पत्र पढ़ा और उसे फाड़ डाला। विनोबा जी की एक आदत मुझे मालूम थी। जितने पत्र आते उतने एकबारगी वे पढ़कर रख देते और दोपहर को जवाब लिख देने के बाद फाड़ डालते। अगर आश्रम में उन पत्रों को रखने की जरूरत होती तो आश्रम में भेज देते थे। पर आज बापू के पत्र को पढ़कर तुरन्त क्यों फाड़ दिया ? यह जानने की मुझे उत्कंठा हुई। विनोबा जी के फाड़ डाले हुए पत्र के टुकड़ों को मैंने एकत्र करके वह पत्र पढ़ा। उसमें बापूजी ने लिखा था : "तुम्हारे समान महान् आत्मा का दर्शन मुझे अभी भी नहीं हुआ है।" यह देखकर मैंने नाराज होकर विनोबा जी से पूछा : "यह पत्र आपने क्यों फाड़ डाला ?" विनोबा जी ने कहा : "रखने जैसा उसमें कुछ नहीं था, इसलिए।" फिर थोड़ी देर रुक कर वे बोले : "अपने गुरुजन और आत्मीय जनों की ओर से मोह के कारण ऐसी कुछ गलती हो जाय, तो उनका हम पर अनुग्रह हुआ, यह समझकर जो व्यर्थ हो उसे नष्ट कर देना चाहिए......।" मैंने जरा जोश में आकर पूछा : "बापू जी की गलती हुई, ऐसा निर्णय आप कैसे कर सकते हैं ?" तो विनोबा जी ने बहुत शांति से मुझे समझाया : "देखो, बापूजी के पास हजारों लोग आते हैं। उनमें से एकाध महान् आत्मा को वे न पहचान पाये हों, या यह पत्र लिखते समय उन्हें उनका स्मरण न रहा हो, तो वे छोटे नहीं हो जाते, और न हम बड़े हो जाते हैं। ऐसे प्रसंग पर उनका हम पर प्रेम है, इतना ही जान लेना काफी है। और, माना कि वह सत्य ही है, तब भी उसमें से क्या निष्पन्न होने वाला है? अपना अहंकार बढ़ने की ही अधिक संभावना रहेगी ......। वह गलत है तो उसे नष्ट कर देना ही ठीक है, और अगर वह सत्य होगा तो मेरे फाड़ने से भी वह नष्ट नहीं होगा।"

इस प्रसंग का मेरे मन पर बहुत ही असर हुआ। विनोबा जी के प्रति मेरी श्रद्धा और भी गहरी हो गयी।

हमारे साधु-संतों ने संत-समागम की महिमा मुक्त कंठ से गायी है । संतों के समागम से इतना लाभ होता है, इसकी मुझे खास प्रचीति (अनुभव) नहीं थी, बल्कि इन बातों का मुझे आश्चर्य लगता था । मैं जब विनोबाजी के सहवास में था, तो मुझे उनका सहवास अच्छा लगता था, लेकिन उससे कितना लाभ हो सकता है--इसकी मुझे खास कल्पना नहीं थी ।

बुद्धि, विज्ञान और हृदय का विकास

यह विज्ञान का जमाना है । आज बुद्धि के सहारे विज्ञान का विकास हुआ है और विज्ञान के सहारे राक्षसी, याने विनाशकारी, गुणों का विकास हुआ है । हृदय के गुणों का विकास उतनी गति से नहीं हो रहा हैं । हृदय के, याने अंतर के, आत्मिक गुणों का मतलब है दैवी गुण । जब तक इन दैवी गुणों का विकास नहीं होता, तब तक आसुरी वृत्तिके कारण मानवी जीवन का विनाश ही होता रहेगा ।

बुद्धि रेस के घोड़े की तरह चपल और गतिमान है । बिना विवेक की लगाम के उसे साधा नहीं जा सकता । इसलिये बुद्धि का विवेक के सहारे विकास की मर्यादाओं में रहकर प्रगति करना आवश्यक हो जाता है । परन्तु अन्तर की बात कुछ और है । हृदय गतिमान न होते हुए भी शीलवान और करुणामय है । उससे जीवन को पोषण मिलता है । वह गाय के समान मनोवांछित पूरा करने वाली कामधेनु है ।

ये सभी बातें जीवनदर्शी शिक्षा से संबंध रखने वाली हैं । इसलिय आज के शिक्षकों को आंतरिक गुणों के हार्दिक विकास का विशेष प्रयत्न करना चाहिए। नहीं तो बुद्धि और हृदय के संघर्ष में आसुरी प्रवत्तियां ही अगर प्रगट होती रहीं, तो मानव के सर्वांगीण विकास के बदले सर्वनाश ही पल्ले पड़ेगा ।

अहिंसा की आदर्श व्याख्या

एक बार विनोबा जी गीता का विवेचन करते हुए हम से अहिंसा के विषय में कुछ कहने लगे । अपनी बात समझाने के लिये उन्होंने मराठी में एक श्लोक बनाकर हमें सुनाया । आज मुझे वह श्लोक तो याद नहीं है, पर अर्थ याद आता है । भावार्थ यह था : "पत्थर ने फूल से कहा कि मैं तुझे कुचल दूंगा । फूल ने जवाब दिया : तू मुझे कुचल देगा तो मुझ पर अनंत उपकार होंगे, क्योंकि उससे मेरी खुशबू विश्व में फैलगी ।"

अहिंसा का इतना मार्मिक और हृदयग्राही दृष्टांत मेरे तो सुनने में कहीं नहीं आया है । ऐसे अनेक श्लोकों की वे रचना करते और फिर फाड़ डालते । एक बार मैंने उनसे पूछा : "ये श्लोक आप फाड़ क्यों डालते हैं ? उनका अगर आप संग्रह करने दें, तो उनका दुनिया को बड़ा उपयोग होगा ।" तो विनोबा ने समझाया कि "मनुष्य नश्वर है । इसलिये उसके हाथ से कोई अमरकृति तो नहीं हो सकती । हम कुछ भी लिखें और काल या समाज उसे नष्ट करदे, इतना कष्ट भी समाज को क्यों दिया जाय ? यह भी एक प्रकार की हिंसा हुई । इसलिये अमरता के करीब तक पहुंच सके, ऐसी रचना अगर हमारे हाथों बन पड़ें तभी वह समाज को अर्पण की जाय । नहीं तो देने में लुत्फ ही क्या ? उल्टा अपने स्वाभिमान को धक्का लगता है ।" मैंन कहा : "आपके श्लोक मुझे तो बहुत अच्छे लगते हैं । वे अमरता के करीब पहुंचने के काबिल नहीं हैं, यह आप कैसे तय कर सकते हैं ?" तो, विनोबा ने कहा : "मानो, वे उस योग्य हैं तो फाड़ डालने पर भी फट नहीं सकते, बल्कि मुझसे तुम्हारे पास, तुमसे औरों के पास, और कहीं नहीं तो चारों ओर के वातावरण में ही वे फैले रहेंगे ।" ऐसी है विनोबा जी की जीवन-दायिनी शिक्षा-पद्धति ।

विनोबा जी के पास अनेक विद्यार्थी रहे और सीखकर विद्वान भी हुए । पर मुझे उस वक्त किताबी शिक्षा में विशेष दिलचस्पी नहीं मालूम हुई । तब भी, विनोबा के सान्निध्य में मुझे जो संस्कार प्राप्त हुए हैं, वे मेरे जीवन के अनमोल रत्न हैं । ऐसा संत-समागम भगवान सबको दे, ऐसी मेरी प्रार्थना है । ऐसे पावन गुरु को कोटि-कोटि प्रणाम ।

संसदज्ञ

संसद के कक्ष से

लोकसभा के शरदकालीन अधिवेशन में योजना पर वाद-विवाद हुआ––प्रधान मंत्री ने उसकी शुरुआत की और वित्त मंत्री ने आखिर में उत्तर देते हुए भाषण किया। विवाद का मुख्य विषय खुद योजना का भविष्य ही था। विदेशी विनिमय की कमी की बात इस समय तक सभी को अच्छी तरह ज्ञात हो चुकी है। इसकी वजह से योजना के भविष्य के बारे में गम्भीर चिन्ता उत्पन्न हो गयी है। देश के आन्तरिक वित्तीय साधनों के बारे में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे आवश्यक मात्रा में मिल ही जायेंगे। फिर, खाद्यान्न की समस्या से लोगों का दिमाग परेशान था। अतः, वाद-विवाद के दौरान स्वभावतः इन सभी बातों पर जोर दिया गया। वाद-विवाद के सिलसिले में बहुत से सम्बन्धित विषयों, जैसे भूमि-सुधार, सहकारिता आन्दोलन, कुटीर उद्योग, खाद्यान्न उत्पादन, आन्तरिक ऋण, छोटी बचत, आदि की भी चर्चा चलायी गयी। संक्षेप में, वाद-विवाद के दौरान हमारे राष्ट्रीय जीवन के प्रायः सभी पक्षों का जिक्र किया गया। और, चूंकि योजना का उद्देश्य ही राष्ट्रीय जीवन का व्यापक विकास करना है, इसलिए इसके विषय में हुए वाद-विवाद के अन्तर्गत समूचे राष्ट्रीय-जीवन पर विचार करना उचित ही था।

योजना सम्बन्धी कठिनाई

प्रधान मंत्री ने अपने भाषण के प्रारम्भ में ही कहा : "अपनी पूरी ताकत भर कोशिश किये बगैर, कुछ जोखिम उठाये बगैर, इन स्थितियों में तनिक भी प्रगति नहीं हो सकती।" विकासशील अर्थ-व्यवस्था में कार्यान्वित होने वाली योजना "हमें अपनी पूरी ताकत भर कोशिश करने के लिए मजबूर कर देगी।" वह "यह मानने के लिए" भी तैयार थे कि "कुछ थोड़े-से और ज्यादा सजग आयोजन से, अपने आयातों और निर्यातों, आदि के बारे में कुछ थोड़ी-सी और अधिक दूरंदेशी से, दबाव ज्यादा तो नहीं लेकिन थोड़ा-सा कम जरूर हो गया होता।" लेकिन हाल की बातों से एक अच्छा नतीजा यह निकला है कि हम ––सरकार और जनता––अपनी आत्म-तुष्टि की भावना से झकझोर कर सजग कर दिये गये हैं। सरकार और जनता, दोनों ही, ने अब महसूस कर लिया होगा कि एक अर्द्ध-विकसित देश के आयोजित विकास के लिए प्रयत्न, मेहनत और तनाव जरूरी होते हैं।

प्रधान मंत्री ने कृषि, सहकारिता और ग्रामीण विकास के महत्व पर फिर जोर दिया। इन मामलों में अपनी मदद आप करने का तरीका अख्तियार करके बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है। उन्हें "मदद मांगने की क्षमता और खुद ही कोई काम कर लेने की आश्चर्यजनक अक्षमता" को देखकर काफी दुख हुआ। स्थानीय लोग खुद ही कच्चे कुओं और नालों का निर्माण करके सिंचाई के बहुत से छोटे साधन तैयार कर सकते हैं। जिस समय सूखे से खेत जल रहे हों, उस समय सिंचाई की सरकारी व्यवस्था के लिए किसानों को इंतजार करने की जरूरत नहीं। उन्होंने समर्थ व्यक्तियों को दान देने का सख्त विरोध किया। जो मदद दी जाय, वह दुखियों और पीड़ितों को काम देने के रूप में होनी चाहिए। हालांकि लागत के ख्याल से उसमें खर्च कम नहीं पड़ेगा, फिर भी "वह हमारी अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से, और व्यक्ति के आत्म-सम्मान और आत्मनिर्भरता की दृष्टि से, अच्छी होगी।" हम सिर्फ इतना ही चाहते हैं कि इस स्वस्थ सिद्धान्त का पालन शिविरों में रहने वाले शरणार्थियों के मामलों में किया जाय !

योजना में काटछांट

आम जनता का दिमाग इस बात से चिन्तित था कि योजना में कोई तब्दीली या काटछांट की जायगी या नहीं। श्री नेहरू और वित्त मंत्री ने भी इस सवाल का उल्लेख किया। तेज विकास ही जरूरतों को देखते हुए श्री नेहरू इस बात से सहमत नहीं कि योजना अति-अभिलाषापूर्ण है। लेकिन उनका विचार है कि "आखिर में कुछ हद तक चीजों के रूप में कुछ तब्दीलियां, क्रमों में कुछ परिवर्तन, करने ही पड़ते हैं।" लेकिन विकास कार्यों में हासिल किए गये वेग को कायम रखना है। उन्होंने

आगे कहा : "चाहे जो भी छोटी-मोटी बातें इधर-उधर काटीछांटी जायं, किन्तु हासिल हो चुके वेग को खोना नहीं चाहिए।"

श्री नेहरू ने खाद्योत्पादन को, जिसके बगैर सभी योजनाएं और अनुमान अव्यवस्थित हो जायंगे, प्राथमिकता की दृष्टि से प्रथम स्थान दिया। उन्होंने देश के लोगों और सरकार—केन्द्रीय और राज्य, दोनों—से आग्रह किया कि वे अधिक आत्मनिर्भर बनें। आर्थिक विकास उसी हालत में सम्भव है, जब लोग इसके लिए अधिक से अधिक प्रयत्न करें और उससे उत्पन्न तनावों को सहें। करों को छोड़ कर, देश के अन्दरूनी वित्तीय साधनों का निर्माण इस बात पर निर्भर करेगा कि "हममें अपने सभी काम खुद करने की क्षमता" कितनी है। छोटी बचत आन्दोलन भी एक ऐसा ही विषय है जिस पर सब कुछ आश्रित है। श्री नेहरू ने लोक सभा को याद दिलाया कि "इस समय हमारे सामने जो मुश्किलें पेश हैं, वे एक प्रगतिशील, आगे बढ़ती हुई अर्थ-व्यवस्था की, प्रगति की, मुश्किलें हैं; वे स्थिरता या गतिहीनता की मुश्किलें नहीं।"

भिन्न-भिन्न प्रवक्ताओं ने भिन्न-भिन्न विषयों—सड़क, खाद्यान्न, सहकारिता, वन, आदि से लेकर योजना का मूलाधार कहे जाने वाले उद्योगों—पर जोर दिया। सामान्यतः खाद्यान्न, देशी वित्तीय साधन, भूमि-सुधार या भूमि नीति, सहकारिता, आदि की ओर अधिक ध्यान खींचा गया। विदेशी विनिमय की स्थिति असंतोषजनक बतायी गयी और सरकारी पक्ष से भी इसे स्वीकार किया गया। सदस्य सचमुच यह जानने के लिए उत्सुक थे कि योजना के भविष्य के बारे में सरकार का दृष्टिकोण क्या है। श्री नेहरू ने तो कोई नयी बात नहीं बतलायी, किन्तु वित्त मंत्री न कुछ हद तक इस दिशा में रोशनी डाली।

वित्त मंत्री द्वारा स्पष्टीकरण

श्री कृष्णमाचारी ने अपने भाषण के प्रारम्भ में ही योजना के भविष्य का चित्र प्रस्तुत किया। लोहा और इस्पात तथा सिंचाई सम्बन्धी कार्यक्रमों में कोई तब्दीली नहीं होगी। वे अपने वर्त्तमान रूप में ही कायम रहेंगे। कुछ शक्ति योजनाएं और एक या दो उर्वरक-उत्पादन योजनाएं छोड़ी जा सकती हैं। उन्होंने यह मंजूर किया कि इस समय कई अनिश्चितताओं की वजह से योजना के भविष्य का कोई निश्चित चित्र प्रस्तुत करना मुश्किल है। लेकिन, उन्होंने यह संकेत किया कि यद्यपि "योजना के भौतिक लक्ष्य में कुछ कमी हो सकती है," फिर भी सरकार उसके ४,८०० करोड़ रुपये के वित्तीय लक्ष्य को कायम रखने की हर मुमकिन कोशिश करेगी। वित्त मंत्री का विचार है कि कोयला, इस्पात, सिंचाई, यातायात और रेलवे योजना के अनिवार्य अंग हैं। "अगर उन्हें आज छोड़ दिया जायगा तो तीसरी योजना के लिए जरूरी विकास-सम्भाव्यताएं पैदा न हो सकेंगी।" द्वितीय योजना के मूलाधार सम्बन्धी योजनाओं के लिए विदेशी विनिमय के सौदे लगभग ७०० करोड़ के होंगे, जिनमें से अधिकांश की आवश्यकता अगले १८ महीनों के भीतर पड़ेगी। लेकिन उन्होंने योजना की शेष अवधि के लिए विदेशी विनिमय की कमी का कोई निश्चित आंकड़ा नहीं दिया। संसद सदस्यों ने "काटछांट के बाद योजना के स्वरूप और आकार" के बारे में जानकारी हासिल करनी चाही। इस सम्बन्ध में वित्त मंत्री ने कहा : "मुझे खेद है कि अभी इस अवस्था में कोई स्पष्ट उत्तर देना मेरे लिए सम्भव नहीं।" उन्होंने सदस्यों से अनुरोध किया कि वे इसके लिए "बजट अधिवेशन के मध्य काल तक" प्रतीक्षा करें।

घाटे की वित्त-व्यवस्था के बारे में एक विशेष प्रश्न के उत्तर में वित्त मंत्री ने कहा कि पहले दो वर्षों के भीतर घाटे की वित्त-व्यवस्था लगभग ५०० करोड़ रुपये की होगी। उनके अनुमान के अनुसार, योजना की अवधि में अधिक से अधिक ९०० करोड़ रुपये की घाटे की वित्त-व्यवस्था होगी। ४०० करोड़ रुपये की घाटे की अतिरिक्त व्यवस्था तीसरे और चौथे वर्ष के भीतर की जायगी। उनके विचार से ५वें वर्ष शायद ही घाटे की वित्त-व्यवस्था का सहारा लेना पड़े।

योजना की वित्त-व्यवस्था में अपनी कठिनाइयों को मानने में वित्त-मंत्री ने बड़ी स्पष्टवादिता का परिचय दिया। योजना की अवधि में केन्द्रीय सरकार के कर-प्रस्तावों द्वारा लगभग ८०० करोड़ रुपये की आय होगी। उन्होंने राज्यों के सम्बन्ध में कुछ कहते हुए सावधानी दिखलायी। वे सिर्फ इतना ही बोले : "यह बेहद जरूरी है कि राज्य अपने साधन जुटायें।" उनके अनुमान के अनुसार, नये करों और रेलवे की बचतों से जो आय बचेगी उस से "योजना के कुल व्यय के २५ प्रतिशत से अधिक अंश की

वित्त-व्यवस्था हो जानी चाहिए ।" अन्य शब्दों में, इन दोनों साधनों से १,२०० करोड़ रुपये से ज्यादा प्राप्त हो जायेंगे। इसके बाद वित्त-मंत्री ने अपनी मुश्किलों की बात बतलायी : छोटी बचतों की वसूली काफी घट गयी है; योजना भर के लिए ५०० करोड़ रुपये के निश्चित लक्ष्य में से पहले दो वर्षों की कुल वसूली मुश्किल से १२० करोड़ रुपये की होगी। राज्यों के कर सम्बन्धी प्रयत्नों के विषय में वे बहुत आशावादी नहीं। इसके साथ ही, वे ९०० करोड़ रुपये से अधिक की वित्त-व्यवस्था का साहस नहीं करते। अतः ४,८०० करोड़ रुपये के कुल व्यय की वित्त-व्यवस्था करना मुश्किल काम है।

व्यय के पक्ष में भी उन्होंने जो चित्र प्रस्तुत किया, वह बहुत कुछ आशाजनक नहीं था। प्रथम दो वर्षों के भीतर, कुल किया गया व्यय, उसकी अनुमानित मात्रा से लगभग १०० करोड़ रुपये कम होगा—कुल व्यय लगभग १,६०० करोड़ रुपये होगा। स्वभावतः यह आशंका उठायी जायगी कि क्या अगले तीन वर्षों के भीतर ४,८०० करोड़ रुपये का कुल व्यय पूरा करने के लिए अन्य ३,२०० करोड़ रुपये का उपयोग लाभकारी और उपयुक्त ढंग पर होगा। यह अपेक्षा की जायगी कि वित्त-मंत्री और उनका मंत्रालय कड़ी सावधानी रखेगा, ताकि सिर्फ लक्ष्य पूरा करने के लिए अनायोजित और व्यर्थ व्यय न होने पाये।

खाद्योत्पादन का महत्व

समूचे वाद-विवाद के दौरान जो सबसे पहली बात पैदा हुई, वह है खाद्यान्न उत्पादन का प्राथमिक महत्व। लेकिन प्रधान मंत्री और वित्त मंत्री ने साफ कह दिया है कि भारत खेती को भुला नहीं सकता और न ही खाद्योत्पादन के विषय में आत्मतुष्ट होकर रह सकता। आज का संकट मुख्यतः खाद्यान्न की कमी के कारण उत्पन्न हुआ है। भूमि-सुधार और सहकारिता को भी खाद्योत्पादन के लिए महत्वपूर्ण कारक मान लिया गया है। यह भी साफ-साफ स्वीकार कर लिया गया है कि योजना के भौतिक लक्ष्यों का हासिल करना असम्भव है। किन्तु उसके मूलाधार अर्थात् योजना के इस्पात, कोयला, यातायात और सिंचाई वाले हिस्से को कार्यान्वित करना ही पड़ेगा। वित्त-मंत्री ने यह भी कहा है कि यद्यपि मूलाधार के लिए आवश्यक विदेशी विनिमय उपलब्ध हो सकता है, किन्तु, फिर भी, हमें योजना के लिए आन्तरिक वित्तीय साधनों की भी चिन्ता करनी पड़ेगी। वित्त-मंत्री ने कर-राजस्व (खास तौर पर राज्यों के हिस्से, बाजार ऋण, छोटी बचत, आदि) में सम्भाव्य कमी को स्वीकार किया है। आम जनता के आर्थिक विकास के लिए लोगों द्वारा अधिक दृढ़ निश्चय दिखलाने और प्रयत्न करने की जरूरत है। प्रधान मंत्री ने इस बात को बारबार दुहराया है। अब सरकार के लिए जरूरी होगा कि वह इस प्रकार के दृढ़ निश्चय और प्रयत्नों के लिए जनता को प्रोत्साहित करे।

विज्ञान प्रगति

घरेलू और छोटे उद्योगों को वैज्ञानिक सहायता देने वाली और नये उद्योग सुझाने वाली एक अधिकारी पत्रिका है। यह उद्योगियों की व्यक्तिगत कठिनाइयों में रुचि लेती है।

क्या आप 'विज्ञान प्रगति' के ग्राहक हैं?

कानपुर के साप्ताहिक 'प्रताप' का कथन है :

"जन-उपयोगी इस मासिक पत्रिका का हम घर-घर में प्रवेश चाहते हैं।"

वार्षिक मूल्य ५ रुपये एक प्रति का आठ आना

पब्लिकेशन्स डिवीज़न, कौंसिल ऑफ़ साइंटिफ़िक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च

ओल्ड मिल रोड, नई दिल्ली—२

सुनील गुहा, महेन्द्र मेहरा

आर्थिक टिप्पणियां

सामुदायिक विकास किधर ?

लगभग ५ वर्ष पूर्व, जब कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम चालू किया गया था, इसका उद्देश्य अधिकांशतः अपनी मदद आप करने में मार्ग-प्रदर्शन तथा संगठन में सुधार करके ग्रामीण जीवन और अर्थ-व्यवस्था के समूचे स्वरूप और स्वभाव को बदल देना था। दरअसल, इसे तले से लोकतंत्र के निर्माण का सबसे उपयुक्त माध्यम माना गया था। लेकिन, इस दिशा में सभी बातें संतोषजनक नहीं रहीं, और शुरू में हुई कामयाबी के बावजूद यह कार्यक्रम आम जनता में उत्साह जगाने के अपने बुनियादी मकसद को हासिल करने में असफल रहा। अतः, सामुदायिक विकास-कार्यक्रम के दोषों की जांच करने के लिए सात सदस्यों का एक अध्ययन दल नियुक्त किया गया। इस दल की रिपोर्ट अभी हाल में प्रकाशित हुई है। इसमें बतलाया गया है कि अधिकांश मामलों में जनता के स्थानीय प्रतिनिधियों से योजना के निर्माण या लक्ष्य के निर्धारण में सलाह नहीं ली गयी। जब स्थानीय आवश्यकताओं और अभिलाषाओं की अवहेलना करके जिला-स्तर या खंड-स्तर के अधिकारियों द्वारा ही योजना तैयार की जाती है या लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं, उस हालत में स्थानीय पहल की भावना का दब जाना स्वभावतः अनिवार्य है।

इसके अलावा, विभिन्न क्षेत्रों के कल्याण-कार्य सम्बन्धी मुख्तलिफ पहलुओं पर दिये गये जोर में भी समानता नहीं रही। अध्ययन दल की राय में इसकी वजह यह रही है कि केन्द्रीय स्तर पर सामुदायिक विकास मंत्रालय और केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, दोनों का नियंत्रण रहा। दल ने सुझाव दिया है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पूरी जिम्मेदारी राज्य-सरकारों के जिम्मे सुपुर्द होनी चाहिए, जबकि केन्द्रीय सरकार को "केवल सलाहकार की हैसियत से तथा समन्वय उत्पन्न करने और वित्तीय सहायता देने वाले माध्यम" के रूप में कार्य करना चाहिये।

दल ने आगे यह भी कहा है कि अभी तक आर्थिक विकास सम्बन्धी खास कार्यक्रमों की अपेक्षा कल्याण योजनाओं पर ही अधिक जोर दिया जाता रहा है, जबकि वास्तव में कल्याण योजनाओं की बजाय आर्थिक विकास संबंधी विशेष कार्यक्रमों को ही ज्यादा तरजीह दी जानी चाहती थी।

अध्ययन दल का मुख्य सुझाव यह है कि जिलों में एक नये संगठन की स्थापना होनी चाहिये, जिस पर विकास कार्यों की जिम्मेदारी हो। इस संगठन के निर्माण से जिले के प्रशासनिक ढांचे में दूरगामी परिवर्तन होंगे। इस नये संगठन का नाम 'पंचायत समिति' होगा। इसका निर्माण ग्राम पंचायतों से ही परोक्ष चुनाव द्वारा किया जायगा। यह समिति एक विकास-खंड (जिसकी जनसंख्या ८० हजार से ज्यादा न होगी) से सम्बद्ध होगी। इसमें जिले के जीवन में शामिल विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधि भी होंगे। इसके कार्यों के अन्तर्गत, कृषि के विकास, सिंचाई के छोटे साधनों के निर्माण, प्राइमरी स्कूलों के प्रबन्ध तथा स्थानीय उद्योगों की तरक्की के सभी पक्ष शामिल होंगे। अध्ययन दल ने जोरदार अनुरोध किया है कि ऐसी स्थितियों को छोड़कर जहां पंचायत समिति किसी विशेष मामले में क्रियाशील होने में असमर्थ हो, राज्य सरकार को चाहिये कि वह विकास-खंड वाले क्षेत्रों के भीतर इनमें से किसी या दूसरे विकास कार्यों को स्वयं न चलाये। समिति के पास दो तरह के अधिकारी होंगे : एक तो वे जो खंड-स्तर के होंगे, और दूसर वे जो ग्राम-स्तर के होंगे। सभी अधिकारी राज्य सरकार के तदनुरूप अधिकारी-पदों से लिए जायेंगे और राज्य सरकार द्वारा पंचायत-समिति को उस पद के लिए दिये जायेंगे। राज्य सरकार ही इन अधिकारियों के वेतन, महंगाई, पेंशन और अवकाश संबंधी अंशदान का भार वहन करेगी। पंचायत समिति चालू भत्तों, जैसे मार्ग-व्यय, का भार उठायेगी जो कि राज्य-सरकार द्वारा निर्धारित दरों पर होंगे।

अध्ययन दल ने विशेष योजनाओं की दुहरी जांच-पड़ताल से बचने और केन्द्रीय सरकार की सदस्यता की मंजूरी में जल्दी करने के बारे में भी अनेक सुझाव दिये हैं।

इस प्रकार, अध्ययन दल के सुझावों द्वारा वर्तमान प्रशासनिक ढांचे में बुनियादी परिवर्तन की कल्पना की गयी है। लेकिन यह याद रखना होगा कि प्रशासन में इस प्रकार के क्रांतिकारी परिवर्तनों के बगैर, सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कार्य संतोषजनक ढंग पर संपन्न नहीं हो सकते और न ही वे मकसद हासिल हो सकते जिनके लिए इन्हें चलाया जा रहा है।

ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के समक्ष समस्या

यद्यपि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के देशों के बीच विचारों के आदान-प्रदान के महत्त्व पर जोर देने की जरूरत नहीं, फिर भी, यह मानना पड़ेगा कि राष्ट्रमंडल का भविष्य इस समय उसके सामने पेश कठिन आर्थिक समस्याओं के संतोषजनक हल पर ही झूल रहा है। केन्द्रीय वित्त मंत्री श्री टी.टी. कृष्णमाचारी इस बात के लिए बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने अभी हाल में दिल्ली में हुए ब्रिटिश राष्ट्रमंडल संसदीय सम्मेलन के समक्ष किये गए अपने भाषण में इसी बुनियादी सवाल की ओर ध्यान खींचा। दरअसल, इस समय ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के सदस्य देश आपस में पुराने राजनीतिक बन्धनों से नहीं, बल्कि आर्थिक हितों की कड़ी से जुड़े हुए हैं। और, इधर हाल के वर्षों में, राष्ट्रमंडल का सामंजस्य महत्त्वपूर्ण आर्थिक समस्याओं द्वारा ही अव्यवस्थित हुआ है, राजनीतिक मतभेदों द्वारा उतना नहीं।

पौण्ड संबंध के टिकाऊपन के बारे में आशंका जाहिर करते हुए श्री कृष्णमाचारी ने इस बात का उल्लेख किया कि राष्ट्रमंडल के देश पूंजीगत वस्तुओं और नई उपभोक्ता वस्तुओं के आयात के लिए इंग्लैण्ड की बजाय दूसरे देशों की ओर अधिकाधिक अग्रसर हो रहे हैं। उनके व्यापार की दिशा में स्पष्ट परिवर्तन हो रहा है और पूंजी-निर्गमन के साधन के रूप में लन्दन के मुद्रा-बाजार का महत्त्व क्रमशः घटता जा रहा है। उन्होंने यूरोपीय आर्थिक सहयोग तथा प्रस्तावित यूरोपीय सामान्य बाजार का हवाला दिया और कहा कि ये प्रगतियां न सिर्फ ब्रिटेन की स्थिति को समझौते के लिए बाध्य करेंगी बल्कि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल की सदस्यता से होने वाले आर्थिक लाभों को भी दूसरे सदस्य राष्ट्रों के लिए इतना कम कर देंगी कि उसका जारी रखना ही व्यर्थ साबित होगा।

ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अपेक्षाकृत पिछड़े देशों का आर्थिक विकास भी उनके विदेशी व्यापार के ढांचे में विविधता उत्पन्न करने में योग देगा। इससे सदस्य देशों की गैर-सम्पूरक आवश्यकताओं में सामंजस्य उत्पन्न करने की समस्या उठ खड़ी होती है। यह एक ऐसी समस्या है, जिस पर अभी तक अधिक विचार भी नहीं किया गया है, उसके हल करने की बात तो दूर रही।

आखिर में——और यह सबसे महत्त्वपूर्ण बात है—ब्रि. राष्ट्रमंडल के देशों की वित्तीय बचतों को इकट्ठा कर देने पर भी विकास-कार्य में संलग्न सदस्य देशों की आर्थिक योजनाएँ कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक पूंजी का अत्यन्त अल्प अंश ही पूरा होता है। इसलिए उन्हें बाध्य होकर पूंजी के नये साधनों की खोज करनी ही पड़ती है। कोलम्बो योजना के अन्तर्गत आर्थिक विकास के लिए दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों को अन्तर्-सरकारी आधार पर जो ३५० करोड़ डालर की सहायता दी गई है, उसमें से ३०० करोड़ डालर से अधिक रकम अकेले संयुक्त राज्य अमरीका से आयी है। इसलिए अगर ब्रि. राष्ट्रमंडल की जोड़ने वाली कड़ी को छिन्न-भिन्न नहीं होना है, तो उसके आर्थिक ढांचे में और अधिक अंश तक आत्म निर्भरता का संचार करने की कोशिश होनी चाहिये। जैसा कि श्री टी. टी. कृष्णमाचारी ने सुझाव दिया है, अगर निकट भविष्य में राष्ट्रमंडल के देशों का कोई आर्थिक सम्मेलन आयोजित करना हो तो उसके पहले इन देशों के सामने पेश आर्थिक समस्याओं की छानबीन विस्तार और सावधानी के साथ अवश्य कर ली जानी चाहिये।

पिछड़े वर्गों का कल्याण

आर्थिक और परिस्थिति-जन्य वजहों से उत्पन्न बुराइयों को किसी भी मात्रा में कानून या वित्तीय सहायता के बल पर तब तक दूर नहीं किया जा सकता, जब तक कि इसके लिए प्रशासन और आम जनता द्वारा संगठित प्रयत्न न किये

जायें। पिछड़े वर्गों की आर्थिक दशा सुधारने और उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा ऊँची करने के लिए कांग्रेस दृढ़ प्रतिज्ञ है, और इसके लिए आजादी मिलने के बाद बहुत बड़ी मात्रा में धन खर्च किया जा रहा है। किन्तु, अभी हाल में अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के कमिश्नर ने १९५६-५७ की जो वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित की है, उसे पढ़ने पर बड़ी निराशा होती है, क्योंकि उससे पता-चलता है कि अनेक राज्यों में इस दिशा में प्रगति नहीं हुई है। राज्य सरकारों के दृष्टिकोण के बारे में यह बड़ी ही खेदजनक टिप्पणी है कि उन्होंने अभी तक योजनाएँ तैयार करने और उन्हें कार्यान्वित करने की अपेक्षा उनके व्यय की मात्रा और उनके लिए आवश्यक अनुदानों को अधिक महत्त्व दिया है। इससे भी अधिक गम्भीर महत्त्व की बात यह है कि वे छुआछूत-अपराध अधिनियम को प्रभावकारी ढंग पर लागू करने में असफल रही हैं। यह अधिनियम सारे भारत पर लागू होता है, और उसमें छुआछूत के आधार पर धार्मिक या सामाजिक प्रतिबन्ध लगाने वाले व्यक्ति के लिए दण्ड की व्यवस्था की गयी है। बड़े पैमाने पर लोगों को शिक्षित करने का आन्दोलन चलाकर संविधान में की गयी व्यवस्था और दंड देने वाले कानून की संपूर्त्ति करने की बजाय, ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकारों ने निष्क्रिय होकर इस मूलभूत बुराई को अमिट मान लिया है। 'अछूत' की आर्थिक दशा, अधिकांशतः, उसके जन्म और पेशे संबंधी सामाजिक कलंक से पृथक नहीं। समाज में गहराई तक जमे हुए कुछ द्वेष-विद्वेषों की क्रियाशीलता के कारण उसके प्रति अभी तक गम्भीर सामाजिक-आर्थिक अन्याय हुए हैं। उन व्यक्तियों के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हुए बगैर इस बुराई का उन्मूलन सर्वथा असंभव है, जिनकी रूढ़िवादी भावना को प्रस्तावित सुधारों से चोट पहुँचती है। अतः जरूरत इस बात की है कि लोगों को शिक्षित करने के लिए एक गहन आन्दोलन चलाया जाय और छुआछूत के विरुद्ध जनमत तैयार किया जाय। साथ ही, इस संबंध में दंड देने वाले कानूनों को और भी कड़ाई से लागू करना जरूरी है।

नजरबन्दी अधिनियम

अभी हाल में नजरबन्दी अधिनियम की अवधि को तीन वर्ष और बढ़ा देने के प्रस्ताव पर हुए वाद-विवाद के दौरान विरोधी पक्ष द्वारा संसद भवन का परित्याग यदि घृणित नहीं तो अनुचित अवश्य प्रतीत होता है। इधर कुछ समय से राष्ट्र को पंजाब में भाषा आन्दोलन से लेकर मद्रास में ब्राह्मणों की हत्या करने की धमकी से प्रेरित द्रविड़ कषगम आन्दोलन जैसे मामलों के सिलसिले में वास्तविक या सम्भाव्य हिंसा का मुकाबला करना पड़ा है। ऐसी हालत में, अव्यवस्था और तोड़-फोड़ उत्पन्न करने वाली इन प्रवृत्तियों का सामना करने के लिए गृह मंत्रालय को पर्याप्त मात्रा में प्रारक्षित अधिकार प्रदान कर देना स्थिति के अनुसार सर्वथा उपयुक्त प्रतीत हुआ। अभी तक इस अधिनियम का प्रयोग बहुत ही सावधानी के साथ तथा बहुत बचा-बचाकर हुआ है और इसके प्रयोग तथा मौजूदगी के फलस्वरूप उन व्यक्तियों की संख्या बहुत ही घट गयी है जिन्हें नजरबन्द रखना जरूरी होता है। नजरबन्दों की संख्या में उत्तरोत्तर ह्रास हुआ है और वह १९५० के १०,९६२ से घट कर १९५३ में ७३६ तथा इस वर्ष ३० सितम्बर को २०५ हो गयी। इसके अलावा, लम्बी अवधि तक मनमाने तौरपर नजरबन्द रखने का खतरा अब दूरस्थ संभावना बन चुका है, क्योंकि अधिनियम में संशोधन करके यह व्यवस्था कर दी गई है कि इस तरह की नजरबन्दी की समीक्षा हाईकोर्ट के जज द्वारा अवश्य की जायेगी। अन्त में, दुनिया में---कम्युनिस्ट देशों को भी शामिल करके--कौन ऐसा देश है जिसमें किसी अभियोगी को उतने ज्यादा अधिकार दिये गये हैं जितने भारत ने दे रखे हैं? यह अच्छी तरह समझ लेना होगा कि सरकार की नीति इस अधिनियम को हमेशा कायम रखने की नहीं है, लेकिन जब तक देश के शांतिपूर्ण विकास और स्थिरता को संगठित रूप से कानून को चुनौती देने या हिंसा का सहारा लेने से खतरा बना रहेगा, तब तक यह अधिनियम रहेगा और दृढ़ता के साथ लाग भी होगा।

—सु० गु०

राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी नीति और मजदूरी गणना

दूसरी पंचवर्षीय योजना के "श्रमनीति और कार्यक्रम" तथा "उन्नतिशील वास्तविक वेतन-ढांचा" नामक परिच्छेदों में मजदूरों की अच्छी स्थिति और उत्पादन वृद्धि के लिए मजदूरी के प्रश्न पर विस्तृत विचार किया गया है। श्रम नीति को, वास्तव में, द्विपक्षीय होना चाहिए——पूरे देश में, जहां तक संभव हो, वेतनों का निम्नतम स्तर समान होना चाहिए। दूसरे, विभिन्न पेशों में वास्तविक मजदूरी, रहन-सहन के निम्नतम स्तर तथा मजदूर की उत्पादन क्षमता के अनुरूप हो। यह सब कुछ बुनियादी कारणों से एक कठिन और दिक्कत-तलब काम है। मजदूरी का ऐसा कोई फार्मूला अब तक नहीं पैदा हो सका है, जो सर्वमान्य हो। उत्पादन की ऐसी बहुत-सी इकाइयां देश भर में फैली हुई हैं, जिनका उत्पादन कम या बहुत मामूली है, और मजदूरी की कमी की ओर उनका रुख इतना ज्यादा है कि उसकी वजह से मजदूरी के ढांचे में कोई खास सुधार करना असंभव सा प्रतीत होता है। मजदूरों में उत्पादन क्षमता की कमी एक दूसरी रुकावट है।

ज्ञात हुआ है कि केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के बारे में राज्यों से परामर्श करने का विचार कर रही है। वस्तुतः इस कदम में काफी देर हो चुकी है, श्रमिकों की दृष्टि से भी और औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से भी। विभिन्न राज्यों में वेतन की असमानताओं को ठीक करने के लिए कोई सिद्धांत बनाने तथा उसे जल्द से जल्द कार्यान्वित करने में अब देर की गुन्जाइश नहीं हो सकती। स्थानीय स्थितियों को विचार में रखते हुए, थोड़े-बहुत सुधार के साथ अखिल भारतीय स्तर पर न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के काम पर जरूरत से ज्यादा जोर भी नहीं डाला जा सकता। राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने का काम अच्छे नतीजों की उम्मीद के साथ तभी किया जा सकता है, जब उसकी कुछ प्रारम्भिक कार्यवाहियां पूरी कर ली जायें। रहन-सहन के मूल्यों तथा उत्पादन-क्षमता के अनुसार मजदूरी और महगाई भत्ता के मौजूदा आंकड़े एक तो अपूर्ण और पुराने हैं, दूसरे वे अनेक उद्योगों का सही प्रतिनिधित्व भी नहीं करते। यह बहुत जरूरी है कि ये आंकड़े राष्ट्रीय मजदूरी नीति को समय से लागू करने के लिए शीघ्रातिशीघ्र संग्रहीत किये जायें। यह एक अच्छी बात है कि हमारी अर्थ-व्यवस्था के लगभग ५० उद्योगों, जिनमें उत्पादक-खदानें और बागान शामिल हैं, में मजदूरी संबंधी गणना होने जा रही है। यह गणना काफी विस्तृत होगी, क्योंकि इसके अन्तर्गत खदानों के ८५ प्रतिशत कारखानों के ७६ प्रतिशत और बागानों के लगभग शत प्रतिशत मुलाजिम आ जायेंगे। इस गणना का कार्य तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है : (१) पूर्व-कार्य तथा निर्देशक-जांच, (२) क्षेत्रीय कार्य, तथा (३) अन्तिम आंकड़े का वर्गीकरण और जांच रिपोर्ट का लेखन। पूरे काम में लगभग दो वर्ष लगेंगे। नमूने के ढंग पर की गई गणना में समय और धन दोनों की बचत होगी।

अखिल भारतीय न्यूनतम मजदूरी के बाद मामूली और कम उत्पादन वाली इकाइयों, रोजगार, पूंजी-निर्माण, मूल्यों के रुखों, आदि पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, इस बात पर भी काफी ध्यान दिया जाना चाहिए। खासतौर से मामूली इकाइयों का खयाल रखना पड़ेगा जिससे उन्हें बेजरूरत बन्द न होना पड़े। मूल्यों में लम्बी और छोटी अवधि के उतार-चढ़ाव, दामों में छूट या कमी, मशीनीकरण और नवीनीकरण, आदि तथा पेशेवर मजदूरों की मजदूरी, आदि का विश्लेषण भी किया जाना चाहिए। हम उजरत की प्रणाली और परिणामों के अनुसार अदायगी को व्यापक रूप से कार्यान्वित करने पर जोर देना पसंद करेंगे, क्योंकि अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादन-वृद्धि के लक्ष्य को देखते हुए इस बात को ध्यान में रखना बहुत जरूरी है, हालां कि न्यूनतम और पारिश्रमिक की गिरती हुई दरों को भी रोकना होगा। मालिक-मजदूर के अच्छे संबंध; जरूरत से ज्यादा श्रम के बिना उत्पादन की वृद्धि; जहां संभव हो सके, वहां बोनस की व्यवस्था; औद्योगिक अनुशासन आदि के आधार पर ही देश की अर्थ-व्यवस्था प्रगति कर सकेगी।

——म० मे०

श्री प्रकाशचन्द्र त्रिपाठी

भारत में मजदूर संघ आन्दोलन

मजदूर संघ आन्दोलन सभी देशों में आधुनिक है। आदि काल के उद्योगों में श्रमिक अपने श्रम का स्वामी ही नहीं, वरन् उत्पादन के प्रसाधनों एवं सामग्री का मालिक भी था। तब वह एक स्वतंत्र उत्पादक था; न किसी की नौकरी करता था और न किसी को नौकर रखता था। अपने श्रम की बजाय उत्पादित वस्तुएँ बेचना उसका काम था। किन्तु बड़े पैमाने पर पूंजीवादी उद्योगों के विकास ने उत्पादन की सामग्री और साधन के स्वामित्व से श्रमिकों का सम्बन्ध ही विच्छिन्न कर दिया। वे केवल मजदूरी कमाने वाले श्रमिक रह गये और उनके मालिक उत्पादन की सामग्री, साधन और उत्पादित वस्तुओं के स्वामी बन बैठे। दोनों के बीच टकराव स्वाभाविक था, क्योंकि मालिक सस्ते दामों पर श्रम खरीदना चाहता था और मजदूर अधिक मूल्य पाने की तलाश में था। अनेक अवसरों पर यह टकराव सामाजिक अशांति में प्रतिफलित हुआ। समय के साथ मजदूरों की वर्ग-चेतना सारे संसार में फैली। उसने मजदूर और मालिक के इस टकराव को सामूहिक सौदेबाजी का रूप देने के साथ ही मजदूरों की स्थिति को भी मजबूत किया। अतः, यह आन्दोलन सामाजिक अशांति से उत्पन्न प्रगति का एक लक्षण है।

मजदूर संघ की परिभाषा

मजदूर संघ की शास्त्रीय परिभाषा करते हुए प्रो. सिडनी और प्रो. बियाट्रिस वेब ने लिखा है कि मजदूर संघ "मजदूरी पानेवालों का सतत संगम है, जिसका उद्देश्य मजदूर जीवन की आवश्यक दशाओं को कायम रखते हुए उनकी उन्नति करना है।" यह परिभाषा इसलिए एकांगी है कि यह केवल सर्वहारा जमात तक ही सीमित है। सोवियत श्रम-कानून की १५१वीं धारा में इसकी विस्तृत परिभाषा दी गयी है। उसके अनुसार, मजदूर संघ "उत्पादकों का वह संगम है जिसके अन्तर्गत सहकारी, निजी अथवा राज्य के व्यवसाय, संस्था और काम में पारिश्रमिक दरों पर काम करनेवाले नागरिक संगठित हों। यह संघ अपने सदस्यों की ओर से राज्य की विभिन्न संस्थाओं से बातचीत करता है; श्रमिक तथा सामाजिक कल्याण संबंधी सारे मसलों, समझौतों और ठेकों में उनका प्रतिनिधित्व करता है।

मजदूर संघ यदि ऊँचे वेतन और काम करने की अच्छी दशाओं के लिए लड़ने वाला संगठन है, तो बीमारी, दुर्घटना, या बेकारी के समय सेवा और प्रबन्ध करने वाली संस्था भी है। कल्याणकारी राज्य में मजदूर संघ का महत्त्व और भी ज्यादा है, क्योंकि वह राष्ट्रीय आय, उत्पादन और उत्पादन-क्षमता की वृद्धि के लिए प्रयत्न करता है। इन बातों की ओर मजदूरों का दृष्टिकोण मोड़ने में उसकी सफलता को देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि मजदूर संघ कल्याणकारी राज्य के निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

मजदूर संघों के लिए जरूरी है कि वे उद्योगों को, मौजूदा अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत, उनकी उच्चतम क्षमता तक पहुचाने का क्रमिक प्रयत्न करें, क्योंकि मनुष्य के मस्तिष्क में जब आर्थिक और औद्योगिक प्रश्नों के महत्त्व को दबाकर राजनीतिक सवाल छाने लगते हैं तो मजदूर संघों की एकता के लिए खतरा पैदा हो जाता है। मनुष्यों को राजनीतिक दलों में बांट देने की क्षमता रखनेवाले मसलों का दायरा काफी बड़ा है। उसके अन्तर्गत, सरकार, उसकी वैदेशिक नीति, जाति, धर्म, शिक्षा, आदि अनेक बातें आ जाती हैं। मजदूरों के हितों पर आधारित समुदायों के लिए यह जरूरी नहीं है कि वे ऐसे मसलों पर भी अपने सदस्यों की राय की गारण्टी करे। मजदूर संघों के लिए दूसरी आवश्यक बात यह है कि वे केवल लड़ाकू न होकर व्यावसायिक संगठन भी हों। ऊँचे आदर्श की जगह सही बहीखाते नहीं ले सकते। उस काम के लिए किसी द्रष्टा या मसीहा की बजाय मैनेजर या मुनीम का महत्त्व अधिक है। मजदूर संघ आन्दोलन में, दूसरे किसी व्यवसाय की भांति ही, यह जरूरी नहीं है कि केवल संगठनात्मक नियमों का अनुचर ही बना जाय। दूसरी ओर, असंबद्ध विकास से अधिकार क्षेत्र संबंधी अनेक कठिन समस्याएं सामने आती हैं। विकास की प्रारम्भिक स्थिति में, थोड़ा सा आयोजन कर लेने से उन सभी कठिनाइयों से छुटकारा पाया जा

सकता है, जो आगे चलकर आन्दोलन में विघ्नकारी साबित हो सकती हैं। अनेक देशों में मजदूर आन्दोलन को जिस चीज ने सबसे बड़ी हानि पहुँचाई है, वह है अंतर-संघीय अधिकार-क्षेत्रों का विवाद। संघ के निर्माण-काल में ही विवादों की संभावनाएँ हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, यदि देश के सभी लोहा-कर्मचारियों का उनके काम के आधार पर संगठन किया जाय, तो उसे एक ओर तो दस्तकारी संघ से सामना करना पड़ेगा, जिसमें दस्तकार और दक्ष कारीगर पहले से ही संगठित हैं, और दूसरी ओर, श्रमिकों के उन आम संगठनों से करारी होड़ लेनी होगी जो सभी तरह के श्रमिकों को संगठित करना चाहते हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में श्रमिकों को संगठित करने का कार्य पिछली सदी के आखिरी वर्षों में प्रारम्भ हुआ था। सन् १८७५ में सोहराबजी शापुरजी बंगाली ने बम्बई की सूती मिलों में काम करनेवाली स्त्रियों व बच्चों की समस्याओं को अपनाया। कलकत्ता में ब्रह्म समाज के अन्तर्गत सन् १८७८ में 'कामगर मिशन' स्थापित हुआ। बम्बई में सन् १८९० में साप्ताहिक अवकाश की मांग के सिलसिले में श्री लोखंडे ने मिल कर्मचारी समाज बनाया। सन् १८९७ में भारत और बर्मा के रेलवे कर्मचारियों की सम्मिलित संस्था स्थापित हुई। इनके अलावा, दूसरे उल्लेखनीय संघों के नाम हैं—प्रिन्टर्स यूनियन, कलकत्ता (१९०५); बम्बई पोस्टल यूनियन (१९०७) और कामगार हितवर्द्धक सभा (१९१०)। इन सभी संघों का कार्य बहुत अंशों तक भाईचारा जैसा ही था, मोर्चेबन्दी का नहीं, क्योंकि उस समय उनके सदस्यों को वैधानिक संरक्षण प्राप्त न था। ब्रिटेन की आम अदालतों की नकल करते हुए भारतीय अदालतें भी उन संघों को अवैधानिक षड्यंत्र समझती थीं तथा उनके नेताओं को मालिकों के काम में दखल देने से रोके हुए थीं।

मजदूर संघ आन्दोलन की सच्ची शुरुआत बहुत देर में, प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान तथा उसके बाद, हुई। इसके निम्नलिखित अनेक कारण थे :

(१) लड़ाई के जमाने में चीजों के दाम उत्तरोत्तर ऊंचे हो रहे थे, किन्तु मजदूरी उसके अनुपात से नहीं बढ़ रही थी। मालिक लम्बे मुनाफे कमा रहे थे और मजदूरों की दशा निरन्तर गिर रही थी। इस स्थिति ने संगठित श्रम-शक्ति के निर्माण को प्रोत्साहित किया। (२) विश्वव्यापी युद्ध ने भारतीय जनता में वर्ग-चेतना जागरूक की। युद्ध से लौटे हुए लोगों ने, विदेशी श्रमिकों की श्रम करने की दशाओं के मुकाबले भारतीय स्थितियों की शिकायतें कीं। फलस्वरूप, श्रमिकों के संघ संगठित हुए। (३) सन् १९१७ की बोलेशविक क्रांति और उसके बाद सोवियत रूस में किसानों व मजदूरों के शासन की स्थापना ने श्रमिकों में नए आदर्शों और आकांक्षाओं का सृजन किया। (४) सन् १९१९ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की भारतीय सदस्यता ने देश के सबसे बड़े मजदूर संघ को उसके वार्षिक सम्मेलन में अपना प्रतिनिधि भेजने का अवसर प्रदान किया। प्रतिनिधि सरकार द्वारा नामजद होते थे, किन्तु उनकी सिफारिश श्रमिक संघों द्वारा की जाती थी। इस बात ने भी मजदूर संघ-आन्दोलन को प्रोत्साहित किया। (५) राष्ट्रीय आन्दोलन ने मौजूदा श्रमिक अशांति को उत्तेजित करने के साथ ही स्वेच्छा से काम करनेवाले अनेक उत्साही कार्यकर्त्ताओं को इस क्षेत्र में भेजा। महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलने वाले असहयोग आन्दोलन ने जनता में अधिकारियों को चुनौती देने का साहस प्रदान किया।

इन्हीं सब कारणों ने मिलकर कई श्रमिक संघों को जन्म दिया। सन् १९१८ में श्री वी. पी. वाडिया ने मद्रास की बकिंघम और कर्नाटक मिल के मजदूरों को "मद्रास श्रमिक संघ" के अन्तर्गत संगठित किया। दूसरे औद्योगिक केन्द्रों ने अनुसरण किया और सन् १९१९ से १९२३ तक बीसों मजदूर संघ बन गए। सन् १९२० में महात्मा गांधी ने अहमदाबाद में बुनकरों और कताई करने वालों का एक आदर्श संघ स्थापित किया। विभिन्न संघों में समवाय-संबंध के स्थापित करने का आन्दोलन काफी पहले से शुरू हो चुका था। सन् १९२० में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस—विभिन्न मजदूर संघों के राष्ट्रीय महासंघ—का जन्म हुआ। भारत के सभी प्रदेशों के मजदूर संघों में परस्पर सहयोगात्मक सम्बन्ध स्थापित करना तथा भारतीय श्रमिक के आर्थिक और सामाजिक हितों को प्रोत्साहित करना इस संगठन का उद्देश्य था।

मजदूर संघ कानून

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मजदूर संघ संबंधी कानून की अनुपस्थिति में, संघ के कार्यकर्त्ताओं व नेताओं को मजदूर संघ की परिभाषा, उसके कर्तव्य एवं अधिकार-क्षेत्रों, मालिकों द्वारा उसकी स्वीकृति, आदि संबंधी प्रश्नों पर बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। नेताओं के सतत प्रयत्न के फलस्वरूप, १९२६ में 'भारतीय ट्रेड यूनियन कानून' पास हुआ। इस कानून द्वारा श्रमिक संघों की सविधि रजिस्ट्री होने लगी। रजिस्टर्ड श्रमिक संघ की हैसियत वैधानिक मानी गयी और उन्हें श्रम संबंधी झगड़ों के सिलसिले में कुछ सुविधाएँ भी प्राप्त हो गईं। श्रमिक संघों की निधि पर उसने जो प्रतिबन्ध लगाये, उनका उद्देश्य यह था कि गैर-जिम्मेदार लोगों से उसकी सुरक्षा हो सके। सन् १९४७ का संशोधित कानून, जिसके अन्तर्गत मालिकों द्वारा यूनियन के प्रतिनिधियों को मान्यता देने की अनिवार्यता की व्यवस्था है तथा जिसमें मालिकों तथा रजिस्टर्ड श्रमिक संघों के अनुचित कार्यों की एक सूची भी दी गई है, अभी तक लागू नहीं किया गया है। सरकार का विचार है कि श्रमिक संघों को मान्यता देने का कार्य स्वेच्छा पर छोड़ा जाना चाहिए, अन्यथा श्रमिक संघ आन्दोलन की प्रगति में आए दिन रोड़े अटकते नजर आएँगे।

शुरू में बहुत कम संघों ने अपने-आपको रजिस्टर्ड कराया, क्योंकि वे उसके खर्च को बर्दाश्त करने तथा कानून की व्यवस्था के अनुसार अपनी वार्षिक रिपोर्टें भेजने को तैयार न थे। किन्तु शीघ्र ही यह प्रवृत्ति बदल गई और श्रमिक संघ अपने आपको रजिस्टर कराने लगे। प्रांतीय स्वायत्त शासन के जमाने में रजिस्टर्ड मजदूर संघों को प्रांतीय विधान सभाओं में विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया। इसने श्रमिक संघों की रजिस्ट्री को काफी प्रोत्साहित किया। उधर मालिकों ने बिना रजिस्टर्ड हुए संघों की ओर उदासीनता बरती। इन सब बातों की वजह से सभी श्रमिक संघ अपने-आपको तेजी के साथ रजिस्टर कराने लगे।

सन् १९२६ तक कम्युनिस्टों ने इस आन्दोलन में काम करना शुरू कर दिया था। उन्होंने उसकी कार्यवाहियों में राजनीति का समावेश किया। संगठन विभिन्न सैद्धांतिक आदर्शों को मानने वाले दलों का अखाड़ा सा बनने लगा। अपनी मोर्चेबाज प्रवृत्ति की वजह से उन्हें औद्योगिक केन्द्रों में अनुगामियों का बहुमत प्राप्त हुआ। वे अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर पूरी तरह छा गये, यद्यपि वह उस समय उन पुराने उदार नेताओं के हाथमें ही थी जो उसे राजनीति से अलग रखना चाहते थे। यह संघर्ष अपनी उच्चतम सीमा पर अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में (सन् १९२९) में पहुँचा, जब श्री जवाहरलाल नेहरू उसके अध्यक्ष हुए थे और व्हाइटले-श्रम-कमीशन के बाइकाट और अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस को पैन पैसिफिक ट्रेड यूनियन सेक्रेटैरियट जैसे साम्यवादी संगठन में मिला देने के प्रस्ताव सामने आए। दोनों ही मसलों पर बहुत थोड़े बहुमत से प्रस्ताव पास हो गए। उदार नेताओं को संगठन से पीछे हटना पड़ा। उन्होंने एक दूसरा प्रतिद्वंद्वी संगठन बनाने का निश्चय किया। इस तरह श्री एम. एम. जोशी के नेतृत्व में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन की स्थापना हुई। अ. भा. ट्रेड यूनियन कांग्रेस कम्युनिस्टों के लिए छोड़ दी गई। सन् १९३१ में जब मजदूर संघ एकता-समिति का निर्माण हुआ, तो दोनों प्रतिद्वंद्वी दलों में समझौता कराने का प्रयत्न किया गया, किन्तु दोनों के बीच की खाई को सच्चे अर्थों में श्री वी. वी. गिरि, जो उस समय मद्रास के श्रम-मंत्री थे, के सद् प्रयत्नों ने ही बहुत कुछ पाटा। आन्दोलन की दो शाखाएँ एक बार पुनः मिल गईं।

किन्तु वह एकता ज्यादा दिन न चल सकी। एक वर्ष बाद ही विश्व-महायुद्ध का सूत्रपात हुआ और ट्रेड यूनियन कांग्रेस के कार्यकर्त्ता और पदाधिकारियों में पुनः मतभेद हुआ। यह मतभेद युद्ध सबंधी प्रयत्नों के सिलसिले में था। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने युद्ध के प्रति तटस्थता की नीति अपनाई, क्योंकि रूस उस समय ब्रिटेन के विरुद्ध और युद्ध से बाहर था तथा भारतीय कम्युनिस्ट युद्ध को साम्राज्यवादी युद्ध की संज्ञा देकर उसमें सहयोग न देने के नारे लगा रहे थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भी महसूस कर रही थी कि उसे भी युद्ध से कोई मतलब नहीं रखना चाहिए। किन्तु एम. एन. राय के नेतृत्व में रायवादी लोग युद्ध में सरकार की पूरी सहायता करने का प्रचार कर रहे थे। उन्होंने अपना एक दूसरा संगठन बनाया। बाद में जब रूस ब्रिटेन की ओर से युद्ध में खिंच आया, तो कम्युनिस्ट भी चिल्लाने लगे कि वह एक जनवादी युद्ध है और उसके साथ सहयोग करना चाहिए। राष्ट्रीय कांग्रेस के चोटी के नेता जेलों में थे। इसलिए मजदूर संगठन के महत्त्वपूर्ण पदों पर क़म्युनिस्ट आरूढ़ हो गए। वे सन् १९४६ तक, यहांतक कि कांग्रेस के शासनकाल में भी, देश के मजदूर आंदोलन पर छाए रहे। लड़ाई के बाद की अनिश्चित दशाओं,

और खाने, कपड़े, महंगाई, आदि से पीड़ित जनता की परेशानियों से लाभ उठाकर जब कम्युनिस्ट लोग देश भर में जगह-जगह हड़तालों का आन्दोलन कर रहे थे, उस समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारतीय मजदूरों को कम्युनिस्ट आदर्शों से बचाने के लिए सच्च अर्थो में राष्ट्रीय और देशभक्त श्रमिकों के संगठन की अविलम्ब आवश्यकता महसूस की। उसके फलस्वरूप अखिल भारतीयट्रेड यूनियन कांग्रेस से अलग भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का (डा. सुरेशचन्द्र बनर्जी के नेतृत्व में) जन्म हुआ। इस नए संगठन के उद्देश्यों में——सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक शोषण और असमानता, लाभ संबंधी स्वार्थपरता तथा किसी भी रूप में शक्ति के समाज-विरोधी एकत्रीकरण, आदि से श्रमिकों की मुक्ति, उद्योगों को राज्य के स्वामित्व और प्रतिबन्ध में देना, उनमें स्वशासन की स्थापना करना, पूर्ण रोजगार की गारण्टी और श्रमिकों के सामाजिक व राजनीतिक हितों को प्रोत्साहन देना, आदि शामिल हैं।

अहमदाबाद का कपड़ा मजदूर संघ, जो सन् १९२० में महात्मा गांधी की प्रत्यक्ष प्रेरणा से स्थापित हुआ था, उसी महीने भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस में शामिल भी हो गया। इसी बीच कांग्रेस छोड़कर आनेवाले समाजवादियों ने भी अपने दल के सिद्धांत व आदर्शों के आधार पर मजदूरों का अलग अखिल भारतीय संघ बनाया।

मौजूदा स्थिति

सन् १९४७ के पहले मजदूर संघों की आधी कार्यवाहियां सामाजिक और आर्थिक होती थीं और आधी राजनीतिक। अक्सर राजनीतिक कार्यवाहियां आर्थिक और सामाजिक पक्ष को ढक भी लेती थीं, किन्तु आजादी के बाद से मजदूर संघों का कार्य सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में उत्तरोत्तर अधिक प्रगति कर रहा है।

नीचे रजिस्टर्ड मजदूर संघों से सम्बद्ध सन् १९५४ के आवश्यक आंकड़े दिये जाते हैं:

079.258

तालिका १

रजिस्ट्री शुदा श्रमिक संघ तथा उनके सदस्य

	केन्द्रीय संघ	राज्य संघ
	१६५३-५४	१९५३-५४
रजिस्टर पर अंकित संघों की संख्या	१६९	५,८६५
रिपोर्ट प्रस्तुत करने वाले संघों की संख्या	८९	३,२११
रिपोर्ट प्रस्तुत करनेवाले संघों के सदस्यों की संख्या	२,४१,९४२	१२,७१,९५६

तालिका २

अखिल भारतीय संगठनों की सदस्यता

	मातहत संघों की संख्या	सदस्यता
भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (कांग्रेस के नेतृत्व में)	६०६	८,८८,२९१
हिन्द मजदूर सभा (समाजवादियों के नेतृत्व में)	३३१	४,९२,३६२‡
अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (समाजवादियों के नेतृत्व में)	९२५	७,३३,८३६
यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी के नेतृत्व में)	१६९	१,६३,९९७‡
जोड़	२,०३१	२२,७२,४८६

‡ ये संख्याएँ संबंधित दलों द्वारा बताई गयी हैं; इनकी प्रामाणिक जांच उपलब्ध नहीं है। आंकड़े "भारत—१९५७" नामक पुस्तक से दिये गए हैं।

हमारा मजदूर आन्दोलन पश्चिमी देशों की तुलना में अभी बहुत पीछे है। वह अब तक उस स्तर के निकट नहीं पहुँच सका है, जिसे पश्चिम के देश बहुत पहले प्राप्त कर चुके हैं। इसके अनेक कारण हैं।

(१) मजदूरों की बेहद गरीब और कर्ज से दबी हुई स्थिति, जिसकी वजह से चन्दे की छोटी-से-छोटी रकम भी उनके लिए बोझ सिद्ध होती है। जो संघ का पूरा चंदा देते हैं, वे उससे आवश्यकता से अधिक लाभ की आशा करते हैं। वे समझते हैं कि संघ की सदस्यता का अर्थ यह है कि मालिक द्वारा किए गए हर काम के लिए मजदूर संघ जिम्मेदार हो। दूसरी ओर, संघों की शोचनीय आर्थिक स्थिति उसे हड़ताल के जमाने में पर्याप्त रूप से कल्याणकारी तथा आर्थिक सहायता का कार्य नहीं करने देती। वे अपने संघ में ही कुशल वैतनिक कर्मचारी नहीं रख पाते। इसलिए संघ का कार्य बहुत ही बोझिल और असहनीय हो जाता है, जब तक कि उसके करनेवाले स्वतंत्र रूप से अपने निजी प्रसाधनों से उसे न संभालें।

(२) व्यापक अशिक्षा के कारण मजदूर अपने साथियों में से ही नेतत्त्व-निर्माण नहीं कर पाते। मजदूरों के नेताओं में अधिकांशतः बाहरी व्यक्ति होते हैं, जो न तो मजदूरों के प्रति पूरी और पर्याप्त हमदर्दी निभा पाते हैं और न उनकी समस्याओं को को ही भली प्रकार समझ पाते हैं।

(३) जाति, धर्म और भाषा के भेद, जो औद्योगिक केन्द्रों को पास या दूर से निरन्तर प्रभावित करते हैं और मजदूर वर्ग की चेतना के मार्ग में एक बड़ी बाधा बने हुए हैं। उनकी वजह से मजदूर परस्पर निकट नहीं आ पाते और उनकी एकता छिन्न-भिन्न होती रहती है।

(४) भारतीय श्रमिकों की अस्थिरता और खानाबदोशी की स्थिति मजदूर संघों में मजदूरों के हितों के स्थायित्त्व में बाधक है। खदानों, बागानों, मौसमी कारखानों तथा जूट और काटन मिलों के अनेक औद्योगिक मजदूर अपने गांव और खेती-बाड़ी से संबंधित रहते हैं। यह संबंध जितना ही मजबूत होता है, संघों से उनका लगाव उतना ही कम होता है। क्योंकि गांव लौटने पर अक्सर वे अपनी नौकरी खो बैठते हैं और उन्हें दुबारा नई नौकरी ढूंढ़नी पड़ती है।

(५) संघ के अनुशासन को मानने के लिए मजदूर तैयार नहीं होते। गिरे हुए स्वास्थ्य और अधिक समय तक मजदूरी करने के कारण उनमें संघ की कार्यवाहियों में भाग लेने और उसके अनुशासन को मानने की शक्ति नहीं रहती। काम करने की खराब स्थितियों से निराश और दुखी होकर कुछ मजदूर कम्युनिस्ट लक्ष्यों की आकांक्षा करते हैं, जिससे उनके संघों को मालिकों की मान्यता नहीं प्राप्त होती।

(६) भारत में मजदूर संघों को मालिकों के विरोध का सामना करना पड़ता है। एक लम्बे अर्से से उद्योगों के मालिक मजदूरों व उनके नेताओं को अपने चालों का शिकार बनाते आए हैं। प्रतिद्वंद्वी संघों का निर्माण करना, उन्हें आर्थिक सहायताएँ देना, संघों के पदाधिकारियों को घूस देकर मिलाने की चेष्टा करना, आदि अनेक प्रकार की अनीतियां वे अपनाते रहे हैं। कई कच्चे माल की खदानों और बागानों के मालिकों द्वारा अपनी जमीन पर मजदूरों की सभा और मजदूरों की बस्ती में चंदा लेने या प्रचार करने के लिए जानेवाले नेताओं के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाने की घटनाएँ भी सुनी गई हैं।

(७) 'सरदार' और "जाबर" जिन पर अधिकांशतः मजदूरों की रोजी या कर्ज के रूप में समय-समय पर मिलने वाली आर्थिक सहायता आधारित होती है, मजदूर संघों के सख्त विरोधी होते हैं, क्योंकि वे डरते है कि संघ की वजह से मजदूरों पर से उनका प्रभुत्त्व हट जायगा और उनकी गैर-कानूनी आय बन्द न हो जायगी।

(८) मजदूर संघों के नेता भी कभी-कभी पूंजीवादी व्यवस्था को हटाने के नारे लगाकर मालिकों के विरोध को भड़का देते हैं। वे मौजूदा व्यवस्था के भीतर रहकर समझौते की नीति का अनुसरण नहीं करते। उनके लिए यह समझना जरूरी है कि वे केवल वर्ग-द्वेष और वर्ग-संघर्ष को उत्तेजित करके ही एक नई सामाजिक व्यवस्था नहीं ला सकते। मजदूरों के लिए जरूरी है कि प्रवन्धकों के कन्धों से कन्धा मिलाकर काम करें—इस विश्वास के साथ कि बड़े पैमाने पर दोनोंके हित, एक जैसे ही हैं और उन्हें बढ़ावा देने के लिए सहयोग का ही एक रास्ता है।

(९) विभिन्न प्रकार की राजनीतिक विचारधाराएँ मजदूर आन्दोलन के विभिन्न अंगों को प्रभावित करती हैं,

जिससे संघ अपने ही अहित में विभाजित हो जाता है। इसका दूसरा परिणाम यह भी होता है कि असली सवाल और शिकायतें पीछे पड़ जाती हैं। यह भी एक कारण है कि मजदूर संघ की कार्यविधियां मजदूरों को अधिक प्रभावित नहीं कर सकीं।

(१०) संघों की कार्य-प्रणाली में लोकतंत्रीय भावना का अभाव भी है। एक ही संतोषप्रद तरीका है जिसे मजदूर संघों को कायम रखना चाहिए। वह तरीका है शाखाओं की स्वतंत्रता, यद्यपि शाखाओं के स्वप्रबन्ध को उसके उत्तरदायित्वों की सीमा नहीं पार करनी चाहिए।

भावी सम्भावनाएं

औद्योगिक वचनवद्धता के इस युग में, जबकि सरकार इस दिशा में महत्त्वपूर्ण और उत्तरोत्तर अधिक कदम उठा रही है, मजदूर संघों के पुनर्गठन की बहुत आवश्यकता है। जहां तक मजदूर संघों का प्रश्न है, उन्हें चाहिए कि वे क्रियात्मक न होनेवाली मांगों की रट और पारस्परिक द्वेष-भावनाओं को छोड़कर अर्थ-व्यवस्था की गहन कार्य-प्रणाली, उत्पादन, मुद्रास्फीति और अदायगी के संतुलन, आदि को समझते हुए कार्य करें। मालिकों को भी महसूस करना चाहिए कि मजदूर संघ अनेक बातों में उनके उद्योग के लिए लाभदायक ही नहीं, वरन् अनधिकृत अथवा तात्कालिक हड़तालों, आदि से उसकी सुरक्षा भी करता है। सरकार को भी पर्याप्त वैधानिक प्रसाधनों द्वारा एक सच्चे श्रम आन्दोलन को प्रोत्साहित करना चाहिए। अन्त में, मजदूरों के हक में यह समझना जरूरी है कि एक अविकसित अर्थ-व्यवस्था में उच्चतम उत्पादन की आधारशिला पर ही उसका जीवन-स्तर ऊँचा हो सकता है और इसके लिए उसका पर्याप्त सहयोग अपेक्षित है।

अरविन्द का यह चिह्न

उच्चतम कोटि
के
कपड़ों के लिए सुप्रसिद्ध
अरविन्द मिल्स लिमिटेड
नरोदा रोड, अहमदाबाद—२

सफेद बालोंको श्याम बनाने वाला
लोमा
रजिस्टर्ड
• मधुर सुवास देता है,
• दिमाग को ठंडक पहुंचाता है,
• सर्वत्र बिकता है।
B. SHAH
सोल एजन्ट: अेम. अेम. खंभातवाळा
अ हे म दा बा द - १

श्री शंकर घोष

चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन

ऐसे समय में, जब कि दुनिया मुख्तलिफ विरोधी गुटों में विभाजित है, जोकि अपनी महत्ता कायम रखने के लिए एक दूसरे से संघर्षरत हैं, अब एक मात्र यही विकल्प शेष रह गया है कि या तो मानव जाति का समूल विनाश हो जाय या उसका अस्तित्व कायम रहे। यदि भू-परिग्रहों के इस विश्व में एक अन्य महायुद्ध भी छिड़ जाय तो सबसे बड़ी दुखान्त घटना यही होगी कि जगतीतल से जीवन का अस्तित्व लुप्त हो जायगा, जो कि निश्चय ही, मानवता के इतिहास की अपूर्व घटना होगी। मुख्तलिफ विचारधाराओं के बावजूद दुनिया भर के तमाम लोग सिर्फ शान्ति चाहते हैं। इस मकसद को हासिल करने के लिए इस समय उनके दिमाग से भय, शंका और घृणा का उन्मूलन सब से जरूरी है; और राजनीतिज्ञों पर जोकि देशों के भाग्य का निर्धारण करते हैं, यहीं एक बड़ी जिम्मेदारी आती है। इस संकटपूर्ण और सम्भाव्य खतरे से बच निकलने का एकमात्र रास्ता सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को मंजूर कर लेना और सभी झगड़ों को तय करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन करना है।

द्वितीय महायुद्ध के पहले वाले वर्षों में सभी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का सम्बन्ध पश्चिमी देशों से होता था; उनमें इन्हीं देशों की प्रधानता होती थी। इस मामले में पूर्व के देशों की कोई आवाज नहीं थी, उनको कुछ महत्व नहीं दिया जाता था। लेकिन युद्ध के बाद के वर्षों में एशिया को राजनीतिक आजादी मिल जाने से जो महान चेतना पैदा हुई है, उसने कुछ-एक अपवादों को छोड़कर प्रायः सभी एशियाई देशों के बीच, जिन्होंने वर्षों की लड़ाई और बलिदान के बाद अपनी भूमि से विदेशी शासन के बन्धन तोड़ फेंके, एक जबर्दस्त एकता और दृढ़ता की भावना को जन्म दिया है। एक सम्मिलित शक्ति के रूप में एशिया के उद्भव ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अखाड़े में तहलका मचा दिया और पश्चिम ने पहली बार यह महसूस किया कि दुनिया की कोई भी ताकत इस शक्ति को दबा नहीं सकती। तभी से एशिया में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन हुआ और इस मामले में भारत भी किसी तरह पिछड़ा न रहा। इधर हाल के वर्षों में इस देश में इस तरह के कई सम्मेलन हुए हैं। इन सम्मेलनों का एक सब से उल्लेखनीय परिणाम यह हुआ है कि पूर्व और पश्चिम के देशों के बीच एक दूसरे की सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं की गहरी जानकारी बढ़ती गयी, जिससे दुनिया के तनावों को कम करने में काफी मदद मिली है।

इसी पृष्ठभूमि में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम, संगठन का चतुर्थ एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन गत १३ से २५ नवम्बर १९५७ को नयी दिल्ली में हुआ। यहां पर यह स्मरणीय है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का प्रथम एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन भी १९४७ में भारत में ही हुआ था, जबकि दूसरा और तीसरा सम्मेलन श्रीलंका और जापान में क्रमशः १९५० और १९५३ में आयोजित हुआ था।

सम्मेलन में भाग लेने वाले राष्ट्र

इस सम्मेलन में निम्नलिखित १९ देशों की सरकारों, मालिकों और मजदूरों के त्रिपक्षीय प्रतिनिधियों ने भाग लिया: आस्ट्रेलिया, बर्मा, श्रीलंका, चीन, फ्रांस संघ, हांगकांग, भारत, इण्डोनेशिया, जापान, मलाया संघ, न्यूजीलैण्ड, पाकिस्तान, फिलिप्पाइन्स, पुर्त्तगाल, सिंगापुर, सोवियत रूस, ब्रिटेन, सं० रा० अमरीका, और वियतनाम। नेपाल और नीदरलैण्ड के प्रतिनिधि-मण्डल भी दर्शक की हैसियत से सम्मेलन में उपस्थित थे। इनके अलावा, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की प्रबंध-संस्था, सं० रा० संघ, अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य और कृषि संगठन, यूनेस्को, विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ समिति के प्रतिनिधि भी सम्मेलन में उपस्थित थे। इस प्रकार, २१ देशों के १८७ प्रतिनिधि, परामर्शदाता और दर्शक सम्मेलन में उपस्थित थे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के डाइरेक्टर जनरल ने घोषणा की कि मलाया संघ भी इस संगठन का ७९वां सदस्य बना लिया गया है। सम्मेलनन में इस पर काफी हर्ष प्रदर्शन हुआ।

श्री नेहरू का भाषण

प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए श्री नेहरू ने कहा : "मैं अपनी सरकार की ओर से इस दिल्ली नगर में आप सब का स्वागत करता हूं और आशा करता हूं कि आप का श्रम ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय मार्ग प्रशस्त करेगा, जिनसे हमारे सब देशों की जनता का कल्याण होगा।" उन्होंने अपने भाषण में एशिया के अर्द्ध-विकसित देशों के सामने पेश मुख्तलिफ समस्याओं पर रोशनी डाली। विश्व-शान्ति कायम रखने के प्रश्न पर उन्होंने कहा: "जब आप शीत युद्ध, घृणा, सन्देह, भय और आशंका के वातावरण में, और सब से ऊपर, यह सोचते हुए रह रहे हैं कि कहीं दूसरा दल कामयाब न हो जाय, तो सरकार की बात अलग रही, कोई मूर्ख, पाखण्डी या उत्तेजित व्यक्ति भी कुछ ऐसा काम कर सकता है, जो कि दूसरे पक्ष को आक्रमण या ऐसा कार्य प्रतीत हो सकता है जिसको रोकना जरूरी होगा; फिर, कदम-कदम आप अचानक उस भयंकर संघर्ष में फंस जायंगे जिससे पीछे हटना मुश्किल होगा। . . . इससे बचने का एकमात्र रास्ता इस शीत युद्ध के वातावरण से निकल बाहर होने की कोशिश करना ही है, ताकि किसी पागल के कार्य भी दुनिया में उथल-पुथल पैदा न कर सकें।" अन्त में, श्री नेहरू ने कहा : "हमारे नेता महात्मा गांधी ने एक बार कहा था कि उनके जीवन का उद्देश्य प्रत्येक दुखिया की आंख से आंसू की हर एक बूंद को पोंछना है।" उन्होंने आगे कहा : "जैसा कि बुद्ध ने कहा है : 'मनुष्य की आंखों से इतना आंसू बहा है जो सप्त महासागरों के पानी से भी अधिक है।' भूतकाल में मानवता के भाग्य में यही बदा था—युगों से लक्ष-लक्ष मानव प्राणियों के भाग्य में कष्ट ही कष्ट भोगना था।"

विचाराधीन विषय

उसके बाद सम्मेलन की बैठकों में क्रम से निम्नलिखित विषयों पर चर्चा हुई : (अ) एशियाई देशों में दस्तकारी और लघु उद्योगों की श्रम और सामाजिक समस्याएं; (ब) बटाईदारों, काश्तकारों, किसानों तथा खेती में संलग्न स्वतंत्र और अर्द्ध-स्वतंत्र मजदूरों के ऐसे ही वर्गों के जीवन और कार्य की दशाएं; और (स) श्रमिक-प्रबन्धकर्त्ता सम्बन्ध। इसके अलावा, सम्मेलन के सामने विचारार्थ पहले की ही भांति अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के डाइरेक्टर जनरल की रिपोर्ट भी थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय ने कार्यक्रम में शामिल तीनों विषयों पर रिपोर्टें पेश कीं।

डाइरेक्टर जनरल ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि एशियाई और अधिक विकसित देशों के रहन-सहन के स्तरों के बीच का अन्तर पिछले कुछ वर्षों के भीतर काफी बढ़ गया है। किन्तु एशियाई देशों में आर्थिक और सामाजिक विकास जारी है और इससे इस क्षेत्र के प्रत्येक देश के लोगों के जीवन में धीमी किन्तु स्पष्ट तब्दीली आ रही है।

डाइरेक्टर जनरल की रिपोर्ट और उपर्युक्त तीनों सवालों पर विचार-विमर्श करने के विचार से सम्मेलन में तीन प्राविधिक समितियां बना दी गयीं।

श्रमिक-प्रबन्धकर्त्ता सम्बन्ध

सम्मेलन ने अपनी श्रमिक-प्रबन्धकर्त्ता समिति की रिपोर्ट स्वीकार कर ली। समिति ने यह राय जाहिर की कि उच्चतर औद्योगिक उत्पादन के लिए, जिसके जरिये एशियाई लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा किया जा सकता है, एकमात्र साधन अच्छा श्रमिक-प्रबन्धकर्त्ता सम्बन्ध है। इस तरह का सामंजस्य सामूहिक सौदेबाजी के जरिये तथा सरकारी संस्थाओं के साथ श्रमिकों और मालिकों के संगठनों का सम्बन्ध कायम करके उत्पन्न किया जा सकता है।

समिति ने आगे कहा कि कुछ एशियाई देशों में श्रमिकों और प्रबन्धकर्त्ताओं के बीच सम्बन्ध खराब होने की वजह मजदूर-संघों की कमजोरी तथा विरोधी मजदूर संघों की बहुलता रही है। राजनीतिक और व्यक्तिगत उद्देश्यों से मजदूर-संघों के माध्यम का इस्तेमाल करने से स्थिति और भी खराब हो गयी। इस क्षेत्र के कुछ हिस्सों के श्रमिकों के जोकि अधिकांशतः ग्रामीण क्षेत्रों से आते हैं, औद्योगिक जीवन के अनुभवों की कमी होती है, जिससे कुछ मालिक उनके संघों को मान्यता प्रदान नहीं करते।

प्राविधिक समिति के सुझाव

समिति ने इन कमियों को दृष्टिगत रख कर, अपनी रिपोर्ट में सुझाव दिया कि सरकारों को चाहिये कि वे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के ८७वें तथा ९८वें नियमों के मुताबिक, जिनमें इन समस्याओं पर विचार किया गया है, ऐसे कानूनी उपाय अपनायें जो कि शक्तिशाली, जिम्मेदार और क्षमतापूर्ण औद्योगिक संगठनों की स्थापना और विकास के अनुकूल हों। उसने यह सुझाव भी दिया कि औद्योगिक संगठनों का संचालन उद्योग की मानवीय समस्याओं को ध्यान में रख कर क्षमता के साथ होना चाहिए। उसने इस बात पर जोर दिया कि मजदूर संघों के नेताओं का चुनाव मजदूरों में से ही होना चाहिये। इसके अलावा, पारिवारिक बजट तथा रहन-सहन की लागत के आंकड़े एकत्र करने तथा संयुक्त परामर्शदाता मण्डलों की स्थापना को प्रोत्साहन देने जैसे उपाय भी अपनाये जाने चाहिए। समिति ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन से सिफारिश की कि यह एशियाई देशों के निजी क्षेत्रों और राष्ट्रीयकृत उद्योगों में औद्योगिक सम्बन्धों का अध्ययन कराये और श्रमिक-प्रबन्धकर्त्ता समस्याओं के अनुभवी प्रबन्धकर्त्ताओं तथा मजदूर संघ के प्रतिनिधियों का दल अर्द्ध-विकसित देशों में अल्पकालीन अवधि के लिए अपने-अपने पक्षों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से भेजने में सरकारों की मदद करे।

कुटीर-उद्योगों की श्रमिक और सामाजिक समस्याएं

कुटीर उद्योगों की श्रम और सामाजिक समस्याओं सम्बन्धी समिति की रिपोर्ट को भी सम्मेलन ने स्वीकार कर लिया। रिपोर्ट में कहा गया है कि एशियाई देशों के छोटे उद्योगों में मजदूरी और श्रम सम्बन्धी स्थितियां आमतौर पर बड़ पैमाने के उद्योगों की अपेक्षा बहुत ही असन्तोषजनक हैं। छोटे उत्पादकों का न्यून शुद्ध-उपार्जन, श्रमिकों में संगठन की कमी तथा मौजूदा श्रम-कानूनों का व्यवहार में न लाना या प्रभावहीन तरीके पर लागू करना ही इस स्थिति के प्रमुख कारण थे। अतः समिति ने सुझाव दिया कि काम की दशा, मजदूरी की दर, समय से अधिक काम, सवेतन छुट्टी, मातृत्व लाभ, आदि के बारे में संरक्षात्मक कानून बनाये जाने चाहिये। नमूने के कारखानों, आदर्श योजनाओं और औद्योगिक संस्थानों की स्थापना का भी सुझाव दिया गया। महिलाओं को घरेलू काम-काज के अलावा आंशिक रोजगार देने के उद्देश्य से समिति ने सुझाव दिया कि उनके लाभ के लिए शिशु-केन्द्र, सामुदायिक भोजनालय, सस्ते कैण्टीन, आदि की स्थापना की जानी चाहिये।

मजदूरों से विशेष रूप से अनुरोध किया गया कि वे अपनी एकता और दृढ़ता बढ़ायें, तथा औद्योगिक सहकारी समितियों के विकास के लिए, जिसमें मालकियत मजदूरों की ही होती है, और कमाया गया मुनाफा उनमें ही बांट दिया जाता है, प्रयत्न करें। समिति ने आगे कहा कि सस्ती दर पर ऋण तथा कच्चे माल की पूर्त्ति, क्रय-विक्रय, मशीन और औजार की खरीद की सुविधाएं बढ़ायी जायं।

एक अन्य प्रस्ताव द्वारा समिति ने सुझाव दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन छात्रवृत्तियां देकर प्राविधिक सहायता प्रदान करे, ताकि इन उद्योगों के सम्मुख पेश उत्पादन, पूंजी और व्यापार सम्बन्धी समस्याएं सुलझाई जा सकें।

कृषि का विकास

सम्मेलन ने कृषि सम्बन्धी समिति की रिपोर्ट भी स्वीकार कर ली। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में खेतिहर मजदूरों के काम और रहन-सहन की दशाओं के बारे में कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये हैं। उसके प्रमुख सुझाव ये हैं: (१) जमीन जोतने वाले का ही जमीन पर स्वामित्व भी होना चाहिये; (२) काश्तकारों के पेशे, पट्टे, और धंधे की सुरक्षा को बढ़ावा दिया जाना चाहिये; (३) स्थायी मौरूसी अधिकार दिये जायं; और (४) बिना मजदूरी की सेवा की परम्पराओं, जैसे भेंट, आदि को खत्म कर देना चाहिये। इसके अलावा, समिति ने यह सुझाव दिया कि ग्रामीण दस्तकारियों और उद्योगों का विकास करना चाहिये, ताकि किसानों को सहायक धंधे और पेशे सम्बन्धी प्रशिक्षण प्राप्त हो सके।

सम्मेलन ने सोवियत रूस के प्रतिनिधि मण्डल द्वारा पेश एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें यह आशा प्रगट की गयी थी कि एशियाई देश अपने यहां मजदूर संघों और मालिक संगठनों के प्रतिनिधियों को निमंत्रित करेंगे, जोकि उन्हें आर्थिक विकास कार्यक्रमों को समझाने, इन्हें कार्यान्वित करने के लिए उपाय निकालने तथा श्रम सम्बन्धी कानून बनाने में उनकी मदद करेंगे।

१३ दिनों के विचार-विमर्श के बाद सम्मेलन समाप्त हुआ। सम्मेलन की कार्यवाही शान्तिपूर्ण ढंग पर सम्पन्न हुई। केवल एक मौके पर भारतीय प्रतिनिधि मण्डल ने चीन गणतंत्र को अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन में शामिल होने के लिए विशेष जोर दिया। लेकिन उसे सम्मेलन ने स्वीकार नहीं किया।

आर्थिक-समाचार-संकलन

भारतीय

भारत में कच्चे लोहे का भण्डार और इस्पात उत्पादन

यद्यपि कच्चे लोहे के उपलब्ध भंडारों में भारत का स्थान केवल ब्राजील के बाद आता है, तथापि उसका उत्पादन कुल विश्व-उत्पादन का केवल दो प्रतिशत ही है, जबकि अमरीका का ४३ प्रतिशत और रूस का १८ प्रतिशत है।

भारत में प्रतिवर्ष १५ लाख टन से कुछ ही कम इस्पात बनाया जाता है, जबकि ब्रिटेन में १७० लाख टन और अमरीका में १,००० लाख टन। भारत में प्रति व्यक्ति इस्पात की खपत केवल ११ पौंड है, जबकि यह अमरीका में १,२३७ पौंड, ब्रिटेन में ६२८ पौण्ड, आस्ट्रेलिया में ५४० पौंड और इटली में १३७ पौण्ड है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस्पात उत्पादन को बढ़ाने पर विशेष बल दिया गया था और उत्पादन क्षमता का लक्ष्य १६,५०,००० टन निर्धरित किया गया। १९५०-५१ में उत्पादन केवल १०,१०,००० टन था। प्रथम योजना के अन्त तक सरकार ने यह निश्चय ले लिया कि तीन इस्पात कारखाने—भिलाई, रूरकेला और दुर्गापुर में स्थापित किये जायंगे। प्रत्येक की उत्पादन क्षमता १० लाख टन होगी।

सितम्बर १९५७ में देश में ३,७३,७९४ टन खनिज लोहे का उत्पादन हुआ, जबकि अगस्त में, ३,४१,३९६ टन खनिज लोहे का उत्पादन हुआ था। खानों के मुख्य निरीक्षण से ९५ खानों के बारे में जो ब्योरा प्राप्त हुआ है, उसके अनुसार सितम्बर में, २,५८,८५० टन खनिज लोहा इस्पात और लोहे के कारखानों को भेजा गया और ८८,३४३ टन लोहा विदेशों को भेजा गया। महीने के अन्त में १३,३२,७११ टन खनिज लोहा जमा रहने का अनुमान था।

खनिज मेंगनीज और लोहे का अधिक निर्यात

इस साल के पहले छः महीनों में खनिज मेंगनीज और लोहे के निर्यात से १२२ करोड़ रु. की विदेशी मुद्रा की कमाई हुई। पिछले साल १९५६ में कुल ३३.३ करोड़ रु. के ये दो खनिज पदार्थ बाहर भेजे गये थे। जनवरी से जून १९५७ की इस छमाही में १५.९ करोड़ रु. के मूल्य का ८ लाख ४० हजार टन खनिज मेंगनीज बाहर भेजा गया, जबकि १९५६ में २३.११ करोड़ रु. का १४.५८ लाख टन मेंगनीज विदेश गया। १९५५ में १४.४ करोड़ रु. के १२.३ लाख टन खनिज मेंगनीज का निर्यात हुआ।

इसी अवधि में, यानी १९५७ की पहली छमाही में, भारत से ६.०९ करोड़ रु. के मूल्य का ११.७ लाख टन खनिज लोहा बाहर भेजा गया। १९५६ में १०.२ करोड़ रु. का १९.८२ लाख टन और १९५५ में ५.६२ करोड़ रु. का १२.८८ टन खनिज लोहा बाहर भेजा गया था।

भारतीय मेंगनीज का सबसे बड़ा खरीदार अमरीका है। इस साल की पहली छमाही में उसने ३ लाख ९२ हजार टन खनिज मेंगनीज भारत से खरीदा। पिछले साल उसने ६ लाख ३८ हजार टन खनिज मेंगनीज का भारत से आयात किया था। भारत का खनिज मेंगनीज खरीदने वालों में अमरीका के बाद, फ्रांस, जापान, नीदरलैण्ड, ब्रिटेन, बेंल्जियम, इटली, बेल्जियम, प. जर्मनी और पू. जर्मनी भी उल्लेखनीय है।

भारत के खनिज लोहे का सबसे बड़ा ग्राहक जापान है। इस साल के पूर्वार्द्ध में जापान को ६ लाख ७० हजार टन खनिज लोहे का निर्यात हुआ। जापान के अलावा, चेकोस्लोवाकिया पोलैण्ड, यूगोस्लाविया, प. जर्मनी और नीदरलैण्ड भी भारत से खनिज लोहा खरीदते हैं। इटली भारत के खनिज लोहे का नया खरीदार बना है और भारत के राज्य व्यापार निगम के साथ उसने १ लाख ७५ हजार टन खनिज लोहे खरीदने का करार किया है।

भारत में सहकारिता आंदोलन

योजना आयोग ने देश में सहकारिता आन्दोलन को प्रोत्साहन देने पर विशेष जोर दिया है। कुछ ही वर्षों में भारत में सहकारिता आन्दोलन ने बहुत प्रगति की है। पिछले तीन वर्षों (१९५३ से १९५६) में सहकारी समितियों के सदस्यों की संख्या लगभग ५२ प्रतिशत, उसकी चुकता पूंजी ७०

प्रतिशत, चालू पूंजी ६१ प्रतिशत और सम्पत्ति तथा कारोबार में लगी हुई पूंजी ९० प्रतिशत बढ़ गयी है । रिजर्व बैंक ने सहकारी ऋण समितियों की पूंजी बढ़ाने के लिये ५ करोड़ रु. दिया । रिजर्व बैंक ने राज्य सहकारी संघों, केन्द्रीय सहकारी बैंकों और केन्द्रीय सरकार को मध्य अवधि के लिए ५ करोड़ रु. ऋण के रूप में दिया ।

रिजर्व बैंक सहकारी संस्थाओं के मार्फत लोगों को माल के उत्पादन तथा उसकी बिक्री के लिए थोड़ी अवधि के लिये ऋण देता है । इसके लिये वह एक साल में ४० करोड़ का ऋण देता है । इसके अलावा, ऋण समितियां इसके लिये अपनी ओर से लोगों को हर साल ३५ करोड़ रु. का और ऋण देती है ।

सहकारिता विकास मण्डल ने १ करोड़ से अधिक रु. खर्च किया है । उन्हें गोदाम बनाने तथा गोदाम बनाने वालों को आर्थिक सहायता देने के लिये १ करोड़ रु. का अनुदान दिया गया है । रिजर्व बैंक सहकारी समितियों के कर्मचारियों की ट्रेनिंग में बहुत दिलचस्पी लेता रहा है । इसके लिये रिजर्व बैंक ने इन समितियों को १ करोड़ रु. से भी अधिक धन आवर्तक खर्च के रूप में दिया है । इसके अलावा इनकी ट्रेनिंग के लिए रिजर्व बैंक की अपनी योजनाएं भी है, जिनके ऊपर रिजर्व बैंक ने अब तक लगभग ५० लाख रु. खर्च किया है ।

कोयला निकालने का कार्यक्रम

दूसरी पंचवर्षीय योजना में सरकारी क्षेत्र में १ करोड़ २० लाख टन कोयला निकालने का कार्यक्रम है । इसमें से योजना के आरम्भ में सरकारी कोयला खानों से ३३ लाख ७० हजार टन और सिंगरेनी कोयला खानों से ११ लाख ५० हजार टन कोयला निकाला जायगा । सिंगरेनी कोयला खान आंध्र प्रदेश सरकारकी हैं

बाकी कोयला नयी खानों से निकाला जायगा, जिनके नाम इस प्रकार हैं :

कोरबा	२६ लाख टन
कथारा	१० हजार टन
कर्णपुर	
(अ) गिदी क्षेत्र	१५ लाख टन
(आ) बछरा सौंदा	६ लाख टन
कौरिया	१० लाख टन
बिसरामपुर	१० लाख टन
कुल	७७ लाख टन

सरकारी क्षेत्र में कोयले का उत्पादन बढ़ाने के लिए निम्नलिखित कार्य किये गये हैं : (१) खुदाई––कथारा-कोरबा के पूर्वी भाग गिद्दी और सौंदा (कर्णपुर) क्षेत्रों में खुदाई का काम प्रायः पूरा हो चुका है और बिसरामपुर, कोरिया तथा कौरबा के पश्चिम भाग में खुदाई हो रही है । (२) यंत्र और मशीन––लगभग डेढ़ करोड़ रु. के यंत्र और मशीनें आ चुकी हैं और ५ करोड़ रु. की यंत्र और मशीनों का आर्डर दिया जा चुका है । (३) कोयला क्षेत्र (अधिग्रहण और विकास) अधिनियम, १९५७––यह अधिनियम जून, १९५७ में लागू कर दिया गया था । इस अधिनियम की धारा ९ के अन्तर्गत कथारा क्षेत्र की कुछ जमीन प्राप्त करने के लिए अधिसूचना भेज दी गयी और अन्य क्षेत्रों को प्राप्त करने के लिए जांच करने के बाद अधिसूचनाएं भेज दी जायंगी । (४) अनेक वर्तमान और नयी खानों के बारे में योजना के प्रतिवेदन तैयार किये जा चुके है । अन्य के बारे में जांच की जा रही है । (५) कोयला खानों का काम––कोरबा क्षेत्र में प्रायोगिक रूप में कोयला निकालने का काम शुरू कर दिया गया है । दूसरी खानों में भी मार्च १९५८ तक कोयला निकाला जाने लगेगा । (६) कोयला साफ करने का कारखाना––बुकारों करगली कोयला खानों में कोयला धोने का एक कारखाना लगाया जा रहा है । जो मार्च १९५८ से चालू हो जायगा । (७) प्रशिक्षण केन्द्र––छोटे शिल्पिक कर्मचारियों को काम सिखाने के लिए चार कोयला खोनों के निकट प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये हैं ।

भारत में मकान बनाने की योजना

दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में गन्दी बस्तियों की सफाई के लिए २० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी है । इन गन्दी बस्तियों की सफाई हो जाने पर यहां मकान बनाने के १,१०,००० प्लाट तैयार हो जायेंगे । इसके लिए केन्द्रीय सरकार १५ करोड़ रु. का ऋण तथा अनुदान के रूप में देगी तथा राज्य सरकारें ५ करोड़ रुपये अनुदान के रूप में देंगी । केन्द्रीय सरकार अपने हिस्से में से राज्यों को ११ करोड़ १४ लाख रुपये का वितरण कर चुकी है और बाकी रकम का वितरण शीघ्र ही किया जाएगा ।

अगस्त १९५७ तक औद्योगिक मजदूरों के लिए मकान बनाने की योजना के अन्तर्गत २५ करोड़ ३३ लाख रुपये मंजूर किया गया और ६३,४५३ मकान बनाये गये। इसी अवधि तक कम आय वालों के लिए मकान बनाने की योजना के अन्तर्गत १३,५१२ मकान बन चुके थे तथा १३,१६८ मकान बनाये जा रहे हैं। इस योजना के अन्तर्गत अभी तक राज्य सरकारों को १८ करोड़ ४९ लाख रु० दिया जा चुका है। बगीचों के मजदूरों के लिए मकान बनाने की योजना अप्रैल १९५६ में चालू की गई थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में इसके लिए २ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

कपास के उत्पादन और खपत में निरन्तर वृद्धि

भारत में १९५६-५७ में कपास की ५१ लाख २० हजार गांठों का उत्पादन हुआ। यह उत्पादन १९५५-५६ के उत्पादन से ४ लाख २० हजार गांठ अधिक है। इस अवधि में मिलों में भारतीय कपास की खपत बढ़कर ४६ लाख गांठ हो गयी, जबकि पिछले साल मिलों में ४३ लाख ७० हजार गांठों की खपत हुई थी। इस साल मिलों में विदेशी कपास की गांठों की खपत में वृद्धि नहीं हुई और इस साल भी पिछले साल की तरह विदेशी कपास की ६ लाख गांठों की खपत हुई।

भारत में १'' से १-१।१६'' तक लम्बी रेशे वाली कपास की १ लाख ५० हजार गांठों का उत्पादन हुआ। इन सभी कपास की गांठों की खपत देश की मिलों में हुई। इस कारण उतनी ही लम्बे रेशे वाली कपास विदेशों से कम मँगानी पड़ी। भारत सरकार लम्बे रेशे की कपास के उत्पादन की वृद्धि करने का निरन्तर प्रयत्न कर रही है, जिससे विदेशों पर कम से कम निर्भर रहना पड़े। किन्तु काफी मात्रा में मिस्र और सूडान की कपास की किस्में मँगाना अब भी जरूरी है, क्योंकि ये ऐसी किस्मों की कपासें हैं कि भारत की मिट्टी और जलवायु में इनका उत्पादन अभी यहां नहीं किया जा सकता है।

देश भर में अनाज के गोदाम

देश में नाज की कमी को ध्यान में रखते हुए उसे सुरक्षित रखने की बड़ी आवश्यकता है। इसलिए, दूसरी योजना में केन्द्रीय गोदाम-निगम देश भर में १०० गोदाम खोलेगा। इन गोदामों में ५,००० टन से लेकर २०,००० टन तक अनाज रखा जा सकता है। इसी प्रकार, १३ राज्य-निगम मिलकर २०० गोदाम खोलेंगे, जिनमें २,००० टन से लेकर १०,००० टन तक माल रखा जा सकता है। इन सभी गोदामों में कुल मिलाकर २५ लाख टन माल रखा जा सकेगा। इन गोदामों को खोलने का एक मुख्य उद्देश्य यह भी है कि खेती के लिए किसानों को ऋण दिया जा सके। जो भी चाहे इन गोदामों में चीजें जमा करा सकता है। इससे किसान, सहकारी संस्थाएँ, सौदागर या अन्य संस्थाएँ आदि सभी लाभ उठा सकते हैं।

२९ नवम्बर को केन्द्रीय सहकारिता मंत्री, श्री पंजाबराव दशमुख ने गोंदिया में तथा ३० नवम्बर को कृषि उपमंत्री ने अमरावती में एक गोदाम का उद्घाटन किया। दिसम्बर के पहले सप्ताह में दक्षिण के अन्य राज्यों में कई गोदाम खोले गये।

भारत से चाय का निर्यात

पिछले चार वर्षों में जनवरी से सितम्बर तक जितनी चाय बाहर भेजी गयी, उसे देखते हुए जनवरी से सितम्बर १९५७ तक चाय के निर्यात में कोई गिरावट नहीं आयी। इस वर्ष इन नौ महीनों में ३० करोड़ २० लाख पौंड चाय निर्यात की गयी, जबकि १९५३, १९५४, १९५५ और १९५६ की इसी अवधि में क्रमशः ३१ करोड़ ५५ लाख पौंड, २७ करोड़ ३१ लाख पौंड, २५ करोड़ ९५ लाख पौंड और ३५ करोड़ २० लाख पौंड चाय का निर्यात हुआ था। अतः अभी ऐसी स्थिति नहीं आई कि हमें इस सिलसिले में अधिक सतर्क होने की जरूरत पड़े। साधारणतः निर्यात बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

भारत से लाख का निर्यात

१९५६-५७ में भारत को लाख के निर्यात से लगभग ९.५ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई। भारतीय लाख के प्रमुख आयात केन्द्र अमरीका, ब्रिटेन, रूस, पश्चिमी जर्मनी, इटली, अर्जेन्टाइना, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, और जापान हैं। भारत सरकार ने लाख के निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए एक निर्यात-प्रोत्साहन परिषद् की स्थापना की है।

लाख का उत्पादन बढ़ाने के लिए बिहार, मद्रास, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, पंजाब और मध्य प्रदेश को वित्तीय सहायता दी गयी है। द्वितीय योजना के अन्त तक कड़ी लाख का उत्पादन ११ लाख मन से बढ़ कर १५.५ लाख मन तक पहुँच जाने की आशा है। अभी हाल तक भारत विश्व-उत्पादन का लगभग ९० प्रतिशत पैदा करता था।

विदेशी

भारत का पश्चिमी एशिया के साथ व्यापार

भारत के पश्चिमी एशिया के साथ निर्यात व्यापार में पिछले चार वर्षों में ६५ प्रतिशत वृद्धि हुई है। भारत ने पश्चिम एशियाई देशों को १९५६-५७ में ४३ करोड़ १० लाख रुपये का माल निर्यात किया, जबकि १९५३-५४ में कुल २६ करोड़ १४ लाख रु. का किया था।

इस दौरान में भारत के पश्चिम एशियाई देशों के साथ कुल व्यापार में लगभग ३० प्रतिशत वृद्धि हुई है। भारत ने इन देशों के साथ १९५६-५७ में १२७ करोड़ रुपयों का कुल व्यापार किया, जबकि १९५३-५४ में यह कुल व्यापार ९८ करोड़ ३५ लाख रुपये का था।

मिस्र को १९५६-५७ में ११ करोड़ ३९ लाख रुपये का माल निर्यात हुआ। इस देश को १९५३-५४ में ८ करोड़ ९ लाख रुपये का माल भेजा गया था।

भारत ने ईरान को १९५६-५७ में ४ करोड़ ५६ लाख रुपये का माल भेजा, जबकि १९५३-५४ में कुल १ करोड़ ५२ लाख रुपये का माल निर्यात किया था। इसी तरह सूडान, सऊदी अरब और ईराक को भेजे जाने वाले माल में भी वृद्धि हुई है। तुर्की और लेबनान के साथ निर्यात व्यापार में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, परन्तु सीरिया को भेजे जानेवाले माल में कुछ कमी हुई है।

भारत से पश्चिम एशियाई देशों को चाय, पटसन का माल, मसाले, सूती कपड़े और इंजीनियरी का सामान निर्यात होता है और कपास, खनिज तेल, छुहारे तथा मेवा आदि वस्तुएँ वहां से आयात की जाती हैं।

ईरान से १९५६-५७ में ३२ करोड़ ६८ लाख रु. का माल आयात हुआ, जबकि १९५३-५४ में कुल २ करोड़ ४ लाख रु. का ही हुआ था। सऊदी अरब ने १९५६-५७ में भारत को १६ करोड़ रुपये का और लेबनान ने २८ लाख रुपये का माल भेजा। बहरीन और मिस्र के आयात-व्यापार में थोड़ी कमी हुई, जबकि अन्य देशों का आयात-व्यापार ज्यों का त्यों रहा। सूडान से १९५६-५७ में ९ करोड़ २९ लाख रु. का माल आयात हुआ, जबकि १९५३-५४ में ७ करोड़ ४८ लाख रुपये का माल आयात हुआ था।

भारत सरकार ने देश के निर्यात-व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए निर्यात-वृद्धि परिषदों की स्थापना की है। इन परिषदों ने पश्चिम एशियाई देशों में भारतीय माल की प्रदर्शनियां आयोजित कीं और उन देशों में किस माल की खपत अधिक हो सकती है, इसकी भी जांच की। इन देशों के साथ व्यापार बढ़ाने के लिए १९५४-५५ में वहां एक व्यापार-सद्भावना शिष्टमंडल भेजा गया था।

भारत में निजी खाते पर पूंजीगत सामानों का आयात

अप्रैल १९५६ से लेकर जून १९५७ तक के बीच रूस से ३६.४५ लाख रुपये के मूल्य की हर किस्म की मशीनरी तथा ५.२६ लाख रुपये की गाड़ियां आयात की गयीं। ब्रिटेन, अमरीका, पश्चिमी जर्मनी और जापान से निजी खाते पर पूंजी सामानों का जो आयात भारत में किया गया, उसके आंकड़े निम्न लिखित तालिका में दिये गये हैं :—

(लाख रुपयों में)

देश	हर किस्म की मशीनरी	मोटर गाड़ियां	इंजन और पुर्जे	जहाज और पुर्जे	कुल
ब्रिटेन	८,३९०	१,८६२	१८१	१३१	१०,५६४
अमरीका	३,३१३	१,५६७	१५	५५	४,९५०
पश्चिमी जर्मनी	४,३५०	१,३४५	५९	१,०६६	४,९५०
जापान	९५०	११९	७	११२	१,१८८
कुल	१७,००३	४,९८३	२६२	१,३६४	२३,५२२

ब्रिटिश पर्यटन उद्योग

ब्रिटिश ट्रैवेल ऐण्ड हालिडेज़ एसोसियेशन का कहना है कि ब्रिटिश पर्यटन उद्योग के लिए १९५७ भी काफी सफलता का वर्ष सिद्ध हो सकेगा । १९५६ के अक्तूबर मास के अन्त तक ब्रिटेन आगत समुद्रपारीय पर्यटकों की संख्या (१०,११,०००) से, १९५७ के अक्तूबर मास तक की संख्या (१०,८०,०००) सात प्रतिशत अधिक है । योरोप से आये लोगों की संख्या ९ प्रतिशत अधिक रही । सबसे अधिक बढ़ती दिखाने वाले देश थे : इटली (२३ प्रतिशत); जर्मनी (११ प्रतिशत); और फ्रांस (९ प्रतिशत) । अमेरिका से आने वालों की संख्या भी वृद्धि की परिचायिका थी ।

भारत से रेडियो-फोन सेवा

भारत से २० देशों को रेडियो-फोन से और १२ देशों को रेडियो-तार से समाचार तथा रेडियो द्वारा ७ देशों को फोटो भेजे जा सकते हैं । विभिन्न देशों में ये सेवाएँ इस प्रकार हैं :—

रेडियो-फोन सेवा : अदन, आस्ट्रेलिया, बहरीन, चीन, पूर्वी अफ्रीका, मिस्र, इथियोपिया, फ्रांस, हांगकांग, इण्डोनेशिया, ईरान, हिन्दचीन, जापान, मलाया, पोलैण्ड, सऊदी अरब, स्विटजरलैण्ड, ब्रिटेन, (तीन सर्किट) और रूस ।

रेडियो-तार सेवा : अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, बर्मा, चीन (दो सर्किट), मिस्र, फ्रांस, हिन्दचीन (हनोई), हिन्द चीन (सेगांव), इन्डोनेशिया, ईरान, जापान, पोलैण्ड, थाई देश, ब्रिटेन (तीन सर्किट), अमेरिका (दो सर्किट), रूस और युगोस्लाविया ।

रेडियो-फोटो सेवा : चीन, फ्रांस, जापान, पोलैण्ड, ब्रिटेन, (दो सर्किट), अमेरिका और रूस ।

तार—आगरा होटल : फोन—२४६०६

आगरा होटल

१६ दरियागंज, दिल्ली—७

नई तथा पुरानी दिल्ली के मध्य स्थित

★ सजे सजाये वातानुकूलित कमरे

★ विस्तृत बाग़ व लान

★ अंग्रेजी और भारतीय ढंग के खाने

★ व्यक्तिगत सुविधाओं पर ध्यान देना इसकी सर्वश्रेष्ठ विशेषता है ।

★ जिस साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, वह निरर्थक है ।

★ जो साहित्य मानव जाति की सेवा की प्रेरणा नहीं देता, वह निष्प्रयोजन है ।

★ जो साहित्य बुद्धि-भेद उत्पन्न करता है, वह अनिष्टकारी है ।

जीवन साहित्य

में जीवन, मानव जाति की सेवा की प्रेरणा और एकनिष्ठ बुद्धि से अपने मार्ग पर चलने का बल मिलेगा

एक प्रति अवश्य देखने की कृपा कीजिये

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

B79248

प्रीस्ट्रेस्ड कंक्रीट पाइप प्रयोग कीजिये

Save iron & steel
Save cement

राष्ट्र की इस्पात समस्या को एक आधुनिक ढंग पर सुलझाइये। ४०० हेड वाटर तक के टेस्ट दबाव के लिए प्रीस्ट्रेस्ड कंक्रीड पाइप का प्रयोग करके इस्पात और सीमेंट को बचाइए। अब तक कम दबाव वाली लाइनों के लिए केवल आर. सी. सी. ह्यूम पाइपों का प्रयोग किया जा सकता था और अधिक दबाव के लिए या तो ह्यूम स्टील पाइप या कास्ट आयरन पाइपों का प्रयोग करना पड़ता था। इससे जलपूर्ति-योजनायें बहुत ही मंहगी हो गई थीं। इसके अलावा देश में लोहा और इस्पात की बेहद कमी के कारण काफी समय तक इन योजनाओं में काट-छांट करना जरूरी है। लेकिन विज्ञान हमारी सहायता के लिए तैयार है। प्रीस्ट्रेस्ड कंक्रीट पाइपों का सबसे ताजा विकास होने पर, जिनका निर्माण और जिनकी पूर्ति अब हम कर रहे हैं, ये योजनायें बहुत ही कम लागत पर व शीध्र कार्यान्वित की जा सकती हैं।

हमारे प्रीस्ट्रेस्ड कंक्रीट पाइप इंजीनियरिंग आवश्यकताओं की एक बहुत बड़ी कमी पूरी कर रहे हैं। इनके द्वारा दबावों और चौड़ाई के रूप में इंजीनियर को उसकी योजनाओं में काफी बचत हो रही है और साथ ही इस्पात और सीमेंट दोनों में ही राष्ट्र को बचत हो रही है।

भारत भर में और श्रीलंका में कारखाने।

THE INDIAN HUME PIPE CO. LTD.

HEAD OFFICE
CONSTRUCTION HOUSE, BALLARD ESTATE, BOMBAY. I

दिल्ली कारखाना : सराय रोहिल्ला दिल्ली–६

कांग्रेस प्रकाशन

आर्थिक-समीक्षा : प्रत्येक मास की ५वीं तथा १९वीं तारीख को प्रकाशित होती है। वार्षिक मूल्य पाँच रुपया भारत में, तथा सात रुपया विदेश में।

कांग्रेस पत्रिका : प्रत्येक मास की १० तारीख को प्रकाशित होती है। वार्षिक चन्दा चार रु० भारत में, तथा विदेश में छः रु०।

युवक कांग्रेस : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के युवक विभाग का पाक्षिक-पत्र। वार्षिक मूल्य भारत में तीन रु०, विदेश में चार रु०।

महिला प्रगति के पथ पर : अ. भा. कां. क. के महिला विभाग का मासिक पत्र। वार्षिक मूल्य भारत में तीन रु०, विदेश में चार रु०।

दल समाचार : अ. भा. कां. क. के सेवादल विभाग का मासिक पत्र। वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया मात्र।

	मूल्य एक प्रति	डाक व्यय
कांग्रेस संविधान (नवीनतम)	0.25	0.07
कांग्रेस संविधान की धाराओं के अन्तर्गत नियम (नवीनतम)	0.25	0.07
कांग्रेस ग्राम पंचायत कमेटी की रिपोर्ट (जुलाई १९५४)	1.50	0.25
आवडी अधिवेशन में पास हुए प्रस्ताव (१९५५)	0.13	0.07
अ. भा. कां. क. की ब्रह्मपुर मीटिंग में पास हुए प्रस्ताव (मई १९५५)	0.13	0.07
अ. भा. कां. क. के बम्बई अधिवेशन में पास हुए प्रस्ताव (१९५६)	0.13	0.07
सिंचाई और बिजली	0.25	0.07
गांव के उद्योग धंधे	0.25	0.07
सामुदायिक योजना	0.25	0.07
अन्न समस्या का हल	0.25	0.07
आजादी का दसवां वर्ष (अगस्त '५६-अगस्त '५७)	3.00	0.75
कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की पुस्तिका १९५७	0.37	0.13
सर्वधर्म समभाव	0.75	0.19
युवक कांग्रेस सूचना पुस्तक	0.75	0.19
आर. एस. एस. ध्येय, नीति और प्रचार कला — गोविन्दसहाय	0.75	0.13
समाजवादी अर्थशास्त्र की ओर— श्रीमन्नारायण	1.50	0.25
समाजवादी सहकारी स्वराज्य की ओर उ. न. ढेबर	0.25	0.07

	मूल्य एक प्रति	डाक व्यय
कांग्रेस रचनात्मक कार्य समिति की रिपोर्ट (१९५५)	0.50	0.13
रचनात्मक कार्य सूचना पुस्तक	1.00	0.25
रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन का विवरण (फरवरी '५६)	0.25	0.07
रचनात्मक कार्यक्रम (१९५६)	0.25	0.07
व्यक्तिगत आचरण —श्री प्रकाश	0.19	0.07
गौतम बुद्ध का संदेश	0.19	0.07
गीतावली भाग १	0.25	0.07
गीतावली भाग २	0.25	0.07
सेवादल मैनुअल नं. १	0.37	0.07
सेवादल मैनुअल नं. ३	0.37	0.07
सेवादल मैनुअल नं. ४	0.50	0.13
सेवादल मैनुअल नं. ५	0.75	0.13
सेवादल मैनुअल नं. ७	0.75	0.13
आर्थिक-समीक्षा, 'इंदौर कांग्रेस अधिवेशनांक' (१९५७)	1.00	0.25
आर्थिक-समीक्षा '१९५७ शताब्दि विशेषांक' (१५ अगस्त १९५७)	0.75	0.25
आर्थिक-समीक्षा 'सर्वोदय विशेषांक' (१९५७)	0.75	0.25
महिलाएं और चुनाव	0.12	0.07
महिलाओं के लिए रचनात्मक कार्यक्रम सूचना पुस्तक	0.50	0.19
विवाह सम्बन्ध विच्छेद तथा उत्तराधिकार	0.12	0.07

अपना आर्डर किसी भी स्थानीय कांग्रेस कमेटी या सीधे निम्नलिखित पते को भेजें :—

प्रकाशन विभाग
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी,
७, जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली

नोट : पुस्तकों का आर्डर तथा मूल्य भेजते समय 50 नये पैसे रजिस्ट्री की फीस भेजना न भूलें।

डालमिया उत्पादन

प्रयोग-सिद्ध एवं उच्च-कोटि के

डालमियापुरम् मिल की सिमेंट भट्टी का एक दृश्य

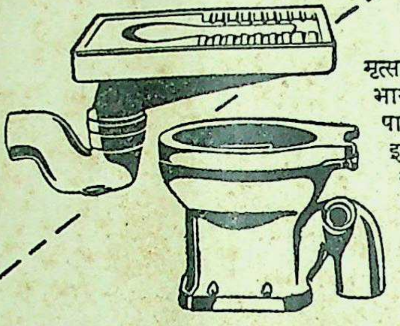

मृत्सा-आरोग्यपात्र (Porcelain sanitary ware) भारतीय और योरोपीय शौच कुंड (closets) धावन पात्री (Wash basins) मूत्रकुंड (Urinals), इत्यादि विसवाहक (Insulations) एवं क्षाररोधक खर्परी (Tiles) भी मिल सकती है।

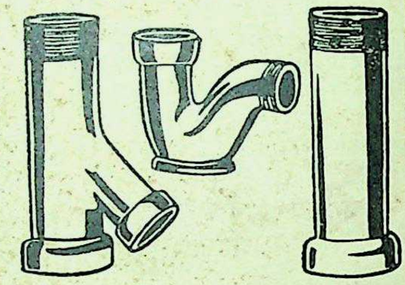

कश्मनाल (Stone ware Pipes) पूर्ण रूपेण लवण काचित (Salt Glazed) क्षार रोधक (Acid Resistant) एवं प्रमाप विशिष्ट (Tested of standard specification) जलोत्सारण (Drainage) के लिये

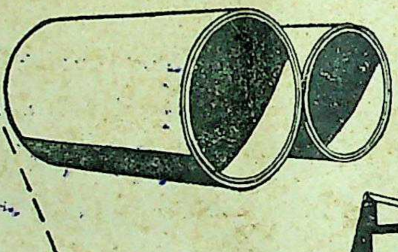

वज्रचूर्ण-आयससंघा नाल (R. C. C. Spun pipes) सिंचाई, पुलियाओं (Culverst) जलप्रदाय और जलोत्सारण (Cupply and drainage) के लिये सभी श्रेणियों और मापों में प्राप्य।

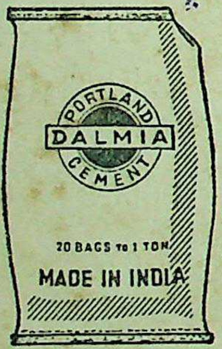

पोटलैंड सिमेंट सामान्य निर्माण के लिये

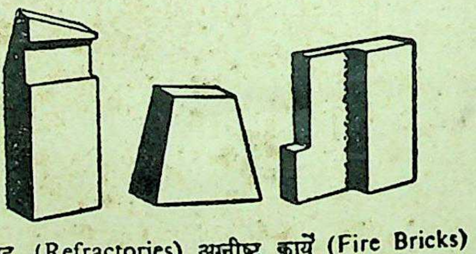

उष्मसह (Refractories) अग्नीष्ट कार्यें (Fire Bricks) संमृद (Mortors) तथा समस्त ताप-सीमाओं और आकृतियों में प्राप्य विसंवाहक ईंट कार्यें (Insulating Blocks) सभी औद्योगिक आवश्यकताओं के लिये

डालमिया सिमेंट [भारत] लिमिटेड

डाकघर – डालमियापुरम्
जिला – तिरूचिरापल्ली, दक्षिण भारत

A.I.A.B. D/C H2

अ० भा० कांग्रेस कमेटी के लिए श्री बालकृष्णन् द्वारा प्रकाशित और नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

Compiled
1999-2000